॥ श्रीरस्तु ॥

॥ द्राविडवेददिव्यप्रबन्धटीका-हिंदीविभाग २ ॥

॥ श्री पराङ्कुशपरकाल यतिवर वरवरमुनीन्द्रेभ्यो नमः ॥

द्राविडवेद चार हजार दिव्यप्रबन्ध में पहले हजार का दूसरा भाग

१. श्री व्रतदिव्यप्रबन्ध—तिरुप्पावै
२. श्री गोदासूक्त—न चियातिरुमोळि
३. श्री कुलशेखरसूक्त—पेरुमाळ्तिरुमोळि
४. श्री भक्तिसारसूक्त—तिरुच्चन्दविरुत्तम्
५. श्री मालादिव्यप्रबन्ध—ति ालै
६. सुप्रभातदिव्यप्रबन्ध—तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि
७. श्री मुनिवाहनसूरिसूक्त—अमलनादिपिरान्
८. श्री मधुरकविसूरिसूक्त—कण्णिनुणूशिरुत्ताम्बु

नामक ये आठ दिव्यप्रबंध

श्रीकाञ्ची प्रतिवादि भयङ्कर जगदाचार्य सिंहासनाधीश श्रीमदण्णङ्गराचार्य विरचित संस्कृतटीकानुसारि ।

श्रीयादवाद्रि तिं. अ. अ. संपत्कुमाराचार्य विलिखित हिंदी टीका के समेत

मद्रास - लिबर्टी मुद्रणालय में छपाये गये ।

प्राप्तिस्था ाम् ।
Jagadacharya, P. B. Annangaracharya.
L. Kancheepuram.

मूल्यम् - दस रु पे १०-०.

1962

सूचना—श्री भट्टनाथसूरी से अनुगृहीत दो दिव्यप्रबंधों की भी हिंदी टीका छपी है ।

॥ श्रीरस्तु ॥

॥ द्राविडवेददिव्यप्रबन्धटीका-हिंदीविभाग २ ॥

॥ श्री पराङ्कुशपरकाल यतिवर वरवरमुनीन्द्रेभ्यो नमः ॥

द्राविडवेद चार हजार दिव्यप्रबन्ध में
पहले हजार का दूसरा भाग

१. श्री व्रतदिव्यप्रबन्ध—तिरुप्पावै
२. श्री गोदासूक्त—नाच्चियार्तिरुमोळि
३. श्री कुलशेखरसूक्त—पेरुमाळ्तिरुमोळि
४. श्री भक्तिसारसूक्त—तिरुच्चन्दविरुत्तम्
५. श्री मालादिव्यप्रबन्ध—तिरुमालै
६. सुप्रभातदिव्यप्रबन्ध—तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि
७. श्री मुनिवाहनसूरिसूक्त—अमलनादिपिरान्
८. श्री मधुरकविसूरिसूक्त—कण्णिनुण्शिरुत्ताम्बु

नामक ये आठ दिव्यप्रबंध

श्रीकाञ्ची प्रतिवादि भयङ्कर जगदाचार्य सिंहासनाधीश श्रीमदण्णङ्गराचार्य विरचित संस्कृतटीकानुसारि।

श्रीयादवाद्रि ति. अ. अ. संपत्कुमाराचार्य विलिखित हिंदी टीका के समेत

मदरास - लिबर्टी मुद्रणालय में छपाये गये।

प्राप्तिस्थानम्।
Jagadacharya, P. B. Annangaracharya.
L. Kancheepuram.

मूल्यम् - दस रुपये १०-०.

1962

सूचना—श्री भट्टनाथसूरी से अनुगृहीत दो दिव्यप्रबंधों की भी हिंदी टीका छपी है।



श्रीमान्‌ स्वामी अकारकनि सम्पत्कुमाराचार्यजी

द्राविडवेद चार हजार दिव्यप्रबन्धों की हिन्दी टीका के लेखक

|| श्रीः ||

कृतज्ञता - प्रकाशन

श्री वैष्णवकुल के सर्वस्वभूत, और सत्संप्रदाय सदर्थों के निधिभूत, द्राविडवेद, दिव्यप्रबंधों के संस्कृत तथा हिंदी भाषाओं में टीकाप्रकाशन रूप महत्तर कैंकर्य करने की प्रेरणा, हमें बहुतकाल से हैदराबादनगर के सीतारामबागनिवासी श्रीमान राजा लक्ष्मीनिवास रामलाल गनेडीवाला नामक प्रसिद्ध परमभक्ताग्रेसर की ओर से मिलती रही। यह बात बिलकुल सत्य है कि सदाचार्यों के विशेषकटाक्ष के प्रधान लक्ष्य होने से ही उक्त भक्तवर शेठजी के मन में यह विलक्षण सेवा कराने की इच्छा उत्पन्न हुई। यह इच्छा अब दो साल से सफल बन रही है। आपके ही प्रयत्न के फलतया इस कैंकर्य के लिए कुछ द्रव्य भी इकट्ठा किया गया। अब "पहले हजार" की टीका छप चुकी है, जिसका व्यय छे हजार रुपये हैं। इसमें लगभग पांच हजार रुपये श्रीयुत राजा लक्ष्मीनिवास गुप्त के प्रयत्न से मिले हैं। दाता महाशयों का नाम इस प्रकार हैं—दक्षिण हैदरबाद के निवासी

(१) श्रीमती पारुबाई साहब

(२) श्री रामप्रसाद वेणुगोपालजी (हीरानंद रामसुखजी)

(३) श्री सत्यनारायणजी भांगडिया (पन्नालाल हीरालालजी)

अब अवशिष्ट तीन हजारों की टीका छप रही है। इनमें प्रधानतया श्री शठकोपसूरी से अनुगृहीत अप्रतिमवैभववाली सहस्रगीति की टीका का मुद्रण अब चालू किया गया है। इस विषय में यह बताते हमें बडा हर्ष होता है कि इस कैंकर्यमें (राजस्थान) मौलासर के निवासी परमभागवतोत्तम प्रसिद्ध शेठजी रामदयाल जी सोमानी विशेष उत्साह दिखा रहे हैं। और यह भी बात अवश्य वक्तव्य है कि हमसे विलिखित संस्कृत टीका की सुगंध को ज्यों का त्यों भरकर सरल हिंदी टीका, हमारे बडे जमाई नाना शास्त्रविशारद श्रीमद्यादवाद्रि. श्री शैलानन्तपूरुष. अक्कारक्कनि श्रीसंपत्कुमाराचार्यवर्य से लिखी जा रही है। हमारी आशा है कि उत्तरभारतनिवासी श्री वैष्णव भक्त लोग इससे लाभ उठावेंगे। भगवद्भागवतों की विशेष कृपा से लगभग दो साल में इस कैंकर्य के पूर्ण होने की आशा की जाती है।

१०-१२-६२ इति श्रीकाञ्ची-प्रतिवादि भयंकर-अण्णङ्गराचार्यस्वामी।

श्रीपरांकुशपरकालयतिवर वरवरमुनिभ्यो नमः

दिव्यप्रबंध व्याख्यान सूचीपत्र

श्री वैष्णव संप्रदाय के प्रवर्तक, भगवद्भक्तिसागर निमग्न, आळ्वार बिरदभाजन दिव्यसूरियों से अनुगृहीत चारहजार दिव्यप्रबंध, मुमुक्षुजनों के अवश्यज्ञातव्य तत्वहित पुरुषार्थरूप समस्त सदर्थों का, एवं विशेषतः भगवान के स्वरूप रूप गुण विभवादियों का अतिविशद वर्णन करनेवाले श्रेष्ठ ग्रंथ हैं। परंतु इनकी भाषा द्राविडी है; अतः इससे अपरिचित उत्तरभारत के श्रीवैष्णव भक्त जन इनके अध्ययन से वंचित ही रह गये। इस न्यूनताके परिहारार्थ, दिव्यप्रबंधों के अप्रतिमविद्वान एवं नाना भाषाओं में टीकाकार जगदाचार्यसिंहासनाधीश्वर व्याख्यानवाचस्पति श्री कांची प्रतिवादि भयंकर अण्णंगराचार्य स्वामीजी महाराज संस्कृत भाषा में (प्रायः गद्य में और क्वचित् पद्यरूप में) इनका अनुवाद व आवश्यक टीका लिख रहे हैं। इसके आधारपर आपके जमाई श्रीमद्यादवाद्रि ति. अ. संपत्कुमाराचार्य स्वामीजी हिंदी में इनकी टीका लिख रहे हैं। अब तक इसमें एक हजार गाथाओं की टीका छप चुकी है; आगे का भाग छपाया जा रहा है। इनमें तिरुप्पावै नामक श्रीगोदाव्रतप्रबंध की टीका विस्तृत एवं अर्थपूर्ण है। सहस्रगीति का व्याख्यान भी जरूर विस्तृत ही होगा। दूसरे ग्रंथों का केवल अनुवाद और क्वचित् क्वचित् टीका टिप्पणीमात्र होंगे। अब तैयार ग्रंथों की यह सूची है—

प्रथमसहस्र यानी पहले हजार दो जिल्दों में हैं—

(१) पेरियाळ्वार नामक श्री विष्णुचित्तसूरी से अनुगृहीत तिरुप्पल्लाण्डु व पेरियाळ्वार तिरुमोळि नामक दो दिव्यप्रबंधों का अनुवाद (लघु टिप्पणी समेत) संस्कृत. रू. ५—०—०. हिंदी. रू. ६—००.

(२) श्रीगोदादेवी से अनुगृहीत तिरुप्पावै का विस्तृत व्याख्यान, तथा नाच्चियार तिरुमोळि, पेरुमाळ् तिरुमोळि, तिरुच्चन्दविरुत्तम्, तिरुमालै, तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि, अमलनादिपिरान् और कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु नामक सात दिव्यप्रबंधों का अनुवाद व लघुटिप्पणी संस्कृत. रू. १०—०—०. हिंदी. रू. १०—००.

[पता अंगरेजी में लिख दीजिए।]

प्राप्तिस्थान : 1. Sri P. B. Annangaracharya Swami L. Kancheepuram.

2. राजा. लक्ष्मीनिवास रामलाल गनेडीवाला सीतारामबाग, हैदराबाद A. P.

3. श्री वेंकटलाल पसारी, रंगजी मंदिर बृन्दावन. U. P.

लिबर्टी प्रेस, मद्रास-१.

॥ श्रीरस्तु ॥

श्री गोदादेव्यै नमः ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

द्राविडवेदनामक चार हजार दिव्यप्रबंध मे पहिले हजार का
तीसरा दिव्य प्रबंध

तिरुप्पावै

(श्रीव्रतप्रबंध अथवा श्रीगोदाव्रतदिव्यप्रबंध)

आण्डाळ नामक श्री गोदादेवी से अनुगृहीत ।

जगदाचार्यसिंहासनाधीश व्याख्यानवाचस्पति श्रीकांची प्रतिवादिभयंकर-
श्री अण्णंगराचार्य स्वामीजी से विलिखित संस्कृत टीका के आधारसे
श्रीमद्यादवाद्रि ति. अ. अक्कारक्कनि संपत्कुमाराचार्य विलिखित
हिंदी टीका समेत

प्राप्तिस्थानम् —
P. B. ANNANGARACHARYA
GRANTHAMALA OFFICE, L. KANCHEEPURAM

मद्रास " रत्नम् " प्रेस में छपाया गया ।

1962

मूल्य – रु. ४–००

॥ श्रीरस्तु ॥

श्री गोदादेव्यै नमः

श्रीमते रामानुजाय नमः ॥ श्रीमद्वरवरमुनये नमः



चारहजार दिव्यप्रबंधों में पहिले सहस्र का तीसरा दिव्यप्रबंध, श्री गोदादेवी से अनुगृहीत

॥ तिरुप्पावै यानीं श्रीव्रतप्रबंध ॥

श्रीकाञ्ची प्रतिवादिभयंकर जगदाचार्यसिंहासनाधीश

श्रीमदण्णङ्गराचार्यप्रणीत

संस्कृतव्याख्यानानुसार से श्रीयादवाद्रि अक्कारक्कनि सम्पत्कुमाराचार्यलिखित हिन्दीटीकासमेत ॥

(सर्वदिव्यप्रबन्ध साधारण स्तुतिपद्यानि)

श्रीशैलेशदयापात्रं धीभक्त्यादिगुणार्णवम् । यतीन्द्रप्रवणं वन्दे रम्यजामातरं मुनिम् ॥

लक्ष्मीनाथसमारम्भामित्यादि.................श्रीमत्पराङ्कुशमुनिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥

(तिरुप्पावैदिव्यप्रबन्ध — असाधारणस्तुतिपद्यानि ।)

(श्री पराशरभट्टर स्वामीजी से अनुगृहीत संस्कृत तनियन्)

नीलातुङ्गस्तनगिरितटीसुप्तमुद्बोध्य कृष्णं
पारार्थ्यं स्वं श्रुतिशतशिरस्सिद्धमध्यापयन्ती ।
स्वोच्छिष्टायां स्रजि निगलितं या बलात्कृत्य भुङ्क्ते
गोदा तस्यै नम इदमिदं भूय एवास्तु भूयः ॥

अनुवाद—नीलादेवी के ऊंचे स्तनरूपी पर्वततट में सोये हुवे श्रीकृष्ण को जगाकर हजारों वेदांत वाक्यों से सिद्ध अपने (माने चेतंन के) भगवच्छेषत्व का उपदेश करनेवाली, एवं अपने से धृत पुष्पमाला से बांधकर निर्बन्धपूर्वक (उनका) अनुभवकरनेवाली गोदादेवी को वारंवार नमस्कार है ॥

श्रीकृष्णावतार समय में व्रज में आपका एक मामा था, कुंभ। उसके वहां श्रीमहालक्ष्मीजी (अथवा नीलादेवी) नप्पिन्नैप्पिराट्टि नाम से अवतीर्ण होकर विराजमान थी। बलवान सात वृषभों का दमन कर श्रीकृष्णने आपसे परिणय किया। श्री परांकुशपरकालादि दिव्यसूरिवर्ग गोपालकुल में अभिवृद्ध श्रीकृष्ण की उसी कुलवाली इस नीलादेवी को अनुरूप प्रधानमहिषी मानते हैं। प्रकृत तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध में भी आपके साथ शयन करनेवाले श्रीकृष्ण जगाये जाते हैं। १८, १९, २० पद्यों में यह विचार प्रस्तुत है। इनमें "कुत्तुविळक्केरिय" इत्यादि १९-वे पद्य के अनुसार यह तनियन् पद्य श्रीपराशर भट्टर स्वामीजी से रचा गया है। उस पद्य में, कहा जाता है कि, "हे नीलादेवी के स्तनतटपर शयन करनेवाले श्रीकृष्ण! जागो।" एतदनुसार प्रकृत तनियन् पद्य का प्रथमपाद रचा गया है।

श्रीकृष्ण को जगाकर गोदादेवी ने आपसे "शित्तम् शिरुकाले" इत्यादि (२९ वे) पद्य से जो विनंती की, उसका अनुवाद दूसरे पाद से किया जाता है। अर्थात् गोदादेवी ने भगवान को सेकडों वेदांत वाक्यों में प्रसिद्धतया उपवर्णित इस अर्थ का उपदेश दिया कि समस्त चेतनवर्ग हमेशा के लिए भगवान का ही शेष है और भगवान सर्वशेषी यानी स्वामी है; अतः सब से सेवा लेना आपका अनिवार्य है। "गोदादेवी भगवान से अपने शेषत्व की विनंती करती हैं" यों कहने के बदले में, "शेषत्व का उपदेश देती है" कहना रसपूर्ण है। उक्त गाथा में कहा गया है कि, "हे गोविंद हम से सुनिए"। अतः इसको लक्ष्य में रखकर यहां पर भी उपदेश का प्रस्ताव किया गया है। अनादिकाल से यह संसारी चेतन अपने भगवच्छेषत्व को भूलकर स्वातंत्र्य भ्रम में मग्न हो कर गर्व के साथ भटक रहा है; जिसका परिणाम शायद यह हुआ कि भगवान भी इस तत्व को भूलकर अपने भोग में मस्त रह गये। अतः पहिले आपको ही यह उपदेश देना पडा कि, आप (भगवान) शेषी है और सारा चेतनवर्ग आपका शेष (यानी माल) है। गोदादेवी से यह उपदेश पाने के बाद ही भगवान को भी अपने सर्वशेषित्व की याद आयी। इस से गोदादेवी के वचनों की विलक्षण महिमा बतायी जाती है।

तीसरे पाद में गोदादेवी के दिव्यचरित्र में प्रसिद्ध आपका एक वैभव उपवर्णित है। भगवान को अपने से उपभुक्त पुष्पमाला का अर्पण करना आपकी एक असाधारण लीला हुई थी। पुष्पमाला से भगवान को बंधित कहने का तात्पर्य यह है कि उच्छिष्टमाला समर्पण करने अपेक्षित आपके अतिमहान प्रेमपाश से भगवान बंधित हो गये। २९-वे पद्य में यों प्रार्थना दीखती है कि, "हे गोविंद! आपको हमारी सेवा लेनी ही पडेगी।" इस सनिर्बंध प्रार्थना को लक्ष्यकर यहाँ पर कहा गया "बलात्कृत्य भुङ्क्ते" (निर्बंध से भगवान का अनुभव करतीहै। गोदादेवी से कृत भगवान की सेवा तो आपका अनुभव ही है।

ऐसे विलक्षण दिव्य वैभववाली गोदादेवी की सन्निधि में अत्यंत भक्ति से प्रेरित होकर वारंवार नमस्कार करना ही हमारे लिए उचित है; यह अर्थ चौथे पाद में कहा गया॥

—: दूसरा तनियन् :—

अन्न वयल् पुदुवै आण्डाळरङ्गर्कु * पन्नु तिरुप्पावै पल्पदियम्*—इन्निशैयाल्
पाडिक्कोडुत्ताळ् नर्पामालै पूमालै * शूडिक्कोडुत्ताळै च्चोल्लु ॥

हंसयुक्त खेतों से विभूषित श्रीविल्लिपुत्तूर में अवतीर्ण श्री गोदादेवी ने श्रीरंगनाथ भगवान के लिए अतिमधुर गान करने योग्य तिरुप्पावै नामक दिव्यप्रबंध के पद्यों का अर्पण किया ; एवं अपने केशपाश में धारण की गयी हुई पुष्पमाला का भी अर्पण किया । (हे हृदय ! ऐसे महामहिम) आप का कीर्तन कर ॥

श्री गोदादेवी ने दो मालाएं दीं । एक तो तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध की तीस गाथाओं से ग्रथित वाचिक-माला, और दूसरी तो अपने सिरपर धारण की गयी हुई पुष्पमाला है । यद्यपि दोनों मालाएं श्रीरंगनाथ भगवान को अर्पित हुई । तथापि पहिली, यानी तिरुप्पावैमाला समस्त भक्तजन भोग्य भी है । पुष्पमाला तो केवल भगवान के उपभोग के योग्य है । तथा च अपनी प्रजा, समस्त भक्तजनों की, एवं अपने पति भगवान की प्रसन्नता के लिए उक्त माला का प्रदान करनेवाली गोदादेवी का कीर्तन करना अपना कर्तव्य है ॥

—: तीसरा तनियन् :—

शूडिक्कोडुत्त शुडर्कोडिये * तोल्पावै पाडियरुळवल्ल पल्वळैयाय्—नाडिनी
वेङ्गडवर्केन्नै विदियेन्न इम्मात्तम् * नाम्कडवा वण्णमे नल्हु ॥

हे पुष्पमाला का स्वयं धारणकर बाद में भगवान का अर्पण करने से विशेष शोभा पानेवाली ! हे स्वर्णलता सदृश ! हे तिरुप्पावै दिव्य प्रबंध की रचना से प्रकाशित कारुण्य गुणवाली ! मुझे श्रीवेंकटनाथ भगवान के अनन्यार्हशेषत्व को मांगनेवाली आपकी श्रीसूक्ति में मुझे निष्ठावान बना दीजिए ।

इस पद्य से साक्षात गोदादेवी को ही संबोधित कर यों प्रार्थना सुनायी जाती है कि, "हे गोदादेवी ! हमको ऐसा भाग्य दीजिए आपकी श्रीसूक्ति के अनुगुण आचरणों में ही हम निरत हो, नतु उसके विरुद्ध ।" गोदादेवी ने श्रीवेंकटाद्रिनाथ भगवान से यों प्रार्थना की थी कि, हे प्रभो ! मुझे आपका अनन्यार्हशेष बना दीजिए । "यहां पर ऐसी शंका हो सकती है कि इस प्रकृत तिरुप्पावै दिव्यप्रबन्ध में श्रीवेंकटाद्रिनाथ भगवान का नाम भी नहीं लिया गया है, फिर यह प्रार्थना किधर की गयी है ?

इसका प्रत्युत्तर यही है कि उंतीसवे "शित्तम् शिरुकाले" पद्य में, भगवान से ऐसी स्पष्ट प्रार्थना देखी ही जा रही है । यद्यपि वहां पर श्रीवेंकटेश भगवान का स्पष्ट नाम नहीं निर्दिष्ट है, परंतु श्रीकृष्ण को लक्ष्य करनेवाला गोविंद नाम ही सुना जाता है । तथापि आल्वारों की (एवं गोदादेवी की भी) यह दृढ भावना है कि परमपद में विराजमान, क्षीराब्धि में शयन करनेवाले, रामकृष्णादि रूप से अवतीर्ण, एवं श्रीरंग, वेंकटाद्रि आदि दिव्यदेशों में अर्चारूप से विराजमान भगवान एक ही हैं । अतः एक स्थल में की जानेवाली प्रार्थना

दूसरे रूप में भी की गयी हुई मानी जा सकती है। ऐसे ऐक्य भावना की स्तुतियां और प्रार्थनाएं दिव्य प्रबंधों में हजारों मिलती हैं। एवं विभवावतार के चरित्रों का वर्णन करनेवाले आळ्वार उस अवतार के साथ एक अर्चावतार को भी मिलाकर वर्णन करते हैं; जैसा कि पेरियाळ्वार ने व्रज में श्रीकृष्णावतार होने पर उधर के गोपों के संभ्रम चेष्टितों का वर्णन करते हुए उपक्रम मे यों पीठिका रचते हैं, कि श्रीगोष्ठी पुर के अधिपति श्रीकृष्ण जब व्रज में अवतीर्ण हुआ तब.........। एवं पेरियाळ्वार से कल्पित यशोदाजी श्रीकृष्ण से यों विनंती करती हैं कि, "हे तिरुवेळ्ळरै दिव्यदेश में विराजमान बालकृष्ण! पुष्प धारण करने आ जा।" तिरुप्पाणाळ्वार श्रीवेंकटाचल पर विराजमान श्रीरंगनाथ भगवान का वर्णन करते हैं। अतः श्रीवेंकटेश भगवान से भी प्रकृत प्रार्थना की गयी हुई, यो मानना सुतरां समंजस है और उक्त पद्य में निर्दिष्ट गोविंद नाम श्रीवेंकटेश भगवान के विशेष नामतया भक्तों से माना भी जाता है। श्रीवेंकटाचलयात्रा करनेवाले भक्त लोग गोविंद नामको ही वारंवार पुकारते आगे बढते हैं। अतः यों अनुमान लगा जा सकता है कि श्री गोदादेवी ने अपने हृदय में श्रीवेंकटेश भगवान को भी लक्ष्य कर, शायद उस गोविंद नाम का उच्चारण किया। अथवा नाच्चियार तिरुमोळि नामक अपने दूसरे दिव्यप्रबंध के प्रारंभ में अतिस्पष्ट शब्दों में ही श्रीवेंकटेश भगवान का अनन्यार्हशेष बनाने की प्रार्थना कर देगी; उस प्रार्थना के अनुसार यह तनियन् विरचित हुआ होगा॥

॥ तनियन् विवरण समाप्त हुआ ॥

श्री गोदादेवी की जय हो

※ तिरुप्पावै दिव्य प्रबंध की अवतारिका ※

श्री वैष्णव सम्प्रदाय में श्री सरोयोगी, श्री शठकोप सूरि, श्री विष्णुचित्त सूरि इत्यादि परमभक्ताग्रेसर दिव्य सूरि; यानी आलवारों की सत्ता प्रसिद्ध है। परम कारुणिक भगवान की निर्हेतुक कृपा से जगा जाने पर, ये आलवार अज्ञान निद्रा को छोडकर जाग गये, अर्थात् विलक्षण ज्ञानी बन गये। इन सब दिव्यसूरियों की दिव्य पुत्री के स्थान में विराजमान गोदादेवी तो अपने विलक्षण वैभव से उनसे भी आगे बढती हुई, स्वभाव से ही दिव्य ज्ञान भक्ति भरित होने के कारण पहिले स्वयं जागकर, भगवान को जगा कर आपको ही उपदेश देती हैं। और, पुरुषोत्तम बिरुदविभूषित भगवान का अनुभव करने में पुरुषों से औरतों को सरलता है। अत एव कोई कोई दिव्यसूरियों कदाचित् अपने पुरुषत्व का तिरस्कार कर स्त्री भावना को अपनाकर भगवदनुभव करते देखे जाते हैं। दिव्यप्रबंधों में ऐसी स्त्री भावना से प्रणीत गाथाएँ पुष्कल मिलती हैं। परंतु स्त्रीरूप में ही अवतीर्ण गोदादेवी को ऐसे प्रयास लेने की आवश्यकता न रही। किंतु वगर क्लेश भगवान का विलक्षण अनुभव करती हुई आप दूसरे दिव्यसूरियों से बहुत आगे बढ गयी है।

❋ गोदादेवी का संक्षिप्त जीवन चरित्र ❋

त्रेतायुग में महालक्ष्मीजी जनक चक्रवर्ती की यज्ञ भूमि में सीताजी के रूप में जैसे प्रकट हुई, इसी तरह से इस कलियुग में भी श्रीविल्लिपुत्तूर दिव्यनगर में श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी के तुलसी वन में, कर्कट मास के पूर्वफल्गुनी नक्षत्र में आप प्रकट हुई। श्री स्वामीजी ने भी बडी लावण्यमयी उस कन्या को संतानहीनं अपने पर अनुग्रह दिखाने उद्यत भगवान की देन मानकर अत्यंत प्रेम से पाला पोसा। अपने उसका "गोदा" नाम रखा और श्रीवैष्णव के अपेक्षित पांचों संस्कारों से संस्कृत कर भगवान के प्रति परभक्ति परज्ञान परमभक्तिवाली, तथा सर्वत्र व्याप्त यशवाली बना दिया।

यह कन्या गोदादेवी भी अपने स्वभाव से एवं श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी के शिक्षण से भगवान में गाढ अनुराग वाली होकर, आपकी ही पत्नी होने का निश्चय कर, मन में दूसरे किसी की चिंता न करती, हमेशा भगवान का ही ध्यान करती, उनकी ही कथा सुनती, सुनाती रही। परंतु इतना होने पर भी भगवान का दर्शन न मिलने से आपके मन में चिंता होने लगी कि "भगवान मुझ को अपनाएगा कि नहीं; मैं भगवान की लायक हूँ कि नहीं?" इस चिंता से आप अपने को सुंदर वस्त्र भूषणों से सजाती और श्रीवटपत्रशायी भगवान का अर्पण करने के लिए पिताजी श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी से तैयार कर टोकरी में रखी हुई पुष्पमाला को भी आपकी गैर हाजरी में स्वयं पहिनकर ऐने में अपने सौन्दर्य को देखती और मान लेती कि "जरूर ही मैं भगवान की लायक सुंदरी हूँ।" फिर उन पुष्पमाला को उतारकर पूर्ववत् आप टोकरी में ही रख देती और इस रहस्य को नहीं जाननेवाले स्वामीजी भी उनको मंदिर ले जाकर भगवान का अर्पण कर देते। बहुत समयतक यह चर्या प्रतिदिन चलती रही। परंतु एक दिन श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी ने यकायक आकर इस कृत्य को देख लिया। देखते ही आप बडी चिंता में पड गये कि, "ओः! यह विवेक हीन कन्या यह क्या कर रही है? भगवान का अर्पण करने लायक पुष्पमाला को इसने स्वयं पहिन लिया। न जाने कितने दिनों से यह ऐसा करते हुवे, भगवदपचार में स्वयं डूब रही है, और मुझको भी डुबा दे रही है।" इस दुःख में मग्नमना होने के कारण आप उस दिन मंदिर नहीं जा सके और भोजन भी किये विना सो गये। परंतु आश्चर्य की बात है कि भगवान ने श्रीस्वामीजी के स्वप्न में दर्शन दिया और आपसे पूछा कि, "आज क्यों मुझे पुष्पमाला नहीं दी गयी?" स्वामीजी ने कारण बता दिया और भगवान से क्षमा मांगी। तब भगवान ने आज्ञा दी, "हे विष्णुचित्त महात्मा! आप चिंता मत करिए। गोदादेवी से पहिने हुए पुष्प ही बहुत सुंगधी होता है और मुझे अत्यंत प्रिय लगता है। अतः उससे धृत माला को ही मुझे दे दीजिए।" स्वप्न छूट गया और श्रीस्वामीजी उठकर विचार करने लगे कि, "यह क्या चमत्कार है। यह बालिका तो जरूर श्री महालक्ष्मी का ही अवतार हो सकती है। अन्यथा इससे धृत पुष्पमाला में भगवान क्यों इतने व्यामोहित हो जाते?" फिर आप स्वस्थ चित्त होकर भगवदाज्ञानुसार आपकी सेवा करने में निरत हुए और गोदादेवी को भी पूर्व से अधिक प्रेमादर से देखने लगे।

गोदादेवी की उम्र के साथ भगवान में आपका अनुराग भी दिन प्रतिदिन बढता गया और क्रमशः आपकी ऐसी एक दशा आगयी कि भगवान से तुरंत मिले विना आप एक क्षण के लिए भी रह न सकी अर्थात् भगवान से मिलने की आपकी तीव्र उत्कंठा हो गयी। आपने मंदिर जाकर वटपत्रशायी भगवान से वार्तालाप करने की चेष्टा की; परंतु अर्चारूपी भगवान क्या प्रत्युत्तर देंगे? आपतो चुप ही रह गये। इससे गोदादेवी की चिंता और बढ गयी। आपने सोचा, "यह क्या है? भगवान मेरी उपेक्षा कर रहे है। यह क्या भक्तों से आपकी वर्ताव ही ऐसी है, अथवा केवल मेरी ही उपेक्षा की जा रही है? क्या कभी भी किसी भक्त ने आपको पाया है, कि नहीं?" इस चिंता से आपने भगवान के दिव्य चरित्रों का अध्ययन किया। तब विदित हुआ कि कृष्णावतार में बहुत सी गोपियों ने भगवान को पाया। परंतु, हाय! वह समय तो कभी बीत चुका। अब श्रीकृष्ण किधर, कैसे मिल सकते है? आपके पादन्यास से धन्य बनी हुई व्रज भूमि तो अभी मौजूद है। परंतु व्रज भूमि किधर है और दक्षिण के कोने में श्रीविल्लिपुत्तूर किधर है? अतः किसी प्रकार से विरह संतप्त मन को शांति मिलना अशक्यसा प्रतीत हुआ। इस अवस्था में एक उपाय मन में आया, कि भगवत्संबन्धि लीलाओं का अनुकरण करते दुःख को कुछ शांत करेंगे। अतः श्रीकृष्णभगवान और गोपियों की कात्यायनी व्रतानुष्ठान नामक एक विलक्षण लीला का अनुकरण करती हुई, इस प्रबंधद्वारा गोदादेवी अपने को कुछ संभालती हैं।

* तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध का प्रतिपाद्य विषय *

उक्त रीति से इस प्रबंध से कात्यायनी व्रत का अनुकरण (यानी वर्णन) किया जाता है। तिरुप्पावै शब्द का अर्थ है श्रीव्रत (तिरु-श्री, पावै-व्रत)। इस व्रतानुष्ठान का प्रसंग यह है—व्रज में भक्ताग्रेसर गोपियों से विहरण करते रहनेवाले श्रीकृष्ण को देखकर, उसको अनुचित माननेवाले गोपवृद्धों ने दूसरा कुछ न कर सकते हुए अपने अपने घर की गोपबालिकाओं को कोठरी में बंद कर दिया बेचारी गोपियां क्या कर सकती थी? मनमें ही भगवान का ध्यान करते कैदी की तरह पडी रही। इस अवस्था में दैवयोग से व्रज में वर्षा बंद होगया और दुकाल पड गया। घास व पानी के अभाव से गोगण बहुत संत्रस्त हो उठा। तब गोपवृद्धों ने मिलकर सोचा, कि अब इस संकट से बचने का उपाय कौनसा है। अततः यह निश्चय हुहा कि व्रज निवासिनी सभी गोपबालिकाएं मिलकर वर्षा के लिए व्रतानुष्ठान करेंगी; और उनके अपेक्षित सहाय करनेवाला, श्रीकृष्ण को छोडकर दूसरा कौन मिलेगा? अतः यह काम उसीको सौंप दिया जाएगा। इस निश्चय के अनुसार उन्होने सब गोपियों को बुलाकर व्रत करने की आज्ञा दी, और श्रीकृष्ण से भी उनकी मदद करने का अनुरोध किया। इस तरह से, गोपवृद्धों की अनुमति से एकत्रित होने पर, श्रीकृष्णने गोयिपों से सानंद वार्तालाप करते कुछ समय बिताया और उनसे कहा, "इस समय में एकांत में हमारे रहने से वृद्ध लोग हमपर फिर शंका करेंगे। अतः सब अपना अपना घर चलेंगे। बडे सबेरे उठकर हमारे वहां तुम आजा; व्रत को लिए आवश्यक प्रबंध कर दूंगा; फिर तुम यमुना जी में स्नान कर व्रत कर सकेंगी।"

इस के अनुसार गोपियां घर चली गयी तो सही : परंतु नींद किस को आवेगी ? प्रातःकाल भगवान से मिलले की आशा से आपका ही ध्यान करते सब लोग शयन पर लेट गयी। उषः काल में ही कितनी गोपियां उठकर दूसरी अपनी सखियों को भी जगाकर सब मिलकर श्रीकृष्ण भवन जाकर, द्वारपालक, नन्दगोपाल जी, यशोदा जी, बलराम जी, और नीलादेवी इनको जगाकर, फिर श्रीकृष्ण को भी जगाकर आप से व्रत करने आवश्यक वस्तुओं को मांगकर, आपसे उन वस्तुओं को, और विशेष सन्मान को भी पाकर आनंदित हो गयीं।

गोपियों के इस चरित्र का वर्णन इस दिव्य प्रबंध में किया जाता है। अर्थात् गोदादेवी भावना प्रकर्ष से स्वयं एक गोपी बनकर, गोपियों के वेष, भूषण, चलन वचन आदियों को पाकर, इस तरह से गोपीरूप धारिणी अपनी वाणी से इस चरित्र का वर्णन करती है।

इस तिरुप्पावै दिव्य प्रबंध का वैभव असाधारण है। प्रत्येक श्रीवैष्णव मंदिर में एवं घर में भी, इस का पाठ व शांति किये विना भगवान की पूजा पूर्ण नहीं ही सकती है। भगवान भाष्यकार श्रीरामानुजाचार्य स्वामीजी हमेशा इस दिव्यप्रबंध का ही अनुसंधान किये करते थे, जिस से आपका शुभनाम पडा "तिरुप्पावै जीयर" (द्राविडी भाषा में महात्मा को जीयर कहते हैं)। इस ग्रंथ में श्रीवैष्णव के अवश्य ज्ञातव्य सभी वेदांतार्थ परिपूर्ण हैं। अत एव आचार्य लोग कहते हैं कि तिरुप्पावै को न जाननेवाले का जन्म व्यर्थ है।

अवतारि का समाप्त श्री गोदादेवी की जय हो

॥ तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध—सटीक ॥

(गाथा.) * मार्गळितिङ्गळ् मदिनिरैन्द नन्नाळाल् * नीराडप्पोदुवीर् पोदुमिनो नेरिळैयीर् *
शीर्मल्हुमाय्प्पाडि शेल्वच्चिरुमीर्हाळ् * कूर्वेल् कोडुन्तोळिलन् नन्दगोपन् कुमरन् *
एरान्द कण्णि यशोदै यिळम्शिङ्गम् * कार्मेनि च्चेङ्कण् कदिर्मदियम्पोल् मुखत्तान् *
नारायणने नमक्के परै तरुवान् * पारोर्पुहळ प्पडिन्देलोरेम्बावाय् ॥ १ ॥

मार्गळि तिङ्गळ् - (यह तो) धनु (मार्गशीर्ष)मास है ;

मदि निरैन्द नन्नाळ् आल् } पूर्णचंद्र से युक्त (यानी शुक्लपक्ष का) शुभदिन (प्राप्त हुआ है); संतोष.

नेर् इळैयीर् - हे दिव्यभूषण धारिणियां !

शीर् मल्हुम् आय्प्पाडि } हे ऐश्वर्य से परिपूर्ण व्रज में निवासकरनेवाली

शेल्व शिरुमीर्हाळ् - कैंकर्य श्रीविभूषित बालिकाएं !

नीराड पोदुवीर् पोदुमिनो } स्नान करने चाहनेवाली (सब) आ जाओ ;

कूर्वेल् कोडुम् तोळिलन् नंदगोपन् कुमरन् } तीक्ष्ण शूलायुध धारी, कठोर कर्म कारी, नंदगोप जी का सुपुत्र, (एवं)

एरान्द कण्णि यशोदै इळम् शिङ्गम्	सुंदर नेत्रवाली यशोदाजी का वालसिंह,	नमक्के पॅरै तरुवान्	हमको ही पुरुषार्थ देगा;
कार्मेनि शेङ्गण्	कालमेघ समान देहवाला कमल नयन (एवं)	पारोर् पुहळ	(अतः) भूमण्डलवासी सब लोग हमारी प्रशंसा करें, इस तरह से
कदिर् मदियम्पोल् मुखत्तान्	सूर्य एवं चंद्र का समान मुखवाला,	पडिन्दु एल् ओर् एम्बावाय्	इस मार्गशीर्ष व्रत में अव गाहन करेंगे ॥
नारायणने	नारायण ही		

*** इस पहिली गाथा में गोपी भावना से विभूषित गोदादेवी, मार्गशीर्षव्रत करने एकत्रित गोपियों की, दूसरी अपनी सखियों को भी अपनी गोष्ठी में मिलने बुलाने की वाणी का अनुवाद करती हैं । आप कहती हैं—यह तो धनुर्मास है; मनोहर शुक्लपक्ष की पूर्णिमा तिथि है; इस समय में व्रत के अंगतया स्नान करने इच्छुक सब गोपियां इधर आ जाइए । अपार करुणा सागर, यशोदापुत्र, नंदगोपात्मज, भगवान कृष्ण हमारे व्रत को सफल बना देंगे । अतः निश्शंक सब आ जा ।

मार्हलित्तिङ्गळ् इत्यादि । बहुत समय तक कैद में रहनेवाला मानव, दैवयोग से एक दिन मुक्त हो गये तो, जैसे उस दिन की प्रशंसा करता है कि, "यह बडा शुभदिन है" इत्यादि; श्रीकृष्ण वलरामों को धनुर्याग के लिए मथुरा लानेको कंस से आज्ञप्त परम भागवत अक्रूरजी ने जैसे "अद्य मे सफलं जन्म" (आज मेरा जन्म सफल हुआ) इत्यादि से; भगवान के दर्शन दिलानेवाले उस दिनकी प्रशंसा की श्रीरामचंद्र जी का राज्याभिषेक करने इच्छुक दशरथ चक्रवर्ती ने, जैसे अपनी इच्छा के समय में उपस्थित चैत्र मास की प्रशंसा की, "चैत्रः श्रीमानयं मासः" (यह सुशोभन चैत्रमास है) इत्यादि: इस तरह से ये गोपियाँ भी बहुत समय से भगवान से विरहित हो कर दुःखी रहकर, अब फिर भगवान से मिलने की गोपवृद्धों से अनुज्ञा जिस समय में दी गयी, उस समय की प्रशंसा करती हीं । ब्राह्ममुहूर्त की तरह यह मार्गशीर्ष मास भी बडा सात्विक माना जाता है । अत एव गीताचार्य ने भी कहा • "मासानां मार्गशी-र्षोऽस्मि ।" यह तो वैष्णव मास गिना जाता है । मास के दो पक्षों में शुक्लपक्ष, सात्विक एवं शुभप्रद होने से मंगल कार्यों को इसी पक्ष में करने की विधि है । ऐसा मंगलकारक पक्ष भी अब दैवयोग से अपने आप उपस्थित है—यों कहती गोपियां संतोष पाती हैं ।

ऐसे परमपावन व परमशोभन समय में करने लायक काम बताया जाता है । (नीराडप्पोदुवीर्) इत्यादि से । मार्गशीर्ष व्रतांग स्नान करना ऊपर का अर्थ है । भगवदनुभव करना भीतर का अर्थ है । भगवदनुभव करनेवालों की वाणी ही ऐसी है । यथा, "एष ब्रह्म प्रविष्टोऽस्मि ग्रीष्मे शीतमिव ह्रदम्" (गरमी में शीतल तालाव की तरह मैं भगवान में डूव रहा हूँ)। मुकुंदमाला स्तोत्र में भी कहा गया है, कि, "करचरण सरोजे····हरिसरसि विगाह्य" इत्यादि । (अर्थात् हस्त पाद रूप कमलवाले, प्रकाशमान नेत्ररूपी

मीनवाले, तापहर, भुजरूपी लहरों से युक्त, अगाध हरिनामक सरोवर में गोता मारकर, तेजस्वी जल पीकर, संसार रूपी मरुभूमि में बहुत काल फिरने से उत्पन्न तापको अब शांत करूंगा।) वस्तुतः इन गोपियों को भी मार्गशीर्षव्रत करना, एवं तदंग स्नान करना, श्रीकृष्ण से मिलने का एक व्याजमात्र है। गोपवृद्धों से बंधन में रखी गयी हुई इन गोपियों को श्रीकृष्ण के दर्शन करने का भाग्य भी नहीं मिलता था। ऐसी दुरवस्था में दैवयोग से वर्षाके अभाव से पीडित उन वृद्धों ने इनको व्रतकरने की आज्ञा दी। इस कारण से इस व्याज से—फिर भगवान से मिलने का मौका मिला। अतः गोपों की प्रसन्नता के लिए ही मध्ये मध्ये व्रत की बात की जाती है। गोपियों के अपेक्षित फल तो भगवान से मिलकर आपकी नित्यसेवा में निरत होनामात्र है। अत एव इस दिव्य प्रबंध में भगवान से नित्य सेवा मांगकर उसको पाने तक का ही चरित्र उपवर्णित है; न तु आगे बढ कर व्रत करने की, अथवा कहीं यमुनाह्रद में स्नान करने की भी कथा कही गयी है। अतः यह सुदृढ निश्चय करना चाहिए कि गोपियों के अभिप्राय से, स्नान, व्रत इत्यादि सब, भगवान का अनुभव कैंकर्य ही है। अत एव भगवदनुभ करने प्रकारों का वर्णन करना ही इस दिव्य प्रबंध का मुख्यलक्ष्य है, यों समझना चाहिए।

गोपियों का विशेषण दिया गया है कि (नेरिळैयीर) यानी दिव्यभूषण धारिणी। इसका यह तात्पर्य है कि भगवान से मिलने का प्रस्ताव सुनते ही गोपियां आनंद से पुलकित होती हैं, और उनका शरीर इतना तेजस्वी हो जाता है, कि मानो ये सर्वाभरण भूषित हुई होंगी। भक्तों का यही भूषण है कि भगवान के ध्यान से शरीर में विकृत होना। जैसा कि मुकुन्दमाला में कहा गया—"बद्धेनांजलिना नतेनशिरसा .... ।" अर्थात हाथ जुडे हैं, सिर नम रहा है, शरीर पर बाल खडे हैं, स्वर गद्गद बना है; आंखों में पानी भरा है।) अतः परमभक्ताग्रेसर होने से गोपियां भी इनही भूषणों से विभूषित कही जाती है।

गोपियों का दूसरा एक विशेषण है, (शीर्मल्हुँ माय्पाडि) ऐश्वर्यपूर्णव्रज में निवास करनेवाली। भगवदवतार का क्षेत्र होने से व्रज ऐश्वर्य विशिष्ट है, यह तो एक साधारण बात है। विशेषबात यह है कि अवतारों में और तत्रापि विशेषतः कृष्णावतार में ही भगवान के दया, क्षमा, सौशील्य, वात्सल्य इत्यादि गुण प्रकट होते हैं। परमपद में इन गुणों को प्रकाश पाने का मौका नहीं मिलता है। तथाहि— भक्तों का दुःख देखकर भगवान को स्वयं दुःखी होना, उस दुःख को दूर करने की चेष्टा करना इत्यादि दया कहलाते हैं। आनंदमय परमपद में निवास करनेवाले नित्य व मुक्तों को कभी दुःखी बन की जब प्रसक्ति ही नहीं होती है, फिर भगवान अपनी दया का कैसे प्रकाशन कर सकते हैं। एवं क्षमा, अपराधियों के प्रति दिखाने का गुण है। समस्त दोष दूर परमपद में अपराधी कौन होगा? एवं मंद जन से एक रस में मिलनेवाले महान का स्वभाव यानी गुण सौशील्य कहा जाता है। परंतु, "परमं साम्यमुपैति" इत्यादि उपनिषद के अनुसार परमपदनिवासी सब, एकदम भगवान के समान ही बनका रहते हैं; अर्थात् उनमें कोई मंद नहीं मिल सकता है। अतः सौशील्य गुण वहाँ प्रकाशित नहीं किया

जा सकता है । एवं, वात्सल्य गुण उसको कहते हैं जिसकी वजह से भगवान भक्तों के दोष को नहीं जानते हैं, अथवा जानकर भी उसको गुण ही मानते हैं । परमपद में दोषी के अभाव से भगवान कर यह भी गुण प्रकाशित न हो सकता है । इस तरह से भगवान के समस्तकल्याण गुण परिपूर्ण होने पर आपके स्वामित्व इत्यादि कतिपय गुणमात्र परमपद में प्रकाशित किये जाते हैं; और दूसरे अनेक गुण तिरोहित ही रह जाते हैं । परंतु जब भगवान पापी, मंद, दोषपूर्ण मानवों से परिपूर्ण इस संसार में अवतार लेते हैं, तब आपके सभी गुण, अंधकार में जलाए गये हुवे दीप प्रकाश की तरह, बडा सुंदर चमकते है । अत एव, आचार्य लोग कहते हैं कि भगवान, अपने गुणों को प्रकाशित करने के उद्देश्य से इस पापी व दुःखी संसार में अवतार लेते हैं । ऐसे अवतारों में भी, दूसरे अवतारों से श्रीकृष्णावतार में भगवान के ये सभी गुण बहुत उज्वल प्रकाशित हुए । अतः इस अवतार का स्थान , व्रज इस पद्य में संपद्युक्त कहा जाता है ।

गोपियों का और एक विशेषण यह है (शेल्वचिरुमीर्हाळ्) यानी श्रीविभूषित बालिकाएँ । यहाँ पर श्री शब्द का अर्थ है, भगवान में अगाध प्रेम और तदनुगुण कैंकर्य करने में रुचि । जैसे, श्रीरामायण में, राज्यलक्ष्मी को छोडकर, चीरवसन का धारण कर, भगवान के साथ आपका नित्य कैंकर्य करने के उद्देश्य से दंडकारण्य प्रस्थित लक्ष्मण जी, "लक्ष्मणो लक्ष्मि संपन्नः" कहे, गये; एवं रावण से तिरस्कृत होने पर, अपने समस्त पत्नी पुत्रादि बांधवों को, एवं गृह क्षेत्रादि ऐश्वर्य को एकदम छोड देकर, श्रीरामचन्द्र की नित्य सेवा करने के उद्देश्य से समुद्र के उत्तर तीर में आकर त्रिशंकु की तरह आकाश में खडे रहने वाले विभीषण जी "अन्तरिक्षगतः श्रीमान्" कहे गये । एवं मगर से पकडा हुआ, तो भी भगवान को ही अपने स्वामी एवं रक्षक मानकर उनकी प्रार्थना करने उद्यत गजेन्द्र, "सतुनागवरः श्रीमान्" कहा गया । अत्यंत दुःख से परिपूर्ण, अपने प्राण छोड़ने तैयार उस गजराज की श्री कोनसी थी ? यही थी कि "मनसा अचिन्तयद्धरिम् ।" लौकिक गृह क्षेत्रादि वस्तुओं नश्वर होते हैं और अंततः आत्मा को संसार में ही डुबा देते हैं; अतः वे सच्चा ऐश्वर्य नहीं है । भगवत्कैंकर्य ही नित्य एवं आत्मा को धन्य बनानेवाला है । अतः यही वास्तव में श्री है ।

गोपियों को बालिका पुकारना भी बडा ही स्वारसिक है । व्रज में पुरुषों का, एवं वृद्ध वनिताओं का जन्म व्यर्थ है; क्यों कि वे श्री कृष्ण से ठीक मिलाकर आपका अनुभव नहीं कर सकते हैं । इनसे विपरीत बालिकाएँ तो आप ही में मग्न मन होकर आपका ही नित्यानुभव करते रहने से बडी धन्य थीं । व्रज में जन्म लेना, वह भी कृष्णावतार से आगे या पीछे नहीं, ठीक उसी समय में लेना, उसमें भी श्रीकृष्ण के समान वय मिलना, और तत्रापि बालिका के रूप में जन्म लेना, ये सभी बडे सुकृत का फल है; इस भाग्य का सूचक बालिका शब्द ।

(नीराड पोदुवीर् पोदुमिनो) यानी स्नान करने चाहने वाली सब आ जा, कहने से यह अर्थ सूचित किया जाता है कि भगवदनुभव करने में इच्छामात्र आवश्यक है; न तु दूसरा कोई देश, काल, योग्यता इत्यादि का नियम। अत एव भगवती सीतादेवी पापी रावण को भी भगवान से प्रेम करने बुलाती हैं, "विदितस्स हि धर्मज्ञ इशरणागत वत्सलः, तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ॥" इत्यादि से। फिर, भगवदनुकूलतैक स्वरूप व्रज की गोपाल बालिकाओं को बुलाने में अचरज कौनसी होगी ?

इस पद्य में, श्रीकृष्ण को, कृष्ण, गोविंद इत्यादि प्रसिद्ध नामों को छोडकर नारायण नाम से पुकारना, गोपियों का विलक्षण ज्ञान का सूचक है। इस से प्रतीत होता है कि भगवान के दर्शनार्थ तदा तदा व्रज में आने वाले महात्माओं की सेवा कर गोपियों ने उनके मुख से सुना था कि, "एष नारायणः श्रीमान् क्षीरार्णव निकेतनः। नागपर्यङ्कमुत्सृज्य ह्यागतो मधुरां पुरीम् ॥" (यानी क्षीरसमुद्र वासी ये नारायण ही शेषशय्या छोड कर मथुरापुरी में श्रीकृष्ण के में अवतीर्ण हुए।)

नंदगोप का विशेषण है (कूर्वेल् कोडुन्दोळिलन्) यानी तीक्ष्णशूलायुधधारी एवं कठोरकर्मकारी। नंदगोप जी परमसाधु थे। आप रास्ते में चलते चलते, छिपकर रहनेवाले कीटां को दुख होने के भय से घास पर धैर्य से पग न रखते थे। परंतु श्रीकृष्ण को अपने प्यारे पुत्र के रूप में पानेके बाद तो, आपके सीमातीत सौकुमार्य को देखकर आपके रक्षण में इतने सावधान व क्रूर बन गये कि कहने की बात नहीं। आप सदा श्रीकृष्ण का शयन झूला के पास में तीक्ष्ण शूलायुध उठाकर बैठे रहते, और अतिक्षुद्र कीट भी उसे दिशा से अगर निकलें, तो उसपर शूल से आक्रमण कर देते। आपके मन में हमेशा यह भय लगता, कि कहीं यह कीट श्रीकृष्ण के सुकुमार शरीर को दुःख देगा; अथवा कहीं एक कपट बुद्धिवाला असुर उस कीट के रूप से छिपकर आकर श्रीकृष्ण को मारने की चेष्टा करें। अतः इस भय से श्री नंदगोप जी सदा चिंतित रहते, और हमेशा आयुध उठाकर श्री कृष्ण के पास आनेवाले क्रिमिकीटादियों पर भी निर्दय आक्रमण कर देते। अस्थाने भयशंकी, अत एव हमेशा भगवान का मंगलाशासन करने में उद्युक्त पेरियाळ्वार कीं सुपुत्री गोदादेवी नंदगोप जी के इस चरित्र पर ध्यान देकर उसकी जो प्रशंसा करती हैं, यह बडा उचित ही है। श्री कृष्ण को ऐसे नंदगोप का सुपुत्र कहने का यह तात्पर्य है कि, जन्माद्यस्य यतः," "अजायमानो बहुधा विजायते," "पिता पुत्रेण पितृमान् यौनियोनौ" इत्यादि अनेक प्रमाणों से उपवर्णित प्रकार से सकलजगत का कारण होकर, जन्म जरा मरण आदि विकारों से दूर रहनेवाले भगवान, अपनी असीम करुणा से, हमारे सरीक पामर जनों पर अनुग्रह दिखाते हुए नंदगोप जी के पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए।

"नंदगोप यशोदा ओंका सुपुत्र" कहने की जगह, "नंदगोप जी का सुपुत्र एवं यशोदा जी का बालसिंह" कहना भी बडा मार्मिक है। इस से सूचित किया जाता है कि श्रीकृष्ण, हितपर नंदगोपजी का भयभीत एवं अत्यंत विधेय पुत्र थे; और प्रिय करने में ही उद्यत यशोदा जी के विषय में

तो सिंहशिशुकी तरह नीडर, एवं वश करने अशक्य रहते थे । यह तो लोकव्यवहार में भी देखा जा रहा है कि बच्चे, पिता के सामने विनय की वर्ताव करते हैं, और माता के सामने नीडर अपनी मरजी के अनुसार खेल, चेष्टा आदि करने में उद्यत होते हैं। श्री कृष्णकी धूर्तचेष्टाएं तो प्रसिद्ध हैं । यशोदा जी स्वयं इन चेष्टाओं को देखने चाहती थी; इस कारण से श्री कृष्ण को इन से रोकने का प्रयत्न न करतीं । तथापि कदाचित् दूसरी गोपियों के निर्बंध से आप श्री कृष्ण को शिक्षा देने का आप अभिनय करती । परंतु, वास्तव में, यह शिक्षा, ऐसी चेष्टा बढाने प्रोत्साह कारक ही बन जाती । यशोदाजी को विशालनयन कहने का यह तात्पर्य है कि हमेशा श्रीकृष्ण का दर्शन करते रहने से आपके नयन धन्य एवं आनंद से विशाल हो गये । देवकी जी, के नयन तो एक क्षणभर ही आपका दर्शन कर, फिर उसके अलाभ दुःख से संकुचित हो गये ।

(कार्मेनिचेङ्गण्) इत्यादि । इन तीन विशेषणों से श्रीकृष्ण का सीमातीत कारुण्यगुण प्रकाशित किया जाता है । दिव्य मंगल विग्रह में, दिव्य मुखारविंद में, एवं दिव्य नेत्र में आपका यह कारुण्य प्रकाशित होता है । कारुण्यपूर्ण (यानी करुणामय) होने से ही भगवान भक्तों से अपेक्षित पुरुषार्थ दे सकते हैं । अतः दूसरे गुणों से यही गुण विशेषतः आदरणीय होता है । दिव्यमंगल विग्रह को कालमेघ सदृश कहने का यह भी तात्पर्य है कि उसका दर्शन करने मात्र से भक्त का ताप दूर हो जाता है । भगवान की आंखें तो भक्त के विषय में प्रेम से एवं करुणा से लाल होती हैं । मुख को सूर्य, व चंद्र का सदृश कहने का मतलब यह है कि सूर्य की तरह वह अत्यंत तेजस्वी और अप्रधृष्य होता है, एवं चंद्रमा की तरह प्रसन्न व तापहर होता है । भक्तों के सुलभ होते ही, भगवान शत्रुओं का दुर्लभ एवं अनभिभवनीय होते है । ये दोनों अत्यावश्यक व भक्तजन भोग्य होते हैं ।

(नारायणने नमक्के) । यहां पर दो एवकार प्रयुक्त किये गये हैं । दोनों आवश्यक हैं । "नहि पालन सामर्थ्यमृते सर्वेश्वरं हरिम्" (अर्थात भगवान सर्वेश्वर श्रीमन्नारायण को छोडकर दूसरे किसी देव में रक्षण करने का सामर्थ्य नहीं रहता है) । इत्याद्युक्त प्रकार से पुरुषार्थ देने समर्थ देव नारायण नामधारी भगवान एक ही है । एवं, ऐसा जो किन्ही का मंतव्य हो कि चेतन से किये जानेवाला व्रत, उपवास इत्यादि पुण्य काम ही पुरुषार्थ देगा यह भी भूल है । क्यों कि अचेतन एवं क्षण भंगुर क्रिया कलाप देशांतर एवं कालांतर में किस तरह से फल देगा ? अतः शास्त्र का यही सिद्धांत है कि पुण्य कर्माचरण से प्रसन्न भगवान ही भक्तों के अपेक्षित फल देते हैं । "फलमत उपपत्तेः" इत्यादि ब्रह्मसूत्र में यह निर्णय बताया गया है । एवं, जो मानव अपने अकिंचन तथा अनन्यगति होने की भावना से भगवान की शरण में जाता, वही आपकी कृपा का पात्र बनता, न तु स्वप्रयत्न पर अथवा देवतांतर पर भी मन रखते हुवे भगवान से कुछ मांगता । अतः यहां पर गोपियों का दृढ विश्वास बताया जाता है कि उक्त दो आकारवाली हमपर ही भगवान की कृपा जरूर उतरेगी, नतु दूसरे किसी पर ।

(परै तरुवान्) इस दिव्यप्रबंध में "परै" का नाम वारंवार आता है। इस शब्द का अर्थ तो ढोल, यानी व्रत करने के समय में बजाने का एक वाद्य है। इस से व्रतोपयुक्त समस्त सामग्री कही जाती है। अर्थात् भगवान् हमको ढोल देंगे कहने का यह तात्पर्य है कि भगवान् हमारे व्रतोपयुक्त समस्त उपकरणों को दे देंगे। इन उपकरणों की सूची "माले मणिवण्णा" इत्यादि (२६) पद्य में बतायी जाएगी। यह तो उपरकी बात है। मन की बात तो कुछ दूसरी ही है। तथा हि—गोपियों के अभिप्राय से मार्गशीर्षव्रत करना एक व्याज मात्र है; भगवान से मिलना और आपकी अविच्छिन्न नित्यसेवा करना यही इनका लक्ष्य है। अत एव "शित्तम् शिरुकाले" (२९) पद्य में यही स्पष्ट एवं अंतिम प्रार्थना की जाएगी। एतदनुसार परै शब्दका उचित अर्थ पुरुषार्थ होगा।

(पारोर् पुहळ) इत्यादि। निष्काम भगवत्सेवा करने निरत इन गोपियों का चित्त, सामान्य लौकिक मानव की तरह यश, गौरव, पूजा आदि कमाने नहीं चाहता। भक्त लोग जनता की प्रशंसा से चिड जाते हैं। फिर, यहां पर प्रशंसा क्यों कर प्रार्थित की जाती है? यह तो प्रशंसा की मांग नहीं है; परंतु लोक कल्याण की मांग है। अर्थात् उक्तरीति से परिपूर्ण भगवदनुभव प्राप्ति करने के उद्देश्य से इस व्रत में उतरने पर भी, गोपियों के मन में यह इच्छा भी है ही, कि भगवान के अनुग्रह से तुरंत सुवृष्टि हो जाय, और अकाल से पीडित सब लोग पानी के लाभ से खुश बन जाय। खुश होने पर वे कृतज्ञता से गोपियों की प्रशंसा करेंगे ही। अतः इस प्रशंसा शब्द से प्रशंसा का मूल लोककल्याण ही सूचित किया जाता है॥

(एल् ओर् एमपावाय्) इस दिव्य प्रबंध की सभी गाथाएँ इन शब्दों से समापित की जातीं हैं। (अंतिम पद्य में ओरेम्पावाय् मात्र है।) इस शब्दराशि को वाक्यालंकार मात्र समझना ठीक है; अर्थात् इसका खास कोई अर्थ नहीं है। एल्, ओर्, ये दोनों आश्चर्य अथवा संतोषवाचक अव्यय हैं। एम्—हमारा, पावाय्—हे व्रत! अथवा हे देवी! अथवा हे लक्ष्मी! इत्यादि अर्थ तो है। परंतु यह कोई भी अर्थ गाथा के अर्थ से ठीक सम्बन्धित नहीं होता है। अतः इस शब्दको गोपियों से संकल्पित व्रत का, अथवा पुरुषकार भूत महालक्ष्मीजी का, यानी नीलादेवी का स्मारक शब्द मात्र मानना ही उचित होगा।

॥ व्यंग्यार्थ विवरण की प्रस्तावना ॥

इस दिव्यप्रबंध का वैभव बतानेवाले हमारे पूर्वज कहते हैं कि, "पातकङ्गळ् तीर्कुम् परमनडिकाट्टुम् वेदमनैत्तुक्कुम् वित्ताहुम्" इत्यादि; अर्थात् समस्त पातकों के प्रणाशक, भगवत्पादारविंद के प्रापक एवं समस्तवेदों के बीजभूत, श्री गोदादेवी विरचित (तिरुप्पावै नामक) तीस पद्यों को न जाननेवाले मानव भूभारमात्र हैं। इस में पहिले के दो विशेषण स्पष्ट हैं—पापनाशकत्व एवं भगवत्पादप्रापकत्व। तीसरा

विशेषण जो है, वेदबीजभूतत्व, इसका विवरण करना आवश्यक है। इसका यह तात्पर्य है कि सकलवेद-तात्पर्य से यह प्रबंध भरपूर है। अर्थात् इस प्रबंध का गाढ अध्ययन करनेवाला समस्त वेदों के तात्पर्य का ज्ञाता बन जाएगा। अत एव चतुश्शास्त्र वेदी भगवान श्रीरामानुजाचार्य स्वामीजी हमेशा इस दिव्यप्रबंध का ही अनुसंधान करते हुवे "तिरुप्पावै जीयर" विरुद से विभूषित हुए। यह प्रबंध केवल धनुर्मास में गाये जानेवाला नहीं है; किंतु बारामासी है। प्रत्येक गृह, मठ, मंदिर आदि में प्रतिदिन इसका पाठ व शांति हुये विना भगवत्पूजा समाप्त नहीं मानी जाती है। इसको इतना वैभव कैसे मिला? ज्ञातव्य सकलार्थ परिपूर्ण होने से मिला। प्रत्येक पद्य में ऐसे अनेक अर्थ भरे हैं, जिनका वर्णन क्रमशः किया जाएगा। ये ही ध्वन्यर्थ, व्यंग्यार्थ, अथवा स्वापदेशार्थ पुकारे जाते हैं। आजकल के कोई कोई अरसिक लोग ऐसे ध्वन्यर्थ की सत्ता को ही नहीं मानते हैं। उनका यह वाद है कि प्राचीन व्याख्याकार अपने पूर्वाचार्यों ने ध्वन्यर्थ का विवरण नहीं किया। परंतु हाय! ये लोग नहीं देख सकते हैं कि उन व्याख्याओं में भी व्यंग्यार्थों की पुष्कल सूचना मिलती ही है। व्यंग्यार्थ का पूरा विवरण इस लिए नहीं लिखा गया कि ये तो उपदेश मात्र लभ्य रहस्य है; जिनको ग्रंथ में लिखकर प्रकाशित कर देना उन महात्माओं का अनभिमत था। तो भी आचार्य हृदय नामक दिव्यग्रंथ में व्यंग्यार्थों का पूरा पूरा विवरण दिया गया है। उससे स्पष्ट बताया गया है कि दिव्यप्रबंधों में व्यंग्यार्थ ही प्रधान है। फिर सकल वेद बीजभूतत्वेन श्लाघित इस तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध में विशेषतः व्यंग्यार्थ ही भरे हैं इस विषय में अचरज कौनसी है? अतः एकैक पद्य में भी इन व्यंग्यार्थों का ही विस्तृत वर्णन करना उचित व आवश्यक होता है। परंतु अति विस्तृत होने से ग्रंथ का शरीर बढ जाएगा और सुकुमार बुद्धि वाचकों का क्लेश भी होगा। अतः अतिविस्तार को छोडकर इन अर्थों का विवरण करेंगे।

संस्कृत अलंकार शास्त्र में रूपकातिशयोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा, प्रस्तुताङ्कुर, मुद्रा, समासोक्ति नामक कतिपय अलंकार प्रसिद्ध हैं। जिस काव्य में (माने गद्य या पद्य में) ऊपर के शब्दार्थ के साथ, दूसरा भी एक अर्थ कवि का अभिमत प्रतीत होता है, वहां पर इन अलंकारों की सत्ता है। ऊपर का अर्थ, माने कवि से प्रयुक्त शब्दों का अक्षरलभ्य अर्थ को शास्त्रकार वाच्यार्थ कहते हैं; और उससे सूचित अर्थ को सूच्यार्थ यानी व्यंग्यार्थ अथवा ध्वन्यर्थ कहते हैं। ऐसे दो प्रकार के अर्थों में क्वचित वाच्यार्थ ही प्रधान रहता है, और व्यंग्यार्थ अप्रधान; इसके विपरीत, क्वचित् व्यंग्यार्थ ही मुख्य होता है और क्वचित् दोनों समप्रधान रहते हैं। ऐसे सूक्ष्म विशेषों के आधार से उपरोक्त पांच अलंकार शास्त्रों में उपवर्णित होते हैं। इस तत्व को सुदृढ जान लेना चाहिए। कि दिव्यप्रबंधों में जहां जहां व्यंग्यार्थ प्रतीत होते हैं, वहां वे सब प्रधान ही होते हैं, नतु कदाचित् अप्रधान भी। अनेकत्र वाच्यार्थ भी अपेक्षित अथवा विवक्षित हैं ही, तो भी और कितनी ही जगह पर वाच्यार्थ एकदम अविवक्षित होता है, और व्यंग्यार्थ में ही प्रधानतया कवि का तात्पर्य समझा जाता है।

विशेषतः इस तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध में केवल वाच्यार्थ भी अतिमनोहर एवं अनेक रहस्यार्थों के प्रकाशक होते हैं; अतः ध्वन्यर्थ को ढूंढना व्यर्थ जैसा प्रतीत होगा । तथापि इसके एकैक पद से भी अनेक व्यंग्यार्थ भी सूचित किये जाते हैं, जो इतने मधुर एवं बोधप्रद होते हैं कि उनके सामने वाच्यार्थ फीका पड जाता है । अनुमान किया जाता है कि स्वयं गोदादेवी ने ही अपने से विरचित इस दिव्यप्रबंध में व्यंग्यार्थ को ही प्रधान मान लिया । क्यों कि सातवे पद्य में, (कीशुकीशु) आप अपनी सखी से पूछतीं है कि, "कीशु कीशुशब्द करनेवाले पक्षियों के भाषण की ध्वनि क्या तुमने नहीं सुनी ?" यहां कहना था, कि, "क्या तुमने भाषण नहीं सुना ?" भाषण की ध्वनि सुनना क्या चीज है ? यही है कि ध्वन्यर्थ को जानना । अतः स्पष्ट है कि गोदादेवी ध्वन्यर्थ काही प्राधान्य दे रही हैं ।

॥ व्यंग्यार्थ का विवरण ॥

आचार्य वैभव का वर्णन करना ही इस प्रबंध का परमतात्पर्य है अतः यही एकैक गाथा में भी ऐकैक विलक्षण प्रकार से किया जाता है । गोदादेवी का सुदृढ निश्चय था कि आचार्य कृपा ही मानव का कल्याण कारक है यद्यपि लोग कहते हैं, और शास्त्र भी बताता है कि चेतनमात्र के सकलविधबंधुहोनेवाले, अपार-करुणासागर भगवान ही तत्तत् कालोचित अनेक सदुपायों से इनको सन्मार्ग में बढाते हुवे अंततः मोक्ष का भी प्रदान करते हैं । यह तो ठीक है । तथापि लोक रक्षण होने के कारण अपराधियों का दंड देने में भी अधिकार संपन्न आप की कृपा कभी कभी संकुचित भी हो सकती है । इस कारण से अपराधी चेतन को सर्वेश्वर पर पूर्ण भरोसा रखना कठिन होता है । निरपाय एवं विश्वसनीय उपाय तो आचार्यकृपा होती है । अतः शास्त्र के मर्म जाननेवाले विशेषज्ञलोग आचार्यकृपा को ही पक्का उपाय मानते हैं । गोदादेवी भी अपनेः दूसरे दिव्यप्रबंध "नाच्चियार तिरुमोळि" में इस अर्थ को स्पष्ट बताती हैं । तथा हि—"मुलैप्पिराट्टि" (१०-४) इत्यादि पद्य में आप कहती हैं कि, "दुष्ट शूर्पणखा का अंगभंग कर डालनेवाले भगवान श्रीरामचन्द्रजी का वचन भी भला ही मिथ्या बन जाय । मेरा श्री विष्णुचित्तपुत्रीत्व भी क्या मिथ्या है ? इसका यह तात्पर्य है कि, "मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथंचन, "इत्यादि श्रीरामचंद्रजी का अभयवचन भी शायद मिथ्या यानी मेरे विषय में बिफल होगा । सर्वथा स्वतंत्र भगवान को उक्त अपने वचन से बांध देने का सामर्थ्य हमारे में नहीं है । अर्थात् स्वतंन्त्र भगवान कदाचित् अपने वचन को टाल भी सकते हैं । परंतु मैं (गोदादेवी) श्री विष्णुचित्तस्वामीजी की पुत्री, अर्थात् आपके अभिमान का पात्र हूँ । इस कारण से, यानी परमभक्ताग्रेसर श्री विष्णुचित्तस्वामीजी से संबंधितहोने के कारण से भगवान को मुझ पर कृपा करनी ही पडेगी । अत एव विभीषण सहागत राक्षस रक्षण न्याय से शास्त्रज्ञ कहते हैं कि, "सिद्धिर्भवति वा नेति संशयोऽच्युत सेविनाम् । न संशयोऽस्ति तद्भक्त परिचर्यारतात्मनाम् ॥ (भगवान का आश्रय लेनेवालों का यह संशय बना रहेगा कि मुझे सिद्धि मिलेगी, या नहीं । परंतु भक्तों का आश्रय लेनेवालों को कभी भी ऐसा संशय न होगा ।) फिर "नल्लवेन्तोळी" इत्यादि पद्यमें (१०-१०) आप कहती हैं कि, "हे मेरी प्यारी

सखि! भगवान तो शेषशय्या पर शयन करनेवाले, सब से श्रेष्ठ, एवं असीम ऐश्वर्य से समृद्ध महापुरुष हैं। हम तो क्षुद्रमानवमात्र हैं। हम क्या कर सकते हैं? सब तरहों से श्रेष्ठ भगवान से अतिक्षुद्र हमारी कैसी मिलाप हो सकती है? अथवा एक उपाय है—हमारे गुरूजी, श्रीविल्लिपुत्तूर के नाथ श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी; सर्वथा अपने पराधीन उन भगवान को उचित उपायों से अगर बुलावेंगे, तो हम सुख से आपके दर्शन करेंगे।" इस पद्य का यह स्पष्ट तात्पर्य है कि भगवान से मिलने का उपाय हमारे पास दूसरा कोई नहीं रहता हैं; केवल आचार्य का संबंध ही उपाय हो सकता है। अतः श्रीगोदादेवी इस तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध में भी व्यंग्य मर्यादा से उक्त आचार्यनिष्ठा के वैभव को ही प्रकाशित कर रही हैं। इस पद्य के पहिले पद के पहिले पद से ही इस अर्थ की सूचना मिल जाती है। तथा हि—पहिला पद मार्गशीर्ष पद है। इसका साधारण अर्थ है मार्गशीर्ष नामक धनुर्मास। परंतु मार्गशब्द देशांतरप्रापक रास्ते का भी नाम होकर उपाय का सूचक होता है। शीर्षशब्द का अर्थ, श्रेष्ठ होता है। तथा च मार्गशीर्ष शब्द से श्रेष्ठ उपाय सूचित किया गया। अर्थात गोदादेवी इस पदका प्रयोग करती। मानो यों प्रतिज्ञा कर रही हैं कि, "इस प्रबंध से मैं उपाय श्रेष्ठ आचार्यवैभव का वर्णन करूँगी"।

[चांदनी से युक्त श्रेष्ठ दिन] कहने का यह तात्पर्य है कि सू. का आनंददायक, शुद्ध, सौम्य ज्ञान, अब आचार्यकृपा से हम को मिलनेवाला है। अर्थात् प्रतिवादियों को जीतने उपयुक्त, कठोर तर्क परिष्कृत कठिन शास्त्रज्ञान प्राप्ति में रुचि छोडकर, अति मनोहर ललित मधुर श्रीसूक्तियों का अब सेवन करना चाहिए। आगे, स्नान करने इच्छुक सब लोग बुलाये जाते हैं। यह अर्थ पहिले ही सूचित किया गया कि स्नान शब्द का अर्थ भगवदनुभव है। व्यंग्यार्थ में आचार्यानुभव ही स्नान शब्द का तात्पर्य होगा। तीर्थ में स्नान करने से शरीर का मल नष्ट होगा; भगवान में अवगाहन करने से आत्मा भी निर्मल होगी; वस्तुगत्या तीर्थ ही कहलानेवाले आचार्य का सेवन करने से तो, शरीर, इंद्रिय, बुद्धि व आत्मा ये सब एक दम शुद्ध बन जाते हैं। जैसे "सत्यं वद" इत्यादि विधि का मानवमात्र विषय हैं, न तु विशेष किसी जाति गुण आदिवाले कोई कोई व्यक्ति मात्र, इसी तरह से आचार्य सेवन रूप इस श्रेष्ठ उपाय को अपनाने में इच्छा रखनेवाले सभी अधिकारी होते हैं; नतु किसी विशेष जाति गुण आदि की अपेक्षा है। अर्थात् यह उपाय सर्वाधिकार है।

(दिव्य भूषण विभूषित) कहने से आत्मालंकारभूत शमदमादि शुभगुण शालित्व बताया जाता है। कंकण कुंडलादि भूषण शरीरमात्र का अलंकार होते हैं; शम दमादि तो आत्मा को सजानेवाले, अत एव दिव्य पदवाच्य अलंकार हैं। अत एव श्रीवचनभूषण में (सू. ९६ - ९७) कहा गया "समस्त आत्मगुणों के बीच में शम व दम मुख्य हैं। इन दोनों के सिद्ध हो जाने पर आचार्य, हस्तगत बनते हैं; आचार्य के हस्तगत होने पर मूलमंत्र हस्तगत होता हैं; मूलमंत्र के हस्तगत होनेपर सर्वेश्वर हस्तगत होंगे, सर्वेश्वर के हस्तगत होनेपर प्राप्यभूमि (यानी परमपद) हस्तगत होगा।" अतः यहां पर आचार्यसेवा करने बुलाये

जानेवाले महात्माओं का इन शमदमादि शुभगुणों से युक्तत्व बताया जाता है। (व्रजनिवासिनी) कहने से यह अर्थ बताया जाता है कि ऐसे आचार्यनिष्ठावान महात्मालोग भी पशुप्राय क्षुद्र जनों से परिपूर्ण इस संसार में निवास करते हैं। (हे संपन्न गोपबालिकाएं!) इस संबोधन में संपन्न कहने का यह भाव है कि इस प्रकार आचार्य सेवन के लिए बुलाये जाने उपयुक्त गुण विशिष्ट व्यक्ति ही संबोधित किया जा रहा है। बाल शब्द से उपदेश का ग्रहण करने का, एवं उसकी याद रखने का सामर्थ्यवान बताये जाते हैं। "ग्रहणधारणपटुः बालः" बालिका यानी स्त्री कहने से औरत की तरह अत्यंत पारतंत्र्यवान् सूचित किया जाता है। तथाच, "हे शिष्यलक्षणसंपन्न! ग्रहण धारणपटु! आचार्य परतंत्र सच्छिष्यों! आ जाइए;" ऐसा संबोधन फलित हुआ।

[नारायण ही हम को ही] इत्यादि। शास्त्र बताता है कि साक्षात् नारायण ही मानव वेष से अवतार लेकर, अज्ञान एवं दुःख में मग्न लोगोंका उपदेश से उद्धार करते हैं। अतः यहांवर नारायण शब्द से नारायण का अवतारभूत आचार्य बताया जाता है। नारायण के बारे में प्रयुक्त सभी विशेषण आचार्य को भी ठीक ठीक लगते हैं। तीक्ष्ण आयुध से कठोर कर्म करनेवाला, नंदगोप, कुमार, ऐसे अलग अलग तीन विशेषणों को समझना चाहिए। मुद्रालंकार क्रम से इनका अर्थ समझना चाहिए। पहिले विशेषण से तप्तमुद्रा प्रदान रूप आचार्यकृत्य सूचित किया जाता है। तीक्ष्ण आयुध तो तप्त सुदर्शन व पांचजन्य हैं; और उन से शिष्य के बाहु को अंकित करना ही कठोर कर्म है। ऐसे अंकित करने से शिष्य के समस्त पाप एकदम नष्ट हो जाते हैं। कठोर कर्म शब्द का अर्थ है कठिन कर्म। संसारगर्त में पडे रहनेवाले चेतन को वहां से उठाकर नित्यसूरियों की पंक्ति में बिठा देना अत्यंत कठिन तो है। ऐसे काम को आचार्य चक्रांकन के द्वारा वगरक्लेश कर डालता है। नंद गोप शब्द भी आचार्य का विशेषण होता ही है। नंदश्चासौ गोपश्च—नंदगोपः, ऐसा विग्रह है। नंद शब्द का अर्थ है आनंदित होनेवाला; अर्थात् अनवरत ब्रह्मध्यान करते रहने से, आचार्य उसी आनंद में मग्न रहते हैं। गोप शब्द का अर्थ है गोपन करनेवाला। मंत्र मंत्रार्थ आदियों को अनधिकारी जन न जान सकें, इस तरह से उनको छिपा देनेवाला, अर्थात् "मन्त्रं यत्नेन गोपयेत्" इत्याद्युक्त प्रकार से उनको रहस्य रखनेवाला आचार्य गोप कहलाता है। अथवा, जैसे नन्दगोप जी ने भगवान की निर्हेतुक कृपा का लक्ष्य हो कर, विना क्लेश, आपको पुत्र के रूप में पाया, इसी तरह से भगवान की ऐसी कृपा का पात्र होकर स्वप्रयत्न के विना भी भगवान को पानेवाला आचार्य भी नंदगोप सदृश होने से नंदगोप कहा जा सकता है। अर्थात् इस विशेषण से यों कहा जाता है कि आचार्य, नन्दगोप की तरह परगत स्वीकार का लक्ष्य है। कुमार शब्द से अर्थ बताया जाता है कि उक्तरीति से अनवरत ब्रह्मानंद में मग्न होने के कारण, आचार्य "युवेव वसुदेवोऽभूत्" (वसुदेवजी जरा को छोंडकर युवा जैसे बन गये), "भवामि दृष्ट्वा च पुनर्युवेव" (श्रीरामचंद्र का दर्शन करते करते मैं (दशरथ) फिर युवा बन जा रहा हूं) इत्याद्युक्त प्रकार से जरा को जीत कर हमेशा कुमार ही रह जाता है। अथवा, "बाल्येन तिष्ठासेत्" इत्यादि शास्त्र के अनुसार आचार्य, अपने माहात्म्य को छिपाकर, अर्थात् ख्याति लाभ पूजा से विरक्त होकर, कुमार की तरह रह जाता है।

आगे, एरान्दकण्णि, यशोदै, इळम् शिङ्गम् ऐसे तीन अलग अलग विशेषण हैं। द्राविडी में कण्णि शब्द का अर्थ नेत्रवान्, एवं मालिकावान भी होता है। आचार्य के विषय में यह दूसरा अर्थ लिया जाता है। अर्थात् आचार्य सुंदर मालिका धारी हैं। तुलसी माला एवं कमलमालाओं से आचार्य अलंकृत रहता ही है। यशोदा कहने से भगवान के समस्त दिव्य चेष्टितों का साक्षात अनुभव करनेवाला सूचित किया जाता है। यशोदाजी ने भगवान की लीलाओं का अपनी आंखों से दर्शन किया; आचार्यतो दिव्य दृष्टि सें दर्शन करता है; इतना ही अंतर है। बालसिंह विशेषण आचार्य में ठीक लगता है। क्योंकि नास्तिक आदि दुर्वादियों का ध्वंस कर डालनेवाला सिंह है आचार्य।

कालमेघ सदृशत्व भी आचार्य में है। यद्यपि शेषावतार श्रीरामानुजाचार्य जैसे महाचार्यों के श्रीविग्रह क्षीर सागर की तरह एकदम सफेद होते हैं। तथापि उनके हृदय में नित्यनिवास करनेवाले भगवान की नीलमेघ छवि आचार्य के दिव्यविग्रहपर व्याप्त हो कर उसको भी नील बना देती है। जैसे श्रीरंगराजस्तव में श्रीपराशरभट्टर स्वामीजी श्रीरंग विमान का यों वर्णन करते हैं—"शेषांश होने के कारण एकदम सफेद होते हुए भी यह दिव्यविमान, अंदर शयन करनेवाले भगवान की कांति से व्याप्त हो कर, कालमेघ की तरह चमक रहा है।" आचार्य को सुंदरनेत्रवाला कहने का तात्पर्य यह है कि आप कुटिल बुद्धिवाले नहीं, परंतु ऋजु बुद्धिवाले होते हैं; अर्थात् आपकी बुद्धि सीधी होती है, नतु वक्रमार्ग में चलती है। इससे आपके वचनों पर शिष्यगण भरोसा रख सकते हैं। सूर्यचंद्रतुल्यमुख भी आचार्य है ही। परमत का निरसन करते हुए स्वमत का स्थापन करने समर्थ श्रीभाष्यादि प्रौढ ग्रंथों का प्रवचन करने के समय में आचार्य का मुख सूर्य की तरह अत्यंत प्रतापवान दीखता है; एवं वही भगवद्विषय मंत्रार्थ आदि ग्रंथों के प्रवचन समय में चंद्र की तरह अतिप्रसन्न होता है।

तथा च उक्तवैभव विशिष्ट आचार्य श्रेष्ठ की सेवा करने के लिए एक महात्मा अपने गुरुभाईयों को इस पद्य से बुला रहा है—यह हुआ तात्पर्यार्थ॥ .... (१)

(गाथा.) वैयत्तु वाळ्वीर्हाळ् नामुम् नम् पावैक्कु * शेय्युम् किरिशैहळ् केळीरो * पार्कडलुळ्
पैयत्तुयिन्न परमनडि पाडि * नेय्युण्णोम् पालुण्णोम् नाट्काले नीराडि *
मैयिट्टेळुदोम् मलरिट्टु नाम् मुडियोम् * शेय्यादन शेय्योम् तीक्कुरळै शेन्नोदोम् *
ऐयमुम् पिच्चैयुम् आन्तनैयुम् कै काट्टि * उय्युमारेण्णि उहन्देलोरेम्बावाय् ॥ २ ॥

वैयत्तु वाळ्वीर्हाळ् — हेभूमंडल में उज्जीवन करनेवाले जन !

नामुम् नम् पावैक्कु शेय्युम् किरिशैहळ् केळीरो — हमारे से अपने व्रत के लिए (व्रत के अंगतया) कीजाने वाली क्रियाओं को सुनीए;

पार्कडलुळ् पैय तुयिन्न - क्षीरसागर में सावधान शयन करनेवाले

परमन् अडि पाडि - परमपुरुष के पादों का हम कीर्तन करेंगी;

नेय्युण्णोम्पालुण्णोम्- घृत न पीएंगी, दूध न पीएंगी;

नाट्काले नीराडि - बडे सवेरे स्नान करेंगी;

मै इट्टु एलुदोम् - (आंख में) काजल लगा कर न सजाएंगी;

मलर् इट्टु नाम् मुडियोम् - (केशमें पुष्प रखकर हम (उसकी) न बांधेंगी;

शेय्यादन शेय्योम् - (हमारे पूर्वजों से) अननुष्ठित काम न करेंगी;

ती कुरलै शेन्नु ओदोम् - कटुवचनों को (भगवत्संनिधि में)जाकर न सुनावेंगी;

ऐयमुम् पिच्चैयुम् अन्दनैयुम् कैकाट्टि - सत्पात्र में दी जानेवाली भेंट एवं दीन जन को दी जानेवाली भिक्षा, इन को यथा शक्ति देंगी;

उय्युमारु एण्णि उहन्दु एल् ओर् एम्पावाय् - उज्जीवनोपाय के चिंतन से आनंदित हो जाएंगी।

पहिली गाथा के आह्वान से सब गोपियां एकत्रित हो गयीं। ये सब मिलकर अपने व्रत को सफल बनाने के लिए कृत्याकृत्य निर्णय कर रहीं हैं, इस गाथा से। अर्थात यह निर्णय करतीं हैं, कि फलाना फलाना काम करना, और फलाने काम न करना। अर्थात्, शास्त्रों में सामान्यतः मानव मात्र के लिए हमेशा अनुष्ठान करने लायक, "सत्यं वद, धर्मं चर" इत्यादि विधि, एवं "नानृतं वदेत्" इत्यादि निषेध अनेक किये गये हैं। इसके ऊपर किसी विशेष व्रत करने उद्यत मानव के लिए तत्तत् व्रत समाप्त होनेतक अनुष्ठान करने लायक विशेष विधि निषेध भी होते हैं। अब प्रकृत मार्गशीर्ष व्रतांग भूत विधि निषेधों का वर्णन किया जाता है। इनमें भगवन्नामकीर्तन आदि कतिपय नियम सामान्यनियम ही होते हैं। तो भी यहां पर उनका प्रस्ताव इस लिए किया जाता है कि इस समय में और अधिकमात्रा से उनको करना चाहिए। एवं क्रूरवचन को कभी भी नहीं सुनाना चाहिए; तो भी इस व्रतानुष्ठान समय में इस बात पर और विशेष ध्यान देना चाहिए।

पहिले कर्तव्य काम, क्षीराब्धिशायी भगवान के पादसंकीर्तन बताया गया है। कहना उचित था कि नंदनंदन श्री कृष्ण के पादारविंद का संकीर्तन करेंगी। परंतु गोपियों के मन में यह भय हैं कि ऐसा कहने पर गोपवृद्ध कहीं चिढ़ जायँगे। अतः गुप्त रूप से श्री कृष्ण का नाम लिया जाता है। वस्तुतस्तु श्रीराब्धिनाथ, अवतारकंद माना जाता है। यह पौराणिक वचन प्रसिद्ध है कि, "एष नारायणः श्रीमान् क्षीरार्णव निकेतनः। नागपर्यङ्कमुत्सृज्य ह्यागतो मधुरां पुरीम्॥" अर्थात, क्षीरसागर निवासी श्रीमान यह नारायण ही अपनी शेषशय्या छोडकर (श्री कृष्ण रूप का धारण कर) मधुरापुरी आ गया। एवं यह भी प्रसिद्ध कथा भाग है कि असुरपीडित देवगण ने क्षीराब्धिनाथ की सन्निधि में जाकर अपना दुःख मिटाने की प्रार्थना की। अतः क्षीराब्धिनाथ ही श्री कृष्ण है। अतः अवतार मूल से ही आपकी स्तुति करना गोपियों का अभिमत है। एवं, पहिली गाथा में नारायण नाम से परम पदनिवासी भगवान का स्मरण दिला दिया; इस गाथा में व्यूहरूपी आपका स्मरण किया गया है। क्षीराब्धि में सावधान शयन करनेवाले कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान संसारियों की तरह तमोगुण की जोर से नींद नहीं कर

रहे हैं; अपितु दूसरे समस्त व्यापारों से निवृत्त होकर, भक्तों की रक्षा करने में बडी सावधानी के साथ, उनकी आर्तध्वनि सुनने में दत्तकर्ण होकर एकाग्रचित्त से शयन कर रहे हैं। अत एव सहस्रनाम में आपका "शुचिश्रवाः" नाम पडा। शुचि श्रवाः—परिशुद्ध कर्णवाले; अर्थात् भक्तों का आर्तनाद सुनने में ही दत्तावधान कर्णवाले हैं भगवान। यह तो कहते की आवश्यकता नहीं रहती है कि आर्तनाद सुनने पर उस आर्ति को भगवान तुरंत मिटा देते हैं।

एवं भगवान की शयनावस्था की शोभा में दत्तचित्त हो कर गोपियां शेषशयन की बात करतीं हैं। भगवान की, शयन, आसन, यात्रा इत्यादि एकैक अवस्था में एकैक प्रकार की विलक्षण शोभा रहती है, जिसके दर्शन करने में भक्तलोग उत्कण्ठित रहते हैं। जब विश्वामित्र जी, अपने याग की रक्षा करने के लिए श्रीराम लक्ष्मणों को लेकर सिद्धाश्रम की ओर चलने लगे, तब रात में दोनों कुमार निद्रापरवश होकर सो गये। विश्वामित्र तो शीघ्र यज्ञशाला पहोंचने में उत्सुक थे; अतः आप बडे सबेरे उठकर आगे बढने तैयार हो गये। परंतु राजपुत्र तभी जागे नहीं। अतः महर्षि ने पास आकर उनको जगाया "कौसल्यासुप्रजा राम! पूर्वासंध्या प्रवर्तते। उत्तिष्ठ नरशार्दूल!" "नम्बिळ्ळै" शुभ नाम से विभूषित रसिकचक्रवर्ती, परमाचार्य श्रीकलिवैरि स्वामीजी के सच्छिष्य श्रीकृष्णपाद स्वामी वगैरह आचार्यों ने अपने से विरचित भगवद्विषय व्याख्यान आदि ग्रंथों में इस पद्य का बडा मनोहर व्याख्यान लिखा है। तदनुसार श्रीरामायण के प्रसिद्ध व्याख्याता श्रीगोविन्दराजाचार्य ने भी इस पद्य का बडा सुंदर विवरण किया है। तथाहि—"उभय प्रबोधनार्थं मागतो विश्वामित्रो रामस्य निद्राकालिकश्रियमवलोक्य तदासक्तस्सन् स्वागमनकार्यं विस्मृत्य, इमं प्रसूतवती कौसल्या किं वा तपस्तप्तवती' इति विस्मयते। [कौसल्या सुप्रजाः]....शोभना प्रजा —पुत्रो यस्यास्सा सुप्रजाः—त्वज्जननी कौसल्या सुपुत्रा। यद्वा स्वगतवचनम्—एतज्जननी कौसल्या सुप्रजाः 'कौसल्या शुशुभेतेन पुत्रेणामिततेजसा' इतिवत्। यद्वा कौसल्यायास्सुप्रजा इति संबोधनम्।" इन व्याख्यान वचनों का यह तात्पर्य है—राजपुत्रों को जगाने आनेवाले विश्वामित्र श्रीरामचन्द्रजी की निद्राकालिक शोभा से अपहृतचित्त होकर अपने स्वकार्य को भी भूलकर, "ऐसे परमसुंदर श्रीरामचन्द्र को पुत्र के रूप में पानेवाली का भाग्य अहो! सीमातीत है।" कहते हुवे उनकी प्रशंसा करते हैं। कौसल्या सुप्रजाः यों पदच्छेद करना चाहिए। सुप्रजाः—शोभन (माने बडा सुंदर) पुत्रवाली। हे रामचंद्र! तुम्हारी माता कौसल्या शोभन पुत्रवाली है। अथवा यह स्वगत वचन है व कि, "कौसल्या सुंदर पुत्रवाली है (भाग्यवती है।) अथवा एक पद मानकर, हे कौसल्या का शोभन पुत्र! ऐसा संबोधन भी हो सकता है। ऊपर उदाहृत संस्कृत टीका वाक्यों के बीच में यह एक वचन है—"भोजनकाले विस्मृतमुखो मुनिरासीत।" [मुद्रित पुस्तक में 'बोधनकाले विस्मितमुखो....' पाठ दीख पडता है; यह तो सर्वथा प्रामादिक है।] इसका यह तात्पर्य है कि, जैसा कोई बहुत भूखा मानव खाने बैठकर पीर से हुवे अतिमनोहर भक्ष्य के सौन्दर्य पर कदाचित् ध्यान देकर उसकी प्रशंसा करते हुवे भोजन करना भी भूल जाता है, इसी तरह से सिद्धाश्रम जाकर अपना व्रत समाप्त करने में उत्सुक विश्वामित्र, श्रीरामचंद्र जी के शयन सौंदर्य का दर्शन

करने से परवशचित्त होकर अपने स्वकार्य को भी भूलकर ऐसे मनमोहन की माता कौसल्या की प्रशंस करने लग गया। अहो! भगवान के सौंदर्य का प्रभाव वाचामगोचर है। अतः यो समझना चाहिए कि प्रकृत गाथा में, गोपियां भी भगवान की शयन कालिक शोभा से अपहृतचित्त होकर उसका वर्णन कर रहीं हैं, 'क्षीराब्धि में शयनकरनेवाले' इत्यादि से।

"क्षीराब्धिनाथ का कीर्तन करेंगी" कहने की जगह आपके पादों का कीर्तन करने की बात अर्थ पूर्ण है। इस चेतन को, अपने पर भगवत्कृपा प्राप्त करने के लिए भगवान के श्रीपादों का ही आश्रय लेना उचित व आवश्यक होता है। अर्थात् अत्यंत नम्रता से ही भगवान की शरण में जाना चाहिए। अत एव मंत्ररत्न में (यानी द्वयमंत्र में) चरणों की शरण में जाने की बात की गयी है। श्री यामुनाचार्य स्वामीजी भी स्तोत्ररत्न में अनुगृहीत करते हैं कि, "अकिंचनोनन्यगति श्शरण्य! त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये।" चरण का आश्रय लेनेवाला अपने अत्यंत विधेयत्व व पारतंत्र्य को घोषित करते हुए दया का पात्र बनता है। अत एव शास्त्रज्ञ कहते हैं कि "अनतिक्रमणीयं हि चरणग्रहणम्" (अर्थात् पैर पकडनेवाले की प्रार्थना न लांघी जा सकती है।)

व्रत के अंगतया समस्त भोगों को छोडना पडता है। वस्तुगत्या उपवास करना, अथवा इसमें अशक्त रहने पर शरीरधारण का अवश्यापेक्षित अल्प आहार लेना, गंध पुष्पादि भोग्यपदार्थों का सेवन न करना इत्यादि व्रत का अंग होता है। अतः यहां कहा गया है (नेय्युण्णोम् पालुण्णोम्) इत्यादि। उपवास कृश गोपियों को देखते ही भगवान का मन दया से पिघल जाएगा, और आप तुरंत उनकी कामना को सफल कर देंगे। इस आशा से गोपियां आहार संकोच की बात करतीं हैं। वस्तुतस्तु, "वासुदेवस्सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः" इत्यादि भगवद्गीता के अनुसार, भगवान को ही अपना धारक, पोषक, व भोग्य मानने-वाले भक्तों को दूध, दही, अलंकार इत्यादि लौकिकवस्तु पर ध्यान नहीं जा सकता है। अतः स्वभाव से ही उनका मन इन वस्तुओं से विरक्त होता है।

(नाट्काले नीराडि।) यद्यपि प्रतिदिन ही प्रातःकाल सूर्योदय से पहिले स्नान करने का शास्त्र विधि है। तथापि इस मामूली स्नानकाल से भी बहुत पहिले यह व्रतांगस्नान किये जानेवाला है। (शेय्यादन शेय्योम्) इत्यादि। पूर्वोक्तरीति से यह अकृत्याकरण एवं कटुवचनाकथन सामान्य धर्म ही है; न तु व्रतकरने के समय में अपनाकर, बादमें, माने समाप्ति के पश्चात् छोड दिये जानेवाला है। अर्थात् गोपियों का यह अभिप्राय नहीं है कि व्रत करनेतक अकृत्य न करेंगी और कटुवचन न सुनावेंगी; व्रत के पूर्ण होने के बाद तो यथेच्छ काम करेंगी और अप्रिय वचन भी करेंगी। परं तु तात्पर्य इतना ही है कि दूसरे समय में भी परिहरणीय इन अकार्यों का, इस व्रत करने के काल में और विशेष सावधानी से परिहार करेंगी। कहना था, कि शास्त्रनिषिद्ध काम न करेंगी; उसके बदले में यों कहा गया है कि पूर्वपुरुषों से अननुष्ठित काम नहीं करेंगी। इसका यह तात्पर्य है कि शास्त्रापेक्षया शास्त्रज्ञों के आचार ही प्रबल प्रमाण है। अतः क्वचित् शास्त्रज्ञों

के प्रत्यक्ष आचार के विरुद्ध होनेपर शास्त्र का विधिनिषेध भी अनादरणीय होते हैं । अत एव तैत्तिरीय उपनिषद की शीक्षावल्ली में आचार्य अपने शिष्य को उपदेश देता है कि, "अगर किसी कर्म के अथवा आचार के विषय में, तुम्हारे मन में कभी शंका हो जाय, कि 'मैं अब क्या करूं ? कैसे करूं ?' तो युक्त, युक्तविवेचन कुशल, धर्मपरायण, शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों का आचार देखकर निर्णय कर लो।" "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् " (सत्य कहना, प्रिय कहना, सत्य होने पर भी अप्रियवचन न कहना), "परनिन्दा मृषावाक्यम् आत्मस्तोत्रं च हेलनम् । स्तोमोक्तिरिति पञ्चैतान्यतिहेयानि चक्षते ॥" (ये पांच अत्यंत हेय दुर्गुण हैं—दूसरों की निंदा करना; अनृत कहना, अपनी स्तुति करना, किसी का परिहास करना, और व्यर्थ बात बकना), दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रेच तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥ (अनुपकारी योग्य पात्र के विषय में जो दान उचित देश व काल में श्रद्धा से किया जाता है, वह सात्विक दान कहलाता है ।) इत्यादि वचनों का यहां पर अनुसंधान करना चाहिए । कदाचित् अपात्र में भी उनका दैन्य देखकर दान करना पडता है । यह भी उचित ही माना गया है। दीनों का दुख मिटाना भी मानव का कर्तव्य होगा ही ॥

व्यंग्यार्थविवरण । पहिली गाथा में स्नान करने इच्छुक गोपियों को बुलाने से यह अर्थ सूचित किया गया कि भगवान का, अथवा आचार्य का आश्रयण करने में किसी प्रकार के जाति, गुण, चरित्र आदि की चिंता किये विना उसमें अपेक्षा रखनेवाले सभी अधिकारी होते हैं। अर्थात् मानव के वर्ण-आश्रम आदि के अनुसार धर्म वदलता जाता है; यानी एक का धर्म दूसरे का अधर्म बनता है । परंतु सत्य कहना इत्यादि कतिपय धर्म मानव मात्र के उपादेय होते हैं । इस तरह से आचार्याश्रयणरूप प्रकृत धर्म भी सर्वमानव साधारण है । परंतु ऐसा होने पर भी इस में कुछ शिक्षणीय अंश रहता है । वह यह है कि शास्त्रवश्य मानव ही इसका अधिकारी होगा; नतु शास्त्र का उलंघन करनेवाला भी । स्वयं गीताचार्य ने भी सोलहवे अध्याय के अंत में बताया कि, "जो मानव शास्त्रविधि को छोडकर अपनी मरजी के अनुसार चलता, उसको नतो सिद्धि मिलेगी, न वा सुख, नवा सद्गति । अतः कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करने में शास्त्र को ही प्रमाणित कर लो "इत्यादि । अतः इस गाथा में यह अर्थ बताया जाता है कि शास्त्रवश्य मानव ही प्रकृत व्रतानुष्ठान करने योग्य अधिकारी है । शास्त्र में दो तरह की आज्ञा सुनी जाती है । एक तो," मा बाप की सेवा करो, सत्यवचन कहो " इत्यादि विधिरूप है । दूसरी, "अनृत मत कहो" इत्यादि निषेधरूप है । इन दोनों के अनुसार चलनेवाला मानव ही शास्त्रवश्य कहलाता है । पूर्व गाथा में व्रत करने के लिए जो लोग बुलाये गये, उनको ऐसे शास्त्रवश्य होने की आवश्यकता इस पद्य से बताया जाती है ।

पूर्वगाथा में केवल व्रजनिवासिनी गोपियों का आह्वान किया गया । इस गाथा में सारी दुनिया में वास करनेवाले बुलाये जाते हैं । इसयों बताया जाता है कि इस व्रत करने का आदेश केवल व्रजनिवासियों को नही दिया जा रहा है; अपितु जंबूद्वीप में भारत वर्ष में भरतखंड में निवास करनेवाले शास्त्र

विश्वासयुक्त, एवं शास्त्रवश्य सभी मुमुक्षु जनों को दिया जाता है। (वैयत्तु वाऴ्वीर्हाळ्) इस संबोधन का यह तात्पर्य है—"गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तुये भारतभूमिभागे। स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषास्सुरत्वात्॥" (अर्थात्, देवतालोग इस अर्थ के गीतों का गान करते हैं कि इस देव शरीर को छोडकर स्वर्ग व मोक्ष कमाने योग्य पुण्यभूमि भारत में फिर जन्म लेनेवाले धन्य हैं।) इत्यादि श्रीविष्णु-पुराणोक्त प्रकार से परमपवित्र भारतभूमि में जन्मलेना, इस में भी दुर्लभ मनुष्य जन्म मिलना, उस में भी शास्त्राभ्यास करने लायक श्रेष्ठ जाति में उत्पन्न होना, दीर्घायु होना, शास्त्राभ्यास करने लायक बाल्यवय में रहना, भगवद्भागवताचार्य सेवन में अभिरुचिवाला होना, इत्यादि महद्भाग्यवान हो कर इस जगत में रहनेवाले हे महात्मालोग! उज्जीवन शब्द का अर्थ है आत्मकल्याण को पाना। सामान्यलोग कहते हैं कि आत्मकल्याण तो परमपद में ही मिलनेवाली चीज़ है। परंतु भगवद्गुणानुभव रसिकों के अभिप्राय से वह; इस संसार मंडल में ही हो सकता है। अत एव कहा जाता है कि "वैकुण्ठवासेऽपि न मेऽभिलाषः"। अथवा भूमण्डल में (वैयत्तु) शब्द के बाद अपि (भी) शब्द लगाना चाहिए। तथा च यह अर्थ हुआ, कि भूमंडल में रहते हुए भी उज्जीवन पानेवाले हे महात्मालोग! अर्थात बडे बडे ज्ञानियों को भी मोहित करने-वाले इस प्रकृति मंडल में रहते हुए भी, भगवान की (अथवा आचार्य की) निर्हेतुक कृपा बल से उसके जाल में न फंसाकर उज्जीवन पानेवाले हे परमभाग्यसंपन्न महात्मालोग! ऐसा अर्थ निकलता है।

(नामुम् नम्पावैक्कु) इत्यादि। "हमारे व्रतांगतया" कहने से आचार्यनिष्ठावाले अपनी विशेष बताया जाता है। तथा हि—"आचार्यादिह देवतां समधिकामन्यां न मन्यामहे"(आचार्य को छोडकर दूसरी किसी देवता को हम नहीं मानेंगे) इत्यादि कहनेवाले आचार्यनिष्ठागरिष्ठ हमारा अध्यवसाय एवं तदनुगुण आचरण दूसरे मामूली विद्वानों की तरह नहीं रह सकते हैं। ये लोग हमारी निष्ठा को नहीं जान सकते हैं। इस कारण से वे शायद हमारा उपहास भी करते होंगे। परंतु हम इसका परवाह न करते हैं। कारण कि हम न तो शास्त्र की निंदा करनेवाले नास्तिक हैं; नवा आस्तिकनास्तिक (यानी हृदय में नास्तिक रहते हुए भी ऊपर से आस्तिक होने का दावा करनेवाले) हैं। परंतु श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्र को भगवान की आज्ञा मान कर, श्रद्धा से उसका पालन करनेवाले आस्तिकाग्रेसर हैं। परंतु विशेष इतने मात्र का है कि, हम शास्त्र के असार, अल्पसार इत्यादि भागों को छोडकर, सारतम भाग को ही अपना ते हैं, जिस से दूसरों के मन में हमारे विषय में कुछ गडबड हो सकता है। यह बात अलग है। वस्तुतस्तु आचार्य को ही परदेवता माननेवाले हम नतो भगवान से द्वेष करते हैं, अथवा न आपकी उपेक्षा तक कर सकते हैं। नहि आचार्यनिष्ठा की सीमा तक पहोंच कर रहनेवाले मधुरकवि स्वामीजी, श्रीरंगामृत स्वामीजी इत्यादियों ने भगवान् की उपेक्षा की किंतु अपने इष्टदेव आचार्य (श्रीशठकोपजी, श्रीरामानुजजी इत्यादि) के इष्टदेव होने से भगवान में भी उन्होने पुष्कल भक्ति की। अतः विशेष इतना है जब कि मामूली आस्तिक लोग अपनी लौकिक अथवा पारलौकिक इष्ट प्राप्ति व अनिष्टनिवृत्ति का उपाय मानकर भगवान का भजन करते हैं, तब आचार्य को ही अपने सर्वस्व माननेवाले आचार्यनिष्ठ, भगवान में ऐसी बुद्धि न रखते हैं; तो भी अपने

आचार्य का इष्टदेव होने के कारण, उन आचार्य की प्रसन्नता के लिए, भगवान की सेवा करते हैं। श्रीवचनभूषण दिव्य शास्त्र में आचार्यनिष्ठा के प्रभाव का वर्णन करने के प्रसंग में, ईश्वर एवं आचार्य, इन दोनों की तुलना करते हुऐ यों बताया गया है, कि अपने हृदय सिंहासन पर भगवान की जगह आचार्य को ही विराजमान करनेवाले आचार्यनिष्ठ को भी भगवान के विषय में अत्यंत कृतज्ञ रहना आवश्यक है; क्यों कि ऐसे महामहिम आचार्यसार्वभौम भी अंततः भगवान की कृपा से ही मिल गये हैं। अतः किसी तरह से आचार्यनिष्ठ को भगवद्भक्ति से विरहित रहना अशक्य है।

(शेय्युम् किरिशैहळ् केळीरो) गुरुभाइयों से कहा जाता है कि हमारे कर्तव्याकर्तव्यों को सुनिए। गोपियों का नियमानुष्ठान व्रत समाप्ति के बाद प्रायः बंद हो जाता है। तथाहि इस गाथा में दूध, घृत, पुष्प इत्यादि भोग्यवस्तुओं को छोड देने की बात की गयी है; परंतु ऊपर सत्ताईस की गाथा में (* कूडारै वेल्लुम् शीर्) भगवान से ये ही चीज़ मांगी जाती हैं। अतः गोपियों का यह व्रत तात्कालिक है। (अकृत्य से विरत होना, दान करना इत्यादि कतिपय काम बाद में भी अनुष्ठेय होते हैं, यह बात तो अलग है।) परंतु आचार्यनिष्ठाव्रत को अपनानेवाले मानव का व्रत, कभी समाप्त नहीं होगा। अतः उनसे अनुष्ठेय वक्ष्यमाण विशेष काम भी उसका जन्मभर करनेवाले होते हैं।

(पार्कडलुळ्) इत्यादि। क्षीरसागर शब्द से क्षीरवत् अर्थात भोग्य भगवान के कल्याणगुणरूपी महासागर विवक्षित है। आचार्य, उसमें शयन करनेवाला परमपुरुष हैं; अर्थात् आप भगवद्गुणों के अनुसंधान में ही नित्यनिरत होकर विराजमान श्रेष्ठ पुरुष होते हैं। उनके पादों का कीर्तन करना, एवं पादस्थानीय उनके आप्तशिष्यों का कीर्तन करना हमारा कर्तव्य है। श्री शठकोप स्वामीजी सगस्रगीति में गाते हैं कि "उनदु पालेपोल् शीरिल् पळुत्तोळिन्देन्" (आपके दुग्धोपमेय कल्याणगुणों में मैंने गाढ परिचय किया।) श्रीरामानुजस्वामीजी, आपके पादारविंदत्वेन प्रसिद्ध हैं; और श्रीदाशरथि स्वामीजी श्रीरामानुज स्वामीजी के पादारविंदत्वेन प्रसिद्ध हैं। ऐसे आचार्यपादों का कीर्तन करना भी आचार्यनिष्ठ का कर्तव्य होगा।

(नेय्युण्णोम् पालुण्णोम्) इत्यादि। आत्मोज्जीवन मात्र पर ध्यान देकर, भगवान के एवं आचार्य के कल्याण गुणों का अनुभव करने में ही निरत हमारा ध्यान, प्राकृत शरीर धारक पोषक व भोग्य पदार्थों की ओर नहीं जा सकता है। यद्यपि हम एकदम "वासुदेवस्सर्वम्" कहनेवाला महात्मा नहीं बन सकते हैं। तथापि हमारा लक्ष्य तो वही होगा, और उस दिशा में बढने का ही हम सदा प्रयत्न करते रहेंगे। आगे प्रातः काल स्नान करने की बात जो की जाती है, इससे स्नान, संध्या, जप, पूजा इत्यादि सभी अपने वर्णाश्रमोचित नित्य कर्म सूचित किये जाते हैं। तथाच पूर्वोक्तप्रकार से शास्त्रविधि के अनुसार ही चलनेवाले हम को, शास्त्रोक्त कर्मों का, भगवत्सेवा अथवा आचार्य सेवा मानकर, अनुष्ठान करना आवश्यक बताया जाता है। चरम श्लोकोक्त सर्वधर्म परित्याग का भी यही अर्थ है कि शास्त्रोक्त कर्मों का ठीक ठीक अनुष्ठान करते ही उनमें साधनत्व बुद्धि को यानी फलाभिसंधि को छोड देना चाहिए। एकदम कर्मों को

ही छोड देनेवाला, अंततः नास्तिक ही बन जाएगा। दिव्यप्रबंधों में भी पांचकालिककर्मानुष्ठान में निरत, अत एव धर्मशास्त्रों में उपदिष्ट सन्मार्ग में चलनेवाले परमभक्तों की प्रशंसा की जाती है। (मैयिट्टु) इत्यादि। आंखों में काजल लगाना, पुष्प पहिनना इत्यादि तो देहालंकार होते हैं। इनको छोडने का तात्पर्य यह है कि, आत्मोज्जीवन में ही दत्तावधान हमको आत्मालंकार पर ही ध्यान देना आवश्यक है। उसको छोडकर केवल शरीर सजाने की चेष्टा न करेंगे।

(शेय्यादन शेय्योम्) उपदेशरत्नमाला में "मुन्नोर्मोऴिन्द" इत्यादि (६७) गाथा में कहा गया है कि, "हे मेरा मन! अपने पूर्वाचार्यों से अनुष्ठित प्रकारों का चिंतन किये विना, उसके विरुद्ध ही अपने इष्टानुसार कहनेवालों की बात सुनकर तुम भ्रांत मत हो जा; परंतु पूर्वों के गये हुवे मार्ग में ही चलो।" शास्त्रों का तो परमगहन होता हैं। देश, काल, अवस्था अधिकार आदियों के भेद से धर्म भी बदलता हैं। अतः अगाध शास्त्र सागर में गाढ अवगाहन कर अपने लिए उचित धर्म को ढूंढ लेना हमारे सरीक अल्पज्ञों को बिल्कुल अशक्य है। इसलिए धर्मज्ञ अपने पूर्वजों के आचारों के पीछे पडना ही हमारे लिए उचित होगा। अत एव धर्मशास्त्रकारों ने भी "धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्च" (आपस्तम्ब धर्मसूत्र) कहते हुए धर्मज्ञों के अनुष्ठान को ही प्रधान्य दिया। उसमें भी धर्मज्ञ समय से परित्याज्यत्वेन निर्णीत कर्मों को छोड देना ही हमारे लिए आवश्यक बताया जाता है। अत एव सत्संप्रदायनिष्ठ महात्मा लोग, एकादशीश्राद्ध, महालयश्राद्ध, अष्टकान्वष्टकाश्राद्ध; वारंवार प्रणाम करना, अदृष्टार्थ इत्यादियों को, सामान्यशास्त्रविहित होने पर भी, न करते हैं। (तीकुऱळै) इत्यादि से वाचिक अकार्यों को छोड देने का संकल्प किया जाता है। दुर्गुणों से भरे जानेपर भी अपने को गुणपरिपूर्ण बताना, अनेक सद्गुणपूर्ण दूसरों पर दोष लगाना, (असूया से) उनके गुणों को भी दोष ही बताना, तत्वविरुद्ध एवं दूसरों का अहित वचन कहना, भगवद्भागवताचार्यस्तुति करने लायक जीभ से क्षुद्रव्यक्तियों की स्तुति करना, विना कारण महात्माओं का धिक्कार करना, इत्यादि अनेकविध वाचिक अपराधों से बडी सावधानी पूर्वक, दूर रहने का संकल्प किया जा रहा है।

(ऐयमुम् पिच्चैयुम्) इत्यादि। यह बात पहिले ही कही गयी कि योग्य व्यक्ति यानी सत्पात्र में भी दान किया जाता है, और दूसरी तरह से अपात्र होने पर भी दीनों में दिया जाता है। इसी तरह से आचार्यलोग विशेष ज्ञानवान सच्छिष्यों को भी उपदेश देते हैं; एवं ज्ञानदरिद्र, अथापि दैन्य से अपने पास आनेवाले मामूली लोगों को भी उपदेश देते हैं। दोनों को ज्ञानदान करना ज्ञानी का कर्तव्य होगा। श्रीरामानुज स्वामीजी, महाज्ञानी श्रीकूरेशस्वामी, श्रीगोविंदस्वामी, श्रीदाशरथिस्वामी आदियों को भी उपदेश देते थे; एवं अपने पादारविंद में समाश्रित किसी एक मूक को भी संज्ञा से बता देते थेकिये (मेरे) चरणारविंद ही तुमारे लिए रक्षक हैं। मूल गाथा में दानवाचकतया (कैकाट्टि) शब्द प्रयुक्त है। इस शब्द का यह भी अर्थ होता है कि हस्त (यानी ज्ञानमुद्रा) दिखाकर। इसका यह तात्पर्य है कि आचार्यों की हस्तमुद्रा ही शिष्य

का उज्जीवनसाधन है। "शठारिहस्तमुद्रिका हठाद्धुनोतु मे तमः," "पश्येम लक्ष्मणमुनेः....उपदेशमुद्राम्," "प्रथितबोधमुद्राङ्कितः....शठरिपोरवामः करः" इत्यादि श्रीसूक्तियां इस विषय में प्रमाण हैं।

(उँय्युमारेण्णि) उज्जीवनोपाय की चिंता कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि हमेशा ऐसी चिंता करते रहना कि हमारा कल्याण होगा कि नहीं? अगर होगा ही तो कब, कैसे होगा? इत्यादि। कारण कि आचार्यनिष्ठावान के मन में ऐसी शंका को कभी न होनी चाहिए, अथवा हो ही न सकती है। परंतु इस प्रकार से आनंदित रहना, कि, "अहो! हमारा भाग्य है कि आचार्यनिष्ठारूप यह निरपाय उपाय हमें मिला है!" २

(गाथा.) ओङ्गि युलहळन्द उत्तमन् पेर्पाडि * नाङ्गळ् नम्पावैक्कु चात्ति नीराडिनाल् *
तीङ्गिन्ति नाडेल्लाम् तिङ्गळ् मुम्मारि पेय्दु * ओङ्गु पेरुम् शेन्नेलूडु कयलुहळ *
पूङ्गुवळैप्पोदिल् पोरि वण्डु कण्पडुप्प * तेङ्गादे पुक्किरुन्दु शीर्त्त मुलै पत्ति
वाङ्ग * कुडम् निरैक्कुम् वळ्ळल् पेरुम्पशुक्कळ् * नीङ्गाद शेल्वम् निरैन्देलोरेम्पावाय् ॥ ३ ॥

ओङ्गि उलहु अळन्द उत्तमन् पेर् पाडि	आकाश की सीमातक बढ कर लोकों को नापनेवाले उत्तमपुरुष का नामसंकीर्तन कर
नाङ्गळ् नम् पावैक्कुशात्ति नीराडिनाल्	हम अपने व्रत के व्याज से अगर स्नान करेंगी, तो
तीङ्गु इन्ति नाडु एल्लाम् तिङ्गळ् मुम्मारि पेय्दु	समस्त देशों में ईतिबाधा नष्ट हो जाय इस तरह से प्रति मास तीन वार वर्षा वरसेगी;
ओङ्गु पेरुम् शेन्नेल् ऊडु कयल् उहळ	आकाश तक बढनेवाले शालिसस्यों के बीच में मछली सानंद खेलेंगे;
पूम् कुवळै [illegible]दिल् पोरिवण्डु कण्पडुप्प	खिले हुए कुवलय पुष्प में सुंदरभ्रमर निद्रा करेंगे;
पक्कु तेङ्गादे इरुन्दु शीर्त्त मुलैपत्ति वाङ्ग	गोष्ठ में, प्रवेश कर, सधैर्य बैठकर गायों के पुष्ट स्तनों को खेंचने मात्र से,
वळ्ळल् पेरुम् पशुक्कळ् कुडम् निरैक्कुम्	परमोदार वे बडी गाय(दूध से) घडों को भर देंगी;
नीङ्गाद शेल्वम् निरैन्दु एलो रेम्पावाय्	(इस तरह से सर्वत्र) अविच्छिन्न ऐश्वर्य भर जाएगा॥

अब यों कहा जाता है कि, प्रकृत व्रतानुष्ठान करने से मिलनेवाला फल एक छोटासा देश मात्र में सीमित न रहेगा; परंतु सारी दुनिया में व्याप्त होगा। इस प्रबंध के अंत में भी एक फलकीर्तन गाथा है। उसमें इस ग्रंथाध्ययन का फल कहा जाएगा; हाल में तो गोपीकृत इस व्रतानुष्ठान का फल कहा जा रहा है। इसमें यों कहा जाता है कि, त्रिविक्रम भगवान के नामसंकीर्तन पूर्वक अगर हम (गोपबालिकाएँ) इस व्रतका ठीक ठीक अनुष्ठान करेंगी, तो सारी दुनिया में सब प्रकार के अनिष्ट एकदम शांत होंगे; प्रतिमास में तीन

तीन वार वरसेगा; सस्य भी खूब पैदा होंगे; और इससे गाय भी अत्यधिक दूध देंगी। "यत्राष्टाक्षरसंसिद्धो महाभागो महीयते। न तत्र संचरिष्यन्ति व्याधिदुर्भिक्षतस्कराः ॥" (जिस देश में अष्टाक्षरमहामंत्र में सिद्ध महात्मा पूजित हो रहा है; वहां पर रोग, दुकाल, चोर इत्यादि पीडाएँ न ठहर सकेंगी।) इत्यादि इस विषय में प्रमाण है।

इस पद्य में त्रिविक्रम भगवान का नाम लिया गया है। पर, व्यूह रूपों के बाद विभव रूप का कीर्तन होना बडा उचित ही है। भगवत्कृपालब्ध विशेषज्ञानवाली ये गोपियां, नंदनंदन, श्यामसुन्दर में विशेष प्रेमवाली होने पर भी आपके उस एक ही रूप के चिंतन से तृप्त नहीं हो सकती हैं; किंतु परव्यूहादि सभी प्रकारों का, अविशेष भजन करेंगी ही। दूसरी बात यह भी है कि त्रिविक्रममूर्ति से पहिली जो वामनमूर्ति थी, उसका सौंदर्य श्रीकृष्णमूर्ति के सौंदर्य से मिलती जुलती है, ऐसी एक प्रथा अनुभवरसिकों की गोष्ठी में प्रसिद्ध है। अत एव यशोदा जी श्रीकृष्ण को बुलाती हुई, "हे वामन मूर्ते, बालकृष्ण! इधर आ जा" पुकारती (पेरियाळ्वार तिरुमोळि २-९-२)। इस वृत्तांत से परिचित गोपियों के मन में भी यही वासना भरी है। अत एव आगे सत्रहवी गाथा में साक्षात् श्रीकृष्ण को ही जगाती हुई ये कहेंगी कि, "हे लोकों को नापनेवाले देवाधिदेव! निद्रा छोडकर जागो" (अम्बरमूडरत्तु ओङ्गि युलहळन्द उम्बर्कोमाने उरङ्गादेळुन्दिराय्)। फिर शयन से उठकर सिंहासन पर विराजमान आपका मंगलाशासन करती हुई ये गोपियां (२४-गाथा में) कहेंगी कि, "हे समस्त लोकों को नापनेवाले! आपके पादारविंद की जय हो" (अन्रिव्वुलहमळन्दाय् अडि पोत्ति)। अतः यह अर्थ सिद्ध होता है कि गोपियों के अभिप्राय से त्रिविक्रम भगवान् एवं श्रीकृष्ण भगवान एक ही हैं।

(उत्तमन्) त्रिविक्रम भगवान को उत्तमपुरुष कहना साभिप्राय है। लोक में उत्तम, मध्यम, अधम कहलानेवाले तीन प्रकार के पुरुष रहते हैं। अपने नष्ट का परवाह नहीं करते हुवे दूसरों का उपकार करनेवाला उत्तम है; अपने नुकसान न पहुँचाते हुवे दूसरों का उपकार करनेवाला मध्यम है; और अपने लाभ के लिए दूसरों की हानि पहोंचानेवाला अधम है। (अपने लाभ न होने पर भी अथवा नुकसान ही होने पर भी दूसरों की हानि पहोंचानेवाले भी लोग मिलते हैं; उनकी बात अलग है। उनको मनुष्य मानना अशक्य है।) हाल में त्रिविक्रम (अथवा वामन) भगवान ने स्वयं परिपूर्ण, एवं लक्ष्मीपति होने पर भी अपने पादाश्रित इंद्र के लाभ के लिए, परिहसनीय वामनरूप का धारण कर, अतिक्षुद्र याचनावृत्ति को भी जो अपनाया; इस लिए आप उत्तमपुरुष कहलाते है। यद्यपि पुरुषोत्तम बिरुदधारी भगवान स्वभाव से ही (समस्त चेतनाचेतन विलक्षण होने के कारण) उत्तम पुरुष हैं। तथापि हाल में त्रिविक्रम भगवान को उत्तम कहने का कारण उक्त प्रकार का आपका उत्तम गुण ही है। अस्तु। ऐसे महापुरुष के नामसंकीर्तन से शुरू कर मार्गशीर्षव्रत का अनुष्ठान करने से लोक की सब पीडाएँ शांत हो जाती हैं, और सब प्रकारों के क्षेम होते हैं। पीडा तो, अतिवृष्टि, धान्यका विनाश करनेवाले मूषक शलभ एवं शुक, और अतिक्रूर शासक जन; ये ईतिबाधा कहलाते हैं। क्षेम का वर्णन आगे चार पांच वाक्यों से किया जाता है। पहिला

क्षेम प्रतिमास तीन वक्त वर्षण है । दसदस दिन में एक दिन वर्षा हो, और नव दिन सूर्य का पूर्ण प्रकाश हो, तो सस्य अच्छी तरह से पैदा होते हैं करते हैं कि वेदाध्ययन निरत एवं व्रतानुष्ठान संपन्न ब्राह्मणों के लिए एक वर्षा, धर्म से राज्य का परिपालन करनेवाले क्षत्रियों के लिए एक वर्षा, एवं पतिव्रता महिलाओं के लिए एक वर्षा, इस तरह से प्रतिमास तीन वर्षा होती हैं।

उक्त वर्षा से होनेवाली सस्यों की एवं गायों की समृद्धि आगे वर्णित होती है। ठीक वर्षा होने के कारण शालि के सस्य ठीक ठीक अभिवृद्ध होते हैं, और उन खेतों में हमेशा पुष्कल पानी के भरे रहने से उनमें हृष्ट पुष्ट मछली सानंद खेलते रहते हैं। और नानाप्रकार की पुष्पलताओं में कुवलयादि मधुपूर्ण पुष्प खिले रहते हैं, जिन में खूब मधु पीकर भ्रमर भी मस्त पडे रहते हैं। मूलगाथा में (पोरिवण्डु-पोरुवण्डु) ऐसे पाठभेद हैं। पोरि वण्डु का अर्थ है सुंदर भ्रमर; और पोरु वण्डु का अर्थ होता है एक दूसरे से स्पर्धा करनेवाले भ्रमर। स्पर्धा का कारण तो, मधुपान करने का प्रयत्न होगा; अर्थात् मधु पीने के लिए ये भ्रमर स्पर्धा करते हुए पुष्प पर बैठते हैं; अथवा मधुपान से मस्त हो कर आपस में संघर्ष करते हैं; अथवा मधुपानमत्त स्त्रीपुरुष भ्रमरों प्रणयक्रीडा में व्याप्रृत होते हैं। यह तो खेतियों की समृद्धि हुई। आगे गायों की समृद्धि बतायी जाती है (तेङ्गादे पुक्किरन्दु) इत्यादि । खूब आहार मिलने के कारण से गाय भी हृष्ट पुष्ट बन जाती हैं और श्रीवेंकटाद्रि में निर्झर धारा की तरह इतनी बडी क्षीरधारा निकालती हैं, कि दूध निकालने के काम में कोई मामूली आदमी प्रवृत्त न हो सकता । किंतु विशेष बलवान दृढगात्र गोप ही समुद्र लंघन में प्रवृत्त हनुमान जी की तरह सधैर्य कमर बांधकर, गोशाला में जाकर, दूध निकालने बैठ सकता है। दूध भी इतनी अधिक मात्रा में निकलता है कि उससे अनेक घड भर जाते हैं; और गोप का कार्य इतना ही होगा कि भरे हुवे घडों को हठाकर खाली घडों कों रखते जाना। तथा च ऐसे अनेक प्रकार के योगक्षेम ही प्रकृतव्रतस्नान का फल बताया गया ॥

व्यंग्यार्थ का विवरण ॥ पहिली गाथा से आचार्यगुणानुभव करने इच्छुक सब लोगों का आह्वान किया गया। दूसरी गाथा में कहा गया कि ऐसे व्यक्तियों को शास्त्रवश्य होना आवश्यक है । अब इस गाथा में कहा जाता है कि उक्त गुणोपेत मानवों के आचार्यसेवन रूप व्रत में अवगाहन करने से प्रपन्नसंतान समस्त मुमुक्षुओं को अनेक प्रकार के कल्याण होंगे।

(ओङ्गि) इत्यादि से आचार्य का वैभव बताया जाता है। भगवान अपने दिव्य मंगल विग्रह से आकाशतक बढ गया; आचार्य तो अपने विलक्षण यश से ऐसे बढते हैं। आचार्य का यश भगवान के यश से भी महान है। तथाहि—भगवान ने समस्त चेतनों का उद्धार करने के उद्देश्य से इस भूमंडलपर अवतार लिया, अतिमनोहर अपने दिव्यमंगल विग्रह का एवं अत्यद्भुत लीलाओं का दर्शन दिया और मधुर उपदेश भी किया। इतने परिश्रम उठाने पर भी आपके सब प्रयत्न एकदम निकम्मे बन गये। अंततः आपके मुख से यही वाणी निकली कि "अवजानन्ति मां मूढाः मानुषीं तनुमाश्रितम्।" (मनुष्य शरीर का धारण करनेवाले मुझको, लोक मामूली मानव मात्र मानते हुवे तिरस्कार करते हैं।) ऐसा

होने का कारण क्या है ? बस यही है कि आपसे किये गये हुवे उपदेश इस प्रकार के थे कि, "मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु" (भक्तियुक्त होकर मेरे में चित्त लगा दो, मेरी पूजा करो, मेरा नमस्कार करो) "मामेकं शरणं व्रज" (मेरी शरण में आ जा) इत्यादि। यह उपदेश तो बडा सुंदर एवं शास्त्रानुसारी, जरूर है। परंतु इसको सुननेवालों के मन में ऐसी एक विचित्र भावना हुई कि, "ओह ! यह क्या है ! यह गीताचार्य अपनी महिमा का ही वर्णन कर रहा है। यह तो केवल आत्मप्रशंसा करने निरत कोई धूर्त प्रतीत होता है।" इस भावना से आक्रांत मन के ऊपर भगवान के सब सदुपदेशों असर डालने असमर्थ बन गये। फलतः भगवान का यश भी कुंठित हो गया। परंतु आचार्यों के उपदेश में यह आपत्ति नहीं रही। क्यों कि आप तो अपने महत्व का वर्णन कभी भी न करते हैं, परंतु भगवान के अनेकविध वैभवों का वर्णन करते हुवे, स्वयं भी उनकी उपासना करते हैं और दूसरों को भी यही उपदेश देतें हैं। अतः इसमें स्वप्रतिष्ठावर्णन रूप दोष नहीं लगता है। तस्मात् लोगों पर इस उपदेश की असर खूब पडती है, और आचार्य का यश भी खूब फैलता है। भगवान ने भी, "उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः" (आचार्य संनिधि में अभिवादन, सेवा, अवसर पाकर सविनय प्रश्न इत्यादि करते हुवे रहस्य अर्थों का उपदेश पा लो) इत्यादि कहकर, आचार्य वैभव को बता दिया। और अवतारों में स्वयं भी वसिष्ठ विश्वामित्र सांदीपनी इत्यादि आचार्यों से शिक्षा प्राप्त किया। अतः यह अर्थ निश्चित हुआ कि आचार्य का यश सर्वत्र व्याप्त है।

लोकों को नापनेवाले आचार्य भी होते हैं। भगवान ने त्रिविक्रमरूपी होकर एक ही वक्त लोकों को नाप लिया। आचार्य तो, "श्रीरङ्गं करिशैलमञ्जनगिरिं ताक्ष्याद्रि सिंहाचलौ" (श्रीरामानुजाचार्य स्वामीजी श्रीरंग, श्रीकाञ्ची, श्रीवेंकटाद्रि, श्रीयादवाद्रि, सिंहाचलक्षेत्र नामसे पुकारे जानेवाला तिरुमालिरुंशोले नामक विख्यात दिव्यक्षेत्र अथवा सिंहाचलनाम से ही प्रसिद्ध आंध्र देश में विराजमान दिव्यक्षेत्र, श्रीकूर्मक्षेत्र, श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र यानी जगन्नाथपुरी, बदरीनाथ क्षेत्र, नैमिशारण्य, द्वारका जी, प्रयागराज, मथुरापुरी, अयोध्या दिव्यनगरी, गया क्षेत्र, श्रीपुष्करराज, सालग्रम क्षेत्र इत्यादि क्षेत्र तीर्थों का सेवन कर आनंदित हो रहे हैं) इत्याद्युक्त प्रकार से कृत्स्न भूमंडल को अपने पादन्यास से धन्य बनाते हुए। सर्वत्र यात्रा करते रहते हैं। एवं आचार्य, परमपावन अपने श्रीपादतीर्थ से समस्त जनों को पवित्रित करते हैं। भगवान ने अपना माहात्म्य छिपाकर असुर महाबलि के सामने याचक वेष से जाकर उससे कुछ भिक्षा मांगी। आचार्य भी नित्यसूरि समान अपने विशेष प्रभाव को छिपाकर मामूली एक संसारी की तरह इस संसार में रहते हुवे, आसुरी प्रकृतिवाले जनों से यों मांगते हैं कि, "हे सज्जनों ! जरा मेरी बात सुनिए तो सही।" परंतु दोनों में इतना अंतर रहता है कि भगवान ने बलि से कुछ दान लिया; आचार्य तो हमेशा देते ही रहते हैं, नतु लेते भी। भगवान्‌ ने तीन पग भूमि मांगी और पायी; आचार्य तो रहस्यत्रय, तत्वत्रय, षट्कत्रय, तत्वहितपुरुषार्थत्रय, आकारत्रय, प्रमाणप्रमेय प्रमातृत्रय, इत्यादि तीन तीन संख्यावाले अनेक पदार्थों को (माने उनके ज्ञान को) देते रहते हैं। एवं त्रिविक्रम भगवान ने लोकों को नापते हुवे शुक्रनमुचि

इत्यादि दुष्टों का दमन भी किया। आचार्य भी, "पाषण्डद्रुमषण्डदावदहनः" इत्याद्युक्तप्रकार से नास्तिक, पाषंड आदि दुर्मतों का निरसन कर देते हैं। ऐसे अनेक प्रकारों से आचार्य, त्रिविक्रम भगवान के सदृश होते हैं।

(उत्तमन्) कहने से उत्तम आचार्य बताये जाते हैं। अर्थात् उपदेश करनेवाले सभी एक तरह के नहीं होते हैं; परंतु उन में उत्तम मध्यम अधम भेद रहता है। तथाहि—सामान्य शास्त्रों का उपदेश देनेवाले अधम हैं; वेदांत के उपदेशक मध्यम हैं और रहस्यत्रयों का उपदेश करनेवाले उत्तम हैं। अथवा, ज्ञान व अनुष्ठान, दोनों से विरहित अधम हैं; एक से युक्त मध्यम हैं; और दोनों से परिपूर्ण उत्तम हैं। अथवा, अपने से अभ्यस्त विद्या का, किसी को उपदेश न देनेवाले अधम हैं। शिष्य के निर्बंध से उपदेश करनेवाले मध्यम हैं और विना निर्बंध, अपनी परमकृपा से उपदेशक उत्तम हैं। इस तरह से, उत्तम आचार्य का नामसंकीर्तन शिष्य का अवश्य कर्तव्य होगा। शास्त्र पुकारता है कि, "गुरोर्नाम सदा जपेत्।" श्रीयामुनाचार्य स्वामीजी, श्रीकूरेश स्वामीजी, श्रीपराशरभट्टर स्वामीजी इत्यादि पूर्वाचार्यों ने भी भगवान की स्तुति करने उद्युक्त होकर, पहिले अपने अपने आचार्यों की ही स्तुति की। दिव्यप्रबंध पाठ करने के प्रारंभ में आचार्यों की ही स्तुति गायी जाती है। अतः उत्तम आचार्य का नामसंकीर्तन अवश्यकर्तव्य होगा॥

(नाङ्गळ् नम्पावैक्कु) इत्यदि। "हमारे व्रतके लिए" कहने से आचार्यनिष्ठा रूप विलक्षणव्रत कहा जाता है। श्रीरामभक्ताग्रेसर भरतजी के विना दूसरे किसी की चिंता न करनेवाले शत्रुघ्नजी का जो व्रत था, श्रीशठकोपस्वामी जी के सिवा दूसरे में चित्त न लगानेवाले श्रीमधुरकवि जी का जो व्रत था, एवं श्रीरामानुज-स्वामी जी के विना दूसरे का कीर्तन न करनेवाले श्रीरङ्गामृतकवि का जो व्रता ठहरा, यही यहां पर "हमारा व्रत" कहा जा रहा है। इस व्रत का अंग स्नान तो सर्वाङ्गशुद्धि संपादक आचार्य सेवा में उतरना है। ऐसा स्नान करने से मिलनेवाला श्रेय आगे बताया जाता है (तीङ्गिन्त्रि) इत्यादि से। अतिवृष्टि, अनावृष्टि इत्यादि छः ईतिबाधा जिस तरह से लोकशांतिका विनाशक होते हैं, इसी तरह से, देहात्मभ्रम, स्वस्वातंत्र्यभ्रम, इतरशेषत्वभ्रम, स्वरक्षणे स्वान्वय, बांधवाभासलोलत्व और विषयचापल्य नामक ये छः दोष आत्माको अधोगति देनेवाले हैं। आचार्य सेवा करने से और आप से उपदिष्ट मंत्र मंत्रार्थ के ज्ञान से ये सब दोष एकदम दूर हो जाते हैं। इस पद्य की अवतारिका में उक्त प्रकार से अष्टाक्षर संसिद्ध आचार्यनिष्ठावान की संनिधि में व्याधि दुर्भिक्ष तस्करादि रूप लौकिक पीडाएं भी निवृत्त होगी ही।

(तिङ्गळ् मुम्मारिपेय्दु)। तिङ्गळ् शब्द का अर्थ, मास तो है ही। एवं दूसरा भी एक अर्थ है—सौम्य। मारि शब्द से वर्षा की तरह आचार्यमुख से वहनेवाली श्रीसूक्ति कही जाती है। यह तो जरूर सौम्य रहेगी। इस में तीन वर्षा कहने से तीन प्रकार की श्रीसूक्तियां सूचित की जातीं हैं। मंत्रोपदेश, मंत्रार्थोपदेश, और नानाप्रकार के शास्त्रार्थों का उपदेश; अथवा संस्कृत वेदांतार्थों का उपदेश, द्राविड-वेदांतार्थों का उपदेश और इतिहास पुराणादियों का उपदेश; इन प्रकारों से आचार्योपदेश त्रिविध होता है।

(ओङ्गु पेरुम् शेन्नेल्) शब्द से सस्यों की अभिवृद्धि की तरह लोगों की विद्याविनयादि संपत्ति की वृद्धि भी बतायी जाती है। तथा हि—धान में तीन भाग होते हैं, ऊपर का छिलका, मध्य में सारतम भाग चावल, और दोनों के बीच में छिलका का सूक्ष्म अंश, जो पानी से धोने पर निकाला जाता है। ये तीन पदार्थ स्थूलशरीर, जीवात्मा और सूक्ष्मशरीर के सूचक होते हैं। सारभूतवस्तु, एवं भगवान से भी अनुभव किये जानेवाला जीवात्मा तंडुल स्थानीय है। इसको छानेवाला आवरण स्थूलशरीर, छिलका है दोनों के बीच में रहनेवाला सूक्ष्मशरीर, जो विरजा नदी के पानी से धुला जाएगा, यह तो छिलका का सूक्ष्मभाग है। सस्यवृद्धि का वर्णन करने का तात्पर्य तो इतना ही है कि चावल हृष्टपुष्ट हो जाता है। अतः व्यंग्यार्थ में आत्मा की पुष्टि सूचित की जाती है। और शालि सस्य की यह एक विशेषता है कि जैसे जैसे धान पकता जाता है वैसे वैसे अन्नकी बाल अपना सिर नमाती है। इसका व्यंग्यार्थ यह है। कि जैसे मानव में सात्विकता व ज्ञान बढेगा, वैसे उसका सिर भी विनय के मारे नमेगा; अर्थात् उसका अहंकार मिट जाएगा। खेतियों में मत्स्यों के खेलने की जो बात की गयी है, उसमें मछली शब्द से एक क्षण के भी विच्छेद के विना निरंतर भगवान का संश्लेष करने उत्सुक सीताजी, लक्ष्मणजी इत्यादि के सदृश परमभक्त मुमुक्षु जन सूचित होते हैं। तथा हि—दंडकारण्य के लिए प्रस्थित श्रीराम रामानुज जानकी जब तमसा नदी के किनारे पहुंच गये, तब श्रीरामचन्द्रजी ने अपने भाई को अयोध्या लौटने की आज्ञा दी। तब लक्ष्मणजी ने प्रत्युत्तर दिया कि—"न च सीता त्वया हीना, नचाहमपि राघव। मुहूर्तमपि जीवावो जलान्मत्स्याविवोद्धृतौ ॥" इसका तात्पर्य यह है कि पानीसे ऊपर निकाले जाने पर जैसे मछली एक क्षण भर के लिए भी जीवित न रह सकेगा, वैसे सीताजी और मैं (लक्ष्मणजी) आपको छोडकर एक क्षण भर भी जिंदा न रह सकते हैं। अतः हम दोनों को आपका निरंतर अनुभव से कदापि, एक क्षणमात्र के लिए भी वंचित न होना चाहिए। इस पद्य को जाननेवाले के मन में मछली शब्द सुनते ही मछली के सदृश सीता लक्ष्मणों की याद आ जाना स्वाभाविक है। तथाच, मछलियों के खेलने से उक्तरीति से निरंतर भगवत्सेवा करने इच्छुक मुमुक्षु जनों का मनोरथ पूर्ण होने से, उनका सानंद विहरण सूचित किया जाता है।

आगे, कुवलयपुष्प में भ्रमरों के निद्रा करने की बात कही गयी है। यहाँ पर कुवलयपुष्प से महालक्ष्मीजी का कटाक्षवीक्षण सूचित किया जाता है। क्यों कि सामान्यतः काव्यों में स्त्रियों का नेत्र कुवलयपुष्प का समान बताया जाता है; और विशेषतः दिव्यप्रबन्धों में तत्रतत्र महालक्ष्मीजी को कुवलयनेत्रा कहने में आया है। भ्रमर शब्द से भगवच्चरणारविंद में (अथवा आचार्यपादारविंद में) स्यंदमान मधु का पान करने में व्यग्रमानस परमभक्ताग्रेसर सूचित किये जाते हैं। तथाच ऐसा अर्थ निकला कि परमभक्त जन पूर्ण लक्ष्मी कटाक्ष का लक्ष्य बनकर निर्भर और निर्भय होकर सोते हैं। कहने का यह अर्थ नहीं है कि तामसी लौकिक जन की तरह ये लोग सदा शय्यापर लेट रहे हैं। किंतु लक्ष्मीकटाक्ष का पात्र होकर अपने श्रेय के बारे में ये निश्चित रहते हैं। श्रीयामुनाचार्य स्वामीजी ने अनुगृहीत किया कि, "श्रेयो न

ह्यरविन्द लोचनमनःकान्ताप्रसादादृते संसृत्यक्षर वैष्णवाध्वसु नृणां संभाव्यते कर्हिचित्।" मूलगाथा में यह पाठभेद बताया गया कि पोरिवण्डु के स्थान में पोरुवण्डु, (यानी स्पर्धाशील भ्रमर)। भक्तों को स्पर्धाशील बताने का यह तात्पर्य है कि परमरसिक होने के कारण भगवद्गुणवर्णन करने में, अथवा भगवान और आचार्य इनके तारतम्य का वर्णन करने में ये परमभक्त बहुत वादविवाद करते रहते हैं। तथा हि एकैक भक्त भगवान के एकैक गुण को दूसरों से श्रेष्ठ बताता है, जिससे वादविवाद बढेगा। एवं एक जन भगवान की महिमा का सुंदर वर्णन करता, दूसरा लक्ष्मी वैभव को उससे भी बढ़कर प्रशंसा करता, और तीसरा आचार्य वैभव को ही उक्त दोनों से श्रेष्ठ बताता; इस तरह से भी स्पर्धा होती है।

(तेङ्गादे पुक्किरुन्दु) इत्यादि। यहां गोशब्द से आचार्य सूचित किया जाता है। यह तो प्रसिद्ध है कि गायों के शरीर में चौदह लोक भी रहते हैं। आचार्य मै चौदह विद्या भरी है। एवं गाय घर के एक निकृष्ट स्थान (गोशाला) में रहती है। आचार्य भी, "त्वद्भृत्यभृत्य परिचारक भृत्यभृत्यभृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ" इत्याद्युक्त-प्रकार से लौकिक दृष्टि से निकृष्ट, शेषत्व की सीमाभूमिपर रहते हैं। गाय दूध देती है; आचार्य भी क्षीर के समान परमभोग्य व पोषक ज्ञानामृत देते हैं। चार स्तनों द्वारा गाय का दूध निकलता है। आचार्य भी चार निमित्तों से उपदेश देते हैं। (१) शिष्यों के उद्धार को भगवदाज्ञासिद्ध अपना पवित्र कर्तव्य मानकर उपदेश करना, (२) शिष्य की सविनय प्रार्थना का परवश हो कर उपदेश करना, (३) अज्ञानांधकार में निमग्न लोगों की दुर्गति देखकर विना प्रार्थना भी उपदेश करना, और (४) उपदेश दिये विना रहने असमर्थ अपने मन की शांति के लिए उपदेश करना। अतः पुष्टस्तनवाली गाय कहने से उक्त सुदृढ चार कारणों से ज्ञानामृत का उपदेश करनेवाले आचार्य सूचित किये जाते हैं। ऐसी गायों से दूध निकालने के लिए गोशाला में सधैर्य प्रवेश करना कहने से, आचार्य कुल में प्रवेशकर अनेक काल तक गुरु शुश्रूषा करते हुवे शांति से उपदेश की प्रतीक्षा करने आवश्यक शिष्य का धैर्य बताया जाता है। इतने धैर्य के विना काई भी सेवा से गुरु को प्रसन्न कर आप से उपदेश पा नहीं सकता है।

(शीर्त्तमुले पत्तिवाङ्ग) इत्यादि। स्तन खेंचने मात्र से कुंभों को दूध से भर देती हैं, कहने का यह तात्पर्य है कि शिष्य से अत्यल्प प्रश्न किये जाने पर, आचार्य अपनी कृपा से अनेक अर्थों का उपदेश कर देते हैं। जैसा कि भगवद्गीता के प्रारंभ में "यच्छ्रेयस्स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे" इत्यादि से अर्जुन ने एक प्रश्न किया। इस का प्रत्युत्तर कहते हुवे भगवान ने भी, "भूय एव महाबाहो शृणु", "परं भूयः प्रवक्ष्यामि," "हन्त! ते कथयिष्यामि" इत्यादि से अनेक प्रकार के अर्थों का उपदेश दिया। एवं संक्षेपरामायण में बताया गया है कि वाल्मीकि महर्षि ने श्रीनारदजी से चारेक पद्यों से एक छोटा सा प्रश्न किया, जिसके प्रत्युत्तर में नारदभगवान ने समग्र रामायण कथा का ही उपदेश दिया। एवं मैत्रेयजी से अल्प पूछा जाकर श्रीपराशरमहर्षि ने सारे विष्णुपुराण का उपदेश दिया। इस तरह से, दूध से पात्रों को भर देनेवाली गाय की तरह, आचार्य भी अपने कृपा पात्र सच्छिष्यों को अत्यधिक ज्ञान के उपदेश से भर देते हैं; अर्थात उनको भी अपने सरीक ज्ञानपूर्ण बना देते हैं। तथा च वाक्यार्थ हुआ कि महाचार्यों के सेवन से ऐसी अनेकविध संपत्ति मिल जाती हैं॥ ३

(गाथा.) आऴि मऴैक्कण्णा ओन्रु नी कैकरवेल् * आऴियुळ् पुक्कु मुहन्दु कोडार्त्तेरि *
ऊऴि मुदल्वनुरुवम्पोल् मेय् करुत्तु * पाऴियन्तोळुडै पद्मनाभन् कैयिल् *
आऴिपोल् मिन्नि वलम्पुरिपोल् निन्नदिर्न्दु * ताळादे शार्ङ्गमुदैत्त शरमऴैपोल् *
वाऴ उलहिनिल् पेय्दिडाय् * नाङ्गळुम् मार्हऴि नीराडमहिऴ्न्देलोरेम्बावाय् ॥ ४ ॥

आऴि मऴै कण्णा !	हे गंभीर ! वर्षा का निर्वाहक पर्जन्य देव !
नी ओन्नुम् कैकरवेल्	तुम अपने औदार्य को संकुचित मत किया करो ;
(तुमारे से अब कर्तव्य काम यह है कि)	
आऴि उळ् पुक्कु मुहन्दु कोडु आर्त्तु एरि	समुद्र के अंदर प्रवेश कर खूब जल लेकर, गर्जन करते हुवे ऊपर (आकाश में) चढकर,
ऊऴि मुदल्वन् उरुवम् पोल् मेय् करुत्तु	काल इत्यादि समस्त पदार्थों के कारणभूत भगवान के विग्रह का समान नीलवर्ण पाकर,
पाऴि अम् तोळुडै पद्मनाभन् कैयिल्	विशाल एवं सुंदर भुजवाले पद्मनाभ भगवान के हाथ में (विराजमान)
आऴिपोल् मिन्नि	चक्रायुध की भांति चमक कर
वलम्बुरि पोल् निन्नु अदिर्न्दु	दक्षिणावर्त शंख की तरह बडी अवाज निकाल कर
शार्ङ्गम् उदैत्त शरमऴैपोल्	शार्ङ्ग धनुष से निकलने वाली शरधारा की तरह
उलहिनिल् वाऴ	संसार में सब लोग प्रसन्न हो जावें इस लिए,
नाङ्गळुम् महिऴ्न्दु मार्हऴि नीराड ताळादे पेय्दिडाय् एलोरेम्बावाय्	और हम प्रसन्न होकर मार्गशीर्ष स्नान करें, इस लिए विलंब विना वरसो॥

इस पद्य से गोपियां पर्जन्यदेव को आज्ञा देती हैं कि, "हे देव! तुम सागर में डूबकर बहुत पानी भरकर श्रीमन्नारायण के दिव्यमंगलविग्रह की तरह श्याम बनकर उनके पांचजन्यशंख की तरह अवाज करते हुवे, उनके सुदर्शन चक्रकी तरह चमकते हुवे, उनके शार्ङ्गचाप से निकलनेवाली बाणवर्षा की तरह पानी वरसाते हुवे, समस्त जगत को उज्जीवित करते हुवे हमारे व्रत को भी परिपूर्ण किया करो।" भगवान की दिव्यमहिषी होने से मनुष्य रूप में रहती हुयी भी, ये गोपियां पर्जन्य देव पर भी अपनी आज्ञा चला सकती हैं। भगवान के सर्वनियामक होने पर आपकी दिव्यमहिषियां भी ऐसी होती ही हैं। एवं भगवान की विशेषकृपा का पात्र होने से भगवद्भक्तलोग भी सब को आज्ञा कर सकते हैं। अत एव मांगल्यविवृद्धि स्तोत्र में कहा गया कि, "द्रवन्ति दैत्याः प्रणमन्ति देवताः" इत्यादि। (यानी भगवान का नामसंकीर्तन करते ही उसको सुनकर दैत्य पलायन करते हैं; देवता प्रणाम करते हैं; राक्षस नष्ट होते हैं; और दूसरे शत्रु भी निकल जाते हैं।) अतः यों समझना चाहिए कि मार्गशीर्षव्रत करने के लिए एकत्रित, परम भागवतोत्तम इन गोपियों के दर्शन कर, पर्जन्यदेव ने इनकी सेवा कर धन्य बनाने की इच्छा से स्वयं इनके सामने आकर इनसे योग्य सेवा मांगी। जैसे समुद्रलंघन करते हुवे हनुमान जी की सेवा करने के लिए समुद्रराजा, एवं

उसकी प्रेरणा से मैनाक पर्वत सन्नद्ध हो गये। अतः गोपियां भी उससे सेवा करने के प्रकार की सूचना देती हैं।

(आळिमळै क्कण्णा) यह तो पर्जन्य देव का स्तुति रूप संबोधन है। भगवान् की विशेष कृपा से बहुत देवता लोकपालक बन गये तो सही। परंतु उनमें सूर्य, अग्नि, यम इत्यादि दूसरे देव लोगों को संताप देनेवाले हो गये। परंतु तुम एक ही जनता का ताप हरण कर सकते हो। तुम्हारा अच्छा स्वभाव देखकर भगवानने तुमको ऐसा मंगलदायक अधिकार दिया। इस संबोधन से प्रसन्नचित्त मेघराज ने गोपियों के सामने हाजिर होकर हाथ जोडकर विनंती की कि, "योग्य सेवा बताइए।" यह सुनकर गोपियां भी फिर उसके औदार्य की प्रशंसा करती हुयीं उससे कर्तव्य काम बताती हैं। औदार्य नामक गुण एक पर्जन्यदेव में ही पूर्णतया दीख पडता है; कारण कि वह, प्रतिफलकी चिंता न करते हुवे संसार भर में सर्वत्र बरसाता है। अतः हाल में भी इस औदार्य का संकोच मत किया करो। अर्थात् पुण्यवान् महा पुरुषों से अधिष्ठित किसी एक प्रदेश में बरसाना, और पापियों का वासस्थल दूसरे किसी देश में न बरसाना, इस तरह से पक्षताप न करना। परंतु सर्वत्र समरूप से बरसना चाहिए। भगवान में व्यामोहित होकर सदा आपके दर्शन करने ही उत्कंठित गोपियों को दूसरे किसी पथार्थ को अथवा देव को देखने पर भगवान का ही स्मरण आता है। खूब पानी से भरे हुवे मेघ के दर्शन से मेघश्याम भगवान की याद आती है। मेघ की आवाज तो संतापहर पांचजन्यध्वनी की याद दिलाती है। बिजली का प्रकाश चक्रायुध का स्मारक होता है। अंततः वर्षधारा भी शार्ङ्गचापसे निकलनेवाली बाणवर्षा का स्मरण कराती है; इतना विशेष है कि बाणधारा सबको नष्ट कर देती है, वर्षधारा तो संजीवित करती है। इस विशेष का सूचक शब्द है (वाळ)। मालुम पडता है कि इस व्रतोपक्रम समय में व्रज में पानी का इतना अभाव था कि स्नान करना भी अशक्य बन गया था; अतः यों कहा जाता है कि हमें सानंद स्नान करने पर्याप्त स्वच्छ जल मिल जाय, ऐसे बरसो।

व्यंग्यार्थ का विवरण—इस पद्य में भक्तोज्जीवनतत्पर, विद्वान, परमभक्त महात्मा लोग मेघ के नाम से संबोधित किये जा रहे हैं। ऐसे महात्माओं का मेघसे सादृश्य अनेक प्रकारों से रहता है। तथा हि—

(१) मेघ जैसे खारे सागरजल को स्वयं पीकर, बरसात के रूप में मीठा पानी देता है; इस तरह से आचार्य भी शास्त्रों में अतिकठिन अर्थों का स्वयं अभ्यास कर उनका अतिसरल व अतिमनोहर रीति से शिष्यों को उपदेश करते हैं।

(२) मेघ, स्वयं नाना देशों में जाकर बरसता है; इसी तरह से आचार्य भी क्षेत्रतीर्थादि यात्रा करने के बहाने से स्वयं तत्र तत्र जाकर उपदेश करते हैं।

(३) मेघ पानी से गहरे गड्ढों को भी भर देता है; इसी प्रकार से आचार्य भी सदुपदेश के वर्षण से नीचों को भी ज्ञान से भर देते हैं।

(४) मेघ बारहों मास नहीं बरसेगा; परंतु किसी किसी समय पर ही; एवं आचार्य भी कभी कभी ही उपदेश देते हैं; नतु हरवक्त।

(५) मेघ, अगर अपने विहित काल में न बरसें, तो देश में नानाप्रकार की पीडाएं होती है; एवं उचित काल में अगर आचार्य उपदेश न करें, तो देहात्मभ्रम, स्वतंत्रात्मभ्रम, अन्यशेषत्वभ्रम, स्वयं अपनी रक्षा करने का प्रयत्न करना, वास्तव में अबांधवों को बंधु मानना, विषय में प्रवण होना इत्यादि नानाप्रकार की पीडाएं उत्पन्न होती है।

(६) मेघ बहुत वरसने पर भी तृप्त न होता हैं, नवा प्रत्युपकार की अपेक्षा करता है; इसी तरह से आचार्य भी सदुपदेशों का खूब वर्षण करते हुवे कभी तृप्त न होते हैं, नवा किसी प्रकार का प्रत्युपकार चाहते हैं; परंतु उपदेश करने योग्य समय की प्रतीक्षा करते हुवे उपदेश करने उत्सुक ही रहते हैं।

(७) मेघ, कदाचित् कितने बिंदुमात्र वरसता है, और कभी कभी बडी भारी वर्षा वरसता है; इसी प्रकार से आचार्य भी एक समय में मंत्रोपदेश करते हुए गिने हुवे (अष्टाक्षरी, पंचविंशत्यक्षरी, यानी द्वयमंत्र इत्यादि) कतिपय अक्षरमात्रों का उपदेश देते हैं, और कदाचित् श्रुति स्मृति इतिहास, पुराण, उभयवेदांत, रहस्यग्रंथ आदियों के सारार्थ रत्नामृतों का उपदेश देते हुए लंबा लंबा प्रवचन करते हैं, जिसको सुननेवालों के मुख से यह उद्गार निकलता है कि, "वाह ! यह कैसी महावृष्टि है !"

(८) मेघ से छोडा हुआ पानी कदाचित् तपा हुआ लोहपिंड आदियों पर पडकर एकदम नष्ट हो जाता है, और समुद्र में शुक्ति आदियों पर पडकर मोती बन जाता है; इसी तरह से आचार्य से उपदिष्ट अर्थ भी कदाचित् शिष्य का अनवधान, विसरण आदि से नष्ट सा हो जाता है, और मेधावी शिष्यों को पाकर बहुत पुष्ट होता है और श्रीवचनभूषण आदि रूपों का धारण कर सबसे सादर धारण किये जाने लायक बनता है।

(९) मेघ का जल नदी, तालाव, कुंआ आदि में प्रवेश कर सब के उपयोग का लायक बनता है, और दूसरी जगह पर पडकर असेव्य बनता है; इस प्रकार से आचार्य से सत्पात्र में उपदिष्ट अर्थ आचार्य शिष्य परम्परा से समस्त आस्तिकों से ग्रहण किया जा सकता है, और अनधिकारियों को प्राप्त हुआ उपदेश बेकार बन जाता है।

(१०) नाना प्रकार के सस्य हमेशा वर्षा की प्रतीक्षा में रहते हैं और उसको पाते ही ठीक आनंदित होते हैं, परंतु आकडा इत्यादि और कोई कोई पेड तो वर्षा पाते ही नष्ट हो जाते है; इसी तरह से आचार्य से उपदिष्ट सदर्थ अनन्यगति सात्विक जनों से हमेशा प्रतीक्षित रहता है और उनका विशेष लाभ कारक होता है; नास्तिक आदि दुर्मतवाले तो इसी उपदेश से एकदम नष्ट हो जाते हैं।

इस विषय में यह एक प्राचीन पद्य ध्यान देने लायक है—

लक्ष्मीनाथाख्यसिन्धौ शठरिपुजलदः प्राप्य कारुण्यनीरं
नाथाद्रावस्यषिञ्चत्तदनु रघुवराम्भोजचक्षुर्झराभ्याम् ।
गत्वा तां यामुनाख्यां सरितमथ यतीन्द्राख्यपद्माकरेन्द्रं
संपूर्य प्राणिसस्ये प्रवहति सततं देशिकेन्द्रप्रमौघैः ॥

इसका यह तात्पर्य है—श्रीशठकोप स्वामी नामक मेघ ने लक्ष्मीनाथ भगवान रूपी समुद्र में डूबकर कृपारूपी पानी पाकर, उसको श्रीमन्नाथमुनिनामक महापर्वत पर वरसा। वहां से दो प्रवाह निकले—श्रीराममिश्र स्वामी और श्रीपुंडरीकाक्ष स्वामी नाम से; जो श्रीयामुनाचार्य नामक महानदी में मिल गये। यह नदी श्रीरामानुजनामक अतिविशाल एवं अगाध तालाव में प्रविष्ट हुई। इसमें चौहत्तर (पीठाधिपति रूपी) पानी छोडने के द्वार रहते हैं, जिन से निकलकर पूर्वोक्त भगवत्कृपारूपी पानी संसार के समस्त प्राणिरूप सस्यों को प्राप्तकर रहा है। अतः यह अर्थ ठीक स्थापित किया गया कि आचार्य को मेघ कहना अत्यंत उचित है।

अतः इस पद्य में (आळिमळै क्कण्णा) शब्द से सदर्थों का वर्षण करनेवाले महाप्राज्ञ आचार्य ही संबोधित किये जा रहे हैं। (ओन्नु नी कै करवेल्) —अपने औदार्य का संकोच मत करो कहने का यह तात्पर्य है कि उपदेश करने में, हे गुरुजी! आप जरा भी संकोच न करिए। अर्थात् "इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन। नचाशुश्रूषवे वाच्यं नच मां योऽभ्यसूयति॥" इत्याद्युक्तप्रकार से शिष्य की ठीक परीक्षा कर उसमें उत्तीर्ण सच्छिष्यों को ही उपदेश देना, दूसरों को न देना, इत्यादि प्रकारों से उपदेश में संकोच न कीजिए, परंतु श्रीरामानुजाचार्य स्वामीजी की तरह चाहनेवाले सब को विना संकोच उपदेश देने की कृपा करिए। वगर संकोच उपदेश का यह भी अर्थ हो सकता है, कि आचार्यों का उपदेश अज्ञ मानव मात्र का उपकारक नहीं होता है; परंतु सर्वज्ञ, सर्वशक्त भगवान का भी उपकारक बनता है। अर्थात् जब नास्तिक आदि लोग भगवान का ही अथवा उनके कल्याणगुणों का इनकार करते हैं, तब सदाचार्यों के प्रवचन से उन दुर्वादियों का वाद शांत होता है और भगवान की सत्ता एवं कल्याण-गुणपरिपूर्णता स्थापित हो जाती है। अतः यहां पर ऐसे महान आचार्य से यों प्रार्थना की जाती है कि, "हे गुरुजी! भगवानतक पहोंचनेवाले अपने औदार्य से, यानी उक्त औदार्य का संकोच न करते हुए ऐसा उपदेश दीजिए जिससे नास्तिक आदि दुर्मतवाले सब एकदम नष्ट हो जाय, और भगवान का वैभव सर्वत्र प्रचलित हो।

(आळियुळ्पुक्कु)—महासमुद्र में गाढ डूबकर कहने से "श्रुतिसागर", "द्राविडवेदसागर" आदि कहलानेवाले वेदों में खुब प्रवेशकर उनका ठीक ठीक अध्ययन करने की प्रार्थना की जाती है। अर्थात् आचार्यों का यह कर्तव्य होगा कि शास्त्रों का ठीक अभ्यास करना; नतु ऊपर के अल्प ज्ञान से तृप्त होना।

(मुहन्दु कोडु) पानी भरकर कहने से उन शास्त्रों में चेतनों को उद्धार पाने आवश्यक एवं पर्याप्त जितने अर्थ कहे गये होंगे उन सबका ग्रहण सूचित किया जाता है।

(आर्तु एरि) गर्जन पूर्वक ऊपर चढना कहने से आचार्यों का ऊँचे आसन पर विराजना और पूर्वोक्त रीति से दुर्वादियों को डराते हुवे गंभीरध्वनि से प्रवचन करना सूचित किया जाता है। (ऊऴि मुदल्वन्) इत्यादि। ऊऴि शब्द का अर्थ है काल, और मुदल्वन् का अर्थ है कारण। तथा च भगवान कालका कारण बताया गया। परंतु भगवान केवल काल का ही कारण नहीं है, अपितु सृज्यमान समस्त पदार्थों का ही कारण है। अतः कालशब्द का, "काल इत्यादि समस्त पदार्थ" ऐसा अर्थ लेना चाहिए; अर्थात, सकलजगत्कारण भगवान के रूपका सदृश रूपका धारण प्रार्थित किया जा रहा है। आचार्य का रूप सफेद, लाल इत्यादि चाहे जैसे रंग का होगा; परंतु हृदय में नित्यनिवास करनेवाले भगवान के दिव्यमंगल विग्रह का श्यामवर्ण उनके शरीरपर व्याप्त होकर, उसको भी श्याम ही दिखाता है। और भगवान को यहां पर जगत्कारण पुकारने में बडा औचित्य है। तथा हि—शास्त्र में सृष्टिकाल में भगवान बडे दयालु बताये जाते हैं; अर्थात् प्रलय काल में अपने शरीर व इंद्रियों को खोकर अचित की तरह निश्चेष्ट पडे रहनेवाले चेतनों की दुरवस्था देखकर बडी दया से प्रेरित हो कर सर्वेश्वर, उनको, भोग व मोक्ष कमाने साधनतया शरीर व इंद्रियों को देने के लिए ही पुनः सृष्टिकार्य में लगते हैं। अतः यह काम बडी कृपा का द्योतक है। अतः ऐसी सीमातीत कृपावान सर्वेश्वर का रूप धारण करने की आचार्य से जो प्रार्थना की जाती है, उसका यह तात्पर्य है कि, हे गुरुजी! सृष्टिकर्ता भगवान की तरह आप भी अत्यधिक कृपावान बन जाइए।

(पद्मनाबन् कैयिल् आऴिपोल् मिन्नि) इत्यादि। इस से आचार्य को चक्र व शंख के सदृश कहने में आता है। चक्रराज, भगवान की आज्ञा से बहुत दूरतक चलकर दुष्टों का दमन करते हैं। श्रीभागवत की यह कथा प्रसिद्ध है कि एक समय में एक क्षुद्र देवता का निरसन करने के लिए द्वारका से प्रस्थित हो कर चक्रराज ने काशीनगर तक पधार कर उस देवता के साथ सारी काशी को ही भस्म कर दिया। श्री विष्णुधर्म की कथा है कि चक्रराज कभी कभी रसातल पधारकर, वहां के दुष्टों का, एवं दुष्टस्त्रियों के गर्भ का विनाश कर देते है। इसी तरह से आचार्य भी तत्र तत्र फिरकर दुष्टमतवालों का निरास करते हैं। आचार्यों की दिग्विजययात्रा का यही लक्ष्य है। एवं श्रीपांचजन्य शंख की महिमा भी कुछ ऐसी ही है। भगवद्गीता के पहले अध्याय में बताया गया है कि भारतयुद्ध के प्रारंभ में भगवान से बजाये गये हुवे पांचजन्य की अवाज सुनने मात्र से कौरवों का हृदय भयके मारे फट गया—"स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।" आचार्यों की वाणी भी प्रमाण व उपपत्तियों से पूर्ण रहने से दुर्वादियों के हृदय फोड डालती है। यह अर्थ तो बताया ही गया।

(ताळादे शार्ङ्गमुदैत्त शरमळैपोल्) इत्यादि। शार्ङ्ग नामक भगवान के धनुष से प्रवाह के रूप में निकलनेवाली बाणपरंपरा शत्रुओं को निश्शेष कर देती है। आचार्यों के श्रीमुख से बहुशः निकलनेवाली

वाग्झरी दुर्वादियों को परास्त कर देती है। अथवा, "प्रणवो धनुः" इत्याद्युपमिषत के अनुसार यहां पर प्रणव (ओंकार) ही शार्ंग शब्द से सूचित किया जाता है। यह प्रणव तो एक मामूली शब्द मात्र नहीं है, परंतु सब वेदों का मूल है। "प्रणवाद्यास्तथा वेदाः प्रणवे पर्यवस्थिताः" "ओंकारप्रभवा वेदाः" इत्यादि इस विषय में प्रमाण हैं। तथा च संसारदुःख से संतप्त समस्त आत्माओं के उज्जीवन हेतु समस्त सदर्थ प्रणव में सूक्ष्म रूप में रहते हैं; उनको विशद करना आचार्य का कर्तव्य है। अतः यहां पर आचार्य से प्रणव के अर्थों का विशदीकरण होने की प्रार्थना की जाती है। (ताळादे) यानी शीघ्र, कहने का यह तात्पर्य है कि हमेशा सांसारिक विषयभोग में ही निमग्न मानव को, आचार्य संनिधि में जाकर आप से सदर्थों का श्रवण करने की इच्छा बहुत कम होती है; अगर कभी बडे भाग्य से ऐसी इच्छा हुई भी, तो दूसरे क्षण में उसको शांत हो जानेका भय रहता है। अतः जिस क्षण में दैवयोग से यह आशा हुई, उसी क्षण में सदर्थों को सुन लेना चाहिए, विलंब न करना। एवं आयु का भी कोई ठिकाणा नहीं रहता है; अर्थात् इस बात को कोई भी नहीं जान सकता है कि मृत्यु कब आएगी। अतः आचार्य से ज्ञानको प्राप्त करने में बिलकुल विलंब न करना चाहिए।

(वाळ) अथवा सब के उज्जीवन के लिए कहने से यह अर्थ सूचित किया जाता है कि शार्ंगधनुष से निकलनेवाली बाणपरंपरा का लक्ष्य तो मारना ही है; परंतु आचार्य मुखारविंद से निकलनेवाली वाणी का लक्ष्य सब को उज्जीवित करना होगी। परंतु दुर्दैव की बात है कि उससे दुर्मतवालों का विनाश होता है। यह तो आचार्य का दोष नहीं है। जैसे सब के उपयोगार्थ लगाये हुवे प्रदीप में पतंग स्वयं पडकर मर जाते हैं, इसमें प्रदीप का दोष नहीं होगा, इसी तरह से सब के हित के लिए निकलनेवाली आचार्य-वाणी में कोई कोई भाग्यहीन भी नष्ट हो गये तो इस विषय में आचार्य का अथवा आपकी वाणी का दोष कौनसा होगा?

(नाङ्गळुम् मार्हळि नीराड) इत्यादि अंतिम वाक्य में मार्गशिरव्रत शब्द का अर्थ पूर्वोक्त प्रकार से चरमोपायभूत आचार्यनिष्ठा ही है। तथा च यह प्रार्थना की जाती है कि, "हे गुरूजी! उक्त प्रकार की आपकी उपदेश वाणी सुनने से हम भी आचार्यनिष्ठारूप श्रेष्ठ उपाय का अवलंबन करने समर्थ बन जाएंगे। अर्थात् आप परमकृपा से ऐसा उपदेश कीजिए॥ .... (४)

(गाथा.) मायनै मन्नु वड मधुरै मैन्दनै * तूय पेरुनीर्यमुनै त्तुरैवनै *
आयर् कुलत्तिनिल् तोन्नुमणि विळक्कै * तायै क्कुडल् विळक्कम् शेय्द दामोदरनै *
तूयोमाय् वन्दु नाम् तूमलर्तूवि त्तोळुदु * वायिनालपाडि मनत्तिनाल् शिन्दिक्क *
पोय पिळैयुम् पुहुतरुवान्निन्नवुम् * तीयिनिल् तूशाहुम् शेप्पेलोरेम्बावाय्॥ ५॥

मायनै	अत्याश्चर्यमय,
मन्नु वडमधुरै मैन्दनै	निरंतर भगवत्संबंधवाली उत्तर मधुरापुरी के स्वामी,
तूय पेरुनीर् यमुनै तुरवनै	परमपवित्र महाजलप्रवाह संपन्न यमुनातट विहारी,
आयर् कुलत्तिनिल् तोन्नुम् अणि विळक्कै	गोपकुल में समुत्पन्न मंगलदीप के सदृश,
तायै कुडल् विळक्कम् शेय्द दामोदरनै	एवं माता की पेट प्रकाशित करनेवाले दामोदर (श्रीकृष्ण) को,
नाम् तूयोमाय् वन्दु	हम परिशुद्ध हो कर, उनका समीप पहुंचकर
तू मलर् तूवि तोळुदु	श्रेष्ठ पुष्पों का अर्पण कर, प्रणाम कर,
वायिनाल् पाडि	मुख से आपकी स्तुति कर
मनत्तिनाल् शिन्दिक्क	मन से अगर चिंतन करेंगी तो
पोय पिळैयुम्	अतीतकाल के समस्त पाप, एवं
पुहुदरुवानिन्नवुम्	आगे किये जानेवाले सभी पाप
तीयिनिल् तूशाहुम्	आग में डाला गया हुवा कपास जैसे भस्म हो जाएंगे;
शेप्पु एलोरेम्बावाय्	(अतः भगवान के शुभ-नामों का) कीर्तन करो॥

व्रत करने संमिलित गोपियों में कोई कोई लोग इतिहासपुराण नीतिशास्त्र आदियों में परिचित भी थीं। उनमें से किसीने यह शंका की कि, “यह तो ठीक है; मगर अब तो हम परम श्रेयस्कर पवित्र व्रत करने उद्युक्त हैं। कहावत है कि श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति (अर्थात् श्रेयोदायक कर्म में विघ्न बहुत होते हैं।)। फिर न जाने, अपने प्रारब्ध कर्म के बल से हमारे से संकल्पित इस शुभ काम में भी कौनसा विघ्न आ जाएगा। अतः उन विघ्नों को दूर करने समर्थ दूसरा कुछ उपायानुष्ठान कर, पीछे व्रत में उतरना चाहिए।” इस शंका का समाधान प्रकृत गाथा से किया जाता है। समाधान का प्रकार यह है—यह बात सत्य है कि किसी शुभ काम करने से पहिले उसमें संभावित विघ्नों को दूर करने के लिए विष्वक्सेनपूजा आदि करना शास्त्रविहित है। परंतु विघ्ननिवारक उस विष्वक्सेनपूजा में ही अगर विघ्न आ जावें, तो उसके निवारण के लिए क्या दूसरी कोई पूजा की जाती है? नहि, नहि। विष्वक्सेन पूजा का ही यह माहात्म्य है कि वह आगे किये जानेवाले कर्म में संभावित विघ्नों की तरह अपने अनुष्ठान पूर्ति में भी सम्भावित विघ्नों को स्वयं विनाश करने समर्थ होता है। इसी तरह से हाल में भी भगवान की अनन्य सेवा प्राप्त करने इच्छुक हमारे व्रतानुष्ठान में अगर कोई विघ्न आनेवाला हो, तो वह स्वयं इस अनुष्ठान की महिमा से ही नष्ट हो जाएगा; उसके लिए दूसरा अनुष्ठान करने की आवश्यकता नहीं रहती है। तथाच, अत्याश्चर्यमयगुणचेष्टितवाले, मथुरापुरी में अवतीर्ण, यमुनाविहाररसिक, गोपकुल के अलंकार भूत, माताजी के यशोवर्धक, भगवान दामोदर श्री कृष्ण का, तन मन वाणी से शुद्ध होकर श्रेष्ठ पुष्पों से अर्चन कर, प्रणाम पूर्वक आपका नामसंकीर्तन करने से हमारे श्रेय में बाधा डालनेवाले समस्त पाप एक दम विनष्ट हो जाते हैं।

यह तो वेदांत शास्त्र से उपदिष्ट अर्थ है; कि ब्रह्मवेत्ता के सब पातक ब्रह्मविद्या के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं। यद्यपि शास्त्रों का उद्गार है कि "नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटि शतैरपि" (अर्थात्, हमारे अनुष्ठित पुण्यपाप रूप कर्म उनके फल सुख दुःखों का अनुभव दिये बिना न रहते हैं; अर्थात् किये हुवे कर्म का फल अवश्य भोक्तव्य है।" "अवश्यमनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।" परंतु यह भी बात शास्त्र में कही गयी है कि प्रायश्चित्त करने से पाप मिट जाएगा; इसी तरह से शास्त्रप्रमाण से यह भी अर्थ जाना जाता है कि ब्रह्मज्ञानी के सभी कर्म उस ज्ञान के बल से ही नष्ट हो जाते हैं। "ज्ञानाग्निस्सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते" यह प्रसिद्ध गीतावचन है। ज्ञानी की बात अनन्य भक्तों को भी लागू होती ही है। ये पाप भी दो प्रकार के होते है (वेदांतियों की परिभाषा में पुण्य भी, मोक्षविरोधी होने के कारण, पाप ही कहलाता है)—पूर्वाघ एवं उत्तराघ। पाप का दूसरा नाम है अघ। पूर्व शब्द का अर्थ है ज्ञान उत्पन्न होने से पहिले और उत्तर शब्द का अर्थ है ज्ञानी बनने के बाद। तथा च, ब्रह्मज्ञान मिलने के पहिले, अनादिकाल से इस चेतन से जितने कर्म कमाये हुवे होंगे, ये सब पूर्वाघ कहलाते हैं। ज्ञानी बनने के बाद तो कोई भी इच्छापूर्वक पाप न करेगा; अगर करेगा, तो कहना पडता है कि वह सच्चा ज्ञानी ही नहीं है। तो भी रजस्तमोमय पांचभौतिक शरीर का संबंध जबतक बना रहता है, तबतक प्रामादिक, अगतिक इत्यादि कहलानेवाले कोई कोई काम ज्ञानि से भी किये जायंगे ही। ये सब उत्तराघ शब्द का अर्थ है। एवं च ब्रह्मज्ञान के प्रभाव से, पहिले के समस्त विध पाप और बाद के प्रामादिक इत्यादि पाप, ये सभी अग्नि में प्रक्षिप्त तृण के समान जल जाते हैं, और वह ज्ञानी एकदम परिशुद्ध होकर भगवान को प्राप्त कर देगा। "तदधिगम उत्तर पूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात्" इस ब्रह्मसूत्र में यह अर्थ बताया गया है और श्री भाष्य में इसका विस्तृत विवेचन किया गया है। यही अर्थ इस गाथा में उपवर्णित है।

पूर्वार्ध में श्रीकृष्ण भगवान का बडा सुंदर वर्णन किया गया है। श्री वैकुंठ के अधिपति, लक्ष्मीपति, अत एव अवाप्तसमस्तकाम यानी परिपूर्ण ऐश्वर्यवाले होते हुवे भी भगवान अज्ञ गोपजनों से भरे हुवे व्रज में श्रीकृष्ण के रूप से अवतीर्ण हो कर, सर्व सुलभ बन कर, मक्खन चोरी इत्यादि अत्यद्भुत दिव्य चेष्टितों को दिखाते हुवे जो विराजे, यह अद्भुत वृत्तांत बताया जाता है (मायनै) इस विशेषण से। भगवान के स्वरूप, दिव्यमंगलविग्रह, गुण, चेष्टा आदि सभी आश्चर्यमय होते हैं। विशेषतः श्री कृष्णावतार आश्चर्यपूर्ण है। शंखचक्रधारी हो कर ही अवतार करना, माता की प्रार्थना से उस रूप का उपसंहार करना इत्यादि अवतार क्रम ही आश्चर्यमय है। मक्खन की चोरी करना, उस अपराध में माता से पकडा जाना, रस्सी से बांधा जाना इत्यादि चेष्टितों का आश्चर्य तो कहने की ही बात नहीं है।

(मन्नु वडमदुरै मैन्दनै) विशेषण से श्रीकृष्णावतार स्थल मथुरानगरी का, निरंतर भगवत्संबन्धशालित्वरूप एक महान वैभव बताया जाता है। न केवल कृष्णावतार समय में, किंतु थेट से यह नगरी भगवान से संबन्धित रहा करती है। तथा हि—प्रथा है कि वामन भगवान का सिद्धाश्रम यही नगरी है। त्रेतायुग

में लवणासुर का संहार कर शत्रुघ्न भगवान इसी नगरी में निवास करते थे। हाल में कृष्ण भगवान ने यहां पर अवतार लिया। इस तरह से मथुरापुरी का वैभव वाचामगोचर है।

(तूयपेरुनीर्) इत्यादि से यमुनाजी का प्रभाव कहा जाता है। परमपदनाथ, विरजानदी के तटपर विराजते हैं; परंतु किसी उपनिषद में अथवा इतिहासपुराण आदि दूसरे किसी ग्रंथ में यह बात नहीं कही गयी है कि वैकुण्ठनाथ भगवान विरजानदी में स्नान आदि करते हैं। श्रीरामावतार तो सरयूतट में हुआ। तो भी किसी ग्रंथ में यह अर्थ नहीं बताया गया कि श्रीरामचंद्रजी ने सरयू में जलक्रीडा की। परंतु यमुनाजी की बात ऐसी नहीं है। श्रीकृष्ण भगवान की बहुत सी लीलाएं खास यमुनाजल में अथवा उसके तटपर ही बनीं। अत एव आपका एक शुभनाम हुआ, यमुनाविहारी। इस कारण से यमुनातीर्थ परमपवित्र बताया गया है। यमुनाजी का दूसरा भी एक माहात्म्य है कि श्रीकृष्णकिशोर को व्रज पहुंचाने के उद्देश्य से मथुरा से प्रस्थित वसुदेवजी को, इस नदी ने अपने पानी को सूखाकर रास्ता दे दिया। दुष्ट कंसके महल के पास ही बहनेवाली उसके मन में रत्तीभर भी यह भय उत्पन्न न हुआ कि, उस तरह से श्रीकृष्ण को रास्ता देने से कहीं कंस नाराज हो जाएगा। इतना था उसका भगवद्विषयक प्रेम! इससे विपरीत हुई गोदावरी की चेष्टा। रावण से अपहृत सीता देवी ने नजर में आयी हुई गोदावरी नदी से, सकरुण प्रार्थना की कि, "हे हंसादि पक्षिसेविते, गोदावरी देवी! तुमको नमस्कार हो। शीघ्र मेरे प्रभुसे विनंती करो कि रावण सीता का हरण कर रहा है।" परंतु गोदावरी ने इस प्रार्थना का बिलकुल तिरस्कार कर दिया। खुद श्रीरामचंद्रजी ने ही पास आकर उससे पूछा कि, सीता किधर गयी? तो भी गोदावरी ने रावण से डर के मारे, कुछ भी उत्तर न दिया। रावण तो उस समय में बहुत दूर चला गया था। वह वापिस लौटकर गोदावरी पर नाराज नहीं होनेवाला था कि "हे दुष्टे! तुमने रामसे मेरी बात क्यों कर कही?" विशेषतः श्रीरामचन्द्रजी के सामने निश्चित ही उसको कोई दुःख न हो सकता था। तो भी उस नदी ने प्रभु के विषय में वाङ्मात्र से भी सेवा नहीं की। इससे विपरीत यमुनाजी की सेवा कैसी अद्भुत ठहरी! अपने जल का स्तंभन कर पार करने का मार्ग देना कोई मामूली सेवा नहीं है। अतः भगवान पर प्रेम से, कंस की ओर से संभावित आपत्ति का भी परवाह न करनेवाली यमुनाजी को परमपवित्र कहना सर्वथा उचित है।

(आयर्कुलत्तिनिल्) इत्यादि; यानी, गोपकुल में समुद्भूत मंगलदीपसदृश! अंधकारदुःख को दूरकर सबको आनंदित करनेवाला, अत एव मंगलमय पदार्थ है दीप। परंतु प्रकाशमान सूर्य के सामने उसकी शोभा बिलकुल तिरोहित हो जाती है; अंधकार में ही वह पूर्णतया अनुभव करने मिलती है। इसी तरह से भगवान के दया क्षमा सौशील्य वात्सल्य इत्यादि अनंत कल्याण गुण गण, सूर्य की तरह प्रकाशमान, समस्तदोषदूर परमपद में बिलकुल प्रकाशहीन रहते हैं; कारण कि वहां पर अज्ञ, अपराधी, दुःखी आदि दोषपूर्ण चेतन के अभाव से उक्त गुणों का लक्ष्यभूत व्यक्ति सर्वथा दुर्लभ होता है। इससे विपरीत सत्र प्रकार की न्यूनता से भरे हुवे इस संसार मंडल में, और तत्रापि बिलकुल ज्ञानादि शून्य गोपों

का निवासस्थान व्रज में अवतार लेने पर भगवान के सभी कल्याण गुण बहुत चमकने लगे। अतः यहां पर आपका विशेषण दिया जाता है कि गोपकुल में समुत्पन्न मंगलदीप।

(तायैकुडल् विळक्कम् शेय्द दामोदरनै)—यानी माता का यश बढानेवाले दामोदर को, कहने का यह तात्पर्य है कि दामोदरवृत्तांत से श्रीकृष्ण ने माता का यश बढा दिया। तथा हि—मक्खन चोरी के अपराध में माता ने कृष्णकिशोर को पकडकर पेट पर रस्सी से बांध कर उलूखल में बांध लिया; इससे आपका नाम पड गया दामोदर। दाम उदरे यस्य—दामोदरः। दाम-रस्सी। इस चरित्र को देखनेवाले लोग कहने लगे, कि "वाह! यशोदाजी का सामर्थ्य ही सामर्थ्य है! आपका भाग्य ही भाग्य है! बडे बडे ज्ञानियों के मन को भी न मिलकर दूर दूर ही रहनेवाले भगवान को इस गोपी ने अपना वश कर लिया न! और उनको रस्सी से बांधना पीटना इत्यादि भी कर देती है न! अहो इसका भाग्य है!" एवं श्रीकृष्ण के परमानंददायक बाललीलाओं को देखनेवाले दूसरे भी गोपलोग कहते हैं कि "ऐसे परम विलक्षण आनंदकंद को अपने पुत्रके रूपमें पानेवाली यशोदाजी ने, न जाने पूर्वजन्म में कैसा व्रत किया।" इत्यादि प्रकारों से यशोदाजी का यश सर्वत्र खूब फैल गया।

(तूयोमाय् वन्दु) इत्यादि। मास में एक ही वक्त स्नान करनेवाली गोपों की शुद्धि शारीरक न हो सकती है; अपितु मानसिक है। निरंतर भगवत्स्मरण में मग्नमानस इनके मनकी शुद्धि के बारे में विशेष कहने को क्या है? शास्त्र पुकारता है कि कृष्णस्मरण के विना किये जानेवाले पुण्यतीर्थस्नान इत्यादि कर्म भी मानव को शुद्ध बनने असमर्थ हैं। अतः "पवित्राणां पवित्रम्" भगवान का स्मरण ही वास्तव में शुद्धि देनेवाली चीज है। इससे परिपूर्ण गोपियों को शुद्ध कहना सर्वथा उचित ही है। एवं पुष्पों की शुद्धि भी उनका अर्पण करनेवाले की भावनाशुद्धिमात्र है; न तु पुष्पों में ही कोई शुद्धि वा अशुद्धि रह सकती है। अत एव शास्त्रों में कहा जाता है कि—अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः। सर्वभूतदया पुष्पं क्षमा पुष्पं विशेषतः। ज्ञानं पुष्पं तपः पुष्पं ध्यानं पुष्पं तथैव च। सत्यमष्टविधं पुष्पं विष्णोः प्रीतिकरं भवेत्॥ अर्थात् अहिंसा, इंद्रियसंयम, सर्वभूतदया, क्षमा, ज्ञान, तप, ध्यान और सत्य ये आठ प्रकार के पुष्प भगवान के अत्यंत प्रिय होते हैं। एवं इस प्रकरण में गोपियां, तन मन वाणी नामक अपने तीनों करणों को भगवद्विषय में लगाने का निश्चय करती हैं। ऐसा करने पर समस्त पापों को दूर होना, अत एव विघ्नों का भी स्वयं शांत होना, और संकल्पित व्रतका पूर्ण होना, ऐसे सभी श्रेय अनायास मिलेंगे ही॥

ध्वन्यर्थविवरण॥ इस गाथा में यों कहा जाता है कि भगवान की तरह आचार्य सार्वभौम का भी स्मरण, कीर्तन, वंदन व अर्चन, मानव के समस्त पापों को दूर करेगा। पूर्वार्ध में कथित सभी विशेषण आचार्य में भी ठीक ठीक लगते हैं, इस अर्थ का विवरण करना बाकी है। (मायनै)—आचार्य, अत्याश्चर्यमयदिव्यचेष्टित होते हैं। तथाहि संसारसागर में डूबकर सर्वथा निकम्मा रहनेवाले इस चेतन को वहां से उठाकर, एकदम नित्यसूरियों की गोष्ठी में बिठाना कोई मामूली काम नहीं है; अपितु अत्याश्चर्यमय साहस है; पूर्वोक्त प्रकार से स्वयं भगवान भी इस काम में विफल बन गये थे। एवं

रामानुजनूत्तंदादि नामक ग्रंथ में (गाथा ५२) श्रीरामानुज स्वामीजी का वैभव यों बताया गया है कि—"भगवान श्रीरामानुज स्वामीजी ने अपने कटाक्षवीक्षण मात्र से (भगवान का वैभव न माननेवाले) दूसरे छः दर्शनों को शिथिल कर दिया; सारी दुनिया में अपना यश फैलाया; अत्यंत पापी मेरे मन में प्रवेश कर समस्त पापों को दूर कर दिया; मेरे सिर को भगवान श्रीरंगनाथ के पादारविंद के साथ लगा दिया। ये सब हमारे गुरुजी के अद्भुत चेष्टित हैं।" और भी ऐसे अनेक अद्भुत काम करनेवाले आचार्य को मायी कहना उचित ही है।

(मन्नु वडमदुरै मैन्दनै।) मथुरा शब्द से, स्पृहणीय परमपद से विपरीत, समस्त दोषाकर संसार मंडल में विद्यमान एक स्थान सूचित किया जाता है। जैसे मथुरापुरी ने भगवान को अपने नित्यनिवास-स्थान परमपद अथवा क्षीराब्धि में विरक्त बनाकर अपनी ओर खेंच लिया, इसी तरह से यह संसार मंडल भी आचार्य को परमपद से विरक्त बनाकर अपनी ओर खेंचता है। अर्थात् आचार्य भी, भगवान की तरह, चेतनों के उद्धार के लिए, परमपद में आशा छोडकर, इस संसार मंडल में अवतार लेते हैं। यथा उपदेशरत्नमाला में गाया गया, "संसारसागर में निमग्न हमारा उद्धार करने के लिए ही गोदादेवी परमपद का अकुंठ भोग छोड कर इस संसार मंडल में पधार गयीं।" ऐसे संसार मंडल को (मन्नु) कहने का यह तात्पर्य है कि नित्यविभूति की तरह लीलाविभूति में भी विभव, अर्चादि रूप से भगवान नित्य सन्निहित रहते हैं।

(तूय पेरुनीर् यमुनै)। यहां पर यमुनाशब्द को नदीमात्र का सूचक मानना चाहिए। यथा भगवान सरयू, यमुना इत्यादि नदियों के पास ही अवतार लेकर उन में विहार करते हैं, तथा इस भारत में दूसरी भी अनेक पुण्यनदियों के तटपर श्री वैष्णव भक्तश्रेसर आचार्यों का अवतार हुआ किया है। श्री भागवत में (११ - ५ - ३८, ३९, ४०) इसका सुचारु उल्लेख इन श्लोकों से किया गया है— कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः। क्वचित्क्वचित् महाभाग! द्रमिडेषु च भूरिशः। ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी। कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी॥ इत्यादि। इस में ध्यान देने लायक बात यह है कि आचार्यों का अवतार नदीतीर में ही बताया गया है; और वास्तव में उक्त नदीतीर में श्रीशठकोप स्वामीजी प्रभृति आल्वारों का (जो आचार्य भी थे ही) एवं दूसरे आचार्यों का अवतार हुआ।

(आयर् कुलत्तिनिल्) इत्यादि। गोपकुल शब्द, अज्ञ, अत एव "ज्ञानेन हीनः पशुभिस्समानः" कहलानेवाले क्षुद्र संसारी चेतनों से परिपूर्ण लीलाविभूति का सूचक है। आचार्यों का अवतार यहां पर हुआ ही है। मंगलदीप शब्द से कल्याणकरत्व, प्रकाशमानत्व एवं अंधकारनिवारकत्व इत्यादि कहे जाते हैं। आचार्य में ये सब आकार पुष्कल मात्रा में भरे हैं। अत एव "ततोऽखिल जगत्पद्मबोधायाच्युत भानुना। देवकीपूर्वसन्ध्यायामाविर्भूतं महात्मना॥" इत्यादि से जैसे श्रीकृष्ण सूर्य बताया गया, इसी तरह से आचार्यों को भी सूर्य बतानेवाले अनेक प्रमाण मिलते हैं—"तस्मै नमो वकुलभूषणभास्कराय," "कलयामि कलिध्वंसं कविं लोकदिवाकरम्," "श्रीमानाविरभूद्भूमौ रामानुजदिवाकरः" इत्यादि।

(तायैक्कुडल्विळक्कम् शेय्द) यानी माता की पेट को प्रकाशित करनेवाले। यह भी आचार्य का विशेषण होता है। माताशब्द से, "सहि विद्यातस्तं जनयति" इत्याद्युक्त प्रकार से श्रेष्ठ जन्म देनेवाली विद्या, यानी मंत्र कहा जाता है। मंत्र तो अनेक होते हैं। परंतु उनमें श्रेष्ठ जन्म देनेवाले दो ही हैं—(१) ब्राह्मणों को द्विजत्व देनेवाली गायत्री, और (२) श्रीवैष्णव बनानेवाली अष्टाक्षरी। इसमें और भी एक चमत्कार यह है कि, जैसे श्री कृष्ण की दो माताएं हुईं, जन्म देनेवाली देवकीजी, एवं पालनपोषण करनेवाली यशोदाजी, इसी तरह से श्रीवैष्णव द्विजों के लिए उक्त दोनों मंत्र माता हैं; उनमें से अष्टाक्षरी पालन पोषण करनेवाली है। माता की पेट कहने से इन मंत्रों का मध्यभाग कहा जाता है। गायत्री में तीन वाक्य हैं, और अष्टाक्षरी में तीन पद हैं। इन में से बीच का वाक्य और बीच का पद पेट है। इसको प्रकाशित करनेवाले कहने से इनके अर्थ को ठीक जानकर तदनुसार रहने की उनकी स्थिति की सूचना दी जाती है। अर्थात् आचार्य, गायत्री के मध्यमवाक्योक्त रीति से ब्रह्मवर्चस्वी होते हैं, और अष्टाक्षरी के मध्यमपदोक्तरीति से, स्वरूपविरोधी, उपायविरोधी एवं प्राप्यविरोधियों को दूरकर, स्वरूप, उपाय व प्राप्य में स्वयं उज्वल रहते हैं; और दूसरों को भी उज्वल बना देते हैं।

(दामोदरनै) आचार्य को दामोदर कहना भी उचित है। दामोदर शब्द का तात्पर्य है रस्सी से निबद्ध। प्रेम को प्रेमपाश कहना लोकव्यवहारसिद्ध है। आचार्य पेटभर भक्ति से पूर्ण होने के कारण भक्तिबद्ध, अथवा दामोदर कहे जाते हैं। एवं आप भगवान के कल्याणगुणों से भी निबद्ध होते हैं; गुण व दाम (एक अर्थ में) पर्याय-सा होते हैं। श्रीकूरेशस्वामीजी की श्रीसूक्ति है "बध्नासि किंनु हृदयम्" इत्यादि (हे भगवन्! अपने कल्याणगुणों से एवं तत्प्रयुक्त दिव्यलीलाओं से भक्त जनों के हृदय को क्यों कर बांध डालते हो)। एवं संसारबंध भी यहां पर सूचित किया जा सकता है। तथा च जैसे भगवान अपने वात्सल्य, कृपा, भक्तपराधीनता इत्यादि गुणोंके कारण (नतु कर्मपरवश होकर असामर्थ्य से) रस्सी से बांधे जाने पर भी, उस कारण से अवद्य से दूर रह गये, और दामोदर बिरुदभाजन बन गये, इसी तरह से मामूली संसारियों की तरह भूमंडलपर अवतार लेकर संसारबंध का अनुभव करने पर भी, आचार्य, दोषी नहीं, परंतु उज्वल ही बनते हैं। कारण कि संसार में आपका अवतार दूसरों की तरह कर्मकृत नहीं है, किंतु कृपाकृत है। ५

तथा च ऐसे महामहिमवाले आचार्य के सेवन से समस्तविध पापों दूर हो जाते हैं और इष्ट की सिद्धि भी अपने आप मिल जाएगी॥

(गाथा.) पुळ्ळुम् शिलम्बिनकाण् पुळ्ळरैयन् कोयिल् * वेळ्ळै विळिशङ्गिन् पेररवम् केट्टिलैयो *
पिळ्ळायेळुन्दिराय् पेय्मुलै नञ्जुण्डु * कळ्ळचकटम् कलक्कळिय कालोच्चि *
वेळ्ळत्तरविल् तुयिलमर्न्द वित्तिनै * उळ्ळत्तुक्कोण्डु मुनिवर्हळुम् योगिहळुम् *
मेळ्ळवेळुन्दु अरियेन्र पेररवम् * उळ्ळम् पुहुन्दु कुळिर्न्देलोरेम्बावाय्॥ ६१॥

पिळ्ळाय् - हे बाले !

पुळ्ळुम्शिलम्बिनकाण्-पक्षियों ने कलकलध्वनि की;

पुळ्ळरैयन् कोयिल् } पक्षिराज के मंदिर में से (निकलनेवाली)

वेळ्ळै विळि शङ्गिन् - शुभ्र आह्वान शंख की

पेररवम् केट्टिलैयो } बडी अवाज को क्या तुमने नहीं सुना ?

एळुन्दिराय् - जागो ;

पेय्मुलै नञ्जुण्डु - } पिशाची (पूतना) के स्तन पर लिप्त विष पीकर,

कळ्ळचकडम् कल क्ळिय कालोच्चि } नकली गाडी (शकटासुर) शिथिल बन जावें इस तरह लात मारकर,

वेळ्ळत्तु अरविल् — सागर में सर्प (शेषनाग) पर

तुयिल् अमर्न्द — शयन करनेवाले

वित्तिनै } बीजभूत (यानी सकलजगत का कारणभूत) भगवान को

उळ्ळत्तु कोण्डु - (अपने) हृदय में रखकर

मुनिवर्हळुम् योगिहळुम् - मुनियों एवं योगियों

मेळ्ळवेळुन्दु - धीरे धीरे उठकर

अरियेन्न पेररवम् } "हरिः हरिः" जो कहते हैं यह बडी ध्वनि (भी)

उळ्ळम् पुहुन्दु - हृदय में प्रवेशकर

कुळिर्न्दु एलोरेम्बावाय् } (उसको) शिशिरित कर रही है ।

"नीलातुङ्गस्तनगिरितटीसुप्तमुद्बोध्य" इत्यादि तनियन् पद्योक्तप्रकार से श्रीकृष्ण को जगाने में तत्पर इस श्रीव्रत दिव्यप्रबंध में नीचे के पांच पद्य अवतारिकारूप समाप्त हुए । अब दस पद्यों से शयन करनेवाली गोपियां जगायी जाती हैं । अर्थात् व्रतकरने इच्छुक गोपियों में प्रथमगाथा से आहूत, कितनी ही गोपियां संमिलित हुई थी । व्रत की पूर्वपीठिका रचकर, भगवान के मंदिर पर जाने की तैयारी कर, फिर अपनी तरफ देखने पर उनको मालुम पडा कि व्रज की सभी गोपियां आयी नहीं ; बहुत सी गोपियां तभी अपने अपने घर में सो गयीं हैं । अतः उनको भी जगाकर अपनी गोष्ठी में ले जाती हैं बाहर रहनेवाली गोपियां । ऐसे जगाने का मनोहर प्रकार अब दस गाथाओं से वर्णित हो रहा है ।

यहां यह एक शंका होगी कि यह कैसे बन सकता है कि कितनी गोपियां श्रीकृष्ण से मिलने की आशा से शय्या छोडकर आयी हैं, और दूसरी कितनी निश्चिंत रहकर शयन कर रही हैं । क्या उनके मन में श्रीकृष्णप्रेम इतना गाढ नहीं है ? और वे रजस्तमोगुणों के इतने परवश हो गयी हैं कि पूर्वदिन में अपने से कृत संकल्प को भी छोडकर अथवा भूलकर वे निद्रा कर सकती हैं ?

इस शंका का समाधान अनेक प्रकारों से किया जाता है । यह बात बिलकुल सत्य है कि श्रीकृष्ण प्रेम के विषय में सभी गोपियां एकदम समान होती हैं ; नतु एकका प्रेम अधिक और दूसरी का न्यून है । सभी गोपियां भगवान के गुणानुभव करने में तत्पर हैं । परंतु भगवद्गुणों का स्वभाव बडा विचित्र है । वे तो अपना अनुभव करनेवालों में किन्ही को मोहित करते हैं । किन्हीको ससंभ्रम नचाते, चलाते, फिराते हैं; और किन्ही से दूसरा कुछ कराते हैं । विष, इस विषय का सुंदर दृष्टांत बताया जाता है । विषवेग से

कोई कोई मानव मूर्छित होता है, कोई कोई चिल्लाता है, और कोई कोई दूसरा कुछ गडबड करता है। इस न्याय से हाल में भी श्रीकृष्णगुणविद्ध गोपियों में से कोई कोई मूर्छित सरीक शय्यापर लेट रही हैं, और कोई कोई भगवत्संनिधि जाने की त्वरा से दूसरों को भी जगा रही हैं।

यह तो ठीक है। परंतु जो लोग शय्या में रहने अशक्त हो उठ गयी हैं, वे सीधा भगवान के पास क्यों न गयीं? दूसरों को भी जगाने के प्रयास को उन्होने क्यों अपनाया? इस प्रश्न का अब उत्तर देना पडता है। शास्त्र बताता है कि मीठी चीज का अकेली अनुभव न करना; किंतु दूसरों से मिलकर ही उसका सेवन करना चाहिए। यहां पर गोपियों के हार्दिक अभिप्राय से मार्गशीर्षव्रत तो श्रीकृष्णानुभव ही है। और भगवान को मधु, क्षीर, इक्षुरस इत्यादिवत् परमभोग्य मानना भक्तों का स्वभाव है। अतः ऐसे परममधुर भगवान के अनुभव करते दूसरों को भी बुलाना आवश्यक हुआ।

किंच, श्री वैकुंठलोक में अनंत कोटि नित्यमुक्त मिलकर ही भगवान का अनुभव करते हैं। और यह अर्थ वारंवार बताया गया कि, श्री वैकुण्ठ में विराजमान परवासुदेव मूर्ति से विभवावतार मूर्तियो में भक्तानुभाव्य गुण अत्यधिक उज्वल होते हैं। अतः गोपियों का अभिप्राय है कि वैकुण्ठ से भी अधिक भक्त लोगों को मिलकर ही विभवावतारों का अनुभव करना चाहिए। एवं भगवान को बडा तालाब अथवा महासमुद्र मानना भक्तों का संप्रदाय है। "करचरणसरोजे .... हरिसरसि" इत्यादि। बडे जलाशय में एक दो व्यक्ति सधैर्य उतर सकते नहीं; परंतु बहुत मिलकर ही। यथा स्वयंप्रभा बिल में प्रवेश करनेवाले हनुमानजी, अंगद, जांबवान इत्यादि वानरवीर एक दूसरे का हाथ पकडकर ही कथंचित् अंदर घुसने समर्थ हुए, इसी तरह से गोपियां भी बहुत जन मिलकर ही भगवदनुभव करने उतरने चाहती हैं।

अपिच, महात्माओं का सिद्धांत है कि भगवान की संनिधि पहुंचने से भगवद्भक्तों से मिलना ही श्रेष्ठतर पुरुषार्थ है। अत एव श्रीकूरेशस्वामीजी ने श्रीवैकुण्ठस्तव में अनुगृहीत किया कि, "मैं परमपद पहुंचकर आपके (भगवान के) परमभक्ताग्रेसरोंसें मिलूँगा।" इस रहस्य को जाननेवाली गोपियां भी भगवान से मिलने से आपके परमभक्त गोपियों से मिलने को ही स्वरूपानुरूप परमपुरुषार्थ मानकर उनको जगा रही हैं।

वस्तुतस्तु भगवत्संनिधि में जानेवालों को परमभक्तों का पुरस्कार पूर्वक ही जाना चाहिए, नतु अकेली, एकदम प्रवेश कर देना। अत एव विभीषणजी ने श्रीरामचंद्र भगवान के पादारविंदों में शरणागति करने के लिए लंका से निकलकर, समुद्र को पारकर, उत्तरतीर पहुंचकर, सुग्रीवादि वानरवीरों से प्रार्थना की, कि "निवेदयत मां क्षिप्रं .... राघवाय महात्मने" इत्यादि। उस समय में श्रीरामचन्द्रजी अंतःपुर इत्यादि किसी दुष्प्रवेश स्थान पर विराजमान नहीं थे; परंतु खुली जगह ही थे। विभीषण जी भी पक्षी की तरह हवा में उडकर आये थे। अतः आप बडी सरलता से प्रभु की संनिधि पहुंचकर साक्षात् आपसे ही विनंती कर सकते थे। तथापि उन्होंने ऐसा नहीं किया। किंतु सुग्रीवादि के द्वारा ही प्रभु से विनंती करने को उचित माना। एवं अपने मंत्रियों को ठीक समझाकर, उनकी अनुमति भी लेकर प्रभु

ने सुग्रीव जी को आज्ञा की कि, "आनयैनं हरिश्रेष्ठ !" (अर्थात् हे सुग्रीव ! तुम इस विभीषण को बुला लाओ ।) अगर प्रभु की मरजी होती तो आप सीधा विभीषणजी से ही वार्ता कर सकते थे; आपको स्वयं ही बुला सकते थे । तो भी आपने अपने भक्तों के द्वारा ही उनको बुलवाया और अपनाया । इस चरित्र से यह शास्त्रार्थ शिक्षित की जाती है कि भगवान और भक्तों की मिलाप में दोनों तरफ सिफारिश करनेवाले भागवतों की आवश्यकता होती है । इस शास्त्रार्थ को ठीक जाननेवाली गोपियां दूसरी गोपियों को छोडकर स्वयं अकेली भगवत्संनिधि में जा न सकीं । अतः उनको जगाने के काम में लग गयीं ।

उक्त अनेक कारणों से ये गोपियां अपनी गोष्ठी में अभी तक न मिलकर घर पर ही शयन करनेवाली अपनी सखियों को ढूँढ ढूंढ कर, उन उनके वहां जाती हुईं प्रणयमधुर, एवं कदाचित् प्रणयकोपगर्भ, तथा भगवान के नाना प्रकार के दिव्य चेष्टितों का वर्णनतत्पर वचनों से उन सब को जगाकर उनके साथ भगवान का मंदिर पहुँचती हैं सोलहवी गाथा में । एकैक पद्य में सुन्दर एवं भावगर्भित विशेषण से उस सखी का संबोधन किया जाता है, और जागने की एवं गोष्ठी में संमिलित होने की उससे प्रार्थना की जाती है; प्रभात हो जाने के कतिपय चिह्न बताये जाते हैं; और भगवान की कतिपय दिव्यलीलाओं का मनोहर वर्णन भी किया जाता है । प्रभात के अनेक चिह्न बताने का यह कारण होगा कि एक चिह्न सुनने पर अन्दर शयन करनेवाली गोपी उसमें दोष बताकर कहेगी कि, "अभी आधी रात है, प्रभात होने में बहुत देरी है; अतः व्यर्थ गडबड मत करो ।" अतः दूसरा, तीसरा इत्यादि अनेक चिह्न बताये जाते हैं । कदाचित् यह अन्दर सोनेवाली अपनी सखियों की मीठी वाणी सुनने की इच्छा से उक्त सभी चिह्नों का एकदम अपलाप कर देती है; तब जगानेवाली गोपियां भगवान के केशिवध आदि चेष्टितों का गान करती हैं ।' इनका अभिप्राय है कि भगवान के विषय में अस्थाने भयशङ्का करनेवाली, अत एव हमेशा मंगलाशासनतत्पर अन्दर सोनेवाली गोपी, केशी वगैरह असुरों का स्मरण कर उन दुष्टों की ओर से श्रीकृष्ण की विपत्ति होने के भय से कंपित हो उठती है, और झट शयन छोडकर बाहर आ जाती है । ऐसे अनेक मनोहर शास्त्रार्थ इन पद्यों में गर्भित हैं, जिनका प्रकाशन हमारे पूर्वाचार्यों से किया गया है ।

प्रकृत पद्य में ये गोपियां एक सखी के घर पर जाकर उससे कहती हैं कि, "पक्षियां उठ कर मनोहर कलकलशब्द कर रहे हैं; पक्षिराज के मंदिर से प्रातःकाल सूचक बडी शङ्खध्वनि निकल रही है; और भगवान के ध्यान में ही निमग्नमानस योगी जन भी उठकर उच्च स्वर से हरिर्हरिर्हरिः ऐसे नामोच्चारण कर रहे हैं । अतः प्रातःकाल हो गया; तुम भी जागो और हमारी गोष्ठी में संमिलित हो जा ।"

इस पद्य में गोपी का संबोधन है (पिळ्ळाय्) यानी बाले । इसका तात्पर्य यह है कि यह गोपी अभी अभी श्रीकृष्ण से मिलने लगी है; अर्थात् इसका भगवदनुभव बिलकुल नया है; इसका रस अभी इसके गले में ठीक उतरा नहीं । अत एव प्रियतम से मिलने के इस अपूर्व अवसर पर लक्ष्य न देकर यह निश्चित लेट रही है ।

प्रभात होने के तीन लक्षण यहां पर बताये गये हैं—(१) पक्षियों का कलकल निनाद, (२) पक्षिराज मंदिर की शंखध्वनि, और (३) योगियोंका हरिनामोच्चारण। पक्षियों का शब्द तो प्रभात होने का स्वाभाविक लक्षण है। मंदिरों में प्रभात काल में सेवकों को बुलाने के लिए, तथा भगवान के सुप्रभात कराने के लिए शंख बजाया जाता है। यहां पक्षिराज मंदिर शब्द से पक्षियों के राजा गरुडजी का मंदिर, अथवा पक्षी—गरुडजी, उनके राजा—गरुडवाहन एवं गरुडध्वज भगवान का ही मंदिर हो सकता है। यहां पर ऐसी शंका न करना कि, जब व्रजवासी सभी लोग श्रीकृष्ण को ही परदेवता मानकर आपकी ही पूजा करते थे, तब उनके गामपर दूसरे भगवान का मंदिर किधर से आया। क्यों कि यह मंदिर वहां पर थेट से ही विराजमान था, नतु कृष्णावतार होने के बाद बाहर कहीं से लाया गया। इस पवित्र भारतभूमि के प्रत्येक गाम में अनादिकाल से ही मंदिरों विराज रहे हैं। अत एव, "रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः। रामभूतं जगदभूत् रामे राज्यं प्रशासति॥" इत्याद्युक्त प्रकार से रामाद्वैत बनी हुई अयोध्या नगरी में भी स्वयं श्रीरामचंद्रजी के श्रीहस्त से संपूजित श्रीमन्नारायण की दिव्य अर्चामूर्ति विराजमान थीं। इस विषय में साक्षात वाल्मीकी का वचन ही प्रमाण है—"सहपत्न्या विशालाक्ष्या नारायण मुपागमत्", "श्रीमत्यायतने विष्णोः शिश्ये नरवरात्मजः।" (अयोध्याकांड–सर्ग ५)। यह मूर्ति भी हाल में श्रीरंगक्षेत्र को अलंकृत करनेवाले साक्षात् श्रीरंगनाथ भगवान् ही थे। आपको श्रीरामचंद्रजी से विभीषण ने पाया और लंका जाते जाते रास्ते में श्रीरंगक्षेत्र में स्थापित कर दिया। इस बात की भी सूचना पट्टाभिषेक सर्ग में मिलती है—"लब्ध्वा कुलधनं राजा लङ्कां प्रायाद्विभीषणः"। श्रीपराशरभट्टर स्वामीजी श्रीरंगराजस्तव में इस विषय का स्पष्ट उल्लेख करते हैं। अथवा, व्रज में भगवान का मंदिर था, या नहीं, इस विषय की चर्चा करना ही व्यर्थ है। क्यों कि हाल में गोपीभावना से विभूषित गोदादेवी इस दिव्यप्रबंध को गा रही हैं। और इस अर्थ को भी ठीक जानना चाहिए कि किसीका अनुकरण करनेवाली आप (और ऐसे करनेवाले दूसरे आल्वार भी) अनुकार्य व्यक्ति की भावना के साथ अपनी निजी भावना को भी मिलाकर ही भगवद्गुणों का गान करती हैं। गोदादेवी की जन्मभूमि श्रीविल्लिपुत्तूर में तो वटपत्रशायी भगवान का बडा मंदिर विराजमान है (जिस में गरुडजी का विशेष प्राधान्य है)। अतः इस वासनाबल से इस पद्य में, तथा आगे चौदहवे पद्य में आप से मंदिर का प्रस्ताव किया जाता है। मंदिर की बात उठाये बिना आल्वार भगवान का कीर्तन नहीं कर सकते हैं। दिव्य प्रबंधो का यही एक विशेष है कि उनमें मंदिर का प्रस्ताव जरूर रहता।

प्रभात होने का तीसरा लक्षण महात्माओं का हरिनामकीर्तन बताया गया। इन में मुनि, योगि करके दो विभाग बताया गया है। भगवदनुभव करनेवाले महात्माओं में, परमपद में भी कतिपय विभाग बताये जाते हैं। कोई कोई लोग, भरतजी की तरह, गुणानुभव करने में ही निरत होते है, जिनका बिरुद हुआ मुनि। दूसरे लोग, लक्ष्मणजी की तरह, सेवा करने में उत्सुक होते हैं; ये ही योगी कहलाते हैं। ये दोनों भगवान के दिव्य चेष्टितों का ध्यान करते करते सो जाते हैं। ऐसे दो चेष्टितों का उल्लेख हाल में किया गया है—पूतनास्तन्यपान व शकटासुरभंजन। ये दोनों श्रीकृष्ण के शैशव में संपन्न लीलाएं हैं। नारद जी से यों सुनकर, कि अवतार लेते ही भगवान मथुरा छोडकर व्रज पधारकर वहां गुप्तरूप से विराज

रहे हैं, पापी कंसने आपको मारने के लिए अनेक दुष्ट दैत्यों को व्रज की ओर भेज दिया। उनमें ये दो थे पूतना व शकटासुर। पूतना यशोदावेष से आधीरात को आकर श्रीकृष्ण शिशु को विषलिप्त स्तन्य देने लगी। उस देवशिशु ने भी स्तन्य पीते पीते पूतना के प्राणों को भी पी लिया। फलतः वह पिशाची जान छोडकर गिर पडी। नंदगोपजी के वहां तो बहुत सी गाडियां थीं। उनमें से एक गाडी के नीचे पालने में श्रीकृष्णकिशोर को यशोदाजी सुलाती। इस भेद को जाननेवाला एक असुर एक दिन उस गाडी में आविष्ट होकर श्रीकृष्ण पर पडकर आपको मार डालने की राह देखता रहा। इतने में भगवान ने भी जागकर भूख के मारे रोने की भावना से पैरों को ऊपर उठाकर गाडी पर लात मारा, जिस से वह गाडी चूर चूर हो गयी और असुर भी नष्ट हो गया। इन वृत्तांतों का कीर्तन करनेवाली गोपियों का यह आशय रहा, कि पूतना, एवं शकट नाम सुनते ही निश्चित सोनेवाली गोपी भय से चौंक कर शीघ्र उठेगी; परंतु यह आशा व्यर्थ हुई। कारण कि उन असुरों का वधपर्यंत की लीला का अनुसंधान कर वह गोपी निश्चित अपने काम में—गुणानुभव निद्रा में—रह गयी।

उठनेवाले उपरोक्त महात्माओं को (मेळ्ळवेळुन्दु) यानी धीरे धीरे उठनेवाले कहने का तात्पर्य यह है कि, भगवान को अपने हृदय में प्रतिष्ठित कर हमेशा आपका ध्यान करनेवाले उनके अभिप्राय में झट उठने से अंदर विराजमान भगवान को हिल जानेका प्रसंग बनेगा। अतः आपको ऐसा दुःख न हो, इस तरह से आपको संभालते हुवे ये लोग बहुत धीरे धीरे उठते हैं; जैसे गर्भिणी स्त्रियां पेट में रहनेवाले शिशु को संभालती धीरे धीरे शय्या से उठती हैं। इस विषय में प्रह्लादजी का एक सुंदर दृष्टांत श्रीविष्णु-पुराण में बताया गया है। तथाहि—परम भागवतोत्तम आपको मारने के लिए दुष्ट हिरण्यकशिपु के भृत्योंने अनेक प्रकार के उपाय किये। परं तु भगवान की असीम कृपा से ये सब प्रयत्न निकम्मे बन गये। एक समय में उन दैत्यों ने इस बालक को एक ऊँचे पहाड के शिखर पर ले जाकर वहां से नीचे गिरा दिया। तब, "पपात सोऽप्यधः क्षिप्तः हृदयेनोद्वहन् हरिम्" नीचे गिरनेवाला वह भी अपने हृदय में विराजमान भगवान को संभालते हुए गिर गया। इस पद्य में 'हृदयेन उद्वहन्' का शब्दार्थ है हृदय से धारण करते हुवे। मामूली लोग इसका तात्पर्य यों समझते हैं कि हृदय से भगवान का चिंतन करते हुवे। हमारे आचार्य, तात्पर्य बताते हैं कि भगवान को संभालते हुवे; अर्थात् दोनों हाथों को छातीपर रखकर, नीचे गिरने से भगवान को चोट न लग जाय इस तरह से आपको संभालते हुए। नीचे गिरते प्रह्लादजी के मन में यह भय उत्पन्न हो गया कि ऊँचे पहाड से नीचे गिरने से मेरे हृदय में नित्यनिवास करनेवाले भगवान को दुःख होगा; अतः ऐसा न हो इस तरह से आपको संभालते हुवे हाथ से धरना चाहिए।

भगवान के सभी नाम परमपवित्र हैं, और सभी समय में अविशेष से उनका कीर्तन किया जा सकता है। तथापि उन उन नामके तात्पर्य की परीक्षा करनेवाले महात्मा लोग एकैक समय में एकैक नाम का कीर्तन करने में विशेष औचित्य मानते हैं। यथा यात्राप्रसंग में केशव कहना; भोजनप्रसंग में गोविंद

नाम बोलना; शय्या में लेटते माधव कहना; उठने की वक्त हरि पुकारना इत्यादि। अतः यहां पर समस्त दुःख एवं पापों का हरण करनेवाले हरिनाम संकीर्तन का विचार कहा गया है।

ऐसे प्रभात के लक्षणों का वर्णन पूर्वक जगा जानेपर भीतर सोनेवाली गोपी प्रसन्न होकर, शय्या से उठकर, बाहर अपनी सखियों की गोष्ठी में मिल गयी, यों समझना चाहिए॥

ध्वन्यर्थ विवरण। इस गाथा में 'बाले' संबोधन से आचार्योपदेश को समझने और याद रखने समर्थ, एवं "पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्" इत्यादि श्रुत्युक्त प्रकार से पांडित्य का पार करने पर भी बाल की तरह अपने माहात्म्य का प्रकाशन न करनेवाला, और सर्वथा आचार्य पराधीन, एक गुरुभाई पुकारा जाता है। प्रभात का लक्षण, पक्षियों का कलकल शब्द बता जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि ज्ञान व अनुष्ठान रूप दो पक्षों से युक्त होने से पक्षि के समान श्रीवैष्णव लोग मिलकर भगवान का जो भजन करते हैं, यह कोलाहल सुना जा रहा है। शास्त्र बताता है कि जैसे दो पंखों के विना पक्षी हवा में न उड सकता, इसी तरह से ज्ञान व तदनुरूप सदाचरण के विना कोई मानव सद्गति को प्राप्त न कर सकेगा। ज्ञान के विना वह अंध होगा और आचरण के विना पंगु होगा; दोनों रीति से सद्गति मिलना अशक्य है। अतः ज्ञान व अनुष्ठान दोनों अत्यावश्यक होते हैं। एवं पक्षियों के कलकल से वेदांतसिद्ध एक इतिहास का स्मरण किया जाता है। तथा हि—एक समय में जानश्रुति नामक एक बडा धार्मिक, परंतु ब्रह्मज्ञानशून्य राजा था। उसको ज्ञानी बनाने के उद्देश्य से दो देवता हंस पक्षि के रूप में आकर उसके अंतःपुर के पास से निकलने गये। परंतु निकलते हुवे, उन्होने आपस में वार्तालाप करने की भावना से ब्रह्मज्ञान से शून्य उस राजा की निंदा कर डाली। इस बात को सुनते ही राजा बहुत दुःखी हो गया और तुरंत आचार्य को ढूंढ कर ज्ञान कमाने में लग गया। इस इतिहास में हंसपक्षि की अवाज ही ब्रह्मज्ञान रूप श्रेय कमाने का उपाय बताया गया। अतः प्रकृत गाथा में भी ज्ञान कमाने की तीव्र इच्छा बढानेवाली पक्षियों की ध्वनि सूचित की जा सकती है।

दूसरा लक्षण तो पक्षिराज मंदिर से निकलनेवाली बडी शंखध्वनि है। "सुपर्णोऽसि गरुत्मान् त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुः" इत्यादि श्रुति, और "वेदात्मा विहगेश्वरः," इत्यादि आचार्यों के वचन के अनुसार पक्षिराज तो वेद है; शंख तो शंखाकार प्रणव है। उसकी महती ध्वनि, उसका महान् ध्वन्यर्थ है। अर्थात् श्रीमदष्टाक्षर महामंत्र में प्रणव का अर्थ बतानेवाले हमारे आचार्यगण कहते हैं कि इस में एक वाच्यार्थ एवं एक व्यंग्यार्थ रहते हैं। वाच्यार्थ यह है कि यह जीवात्मा भगवान का शेष है; और व्यंग्यार्थ तो, यह भगवद्भक्तों का शेष है। एवं च यह तात्पर्य हुआ कि, सकलवेद सारभूत प्रणव, ध्वनिमर्यादा से बता रहा है कि यह आत्मा भगवद्भक्तों का शेष है। तुम तो इस पर ध्यान न देते हुवे एकांत में भगवान का अनुभव कर रहे हो; यह उचित नहीं है। अतः झट उठकर हमारी गोष्ठी में मिल जा।

प्रातःकाल का तीसरा लक्षण हरिनाम संकीर्तन कहा गया है। आचार्य के गुणानुभव में निरत महात्मा लोग मुनि पुकारे जाते हैं और आपकी सेवा करने समुत्सुक लोग योगि कहे जाते हैं। ये दोनों,

"गुरुरेव परं ब्रह्म" इत्यादि प्रमाणानुसार आचार्य को ही साक्षात् भगवान मानकर हरिं शब्द से ही आपको पुकारते हैं; अथवा आचार्य की आज्ञासे आपके मनस्संतोष के लिए भगवान का ही नामसंकीर्तन करते हैं, हरिर्हरिः इत्यादि से। ये लोग पूतनास्तन्यपायी का एवं शकटासुरभंजक का ध्यान करनेवाले बताये गये हैं। ये दोनों विशेषण आचार्य को ठीक लगते हैं। तथा हि—पूतना शब्द से अंदर विषसे भरी हुई परंतु ऊपर से देखने पर परम भोग्य प्रतीत होनेवाली, मायाशब्दवाच्य, प्रकृति सूचित की जाती है। श्री वेदांतदेशिक स्वामीजी पूतना को "कंसप्रयुक्ता किल कापि माया" कहते हैं। भगवान श्री भाष्यकार स्वामीजी शरणागति गद्य में, "स्वविषयायाश्च भोग्यबुद्धेर्जननीं .... दैवीं गुणमयीं मायाम्" कहते हैं। इस माया का वध माने "मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते" इत्याद्युक्त प्रकार से माया को पार करना है। तथाच, इस विशेषण से माया से विमुक्त महान आचार्य कहे जाते हैं।

शकटासुरभंजन वृत्तांत से धूमादिगति इत्यादि दूसरी गतियों को दूर कर, परमपद पहुंचानेवाली अर्चिरादिगति देनेवाले आचार्य का वैभव बताया जाता है। तथा हि—शकट तो जाने का (यानी दूसरा स्थान पहुँचने का) साधन है। इससे इस आत्मा के, शरीर छोडने पर दूसरी जगह जाने के मार्ग सूचित किये जाते हैं। ऐसे मार्ग भी चार होते हैं—गर्भ गति, याम्य गति, धूमादि गति और अर्चिरादि गति। कोई कोई जीव एक शरीर छोडने पर तुरंत दूसरे गर्भ में प्रवेश कर दूसरा जन्म ले लेते हैं; इस मार्ग को गर्भगति कहते हैं। अन्य कई जीव मरने पर नरक जाते हैं; यह मार्ग याम्य (माने यमपुरी जाने की) गति है। और कितने जीव अपने से अनुष्ठित विशेषपुण्य का फल भोगने के लिए स्वर्ग जाते है धूमादिगति से। ये तीनों प्रकार के जीव संसार मंडल में ही रहते हुवे, इधर उधर भटकते रहते हैं, और नानाविध सांसारिक सुख दुःखों को भोगते रहते हैं। "स महात्मा सुदुर्लभः" इत्यादि से प्रशंसित, भगवान के विशेष अनुग्रह का पात्र कतिपय विशेष व्यक्ति तो इस शरीर के साथ समस्त कर्मबंध को निश्शेष छोडकर एकदम परमपद चले जाते हैं। इनके जाने का मार्ग अर्चिरादिगति पुकारा जाता है। इन चार गतियों के दो विभाग किये जा सकते है—दुर्गति और सद्गति। पहिले की तीन गति दुर्गति हैं और अर्चिरादिगति सद्गति है। श्रीकृष्ण ने अपने पादारविंद से दुष्ट शकट का ध्वंस कर दिया। आचार्य भी अपने पादारविंद के संबंध से, स्वाश्रित भक्त जनों की पूर्वोक्त दुर्गति का ध्वंस कर देते हैं; अर्थात् आचार्य के पादारविंद से संबंधित होनेवाला मानव (अथवा प्राणिमात्र) गर्भगति इत्यादि दुःखकर मार्ग छोडकर साक्षात् अर्चिरादि गति से परमपद पहुँच जाता है।

क्षीराब्धि में शेष पर शयन करनेवाले भी आचार्य होते हैं। क्षीराब्धि शब्द से क्षीर की तरह परम भोग्य भगवद्गुण सागर कहा जाता है। उसमें शयन करना माने दूसरे विषय में चित्त न लगाकर, उसी के अनुभव में मग्न रहना। आचार्य तो भगवद्गुणों का निरंतर अनुभव करते, उसी आनंद में हमेशा मग्न रहते हैं। शेषशय्यापर सो जाने का अर्थ है शेष जी को भी नीचे करना, अथवा शेषत्व में स्थिर

रहना। अर्थात् आचार्य, भगवान की सर्वदेश सर्वकाल सर्वावस्थोचित सर्वविध सेवा करने में शेष जी को भी नीचे कर देते हैं; एवं भगवच्छेषत्व में स्थिर रहते हैं। तथा च यह वाक्यार्थ हुआ कि उक्त दो तीन विशेषण-विशिष्ट आचार्य का अनवरत ध्यान करनेवाले महात्मा लोग "हरिर्हरिः" कहते हुवे उठ रहे हैं ॥ (६)

(गाथा) कीशुकीशेन्रेङ्गुमानैच्चात्तन् कलन्दु * पेशिन पेच्चरवम् केट्टिलैयो पेय्प्पेण्णे *
काशुम्पिरप्पुम् कलकलप्पक्कैपेर्त्तु * वाशनरुङ्कुळलाच्चियर् * मत्तिनाल्
ओशैपडुत्त तयिररवम् केट्टिलैयो * नायकप्पेण्पिळ्ळाय् नारायणन्मूर्ति *
केशवनैप्पाडवुम् नी केट्टे किडत्तियो * तेशमुडैयाय् तिरवेलोरेम्बावाय् ॥ ७ ॥

पेय् पेण्णे	— हे मुग्ध बालिके !
नायक पेण्पिळ्ळाय्	(हमारी गोष्ठीकी) नायिका बननेवाली हे बाले !
एङ्गुम् कलन्दु कीशु-कीशु एन्नु आनैच्चात्तम् पेशिन पेच्चरवम् केट्टिलैयो	सर्वत्र मिलकर "कीशुकीशु" ऐसा कलकल करनेवाले भारद्वाज पक्षियों की भाषण ध्वनी को क्या तुमने नहीं सुना ?
वाश नरुम् कुळल् आच्चियर्	सुगंध भरित केशवाली गोपियों के
काशुम् पिरप्पुम् कलकलप्प	अपनी जाति के उचित आभूषण कलकल ध्वनि करें इस तरह से
कै पेर्त्तु मत्तिनाल् ओशै पडुत्त	बलात्कार से मथानी के मथन की (यानी मथन करने से निकलनेवाली)
तयिररवम् केट्टिलैयो	दही की ध्वनि भी क्या तुमने नहीं सुनी ?
नारायणन् मूर्ति केशवनै	भगवान् नारायण मूर्ति केशव का
पाडवुम् नी केट्टे किडत्तियो	(हम से) कीर्तन किये जानेपर (उसको सुनती हीं) क्या तुम सो रही हो ?
तेशमुडैयाय्	— हे तेजस्विनी (गोपी) !
तिर एलोरेम्बावाय्	— (कवाट) खोलो ॥

इस पद्य से जगायी जानेवाली गोपी के तीन विशेषण दिये जा रहे हैं—मुग्धबालिके, नायिके और तेजस्विनी ! मुग्ध कहने का यह तात्पर्य है कि भगवदनुभवरस जानने पर भी अपनी सखियों से मिलकर भगवत्संनिधि जाने को छोडकर आलसी की तरह अंदर सो जानेवाली। इस संबोधन से झट उठकर बाहर आ जाने की सूचना दी जाती है। नायिका कहने से, गोपियों की इस गोष्ठी की नेता होने के कारण, सबसे पहिले आकर हमको संभालना तुम्हारा कर्तव्य था; इस से विमुख होकर अंदर सो जाना अनुचित है; यों सूचित किया जाता है। तेजस्विनी पुकारने का यह कारण है कि इनसे किया गया हुआ भगवन्नाम संकीर्तन सुनती हुई यह गोपी जब आनंदपरवश होकर निश्चेष्ट लेट गई, तब खिडकी से देखने से उसका शरीर बडा उज्वल प्रतीत हुआ।

प्रभात के दो चिह्न इस गाथा में बताये जाते हैं। पहिला चिह्न है भारद्वाज पक्षियों का कलकल शब्द। पक्षियों का यह स्वभाव है कि प्रातःकाल होते ही वे उठकर आहार कमाने के लिए बाहर चले

जाते हैं; और फिर शामको ही घर लौटते हैं। अतः उनको दिन भर अपने प्रियपत्नी पुत्रादि से विरहित ही रहना पडता है। इस विरह का सहन करने के लिए वे प्रातः उठते ही कुछ समयतक सब मिलकर आनंद से कलकलशब्द करते हैं। यह ध्वनि प्रभात होने का एक स्वाभाविक लक्षण बनता है।

दूसरा चिह्न दधिमंथन की ध्वनि बतायी गई। श्री भागवत में दधिमंथन का बडा रोचक वर्णन किया जाता है—"उद्गायतीनामरविन्दलोचनं व्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः। दध्नश्च निर्मंथनशब्दमिश्रितो निरस्यते येन दिशाममङ्गलम्॥ (गोपियों के, कमलनयन श्रीकृष्ण विषयक गान करने की ध्वनि, एवं दही मंथने की ध्वनि दोनों मिलकर स्वर्गलोकतक पहुँच गई और चारों दिशाओं के अमंगल को दूर करने पर्याप्त बनी।) हमेशा श्रीकृष्ण का ही ध्यान करती रहनेवाली गोपियां उठती, बैठती, काम करती, सभी अवस्थाओं में आपके ही शुभ नाम व चेष्टितों का गान किया करतीं। अत एव दही, दूध, मक्खन इत्यादि बेचने के लिए उनको, टोकरी में, अपने सिरपर रख कर रास्ते में जाते जाते भी ये लोग परवश होकर 'दही, दूध' इत्यादि पुकारने के बदल में गोविंद दामोदर माधव पुकारती फिरतीं हैं। यथा गोविंददामोदरमाधव स्तोत्र में बताया गया—"विक्रेतुकामा किल गोपकन्या मुरारिपादार्पितचित्तवृत्तिः। दध्यादिकं, मोहवशाद-वोचत् गोविन्द दामोदर माधवेति॥" फिर कहने की आवश्यकता नहीं रहती है कि दही मथन के समय में भी ये लोग जरूर भगवान को गायेंगी ही। इस ध्वनि को भी यहां पर समझ लेना चाहिए। दही मथने के समय में गोपियों की गले में पहिने हुवे आभूषण हिलते है और मधुर ध्वनि करते हैं, यह भी स्वाभाविक है। और ये गोपियां प्रातःकाल होने पर ही उठकर इस काम में लगती हैं। अतः प्रभात होने का यह बडा सुंदर लक्षण बताया गया कि दधि मंथन के समय में मथनेवालीयों के आभूषणों की ध्वनि, गानध्वनि, और मथने की ध्वनि, ये तीनों मिलकर व्रज में सर्वत्र व्याप्त हो गई है, जो निद्रा करनेवालों की निद्रा का भी भंग कर डालने समर्थ है।

यह बात सुनकर, अंदर शयन करनेवाली गोपी ने प्रत्युत्तर दिया कि, यह मथन ध्वनि प्रभात का लक्षण नहीं बन सकती है। क्यों कि व्रज में श्रीकृष्ण के प्रकट होने के बाद, यहां पर दूध व दही इतनी अधिक मात्रा में उत्पन्न होती है, कि दिन रात उसका मथन करते ही रहना पडता है; इस काम में संलग्न गोपियां निद्रा को भी छोडकर रातभर जागती हैं। अत एव तुम्हारे मुख से यह शब्द निकला (कै पेर्त्तु)। इस शब्द का अर्थ है बडे परिश्रम से हाथ चलाकर; अर्थात् मथानी की रस्सी खेंचने में गोपियों को बडा क्लेश होता है। क्लेश का कारण क्या है? बस, यही है कि चौवीस घंटा इसी काम में लग्न रहने से ये लोग थक जाती हैं।

परंतु (कै पेर्त्तु) कहनेवाली गोपियों का यह अभिप्राय था कि, श्रीकृष्ण के विरहप्रयुक्त थकावट से ये गोपियां दही मथन में भी अशक्त बन गयी थीं; तो भी अपने अवश्य कर्तव्य काम होने के कारण उसको छोड भी न सकती थीं। अथवा एकांत में दही मथनेवाली इनके पास स्वयं श्रीकृष्णकिशोर आकर

नाना प्रकरकी चेष्टा करता, जिससे यह मथन क्रिया बहुत कठिन बन जाती। तथा च श्रीकृष्ण की हाजरी में एवं गैरहाजरी में भी मथन क्रिया अशक्य बनती।

अंदर से उक्त प्रकार का प्रत्युत्तर पाकर बाहर खडी रहनेवाली गोपियां कहती हैं कि, "अस्तु ; प्रभात होगा या न होगा। हम सब एकत्रित हो कर भगवान का भजन करती हुई तुमारे घर के द्वारपर आकर खडी हैं; नायकमणि की तरह इस गोष्ठी की मुखी रहनेवाली तुम को, तुरंत आकर हमारे से मिलकर हमको संभालना था। यह काम छोडकर तुम अभी क्यों कर सो रही हो ? शीघ्र खोलो।" खोलो शब्द का अर्थ, मुख खोलकर हमारा क्लेशनाशक प्रत्युत्तर दो ; कवाट खोलकर हमें अंदर बुला लो ; अथवा, अंततः शरीर पर ढांका हुआ चादर खोलकर (यानी हठाकर) तुम्हारे तेजस्वी विग्रह का दर्शन दो इत्यादि होते हैं।

ध्वन्यर्थ का विवरण। इस गाथा में संबोधन है—"हे नायकमणि!" इस से यह अर्थ सूचित किया जाता है कि हमारी गुरुपरंपरा में नायकमणि के समान विराजमान श्रीरामानुजस्वामीजी जैसे महात्मा का उत्थापन यहां पर किया जा रहा है। इन को उन्मत्तबालिका पुकारने का यह तात्पर्य है कि भगवान पर सीमातीत भक्ति करनेवाले आप सर्वथा लोकविलक्षण रहने से संसारी जनों को उन्मत्त जैसे प्रतीत होते हैं।

प्रातः काल के लक्षणतया भारद्वाजपक्षियों का कलकल शब्द कहा गया है। भारद्वाज शब्द व्यंग्य मर्यादा से अनेक अर्थों का सूचक होता है। कवियों का कहना है कि भारद्वाज पक्षियों की आंख बडी सुंदर होती हैं। आंख तो देखने का साधन है। सुंदर आंख कहने से तत्व जानने का साधन शास्त्रज्ञान सूचित किया जाता है। तथा च ठीक शास्त्र में निष्णात महात्मालोग मिलकर जो आपस में शास्त्रार्थ की चर्चा करते हैं, यह शब्द यहां पर सूचित किया जाता है। एवं काठक श्रुति में बताया गया है कि भरद्वाजमुनी ने बडी तपस्या से तीन सौ वर्ष की आयु पाकर उस लंबे समय में वेदों का खूब अध्ययन किया। एत-दनुसार वेदादि शास्त्रों का पूर्ण अध्ययन करनेवाले बडे विद्वान महापुरुषों की सूचना मिलती है। एवं भारद्वाज पक्षी की कंठध्वनि सुमधुर बतायी जाती है। अतः इस तरह से अत्यंत मधुर कंठवाले गायकमणि श्रीपाणसूरि, जयदेवकवि इत्यादि परमभक्तों की वाणी सुनना ही अपना कर्तव्य सूचित किया जाता है। एवं भारद्वाज पक्षियों के परस्पर संमिलित हो कर बोलने के वृत्तांत का यह तात्पर्य है कि हमारे पूर्वाचार्यगण परस्पर विरोध छोडकर सब एककंठ से शास्त्रार्थ का निर्णय करते हैं। अर्थात्, पंडितों के वचन में दो प्रकार होते हैं—कदाचित् एक पंडित की उक्ति से विरुद्ध ही दूसरा कुछ कहेगा; और कदाचित् अनेक पंडित मिलकर एक ही अर्थ का वर्णन करते सब एकरस से बात करते हैं। पहिली रीति का दृष्टांत है व्यास व जैमिनि। व्यासजी ने ब्रह्मसूत्र में सकल जगत्कारण एवं समस्त कल्याणगुणसागर भगवान का वर्णन किया; आपके शिष्य जैमिनी ने तो पूर्वमीमांसा सूत्र की रचना कर उस में निरीश्वरवाद की स्थापना की। गुरुशिष्यों

के ग्रंथ में यह कैसा विरोध हुआ ! परंतु हमारे आचार्यों की गोष्ठी में कभी ऐसा मतभेद हुआ नहीं ; वे सब एकमत होकर ही अर्थ निर्णय करते थे । अतः यहां पर यों सूचित किया जाता है कि परस्पर सहमत हो कर अर्थ निर्णय करनेवाले महाचार्यों की वाणी का श्रवण करना ही परमपुरुषार्थ है ।

"क्या तुमने पक्षियों का भाषण नहीं सुना ?" कहने की जगह, "क्या तुमने भाषण की ध्वनि नहीं सुनी ?" कहना अर्थपूण है । शास्त्रों में, एवं तदनुसारी महात्माओं के वचन में ऊपर से दीखनेवाले वाच्यार्थ से बढकर दूसरा एक व्यंग्यार्थ मिलता है, जो ही उक्त वचन का परमतात्पर्य है । ऐसे व्यंग्यार्थ को ढूंढ कर जान लेना ही बुद्धिमानों का काम होगा । अत एव हमारे आचार्य श्रीमदष्टाक्षर मंत्र के अंतर्गत प्रणव में दो अर्थों का वर्णन करते हैं—(१) यह जीवात्मा भगवान् का शेष, यानी दास है ; यह वाच्यार्थ है ; और (२) यह जीव भगवद्भक्तों का, यानी भागवतों का शेष है ; यह ध्वन्यर्थ है । इन में ध्वन्यर्थ भागवतशेषत्व ही प्रधान है । अत एव श्रीपरकाल सूरि ने गाया कि (मत्तेल्लाम् पेशिलुम् निन् तिरुवेट्टेलुत्तुम् कत्तु नान्—उत्तदुमुन्नडियार्क्कडिमै) । अर्थात् "हे कृष्णपुर के स्वामिन् भगवन् ! आपके अष्टाक्षर मंत्र के अभ्यास से मैंने भागवतशेषत्वरूप इस एक अर्थ ही जाना ।" प्रकृत तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध में व्यंग्यार्थों की सत्ता और उनका प्रामुख्य इस शब्द से सूचित किया जाता है ।

प्रभात होने का दूसरा लक्षण जो बताया गया है, दही की मथनध्वनि, इस से भी कतिपय विशेष अर्थ सूचित किये जाते हैं । तथा हि—दही से सारवस्तु निकालने के लिए उसका मथन किया जाता है । इस तरह से महान आचार्य वेदसागर का मथन कर उससे सारभूत अर्थों को निकालते हैं । "मुमुक्षुप्पडि" नामक रहस्य व्याख्यान ग्रंथ में श्रीलोकाचार्य स्वामीजी लिखते हैं कि, जैसे तीन घडों में अलग अलग दही भरकर मक्खन निकाल कर मिला देते हैं, इसी तरह से तीनों वेदों के मथन से निकाले हुवे अकार-उकार मकारों को मिलाकर यह प्रणव बना हुआ है । मथनध्वनि शब्द से प्रणव जैसे सारतम शब्दों के व्यंग्यार्थ सूचित किये जाते हैं । तथा च यह तात्पर्य निकला कि समस्तशास्त्रों के ठीक वेत्ता महान आचार्य प्रणवादि रहस्यों के ध्वन्यर्थों का विवरण कर रहे हैं ; उनको सुनना आवश्यक है ; अगर तुमने अभीतक उनको नहीं सुना, तो अब योग्य अवसर मिला है ; सुनने आ जा ।

इस प्रकरण में हस्तभूषण ध्वनि कहने से हस्तों का आभूषण अंजलि बतायी जाती है । "कृष्णांघ्रितुलसी मौलिः पट्टं कृष्णाभिवन्दनम् । कुण्डले कृष्णचरितश्रवणं कङ्कणोऽञ्जलिः ॥" इत्यादि । अंजलि की ध्वनि कहने से अंजलि के साथ किये जानेवाला नमो नमः शब्दोचारण, अथवा दूसरों से की जानेवाली इनकी प्रशंसा इत्यादि को समझना चाहिए ।" नित्याञ्जलिपुटा हृष्टा नम इत्येव वादिनः" इत्यादि । एवं मथन करनेवाले के केश का गंध जो उपवर्णित है इसका तात्पर्य है शिर से किये जानेवाला सविनय प्रणाम । "तच्छिरो यत्प्रणमति," "पट्टं कृष्णाभिवन्दनम्" इत्यादि । इसका तात्पर्य है भगवद्भागवतों की संनिधि में गर्व छोडकर, अत्यंत नम्र रहना ।

आगे, जो पूछा जाता हैं कि, हम तो नारायण, केशव भगवान का कीर्तन कर रहे हैं ; क्या इस को सुनते सुनते ही तुम सो गया ? इससे यों सूचित किया जाता है कि वारंवार अभिज्ञों से भगवान के एवं तत्समान आचार्यों के दिव्य नामों एवं चरित्रों को सुनते ही रहना, और उससे प्रभावित हो कर मस्त रहना, यही परमपुरुषार्थ है । आचार्य तो साक्षात् भगवान ही माने जाते है, यह अर्थ पूर्व में ही कहा गया ।

बाद में जो संबोधन है "तेजस्विनी !" इस से आचार्यनिष्ठाबल से, एवं उनसे उपदिष्ट तत्वार्थ ज्ञानबल से शिष्य के शरीर पर छा गया हुआ बडा तेज कहा जाता है । "रूपमेवांस्यैतन्महिमानं व्याचष्टे," ब्रह्मविद इव ते सोम्य! मुखं भाति" इत्यादि । अंत में "खोलो" कहने का यह तात्पर्य है कि अकेली आचार्यगुणानुभव करने की, अथवा उनसे उपदिष्ट सदर्थों का चिंतन करने की रुचि छोडकर हम से भी मिलकर करो ॥ (७)

(गाथा) कीऴ्वानम् वेळ्ळेन्नु एरुमै शिरुवीडु * मेय्वान् परन्दन काण् मिक्कुळ्ळ पिळ्ळैहळुम् *
पोवान् पोहिन्नारै प्पोहामल् कात्तु * उन्नैक्कूवुवान् वन्दु निन्नोम् * कोतुहलमुडैय
पावाय् एऴुन्दिराय् पाडिप्परै कोण्डु * मावाय् पिळन्दानै मल्लरै माट्टिय *
देवाधिदेवनै शेन्नु नाम् सेवित्ताल् * आवावेन्नारायुन्दरुळेलोरेम्पावाय् ॥ ८ ॥

- कोदुहलमुडैय पावाय् - हे कुतूहलवाली बाले !
- कीऴानम् वेळ्ळेन्नु - पूर्वदिशा में संध्याप्रकाश हो गया ;
- एरुमै मेय्वान् शिरुवीडु परन्दन काण् - भैंस प्रातःकाल का घास चराने के लिए छोटे बगीचे निकल गईं ;
- पोवान् पोहिन्नारै - जाने के लिए प्रस्थित
- मिक्कुळ्ळ पिळ्ळैहळुम् - अन्य बालिकाओं को
- पोहामल् कात्तु - जाने से रोककर
- उन्नै कूवुवान् - तुमको बुलाने के लिए
- वन्दु निन्नोम् - (तुम्हारे घर पर) आकर हम खडी हैं ;
- एऴुन्दिराय् - (अतः हम से मिलने के लिए) उठो ;
- पाडि परै कोण्डु - (श्री कृष्ण गुणों को) गाकर, (आप से) भेरी लेकर,
- मा वाय् पिळन्दानै - घोडे का मुख चीर डालनेवाले,
- मल्लरै माट्टिय - (और) मल्लों का संहार करनेवाले
- देवादि देवनै - (उन) देवदेव के पास
- शेन्नु नाम् सेवित्ताल् - जाकर हम अगर (उनकी) सेवा करेंगी, तो (आप)
- आरायुन्दु - (हमारी अपेक्षा का) परिशीलन कर
- आ आ एन्नु अरुळ् एलोरेम्बावाय् - हा! हा! कहते हुवे कृपा करेंगे ॥

इस पद्य में दूसरी एक गोपी यों जगायी जाती है—पूर्वदिशा में संध्याप्रकाश छा गया ; तुहिन से गीला घास चरने के लिए भैंस छोटे बगीचे गयीं ; दूसरी गोपबालिका भी व्रत का संकेतस्थल जाने लग

गयीं थीं; परंतु हम उनको रोककर, तुमको भी अपने साथ ले जाने आ गयीं हैं। अतः तुम उठकर शीघ्र आजा। हम सब केशिहंता एवं चाणूरादिमल्लनिरासक श्रीकृष्ण का यशोगान करते अगर आपके पास जाएंगी, तो आप जरूर अत्यादर से हमारे साथ कुशलप्रश्नादि वार्ता कर, हमारी इच्छा को भी कृपया पूर्ण कर देंगे।

इस गाथा में संबोधन है (कोदुहलमुडैय पावाय्) यानी हे कुतूहलवाली बालिके! कुतूहल शब्द का अर्थ है अधिक आशा। यह आशा दो तरह की हो सकती है—भगवान के विषय में आशा, और (२) भगवान से की जानेवाली आशा। तथाच इस संबोधन का अर्थ यह होगा कि, "हे भगवान के विषय में अत्यधिक आशा रखनेवाली बाले!" अथवा, "हे भगवान की विशेष आशा का पात्र बननेवाली बाले!" "प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः" इत्यादि भगवद्गीता के अनुसार भक्त लोग भगवान को प्यार करते हैं, और भगवान भक्त को प्यार करते हैं। दोनों आवश्यक है।

प्रभात होने के चिह्न तीन बताये जाते हैं। पहिला चिह्न है अरुणोदय हो जाना, जिसके फल में पूर्वदिशा में संध्याप्रकाश छा जाता। दूसरा चिह्न है भैंसों का घरसे निकलकर घास चरने बाहर जाना। इसका यह तात्पर्य है—सूर्योदय से पहिले ही तुषार से शीतल घास चरना भैंसों के लिए अच्छा माना जाता है। अतः गोप लोग इस काम के लिए अपने अपने घरके पास एकैक छोटा बगीचा रखते हैं और बडे सबेरे भैंसों को शाला से लेकर उधर छोड देते हैं। अतः यह भी प्रातःकाल होने का एक लक्षण होगा ही। तीसरा लक्षण है सब गोपियों को अपने व्रतानुष्ठानका संकेतस्थल जाना। इसका यह तात्पर्य है—बाहर खडी होकर जगानेवाली गोपियों ने कहा कि, "देखो! प्रातःकाल हो गया; उठो; व्रत करने, अपने संकेतित स्थल जाएंगी। तब अंदर सोते रहनेवाली ने प्रत्युत्तर दिया कि, "अभी प्रातःकाल नहीं हुआ है। तुम दो चार व्यक्ति इधर आयी हो; दूसरी सब अपने अपने घर पर ही अभी सो रही हैं।" फिर जगानेवालियां बोलीं—"दूसरी सभी गोपियां संकेतस्थान जाने चलीं गयीं। तुम एक ही सो रही हो।" इससे कुछ कुपित अंदर की गोपी बोली—"हा! सब चली गयीं? मुझ को छोडकर ही वे कैसे गयीं? सब के जाने के बाद मैं करूंगी तो क्या? अतः मैं बाहर न आऊंगी।" तब बाहर जगानेवाली ने कहा—"न न; सब जाने लग गयी थीं तो सही; परंतु उतने में हमें मालुम पडा कि तुम आयी नहीं। अतः उनको भी जाने से रोककर हम तुम्हारे यहां आयी हैं। अतः तुम जागो और उठकर हमारी गोष्ठी में मिल जा।"

इस प्रकरण में (पोवान् पोहिन्नारै)—यानी जाने के लिए जानेवाली (यानी प्रस्थित) शब्द परम विलक्षण है। कहना उचित था कि संकेतस्थान के लिए, (माने संकेतस्थान पहुँचने केलिए) जानेवाली। अर्थात् जाने का प्रयोजन, यानी फल तो संकेतस्थल पहुंचना है। परंतु यहां पर बताया गया है कि जाने का फल भी जाना ही है। इसका यह तात्पर्य है कि भगवत्संनिधि में जाना स्वयं फल रूप ही है; न तु

उसके लिए दूसरा फल ढूँढने की आवश्यकता रहती है। जैसे श्रीवेंकटाचलयात्रा करना स्वयं प्रयोजन माना जाता है।

सब मिलकर आगे क्या करना चाहिए, इस प्रश्न का प्रत्युत्तर दिया जाता है (पांडि) इत्यादि से। हमें कर्तव्य काम दूसरा क्या होगा? भगवान के शुभ नामों का और दिव्य चेष्टितों का भजन करना और आपसे अपने इष्टार्थ पाना। यहां पर दो दिव्य लीला कथित है—केशिवध व मल्लसंहार। कंससे भेजा हुआ केशिनामक एक असुर घोडे के रूप से श्रीकृष्ण को मारने के लिए आया था। श्रीकृष्ण भी अपने बाहु को उस घोडे के मुख में घुसा दिया; परंतु वहां पर पहुंचते ही भुज बहुत बढ गया, जिसके फल में असुर का मुख दो भाग में चीर डाला गया और असुर भी मर गया। मल्लवध का वृत्तांत भी प्रसिद्ध है। कपटबुद्धि से, धनुर्याग के बहाने कंस से बुलाये गये श्रीकृष्ण व बलराम जब मथुरा पधारे, तब चाणूर, मुष्टिक आदि अनेक मल्ल आपके साथ लडने आये और आपसे मारे गये। दूसरा भी एक मल्लवध वृत्तांत है— पांडवदूत बनकर संधि कराने के लिए हस्तिनापुर में दुर्योधन के वहां पधारनेवाले श्रीकृष्ण ने वहां अपने दिये गये हुए आसन के नीचे एक गड्ढे में गुप्त रूप में अवस्थित आयुधधारी अनेक भटों का एकदम संहार कर डाला।

(देवादिदेवनै) श्रीकृष्ण के अवतार लेते ही देवकी जी ने आपसे विनती की कि "जातोऽसि देवदेवेश!" अतः यही आपका पहिला नाम प्रतीत होता है। दो प्रकार से इसका अर्थ बन सकता है— (१) देवों का आदिदेव, अर्थात् सबका (माने जगत का ही) मूलभूत देव। इससे उपनिषदुक्त भगवान का जगत्कारणत्व सूचित किया जाता है। (२) देवों का अधिदेव, अर्थात देवों से भी श्रेष्ठ देव, अथवा देवों का भी स्वामी देव। इससे आपका सर्वेश्वरत्व बताया जाता है। दोनों रीति से आपका परत्व कहा जाता है।

(नाम् शेन्नु सेवित्ताल्)—अगर हम ही भगवान के पास जाकर आपकी सेवा करेंगी तो। समस्त चेतनों के माता पिता इत्यादि सकलविध बंधु होने के कारण, भगवान सबकी रक्षा करने में हमेशा उद्यत तो हैं ही। तथापि संसारी मानव आपसे दूर दूर ही भागते हुवे, आपकी रक्षा का तिरस्कार ही कर बैठे हैं। इसलिए भगवान भी उनकी रक्षा न कर सकते हैं। इस अवस्था को छोडकर अगर कोई रक्षा मांगने का अभिनय भी क्यों न हो, दिखाते हुवे, आपके पास जाता, तो उसपर आप बहुत खुश हो जाते हैं। श्रीरामावतार में गुहदेवजी से आपने कहा कि, "हे गुह! अपने पादों से यहां तक चलते आकर, स्नेह दिखाने से तुमने मेरी बडी सेवा की; और क्या बाकी है?" (पद्भ्यामभिगमाच्चैव स्नेहसंदर्शनेन च) इत्यादि।

इस पर यह प्रश्न उठा, कि "यह तो ठीक है; हम बडे प्रेम से भगवान का भजन करते आपके पास जाती हैं; परंतु कौन दावा कर सकता है कि परिपूर्ण आप जरूर हमारी प्रार्थना सुनेंगे और कामना

पूर्ण करेंगे ? इस प्रश्न का प्रत्युत्तर दिया जाता है (अवावेन्नु) इत्यादि से। भगवान का यह स्वभाव है कि आप स्वयं भक्तों के पास पधारकर उनके सुखदुखों को पूछकर बडे आदर से उनके दुःख को दूर करते हैं। कदाचित् किसी कारणवशात् आपको ऐसा करने का अवकाश न मिलें, और भक्त ही स्वयं अपना दुःख सुनाते हुवे और रक्षा मांगते हुवे आपकी संनिधि में जावें, तो आप इससे बहुत दुःखी और लज्जित हो जाते हैं, और "हा! हा! यह क्या हुआ?" कहते हुवे और शीघ्रता से उनका काम कर देते हैं। श्रीरामायण आरण्य कांड में इसका एक बडा सुंदर दृष्टांत मिलता है। श्रीरामचन्द्र भगवान के दंडकारण्य पधारते ही, तत्रत्य महर्षि लोग सब मिलकर आपसे प्रार्थना करने लगे कि "यहां पर बहुत से राक्षस लोग हमको बडा दुःख दे रहे हैं; अतः आप कृपया उनसे हमारी रक्षा करिए।" तब भगवान ने प्रत्युत्तर दिया—"प्रसीदन्तु भवन्तो मे ह्रीरेषा हि ममातुला। यदीदृशैरहं विप्रैरुपस्थेयैरुपस्थितः॥" यानी, आप मुझे क्षमा कर दीजिए; यह तो मेरे लिए बहुत लज्जादायक हो गया कि, आप जैसे महात्मा लोग, जिनके पास मुझे जाना था, मेरे से कुछ मांगते हुवे यहां पधार गये। अर्थात् स्वयं आपके पास आकर आपकी सेवा में उपस्थित हो जाना मेरा कर्तव्य था; परंतु दौर्भाग्य से मैं उस कर्तव्य से विमुख रह गया; जिसके फल में अब आपको ही अपने सुकुमार श्रीपादों को दुःख देते यहां पर पधारना पडा। अतः इस अपराध के लिए मुझे क्षमा कर दीजिए।" अतः हालमें गोपियां कहती हैं कि ऐसे भक्तवत्सल भगवान के पास, आपका नामसंकीर्तन करते हुवे अगर हम जाएंगी, तो आप हमसे, "अहो गोपियां! हाय! यह तो मेरी भूल हो गयी, कि मैंने स्वयं तुम्हारे पास आकर तुम्हारी अपेक्षा जानने की चेष्टा नहीं की; इसके बदले में इस धनुर्मास के अतिशीतल प्रातःकाल में उठकर, सब सखियों को जगाकर, अतिसुकुमार अपने पादों को भी दुःख देती हुई तुम सब आ गयीं न? हा! हा! यह तो बडा अनुचित ही गया। परंतु काम हो जाने के बाद, अब इसके लिए पछताने के सिवाय दूसरा क्या किया जा सकता है? शीघ्र कहिए तो सही कि क्या आप सब कुशल है, और इतनी दूर आनेका क्या कारण है? मैं आपके लिए क्या करूँ?" इत्यादि। तथाच भक्तों पर भगवान का सीमातीत प्रेम इससे बताया जाता है। भगवान के मुखारविंद से निकलती इस मनोहर वाणी सुनना ही अपने लिए परमपुरुषार्थ है॥

ध्वन्यर्थ का विवरण॥ इस पद्य में भी आचार्य सेवा के लिए एक गुरु भाई बुलाया जाता है। वह ऐसा एक महान है कि आचार्य भी इसके अभाव में दूसरों पर कृपा न करेंगे। ऐसा है इस शिष्य का और आचार्य का परस्पर प्रेम। इस विशेष का सूचक शब्द यह है—(कोदुहलमुडैय) यानी, हे कुतूहलवाले, आचार्यपरतंत्र महात्मा! अत एव इसके विना ही त्वरासे आचार्य संनिधि जाने प्रस्थित दूसरे चेलों को भी रास्ते में ही रोककर, इसको बुलाने के लिए ये आये हैं।

प्रातःकाल के जो दो लक्षण बताये जाते हैं, उनका यह तात्पर्य है कि आचार्यपादाश्रयण से हमारा सब अज्ञान नष्ट हो जाएगा, और सत्वगुण का, एवं ज्ञानप्रकाश का खूब उदय होगा। ज्ञानप्रद आचार्य

रूपी श्री हयग्रीव भगवान, "प्राची सन्ध्या काचिदन्तर्निशायाः" (यानी हृदय में रहनेवाली अज्ञानरूपी रात्रि की पूर्व संध्या हैं भगवान्) पुकारे जाते है। पूर्वसंध्या, थानी पूर्वदिशा में संध्याप्रकाश होते ही हम जान लेते हैं कि रात्री सब थोडी देर में समाप्त हो जाएगी। इसी तरह से अपने हृदय में आचार्य की कृपा से कुछ सत्वगुण का उदय होने लगा तो जाना जा सकता है कि अब अज्ञानरूप रात्री समाप्त होनेवाली है। अतः यहां पर संध्याप्रकाश शब्द से सत्वगुण का उदय सूचित किया जाता है। इस प्रकाश से दूर होनेवाला तम ही भैंस कहा जाता है। भैंस तो काले रहते हैं; अतः तम का प्रतीक हो सकते हैं। यह तम भी सत्व का प्रकाश होने से हमको छोडकर क्षुद्रविषयांतर में प्रवीण मामूली संसारी जनों के पास चला जाता है। तमोगुण का कार्य है क्षुद्रविषयों के अनुभव में मानव को लगाना। तथाच, यह तात्पर्य हुआ कि तामस पुरुषों को दूर निकालकर सात्विकों को उपदेश देने की प्रतीक्षा कर रहे हैं हमारे आचार्य। अतः हमें अतिशीघ्र ही आपकी संनिधि जाना चाहिए।

आगे भगवान के विशेषणतया जो तीन शब्द प्रयुक्त हुवे हैं, ये आचार्य में भी लगते हैं। "इन्द्रियाणि हयानाहुः" इत्याद्युक्त प्रकार से चक्षुरादि इंद्रिय घोडे कहलाते हैं। इसका कारण यह है कि घोडे की तरह ये भी हमेशा इधर उधर दौडते ही रहते हैं, और उससे इनको रोकना भी कठिन है। परंतु आचार्य, न केवल अपने इंद्रियों को, किंतु अपने चेलों के इंद्रियों को भी ऐसे अमार्ग में जाने से रोक सकते हैं, अर्थात् इंद्रियों को जीतते हैं। यही केशिवध का संकेत है। मल्लवधवृत्तांत से द्वंद्व पर विजय सूचित किया जाता है। काम क्रोध, लोभ मोह, मद मात्सर्य, अहंकर ममकार, सुखदुःख, शीतोष्ण, लाभा लाभ, जयापजय, इत्यादि, द्वंद्व कहलानेवाले पदार्थ, मल्ल की तरह अत्यंत बलवान होकर मानव को एकदम जीत लेते हैं। परंतु आचार्य अपने बल से इनको भी जीत डालते हैं। ऐसे महामहिमवाले० परमभक्ताग्रेसर आचार्य को जब स्वयं भगवान ही "ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्" कहते हुए अपने से भी बडे मानते हैं, तब ऐसे आपको देवाधिदेव कहना उचित ही है।

महान आचार्यों में श्रीरामानुजाचार्य स्वामीजी जैसे कोई कोई कृपामात्रप्रसन्नाचार्य भी होते हैं जो ऐसे मानते हैं कि, "विवेक के अभाव से संसार सागर में मग्न इन हतभाग्य मानवों के पास स्वयं जाकर, उनका सदुपदेश देते हुवे, उनका उद्धार करना हमारा पहिला कर्तव्य है; अतः किसी प्रकार से ऐसा करना ही चाहिए।" ऐसे परम दयालु आचार्य के पास अगर शिष्य ही जाकर उपदेश देने की प्रार्थना करें, तो आप बहुत खुश तो होंगे हीं; इसके अतिरिक्त, यों विचार कर, कि "अहो! यह मेरे से भी आगे चढ गया; मैंने इसको सुधारने की चेष्टा नहीं की; इतने में यह स्वयं मेरे पास आगया," आप शिष्यका खूब स्वागत करेंगे, कुशलप्रश्न करेंगे और बडी कृपा से उसके अपेक्षित आत्मोद्धार का उपाय बता देंगे ॥ (८)

(गाथा) तूमणि माडत्तु शुत्तुम् विळक्केरिय * धूपम् कमळ तुयिलणैमेल् * कण्वळरुम् *
मामान्मगळे! मणिक्कदवम् ताळ् तिरवाय् * मामीरवळै येलुप्पीरो * उन्मगळ्तान्

ऊमैयो अन्निचेविडो वनन्दलो * एमप्पेरुन्तुयिल् मन्दिरप्पट्टाळो *
मामायन् माधवन् वैंहुन्दनेन्त्रेन्नु * नामम् पलवुम् नविन्नेलोरेम्बावाय् ॥ ९ ॥

तू मणि माडत्तु	अत्यंत परिशुद्ध मणिमय महल में	अन्नि चेविडो	-अथवा क्या बधिर है ?
शुत्तुम् विळक्कु एरिय	चारों ओर दीप जलते रहें, और	अनन्दलो	-(अथवा) क्या आलसी है ?
तूपम् कमळ	धूप की गंध फैल जाय, ऐसी दशा में	पेरुम् तुयिल् एमप्पट्टाळो	(अथवा) विशाल शय्या पर क्या कैदी बनायी गयी है ?
तुयिल् अणैमेल्	- मृदुतर शय्या पर	मन्दिरप्पट्टाळो	(अथवा) क्या मंत्र से बद्ध है ?
कण् वळरुम्	- शयन करनेवाली	मामायन् मादवन् वैकुन्दन् एन्नेन्नु	महामाय, माधव, वैकुंठ इत्यादि
मामान् महळे	- हे मामाजी की पुत्री !	नामम् पलवुम्	भगवान के अनेक नामों का (हमने भी) कीर्तन कर चुका ॥
मणि कदवम् ताळ् तिरवाय्	मणिमय कवाट की अर्गला खोलो	नविन्नु एलोरेम्बावाय्	(अथवा भगवान के नामों का कीर्तन कर) तुम अपनी पुत्री को जगा दो ॥
मामीर्	- हे मामी जी !		
अवळै एळुप्पीरो	- उसको जगा दीजिये ;		
उन् महळ् तान् ऊमैयो	-तुम्हारी पुत्री क्या गूंगी है ?		

इस पद्य में गोदादेवी व्रज की गोपियों में अपने मामा की पुत्री को जगाती है। श्रीविल्लिपुत्तूर में ब्राह्मणोत्तम पेरिआळ्वार की पुत्री के रूप में अवतीर्ण गोदादेवी, व्रजनिवासिनी, श्री कृष्णप्रिया एक गोपी को अपने मामा की पुत्री मानती है ! यहां पर ऐसी एक शंका होगी कि इस दिव्यप्रबंध प्रोक्त कथा के सभी पात्र, गोप गोपी इत्यादि व्रज के लोग है। गोदा देवी तो कथा कहनेवाली कवयित्री मात्र हैं ; अर्थात् गोपियों के संवाद का अनुवाद करनेवाली मात्र हैं। तथा च, "हे मामा की पुत्री," ऐसा संबोधन करने वाली तो वास्तव में व्रज की एक गोपी है, न तु स्वयं गोदादेवी। हाँ, इतनी बात तो सत्य है कि वास्तव में ये गोपियों ने अपनी व्रजभाषा में बात की थी, परंतु गोदादेवी अपनी भाषा में, यानी द्राविडी में, और तत्रापि सुंदर पद्य के रूप में उसका अनुवाद कर रही हैं। अतः यह कैसे कहा जा सकता है कि गोदादेवी व्रज में अपने एक मामा की पुत्री का संबोधन करती हैं ? सुनिए। यह बात तो सत्य है कि गोदादेवी गोपियों से अनुष्ठित मार्गशीर्ष व्रत का अपनी वाणी से अनुवाद करती है, जैसा वाल्मीकी ने श्रीरामायण को रचा। परंतु दोनों में कुछ अंतर है। इस ग्रंथ की अवतारिका में स्पष्ट बताया गया कि श्रीकृष्णविरह से संतप्त गोदादेवी, कुछ शांति पाने के लिए श्रीकृष्ण की (एवं गोपियों की) एक विलक्षण लीला का अनुकरण करने लगी ; और ऐसे करते आपकी भावना इतनी बढ गयी कि आप के चलन वलन, भाषा इत्यादि सब, और अंततः आप के केशपाश की गंध भी गोपियों के जैसे हो गये। तथा च, स्वयं भी व्रज की एक

गोपी बनकर ही आप इस दिव्यप्रबंध का गान कर रही हैं। अत एव गोपियों से अविदित, मल्लवध इत्यादि अनेक लीलाओं का वर्णन यहां पर किया जाता है। अर्थात्, इस मार्गशीर्ष व्रतानुष्ठान के समय में श्रीकृष्ण व्रज में ही विराजमान थे; मल्लवध तो आपके व्रज छोडकर मथुरापुरी जाने के बाद संपन्न हुआ किया। फिर इस वृत्तांत का वर्णन गोपियों से किस तरह से किया जा सकता? अतः यों जानना चाहिए, कि गोपीभावना के साथ गोदादेवी की, अपनी निजी भावना भी मिल गयी है। एवं च आपके मन में यह आशा जरूर हो सकती है कि व्रज में, किसी गोपी से मेरा शारीरक संबंध हो।

यहां पर दूसरी एक शंका हो सकती है कि, जब सब ज्ञानी लोग, अपने अनेक दोषयुक्त, पांच भौतिक शरीर को हेय मानते हुवे, उससे संबंधित बंधुओंको भी आभासबंधु पुकारते हुवे, उनकी उपेक्षा करते हैं; तब ज्ञानियों में अग्रेसर गोदादेवी कैसे देहसंबंध का आदर कर सकतीं? संक्षेपतः इसका प्रत्युत्तर यह है, कि चेतनाचेतन रूप समस्त पदार्थों को भगवान की विभूति माननेवाले ज्ञानी लोग, किसी पदार्थ की उपेक्षा, यानी तिरस्कार नहीं कर सकते हैं। तो भी, अपना शरीर, बंधु, धन, दौलत आदियों से इस लिए वे घृणा करते हैं, कि ये सब आत्मा को भगवान के भजन, सेवन इत्यादि से खेंच कर सांसारिक विषयोपभोग में, और कामक्रोधादि में फंसाते हैं। परंतु शरीर के विना कोई भगवान की सेवा नहीं कर सकता; द्रव्य के विना भी भगवान की एवं भागवतों की सेवा नहीं बन सकती; और दूसरे मानवों के सहकार मिले विना भी ये काम नहीं बनते। अतः भगवद्भागवताचार्य कैंकर्य में उपयुक्त सभी चीजें उपादेय होती हैं, और इस में अनुपयुक्त, अथवा इस के विरुद्ध सब पदार्थ त्याज्य होते हैं। एवं भगवद्भक्तों का संबंध सब तरह से आत्मकल्याणकारक है। अत एव बडे ज्ञानियों ने, बृंदावन में गोपियों की पादधूली से पवित्रित, रेत, घास, गुल्म, लता आदि स्थावर जन्म पाने की आशा की। श्री पराशर भट्टर स्वामीजी ने श्रीरंगक्षेत्र में निवास करनेवाले एक कुत्ते का जन्म मांगा—"रंगेश्वर त्वत्पुरमाश्रितानां रथ्याशुनामन्यतमो भवेयम्"। "अहं कदंबो भूयासं, कुंदो वा यमुनातटे" "आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्याम् बृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्। या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥ इत्यादि॥ एव समस्त सांसारिक वासनाओं को, एवं देहबांधवों को एकदम छोड कर, संन्यासी बननेवाले श्रीयामुनाचार्य स्वामीजी, अपने समस्त ज्ञान व श्रेय का मूल होनेके कारण, परमाचार्य श्रीमन्नाथमुनि स्वामीजी को, "पितामहं नाथमुनिम्" पुकारते है। अतः इस अर्थ को सुदृढ जान लेना चाहिए कि भगवद्भागवत सेवा में उपयुक्त पत्नी पुत्र, धन कनकादि सभी उपादेय होते हैं, और परमभागवतों के साथ शरीर संबंध भी अत्यंत लाभकारक, माने आत्मा की उन्नति का साधन, एवं स्वयं परमपुरुषार्थरूप होता है। अतः हाल में श्रीकृष्ण भगवान के परिपूर्ण अनुग्रह का लक्ष्यभूत एक गोपी से शरीर संबंध चाहती हुई गोदादेवी ने अपने सीमातीत भगवत्प्रेम का बडा उचित ही काम किया। अस्तु।

ये सब गोपियां समवयवाली एवं परस्पर अत्यंत प्यार करनेवाली सखी होने के कारण, एक दूसरी से स्तुति निंदा उपहास इत्यादि सभी चेष्टाएं वगर संकोच कर सकती हैं। इनके सप्रेम संवाद में स्तुति

और निंदा दोनों एक समान होती हैं। अतः इस पद्य में, जगा जाने पर भी उठकर अपनी गोष्ठी आने में विलंब करनेवाली एक सखी पर ये गोपियां आक्षेप करती हैं। संबोधन ही आक्षेप का सूचक है। चारों ओर मंगलदीपों से अलंकृत, सुगंध धूप से वासित, दिव्य महल में शीतल मृदु विशाल शुभ्र एवं सुगंधि शय्यापर, जो कि भगवान से वियुक्त विरहियों को अत्यंत कठोर लगेगी, यह गोपी किस तरह से सानंद शयन कर सकती है? शायद भगवान भी यहां पर विराजमान है। ऐसा आक्षेप पहिले पाद से सूचित किया जाता है। वस्तुतस्तु परम भागवतों का मकान एवं वहां पर विद्यमान सभी शयनासनादि पदार्थ, भगवद्भक्त से संबंधित हो जाने के कारण, भागवतनिष्ठ महात्माओं की दृष्टि में अत्यंत श्रेष्ठ ही प्रतीत होते हैं। अतः भागवतों की एक नन्हीसी झोपडी भी महान प्रासाद ही पुकारा जाता है। इस तरह से भी प्रकृत वर्णन का औचित्य जाना जा सकता है।

एवं संबोधित तथा कवाट खोलने प्रार्थित होने पर भी उस गोपी ने प्रत्युत्तर तक नहीं दिया। उसके पास उसकी माता शयन करती दीख पडी। अतः ये गोपियां उससे पूछती हैं कि "हम इतनी लोग आकर पुकार रहीं हैं; परंतु तुम्हारी पुत्री कवाट खोलती नहीं, मुख भी खोलती नहीं। क्या वह श्रवणेंद्रिय से विरहित है? अथवा वागिंद्रिय से शून्य है? अथवा किसी मंत्रवादी ने उसको शय्या पर ही इस तरह से बंधित कर डाला है, जिससे वह उठ न सकेगी और बोल भी न सकेगी? तब माता कहती है कि "यह कैसी बात है? वृथा आक्षेप करने से क्या लाभ है? भगवन्नाम संकीर्तन करने से यह कुमारी तुरंत उठकर तुम्हारी गोष्ठी में मिल जाएगी। अतः भजन करो।" इसके प्रत्युत्तर में गोपियां कहती हैं कि "हमने एक दो नहीं, परंतु भगवान के एक हजार नामों का कीर्तन कर चुका। अब बाकी रहता ही क्या? तुम्हारी पुत्री का उठना ही बाकी है।"

इस प्रसंग में भगवान के तीन नामों का उल्लेख किया जाता है—महामाय माधव व वैकुण्ठ। भगवान के नामों में एकैक से आपके कतिपय शुभगुण अथवा चेष्टित कहे जाते हैं। माया शब्द से, "माया वयुनं ज्ञानम्" इत्यादि निघंटु के अनुसार भगवान का संकल्परूप ज्ञान कहा जाता है। इस संकल्प के बल से ही आप विना किसी प्रकार के शरीर व्यापार, जगत की सृष्टि आदि करते हैं। तथाच यह तात्पर्य हुआ कि अपने संकल्पमात्र से ही सारे जगद्व्यापार करनेवाले महामहिम भगवान ही अब श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लेकर हमारे स्वामी के रूप में यहां पर विराजमान हैं। अथवा, "दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया" इत्यादि गीतोक्त प्रकार से चेतन को बंधित करनेवाली प्रकृति, माया कहलाती हैं। इस माया का तरण करने का उपाय भी गीताजी में यों बताया गया कि "मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते" (अर्थात् जो मेरी शरण में आता, वह इस माया का पार करता)। तथाच, माया का पार करानेवाले अपने पादारविंद के दर्शन देते हुवे यहां पर अवतीर्ण श्रीकृष्ण भगवान के पास हमें शीघ्र जाना चाहिए; अतः तुम भी उठो। अथवा मायाशब्द से श्रीकृष्ण के नाना प्रकारके अत्याश्चर्यमयदिव्यचेष्टित

कहे जाते हैं; जो उनका अनुभव करनेवालों के, और विशेषतः गोपियों के मन का हरण करते हैं। मक्खन चोरी आदि प्रसङ्गों में ऐसे आश्चर्यकारक, आपके अनेक चेष्टित देखने में आते हैं, जिनका वर्णन रसिक भक्तों ने अपने अपने ग्रंथों में किया है। तथाच, ऐसे आश्चर्यमयदिव्यलीला करनेवाले श्रीकृष्ण का अनुभव करने के लिए विना विलंब सबको जाना चाहिए।

माधवशब्द का अर्थ है लक्ष्मीपति। हमारे आचार्यों का सिद्धांत है कि लक्ष्मीपति होने के कारण ही नारायण, सर्वश्रेष्ठ परदेवता हो गये। अत एव लक्ष्मीपतित्व भी परतत्व का एक मुख्यलक्षण बताया गया। "कः श्रीः श्रियः" (स्तोत्ररत्न में) इत्यादि। श्रीभक्तिसारमुनी की श्रीसूक्ति है कि "तिरु-विल्लात्तेवरै तेरेन्मिन् तेवु" यानी लक्ष्मीसंबंध से विरहित देव को देव नहीं मानना। तथाच साक्षात् लक्ष्मीपति, और अत एव सबसे श्रेष्ठ परदैव श्रीमन्नारायण ही श्रीकृष्ण के रूप में, हाल में यहां पर अवतीर्ण हैं, उनकी सेवा करने के लिए हमें शीघ्र चलना चाहिए। वैकुंठ शब्द परमपद का वाचक होता है। परमपद में रहनेवालों के ज्ञान शक्ति इत्यादि में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं रहती है; अतः वह परमपद वैकुंठ कहलाता है; उसके नायक होने से भगवान भी वैकुंठ पुकारे जाते हैं। अथवा, यह भगवान का एक स्वतंत्र नाम है; वैकुंठ। इसका अर्थ है सबसे मिलने का स्वभाववाले। अथवा, परस्पर मिलनेवाले भक्त लोग विकुंठ हैं, उनके स्वामी भगवान वैकुंठ हैं। अथवा भगवान से नित्यसंश्लेषवाले नित्य व मुक्त, विकुंठ हैं; उनके नायक भगवान वैकुंठ हैं। अथवा, वैकुंठ लोक का प्रदान करनेवाले वैकुंठ हैं। तथाच यह तात्पर्य हुआ कि इस तरह से स्वयं परमपद में नित्य मुक्तों से नित्ययुक्त रहनेवाले भगवान संसार में पडे रहनेवाले हमको छोडने अशक्त होकर यहां पर श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हैं; अतः हमें आपकी सेवा करनी चाहिए।

तथाच गोपियों की यह प्रार्थना है कि हे मामी! हमने ऐसे अनेक भगवन्नामों का कीर्तन कर लिया। अतः तुम तुम्हारी पुत्री को समझाकर, उसको उठाओ॥

व्यंग्यार्थ का विवरण॥ इस पद्य में प्रासाद में सुखशयन करनेवाले महात्मा का जो उत्थापन किया जाता है, उसका यह तात्पर्य है—शुद्धमणिमय प्रासाद शब्द से युक्तायुक्तविवेचनकुशलिनी प्रज्ञा कही जाती है। तथाहि—प्रासाद यानी महल, ऐसे एक ऊंचे मकान का नाम है जहां ठहरकर लोग नीचे के सब दृश्यको ठीक ठीक देख सकते हैं। महर्षियों का वचन है "प्रज्ञाप्रासादमारुह्य..........प्राज्ञः प्रपश्यति" यानी प्रज्ञारूप प्रसादपर चढकर, ज्ञानी सबको देखता है। इस प्रासाद को रत्नखचित बताने का तात्पर्य यह है कि इस प्रज्ञा का विषय नवविधसंबन्ध है। रत्न तो नव होते हैं न? इससे श्रीमंत्र में प्रतिपादित, जीवपरमात्माओं के नव प्रकार के संबन्ध, जो रत्न की तरह बहुत कींमतवाले होते हैं, सूचित किये जाते हैं। "पिता च रक्षकश्शेषी भर्ता ज्ञेयो रमापतिः। स्वाम्याधारस्तथैवात्मा भोक्ता

चाद्यमनूदितः।" अर्थात् जीव व परमात्मा इन नव संबंधों से संबंधित हैं—(१) पितृपुत्र भाव, (२) रक्ष्यरक्षक भाव; (३) शेषशेषिभाव, (४) भर्तृभार्या भाव, (५) ज्ञातृज्ञेयभाव, (६) स्वस्वामिभाव, (७) आधाराधेयभाव, (८) शरीरात्मभाव, और (९) भोक्तृभोग्य भाव। जब तक, यह चेतन अपने को भगवान से संबंधित नहीं जानता, तब तक वह भगवान से विवाद करते, आपसे दूर दूर ही भागता। वही जब यों समझता, कि, "भगवान से हमारा एक दो नहीं, वरं नव सम्बन्ध हैं, तब पूर्वोक्त विवाद एक दम शांत होता है। अतः इस तरह से श्रेष्ठ नवविध संबन्ध विषयक प्रज्ञाप्रासाद ही परिशुद्ध मणि का महल कहा गया। दीप शब्द से, दीपवत् प्रकाशमान, एवं अज्ञानांधकार का निवारक ज्ञान, मंत्र, वेदादि शास्त्र एवं स्वयं भगवान कहे जाते हैं। तथाच इन सबका प्रकाश चारों ओर प्रकाशमान है। धूप शब्द से ज्ञान को भी परिमल देनेवाला सदनुष्ठान कहा जाता है। तथा हि—ज्ञान व अनुष्ठान ये दोनों जिस में परिपूर्ण रहते हैं, वही साधक कल्याण पाएगा। और जो ज्ञानवान होकर तदनुकूल आचरण न करता, अथवा अच्छा सदाचार संपन्न होकर भी ज्ञान से विरहित होता ये दोनों सिद्धि नहीं पा सकते हैं। अतः अनुष्ठान से सुवासित ज्ञान ही यहां पर धूप सहित दीप बताया जाता है। शय्या शब्द से, विश्रान्ति, यानी शांतिदायक श्रीभाष्य, भगवद्विषयादि सद्ग्रंथों को समझना चाहिए। (कण् वळरुम्) का अर्थ है नेत्र बढाना; अर्थात् उक्त श्रेष्ठ ग्रंथों पर ही विशेषतः नजर डालनेवाले महात्मा लोग इस शब्द से कहे जाते हैं। अथवा पूर्वोक्त संबन्ध ज्ञानके बल से, परिश्रमकारक नानाविध प्रवृत्तियों से विरत होकर, भगवान के निर्हेतुक रक्षकत्व में विश्वास रखकर, निश्चिंत रहनेवाले महात्मा लोग कहे जाते हैं।

मामाकी पुत्री कहने से ज्ञान संबंध अथवा श्रेयस्कर देहसंबंध बताया जाता है। अर्थात उनके विशेष प्रेम का पात्र होने के कारण, ज्ञानियों से शरीर संबंध भी श्रेयःकारक ही होता है। मणिमय कवाट खोलो—कहने से आचार्य से उपदिष्ट अमूल्य अर्थों को, दूसरा कोई न समझ ले सकें, इस तरह से छिपाकर एकांत में स्वयं अकेली उसका अनुभव करने की रुचि छोड कर, मन खोलकर, अपने शिष्यों अथवा गुरुभाईयों को भी उन श्रेष्ठ अर्थों का उपदेश देने की प्रार्थना की जाती है। मामी शब्द से आचार्य, अथवा उनके आचार्य, यानी परमाचार्य पुकारे जाते हैं। अर्थात आपका पुरुषकारभाव मांगा जाता है। अर्थात्, यों प्रार्थना की जाती है कि, "हे आचार्य! अथवा परमाचार्य! आप कृपया अपने शिष्य को ऐसी आज्ञा दीजिए, जिस से वे हमारे उपर कृपा करेंगे।" मूक, बधिर इत्यादि कहने से "परिवादेषु ये मूका बधिराश्च परोक्तिषु। पररन्ध्रेषु जात्यन्धास्तैर्जितं भुवनत्रयम्॥" (यानी, जो मानव दूसरों की निंदा करने में गूंगे सरीक होते हैं; दूसरों से की जानेवाली अपनी निंदा सुनने में बधिर जैसे हैं (यानी दूसरों से की जानेवाली निंदा का परवाह नहीं करते हैं), और दूसरों के दोष देखने में जात्यंध सरीक होते हैं, ऐसे महात्मा लोग, तीन लोकों को भी जीत सकते हैं;) इत्याद्युक्त प्रकार से दूसरों की निंदा न करनेवाले, दूसरों की निंदा न सुननेवाले एवं दूसरों का दोष न देखनेवाले आचार्य का अथवा गुरुभाई का वैभव बताया जाता है।

आगे, (मामायन्, माधवन्) इत्यादि तीन विशेषण आचार्य को लगते हैं। आचार्य महामाय जरूर होते हैं। श्रीरामानुजाचार्य स्वामीजी का जीवन चरित्र बताता है कि श्रीस्वामीजी वास्तव में अत्याश्चर्यमय दिव्यचेष्टित थे। अथवा, जो काम करने के लिए संसार में अवतार लेकर, नानाविध क्लेशों, का सहन करते हुवे बहुत प्रयत्न करने पर भी स्वयं भगवान विफल हो गये, ऐसा काम, यानी संसारियों का उद्धार, आचार्य से बहुत अच्छी तरह से किया जाता है। अतः आपको महामाय कहना सर्वथा उचित है। द्राविडी में (मातवन्,) शब्द प्रयुक्त किया गया है। इसकी छाया महातप अथवा माधव होती है। आचार्य तो महातपस्वी जरूर हैं, और कैंकर्यसाम्राज्यलक्ष्मी के पति भी हैं। (वैकुंठ) शब्द का अर्थ भी, पूर्वोक्त रीति से ज्ञानशक्त्यादि में संकोच शून्य, अथवा भगवान के ध्यान से कभी भी, अल्प भी अप्रच्युत, अथवा लीलाविभूति में रहते हुवे ही रज व तमोगुणों से बहुत दूर रहते हुवे, शुद्धसत्वनिष्ठ होकर, अविच्छेद से भगवदनुभव करते रहने से वैकुंठलोकवासी सा रहनेवाले, अथवा, वैकुंठ बिरुदधारी साक्षात् भगवान सरीक रहनेवाले, अथवा, अपने पादारविंद में आश्रयण करनेवाले भक्तजनों को वैकुंठलोक पहुँचानेवाले इत्यादि होते हैं। तथा च, इस तरह से आचार्य का गुणगान करते हम आये हैं; अतः हे गुरुभाई! आप भी अकेली शास्त्रार्थचिंतन करने में रुचि छोडकर हम से मिलकर करो; यों प्रार्थना करना इस पद्य का परमतात्पर्य हुआ किया ॥ ९ ॥

(गाथा) नोत्तु च्चुवर्कम् पुहुहिन्न वम्मनाय् * मात्तमुम् तारारो वाशल् तिरवादार् *
नात्तत्तुळाय्मुडि नारायणन् * नम्माल् पोत्तप्परैतरुम् पुण्णियनाल् * पण्डोरुनाळ्
कूत्तत्तिन् वाय्वीळन्द कुम्भकरणनुम् * तोत्तुमुनक्के पेरुन्तुयिल् तान् तन्दानो *
आत्त दनन्दलुडैया यरुङ्कलमे * तेत्तमाय् वन्दु तिरवेलोरेम्बावाय् ॥ १० ॥

नोत्तु	(व्रत का) अनुष्ठान समाप्त कर,
चुवर्कम् पुहुहिन्न	स्वर्ग पहुँचनेवाली (यानी-व्रत का फल, आनंद पानेवाली)
अम्मनाय्	- हे मा! (सखी!)
वाशल् तिरवादार्	कवाट नहीं खोलनेवाली (यानी कवाट नहीं खोलने वाली तुम)
मात्तमुम् तारारो	क्या एक बात भी न दोगी? (यानी क्या तुम तुम्हारी मधुरवाणी भी हमें न दोगी?)
नात्त तुळाय् मुडि	सुगंध भरित तुलसी माला से अलंकृत सिरवाले
नारायणन्	- नारायण रूपी, (एवं)
नम्माल् पोत्त परैतरुम्	हमसे स्तुत होकर (यानी हम से स्तुति पाकर) हमारे इष्टार्थ देनेवाले

पुण्णियनाळ्	माक्षात् धर्मस्वरूपी श्रीराम-चंद्रजी से
पण्डु ओरुनाळ्	- पूर्वकाल में, एक दिन
कूत्तत्तिन् वाय् वीळ्न्द	यम के मुख में (आहार रूप० से) गिराये गये
कुम्बकरणनुम्	- कुंभकर्ण ने भी
तोत्तु	तुमारे से (स्पर्धाकर, उस में) हार खाकर
पेरुन्तुयिल्	- (अपनी) महानिद्रा को
उनक्के तान् तन्दानो	क्या तुमारे वास्ते ही दे दिया ?
आत्त अनंदल् उडैयाय्	हे अत्यधिक निद्रावाली ! (अथवा आलस्यवाली !)
अरुम् कलमे	- उत्तम आभुषण भूते !
तेत्तमाय् वन्दु तिर एलोरेम्बावाय	ठीक अपने को संभालती हुई आकर कवाट खोलो॥

इस पद्य का लक्ष्यभूत गोपी के जो तीन संबोधन रूप विशेषण दिये जाते हैं, इनसे उसका वैभव बताया जाता है। पहिला संबोधन है (नोतुच्चुवर्कम्) इत्यादि यानी, हे व्रतानुष्ठान को पूर्ण कर, फलतः श्रीकृष्णानुभवरूप स्वर्ग पानेवाली ! इसका यह तात्पर्य है — भगवदनुभव पाने के लिए हम तो अभी व्रतानुष्ठान करनेवाली हैं; परंतु तुम्हें यह भगवदनुभव मिल गया है; तुमने कभी व्रत कर चुका, ऐसा लगता है। अर्थात् व्रत करने का क्लेश उठाये विना ही भगवान अपनी निर्हेतुक कृपा से तुमको मिल गये हैं; अहो ! तुम्हारा भाग्य है ! अथवा यह परिहास का भी वचन होगा। यथा—हम सब ने कल रात को भगवान के अनुभव पाने के लिए व्रत करने के उद्देश्य से प्रातःकाल शीघ्र उठने का संकल्प कर दिया था न ? परंतु हम सब आगयीं हैं; तुम तो अभी सो गयी है; जगा जानेपर भी जागती नहीं। तुम अच्छी तरह से व्रत कर भगवान को पा सकोगी ! (मात्तमुम् तारारो) इत्यादि। आलस्य छोडकर, शय्या से उठकर, कवाट खोलने में तो जरूर तुमको कुछ क्लेश होगा। रत्तीभर भी आलस्य न छोडती हुई, शय्या में सोती सोती ही हमें संतोषदायक एक बात बोलने में मेहनत कोनसी है ? क्या तुम हमारे लिए इतना भी न कर सकती हो ?

पूर्वकाल में रावण का भाई कुंभकर्णनामक एक राक्षस था, जो कि महानिद्रा में प्रवीण था। श्रीरामचन्द्रजी ने उसको मृत्युका आहार बना दिया। मालुम पडता है कि तुम्हारे और उसके बीच में एक स्पर्धा चली कि कौन अधिक निद्रा कर सकता है; और उसमें तुम जीत गयी, कुंभकर्ण हार गया। पश्चात् स्पर्धा के नियमानुसार उसने अपनी निद्रा भी तुम्हें दे दी। अत एव तुम अब हमसे इतने प्रयत्न से जगा जाने पर भी जागती नहीं। इस प्रसङ्ग में श्रीरामचन्द्र को दिया गया हुआ विशेषण बडा अर्थपूर्ण है। आपको यहां पुण्यस्वरूप कहने में आया है। सामान्यतः शास्त्र में बताया जाता है कि सत्कर्म करनेवाले को "पुण्य" मिलता है, जिसके फल में वह बाद में स्वर्ग आदि सुख पाता है। इस पर चर्चा चली कि यह पुण्य क्या चीज है। तब भगवान बादरायण ने ब्रह्मसूत्र में उत्तर दिया, कि साक्षात् भगवान ही फल देनेवाला पुण्य है। एतदनुसार श्रीरामायण में भी वर्णित हुआ कि "रामो

विग्रहवान् धर्मः " (यानी श्रीराम तो साकार धर्म ही हैं)"। " कृष्णं धर्मं सनातनम् " इत्यादि भी प्रसिद्ध है। एतदनुसार यहां पर स्पष्ट बताया गया कि हमारी स्तुति पाकर प्रसन्नता से हमारे अपेक्षित पुरुषार्थ देनेवाले पुण्यस्वरूपी श्रीमन्नारायण।

इतनी बात सुनने पर अंदर शयित गोपी उठने की तैयारी करती हुई आलस्य के मारे हाथ पैर पसारने लगी। खिडकी से इस दृश्य को देखनेवाली बाहर खडी हुई गोपियां उस समय की इसकी शोभा से आकृष्ट होकर संबोधन करती हैं कि हे मनोहर आलस्यवाली! हे हमारी गोष्ठी का अलंकार भूते! यह गडबड सुनकर वह गोपी झट उठकर बाहर आने लगी तब बाहर रहनेवाली कहती हैं कि " न न ; शय्या में सोती हुई उसी अवस्था में बाहर आकर इस गोष्ठी में मिलना अनुचित है। अतः अपने वस्त्र भूषण आदि को ठीक सजाकर, संभालकर सदस्यवेष से आजा ॥"

व्यंग्यार्थ का विवरण ॥ (नोत्तु) इत्यादि। मोक्षलाभ के लिए कर्म ज्ञान भक्ति इत्यादि प्रयत्न करनेवालों के मन में हमेशा यह चिंता रही करती है कि हमारा उपायानुष्ठान पूर्ण हुआ, कि नहीं? और हमें पुरुषार्थ मिलेगा, कि नहीं? परंतु सिद्धोपाय कहलानेवाले भगवान का आश्रयण करनेवाले को यह चिंता न होगी; क्यों कि उसका उपाय, भगवान, सदा पूर्ण ही रहते हैं। अतः उनके लिए स्वर्ग यानी मोक्ष सदा हस्तस्थित है। ऐसा महापुरुष इस पद्य से जगाया जाता है। वेदांतियों की परिभाषा में स्वर्गशब्द का अर्थ है भगवान से मिलकर रहना; यानी मोक्ष। सामान्यतः स्वर्गशब्द का अर्थ देवलोक तो इनके लिए नरक सा ही है। अथवा, मूल गाथास्थ 'सुवर्ग' शब्द का अर्थ है सु—श्रेष्ठ, यानी महात्माओं की, वर्ग—गोष्ठी। तथाच, यह अर्थ हुआ कि उपयांतर छोडकर सिद्धोपाय भगवान का आश्रयण करने से, अथवा बंध व मोक्ष, दोनों के हेतु, निरंकुशस्वतंत्र भगवान को छोडकर, उद्धार करने में ही निरत, परमदयालु आचार्य का आश्रयण करने से, कृतकृत्य बनकर, अंतिमोपायनिष्ठविरुदविभूषित साधुओं की गोष्ठी में प्रविष्ट, हम सब का प्रिय करने निरत हे महात्मन्!

(मात्तमुम् तारारो) इत्यादि। भगवान के गुणानुभव करनेवाले दो तरह के होते हैं। कोई कोई लोग अनुभव जनित हर्ष के मारे स्तब्ध हो कर उठने बोलने में भी अशक्त बन कर पडे रहते हैं। और कोई कोई लोग एक जगह ठहर न सकते हैं, परंतु बोलते, कूदते नाचते रहते हैं। यहां पर पहिले प्रकार का वर्णन किया जाता है। यह अर्थ छठी गाथा की टीका में ही कहा गया कि अंदर सो जानेवाली गोपियां पहिली श्रेणी की हैं, और बाहर ठहरकर जगानेवालियां दूसरी श्रेणी की हैं। अथवा, आचार्यों में ऐसे भी कोई कोई होते हैं कि जो झट उपदेश नहीं देते हैं; परंतु बहुत समय तक शिष्य की परीक्षा कर, उसकी योग्यता जानकर बाद में ही कुछ कहते हैं। श्रीरामानुज स्वामीजी के चरित्र में श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामीजी का प्रसङ्ग इसका दृष्टांत है। ऐसे आचार्यों से प्रार्थना की जाती है कि आप श्रीरामानुजस्वामीजी की तरह कृपामात्रप्रसन्नाचार्य होकर शीघ्र ही हमें उपदेश की वाणी दे दीजिए।

(नात्तुळाय् मुडि) इत्यादि। तुलसीमाला भगवान का असाधारण लक्षण है। परंतु भगवद्भक्त भी भगवान के शेषप्रसाद तुलसी का, अपने सिर पर धारण करते हैं। एवं नारायण शब्द भी भगवान का असाधारण नाम है ही; तथापि नारायण का अवतार माने जानेवाले आचार्य का भी वह सूचक हो सकता है। "साक्षात् नारायणो देवः कृत्वा मर्त्यमयीं तनूम्। मग्नान् उद्धरते लोकान् कारुण्यात् शास्त्रपाणिना॥" इत्यादि। ऐसे महाचार्य की स्तुति करना शिष्यों का कर्तव्य है, इस विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रहती है। इस तरह से हमारे से की जानेवाली स्तुति से प्रसन्न होकर हमारे अपेक्षित पुरुषार्थ, (माने भगवद्भागवताचार्य कैङ्कर्य) देनेवाले पुण्यस्वरूप हैं आचार्य। पुनातीति पुण्यः, अर्थात् दोषों को दूरकर पवित्र बनानेवाले। तथाच सदुपदेश द्वारा शिष्य के समस्तपापों को दूरकर, उसके अपेक्षित पुरुषार्थ देनेवाले हैं आचार्य।

(कुंभकरणनुम्) इत्यादि। निद्रा शब्द से, "या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥" इत्यादि भगवद्गीता में कथित प्रकार से भगवद्विषय में ही पूर्णमग्नमानस होने के कारण, क्षुद्र सांसारिक शब्दस्पर्शादि विषयों में बिलकुल नजर नहीं डालनेवाले महात्माओं की वैराग्यदशा कही जाती है। तथाच कुंभकर्ण जैसे तमोगुणकृत निद्रा करने में प्रसिद्ध था, एवं बाह्यविषय वैराग्य रूप सात्त्विकनिद्रामें यह महात्मा उसको भी जीतनेवाले होते हैं। अथवा, मूलगाथास्थ कुंभकरण शब्द कुंभसंभव, अगस्त्यमुनि का भी वाचक होगा। आप यम का मुख, दक्षिणदिशा में विराजमान हैं। "दक्षिणा दिक्कृता येन शरण्या पुण्यकर्मणा" इत्यादि। अतः वैराग्य आदि के विषय में प्रसिद्ध अगस्त्य को भी जीतनेवाला है यह महात्मा। आलस्यवाला कहने में, आलस्य शब्द का अर्थ है उक्तरीति से सिद्धसाधननिष्ठ होने के कारण उज्जीवन के लिए क्या करूँ? क्या करूँ? ऐसे गडबड के विना निश्चिंत रहने की अवस्था। आभरणभूत कहने से उक्त प्रकार के अनेक वैभवों से विशिष्ट होने के कारण श्रीवैष्णवगोष्ठी का अलंकार भूत हे महात्मन्! ऐसा संबोधन किया जाता है। (तेत्तमाय् वन्दु) इत्यादि। प्रसन्नचित्त होकर हमें मधुर उपदेश दो। अथवा "बाल्येन तिष्ठासेत्" इत्यादि शास्त्रोपदेश के अनुसार महात्मा लोग बाल की तरह, और कदाचित् जडभरत की तरह उन्मत्त जैसे भी आचरण करते हैं। उनके तत्त्व को जाने विना उनका अंध अनुकरण करनेवाले दूसरे लोग तो भ्रष्ट ही हो जाएंगे। अतः यहां पर ऐसी प्रार्थना की जाती है, कि मामूली पुरुषों को भ्रम में डालनेवाले लोकविलक्षण आचार छोडकर, लोकसंग्रहार्थ, अनुकरणीय आचार से युक्त होकर हमारी गोष्ठी में प्रवेश कीजिए॥ (१०)

(गाथा) कत्तुकरवै क्कणङ्गळ् पल करन्दु * शेत्तार्तिरलळिय च्चेन्नु शेरुच्चेय्युम् *
कुत्तमोन्निल्लाद कोवलर्तम् पोर्कोडिये * पुत्तरवल्गुल् पुनमयिले पोदराय् *
शुत्तत्तु त्तोळिमारेल्लारुम् वन्दु * निन्मुत्तम् पुहुन्दु मुहिल्वण्णन् पेर्पाड *
शित्तादे पेशादे शेल्वप्पेण्डाट्टि * नीयेत्तुक्कुरङ्गुम् पोरुळेलोरेम्बावाय्॥ ११॥

कन्नु करवै पल कणङ्गळ् करन्दु	वत्सके समान छोटी उम्रवाली अनेक गोगणों से दूध निकाल कर,
शेत्तार् तिरल् अळिय	शत्रुओं का पराक्रम नाश करने के लिए
शेन्नु शेरु शेय्युम्	स्वयं (सेना के साथ वहां) जाकर युद्ध करनेवाले
कुत्तम् ओन्नु इल्लाद कोवलर् तम्	किसी प्रकार के दोष से वियुक्त गोपों के
पोन् कोडिये	(कुल में समुत्पन्न) हे स्वर्णलता रूपिणी !
पुत्तु अरवु अल्हुल्	हे वल्मीकवासि सर्प के फण के समान मध्यभागवाली !
पुनम् मयिले	हे वन में (स्वच्छंद फिरनेवाले) मोर के समाने ।
शेल्वप्पेण्डाट्टि	- हे ऐश्वर्यपूर्णे ललनामणि !
पोदराय्	- (उठकर) इधर आ जा ।
शुत्तत्तु तोळिमार् एल्लारुम् वन्दु	समस्त बांधव व सखीजन मिलकर आकर
निन् मुत्तम् पुहुन्दु	तुम्हारे (घरके) आंगन में प्रवेश कर
मुहिल् वण्णन् पेर् पाड	जब मेघश्याम श्रीकृष्ण के नामसंकीर्तन कर रही हैं, तब
शित्तादु पेशादु	- चलने बोलने के भी विना,
नी उरंगुम् पोरुळ् एत्तुक्कु एलोरेम्बावाय्	तुम्हारे निद्रा करनेका प्रयोजन कौनसा होगा ? (हम नहीं जान सकती हैं ॥)

इस गाथा के सारे पूर्वार्ध से, जगाई जानेवाली गोपी के सौंदर्य का वर्णन किया गया है। यह कुछ विचित्र सी बात है कि खुद स्त्रियों से दूसरी एक स्त्री के सौंदर्य का वर्णन किया जाना। क्यों कि यह तो लोकस्वभाव है कि स्त्रियों के सौंदर्य से पुरुष आकृष्ट होते हैं और स्त्रियां तो पुरुष के रूप से आकृष्टचित्त होती हैं। परंतु कभी कभी ऐसे कल्पनातीत सौंदर्यवाले स्त्रीपुरुष भी होते हैं जिनके रूप में सजातीय ही व्यामोहित होते हैं। इसका प्रसिद्ध दो दृष्टांत दिये जाते हैं। श्रीरामचन्द्रजी के लोक विलक्षण स्वभाव का वर्णन करनेवाले श्री वाल्मीकिमुनि एक जगह गाते हैं—"रूपौदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारिणम्।" (यानी, श्रीरामचन्द्रजी अपने सौंदर्य, औदार्य इत्यादि गुणों से पुरुषों के नयन व मन का अपहरण कर देते हैं।) इसका यह तात्पर्य है कि जब पुरुषों का ही दृष्टिचित्तापहरण होता है, तब स्त्रियों के दृष्टिचित्तापहरण के बारे में कहने की आवश्यकता ही नहीं रहती है। एवं महाभारत में कहा गया है कि "कमलनयना द्रौपदी के सौंदर्य को उसके स्नान करने के समय में देखनेवाली स्त्रियों ने अपने मन में पुरुषभावना प्राप्त की।" अर्थात्, उनका यह अभिप्राय हुआ कि, स्त्री होकर इस अद्भुत सौंदर्य को देखने में रस नहीं है; पुरुष होकर इसको देखना चाहिए। अतः हम ही अपने मन से पुरुष बनकर इसके दर्शन से पूर्ण आनंद को प्राप्त करेंगी। अथवा, इतनी दूर जाने की आवश्यकता कौनसी है ? श्रीशठकोपस्वामीजी, श्रीपरकालस्वामीजी, और खुद गोदादेवी के पिता श्रीभट्टनाथस्वामीजी इत्यादि कतिपय दिव्यसूरियों स्त्रीभावना को अपनाकर भगवान से संश्लेष, विश्लेष, प्रणयरोष इत्यादि अनेक प्रकारके

अनुभव पाते हैं। इसका कारण तो पुंसां दृष्टिचित्तापहारी भगवान का सौंदर्य ही है। इस तरह से प्रकृत पद्य में ये गोपियां, अपने सौन्दर्य से स्त्रियों का भी दृष्टिचित्तापहारिणी, अत एव श्रीकृष्ण के चित्त को भी सर्वथा अपने वश में रखनेवाली परमसुन्दरी एक गोपी की प्रशंसा करती हुई, उसको जगा रही हैं।

प्रारंभ में प्रकृत गोपी के कुल का माहात्म्य बताया जाता है (कत्तुकरवै) इत्यादि से। अपनी जाती के उचित काम पशुपालन एवं गोदोहन में निरत होते हैं ये गोप। कत्तुकरवै—कन्नु करवै ; इस के दो अर्थ होते हैं—स्वयं बछडा रहनेवाली गाय, अथवा बहुत छोटी उम्रवाली गाय, एवं बछडे के साथ रहनेवाली गाय। व्रज में श्रीकृष्ण के अवतार के बाद पशुओं की संख्या खूब बढ गयी और वे बहुत हृष्टपुष्ट होकर हमेशा बाल्यावस्था में ही रहती रही। परमपद में भगवान के नित्यसांनिध्य में रहनेवाले नित्य व मुक्त लोग नित्ययुवा रहते हैं ; न तु कदापि वृद्ध होते हैं। जब परमपदनाथ ही स्वयं श्रीकृष्ण रूप से व्रज में अवतीर्ण हुए, तब खास उनके कृपामय श्रीहस्त से परिपोषित गायों की भी यही हाल हुई। कहां जाता है कि वसुदेवजी श्रीकृष्ण के दर्शन से, उपस्थित जरा को दूर कर जवान बन गये—"युवेव वसुदेवोऽभूत् विहायाभ्यागतां जराम्।" एवं, एक प्रकरण में दशरथ जी कहते हैं कि, मैं श्रीरामचंद्र को देखते ही युवा बन जाऊँगा—"भवामि दृष्ट्वा च पुनर्युवेव"। गाथा में "गायों के अनेक समूह" कहने का यह तात्पर्य है कि वे इतनी अधिक संख्या की होती हैं, कि उनकी गिनती कथंचिदपि नहीं की जा सकती है।

गोपों का दूसरा विशेषण यह दिया गया है कि वे शत्रुओं के पास स्वयं जाकर उनसे लडते हैं। यहां प्रश्न यह उठता है कि गोपों का शत्रु कौन होगा, जिन से ये लडने जाते। संक्षेपतः इसका प्रत्युत्तर यह है कि भगवान का शत्रु इनका भी शत्रु है। व्रज में भगवान के शत्रुओं की कोई कमी नहीं थीं; क्योंकि उधर के एकैक घास में भी कंससे प्रेरित असुर आविष्ट होकर श्रीकृष्ण को मारने की प्रतीक्षा करते रहते थे। इसके सिवाय, दूसरे किसी मानव को सात्विकप्रकृतिवाले गोप लोग अपना शत्रु नहीं मानते थे। वस्तुतस्तु, भगवान और आपका भक्त, ये दोनों सर्वभूतसुहृत् होने के कारण किसी प्राणी को अपना शत्रु नहीं मानते हैं। तो भी भगवान पर द्वेष करनेवाले को भक्त अपना शत्रु मानता और भक्त के बारे में द्वेष करनेवाले को भगवान अपना शत्रु मानते; यह, दोनों के बीच में एक प्रकार का संकेत जैसा है। वास्तव में, इन दोनों मे से एक पर द्वेष करनेवाला, दोनों पर ही द्वेष करता है ; फलतः दोनों इसको अपना शत्रु मानते हैं। गोपों का और एक विशेषण दिया गया है दोष से शून्य। इसका यह तात्पर्य है कि असुरों की तरह कपट युद्ध छोडकर धर्मयुद्ध करना।

(पुत्तर वल्हुल्) इत्यादि। स्वस्थानस्थित सर्प के फण के समान कृश व उज्वल उदरवाली, मयूर की तरह मनोहर एवं काले केशपाशवाली। इन विशेषणों से प्रकृतगोपी का प्रत्येक अवयवसौंदर्य, तथा समुदायशोभा, दोनों कही जाती हैं।

इस गोपी के मन में पूर्वोक्त अपने सौंदर्य के हेतु शायद ऐसा अभिमान होगा कि सब लोग मेरे यहां आकर मुझे सादर जगावें तो मैं जागकर उनके साथ जाऊँगी, अन्यथा नहीं; अथवा ऐसी इच्छा होगी कि श्री कृष्ण के विशेष कटाक्ष का पात्र सभी गोपियां इकट्ठा हो कर यहां आगयी तो, इस बडी भक्त गोष्ठी का दर्शन कर मैं कृतार्थ हो जाऊँ; अथवा यह ऐसा मानकर शयन करती होगी, कि, अभी आधीरात है, प्रातःकाल हुआ नहीं; अत एव अब यहाँ पर दो चार सखियां ही उपस्थित हैं, अगर प्रातःकाल हुआ होता, तो सब गोपियां यहां आ जाती। अतः कहते हैं, (शुत्तु) इत्यादि। इसका तात्पर्य यह है कि तुम्हारी इच्छा के अनुसार बंधु मित्र इत्यादि व्रजनिवासिनी सभी गोपबालिकाएं आकर तुम्हारे घर के आंगन में मिलकर भगवान का नाम संकीर्तन करती हुई तुमसे भी जागने की सविनय प्रार्थना कर रही हैं। इस से तुम्हारी श्रेष्ठता सर्वविदित हो गई और तुम्हारा मान भी पर्याप्त बढ गया। तुम्हें दर्शन देने के लिए यह बडी भजन गोष्ठी भी तैयार हो गयी है। सब के एकत्रित होने से तुम ठीक जान भी सकती हो कि सचमुच प्रातःकाल भी हो गया। अतः जागो। इस प्रकरण में भगवान को मेघवर्ण कहना बडा सुंदर है। (मुहिल्वण्णन् पेरपाड पुनमयिले! पोदराय्) ऐसा अन्वय करने से यह स्वारस्य मालुम पडता है। अर्थात् ये गोपियां कहती हैं कि "हम मेघवर्ण का भजन कर रही है; हे मोरवर्णे! तुम बाहर आ जा।" मेघ के दर्शन से, अथवा मेघ गर्जन सुनने से मोर अत्यंत हृष्ट हो जाता है और शयन भी छोडकर सानंद नर्तन करने लगता है। इसी तरह से, भगवान से वाचामगोचर प्रेम करनेवाली तुम को भी, उनके नामश्रवण मात्र से परवशचित्ता होकर, एकदम शयन छोडकर, हमारे बीच में आकर, ससंभ्रमनृत्य करना चाहिए। इसके विपरीत, भजन सुनते सुनते निश्चेष्ट पडी रहना सर्वथा अनुचित है। इसका क्या मतलब होगा? हम नहीं जान सकती हैं। इन सब हमारी स्नेहपूर्णवार्ता सुनने के बाद भी तुम निश्चल सो रही हो; हाथ पैर हलाती नहीं; मुख खोलकर एक मधुरवाणी बोलती भी नहीं, इसका क्या मतलब होगा? हा! अब ज्ञात हुआ; तुम तो (शेल्वप्पेण्डाट्टी) यानी श्रीमती हो; अत एव तुम प्रातःकाल शय्या छोडकर उठ न सकती हो। श्रीमती कहने का यह तात्पर्य है—पूर्वोक्त प्रकार से यह गोपी वर्णनातीत सौंदर्यरूप लक्ष्मीविशिष्ट है। अथवा, असंख्य गायों के मालिक समृद्ध गोपकुल में उत्पन्न होने के कारण स्वयं बडे ऐश्वर्य की मालकिन है; गोपों का ऐश्वर्य तो उनकी गाय ही है। अत एव इस प्रकरण में इसको स्वर्णलता कहने में आया। स्वर्ण तो सुंदर भी होता है और कींमतवाला भी। अथवा, पूर्वोक्त दोनों कारणों से, यानी धनपतियों के कुल में उत्पन्न सुंदरी होने से यह उनकी बडी लाडली कन्या है। इन सब कारणों से सुकुमारी यह बालिका थंडे प्रातःकाल में शयन छोडकर उठ न सकती होगी॥

व्यंग्यार्थ का विवरण। श्रीवचनभूषण दिव्य शास्त्र में बताया गया है कि हमेशा आचार्य के दिव्यमंगलविग्रह का ध्यान करना, उसकी सेवा करना, उसके पोषण में निरंत होना इत्यादि शिष्य का कर्तव्य होता है। अतः उसका वर्णन करना भी उचित ही होता है। इसमें आचार्य के तीन विशेषण दिये हैं—गोपालकुल में समुत्पन्न स्वर्णलतिके, सर्पके समान मध्यवाली एवं मयूरसदृशी। गोपाल शब्द का अर्थ

होता है (अध्ययन एवं प्रचार से) वाणीका पालन करनेवाला विद्वान । लता जैसे वृक्ष आदि के आश्रय से ही रहती है, न तु विना आश्रय स्वतंत्र रह सकती है, इस रीति से आचार्य भी भगवान के और अपने आचार्य के, एवं अन्य भगवद्भक्तों के परतंत्र ही रहते हैं। स्वर्ण कहने से श्रेष्ठता बतायी जाती है। तथा च, हे बडे शास्त्रवेत्ता विद्वानों की ज्ञान संतान में समुत्पन्न, पारतंत्र्य स्वरूपवाले, श्रेष्ठ महात्मन्, आचार्य सार्व भौम ! ऐसा तात्पर्य निकला ! मध्यभाग का वर्णन करनेवाले दूसरे विशेषण से आपकी भक्ति का वैभव कहा जाता है। ज्ञान, भक्ति व वैराग्य नामक ये तीन गुण आचार्य में अपेक्षित हैं। इन में से सब से मुख्य तो मध्यमें रहनेवाली भक्ति है। भक्ति से ही ज्ञान व वैराग्य की शोभा होती है। विना भक्ति, ये दोनों व्यर्थ भी होते हैं। भक्ति समृद्ध हो गयी तो, ये दोनों मिल भी सकते हैं। अतः आचार्य में ऐसे महिम वाली भक्ति का पुष्कल अस्तित्व बताया जाता है।

एवं अनेक प्रकारों से आचार्य, मोर के सदृश होते हैं। तथा हि—(१) जहां मोर रहता, वहां सर्प वगैरह दुष्ट जानवर नहीं आ सकते हैं; एवं भक्ताग्रेसर आचार्य जहां विराजते हैं, वहां व्याधि, अकाल, तस्कर इत्यादि पीडा न रह सकती हैं । "न तत्र संचरिष्यन्ति व्याधिदुर्भिक्षतस्कराः ।" (२) बहुत खुश हो जाने पर, मोर अपना पिंछ खोलकर मनोहर नृत्य करता है; एवं आचार्य भी अत्यंत प्रसन्न होने पर, अपने ज्ञान वैभव का प्रकाशन करते हुवे सानंद नर्तन करते हैं। (३) मांगने मात्र से मोर, किसी को अपना पिंछ न देगा; परंतु क्लेश से ही उसको पाना पडता है। इसी तरह से मांगने मात्र से, आचार्य से सदर्थों का उपदेश न मिल सकता है; परंतु "तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया" इत्यादि भगवद्गीतोक्त प्रकार से नमस्कार, वारंवार सविनय प्रश्न, अच्छी सेवा इत्यादि से ही वह मिलेगा। (४) भगवान अभरण के रूप में मोर पिंछ को अपने सिर पर रखते हैं; एवं आप आचार्यों की, सर्वगुण विशिष्ट श्रीसूक्तियों को सुनकर अपने सिर से उनकी प्रशंसा करते हैं। (५) मेघ के दर्शन से मोर आनंदित होकर नाचता है; आचार्य भी मेघवर्ण भगवान के दर्शन करते ही, आनंद के मारे ससंभ्रम नर्तन करते हैं। इत्यादि।

गाथा के अंत में और एक संवोधन है, हे ऐश्वर्यपूर्ण ललनामणि! आचार्य का ऐश्वर्य तो ज्ञान, भक्ति, भगवत्कैंकर्य आदि की समृद्धि है। ललनामणि कहने का तात्पर्य तो पूर्वोक्त अत्यंत पारतंत्र्य स्वरूप से विभूषितत्व है । उपक्रम में गोपों के दो तीन विशेषण दिये गये हैं । गोगणों से दूध निकालना पहिला विशेषण है। गो शब्द से, चौदह लोकों का आश्रय गाय की तरह चौदह विद्याओं का आश्रय श्रेष्ठ विद्वान कहे जाते हैं। इनसे दूध निकालना तो, इनसे विद्या का ग्रहण करना ही है। अर्थात् पांच आचार्यों से समस्त शास्त्रों का उपदेश पानेवाले श्रीरामानुज स्वामीजी की तरह ज्ञान के भंडार अनेक गुरुओं से नाना शास्त्रों को पाकर बहुश्रुत होनेवाले महात्मा लोग कहे जाते हैं।

मूल गाथा में (कत्तु करवै कणङ्गळ्) शब्द जो प्रयुक्त है, इस में कण शब्द की छाया क्षण भी होती है। इससे एक क्षण को भी व्यर्थ न बीतते हुवे, क्षणे क्षणे विद्या कमाने की सूचना दी जाती

है। यह नीतिवचन भी प्रसिद्ध है कि "क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत्। क्षणत्यागे कुतो विद्या कणत्यागे कुतो धनम् ॥" इसका यह तात्पर्य है कि यथा एकैक पैसे की भी उपेक्षा न करते हुवे जो इकठ्ठा करेगा, वही आखिर में धनवान होगा; इसी तरह से एक क्षण का भी व्यर्थ काल विताये विना, हमेशा विद्या कमाने में ही जो निरत होगा, वही क्रमशः विद्वान होगा। एवं मूलगाथास्थ कत्तु शब्द का अर्थ यह भी होता है कि अभ्यास कर। इस का तात्पर्य यह है कि आचार्यों से सुननें मात्र से कोई विद्वान नहीं बनेगा; परंतु ठीक ठीक सुनकर, वाद में उसका बराबर अभ्यास करना चाहिए। अन्यथा "अनभ्यासे विषं शास्त्रम्" इत्यादि के अनुसार विद्या अनर्थकारिणी बन जाएगी। हम देखते ही है कि वेदों का ठीक अभ्यास नहीं करने से कितने ही वैदिक जन निरीश्वरवाद, निर्गुणेश्वरवाद इत्यादि दुर्वाद करते हुवे अनर्थ पा रहे हैं। अतः अच्छा विद्वान होने के लिए, अनेक आचार्यों के मुख से सुनना और उसका ठीक अभ्यास करना, दोनों आवश्यक हैं। दूसरा विशेषण है शत्रुओं के पास जाकर उन से लडकर उनको परास्त कर देना। आचार्य लोग तीर्थयात्रादि करने के व्याज से तत्र तत्र पधार कर दुर्वादियों से वादयुद्ध कर, उनको परास्त कर देते हैं। ईश्वर का इनकार करनेवाले, आपके गुणों का इनकार करनेवाले, वेदों को अप्रमाण कहनेवाले, भगवान को अनुमानगम्य कहनेवाले, इत्यादि सभी भगवद्द्वेषी होने से आचार्यों से शत्रु माने जाते हैं। इनको परास्त करनेवाले आचार्यों को दोषशून्य कहने का यह तात्पर्य है—सामान्यतः वादविवाद करना, उसमें ब्राह्मण को जीतना इत्यादि काम, गर्व का कारण होने से पाप माने जाते हैं। तथापि भगवान के स्वरूप रूप गुण आदि को स्थापित करने के लिए उनका इनकार करनेवाले दुर्वादियों को जीतना, दोषरहित एवं परमपवित्र कर्तव्य ही बताया गया है। कभी कभी आचार्य लोग खुद ऐसे वादविवाद में उतरते नहीं; परंतु अपने शिष्यों के द्वारा दुर्वादियों को जीतते हैं; यथा विश्वामित्रजी ने रामलक्ष्मणों के हाथ से ताटका सुबाहु मारीच आदि शत्रुओं का संहार करवाया। अपने हाथ से यह काम करने पर विश्वामित्रजी को स्त्रीवध, प्राणिहिंसा इत्यादि दोष जरूर लगते थे और उनकी तपस्या नष्ट हो जाती थी। दूसरों के हाथ से कराने से यह आपत्ति न हुई। एवं गुरु की आज्ञा पालन में निरत श्रीरामचंद्र जी को भी कोई दोष न लगा। एवं आचार्य की आज्ञा से वादयुद्ध करनेवाले शिष्य को भी कोई दोष न लगेगा।

बंधु, तथा मित्र सभी एकत्रित हैं कहने का यह मतलब है कि ऐसे महान आचार्य के घर के आंगन में आप का प्रवचन सुनने के लिए आपके देहसंबंधवाले, तथा ज्ञानसंबंधवाले सच्छिष्य सभी आकर, आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। यथा श्रीरामानुज स्वामीजी के शिष्यों में श्रीगोविंद स्वामी, श्रीदाशरथि स्वामी, इत्यादि आपके देहसंबंधी थे; और श्रीकूरेश स्वामी, श्रीकुरुकेश स्वामी इत्यादि आपके ज्ञानसंबंधी थे। नवी गाथा की टीका में यह अर्थ बताया गया कि महान आचार्यों का देहसंबंध अत्यंत वांछनीय है।

अंत में, "चलती नहीं, बोलती नहीं" इत्यादि से एकाग्रचित्तता बतायी जाती है। अर्थात् भगवान का नाम संकीर्तन जब किया जा रहा है, तब एकदम निश्चल होकर सावधानी से उसको सुनना आवश्यक

है । अथवा सिद्धसाधननिष्ठ होने के कारण अपने पुरषार्थ सिद्धि के विषय में कुछ भी चिंता या गडबड न करते हुवे निश्चित रहने की अवस्था सूचित की जाती है। अत एव चरमश्लोकार्थ का विवरण करते हुवे, श्रीशठकोप स्वामीजी सहस्रगीति में (९.-१-७) गाते है कि, "मनसा भगवान की शरण में जाना ही आत्मकल्याण के लिए पर्याप्त है ; इसके उपरांत, पुरुषार्थ मिलेगा या नहीं, इत्यादि चिंता से दूसरा कुछ कायिक या वाचिक उपायानुष्ठान करने का विचार छोड दो" इत्यादि । अर्थात् निश्चित रहने का उपदेश दिया गया है । अतः ऐसी अवस्था ही यहां पर सूचित की जाती है ।

तथा च ऐसे महाचार्य से यों प्रार्थना की जाती है कि, "हे महात्मन्! आपके देहसंबंधवाले और ज्ञानसंबंधवाले हम सभी शिष्यलोग कालक्षेप गोष्ठी में आकर मिल गये हैं ; अतः आप कृपा से अपनी समाधि अवस्था छोडकर, हमारे ऊपर अनुग्रह दर्शाते हुवे गोष्ठी पधारिए ॥" (११)

(गाथा) कनैत्तिळङ्कत्तेरुमै कन्नुक्किरङ्गि * निनैत्तु मुलैवळियै निन्नु पाल्शोर *
नननैत्तिल्लम् शेराक्कुम् नर्चेल्वन्तङ्गाय् * पनित्तलै वीळ निन्वाशल् कडैपत्ति *
शिनत्तिनाल् तेन्निलङ्गै क्कोमानै च्चेत्त * मनत्तु क्किनियानै प्पाडवुम् नी वाय् तिरवाय् *
इनित्तानेळुन्दिराय् ईदेन्न पेरुरक्कम् * अनैत्तिल्लत्तारुम् अरिन्देलोरेम्बावाय् ॥ १२ ॥

इळ कन्नु एरुमै	- बाल वत्सवाली भैंस
कनैत्तु	- शब्द करती हुई
कन्नुक्कु इरंगि	अपने बछडे के ऊपर दया करती हुई
निनैत्तु	ऐसा मानकर कि वह बछडा आकर दूधा पी रहा है,
मुलै वळियै निन्नु पाल् शोर	अपने स्तनों के द्वारा निरंतर दूध निकालती हुई,
ननैत्तु इल्लम् शेराक्कुम्	(उससे) भिगोकर, (जिसके) घर को (सर्वत्र) पंकमय बना रही है ;
नल् शेल्वन् तङ्गाय्	(ऐसे) महदैश्वर्यवाले की हे बहिन !
तलै पनि वीळ	(हमारे) सिरपर हिम पडें, इस तरह से
नित् वाशल् कडैपत्ति	तुम्हारे घर के दरवाजे का अर्गला पकड कर,
तेन् इलङ्गै कोमानै	दक्षिण दिशास्थ लंका के स्वामी रावण को
शिनत्तिनाल् शेत्त	(सीतापहरण प्रयुक्त) कोप से मार डालनेवाले
मनत्तुक्कु इनियानै पाडवुम्	मन को प्रिय लगनेवाले श्रीरामचंद्रजी का जब (हम) भजन कर रही हैं, तब
नी वाय् तिरवाय्	तुम अपना मुख खोलती नहीं ; (कुछ बोलती नहीं ;)
इनित्तान् एळुन्दिराय्	(हमारा दुःख जानने के बाद) अभी तो जागो;
ईदु एन्न पेर् उरक्कम्	- यह कौनसी महानिद्रा है ?
अनैत्तु इल्लत्तारुम् अरिन्दु एलोरेम्बावाय्	(इस व्रज निवासी) समस्त घरवालों ने ठीक समझ लिया, कि हम सब तुम्हारे घर पर आकर तुम को प्रेम व आदर के साथ जगा रही हैं ; अतः जागो) ॥

इस पद्य में समुद्बोध्यमान गोपी का एक ही विशेषण (यानी संबोधन) दिया जाता है। वह यह है कि, "हे श्रीमान की बहिन!" बाद में मनोहर श्रीरामचन्द्रजी का गुणगान करने की बात आती है, नतु प्रसक्त श्रीकृष्ण का। और पूर्वपद्य की तरह, इसमें भी प्रभात का कोई चिह्न नहीं बताया गया है। अतः यह कुछ विचित्र जैसा दीख पडेगा। परंतु इसमें एक बडा शास्त्रार्थ उपदिष्ट है। पूर्वपद्य में, अपनी जाती का उचित, गोदोहरूप कर्म करनेवाले गोपों का वर्णन किया गया। हाल में तो उस स्वधर्म को भी छोडकर रहनेवाले का वर्णन किया जा रहा है। तथा हि—इस पद्य में यों कहा जा रहा है कि दिनभर जंगल में फिरकर घास चरकर संध्या में घर लौटनेवाली भैंस को घरमें संभालनेवाले के अभाव से, वह ऐसी ही आंगन में खडी रहती है; फिर उसके बच्चे को दूध पिलानेवाला भी कोई हाजिर नहीं होता है। भैंस के मन में तो बालवत्स की ही चिंता भरी है। इसलिए उसको बुलाने के लिए वह शब्द करती है। परंतु वत्स आता नहीं। वह गोशाला के किसी कोने में बांधाकर पडा रहता है। तो भी भैंस अपने मन में यों कल्पना करती है कि बछडा आकर दूध पीने लग गया है। इस भावनाबल से उसके स्तनों से दूध की धारा निकलती है और जमीन पर बहती है। फलतः वह आंगन एकदम खीचड से व्याप्त हो जाता है। यह है उस गृहस्वामी का श्रेष्ठ ऐश्वर्य, जिसकी बहिन इस पद्य में जगायी जा रही है! परंतु इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है कि इस गोपने क्यों कर अपना कर्तव्य काम छोड दिया। पूर्वाचार्यों के व्याख्यान से ही हम इसका रहस्य जान सकते हैं। आप बताते हैं कि यह गोप श्रीकृष्ण का नित्यानुचर प्रिय सेवक है, जो उनको छोडकर एक क्षण भर के लिए भी दूर नहीं जाता। अतः निरंतर कृष्णपरिचरण में निरत होने के कारण यह गोपबालक अपने घरकी तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं दे सकता है। इस प्रसङ्ग में एक बडा सुन्दर दृष्टांत दिया गया है कि, "श्रीलक्ष्मणजी को अगर अग्निहोत्र करने का अवकाश मिले, तो इस गोप का भी दूध निकालने पर्याप्त अवकाश मिलेगा।" इसका यह तात्पर्य है कि जैसे लक्ष्मणजी दिन रात श्रीरामचन्द्रजी की ही सेवा करने निरत होने का कारण, अग्निहोत्र इत्यादि दूसरा कुछ काम न कर सकते थे, इसी तरह से इस गाथा में उपवर्णित गोप भी श्रीकृष्ण के पीछे ही रहते रहने से अपने घरकी चिंता न कर सकता था। अर्थात् यह तात्पर्य हुआ कि अविच्छिन्न भगवत्सेवानिरत होने के कारण. अवकाश के अभाव से ही इस गोपने अपने कर्तव्य गोदोहनादि काम को भी छोड दिया; नतु आलस्य आदि दूसरे किसी कारण से। अत एव यह श्रेष्ठ ऐश्वर्यवाला कहा गया। अन्यथा, जिसके वहां संभालनेवाले के अभाव से दूध बेकार हो रहा है, उसको ऐश्वर्यवाला, और उसमें भी श्रेष्ठ ऐश्वर्यवाला कहना, सर्वथा अनुचित होगा। अतः जान लेना चाहिए कि इस विशेषण से स्वयं गोदादेवी ने ही इस रहस्य की सूचना दे दी।

पूर्वगाथा में प्रसक्त गोपी का वृद्ध लोगों से संबन्ध बताया गया; अर्थात् यों संबोधन किया गया कि, "हे अपने कर्म में निरत गोपों के कुल में उत्पन्न बालिके!" इस गाथा में संबोधन है, "हे स्वकर्म पराङ्मुख गोप की बहिन!" इससे शङ्का हो सकती है कि इस वैलक्षण्य का क्या कारण है; अर्थात्

"ऐसे गोप की हे पुत्री !" इस संबोधन के बदले में "हे गोप की बहिन !" पुकारने का कारण क्या है। अभी बताया गया कि प्रकृत गाथा में उपवर्णित गोप श्रीकृष्ण का नित्य अनुचर था। फिर वह, युवा अथवा वृद्ध कैसे हो सकता है ? वह तो जरूर आपका समान उमरवाला बाल ही होगा। यथा श्रीभट्टनाथस्वामी जी ने अपने से अनुगृहीत दिव्यप्रबंध में (पेरियाळ्वार तिरुमोळि ३-४-३) बताया, "श्रीकृष्ण के मित्र गोपबालक, उनके कृपाण, धनुष, लीलादंड और उत्तरीयों को अपेक्षित समय में देने के लिए हाथ में तैयार धर कर चल रहे हैं; कृष्ण तो, एक हस्त से अपने प्राणसमान एक मित्र के भुज का अवलंबन कर दूसरे हाथ से गोसमूह को बुलाने के साधन शङ्ख को धरते हुवे व्रज के प्रति लौट रहा है।"

उत्तरमथुरा क्षेत्र से लगभग दस कोस की दूर में नंदग्राम नामक एक क्षेत्र हैं। इसमें एक पहाड है और उस पर एक भगवन्मंदिर है। इसमें नंदगोप, यशोदा, बलराम एवं श्रीकृष्ण के सुन्दर विग्रहों के साथ श्रीकृष्ण के एक मित्र का भी विग्रह विराजमान है। पेरियाळ्वार ने उपरोक्त पद्य से इसी मित्र का वर्णन किया गया होगा। और आपकी पुत्रीमणि गोदादेवी भी प्रकृत गाथा में इसी गोप की बहिन को जगा रही है, ऐसे माना जा सकता हैं।

(पनि तलै वीळ) इत्यादि। यहां पर पूर्वाचार्यव्याख्या बडा सुन्दर है। तथा हि—बाहर खडी रहनेवाली इन गोपियों के सिरपर हिम का प्रवाह पड रहा है; जमीन पर कीचड का प्रवाह है; और इन दोनों के बीच में, अर्थात् गोपियों के मन में भगवान का, माने भगवद्विषयक व्यामोह का प्रवाह बह रहा है। इस तरह से इन तीन प्रवाहों के बीच में पडकर उनसे बही जाने से बचने के लिए ये गोपियां कपाट की अर्गला पकड रही हैं। अब यों प्रार्थना करतो हैं कि इस आपत्ति से हमें बचाती हुई, कपाट खोलकर हमें तुम्हारे अंतःपुर में ले जा; अथवा, तुम ही हमारी गोष्ठी में मिलकर हमें आनंदित करो।

(शिनत्तिनाल्) इत्यादि। कहा जाता है कि श्रीरामचन्द्रजी ने बडे क्रोध से रावण का संहार किया, और ऐसे करते भी आप बडे मनोहर थे। पूर्वगाथा की टीका में बताया गया कि भगवान से द्वेष करनेवाले को भक्तलोग अपना शत्रु मानते हैं, और भक्तों से द्वेष करनेवाले को भगवान अपना शत्रु मानते हैं। स्वभावतः करुणामय होते हुवे भी, श्रीरामचन्द्रजी भक्तों को दुःख देने निरत रावण पर बहुत नाराज हो गये, और उसका वध करने उद्यत हो गये। परंतु ऐसा करने के समय में भी, अर्थात् कठोर युद्धभूमि में भी, थक गये हुवे उसको देखकर ''गच्छानुजानामि" इत्यादि (अर्थात्, "हे रावण ! अब तो तुम घोरयुद्ध से थक गये हो; अतः मैं छुट्टी देता हूँ। तुम घर जाकर, विश्राम पाकर, सेना समेत, समस्त आयुधों के साथ, कल आजा; तब हम युद्ध चालू करेंगे") कहते हुवे आपने उस पर अपनी सीमातीत दया प्रकट की। तथा च, स्वभावतः दयामय होना, ऐसे होते हुवे भी भक्तों के विषय में द्रोह करनेवाले के प्रति अत्यंत क्रुद्ध होना, इस कोप से उन दुष्टों को मारने की चेष्टा करना, ऐसे करते करते ही उनपर दया भी दिखाना, दंड देने के समय में भी मनोहर लगना, ये सब भगवान के अतिमनोहर स्वभाव हैं, जो भक्तों के हृदय को द्रवित कर देते हैं।

श्रीकृष्ण पर ही सीमातीत प्रेम करनेवाली ये गोपी हाल में श्रीरामचन्द्रजी का यशोगान करने उद्यत होकर आपको मनोहर भी कह रही हैं, यह तो कुछ विचित्र मालूम पडेगा । परंतु ये, पर व्यूह विभव आदि सभी अवस्थाओं में भगवान का अनुभव करती हैं; नतु श्रीकृष्णरूप मात्र के अनुभव से तृप्त होती हैं। अतः हाल में श्रीरामावतार का अनुभव करना उचित ही होगा । अथवा श्रीकृष्ण, गोपियों के प्रिय होनेपर भी मक्खन को चुराना, वस्त्र का अपहरण करना इत्यादि कतिपय लीला करके, कदाचित् उनको दुःख भी देते हैं । श्रीरामचन्द्रजी तो इसके विरुद्ध, हमेशा प्रिय करनेवाले ही होते हैं । आपके चरित्र में कहीं सुना नहीं जाता है, कि आपने, कभी भी, किसीको दुःख देनेवाली किसी चेष्टा की । अथवा हाल में इन गोपियों के मन में, यद्वा प्रकृतगाथा से जगाई जानेवाली गोपी के मन में श्रीकृष्ण के प्रति प्रणय-रोष का आविर्भाव हुआ होगा, जिससे ये लोग "अथवा किं तदालापैः क्रियन्तामपराः कथाः" (हमें इतना बडा विरहदुःख देनेवाले, निर्दय उस कृष्ण की बात छोडकर दूसरी बात करो) इत्याद्युक्त प्रकार से श्रीकृष्ण का नाम लेने से सशपथ निवृत्त होकर दूसरी बात करने उद्युक्त हो रही हैं । षोडशस्त्री सहस्रेश, अत एव किसी व्यक्ति पर अचल विश्वास रखने अशक्त, चपल, श्रीकृष्ण के प्रति प्रणय रोष करना, गोपियों का प्रतिदिन का काम है। अतः ऐसी अवस्था में ये कदाचित् यों सङ्कल्प कर देती है, कि अब हमें पुनः इस धूर्त कृष्ण का नाम तक नहीं लेना चाहिए। फिर यह प्रश्न उठता है कि, अगर ऐसा हो, तो फिर किसका भजन किया जाय। तब विचार करने पर मालुम पडता है कि श्रीरामचन्द्रजी बडे दयालु हैं और भक्तों को कभी भी दुःख न देते हैं। आप स्वयं भक्तों से विरह का सहन नहीं कर सकते हैं, और तुरंत उनसे मिलने की चेष्टा करते हैं। सीतवियोग में आपने कितना दुःख पाया ! और उनसे मिलने के लिए वालिवध, रावणध्वंस इत्यादि कितने बडे बडे प्रयत्न किये ! अतः ऐसा निश्चय किया जाता है, कि "ऐसे महागुण श्रीरामचन्द्रजी के भक्त बनने से हमें कभी किसी प्रकार का दुःख न होगा। अतः चलिए, उन्हीका भजन करेंगी।" गोपियों की भावना है कि रामचन्द्रजी का यशोगान सुनते ही, यह शयन करनेवाली गोपी शय्या छोडकर झट उठ जाएगी। अतः यों प्रार्थना करती हैं, कि "हमने तो तुम्हारे इष्टदेव श्रीरामचन्द्रजी का भी यशोगान कर दिया ; अतः तुम जागो और शय्या से उठो।"

(अनैत्तिल्लत्तारुम्) इत्यादि। पूर्वगाथा की गोपी की तरह प्रकृत गोपी के मन में भी, शायद ऐसी एक आशा थी, कि व्रजनिवासिनी मेरी सभी सखियों को मिलकर मेरे घरपर आना चाहिए और मुझको जगाना चाहिए। अतः यों कहा जाता है कि, "हम सब एकत्रित होकर तुम्हारे घरपर आकर, पूर्वोक्त प्रवाह त्रय में मग्न होते हुवे तुमको जगा रही हैं; और यह अर्थ इस व्रजनिवासिनी सभी लोगों को विदित हो गया। सब उठकर यों आश्चर्य पा रहे हैं कि, "वाह ! इस घरवाले श्रीमान की बहिन का माहात्म्य वाचामगोचर है, जिसको जगाने के लिए व्रज की सभी गोपबालिका आ गयी हैं।" इस तरह से हमने तुम्हारे इष्टदेव का नामसंकीर्तन किया, तुम्हारा मान भी बढाया । और क्या बाकी है ? अतः तुम शीघ्र जागो।

व्रजनिवासिनी समस्त गोपबालिकाओं के, जागकर एकत्रित होने की बात जब की गयी, तब प्रभात होने का दूसरा किसी लक्षण बताने की आवश्यकता नहीं रहती है। अतः अनपेक्षित होने के कारण ही, इन दोनों पद्यों में प्रातःकाल का कोई लक्षण बताया नहीं गया ॥

व्यंग्यार्थ का विवरण ॥ पूर्वपद्य में यह अर्थ बताया गया कि व्रज में कोई कोई लोग अपनी जाती के उचित गोदोहनादि कर्म ठीक ठीक किया करते थे । इस पद्य में ऐसा एक महात्मा वर्णित है, जो निरंतर भगवत्सेवा करने में ही निरत होने का कारण, अपने स्वधर्म का अनुष्ठान न कर सकता है। इससे यह अर्थ सूचित किया जाता है कि भगवान के सेवक दो श्रेणी के होते हैं—एक श्रेणीवाले विशेष सावधानी के साथ अपने उचित स्वधर्म का परिपालन करते ही भगवान की सेवा में लग्न होते हैं; दूसरे कितने लोग तो भगवत्सेवा में इतने मग्नचित्त हो जाते हैं कि उससे छुट्टी पाकर अपने स्वधर्म का अनुष्ठान करने पर्याप्त अवकाश ही उनको दुर्लभ होता है; अतः अगत्या वे उन कामों को छोड देते हैं । दोनों शास्त्रसंमत हैं। भगवद्गीता में इस विषय की चर्चा चली कि, जब सुखदुःखरूप बंधक फल देना ही कर्म का स्वभाव हुआ, तब इन सांसारिक फलों से विमुख ज्ञानी को ऐसे कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए, कि नहीं। पांचवे, छठे तथा अठारह वें अध्यायों में इस विषय का सुंदर विवेचन करते हुवे भगवान ने यों निष्कर्ष बताया कि अपने जात्यादि के उचित कर्म को एकदम छोड देना अनुचित है; किं तु उन कर्मों का फल, यानी फलेच्छा को ही छोडना चाहिए। अतः इस उपदेश के अनुसार, शास्त्रविहित धर्मों का अनुष्ठान करना आवश्यक होता है। परंतु ऐसा एक प्रसंग आता है जब कि उक्त धर्मानुष्ठान बिलकुल अशक्य बन जाता है । सर्व देशदशाकालों में भगवान की सेवा करने में ही निरत ज्ञानी को (यानी प्रेमी को). अगर उस सेवा के बीच में मामूली शास्त्रविहित कर्म करने पर्याप्त अवकाश न मिलता हो, तो उस कर्म के त्याग से उसको दोष लगेगा ? कि नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर गीताजी में नहीं दिया गया है। गीताजी का उपदेश इतना ही है, कि आलस्य आदि कारणों से कर्म छोडना अनुचित है। प्रकृत गाथा में प्रसक्त शंका का समाधान यों दिया जाता है कि अनवरत भगवत्सेवा निरत, महात्मा को अल्प कर्मत्याग से कोई दोष न लग सकता है। भगवच्छास्त्र में भी बताया गया है कि, "मत्कर्म कुर्वतां पुंसां कर्मलोपो भवेद्यदि। तत्कर्म कुर्वते नित्यं तिस्रः कोट्यो महर्षयः" (अर्थात् मेरी, यानी भगवान की, सेवा करने निरत भक्त को अगर कर्म लोप का प्रसंग बन जाय, तो तीन करोड महर्षि लोग उस कर्म का अनुष्ठान कर देते हैं। माने कर्मठ दूसरे महर्षियों से किये जानेवाले कर्म का फल उनको मिल जाएगा।) जैसे, संन्यासी को, गृहस्थाश्रम में अपने से अनुष्ठित धर्मों को छोड देने से पाप न लगेगा, अथवा, समाधि में रहनेवाले योगी को स्नानसंध्यादि नित्यकर्म छोडने का पाप न लगेगा, इसी तरह से निरंतर भगवत्सेवा में निरत होने से अवकाशाभाव के कारण सामान्यधर्म से विमुख मानव को कोई दोष न लगेगा । अत एव आचार्यहृदय में अनुगृहीत किया गया कि, प्रत्येक जाति, आश्रम व दीक्षाओं में जैसे धर्म बदलते हैं, इस तरह से अविच्छिन्न सेवा में सामान्यधर्म का लोप हो जाता है। इस अर्थ का प्रकाशक है प्रकृत गाथा का पूर्वार्ध।

दूध बहनेवाली भैंस कहने से, अमृत के समान मधुर उपदेश देनेवाले आचार्य सूचित किये जाते हैं। और उसमें भी, अपनी निर्हेतुक कृपा से ही ऐसा पुष्कल उपदेश करनेवाले आचार्य कहे जाते हैं। भैंस के चार स्तनों की जगह, समस्त सदर्थों का मूल चार वेद, अथवा वेद, दिव्य प्रबंध, इतिहास पुराण, रहस्य ग्रंथ नामक चार प्रकार के ग्रंथों को समझना चाहिए । अथवा, उपदेश के ये चार हेतु समझे जा सकते हैं—(१) भगवान की आज्ञा, (२) शिष्य की प्रार्थना, (३) शिष्य की दुर्गति और (४) आचार्य के अपनी मनश्शांति। इनका कुछ विवरण करना आवश्यक होगा। श्रीरामानुज स्वामीजी जैसे महान आचार्य, सुमधुर उपदेशों से संसारियों का उद्धार करने के लिए ही भगवान से श्रीवैकुंठ से भूतल पर भेजे गये हैं। अतः इस आज्ञा का परवश होकर आचार्य उपदेश देते हैं । और कभी कभी, "तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया "इत्यादि शास्त्र के अनुसार, शिष्यलोग आचार्य सन्निधि जाकर उनसे उपदेश देने की सविनय प्रार्थना करते हैं, जिस को मानते हुवे आचार्य उपदेश देते हैं। क्वचित् उक्त दोनों कारणों के अभाव में भी संसारसागर में डूबकर नाना प्रकार के दुःख भोगनेवाले शिष्यों की (अथवा मानवमात्र की) दयनीय दुर्दशा देखकर आचार्य के मन में ऐसी एक प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जाती है कि, किसी प्रकार से इनका उद्धार करना ही चाहिए। इस कृपा से प्रेरित होकर, वे सदुपायों से उनको अपने वश में लाकर समयोचित उपदेश देते हैं। और क्वचित् भगवान के गुण विग्रह आदियों का चिंतन करनेवाले आचार्य के मन में ऐसा एक परमविलक्षण आनंद उत्पन्न हो जाता है, जिसका अनुभव, अकेली उनसे नहीं किया जा सकता है । इस प्रसंग में वे दूसरों को बुलाकर अपने अनुभव का विषय भगवान को उनको भी बता देते हैं, अतिमधुर उपदेशवाणी से। विशेषतः दिव्यसूरियों का उपदेश इस तरह का होता है।

यहां पर बालवत्स शब्द से बाल, यानी विशेष बुद्धि बल से रहित, एवं आचार्य पर ही पूर्ण भरोसा रखनेवाले अनन्यगति शिष्य सूचित किये जाते हैं। इन पर विशेष कृपा करते हुए, आचार्य भी उन से विशेष सेवा, पूजा आदि की प्रतीक्षा न करते उपदेश से उनको अनुगृहीत करते हैं।

दुग्ध प्रवाह से भूतल को कीचड मय करने का यह तात्पर्य है कि उक्त प्रकार के अनन्यगति एक शिष्य के लिए आचार्यों से उपदिष्ट अर्थ ही बडे बडे ग्रंथ बनकर धरातल में सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। अथवा "आह्लादशीतनेत्राम्बुः" इत्याद्युक्त प्रकार से सदा भगवद्गुणों का अनुभव करते रहने से उस आनंद के मारे आचार्यों की आंखों से हमेशा अश्रुधारा बहती रहती है, जो उस सारे गृहांगन को कीचड से भर देती है । "पङ्कदिग्धस्तु जटिलः भरतस्त्वां प्रतीक्षते" कहनेवाले भरद्वाज जी का यही अभिप्राय था कि, संतत बहनेवाले नेत्रजल से बने हुवे कीचड में भरतजी जटा तक डूब गये हैं । एवं श्री कुलशेखर स्वामीजी "पेरुमाळ् तिरुमोळि" नामक दिव्यप्रबंध में (२ - ३) कहते हैं कि भगवान के अनेक दिव्य चेष्टितों का अनुभव करते, आनंदाश्रु से श्रीरंगनाथ भगवान के दिव्य मंदिर के आंगन को भक्त लोग कीचड से व्याप्त बना देते हैं । आनंद मात्र से नहीं, वरन दुःखकाल में भी भक्तों के नेत्र से अश्रु का प्रवाह निकलता है । भक्तों का दुःख तो प्रसिद्ध है—भगवान से विरह का दुःख। उपरोक्त भरतजी का

अश्रु प्रायः ऐसा दुःखाश्रु ही था। एवं श्रीशठकोपस्वामी जी भी सहस्रगीति में (७-२-१) श्रीरंगनाथ भगवान से विरहित एक नायिका की अवस्था प्राप्त कर, अपने सीमातीत दुःख का वर्णन करते हुवे कहते हैं कि, "यह बालिका दोनों हाथों से अपने अश्रु हटा रही है।"

(नच्चेल्वन्तङ्गाय्) इस शब्द का यह भी अर्थ होता है कि हे महालक्ष्मीजी की बहिन! चेतनों के उद्धार में ही दत्तदृष्टि, पुरुषकारकृत्यनिरत, दयामूर्ति लक्ष्मीजी के समान गुणवाले आचार्यों को आपकी बहिन कहना अत्यंत उचित है। (पनित्तलैवीळ) आचार्य के मकानपर रहने से हमें आपके मुखारविंद से सदर्थों को सुनने का भाग्य मिलता है जिससे विवेकरूप अमृतप्रवाह बहकर अपने सिर को शीतल बनता है। ज्ञान का मूल मस्तिष्क का आधार होने से सिर को हिम से आच्छादित बताया गया। अथवा, सदर्थों के श्रवण से गर्व दूर हो जाता है और विनय से सिर नमता है। इससे भी सिर को थंडा कहना पडता है। लोकव्यवहार में भी, अहंकार, क्रोध इत्यादि से सिर को गरम हुआ कहते हैं और शांतियुक्त पुरुष का सिर थंडा कहलाता है।

(तेन्निलङ्कैकोमानै) इत्यादि। सारा श्रीरामायण ही एक विशेष अर्थ का सूचक बताया जाता है। श्रीवेदांतदेशिक स्वामीजी संकल्पसूर्योदयनाटक में एक बडा सुंदर पद्य लिखते हैं—'दर्पोदग्रदशेन्द्रियानन-मनोनक्तंचराधिष्ठिते देहेऽस्मिन् भवसिंधुना परिवृते दीनां दशामास्थितः। अद्यत्वे हनुमत्समेन गुरुणा संबोधितार्थस्सुधीः लङ्कारुद्धविदेहराजतनयान्यायेन लालप्यते ॥" पद्यका यह तात्पर्य है—संसारसागर से परिवृत इस मनुष्य शरीर को समुद्र से घिरा हुवा लंकानगर मानना चाहिए। इस शरीर का संचालन करनेवाला, दस इंद्रियों का प्रधान, "चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवत् दृढम्" इत्याद्युक्त प्रकार से अत्यंत बलवान् मन ही दशकंधर रावण है। दुर्मार्ग में खेंचनेवाले इस मन से बंदी के रूप में अपने अधीन किया गया हुआ जीव ही सीताजी है। भगवान की वार्ता सुनाकर दुःखी जीव को प्रहृष्ट बनानेवाला आचार्य ही हनुमान कहलाते हैं। तथाच, भगवान से विरहित होकर दुर्मार्गगामी मन से इतस्ततः खेंचा जानेवाला जीव लंकास्थित सीतादेवी की तरह सांसारिक दुःख भोग रहा है। इस पद्य के अनुसार संसारी चेतन के मन को क्षुद्र विषयों से लौटाकर भगवद्विषय में लगानेवाले भक्ताग्रेसर एवं विरक्ताग्रेसर सदाचार्य ही रावणहंता कहलाते हैं। ऐसे महोपकारक आचार्य एवं आपके शुभनाम, भक्तों के लिए अतिमधुर होते हैं। जैसे श्रीमधुरकवि स्वामीजी ने गाया कि, "यशोदाजी से दाम में निबद्ध, अत्याश्चर्यमय दिव्यचेष्टितवाले भगवान से भी अधिकतया, कुरुकापुरी के नाथ, मेरे नाथ, श्रीशठकोपस्वामीजी के नाम लेते ही मेरी जीभ में अमृत बहता है।" अतः ऐसे आचार्यनिष्ठा में अग्रेसर सच्छिष्यों को आचार्य बडे प्रिय लगते हैं। अतः यहां पर ऐसी प्रार्थना की जाती है कि, हम तो, अब ऐसे परमकारुणिक, कैङ्कर्य श्रीसमृद्ध, पुरुषकारकृत्यनिरत महाचार्य का संनिधि जाकर, मनोहर आपके शुभगुणों का कीर्तन करते हुवे, आपसे सदुपदेश पाकर धन्य बनने तैयार हो गये हैं। अनादिमाया से सुप्त (यानी अज्ञानी) हमको जगाने के लिए जब ऐसे महाचार्यों का अवतार हमारे बीच में हुआ है, तब ऐसे सुसमय को व्यर्थ खो

जाना सर्वथा अनुचित है। इस तत्व पर ध्यान न देते हुवे, तुम क्यों कर अभी भी सो रहे हो? यह तुम्हारी भूल बडा अनुचित है। सभी गुरुभाईयों एकत्रित हो गये। तुम एक ही बाकी है। अतः तुम भी हमारी गोष्ठी में आ जा ॥ (१२)

(गाथा) पुळ्ळिन्वाय् कीण्डानै पोल्लावरक्कनै * किळ्ळिक्कळैन्दानै कीर्तिमै पाडिप्पोय् *
पिळ्ळैहळेल्लारुम् पावैक्कळम् पुक्कार् * वेळ्ळियेळुन्दु वियाळमुरङ्गित्तु *
पुळ्ळुम् शिलम्बिन काण् पोदरिक्कण्णिनाय् * कुळ्ळक्कुळिर कुडैन्दु नीराडादे *
पळ्ळिक्किडत्तियो पावाय् नी नन्नाळाल् * कळ्ळम् तविर्न्दु कलन्देलोरेम्बावाय् ॥ १३ ॥

पोदु अरि कण्णिनाय् - हे पुष्प में रहनेवाले भ्रमर के समान नेत्रवाली !
पावाय् -हे प्रतिमा के समान सुंदरी !
पुळ्ळिन्वाय् कीण्डानै - बकासुर का मुख चीर डालने वाले, (एवं)
पोल्ला अरक्कनै किळ्ळिक्कळैन्दानै - दुष्ट राक्षस रावण को चिकोटी काटकर मार डालनेवाले (भगवान) का
कीर्तिमै पाडि पोय् - यशोगान करती जाकर,
पिळ्ळैहळ् एल्लारुम् - सभी गोपबालिकाएं
पावै कळम् पुक्कार् -व्रत करने की जगह पहुंच गयीं,
वेळ्ळि एळुन्दु - शुक्र उदित हुआ;
वियाळम् उरङ्गित्तु - गुरु अस्तमित हो गया;
पुळ्ळुम् शिलम्बिन काण् - पक्षियों ने भी कलकलकर दिया;
कुळ्ळक्कुळिर कुडैन्दु नीराडादे - सुशीतल जलाशय में गोता मारकर स्नान किये विना,
नी पळ्ळि किडत्तियो - तुम क्यों कर सो गयी हो?
नल् नाळ् आल् - यह तो बहुत अच्छा समय हैं; अतः
कळ्ळम् तविर्न्दु - (चोरी, यानी) अकेली श्रीकृष्णानुभव छोडकर
कलन्दु एलोरेम्बावाय् - हम सब से मिलकर (अनुभव करने आ जा) ॥

पूर्वगाथा में श्री कृष्ण के नामस्मरण किये विना ही, केवल श्रीरामचन्द्रजी का यशोगान किया गया, और आप मनोहर भी बताये गये। इसको सुनते ही उन गोपियों की गोष्ठी में बडा कोलाहल मच गया। बहुत-सी गोपियां बोल उठीं कि, "यह क्या है? श्रीकृष्ण की इस राजधानी में, जहां पर सब लोग आपके ही अनन्यभक्त होते हैं, दूसरे देव श्रीरामचन्द्रजी का नाम लेना बडा अनुचित है, और उसमें भी आपको मनोहर कहना सुतरां अनुचित है, हमारे पातिव्रत्य का विनाशक है। वस्तुगत्या श्रीकृष्ण की तरह श्रीरामचन्द्रजी इतने मनोहर भी नहीं होते हैं। श्रीकृष्ण का सौंदर्य वाचामगोचर है, जिसके दर्शन करने पर अत्यंत वीतराग महर्षिलोग भी उस रूप से आकृष्ट होकर अपने जप तप आदि भी भूलकर उस सौंदर्य में ही लीन हो जाते हैं—"मणिविडम्बिनि तस्य मनोहरे वपुषि मग्नमना मुनिमण्डली। जपममुञ्चत होममुञ्चत व्रतममुञ्चत वेदममुञ्चत ॥" इत्यादि। और एक समय में जब पांडवदूत के रूप से हस्तिनापुर में दुर्योधन की राजसभा में आप पधारे, तब आसुरी प्रकृतिवाले उस दुर्योधन ने अपने सभासदों को पहले से

ही कठोर आज्ञा दी रखी कि श्रीकृष्ण को, अभ्युत्थान, प्रणाम, कुशलप्रश्न इत्यादि किसी प्रकार की पूजा या सन्मान नहीं करना चाहिए। और वे लोग भी अपने मन में ऐसा ही पक्का निश्चय कर बैठे थे। परंतु जब हमारे श्रीकृष्ण का, उस सभा में आगमन हुआ तब ये सब लोग, आपके सौंदर्य से आकृष्ट होकर, राजाज्ञा और तदनुगुण अपने संकल्प को भी भूलकर सबके सब आसन से उठकर खडे हो गये। एवं सौलभ्य सौशील्य आदि मनोहर शुभगुणों का अगर विचार किया जाय, तो निस्संशय कबूल करना पडता है कि श्रीकृष्ण के ये गुण ही अधिक व मनोहर होते हैं। क्यों कि उक्तरीति से आप पांडवों का दूत तक बन गये। अथवा इतनी दूर क्यों जावें? सर्वथा अज्ञ गोपालक हम लोगों से मिलकर श्रीकृष्ण हमारे ऊपर कैसा श्रेष्ठ प्रेम दिखाया करते हैं। जरा बतलाइए तो सही, कि श्रीरामचन्द्रजी के ऐसे सीमातीत सौंदर्य अथवा मनोहर गुणों का कहीं वर्णन किया गया है। अतः इस व्रज में श्रीरामचन्द्र का यशोगान करना बडा अनुचित है॥ इसके बाद श्रीरामपक्षपातिनी कितनी गोपी ने प्रत्युत्तर दिया. कि हमारे प्रभु का सौंदर्य भी कुछ कम नहीं है, जो कि पुंसां दृष्टिचित्तापहारित्वेन (यानी पुरुषों के भी नयन व मन का आकर्षकत्वेन) प्रसिद्ध है—"चन्द्रकान्ताननं रामम् अतीव प्रियदर्शनम्। रूपौदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारिणम्॥" इत्यादि। एवं आपके सौशील्य सौलभ्य आदि शुभगुण भी, भील गुहदेव शबरी, वानर सुग्रीव व हनुमान, राक्षस विभीषण, इत्यादि अत्यंत नीच व्यक्तियों तक बहते हैं। और आपका यह एक विशेष है ही कि करुणामूर्ति होने के कारण, आप कभी, किसी को दुःख न देते हैं। अतः आपका यशोगान करने से ही विरहसंतप्त हमारे मनकी शांति मिल सकती है।

तब श्रीकृष्ण पक्षवाली गोपियों ने फिर कहा कि, श्रीराम और श्रीकृष्ण, इन दोनों के बीच में कौन अधिक सुंदर है, अथवा अधिक गुणवान हैं, यह चर्चा करना ही बडा अनुचित है। कारण कि श्रीकृष्ण तो हमारे पतिदेव ठहरे। फिर आपके गुणदोषों की चर्चा करने से क्या लाभ है? शायद आप विरूप व निर्गुण भी क्यों न हो, आपकी सेवा करना हमारा परमधर्म है। दूसरा कोई भी पुरुष उनसे भी अधिक सुंदर व विशेष गुणवान बेशक हो, तो भी हम उसका ध्यान न कर सकती हैं। अतः श्रीकृष्ण का ही यशोगान इधर चलना चाहिए, नतु दूसरे किसी देव का।

इस तरह से कुछ समयतक चलती रही इस चर्चाने जब समाप्त होने न चाहा, तब और कितनी कुछ विशेषज्ञ गोपियां बोली, कि—अरे यह क्या व्यर्थ चर्चा कर रही हो? क्या श्रीराम और श्रीकृष्ण अलग अलग दो व्यक्ति हैं, जिन में यह तारतम्य की परीक्षा की जाय? दोनों को भिन्न भिन्न समझना तुम्हारी भूल है; क्यों कि दोनों एक ही भगवान के दो विभिन्न रूप हैं। क्या तुमने नहीं सुना है कि माता यशोदाजी स्नान, अलंकार इत्यादि के लिए कभी कभी श्रीकृष्ण को बुलाती हुई, यों पुकारती हैं कि, "हे वामनमूर्ते इधर आ, हे काकुत्स्थ! यहां पधारो; हे गोपालकृष्ण! इस जगह विराजो" इत्यादि? और श्रीकृष्ण की शैशवावस्था की यह भी एक लीला प्रसिद्ध है—"रामो नाम बभूव हुम्, तदबला सीतेति, हुम्,

तौ पितुर्वाचा पञ्चवटीवने विहरतः, तामाहरद्रावणः। निद्रार्थं जननीमुखादिति कथां कृष्णस्य संश्रृण्वतः सौमित्रे क धनुर्धनुर्धनुरिति व्यग्रा गिरः पान्तु नः" (इस का यह तात्पर्य है—यशोदाजी श्रीकृष्ण किशोर को निद्रा करने के लिए झूले में अथवा गोद में सुवाकर उससे मनोहर कथाएं सुनाती रही। एक दिन रामायण की कथा चलती थी। माताजी ने कहा—पूर्वकाल में राम राम करके एक व्यक्ति था। श्रीकृष्णने उत्तर दिया-हुम्। फिर माताजी ने कहा, उसकी एक स्त्री थी, सीता। हुम्। वे दोनों पिताजी की आज्ञा से पंचवटी के पास वन में विहार करते थे। हुम्। इतने में रावण ने सीता का हरण कर लिया। इस बात को सुनते ही बालकृष्ण चौंक कर, "हे लक्ष्मण! मेरा धनुष किधर है? धनुष किधर है?" बोलते शयन से उठ खडा हो गया। इसका कारण क्या था? माताजी जो कथा सुना रही थी, वह श्रीकृष्ण के अपने निजी चरित्र ही था। अतः सीतापहरण वृत्तांत सुनते ही उसके मन में ऐसा भाव उत्पन्न हुआ कि अभी, हाल में ही, रावण सीता का अपहरण कर रहा है। अतः अपनी प्रेयसी की रक्षा करने के लिए वह धनुष मांगते हुए उठ गया। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि "बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि" कहने वाले श्रीकृष्ण का ही एक अवतार है श्री रामचंद्र। अतः श्री रामचंद्रजी का यशोगान करेंगे, अथवा श्रीकृष्ण का यशोगान करेंगे, ये दोनों एक ही बात है। अब चलो, दोनों के दिव्य चरित्रों को मिलाकर भजन करेंगी। यह मधुर उपदेश सुनकर सभी गोपियां प्रसन्न हो गयीं और दो श्रेणी में खडी हो कर अलग अलग श्रीकृष्ण का और श्रीराम का यशोगान करने लगी। इस परम विलक्षण रीति से प्रकृत गाथा गायी जा रही है। यद्यपि मूल गाथा में एकैक चरित्र का ही उल्लेख किया गया है। तथापि जानना चाहिए कि वास्तव में ऐसे अनेक चरित्रों का गान हो चुका; जिसका संक्षिप्त परिचय मात्र इस गाथा में दिया गया है।

श्रीकृष्ण का संहार करने के लिए कंस से भेजे गये हुवे अनेक दैत्यों में से एक दैत्य बक पक्षि का रूप धारण कर आ गया था। श्रीकृष्ण ने उसको ठीक समय में पहिचान कर, उसके मुख को दो भाग में चीर डाल कर उसको समाप्त कर दिया।

किसीके मन में यहां पर ऐसी शंका होगी कि श्रीकृष्ण से अनुष्ठित सेकडों अतिमानुष कृत्यों को छोडकर, अत्यल्प इस बकासुर वध की प्रशंसा क्यों कर की जा रही है। इस का प्रत्युत्तर यह है कि भक्तों के अभिप्राय में भगवान की सभी लीलाएं एकसमान होती हैं; उनमें न्यूनाधिकभाव का प्रश्न ही उठता नहीं। वस्तुतः यह बताना भी कठिन होता है कि उनमें से कौनसा श्रेष्ठ है और कौनसा कनिष्ठ। सामान्य लोग मानते हैं कि रावणवध, कंसवध, गोवर्धनोद्धारण इत्यादि काम ही बडे हैं; परंतु यह बिलकुल भूल है। अपने संकल्प मात्र से जगत की सृष्टि, स्थिति और संहार कर डालनेवाले भगवान की कल्पनातीत शक्ति के सामने गोवर्धन को उठाना, रावण का वध करना, इत्यादि, किस तरह से वडे काम हो सकते हैं? अतः इन चेष्टितों को लेकर आपकी शक्ति को नापना सर्वथा अनुचित है। फिर भक्त लोग क्यों कर इन चरित्रों का ही वारं वार गान करते हैं? इस लिए करते हैं कि ये सभी, अपने प्यारे भगवान की लीला होने के कारण उनको बहुत प्यार लगती हैं। श्रीकूरेशस्वामीजी ने सुंदरबाहुस्तव में इस अर्थ का प्रकाशन

करते हैं—"इङ्गितं निमिषितं च तावकं रम्यमद्भुतमतिप्रियंकरम्। तेन कंसमुखकीटशासनं सुन्दरात्पकमपि प्रशस्यते ॥" इसका यह तात्पर्य है—हे सुंदरबाहु भगवन! आपकी सभी चेष्टाएं एवं स्वर नेत्र अंगों के विकार सब, अति मनोहर, अत्याश्चर्यमय एवं अतिप्रिय होते हैं। इस कारण से कीटप्राय कंस आदियों का वध, जो कि, सर्वथा आपकी महाशक्ति का अननुगुण है, वह भी, भक्तों से अत्यादर पूर्वक प्रशंसित होता है। अथवा इतनी दूर क्यों जावें? इसी गाथा में बताया जा रहा है कि श्रीरामचंद्रजी ने रावण को चिकोटी काटकर मार डाल दिया; अर्थात् नखाग्र से उसके सिर काट डाल दिया। अतः सुदृढ जान लेना चाहिए कि भक्तों के अभिप्राय से बकसंहार व रावणसंहार दोनों एक ही बात है।

इस पर कोई लोग फिर शंका कर सकते हैं कि श्रीरामचंद्रजी ने बहुत परिश्रम से ही रावण को मार दिया है। समुद्र पर पुल बांधना, राक्षसों से लडना, मेघनाद के अस्त्र से बांधा जाना, अगस्त्य महर्षि से आदित्यहृदय स्तोत्र का उपदेश लेना इत्यादि कितने परिश्रम आप से उठाये गये हैं। ऐसे होते हुवे, केवल नखाग्र से रावण के सिर काट डालने की यह जो बात की जा रही है, यह क्या मस्करी है? इस का संक्षिप्त प्रत्युत्तर यही है कि उक्त ये सब चेष्टाएं वस्तुगत्या रावण का वध करने अनिवार्य काम के रूप में श्रीरामचंद्रजी से नहीं किये गये हैं; मगर ये सब केवल दिखावट है। कारण कि बिलकुल अनायासेन ही श्रीराम रावण का संहार कर सकते थे, जैसे उससे भी बलवान वाली को एक बाण से आपने मार डाला। परंतु आपके मन में एकदम रावण को मार डालने का विचार न रहा। आप चाहते थे कि किसी प्रकार से उस मूर्ख को समझाकर अपना दास, अथवा मित्र बना दूं। मालुम पडता है कि जब विभीषण शरणागत होकर आ गया, तब श्रीरामचंद्रजी के मन में यह प्रबल आशा उत्पन्न हो गयी कि खुद रावण भी इसी तरह से अगर आ जाता तो बहुत अच्छा होता। अत एव आपने अभयप्रदान के बाद सुग्रीव को आज्ञा दी कि, "आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया। विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ॥" (हे सुग्रीव! मैं ने उपस्थित इस राक्षस को तभी अभय दे चुका; अतः अब वृथा चर्चा चलाने से क्या लाभ है? चलो! उसको, वह विभीषण हो, अथवा स्वयं रावण ही क्यों न निकले, यहां लेते आओ।)

और इसी प्रकरण में आपने जो कहा था, कि "हे वानर महाराज! इस क्षुद्र राक्षस से तुम क्यों कर डर रहे हो? यह एक ही नहीं, किंतु दुनियाभर के समस्त दैत्य, दानव, यक्ष, राक्षस इत्यादि सभी दुष्ट लोग एकत्रित होकर मेरे विरुद्ध आ जाय, तो भी, अगर मेरी इच्छा हो, तो मैं उन सब को अपनी अंगुली के छोर से मार डालूंगा (पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान्। अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर ॥)" यह निरर्थक वागाडंबर न था, परंतु एकदम सच्ची बात थी। समुद्र को लक्ष्य कर अपने से उठाये हुवे ब्रह्मास्त्र को, उसके अनुकूल बन जाने पर, उसीकी प्रार्थना के अनुसार, सर्वथा दृष्टि का अगोचर, बहुत दूर के, "द्रुमकुल्य" नामक एक द्वीप पर छोडकर आपने तत्रत्य असंख्य दैत्यों का संहार कर दिया। इसी बाण को आप रावण पर भी भेज सकते थे। वह बाण कदापि व्यर्थ न होता था। इस बात को भी रहने दीजिए। लंका पहुंचने के बाद प्रहस्त के संहार के बाद एक वक्त रावण स्वयं लडने

के लिए युद्ध भूमिपर आ गया। तब श्रीरामचंद्रजी ने विना क्लेश उसके रथ, घोडे, सारथि, कवच, आयुध, किरीट इत्यादि सभी परिकर का एकदम ध्वंस कर दिया। तब रावण भी, "भृशार्तः चचाल चापं च मुमोच वीरः।" उस समय में उसको समाप्त कर देन बडा सरल था। तो भी श्रीरामचंद्रजी ने ऐसा नहीं किया। उन्होने, "हे रक्षसेश्वर! इस महायुद्ध में तुम बहुत थक गये हो! अतः अब तुम अपना घर लौट जा और विश्राम लो। बाद में सेना सजावट के साथ आओ; तब लडेंगे" कहते हुवे उसको छोड दिया। इस के बाद दूसरा दिन रावण लडने नहीं आया; परंतु उसने अपने बदले में कुंभकर्ण को जगाकर भेजा, मेघनाद वगैरह अपने पुत्रों को भेजा, भाईयों को भेजा, महान मूलबल को भेजा। सब मारें गये। श्रीरामचंद्रजी की यह आशा थीं कि इस वीरता को देखकर घबराते हुवे रावण संधि करेगा। परंतु उस दुष्ट का निश्चय था "द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचित" (भेषक दो टुकडा हो जाऊँ, मगर किसी के सामने अपना सिर न नमाऊँगा)! इस कारण से आपकी आशा व्यर्थ हो गयी। यह बात अलग है। खास जानने की बात तो यह है कि श्रीरामचंद्रजी ने बडी सरलता से ही रावण का संहार किया।

तथा च, ये गोपियां दूसरी एक सखी का मकान पहुँच कर यों कहते हुवे उसको जगाती हैं कि, उक्तरीति से श्रीकृष्ण के और श्रीराम के वीरचरितों को गाती हुई सब गोपबालिकाएं व्रतकरने का अपना संकेतस्थल जा चुकी; अतः तुम भी जागकर हमारे साथ चलो। इस पर वह गोपी बोली कि, "सब छोटी छोटी बालिका होने से समय पर ध्यान न देती हुई आधी रात में ही संकेतस्थल गयी होंगी। क्या हम भी ऐसे कर सकती हैं? नहि नहि। जरा प्रातःकाल होने दो; पीछे मैं जरूर उठकर तुम से मिल जाऊंगी।" अतः प्रातःकाल हो जाने के लक्षण बताकर, फिर उसको जगाती हैं ये गोपियां। शुक्र का उदय होना और गुरु का अस्त होना, ये दोनों प्रातःकाल के चिह्न बताये गये हैं। यह बात तो प्रसिद्ध है कि शुक्र का उदय कभी भी आधी रात को न होगा; परंतु प्रातःकाल में सूर्योदय से कुछ पहिले ही होगा। सूर्योदय के बाद भी कदाचित् उसका उदय होता तो सही, परंतु तब वह हमें दीख पडता नहीं। मगर बृहस्पति का अस्त होना कुछ दूसरी चीज है। रात के किसी समय में (और दिन में भी, जब कि हम उसको नहीं देख सकते) उसका अस्त होगा। अतः इसको प्रातःकाल का लक्षण कहना उतना उचित नहीं मालुम पडेगा। तो भी, बारहों राशियों में घूमनेवाला यह बृहस्पति जब वृषभ राशि आवें, तब धनुर्मास में सूर्योदय के कुछ पहिले उसका अस्त होगा। मालुम पडता है कि जब गोपियां इस व्रत में उद्युक्त हुईं, तब ऐसा योग था। वस्तुतस्तु व्यंग्यार्थ लेने पर इसका पूरा उपयोग व स्वारस्य समझ में आवेगा। अस्तु।

ग्रहों का उदयास्तमय देखकर समय को पहिचानना कुछ कठिन है; और शयन पर सोते सोते, ऐसा करना अशक्य भी है। अतः दूसरा एक सुगम लक्षण बताया जाता है—(पुळ्ळुम् शिलम्बिन काण्)। छठी गाथा में भी प्रातःकाल का यह लक्षण बताया गया। उसके बाद अब दूसरी वार यह बताया जा रहा है। बीच में पांचेक गोपियों को जगाते कुछ समय जरूर बीत चुका है। अतः उसी लक्षण को

फिर बताना कुछ अनुचित सा प्रतीत होगा। दोनों में कुछ अंतर बताने पर यह अनौचित्य मिट जाएगा। पक्षियां जागते ही जो अवाज करते हैं, उसका वर्णन छठी गाथा में हुआ। फिर, वे अपने नीडों से बाहर आकर, सब मिलकर आहार कमाने के लिए बडा कलकल करते जो निकलते हैं, यह ध्वनि इस गाथा में उपवर्णित है।

इतनी बात करने पर भी अंदर सोती हुई गोपी ने जब उठने नहीं चाहा, तब बाहर खडी रहनेवाली उसका संबोधन करती हैं (पोदरिक्कण्णिनाय्)। इसका यह तात्पर्य है कि यह गोपी अपने नयन सौंदर्य पर बडा अभिमान रखती हुई, उससे श्रीकृष्ण को अपनी ओर खेंच लेने चाहती हुई, एतदर्थ, व्रतानुष्ठान इत्यादि दूसरा उपायानुष्ठान करने से विमुख है; अतः शीघ्र उठने की इसकी आवश्यकता न रही। बाहर रहनेवालियों का तो यह अभिप्राय है—"यह तो ठीक है कि तुम्हारे नयन सौंदर्य से आकृष्ट होकर स्वयं श्रीकृष्ण ही तुम्हारे पास दौडते आ जायंगे। परंतु ऐसे महाभाग्य से विरहित हम लोग तो श्रीकृष्ण प्राप्ति के लिए दूसरे उपाय के अभाव में तुम्हारे पुरुषकारभाव पर ही पूरा भरोसा रखकर यहां पर आयी हैं। अर्थात् हमारी यह आशा है कि अपने नयन सौंदर्य से तुम श्रीकृष्ण को अपनी ओर खेंचकर हमको उनसे मिला दोगी। अतः तुम्हारे वास्ते नहीं, मगर हमारे वास्ते उठो।" (पोदु-अरि कण्णिनाय्) इस शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। अरि शब्द हरि शब्द का विकार समझा जा सकता है। हरि शब्द तो नानार्थक होता है। मृग, एवं भ्रमर ऐसे दो अर्थ यहां पर ठीक लगते हैं। पोदु—चलनेवाला, अरि-मृग के समान नेत्रवाली, यह एक अर्थ हुआ। अर्थात्, वन में चलने के समय में भय के मारे हरिन अपने नेत्र को चारों ओर फिराता है; तब उनका सौंदर्य बहुत बढिया दीखता है। ऐसे सौंदर्ययुक्त नेत्रवाली है प्रकृत गोपी। अथवा पोदु शब्द का अर्थ है पुष्प (कुवलयपुष्प)। कुवलयपुष्प के समान, एवं हरिन के (हरिन के नेत्र के) समान मनोहर नेत्रवाली। अथवा पुष्प में रहनेवाले भ्रमर के समान सुंदर नेत्रवाली। अथवा, अरि-शत्रु है; पुष्प का शत्रु, माने पुष्प के सौंदर्य को जीतनेवाले सौंदर्य से युक्त नेत्रवाली।

(कुळ्ळक्कुळिर) इत्यादि। यह तो बडा अच्छा दिन है। पहली गाथा में उक्त रीति से श्रीकृष्ण से हमारी मिलाप को रोककर हमको कैद में डालनेवाले वृद्ध गोपों ने ही अब चार दिन के लिए हमें उनसे मिलने की अनुमति दी है। इन दिनों के बीत जाने पर, न जाने फिर हमारी हाल कैसी होगी। ऐसे सु-अवसर को प्राप्तकर भी तुम कर्तव्य काम छोडकर आराम से सो रही हो। इस पर प्रश्न हुआ कि अबका कर्तव्य काम क्या है। इसका प्रत्युत्तर यह दिया जाता है कि श्रीकृष्ण के विरह से संतप्त हमारा शरीर ठीक सुशीतल हो जाय, इस तरह से स्नान करना ही अबका कर्तव्य है। इसको छोडकर नींद करने का क्या मतलब है?

इस प्रश्न के उत्तर में भीतर सोती हुई गोपी बोली कि, "मैं भी नींद नहीं ले रही हूँ; किंतु जागकर ही श्रीकृष्ण का गुणानुसंधान कर रहीं हूं। अतः जरा ठहरिए; इस काम से निवृत्त होकर आ

जाऊंगी।" तब बाहर रहनेवाली गोपियां कहती हैं (कळ्ळम् तविन्दु।) यही तुम्हारी बडी भूल हो गयी। हम इतने जन तुम्हारी प्रतीक्षा करती हुई बाहर खडी हैं; तुम इसका परवाह न करती हुई, चोर की तरह अकेली कृष्णानुभव कर रही हो। यह बडा अनुचिन है। अतः हमारी गोष्ठी में मिलकर हमारे साथ ही भगवान का ध्यान, सेवा इत्यादि करो।

व्यंग्यार्थ का विवरण॥ इस पद्य में नयन सौंदर्य का बोधक एक संबोधन है। आचार्य के विषय में नयन तो आपका युक्तायुक्तविवेचनसाधन ज्ञान ही होगा। नयन का सौंदर्य तो ज्ञान की महत्ता है। तथाच हे विवेचनकुशल महाज्ञाननिधे आचार्य! ऐसा तात्पर्य निकला। (पावाय्) यानी प्रतिमा के समान! कहने से प्रतिमा की तरह मालिक (यानी भगवान एवं स्वाचार्य) का परतंत्र रहना, अर्थात् पतिव्रता स्त्री की तरह आपके अनन्यभक्त रहना, यह वैभव बताया जाता है। श्रीकृष्ण कथा का एवं श्रीराम कथा का कीर्तन करते हुए सभी व्रतस्थल पहुँच गये हैं कहने का यह तात्पर्य है कि श्रीभागवत, श्रीविष्णुपुराण, श्रीरामायणादि सद्ग्रंथों का कालक्षेप सुनने समुत्सुक शिष्य जन, सुने हुवे भागों का चिंतन करते हुवे कालक्षेपगृह पहुंच गये हैं; अथवा बक, रावण आदि की तरह राजसी व तामसी रहनेवाले बाह्य व कुदृष्टि मतावलंबियों का, वादयुद्ध में दमन करनेवाले आचार्य का यशोगान करते हुवे कालक्षेप गृह चले गये हैं।

शुक्र का उदय एवं गुरु का अस्त हो गया, कहने से आचार्य संनिधि जाकर सदुपदेश पाने का योग्य अवसर की प्राप्ति सूचित की जाती है। तथा हि, शुक्र एकदम सफेद रहकर सत्वगुण का सूचक होता है; और गुरु, इससे विपरीत रज व तमो गुणों का सूचक है। तथाच यह सूचित हुआ कि रजस्तमोगुण नष्ट हो गये और सत्वगुण का उदय हुआ है। अतः इस अवस्था के पलट जाने से पहले ही हमें आचार्य संनिधि जाकर आपका आश्रय ले लेना चाहिए। अथवा देवगुरु एवं ज्ञान का भंडार बृहस्पति ही सत्वगुण अथवा शुद्ध ज्ञान का सूचक है; इसका विपरीत, असुरगुरु तो, अज्ञान, मोह, कपटबुद्धि इत्यादि का सूचक है। तथाच यह अर्थ हुआ कि कलि के प्राबल्य से, एवं अनादि पापबल से हमारा सत्वगुण एवं उसका फल ज्ञान एकदम नष्ट हो गये हैं; उलटा रजस्तमोगुण एवं उनका कार्य अज्ञानादि अभिवृद्ध हो गये हैं। परंतु दैवयोग से इस दुःखद परिस्थिति का निवारण करने समर्थ आचार्य अब मिल गये हैं। अतः तुरंत आपके पास जाकर लाभ उठाना हमारा कर्तव्य है।

पक्षियों का कलकलशब्द तो, आचार्य द्वारा उभयवेदांत रहस्यार्थों को सीखने के लिए एकत्रित हुये गये शिष्यों का सकुतूहल परस्पर वार्तालाप है। यह अच्छा समय है कहने का यह तात्पर्य है कि "वक्ता श्रोता च दुर्लभः" इत्याद्युक्त प्रकार से, जब सदर्थों का उपदेश देनेवाले सदाचार्य, एवं उपदेश पाने इच्छुक सच्छिष्य मिलना बहुत कठिन हुआ है, ऐसी अवस्था में सद्गुरु सच्छिष्यों की मिलाप अब दैवयोग से हुई है। इसको नहीं खोना चाहिए।

शिशिर जलाशय में स्नान करने का तात्पर्य है शास्त्ररूपी जलाशय में अपने समस्त संशयविपर्यय इत्यादि का नाश करते गाढ अवगाहन करना। इससे प्रवचन करने की आवश्यकता बतायी जाती है। अर्थात् प्रवचन करने पर्याप्त ज्ञानवैशद्य हो जाय इस तरह से शास्त्रों का गांढ परामर्श करने की प्रार्थना की जाती है। कहने का यह मतलब है कि दूसरों को उपदेश देने के पहिले, आचार्य को उस ग्रंथ का ठीक अध्ययन करना पडता है। प्रसक्त ग्रंथ की एक पंक्ति का भी अर्थ अज्ञात न बच जाय, एवं किसी अत्यल्पविषय की भी शंका न रह जाय, इस तरह से बडी सावधानी के साथ अध्ययन करना पडता है। अन्यथा, उस ग्रंथ का शिष्यमनस्संतोषकारक प्रवचन किस तरह से किया जाय? शिष्य से पूछे जानेवाले प्रश्नों का किस तरह से प्रत्युत्तर दिया जा सकता? अतः प्रवचन की दृष्टि से अभ्यस्त ग्रंथ में ही संपूर्ण पांडित्य मिलेगा; केवल स्वात्मानुभव के लिए बांचे जानेवाले ग्रंथ में ऐसा विशद पांडित्य न मिल सकता है। इस कारण से यहां पर आत्मा शिशिरित हो जाय इस तरह से अवगाहन करने की जो बात कही गयी है, इसका यह तात्पर्य हुआ कि आनंद के मारे शरीर शिशिरित हो जाय, इस तरह से उपदेश करने आवश्यक परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त करते हुवे शास्त्र में ठीक अवगाहन करने की प्रार्थना करना। अर्थात् ऐसे गाढ परिचय किये विना एकांत में बैठकर अधीत अर्थ का चिंतन करते उस आनंद में मग्न होना और उससे स्तब्ध रहना अनुचित बता जाता है। इस प्रकरण में चोरी के निषेध से भी यही अर्थ सूचित किया जाता है कि उत्कृष्ट शास्त्रार्थों का अकेली अनुभव करने की इच्छा छोडकर दूसरों को भी उनका उपदेश देना और सबसे मिलकर अनुभव करना आवश्यक है॥ (१३)

(गाथा) उङ्गळ् पुळैकडै त्तोट्टत्तु वावियुळ् * शेङ्गळुनीर्वाय् नेहिळन्दाम्बल्वाय् कूम्बिनकाण् *
शेङ्गल् पोडिक्कूरै वेण्पल् तवत्तवर् * तङ्गळ् तिरुक्कोयिल् शङ्गिडुवान् पोहिन्नार् *
एङ्गळै मुन्नमेळुप्पुवान् वाय्पेशुम् * नङ्गायेळुन्दिराय् नाणादाय् नावुडैयाय् *
शङ्गोडु शक्करमेन्दुम् तडक्कैयन् * पङ्गयक्कण्णानैप्पाडेलोरेम्बावाय् ॥ १४ ॥

मुन्नम् एङ्गळै	- पहिले ही (आकर) हमको
एळुप्पुवान् वाय् पेशुम्	जगा देने की प्रतिज्ञा करनेवाली
नङ्गाय्	- हे देवि!
उङ्गळ् पुळैकडै	- तुम्हारे गृहोद्यान के
तोट्टत्तु वावियुळ्	- उपवनस्थ बावडी में रहनेवाले
शेङ्गळुनीर् वाय् नेहिळन्दु	करहार पुष्प खिल गये; (और)
आम्बल् वाय् कूम्बिन काण्	नीलोत्पल पुष्पों का मुख बंद हो गया।
शेङ्गल् पोडि कूरै	काषाय चूर्ण से रंजित वस्त्रवाले,
वेण् पल् तवत्तवर्	- और शुभ्र दंतवाले संन्यासियों
तङ्गळ् तिरुक्कोयिल्	- अपने अपने मंदिर में
शङ्गिडुवान् पोहिन्नार्	चाबी से कपाट खोलने के लिए जा रहे हैं।

नाणादाय्	- हे लज्जाशून्ये !
ना उडैयाय्	- हे बात करने समर्थ जीभवाली !
शङ्गोडु शक्करम्	- शंख के साथ चक्र का
एन्दुम् तडक्कैयन्	- धारक विशाल हस्तवाले,
पङ्कज कण्णानै	- कमलनयन का
पाड एळुन्दिराय् एलोरेम्पावाय्	कीर्तन करने के लिए उठ लो ॥

पूर्वदिन में एक गोपी ने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि, " कल सबेरे मैं पहिले जागकर तुम सब को जगा दूंगी। परंतु घर जाते ही इस बात को भूल कर वह सो गयी । इस गोपी का उत्थापन प्रकृत गाथा से किया जाता है। अत एव इसका संबोधन किया जाता है, कि हे निर्लज्जे! हे वागाडंबर शालिनी! इस संबोधन का यह तात्पर्य है — " अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तुम्हें शीघ्र उठकर हम लोगों को जगाना था। अथवा अगर दैवयोग से निद्रापरवश हो जाने के कारण, ऐसा करने तुम अशक्त हो गयी, तो भी चिंता नहीं ; हमसे जगाई जाने पर ससंभ्रम उठकर अपनी भूल के लिए हमसे क्षमा मांग कर हमारी गोष्ठी में तुम्हें मिल जाना था। परंतु तुम ऐसा भी नहीं करती। हम सब आकर बाहर खडी हैं; तुम तो चुपचाप सो रही हो। यह कैसी निर्लज्जता है? मीठी मीठी बात करने में ही तुम्हारा सामर्थ्य प्रतीत होता हैं; न तु अपने वचन के अनुसार आचरण करने में । हम मानती थीं कि तुम अपने वाक्चातुर्य से भगवान को प्रसन्न करा कर आपसे हमको मिला दोगी । परंतु अब हम देखती ही क्या? तुम बिलकुल हमारी चिंता छोडकर, अपने पुरुषकारकृत्य को भी भूलकर आनंद से सो रही हो । यह सर्वथा अनुचित है। अतः तुम शीघ्र जागो।

इस गाथा में प्रभात के दो तीन सुंदर लक्षण दिये जाते हैं। प्रभात होते ही कमलपुष्प खिल जाते हैं और नीलोत्पलपुष्प बंद हो जाते हैं। अतः पहिले यही लक्षण बताया जाता है। परंतु इसमें एक चमत्कार है। ये लोग कह रही हैं कि "तुम्हारे गृहोपवन के कुंए में नीलोत्पल बंद हो गये और कमल पुष्प खुल गये।" कहना उचित था कि सर्वत्र ऐसा हो गया। शायद गोपियों का यह अभिप्रायथा कि यों कहने पर, भीतर शयन करनेवाली गोपी झट ऐसा प्रत्युत्तर दे देगी कि, "तुमने ही प्रातःकाल हो जाने का नकली चिह्न बताने के उद्देश्य से आधी रात को उठकर कमलों को खुला दिया और उत्पलों को बंद कर दिया।" अतः इस आक्षेप का अवकाश न हो, इस तरह से अच्छा लक्षण बताना चाहिए। इस गोपी के गृहोद्यान में तो बाहर खडी रहनेवाली हम पहुंच न सकती हैं। अतः हमें उधर के फूलों को खिलाने का, अथवा बंद करने का प्रश्न उठता नहीं। तथा च यही ठीक लक्षण होगा। अथवा, इन गोपियों की ऐसी आशा होगी कि यह लक्षण सुनते ही, अंदर शयन करनेवाली सखी उसकी परीक्षा कर लेने के लिए झट उठ जाएगी; एक बार उठ गयी तो, हम फिर उसको सोने न दूंगी। परंतु इस पर दूसरा एक आक्षेप उठ सकता है कि घर में प्रवेश न पाकर, बाहर ही पडी रहनेवाली इन गोपियों ने किस तरह से जान सका कि गृहोद्यान में फूल खिल गये अथव बंद हो गये । इसका समाधान यही है कि सत्य ही प्रातःकाल हो

जाने से ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि दूसरी जगहों की तरह, इस गोपी के उद्यानवन में भी जरूर कमल खिल गये हैं, और उत्पल बंद हो गये हैं।

यह अर्थ पहिले ही बताया गया कि यह तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध अनेक शास्त्रार्थों से भरपूर है। प्रकृत पद्य में वैदिकों से अंगीकृत तीन प्रमाणों का संकेत किया जाता है । तथा हि—इस गृहोद्यानगतपुष्प प्रसंग से अनुमान प्रमाण सूचित किया गया। आगे मंदिर खोलने के लिए जानेवाले संन्यासियों का प्रत्यक्ष दर्शन कहा जाता है। यह तो प्रत्यक्षप्रमाण हुआ। फिर प्रकृत गोपी के संबोधन से जहां उनकी वाणी का प्रसंग किया जाता है, आप्तवाक्यरूप शब्दप्रमाण बताया जायेगा। इस तरह से तीनों प्रमाण बताये गये।

प्रभात होने का एक लक्षण सुनकर भी जब सोती हुई गोपी न उठी, तब दूसरा लक्षण बताया जाता है—(शेङ्गल् पोडिक्कूरै) इत्यादि से। संन्यासी लोग प्रातःकाल की पूजा करने का समय होने से अपना अपना मंदिर खोलने के लिए चावी लेकर जा रहे हैं। इनका वस्त्र काषायचूर्ण से रंजित होकर लाल रंग का है, और इनके दांत, तांबूल आदि न चबाने से सफेद रहते हैं। यद्यपि सामान्य शास्त्र के अनुसार स्थायी मकान आदि बनाये विना, फिरते घूमते रहनेवाले संन्यासी लोग मंदिर में पूजा नहीं कर सकते हैं। तथापि "माठपत्यं यतिः कुर्यात् विष्णुपूजाभिवृद्धये" इत्यादि (विष्णुतिलक संहिता) भगवच्छास्त्र के अनुसार मंदिरों में ठीक ठीक भगवान की पूजा चलाने के लिए तत्र मठ बांधकर वहां नित्य निवासकर, अपने और शिष्यों के हस्त से सेवा में निरत होने की आज्ञा इनको भी मिली है। एतदनुसार श्रीरंग, श्रीवेंकटाद्रि, श्रीवनाद्रि, श्रीतोताद्रि, तिरुक्कुरुङ्गुडी इत्यादि स्थलों में ऐसे मठाधिपतियों की परंपरा अभी भी चलती दीखती है। गोदादेवी के समय में भी जरूर यही परिस्थिति थी। अत एव श्रीभक्तिसार स्वामीजी अपने तिरुच्चन्दविरुत्तनामक दिव्यप्रबंध में (गाथा - ५२) श्रीरंगक्षेत्र के वर्णन में उधर के निवासी त्रिदंडी संन्यासियों का वर्णन करते हैं। तथा च यह अर्थ हुआ कि ऐसे महात्मा संन्यासी अपना अधीन रहनेवाले मंदिरों को संभालते हुवे, उषःकाल में ही उठकर मंदिर खोलने के लिए चावी लेकर जा रहे हैं।

सबको मिलकर, आगे क्या करना चाहिए, इसका वर्णन किया जाता है (शङ्गोडु शक्करम्) इत्यादि से। भगवान के भजन के सिवा भक्तलोगों का कर्तव्य काम दूसरा कौन होगा? अतः यही कहा जाता है—हम शङ्खचक्रधारी कमलनयन श्रीकृष्ण का कीर्तन ही करेंगी। गोपियों के इस कीर्तन का लक्ष्य, भगवान का परत्वादि चाहें जो रूप हो सकता है। गोपियां तो सभी रूपों का भजन करती हैं। अथापि यहां पर विशिष्य श्रीकृष्ण का ग्रहण करने में एक प्रकारका औचित्य रहता है । श्रीरामचन्द्रजी का यशोगान करने से जो गडबड हुआ, उसके बाद गोपियों के विशेष प्रेम के पात्र साक्षात् श्रीकृष्ण का ही कीर्तन करना उचिततर होगा। श्रीकृष्ण भी शङ्खचक्रधारी तो थे ही। यद्यपि अवतार लेते ही देवकी जी की प्रार्थना मानते हुवे आप अपने शङ्खचक्रों को छिपाकर प्राकृतमानवशिशु जैसे हो गये ; तथापि आचार्यों का अभिप्राय है कि ऐसे होते हुए भी श्रीकृष्ण अपने भक्तों को उन दिव्यायुधों के दर्शन देते

ही थे। पेरियाल्वार् तिरुमोळि दिव्यप्रबंध में दूसरे शतक के पहिले दशक की अवतारिका में इस विषय का विस्तृत विवेचन किया गया है। वहां देख लेना ॥

व्यंग्यार्थ का विवरण ॥ इस पद्य में, जिनका अवतार पूर्वकाल में ही त्रिकालज्ञ महापुरुषों से भविष्यवाणी के रूप में सूचित किया गया था, ऐसे लोकोद्धार करने समर्थ महात्मा जगाये जाते हैं। श्रीशठकोपस्वामीजी का अवतार श्री भागवतपुराण में अतिस्पष्ट शब्दों से सूचित किया गया है—कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः। ताम्रपर्णी नदी यत्र .... ॥ इत्यादि। एवं स्वयं श्रीशठकोपस्वामीजी ने श्रीरामानुजस्वामीजी के अवतार की सूचना दी—"पोलिङ् पोलिह .... कलियुम् केडुम् कण्डुकोण्मिन् (सहस्रगीति ५-२) इत्यादि में। इन वचनों का तात्पर्य यह है कि ये महात्मा लोग इस संसार में अवतार लेकर, ज्ञानोपदेशद्वारा अनादिमाया से सुप्त अज्ञानी संसारियों को उस अज्ञाननिद्रा से, जगा देंगे। तथाच, प्रकृत संबोधन का यह तात्पर्य है, कि 'यह महात्मा तुमसे पहिले अवतार कर, अज्ञाननिद्रा से तुमको जगा देगा' इस तरह से पूर्वों से सूचित अवतारवैभववाले हे महात्मन्! अथवा, श्रीरामानुजस्वामीजी की ही एक विलक्षण वाणी इस शब्द से सूचित की जाती है। तथाहि—पूर्वाचार्यों ने "नासंवत्सर वासिने प्रब्रूयात्," "इदं ते नातपस्काय" इत्यादि शास्त्र के अनुसार दीर्घ काल तक शिष्य से सेवा लेकर, और भी नाना प्रकारों से उसकी योग्यता जांचकर बाद में उपदेश देते थे। कृपामात्रप्रसन्नाचार्य श्रीरामानुजस्वामीजी ने इस प्रथा को दूर कर उपदेश पाने इच्छुक सभी लोगों को उपदेश दिया और अपने शिष्यों को भी ऐसा करने का आज्ञा दी। अतः यहां पर ऐसा अर्थ सूचित किया जाता है कि हमारे प्रणिपात, परिप्रश्न, सेवा इत्यादि करने से पहिले ही, परमकृपा से हमें अज्ञान निद्रा से जागने आवश्यक उपदेश देने का वचन देनेवाले हे कृपागुणपरिपूर्ण आचार्यवर्य! (नङ्गाय्) शब्द का अर्थ है पूर्ण; आचार्य तो अपेक्षित समस्त गुणों से पूर्ण होते हैं। (नाणादाय्) यानी निर्लज्ज कहना आचार्य का दूषण नहीं, वरं भूषण है। कर्तव्य काम से विमुख रहने से, अथवा अकार्य करने से लज्जा होती है। आचार्य तो इन दोनों दोषों से मुक्त होने से आपको लज्जित होने का प्रसङ्ग ही नहीं उठता। अतः आपको निर्लज्ज कहना उचित होगा। एवं (नावुडैयाय्) अर्थात् वाग्वैभववाले, यह भी संबोधन आचार्य को ठीक लगता है। शिष्य का उद्धार, विशेषतः आचार्य के वाग्वैभव पर ही आश्रित है। नाना शास्त्रों का ठीक अभ्यास कर, उनके अर्थों का मधुर उपदेश देते ही, आचार्य शिष्य का उद्धार करते हैं न? अतः आपकी वाक् का वैभव जरूर अद्भुत होता है। यथा श्रीरामचन्द्रजी ने (किष्किंधाकांड ३-२९) हनुमानजी का वचन सुनकर आपकी प्रशंसा की कि, "यह तो चारों वेदों का, तथा व्याकरणादि सभी शास्त्रों का बडा विद्वान मालुम पडता है" इत्यादि।

अथवा भक्तिपूर्ण अपनी प्रार्थनावाणी से श्रीरङ्गनाथ भगवान को भी अपने अधीन कर, आपसे अपनी शिष्य परंपरा में प्रविष्ट सभी चेतनों को मोक्षसांराज्य मिलने का वर लेनेवाले हे महात्मन्! अर्थात् इस

तरह से भगवान से वर लेने समर्थ दिव्यवाणीवाले हे महात्मन्! ऐसा अर्थ है । शरणागतिगद्य रूप प्रार्थनावचन सुनाते हुवे श्रीरामानुजस्वामीजी ने श्रीरङ्गनाथ भगवान के चरणारविंदों में शरणागति की। इससे संतुष्ट भगवान ने श्रीस्वामीजी मात्र को मोक्ष देने का अनुग्रह न किया, परंतु अनंतकालतक उनकी शिष्यपरंपरा में आनेवाले सभी लोगों को मोक्ष देने का वचन दिया । ऐसा है श्रीस्वामीजी की वाणी का वैभव ! इस वैभव का सूचक है यह (नावुडैयाय्) शब्द ।

(उङ्गळ् पुळकडै) इत्यादि का यह अर्थ है—प्रत्येक मानव के हृदय में एक हृदयकमल रहता है जिसमें भगवान एक अंगुष्ठ प्रमाणवाले दिव्य मंगलविग्रह लेकर विराजमान हैं। परंतु दौर्भाग्य की बात है कि संसारि लोगों का यह हृदयकमल बंद रहता है; अत एव उसके अंदर विराजमान अंतर्यामी (भगवान) के दर्शन उनको मिलते नहीं। ध्यान, योग आदि करने से यह कमल खुलेगा और भगवान भी दर्शन देंगे। अतः गृहोपवनस्थ वापी का कमल कहने से इस प्रत्येक व्यक्तिगत हृदयकमल को समझना बडा सरल होता है। आगे यों बताया जाता है कि आचार्य की तपस्या से यह कमल खूब खुल गया। नीलोत्पल पुष्प कहने से अज्ञान सूचित किया जाता है; यह पुष्प बंद हो गया माने यह अज्ञान बिलकुल नष्ट हो गया। अथवा, बगीचा कहने से अज्ञानकृत क्लेश का नाशक, एवं मनोविनोद का हेतु शास्त्र सूचित किये जाते हैं। इनमें दो विभाग होते हैं, जैसे उद्यानवनों में सार्वजनिक उद्यान एवं तत्तत् गृह से संबंधित, उन उनके विशेष अभिमान के पात्र गृहोद्यान। ये हैं सर्वसाधारण वेद, इतिहास, पुराणादि और श्रीवैष्णवों के ही असाधारण अनुभाव्य दिव्यप्रबंध, रहस्य इत्यादि । गृहोद्यान में कमल पुष्प फूल गये और उत्पलपुष्प बंद हो गये कहने से यह स्वत एव सिद्ध होता है कि सार्वजनिक उद्यानों में भी ऐसा ही हुआ। उक्त दोनों प्रकार के ग्रंथों में भी आचार्य के अवतार से पहिले नाना प्रकार के अज्ञान व अन्यथाज्ञान परिपूर्ण रह गये थे और यथार्थज्ञान बिलकुल बंद हो गया था। श्रीरामानुज स्वामीजी ने इनके अपार्थों को दूरकर सदर्थों को प्रकाशित किया। यह विचार यहां पर सूचित किया जाता है।

(शेङ्गल् पोडिकूरै) इत्यादि से सच्छिष्यों का वैराग्य बताया जाता है । काषायवस्त्र तो वैराग्य का ही सूचक होता है। शुभ्रदंत कहने का तात्पर्ययह है कि किसी से कुछ न मांगना। अर्थात् लोकव्यवहार में हम देखते हैं कि किसी से कुछ मांगनेवाला, उसको अपना दैन्य दिखाने के लिए दंतप्रदर्शन करते हुए मांगता है। अतः एव श्रीपराशरभट्टर स्वामीजी ने "एको मुक्तातपत्र" इत्यादि श्रीगुणरत्नकोश पद्य में याचक का वर्णन इस तरह से किया कि, "यत्तस्मै तिष्ठतेऽन्यः कृपणमशरणो दर्शयन् दन्तपङ्क्ती" (अर्थात् अत्यंत कृपण एवं अशरण होकर, अपने दांतों की दोनों श्रेणियों को दिखाते हुवे, पूर्वोक्त श्रीमान् से कुछ मांगता है।) विरक्ताग्रेसर परम भागवतों का यह निष्ठा है कि, वे "यं कंचित्पुरुषाधमं कतिपयग्रामेशमल्पार्थदम्" इत्यादि से उपवर्णित किसी धनवान से कुछ मांगते नहीं। "तृणीकृतविरिञ्चादि निरंकुशविभूतयः। रामानुजपदाम्भोज समाश्रयण शालिनः॥" (श्रीरामानुज स्वामीजी के पादारविंदों में

आश्रित जन, ब्रह्मलोक तक के सभी चीजों को तृणवत् मान लेनेवाले बडे ऐश्वर्यवाले हैं) इस पद्य के अनुसार, एवं "यो नित्यमच्युत पदाम्बुज युगमरुक्मव्यामोहतस्तदितराणि तृणाय मेने" इत्यादि के अनुसार परमविरक्ताग्रेसर रहनेवाले ये महात्मा लोग दूसरों से क्या मांगेंगे ? वस्तुतस्तु खुद भगवान से भी क्षुद्र-पुरुषार्थों को न मांगनेवाले ये महात्मा लोग, मामूली संसारी मानव से स्वप्न में भी कुछ न मांगेंगे। अथवा आचार्यनिष्ठासंपन्न महात्मा लोग भगवान से मोक्ष भी न मांगते हैं । इन प्रकारों से जो महात्मा किसी से कुछ मांगते हुवे उसको अपना दांत नहीं दिखाते, ये शुभ्रदतवाले कहलाते हैं। ऐसे महापुरुषों को तपस्वी कहने का तात्पर्य यह है कि, "तस्मान्न्यासमेषां तपसामतिरिक्तमाहुः" (उक्त कारण से शरणागति, दूसरे तपों से श्रेष्ठ कहलाता है) इत्यादि तैत्तिरीय उपनिषद के अनुसार श्रेष्ठ तपस्या शरणागति में ये निष्ठावान होते हैं।

(तङ्गळ् तिरुक्कोयिल्) इत्यादि। पूर्वोक्त प्रकार से ज्ञान वैराग्य इत्यादि से परिपूर्ण होते हुवे भी ये महात्मा लोग अर्चावतारसेवा में बद्धादर हो कर मंदिरों में भगवान के समस्तविध कैंकर्य करते हैं। इससे ज्ञानियों को भी अर्चावतार में आदर करने की आवश्यकता बतायी जाती है। अथवा मंदिर शब्द का अर्थ है मंत्र। इसके तीन विशेषण दिये गये हैं—तङ्गळ् (अपना), तिरु (श्री) और को (स्वामी)। इससे प्रधानतया जीवात्मस्वरूप का वर्णन करनेवाला श्रीमंत्र, लक्ष्मीवैभव बतानेवाला द्वयमंत्र एवं ईश्वर स्वातंत्र्यनिवेदक चरमश्लोकों की सूचना की जाती है। इनको खोलना तो इनके निगूढ अर्थों का विवरण करना है। तथा च यह तात्पर्य हुआ कि बडे ज्ञानीलोग रहस्यत्रयों के गूढ अर्थों का प्रवचन करने के लिए कालक्षेप गोष्ठी जा रहे हैं।

(शङ्गोडु शक्करम्) इत्यादि। आचार्य ही शंखचक्रधारी विशालहस्त बताये जाते हैं। पंचसंस्कार में पहला संस्कार "ताप" अथवा शिष्य के बाहुमूल में शंखचक्रों से अंकित करना है। इस काम के लिए आचार्य भी अपने हाथ में शंखचक्रों का धारण करते हैं। अथवा, किसी कारण से विना शंखचक्र विराजमान श्रीवेंकटाद्रिनाथ श्रीनिवास भगवान को श्रीरामानुजस्वामीजी ने अपने हाथ से उठाकर शंखचक्रों को दिया। इस अर्थ की सूचना करने के लिए, यहां पर श्रीस्वामीजी ही शंखचक्रधारी बताये जा रहे हैं। एवं, आप ही विशाल हस्त, व पंकजनेत्र पुकारे जाते हैं। "यं यं स्पृशति पाणिभ्यां यं यं पश्यति चक्षुषा। स्थावराण्यपि मुच्यन्ते" (परमभागवतोत्तम जिनको अपने हाथ से छूता है अथवा आंख से देखता है, ऐसे (शिला वृक्ष आदि) स्थावर भी पापों से मुक्त होते हैं) इत्यादि से प्रशंसित परमपवित्र हस्त एवं नयनवाले हैं आचार्य। पंकजनयन शब्द से, "तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीक मेवमक्षिणी" इत्यादि भगवान के दिव्य नयन का वर्णन करनेवाले श्रुतिवाक्य का, समंजस एवं मनोहर अर्थ बतानेवाले श्रीरामानुजस्वामीजी के जीवनचरित्र का एक अंश सूचित किया जाता है। तथा हि, श्रीस्वामीजी जब यादवप्रकाश नामक गुरु के पास उपनिषदों का अध्ययन करते रहे, तब एक दिन उक्त श्रुतिका अर्थ विवरण करते हुवे यादव प्रकाश ने कहा कि भगवान के नेत्र कपि के पृष्ठ का समान (लाल) कमल के सदृश होते हैं। इस अर्थ को बडा अनुचित मानकर

श्रीस्वामीजी ने बताया कि, भगवान के नयन, गहरे पानी में समुत्पन्न, सूर्य किरण से खिले हुए, अच्छे नाळदंड पर रहनेवाले कमलपुष्प के समान बडे उज्वल व मनोहर हैं । इसको सुनते ही यादवप्रकाश नाराज हो गये । यह प्रसंग बाद में अनेक घटनाओं का हेतु बन गया । ये सब चरित्र यहां पर सूचित किये जाते हैं ॥ (१४)

(गथा) एल्ले यिळङ्क्किळिये इन्नमुरङ्गुदियो * शिल्लेन्नळैयेन्मिन् नङ्गैमीर् पोदर्हिन्नेन् *
वल्लैयुन् कट्टुरैहळ् पण्डेयुन्वायरिदुम् * वल्लीर्हळ् नीङ्गळे नाने तानायिडुह *
ओल्लै नीपोदायुनक्केन्न वेरुडैयै * एल्लारुम् पोन्दारो पोन्दार् पोन्देण्णिक्कोळ् *
वल्लानै कोन्नानै मात्तारै मात्तळिक्क वल्लानै * मायनैप्पाडेलोरेम्बावाय् ॥ १५ ॥

एल्ले इळङ्गिळिये — (सब गोपियां दूसरी एक सखी का मकान जाकर उसको जगाती हुई उससे कहती हैं कि) अये बाल शुक के समाने !

इन्नम् उरङ्गुदियो — क्या तुम अभी भी सो रही हो ? (तब अंदर सोती हुई गोपी बोलती है—)

नङ्गैमीर् शिल्लेन्नु अळैयेन्मिन् — हे पूर्ण गोपियां ! कटुशब्द कहिए मत ;

पोदर्हिन्नेन् - मैं अभी आगयी, समझिए ।
(फिर बाहर की गोपियां कहती हैं)

वल्लै — (तुम ठीक ठीक बातकरने में) समर्थ हो,

उन् कट्टुरैहळ् - तुम्हारी क्रूर वाणी को (एवं)

उन् वाय् - तुम्हारी जीभ को भी

पण्डे अरिदुम् — बहुत समय से ही हम जानती हैं । (इसका प्रत्युत्तर भींतर की गोपी देती है —)

नीङ्गळे वल्लीर्हळ् — (ऐसे क्रूर वचन सुनानेवाली) तुम लोग ही (बात करने में) समर्थ होती हैं ;

नाने तान् आयिडुह — (अथवा) तुम्हारे वचनानुसार) मैं ही समर्थ हो जाऊँ । (फिर बाहर की गोपियां कहती हैं कि—)

नी ओल्लै पोदाय् - तुम शीघ्र उठकर आजा ;

उनक्कु एन्न वेरु उडैयै — तुम्हारे लिए अलग कौनसा अनुभव है ?(फिर, शयन करने वाली गोपी पूछती है कि—)

एल्लारुम् पोन्दारो — क्या(आनेवाली सखियां) सब आ गयी हैं ? (इस का प्रत्युत्तर दिया जाता है कि,)

पोन्दार् पोन्दु एण्णिक्कोळ् — (हाँ ! सभी) आगयी हैं ; तुम यहां आकर गिन लो ;

वल् आनै कोन्नानै — (कुवलयापीडनामक) बलिष्ठ हाथी को मारने वाले, (एवं)

मात्तारै मात्तु अळिक्क वल्लानै — (कंसादि) शत्रुओं के गर्व का विनाश करनेवाले

मायनै पाड एलोरेम्बावाय् — अत्याश्चर्यमय दिव्यचेष्टित वाले श्रीकृष्ण का भजन करने के लिए (तुम जागो ।)

अतीत नव गाथाएं केवल जगानेवालियों की वाणी से गायी गयी थीं; नतु संवादरूप में । यह गाथा तो संवादरूप में रची गयी है । अर्थात्, भीतर सो जानेवाली एक गोपी, और, उसको जगाने का प्रयत्न करती उसके द्वारपर खडी रहनेवाली गोपियां, इनका संवादरूप है प्रकृत गाथा । वस्तुतस्तु पूर्व गाथाओं में भी संवाद थे ही; परंतु वहां अंदर सोती हुई गोपी का वचन गाथा में स्पष्ट नहीं बताया गया। तो भी वचन की शैलीने संवाद को सूचित किया प्रकृत गाथा में यह स्पष्ट है बताया जाता है। अस्तु । इसमें एक विलक्षण शास्त्रार्थ का उपदेश किया जाता है । इस कारण से इन तीस गाथाओं में यही सारभूत गाथा मानी जाती है । इस शास्त्रार्थ को ठीक बताने के उद्देश्य से ही यहां संवाद रचा गया है।

छठी गाथा की टीका में यह अर्थ बताया गया कि प्रसक्त मार्गशीर्ष व्रत करने इच्छुक गोपियों में से एकने भी नींद न ली। भगवान से विरहित होने पर, एवं दूसरा दिन प्रभात होते ही आप से मिलने की प्रतीक्षा में रहने पर, निद्रा किसकी आवेगी? अतः श्रीकृष्ण का ही ध्यान करती हुई सब शय्यापर लेट गयीं । परंतु भगवदनुभव की असर एकैक पर एकैक प्रकार से पडी। इस लिए कितनी लोगों ने शीघ्र उठ कर व्रतस्थल जाने की तैयारी की। और कितनी मुग्ध होकर शयन पर ही लेट रही थी। अतः पहिले उठनेवाली, इनको भी साथ ले जाने के लिए इनको जगाने में उद्युक्त हो गयीं। इनकी जगाने की वाणी सुनकर अंदर शयन करनेवाली एकदम चुप न रह सकती; किंतु कुछ न कुछ उत्तर देगी ही। यही संवाद बन जाएगा । इस तरह से चौदहवीं गाथा में उपवर्णित रीति से जब ये गोपियां शंखचक्रधारी विशालहस्त कमलनयन भगवान का कीर्तन करने लगी, तब यह मधुर शब्द पाडोसी घरवाली प्रकृत गाथा की गोपी के कान में पडा। तब वह भी मंदस्वर में उस गीत को गाने लगी । यह मधुरस्वर बाहर आती हुई गोपियों के कान में पडा । तब उसके माधुर्य से अपहृतचित हो कर उन्होंने कहा, कि, "हे बाल शारिके! हम सब के आने पर भी क्या तुम सो रही हो? क्या बात है?"

इसको सुनते ही अंदर सोनेवाली गोपी नाराज हो गयी । वस्तुतः इसमें नाराज होने का कुछ नहीं है। तो भी यह, इन सखियों का, आपस में प्रणयरोष-सा उत्पन्न हुआ रोष था। शायद उक्त संबोधन ही उसको अच्छा न लगा । पाडोसी घरवाली को जगाती हुई, उससे इन्होंने जो, निर्लज्ज, वाचाल इत्यादि बातें सुनायी थीं, ये सब इस गोपी को भी विदित थे। अतः इसने विचार किया कि, "ओः! ये सखियां हमारे सोते रहने से बहुत नाराज हो गयी हैं; अत एव अपने प्रेम को भी भूलकर ये कटुवचन सुना रही है। मुझसे भी ये ऐसा ही व्यवहार करेंगी। ये नहीं जानती हैं कि मैं निद्रा न ले रही हूँ; अपि तु इनके बरोबर श्रीकृष्ण का ही ध्यान व भजन कर रहीं हूँ । इन के कटुव्यवहार से मेरे भजन में विघ्न हो गया। इनको आगे वार्ता बढाने का अवकाश नहीं देना चाहिए; इनके मुख बंद करना चाहिए"। इस अभिप्राय से उसने तुरंत उत्तर दे दिया कि "हे पूर्णा! मैं अभी आ जानेवाली ही हूँ; इतने में क्यों कर चिल्लाती हो?" यह संबोधन, "पूर्णा," यही इसके क्रोध का परिचय देता है । इसका

तात्पर्य यह है कि, "तुम्हारे सरीक मैं भी भगवान का भजन कर रही हूँ, एवं उठकर तुमसे मिलने की तैयारी कर रही हूँ। तो भी तुम लोग यहां आकर मुझे तोता पुकारती हो और नींद करनेवाली अपराधी बता रही हो; इसका कारण अब मुझे ज्ञात हुआ। तुम तो समस्त देहगुण एवं आत्मगुणों से परिपूर्ण हो और इसका बडा अभिमान भी करती हो। अपने गर्व को कुछ दबा दीजिए तो सही।"

यह बात सुनकर बाहर रहनेवाली गोपियां सहज में ही अप्रसन्न हो गयीं। उन्होंने कहा कि, "हम तो तुमको सादर, शुकवाणी कर संबोधन कर रही हैं, और नींद छोडकर उठने की विनती कर रही हैं; परंतु तुम इतने मात्र से रुष्ट हो जाती हो। और हमें परुषशब्द सुनाती हो। सखियों को क्या कोई पूर्णा पुकारेगा? यह तो बिलकुल अपरिचित व्यक्ति का संबोधन है। एवं, सबके आने पर भी सोते रहना तुम्हारा स्पष्ट अपराध है। इसके लिए तुम्हें हमसे क्षमा मांगनी चाहिए। परंतु तुम हमको आज्ञा दे रही हो कि "चिल्लाओ मत।" हम पहिले से ही जानती हैं कि तुम बहुत निष्ठुरवचन हो; जीभ को अपने वश में न रख सकती हो।"

इस पर अंदर सोती हुई सखी बोली कि, "निष्ठुरोक्ति बोलने का सामर्थ्य मुझे कहां से आवेगा? पहिले कठिनवचन सुना देना और बाद में पलट कर एकदम कह देना कि हम कुछ नहीं जानती, हमने तो अच्छी बातें ही सुनायी थीं; ऐसे चमत्कारपूर्ण बात करने का सामर्थ्य तुम लोगों में ही परिपूर्ण है।" यह विवाद ऐसा ही और बढनेवाला था। परंतु उतने में उस गोपी ने अपने स्वरूप की याद की। अर्थात् भगवद्भक्तों से, तुम दोषी हो, तुम अपराधी हो कहते हुवे स्पर्धा करना बडा अनुचित है। परंतु अगर भक्त लोग हमारे ऊपर कुछ कलंक लगावें तो, उस दोष को, विना संकोच, मानना चाहिए। कारण कि हम तो जरूर दोषी हैं। परंतु अज्ञान के वश, अथवा अहंकार के वश, हम अपने दोषों को जान नहीं सकते हैं। एवं भक्तों का यह स्वभाव है कि वे सामान्यतः दूसरों का दोष देखते ही नहीं। ऐसी अवस्था में अगर वे लोग किसी पर कलंक बतावेंगे, तो हमें जानना चाहिए कि जरूर ही वह व्यक्ति दोषी है। अतः भक्तों से बताये जानेवाले दोष का कभी भी हमें इनकार नहीं करना चाहिए। और भक्तों को अपनी वाणी से दोषी कहना बडा अपराध है। कारण कि खुद भगवान ही अपने भक्तों के दोषों का परवाह नहीं करते हैं, और कभी कभी उनको गुण ही मान लेते हैं; फिर हम उनको अपराधी कैसे कहेंगे? इस शास्त्रार्थ का स्मरण करती हुई उस गोपी ने क्षमा मांगने के स्वर में कहा, "अथवा मैं ही दोषी हो जाऊं; अब बताइए तो सही कि मुझे क्या करना चाहिए।"

इस वचन से यह विवाद शांत हो गया। अतः गोपियां अपनी सखी को बाहर आने बुलाने लगी। परंतु इस संदर्भ में उनके मुख से एक अनुचित सी वाणी निकल गयी। वे बोलीं, "तुम्हारे लिए, हम सबको छोडकर अलग भगवदनुभव कौनसा है?" यह तो जरूर चिढाने की बात जैसी है। यह कैसे बोली गयी? इसका मतलब यह है कि इन गोपियों के मन में अपनी सखी की परीक्षा लेने

की इच्छा हुई। उन्होंने जानना चाहा कि, उसने जो अपने दोष का स्वीकार किया, यह वास्तव में हार्दिक था, अथवा केवल ऊपर की बात थी। इस लिए उन्होंने यह कटु वचन कहा। परंतु सुदैव की बात है कि वह गोपी अपनी समझ में पक्की थी। अतः वह फिर विवाद में न उतरी; परंतु विनय के साथ बोली कि, "मैं तो कभी बाहर निकलनेवाली थी; परंतु मेरे मन में यह आशा रही कि सभी सखियां आकर एकत्रित हो जावें और मैं उस बडी भक्त गोष्ठी के दर्शन कर कृतार्थ हो जाँवू। अतः मैंने कुछ विलंब किया। अब बताइए तो सही कि सभी सखियां आ गयी हैं कि नहीं।"

इस प्रश्न का प्रत्युत्तर है, "हां! सब आ गयी हैं; तुम ही बाहर आकर गिन लो।" गिन लेने का आह्वान इस लिए दिया जा रहा है कि गिनने के बहाने से ये गोपी एकैक करके सब पर दृष्टि डालेगी और सबको अपने हाथ से छूएगी। परमभागवतों की दृष्टि का लक्ष्य बनना, और उनके करस्पर्श का पात्र बनना ये दोनों अलभ्यलाभ है। अतः ऐसी प्रार्थना की जाती है।

फिर प्रश्न हुआ कि सबको मिलकर आगे क्या करना चाहिए। इसका उत्तर दिया जाता है कि कुवलयापीड को मार डालनेवाले, एवं दूसरे शत्रुओं को भी समाप्त कर उनके यशको मिट्टी में मिला देनेवाले, अत्याश्चर्यमय दिव्य चेष्टित श्री कृष्ण का कीर्तन करना ही अबका कर्तव्य है। शत्रुओं का नाम मिटानेवाले कहने से शत्रुविनाश करने में श्रीकृष्ण का एक विलक्षण सामर्थ्य सूचित किया जाता है। वह यह है कि शत्रु से लडने का समय आनेपर दया करने के अनुचित काम में न उतरते, उनको निर्दय, एकदम मार डालना। इस स्वभाव से गोपियों के मन में बडा संतोष, व बडी शांति होते हैं। कारण कि श्रीकृष्ण को दुःख पहुँचाने का मौका ढूँढते हुवे अनेक दुष्ट असुरलोग व्रज में नाना वेषसे हमेशा फिरते रहते हैं। इससे प्रेमी भक्तों के हृदय में हमेशा यह भय बना रहता कि कब किसकी ओर से कौनसी बाधा होगी। अतः अगर कभी एक असुर भगवान से खूब मार खा कर, तो भी जान बचाकर निकल जाता, तो उससे अधिक आपत्ति होने का भय हमेशा बना रहता। परंतु दैवयोग से श्रीकृष्ण इन दुष्टों को सजीव नही छोडता, परंतु एक दम मार डालता। इससे विपरीत, श्रीरामचंद्रजी, शत्रुओं को लघु शिक्षा देकर छोड देते, और उसके फलतया उनकी ओर से अधिकाधिक दुःख पाते। यथा, विश्वामित्र यज्ञ में आपने मारीच को समुद्र में गिरा दिया, न तु संहार कर डाला। इसका फल यह हुआ कि आगे वही मारीच मायामृगके रूप में आकार सीतापहरण का निमित्त हो गया। अगर तभी उसका संहार किया गया होता, तब सीतापहरण का प्रसंग ही न बनता। एवं खुद रावण को भी आपने, एक बार मुकुटभंगपूर्वक छोड दिया। इसका फल यही हुआ कि इतने से युद्ध बंद न हुआ अपितु चालू ही रहा, जिससे मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र से दोनों भाइयों को तथा समग्रवानर सेना को बांध लिया; और स्वयं रावण ने शक्ति से लक्ष्मणजी को मूर्छित किया। अगर पहिले युद्ध में ही श्रीराम रावण को मार डाल दिया होता, तो बाद में इतने दुख भोगने का प्रसंग न उठता। आश्चर्यचेष्टित कहने का यह तात्पर्य है कि हस्तिवध,

मल्लवध, कंसवध इत्यादि काम करने से श्रीकृष्ण का परत्व दिखाया जाता है। ऐसे महान होकर भी आप हमारे सरीक अज्ञों से मिलकर, हमारी आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए, उसको ठीक पालनकर हम पर सीमातीत प्रेम करते हैं; अहो! आपका सौशील्य एवं सौलभ्य वाचामगोचर है! एवं "मायनै" इत्यादि पांचवी गाथा की टीका में उपवर्णित सभी आश्चर्य चेष्टित इस शब्द का अर्थ है। अतः ऐसे महात्मा का नामसंकीर्तन करने के लिए तुम बाहर आ जा॥

व्यंग्यार्थ का विवरण॥ इस गाथा में प्रदर्शित प्रधान शास्त्रार्थ का वर्णन तो किया जा चुका। फिर इसमें प्रदर्शनीय विशेष व्यंग्यार्थ को खोजना अनपेक्षित है। तो भी उपक्रांत सरणि के अनुसार कुछ बता देंगे। उपक्रम का संबोधन है, "हे तोते की बची!" तोता का स्वभाव है शिक्षित शब्दों का ही पुनरुच्चारण करना, नतु अपनी मरजी से शब्द जोडाकर कुछ कहना। इससे, अपनी मरजी के अनुसार बात करने की चेष्टा छोडकर पूर्वाचार्यपरंपरा से उपदिष्ट अर्थों का ही स्वयं उपदेश देनेवाले हमारे आचार्यों की निष्ठा, यानी प्रामाणिकता सूचित की जाती है। (उनक्केन्न वेरुडैयै) कहने से अकेली भगवदनुभव करने में दोष बताया जाता है। गज का संहार करनेवाले आचार्य हैं। गज शब्द से हाथी के समान बलवान इंद्रियों को समझना चाहिए। ऐसे प्रबल इंद्रियों का दमन कर अपने वश में रखनेवाले आचार्य हैं। एवं भगवान के वैभव का इनकार करनेवाले, अथवा उलट पलट करनेवाले बाह्य व कुदृष्टि दुर्वादि, शत्रु कहलाते हैं। उनका निरसन करनेवाले आचार्य हैं। अत एव उनका यशोगान किया जा रहा है "पाषण्डद्रुमषण्डदावदहनः ...." इत्यादि से। आचार्य, मायी भी जरूर होते हैं। उनकी जीवनी अत्याश्चर्यमय दिव्य चेष्टितों से भरी गयी हैं। सबसे आश्चर्यमय चेष्टित यह है कि अनादि काल से भगवान से विमुख रहकर क्षुद्र सांसारिक विषयों में ही मग्नमन मानव को, जिसका उद्धार करने में अवतारादि अनेक प्रयत्न करने पर भी स्वयं भगवान विफल हो कर निवृत्त हो गये थे, आचार्य अपने कृपापूर्ण कटाक्षवीक्षण से, एवं सुमधुर उपदेशों से, भगवान की ओर झुका देते हैं और अंततः नित्यसूरियों के साथ बिठा देते हैं। अतः ऐसे महामहिम एवं महोपकारक आचार्य का नामसंकीर्तन करना शिष्यों का अवश्य कर्तव्य होगा॥ (१५)

(गाथा) नायकनाय् निन्न नन्दगोपनुडैय कोयिल् काप्पाने * कोडित्तोन्नुम् तोरण
वाशल् काप्पाने * मणिक्कदवुम् ताळ् तिरवाय् * आयर्शिरुमियरोमुक्कु * अरैपरै
मायन्मणिवण्णन् नेन्नेले वाय् नेन्दोन् * तूयोमाय् वन्दोम् तुयिलेळप्पाडुवान् *
वायाल् मुन्नमुन्नम् मात्तादेयम्मा! नीनेश निलक्कदवम् नीक्केलोरम्बावाय्॥ १६॥

नायकनाय् निन्न नन्दगोपनुडैय	हे (हमारे) नायक श्रीनंदगोप जी के	कोडि तोन्नुम् तोरण वाशल् काप्पाने	हे ध्वजों से सजाये हुवे तोरण द्वार के पालक!
कोयिल् काप्पाने	- प्रासाद रक्षक!		

मणि कदवम् ताळ् तिरवाय्	रत्नमय कपाट की अर्गळा खोल दीजिएगा ;
आयर् शिरुमियरो-मुक्कु	छोटी उम्रवाली गोपबालिका हमें
मायन् मणिवण्णन्	अत्याश्चर्यमय दिव्यचेष्टित एवं मणिवर्ण श्रीकृष्ण ने
नेन्नेले अरैपरै वाय् नेन्दान्	कल ही शब्द करनेवाली भेरी (यानी पुरुषार्थ) देने का वचन दिया है ।
तुयिलेळ पाडुवान्	(उन श्रीकृष्ण को) निद्रा छोड कर जगाने का गान करने के लिए (माने सुप्रभात-स्तुति गाने के लिए,)
तूयोमाय् वन्दोम्	परिशुद्ध हो कर हम आ गयी हैं ;
अम्मा	- हे स्वामिन् !
मुन्नमुन्नम् वायाल् मात्तादे	पहिले पहिले (यानी प्रारंभ में ही) अपने मुख से (हम को) रोकिए मत ;
नेशम् निल कदवम्	(श्रीकृष्ण पर) प्रेम करनेवाले कपाट को
नी नीक्कु एलोरेम्बा-वाय्	आप खोल दीजिए ॥

अतीत दस गाथाओं से अपने अपने घर पर शयन करनेवाली सखियों को जगाकर, सब गोपियां मिलकर श्री कृष्ण को जगाने के लिए नंदगोपजी का महल पहुँच गयीं । वह तो बडा प्रासाद था । अतः उसके द्वार द्वार पर द्वारपालक खडे थे, जिन से अनुमति पाये विना कोई भी अंदर न जा सकते थे । अतः प्रकृत गाथा से ये गोपियां उन द्वारपालकों से कपाट खोलकर अपने को अंदर छोडने की अनुमति मांगती हैं ।

आचार्यों का कहना है कि व्रज में गोपोंके पांच लाख घर थे । अतः इस व्रत में भी कम से कम उत्तनी गोपियां रहेंगी । इतनी बडी गोष्ठी में सब को ढूंढ ढूंढ कर जगा कर सब मिलकर ही, ये गोपियां आगे बढी हैं । जगाने की गाथा यद्यपि दस ही गायी गयी । तथापि समझना चाहिए कि सभी शयन करने वाली गोपियां जगायी गयीं । क्यों कि इनका परस्पर सौहार्द इतना गाढ था, और इनका हृदय इतना विशाल था, कि ये, एक गोपी को भी छोडकर जाने तैयार नहीं थीं ।

सब के एकत्रित होनेपर इनका कर्तव्य काम यही था कि सीधे श्रीकृष्ण का शयनगृह पहुँच कर आपको जगाकर आप से वार्तालाप करना । परंतु बीच में एक गाथा द्वारपालकों को जगाने में और दूसरी एक गाथा नंदगोप आदियों को जगाने में, और एक दो गाथा नीळादेवी को जगाने में लगायी जा रही है । यह क्यों इतना प्रयास उठाया जाता है ? यह अर्थ पहिले ही बताया गया है कि यह तिरुप्पावै दिव्य प्रबंध, साधारण कथा मात्र नहीं, वरन अनेक शास्त्रार्थों का उपदेश देनेवाला, 'वेदबीज' बिरुद विभूषित महान शास्त्र है । और, यह भी अर्थ बताया गया कि गोदादेवी, इस ग्रंथ को गोपियों की भावना के साथ अपनी निजी भावना को भी मिलाकर ही गा रही है ; एवं कथावस्तुमात्र श्रीकृष्णावतार समय की है, मगर उसके सभी परिष्कार नवीन हैं । अर्थात् गोदादेवी अपने निवासस्थान श्रीविल्लिपुत्तूर को ही व्रज मानकर, एवं तत्रत्य परमभक्ताग्रेसर श्रीवैष्णवों को गोपियां मानकर, श्रीवटपत्रशायि भगवान के मंदिर को

श्रीकृष्ण भगवान का महल मानकर, अपने स्वानुभव के साथ गोपियों का अनुकरण कर रही हैं। अब शास्त्र की आज्ञा, एवं तदनुसारी शिष्टों का आचार यह है कि भगवान के संनिधि में किसी को, एकदम, अकेली नहीं जाना चाहिए, किंतु आपके अनन्य सेवक, नगरपालक, मंदिरपालक, द्वारपालक एवं दूसरे आपके प्रिय भक्तों की अनुमति लेकर उनके साथ ही जाना चाहिए। अत एव श्रीरामचंद्रजी की शरण में आनेवाले विभीषणजी ने सुग्रीवादि वानरवीरों से प्रार्थना की कि "आप लोग कृपया प्रभु से मेरे आगमन की विनती करिए।" और, बाद में भगवान भी सुग्रीव के द्वारा ही विभीषण का स्वीकार कर लिया। एवं श्रीपराशरभट्टार्य स्वामीजी श्रीरंगराजस्तव के पूर्वशतक में, मंदिर में प्रवेश करने से पहिले क्षेत्रपालक, द्वारपाल आदियों का प्रणाम करते अनेक श्लोक गाते हैं। अतः इस शास्त्रार्थ का उपदेश देने के लिए, हाल में द्वारपालक का उत्थापन किया जा रहा है। भगवान को प्यार करनेवाले महात्मा लोग आपके भक्तों को भी प्यार करते हुवे उनका भी यथोचित पूजन करते ही हैं। अत एव यह भी शंका करना व्यर्थ है कि क्या वास्तव में ही नंदगोपजी के द्वारपालक भी थे। कारण कि यह तो वास्तव में अर्चावतार मंदिर का ही वर्णन है। अतः यहां पर दो व्यक्तियों का, माने मंदिरपालक का एवं द्वारपालक का उत्थापन करना वडा उचित ही है। श्रीपांचरात्र शास्त्र की आज्ञा है कि मंदिर में प्रवेश करनेवाले को पहिले क्षेत्र पालक, मंदिरपालक, द्वारपालक, विष्वक्सेनजी आदियों का प्रणाम कर उनसे अनुज्ञा लेकर ही अंदर जाना चाहिए। अस्तु।

(नायकनाय् निन्र) इत्यादि पहिले पाद से मंदिर रक्षक का उत्थापन किया जाता है, और दूसरे पाद से द्वार पालक का उत्थापन किया जाता है। मंदिर के बाहर कोट के महाद्वार में खडा हो कर समग्र मंदिर की रक्षा में दत्तावधान सेवक मंदिरपालक है; और भगवान के निजी अंतःपुर का रक्षक द्वारपालक कहा जाता है। अथवा, दोनों काम करनेवाला एक ही व्यक्ति का यहां संबोधन माना जा सकता है। यहां नायक शब्द नंदगोप का विशेषण है, अथवा मंदिरपालक का विशेषण है। यद्यपि गोपियों के साक्षात् नायक श्रीकृष्ण हैं। तथापि स्वयं श्रीकृष्ण ही, नंदगोपजी को जब अपने नायक मान बैठे हैं, तब गोपियों को भी ऐसा मानना ही पडता है। भगवान का यह स्वभाव है कि अवतारों में अपने पिता आदि बडों के प्रति आप बहुत अभिमान रखते हैं। श्रीरामचंद्रजी जब पुष्पकविमान चढकर लंका से लौट गये, तब मार्ग के विशेषों को सीताजी को दिखाते हुए बोले, कि "देखो सीते! यह मेरे पिताजी की राजधानी अयोध्या दीख पडती है"—एषा सा दृश्यते सीते राजधानी पितुर्मम। पिताजी के स्वर्गस्थ हो कर चौदह वर्ष बीत गये, और अब श्रीरामचंद्रजी कह रहे हैं कि यह तो पिताजी की राजधानी है! मालुम पडता है कि इसी तरह से श्रीकृष्ण भी अपने महल को अपने नायक, पिता, नंदगोपजी का महल मानते थे। अथवा इस संसार को श्रीकृष्णरूप अनर्घ रत्न का दान करनेवाले नंदगोपजी स्वयं सब के नायक हैं ही। अथवा व्रज के नायक, यानी मुखी थे नंदगोपजी। एवं सर्वरक्षक श्रीकृष्ण की भी रक्षा करने में नियुक्त होने से

गोपियों के विशेष आदर का पात्र, मंदिरपालक को भी नायक पुकारना उचित होगा। (मणिक्कदवम्) इत्यादि, मंदिर पालक से तथा द्वारपालक से गोपियों का प्रार्थनीवचन है।

इस प्रार्थना से प्रसन्न मंदिरपालक ने मणिमय गोपुर द्वार खोलकर गोपियों को अंदर जाने की अनुमति दे दी। आगे द्वारपालक खडा था जिस की कृपा के विना भी गोपियों का काम नहीं बनता था। अतः उसका संबोधन करती हैं (कोडित्तोन्नुम्) इत्यादि से। हे पताकालंकृत तोरण द्वार के रक्षक! पताकादि तो मंदिर के अलंकार हैं। अर्चामंदिरों में पताका प्रसिद्ध है।

यह द्वारपालक जानता ही था कि प्रातःकाल में श्रीकृष्ण को जगाने के लिए गोपियां आनेवाली हैं। तथापि वह, इनकी मधुर वाणी सुनने की इच्छा से, एकदम कपाट न खोलते, कुछ वार्तालाप करने लगा; अथवा श्रीकृष्ण पर अति प्रेम रखने के कारण अस्थानरक्षा व्यसनी होकर, इन गोपियों के विषय में भी शंकित होकर इनका वृत्तांत पूछने लगा। अतः दोनों के बीच में कुछ संवाद बना, जो इस गाथा के अवशिष्ट भाग में सूचित किया जाता है। यद्यपि गाथा में साक्षात् संवाद का अनुवाद नहीं है; केवल गोपियों की वाणी का ही वर्णन है। तथापि उस वाणी की शैली बताती है कि संवाद जरूर चला था; अतः संवादरूप से ही इसका विवरण किया जाएगा।

द्वारपालक—सर्वथा भयस्थान इस व्रज में आधी रात को कपाट खोलने की बात करनेवाली तुम लोग कौन हैं? इस समय में यहां आओ मत; झट लौटकर जाते रहो।

गोपियां—महात्मन्! समस्त भयों को दूर करनेवाले "भयनाशन" विरुद भूषित श्रीकृष्णं भगवान के सांनिध्य में भय की प्रसक्ति ही कौन सी है। प्रह्लाद जी ने भी कहा कि "भयं भयानामपहारिणि स्थिते मनस्यनन्ते मम कुत्र तिष्ठति?" (अर्थात, भयों का नाश करनेवाले भगवान जब मेरे मनमें स्वयं विराजमान हैं, तब भय कैसे रह सकता है?)

द्वार—क्या तुमने इसको रामावतार का समय मान लिया, जब सर्वत्र अभय था? जान लो कि यह कृष्णावतार है, जब सर्वत्र भय ही भय है। तथा हि—वह समय था कृतयुग से सन्निहित त्रेतायुग, जब सभी मानव सात्विक थे। पिता भी "दशरथ" (दसों दिशाओं में रथ चलानेवाला), "शंबरांतक" इत्यादि विरुद विभूषित अप्रतिम पराक्रमी थे; अयोध्या नामक वह नगरी अजेय ठहरी; ज्ञानिश्रेष्ठ वसिष्ठादि महर्षि लोग मंत्रि, पुरोहित इत्यादि श्रेष्ठ पदमें नियुक्त होकर सबको संभालते थे। राम लक्ष्मणादि राजकुमार भी बडे वीरधीराग्रणी थे, और सन्मार्ग में ही चलनेवाले थे; नगरनिवासी प्रजा सब इतने प्रेमी थे जो कुछ कहने की बात नहीं; वे, "रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः" इत्याद्युक्त प्रकार से हमेशा रामनाम का ही जप करते थे, आपका ही श्रेय मांगते हुवे समस्त देवतांओं की सेवा करते थे; पक्षि गण तक इतने प्रेमी थे, कि वे श्रीरामचन्द्र के वनप्रयाण समय में, आहार विहार आदियों को छोडकर, वृक्ष में अपने नीडपर ही निश्चल बैठकर, आपसे आगे न बढने की प्रार्थना करते

थे—"निश्चेष्टाहार संचारा: वृक्षैक स्थानमाश्रिता:। पक्षिणोऽपि प्रयाचन्ते सर्वभूतानुकम्पिनम् ॥" एवं अचेतन वृक्ष, नदी, तालाब इत्यादि भी सीमातीत भक्तिवाले थे, और उसी विरह प्रसंग में दुःख से दुरवस्थापन्न हो गये—"रामव्यसन कर्शिता:। अपि वृक्षा: परिम्लाना: सपुष्पाङ्कुरकोरका:। उपतप्तोदका नद्य: पल्वलानि सरांसिच।" (रामविरह दुःख से झाड पेड इत्यादि सभी, अंकुर फल फूल आदि के साथ सूख गये; नदी, सर, तालाब इत्यादि में पानी उबल गया।) इन कारणों से रामावतार में डरने का बिलकुल अवकाश नहीं था। परंतु इस कृष्णावतार में ये सभी उलट पलट बन गये हैं। तथा हि—अब का समय है क्रूर कलियुग का सन्निहित द्वापरांत; पिता नंदगोपजी ऐसे साधु हैं, कि एक कीडे को भी आप मार न सकते; यह व्रज तो परमदुष्ट कंस की राजधानी के पडोस में रहनेवाला, अज्ञ गोपों से भरा हुआ एक गांव है; यह पुत्र कृष्ण भी धूर्त और हमेशा साहसकार्य करने में ही निरत है; इधर उगनेवाले घास पूस भी असुराविष्ट रहते हैं। अब कहिए कि ऐसी भयानक परिस्थिति में कौन नीडर रह सकेगा।

गोपियां—यह तो सच्ची बात है। परंतु हम औरतों से डरने को क्या है?

द्वार—शूर्पणखा भी औरत ही थी न? परंतु देखो, उसने कितना दुःख दिया। अगर पंचवटी में कोई द्वारपालक होता और उस राक्षसी को अंदर घुसने से रोक देता, तो कितना अच्छा होता?

गोपियां—ठीक है। परंतु शूर्पणखा राक्षसी ठहरी; हम गोपियां हैं। दोनों क्या एक समान हो सकती हैं?

द्वार—कौन राक्षसी है, और कौन गोपी है, इसको कौन पहिचान सकता है? पूतना राक्षसी होकर भी गोपी के रूप में आ गयी, और वह भी ऐसी ही आधी रात में। अत: अकाल में आनेवालों से हमेशा सावधान रहना पडता है।

गोपियां—तो भी पूतना वृद्धा थी; देखिए, हम तो सब बालिकाएँ हैं; हम बिलकुल कपट नहीं जानती हैं।

द्वार—अरे रे! यह किसने बताया कि छोटी उम्रवाला कपट नहीं करेगा? क्या तुम नहीं जानती हो कि वत्सासुर एक बिलकुल छोटी उम्र के बछडे के रूप में आया था? अत: मैं किसी व्यक्ति पर भरोसा न रख सकता हूँ।

गोपियां—हे प्रभो! कहां तक हम आपके प्रश्नों का प्रत्युत्तर दे सकती हैं? कपट बुद्धि से आनेवाला अपने को छिपाकर गुप्त रूप से अकेली आता है, नतु जत्था बनकर; परंतु हमको देखिए! हम कितनी बालिकाएँ एकत्रित होकर आ गयी हैं। हमारे ऊपर शंका करना अनुचित है। अत: हमको अपनी कृपा का लक्ष्य बनाइए।

द्वार—एकैक करके आनेवाले से भी, जत्था जत्था बनकर आनेवालों से अधिक डरना पडता है। क्या तुम नहीं जानती हो कि पंचवटी में अपने आप विराजमान श्रीरामचंद्र जी के पास, जनस्थानस्थित

जो चौदह हजार राक्षस लोग एक साथ आ गये वे आपको त्रास देने के लिए ही आये थे ? अस्तु। अब तुम क्यों इधर आयी हैं ? तुम्हारी क्या इच्छा है ? बतावो।

गोपियां—हे महात्मन्! यह ठीक है। आपके लिए धन्यवाद हो। सुनिए; हम तो भगवान से कुछ पुरुषार्थ लेने के लिए आ गयी हैं; अतः आपकी दर्शनाकांक्षी हैं। और भगवान ने कल ही हमको वचन दे दिया कि, "कल तुम लोग हमारे यहां आकर पुरुषार्थ ले लो।" [यद्यपि मूल गाथा में इस प्रकरण में "पुरुषार्थ" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है; परंतु "शब्द करनेवाली भेरी" ही कही गयी है। तथापि यह अर्थ पहिले ही सूचित किया गया कि इस भेरी शब्द का अर्थ सामान्यतः पुरुषार्थ, यानी भगवत्कैंकर्य ही है। अत एव आगे के पाद में सुप्रभातस्तुति गाने का ही विचार कहा जाता है। अथवा प्रकृतपद्यस्थ इस भाग का ऐसा अर्थ होगा कि, "भगवान ने हमें भेरी आदि कतिपय वस्तु देने का वचन दिया; परंतु हम आपके कैंकर्य के विना दूसरी किसी वस्तु न लेंगी।"]

द्वार—अच्छी बात है। परंतु पुरुषार्थ दिन में भी लिया जा सकता है। इसलिए उषःकाल में ही इधर आने की आवश्यकता कौनसी है ? भगवान तो अब शयन कर रहे हैं। इस समय में ठीक परीक्षा लिए विना मैं किसी को अंदर नहीं जाने दूँगा।

गोपियां—हमारी परीक्षा लेने में कौनसी कठिनाई है ? सुनिए। हम उपायांतर में अथवा फलांतर में बिलकुल चित्त न लगाती हैं; हम भगवान की अनन्यभक्त हैं। हम आपको ही उपाय तथा फल मानने वाली शुद्ध हृदय हैं। इतना पर्याप्त है न ?

द्वार—अच्छा। अब सत्य बताइए कि तुम लोग अंदर जा कर क्या करना चाहती हैं। और तुम्हारे अपेक्षित पुरुषार्थ क्या चीज है ? उसको भी जरा बताइए।

गोपियां—हमारे अपेक्षित पुरुषार्थ यही है कि भगवान की अनन्यप्रयोजन स्तुति करना। हाल में तो समयानुगुणतया आपकी सुप्रभातस्तुति करने के लिए हम आ गयी हैं। इससे बढ कर श्रेष्ठ पुरुषार्थ दूसरा क्या होगा ?

द्वार—हा हा! तुमने क्या कहा ? सुप्रभातकीर्तन के लिए तुम अंदर जाना चाहती हो ? देखो! भगवान के शयन करते अंदर जाना ही पहिला अपराध है। इसके उपरांत, आप को शयन से जगा देना अक्षम्य अपरध ही होगा। क्या तुमने श्रीरामायण में नहीं सुना कि, काकासुर से पीडित जानकी जी ने श्रीरामचंद्र जी को जगा दिया, और बाद में उस अपराध के लिए बहुत पछताया ? "स मया बोधितः श्रीमान् सुखसुप्तः परंतपः।" अगर तुम कहती होती कि "शयन करनेवाले भगवान के दर्शन पाकर हम वापिस लौट जाएंगी," तो चिंता न होती। परंतु अंदर जाकर गडबड करने चाहनेवाली तुमको, मैं किस तरह से भीतर भेजूं ? न, न। यह तो बनने की बात नहीं। तुमको इधर ठहराना भी अनुचित है। शीघ्र भाग जा इधर से।

गोपियां—हे महात्मन्! आप क्यों हमें इतना त्रास दे रहे हो.? विश्वामित्रजी ने भी श्रीरामचंद्रजी को जगाया था, "कौसल्या सुप्रजा राम! पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते। उत्तिष्ठ नरशार्दूल!" इत्यादि से। सुप्रभात स्तुति करना भगवद्भक्तों को अवश्यकर्तव्य एक सेवा है। अतः निषेध करते हुवे हमारे काम में अपशकुन मत करिए। अपनी एक शोभन वाणी को सुशकुन के रूप में हमें दे दीजिए।—यों कहती हुई गोपियों ने उनको साष्टांग प्रणाम कर दिया।

इस से प्रसन्न हो कर द्वारपालक बोला—अच्छा। तुम लोग अब कपाट खोलकर अंदर ज़ा सकती हो।

तब गोपियां बोली—न, न, न, प्रभो ऐसा मत कहिएगा। हम अपने हाथ से कपाट न खोल सकती हैं; परंतु आपकी कृपाकांक्षिणी हैं। आप, हम पर अपनी परिपूर्ण कृपा दिखाते हुवे, अपने श्रीहस्त से ही कपाट खोलें तो ही हम कृतार्थ होंगी। आपकी कृपा को हम भगवत्कृपा से भी श्रेष्ठ मानती हैं। और दूसरी बात यह भी है कि इस मणियों से जडे हुवे कपाट में हम अर्गला को पहिचान ही न सकती हैं। और एक बात यह है कि यह कपाट इतना मोहक रहता है कि हम अगर इसके सौन्दर्य में आंख लगावें तो उससे कथं चित् उसको लौटा नहीं सकती हैं। फिर दूर रह गयी हमारे अंदर जाने की और भगवान से वार्तालाप करने की बात। शायद यह कपाट भी अंदर जाने चाहनेवालों के नेत्र व मन को अपने में ही रोककर उनको आगे बढ़ने नहीं देता है। अहो! इस तरह से यह भी एक प्यारे द्वारपालक की सेवा कर रहा है! और इससे समझाकर इससे रजा लेकर आगे जाने का सामर्थ्य हममें सर्वथा नहीं रहता है। अतः कृपया आप ही इस कपाट के जाल से हमको बचाते हुवे, इसको खोलकर हमको अंदर भेज दीजिए।

इसका यह तात्पर्य है कि जो निषेध करता है, उसी के हाथ से अंगीकार कराना ठीक है। अत एव विभीषण का अंगीकार करनेवाले श्रीरामचंद्रजी ने, "आनयैनं हरिश्रेष्ठ" कहते हुवे सुग्रीव को भेजा नतु हनुमानजी को। हनुमानजी विभीषण के पक्षपाती थे और सुग्रीव उनसे विरुद्ध। सुग्रीव के मन में जो कुछ विरोधभाव अभी बच गया हुआ होगा, उसको निश्शेष निवृत्त करने के उद्देश्य से ही प्रभुने उनके द्वारा ही विभीषण का अंगीकार किया। फलतः सुग्रीव उस समय से विभीषण का बडा मित्र हो गया। अतः निषेध करनेवाले को परिपूर्ण शांतचित्त व प्रसन्न कराना अत्यंत आवश्यक एवं रसवत्तर है। इस कारण से गोपियां द्वार पालक से यों प्रार्थना करती हैं कि आप ही कृपा से अपने हाथ से कपाट खोलकर हमको अंदर भेजिए॥

व्यंग्यार्थ का विवरण॥ पूर्वाचार्यों का अभिप्राय है कि गोपियों को जगानेवाली पूर्वोक्त दस गाथाओं से गोदादेवी, अपने पितृप्राय दस दिव्यसूरियों को जगा रहीं हैं। एतदनुसार एकैक गाथा में एकैक दिव्यसूरि की याद दिलानेवाले अंश, माने उन उनके जीवन की कोई कोई घटना, अथवा उन उनकी कोई विशेष श्रीसूक्ति आदि सूचित गये हैं। परंतु श्रीपराशर भट्टर स्वामीजी ने "भूतं सरश्च"

इत्यादि पद्य में "भक्तांघ्रिरेणु परकालयतीन्द्रमिश्रान्" कहते हुवे श्रीरामानुजस्वामीजी को भी आल्वारों की गोष्ठी में मिला दिया। अतः इस प्रकृत तिरुप्पावै गाथा में दिव्यसूरियों के बाद श्रीरामानुज स्वामीजी का सुप्रभात होना आवश्यक है। तदनुसार इसका अर्थवर्णन बडी सरलता से हो सकती है।

(नायकनाय् निन्र) यानी नायकभूत कहना श्रीरामानुज स्वामीजी का बडा उचित संबोधन है। "लक्ष्मीनाथ समारम्भाम् .... अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥" इत्यादि से प्रशंसित हमारी गुरुपरंपरा में नायक मणि स्थान श्रीरामानुज स्वामीजी का है। यथा श्री वेदांत देशिक स्वामीजी ने यतिराजसती में अनुगृहीत किया—"अमुना तपनातिशायि भूम्ना यतिराजेन निबद्ध नायक श्रीः। महती गुरुपङ्क्ति-हारयष्टिः विबुधानां हृदयंगमा विभाति ॥" (हमारी गुरुपरंपरा एक बडा सुंदर, एवं विद्वानों से अपनी छाती पर अलंकार के रूपमें धारण करने लायक मनोहर हार के समान विराजमान है, जिसके बीच में सूर्य से भी बढकर उज्वल, श्रीरामानुज स्वामी नायक मणि की तरह शोभमान हैं।) एवं आप नंदगोप भी हैं। नंद शब्द का अर्थ है आनंद पानेवाला, यानी ब्रह्मानंद में मग्नमानस। गोप शब्द का अर्थ है गोपालक; गो शब्द नानार्थक है; उसका एक अर्थ वाणी है। तथाच वेदादि शास्त्र वाणी के पालक, माने उनका अध्ययन, प्रचार, तदनुगुण आचरणादि से पालन करनेवाले आचार्य गोप कहलाते हैं। अथवा नंदगोप शब्द का अर्थ है नंदगोपसदृश। नंदगोपने श्रीकृष्ण को अपने पुत्र के रूप में पाया; इसी तरह से श्रीरामानुज स्वामीजी ने अर्चारूपी भगवान को अपने पुत्र के रूप में पाया। उन भगवान का नाम ही यतिराजसंपत्कुमार भगवान पड गया। आगे विभक्ति प्रत्यय के रूप में जो द्राविडी शब्द हैं (उडैय), इसका यह भी अर्थ होता है कि स्वामी श्रीरामानुजस्वामीजी का द्राविडी में प्रसिद्ध एक नाम है उडैयवर माने स्वामी। (उडैय के बाद में वर तो गौरववाचक एक प्रत्यय मात्र है, जैसे हिन्दी का जी शब्द; अतः उडैयवर का अर्थ हुआ-स्वामीजी यानी नायक। श्रीरंगनाथ भगवान ने श्रीरामानुज स्वामीजी को उभयविभूति-नायकत्व दे दिया। उस दिन से आपका यह बिरुद हो गया—उडैयवर यानी स्वामीजी। इसका सूचक है यहां पर उडैय शब्द। एवं आपको (कोयिल काप्पाने) अथवा मंदिर रक्षक पुकारना भी बडा उचित है। श्रीरामानुज स्वामीजी से तत्र तत्र कृत भगवत्कैङ्कर्यों में सबसे बडा यही था, कि भगवान के मंदिरों को सुधारना। विशेषतः श्रीरंग क्षेत्र में श्रीरंगनाथ भगवान का मंदिर सुधारने में आपने जो परिश्रम उठाया, वह वर्णनातीत है। और अनेकत्र भी आपने मंदिरों की स्थापना की, वैभव बढाया, अविच्छिन्न पूजा चलने पर्याप्त प्रबंध किया; अनंतकाल तक उनको संभालनेवाले मठाधिपतियों की स्थापना की। इस तरह से आप सोलह आने के मंदिर रक्षक हैं।

(कोडित्तोन्नुम तोरणवाशल् काप्पाने) पताकालंकृत तोरण द्वार शब्द से श्री वैकुंठ दिव्यधाम का द्वार कहा जाता है। श्री स्वामीजी को इस द्वार के पालक कहने का यह मतलब है, कि आप की आज्ञा, या अनुमति के विना, कोई भी इस में प्रवेश नहीं कर सकता। यह भी अर्थ श्री वेदांतदेशिक स्वामीजी से,

न्यासतिलक में बताया गया—"दत्ते रङ्गी निजमपि पदं देशिकादेशकांक्षी" (श्रीरंगनाथ भगवान् परमपद को, उसके अपनी निजी माल होने पर भी आचार्य के वचनानुसार ही किसी को देते हैं; अन्यथा नहीं) श्री वैष्णव संप्रदाय का यह एक महान सिद्धांत है कि श्रीरामानुजस्वामीजी के संबंध के विना कोई भी परमपद नहीं पहुंच सकता।

(मणिक्कदवम् ताळ् तिरवाय्)—मणिमय अर्थात रत्नमय कपाट खोलो। रत्न शब्द से नवरत्न के समान, श्रीस्वामीजी से अनुगृहीत श्रीभाष्य - वेदांतदीप - वेदांतसार - वेदार्थ संग्रह - गीता भाष्य - शरणागति गद्य - श्रीरंगगद्य - श्री वैकुंठगद्य - दिव्यग्रंथ नामक, नव ग्रंथ सूचित किये जाते हैं। कपाट खोलने का अर्थ है उन ग्रंथों के रहस्यार्थों को ठीक बता देना। तथा च यह प्रार्थना की जाती है कि हे स्वामीजी! नवरत्नों के समान, आप से अनुगृहीत नव ग्रंथों के रहस्यमय सदर्थों का प्रकाशन कर दीजिए। अज्ञ गोप बालिका कहने से शिष्यों का अज्ञत्व, बालत्व एवं आचार्य पारतंत्र्य सूचित किये जाते हैं। तथा च यों प्रार्थना की जा रही है कि, ऐसे सुललित एवं सुमधुर उपदेश दीजिए जिस से अज्ञ हम लोग भी श्रीभाष्यादि ग्रंथरत्नों का अर्थ समझ सकेंगे।

(मायन् मणिवण्णन्) इत्यादि। भगवान ने बहुत समय पहिले ही आपके अवतार की सूचना हमें दे दी। तथा हि भविष्यवाणी के रूप में श्रीरामानुज स्वामीजी के अवतार की सूचना बहुत पहिले ही मिल गयी है। "उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः" यह प्रसिद्ध गीता वचन है। "अनन्तः प्रथमं रूपं लक्ष्मणस्तु ततः परम्। बलभद्रस्तृतीयस्तु कलौ कश्चिद्भविष्यति (कलौ रामानुजः स्मृतः)॥" इत्यादि पुराणवचन है। आगे शिष्यों की, शुद्धि बतायी जाती है। शुद्धि तो यही है कि, "आचार्यादिह देवतां समधिकामन्यां न मन्यामहे" (आचार्य से बढकर श्रेष्ठ दूसरी किसी देवता को हम न मानेंगे) इत्याद्युक्त प्रकार से, श्रीमधुरकवि स्वामीजी, श्रीरंगामृतस्वामीजी इत्यादियों की तरह, आचार्य को ही परदेवता मानना। पहिले पहल निषेध मत करना कहने का यह तात्पर्य है—"नासंवत्सरवासिने प्रब्रूयात्," "न चाशुश्रूषवे वाच्यम्" इत्यादि शास्त्र में विश्वास रखकर, सहसा उपदेश न देने की बात मत करिए; परंतु हमारी दुरवस्था देखकर, कृपामात्र प्रसन्नाचार्य होकर हमारे उपर अनुग्रह दर्शाइए। आगे स्नेहमयकपाट खोलने की प्रार्थना की जाती है। स्नेहमयकपाट शब्द से आत्मोद्धार हेतु रहस्यत्रय (यानी अष्टाक्षर, द्वय एवं चरमश्लोक नामक तीन मंत्र) सूचित किये जाते है। इन को खोलना तो, इनके रहस्यार्थों का ठीक उपदेश करना ही है॥ १६

(गाथा) अम्बरमे तण्णीरे शोरे अरम् शेय्युम् * एम्बेरुमान्नन्द गोपाला वेळुन्दिराय् *
कोम्बनार्क्केल्लाम् कोळुन्दे कुलविळक्के * एम्बेरुमाट्टि यशोदा यरिवुराय् *
अम्बरमूडरुत्तोङ्गि युलहळन्द * उम्बर्कोमाने उरङ्गादेळुन्दिराय् *
शेम्बोर्क्कळलडि च्चेल्वा बलदेवा! * उम्बियुम् नीयुमुरङ्गेलो रेम्बावाय्॥ १७॥

अम्बरमे तण्णीरे शोरे	वस्त्र का ही, जल का ही, एवं अन्न का ही,
अरम् शेय्युम्	- धर्मबुद्धि से दान करनेवाले
एम्बेरुमान् नन्दगोपाला	हे हमारे स्वामी नंदगोपजी !
एलुन्दिराय्	- जागो ।
कोम्बु अनार्क्कु एल्लाम् कोलुन्दे	हे लता के समान सुंदरियों में श्रेष्ठ !
कुल विळक्के	इस कुल का प्रकाशक मंगलदीप समाने !
एम्बेरुमाट्टि यशोदाय् अरिवुराय्	हमारी स्वामिनी, यशोदाजी ! निद्रा छोड कर जागो ।
अम्बरम् ऊडु अरुत्तु	आकाश में छेद बनाकर,
ओङ्गि उलहु अळन्द	ऊपर बढ कर (अपने पैरों से) लोकों को नापलेनेवाले
उम्बर् कोमाने	- हे देवाधिदेव !
उरङ्गादु एलुन्दिराय्	- निद्रा छोडकर उठ जा ।
शेम्पोन् कळलडि	लाल, स्वर्णमय आभरण से अलंकृत पादवाले
शेल्वा बलदेवा	- हे श्रीमन् बलदेव जी !
उम्बियुम् नीयुम्	छोटे भाई (श्रीकृष्ण) और तुम, दोनों
उरङ्गेल् ओरेम्बावाय्	- निद्रा मत करो (जागो) ॥

द्वारपालकों की अनुमति से मंदिर के अंदर प्रवेश करनेवाली गोपियों ने वहांपर क्रमशः शयन करनेवाले नंदगोपजी, यशोदाजी, श्रीकृष्ण और बलरामजी को देखा। अतः इसी क्रम से इनको जगाती हैं। श्रीमंत्र में प्रणव का अर्थ विवरण करनेवाले हमारे पूर्वाचार्य भगवान और चेतन, दोनों से संबंध रखनेवाली महालक्ष्मी जी को, नंदगोपजी एवं श्रीकृष्ण के बीच में सोजानेवाली यशोदा जी का दृष्टांत देते हैं।

पहिले के दो पादों से नंदगोपजी जगाये जाते हैं। आपकी प्रशंसा वस्त्रदातृत्वेन, तीर्थदातृत्वेन, एवं अन्नदातृत्वेन की जाती है। नंदगोपजी श्रीमान ठहरे; अतः विशेष दाता भी हुये होंगे। पुराणों में आपके दानकी प्रशंसा भी देखी जाती है। अथवा, "वासुदेवस्सर्वम्" इत्याद्युक्त प्रकार से गोपियों को उनके सर्वस्व श्रीकृष्ण का दान करने से आप ऐसे दाता कहे जाते हैं। अथवा श्रीकृष्णं तो प्रसिद्ध अन्न जल वस्त्र दाता ठहरे। आपके इस औदार्य का हेतु, पिताजी का औदार्य ही होगा, ऐसे अनुमान से यह प्रशंसा की जा रही है। तथाहि द्रौपदी लज्जासंरक्षण प्रकरण में, उसको अक्षयवस्त्र देनेवाले श्रीकृष्ण का, वस्त्रदान करने में औदार्य प्रसिद्ध है। श्रीभट्टनाथ स्वामीजी [पेरियाळ्वार तिरुमोलि ४–२–७] "मन्नर्मरुह" इत्यादि गाथा में एक चरित्र का वर्णन करते हैं। भारतयुद्ध के समय में कुरुक्षेत्र जाते जाते पांडवों के घोडे अकस्मात् प्यास से बहुत पीडित हो गये। पास में कहीं जल न दीख पडा। तब श्री कृष्ण ने भूतल में वारुणास्त्र का प्रयोग कर जल निकालदिया और घोडों को पिलाया। यह जलदान का चरित्र हुआ। एवं अन्नदान का भी एक सुंदर चरित्र श्री भागवत में [१०–२३] और गोदा सूक्त [१२–६] की "कार्तण्मुहिलुम् करुविळैयुम्" इत्यादि गाथा में उपवर्णित है। गाय चराते चराते बहुत

थक गये हुवे श्रीकृष्ण और बलदेव, एक दिन यमुनातट पर छाया में विराजते थे। तब उनके मित्र दूसरे गोपबालकों ने आकर उनसे क्षुधानिवृत्ति के लिए अन्न मांगा तब श्रीकृष्ण बोले—"देखो! मित्र! सामने कितने ऋषि यज्ञ कर रहे हैं तुम उधर जाकर मेरे नाम से प्रसाद मांग लो।" गोपबालक झठ उधर दौड गये और ऋषियों से प्रसाद मांगने लगे। परंतु इन गरीब अहीर पर कौन ध्यान देवें ऋषि तो अपने काम में मग्न रह गये। इससे बहुत लज्जित होकर वे बालक वहां से लौटकर श्रीकृष्ण के पास आकर अपना दुःख प्रकाशित करने लगे। फिर श्रीकृष्ण बोले—ओर मित्र! तुमने यह क्या किया? अन्न देना औरतों का काम है। ऋषि लोग थोडे ही अन्न देंगे? अतः चिंता मत करो। फिर उधर जा और ऋषिपत्नियों कह दो कि श्रीकृष्ण, अपने भक्तों के साथ भूखे बैठे हैं। बालकों ने ऐसा ही किया। वे ऋषिपत्नियां बहुत काल से ही श्रीकृष्ण पर प्रेम करती हुई आपकी सेवा करने के योग्य अवसर की प्रतीक्षा में रहती थी। अतः गोपबालकों से यह बात सुनती ही वे खूब आनन्दित हो गयी और अन्न भक्ष्य भोज्यादि लेकर बालकों के साथ प्रस्थित हो गयीं। तब उनके गुरुजनों ने उनको इस प्रयत्न से रोकने की चेष्टा की। परंतु वे भक्तिनी उनका परवाह नहीं करती हुईं आ गयी और अपने से लाये हुवे अन्न की श्रीकृष्ण को भेंट की। भक्त्युपहृत उस अन्न को श्रीकृष्ण ने स्वयं खाया और अपने मित्रों को भी खिलाया। यह काम फिर प्रतिदिन चलता। उस स्थल का नाम पडा भक्त विलोचन क्षेत्र। भक्त - अन्न; उसका विलोचन - प्रतीक्षण। अर्थात् प्रतिदिन एक निश्चित समय में सभी गोपबालक, और स्वयं भी श्रीकृष्ण भी, उस स्थल में एकत्रित होकर अन्न की प्रतीक्षा करते हुवे, ऋषिपत्नियों के आगमन की दिशा को ही देखते रहते। इस तरह से इन तीन वस्तुओं का दान करने की शक्ति, अथवा शिक्षा श्रीकृष्ण को नंदगोप जी से ही मिली होगी। फिर खुद आपका ही दान कितनी उच्चकोटि का होगा!

"वस्त्र का ही, जलका ही, अन्न का ही दान करनेवाले"—एवं तीनों जगह एव कार (ही) लगाने का यह तात्पर्य है, कि इनमें से एकैक वस्तु का दान करते आपको देखनेवाले लोग उस दान की महत्ता से चकित होकर कहते हैं कि "यह महात्मा इस एक वस्तुका ही दान करना जानता है।" अर्थात् उक्त तीनों वस्तुओं को अपरिमित प्रमाण में आप देते हैं।

(एम्पेरुमान्)—हे हमारे स्वामिन्! यद्यपि श्रीवैष्णव संप्रदाय में यह शब्द केवल भगवान के ही वाचकतया प्रयुक्त होता है; अतः नंदगोपजी को इस शब्द से पुकारना कुछ अनुचित - प्रतीत होगा। परंतु इसमें कोई दोष नहीं है। कारण कि जब सर्वस्वामी भगवान ही श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हो गये, तब नंदगोपजी उनके भी नियामक पिता बन गये; अतः इस अर्थकी सूचना करने के लिए आपको एम्पेरुमान कहना उचित ही है।

ऐसे महांमहिमवाले नंदगोपजी को जगाकर उनसे अनुज्ञा पाकर, आगे बढती हुई गोपियां यशोदाजी को जगाती हैं—(कोम्बनार्क्केल्लाम्) इत्यादि दो पादों से। यहां पर समस्त वनिताओं से यशोदाजी श्रेष्ठ

बतायी जाती हैं। व्रजनिवासिनी दूसरी गोपियों से यशोदाजी अधिक भाग्यवती है, यह अर्थ तो है ही। परंतु इससे भी विशेषतया, अवतारों में भगवान की मातृत्वेन जो महिला हो चुकी है, उन सबमें से यशोदाजी श्रेष्ठ बता जाती हैं। तथाहि अदिति देवी वामन भगवान की माता थी; परंतु जन्मदिवस में ही भगवान बढकर महाबली से भूमि मांगने चले गये। अतः माता से उनका संबंध अत्यल्प काल का था। फिर श्रीरामावतार में कौसल्या जी आपकी माता बनकर बहुत समयतक आपके साथ रही तो सही। परंतु हमें इसका पता नहीं चलता है कि पुत्र की बाल्यलीलादि को देखकर उन्होने आनंद पाया कि नहीं। चौदह वर्षों तक आपसे विरहित होकर उन्होने जो दुःख पाया, उसी का वर्णन रामायण में लिखा गया है। एवं देवकी जी श्रीकृष्ण की साक्षात् जननी तो हुई। परंतु उनका दौर्भाग्य इतना प्रबल था कि जन्म लेते ही भगवान उनको छोडकर यशोदा स्तनंधय बन गये। आपकी समस्त बाल्यलीलाओं का अनुभव करनेवाली यशोदाजी के भाग्य के बारे में कहने की नई बात कौनसी रखी है? पेरियाळ्वार इनकी भूरि भूरि प्रंशसा करते हैं। व्रजनिवासिनी सभी औरतें एक वाणी से कहती थी कि, "इस मनोहर कृष्ण को अपने पुत्र के रूप में पानेवाली इस यशोदा का भाग्य ही भाग्य है। न जाने इसने कौनसा व्रत किया।" इत्यादि। स्वयं यशोदाजी ही तदातदा कहती, कि "हे सखियां! इस संसार भर में पुत्रवती मैं एक ही हूँ; दूसरी सभी वांझणी हैं" इत्यादि।

ऐसी यशोदाजी को कुलदीपिका कहना भी बहुत उचित है। उक्त प्रकार से श्रेष्ठ होने से गोपकुल का ही आपसे प्रकाशन हुआ यानी गौरव मिला। एवं श्रीकृष्ण ही अनेकत्र (गाथा ५) गोपकुल का प्रकाशक मंगलदीप पुकारे जाते हैं। ऐसे कृष्ण को भी प्रकाशित करनेवाली माताजी के बारे में, फिर कहना ही क्या? ऐसे महाभाग्यवति! हमारी स्वामिनि! आप कृपया जागकर हमको श्रीकृष्ण संनिधि में पहुँचा दीजिए—ऐसी प्रार्थना की जाती है।

इससे प्रसन्न यशोदाजीने जागकर गोपियों को आगे बढा दिया। अतः खुद श्रीकृष्ण का उत्थापन किया जाता है—(अम्बरमूडरुचु) इत्यादि से। बडे त्रिविक्रम रूप का धारण कर, अपने पाद को ऊपर उठाकर, उसको और भी बढाते हुवे, उससे आकाश में एक छेद बनाकर, उससे भी आगे पैर बढानेवाले देवाधिदेवत्वेन यहां पर श्रीकृष्ण कीर्तित हो रहे हैं। सामान्यतः लोग मानते हैं कि यह तो भगवान के परत्व का सूचक चेष्टित है। परंतु आल्वारों के तथा तदनुयायी आचार्यों के अभिप्राय से यह सौशील्य सौलभ्यों का ही सूचक है। कारण कि इस अवतार में भगवान ने उच्च नीचभाव का विचार न करते हुवे भूतल पर निवास करनेवाले समस्त चेतनों के सिर पर अपना पादारविंद रख दिया। सबसे एक सरीक मिलने का यह स्वभाव ही सौशील्य कहलाता है। सब को सुलभ होना सौलभ्य है। ये दोनों गुण जैसे त्रिविक्रम भगवान में हैं, वैसे श्रीकृष्ण में भी हैं। अतः दोनों परस्पर सदृश माने जाते हैं। अत एव, विशेषतः दोनों अवतारों का ऐक्य तत्र तत्र बताया जाता है। इस प्रबंध में भी तीसरी गाथा में त्रिविक्रम

भगवान का प्रस्ताव किया गया। आगे चौवीसवी गाथा में श्रीकृष्ण के लोकमापक श्रीचरणों की जय पुकारी जाएगी। अतः जान लेना चाहिए कि गोपियों के मन में दोनों अवतारों का ऐक्य दृढ प्रतिष्ठित है। हाल में इस चेष्टित के वर्णन से यह प्रार्थना सूचित की जाती है कि, "द्वेषी एवं उदासीन मानवों के सिरपर भी वात्सल्य से (त्रिविक्रमावतार समय में) पैर रखनेवाले आपको अनन्यभक्ता हमारी "उपेक्षा करना सर्वथा अनुचित है।

उक्त सौलभ्य की कींमत बढाने के लिए देवाधि देव शब्द से भगवान का परत्व कहा जाता है। परत्व के विना सौलभ्य व्यर्थ अथवा उपेक्षणीय होता है।

इस तरह से जगाये जाने पर भी श्रीकृष्ण जागे नहीं। इससे गोपियों ने सोचा कि "हमारी कोई भूल जरूर है, जिससे भगवान हमारी उपेक्षा कर रहे हैं। हां! हमने बलदेवजी को नहीं जगाया अतः अब आपको जगाने लगती हैं—(शेम्पोर्कळलडि) इत्यादि से। इसमें आपके पादारविंद की प्रशंसा की जा रही है। श्रीकृष्ण से पहिले उत्पन्न देवकीजी के छः पुत्रों को कंसने मार डाल दिया। मगर श्रीकृष्ण उस आपद से बच गया। इसका कारण यही है कि उनसे पहिले देवकीजी के गर्भ में बलदेवजी का पादार्पण हुआ किया था। स्पष्ट ही ये पादारविंद जहां रखे जाते हैं, उस जगह का कल्याण जरूर होगा। इस कल्याण कारित्व ने ही श्रीकृष्ण को मृत्युमुख से बचा दिया। व्रज में भी इससे ही सारे अनिष्ट निवृत्त हो गये और सब प्रकार की समृद्धियां भर गयीं। ऐसे परमशोभन पादवाले आपके जागने से गोपियों की इष्टसिद्धि जरूर होगी। आपका दूसरा संबोधन है "श्रीमन्।" शेषावतार आपकी श्री तो अविच्छिन्न भगवत्कैंकर्य में निरत होना है।

ऐसे महामहिम शाली बलदेवजी से यह प्रार्थना की जाती है कि, आप कृपया अपने छोठा भाई के साथ जागृत हो जाइए। कहना था, कि आप जागिए। भाई के साथ जागने का यह अर्थ है कि, आप जागकर कृपया अपने भाई को भी जगाइए। बलरामजी बात करने में बडे कुशल हैं। अत एव श्रीकृष्ण भी एक समय में, जब कि आप मथुरा पधार कर, वहां के नानाप्रकार के राजकार्य में लग्न होने के कारण, शीघ्रव्रज न लौट सकेंगे, तब गोपियों के क्षुब्ध चित्त को शांत करने के लिए वाक् चतुर बलरामदेव को भेजनेवाले हैं; और उनकी मीठी मीठी वाणी से श्रीकृष्ण से कुपित गोपियां भी प्रसन्न होनेवाली हैं। यह घटना तो आगे होनेवाली है। इस से स्पष्ट होता है कि बलदेवजी बात करने में बडे निपुण है। यह नैपुण्य तो बचपन में भी था ही। अतः उनसे अब यह प्रार्थना की जाती है कि "हे प्रभो! आप कृपया जागकर अपने भाई को भी जगाइए और उनको हमारे ऊपर कृपावान बना दीजिए॥

व्यंग्यार्थ का विवरण॥ इस पद्य से आचार्य, मंत्र मंत्रार्थ, एवं मंत्रार्थ सार नामक चार वस्तुओं का समुद्बोधन किया जाता है। तथा हि नंदगोप शब्द से ब्रह्मानंद निमग्न, वेदादि शास्त्रवाणी के संरक्षक आचार्य कहे जाते हैं। आप तो जरूर अम्बर, जल व अन्न के दाता होते हैं। तथा हि अम्बरशब्द का अर्थ है आकाश, अथवा परमाकाशशब्दवाच्य परमपद। उसके प्रदाता यानी परमपद पहुँचानेवाले आचार्य

हैं ही। एवं जलशब्द से सूक्ष्मशरीर रूप मल को भी निकालदेनेवाली विरजा नदी सूचित की जाती है। यह नदी संसार और परमपद इन दोनों के बीच में बहती है और आचार्य कृपा से संसारबंधन से छुटकर परमपद पहुँचने के लिए प्रस्थित भाग्यवान पुरुष ही इसको प्राप्त कर सकता है। अर्थात् विरजा पहुँचने पर परमपद प्राप्ति करगत हो जाती है। अतः विरजातीर्थ दातृत्वेन आचार्य का संबोधन करना बडा उचित होगा। एवं अन्न शब्द से, "अहमन्नादः" इत्याद्युपनिषद में उपवर्णित भगवान पुकारे जाते हैं; और आचार्य इस अन्नके दाता तो जरूर होते हैं। पूर्व पद्य व्याख्यान में प्रदर्शित प्रकार से आचार्य को स्वामी पुकारना भी बडा उचित होता है। ऐसे महान आचार्य से शिष्यके प्रति अभिमुख होने की प्रार्थना करना प्रकृत गाथा के पहिले के दो चरणों का तात्पर्य है।

आगे दो पादों से यशोदा शब्द सूचित श्रीमदष्टाक्षर महामंत्र का समुद्बोधन किया जाता है। यशोदाजी ने श्रीकृष्ण को अपनी पेट में रखा। एवं मंत्र भी भगवान को प्रतिपाद्यतया अपने में रखता है। "मंत्रो माता गुरुः पिता," "स हि विद्यातस्तं जनयति, तच्छ्रेष्ठं जन्म" इत्यादि प्रमाण भी मंत्र को माता पुकारते हैं। स्त्रियों में श्रेष्ठ कहने से दूसरे मंत्रों से यह मंत्र श्रेष्ठ बताया जाता है। देवतांतरमंत्र की बात तो बहुत दूर रह गयी। भगवान के मन्त्रों में भी दूसरे मंत्रों से अष्टाक्षर मंत्र श्रेष्ठ बताया जाता है। जैसे कि मुमुक्षुप्पडि नामक मंत्रार्थ व्याख्यानग्रंथ में श्रीलोकाचार्य स्वामीजीने अनुगृहीत किया—'भगवान के अनेक मंत्र होते हैं; उनके दो प्रकार है—व्यापक व अव्यापक। अव्यापकों से तीन व्यापक (विष्णु, वासुदेव, नारायण) मंत्र श्रेष्ठ हैं। इन तीनों में से महान श्रीमंत्र सब से प्रधान होता है" इत्यादि। एवं कुलप्रदीप कहने का यह तात्पर्य है कि यह महामन्त्र श्रेष्ठ कुल देगा। श्रीपरकाल स्वामीजी बृहत्सूक्त के प्रारंभ में इस मंत्र की प्रशंसा करते हुवे गाते है कि, "कुलम् तरुम् शेल्वम् तन्दिडुम्" यानी यह मंत्र, सीखने वाले को श्रेष्ठ कुल देगा, ऐश्वर्य भी देगा इत्यादि। इसका यह तात्पर्य है—जैसे गायत्री मंत्र सीखने से ही ब्राह्मण को द्विजत्व मिलता, वैसे श्रीमदष्टाक्षर महामंत्र सीखने से श्रीवैष्णवत्व मिलता। द्विजत्व तो शरीर मात्र का धर्म होता, मगर श्रीवैष्णवत्व आत्मधर्म है। अतः यही श्रेष्ठ है। अतः ठीक कहा गया कि श्रीमंत्र श्रेष्ठ कुल देगा, अथवा कुल प्रदीपक होगा। इस मंत्र का उत्थापन कहने का यह तात्पर्य है कि आचार्य कृपा से यह मंत्र अपने समग्र रहस्यार्थों को प्रकाशित करें, ऐसी प्रार्थना करना।

आगे, श्रीकृष्ण के उत्थापन से मंत्रार्थ का अनुसंधान किया जाता है। श्री मंत्र से भगवान का सर्वव्यापकत्व बताया जाता है। और त्रिविक्रमापदान में भी भगवान ने इस व्यापकत्व का ही प्रकाशन किया। अत एव दिव्यप्रबंधों में आलवार लोग तत्र तत्र त्रिविक्रमावतार का वर्णन करते हुवे भगवान के सर्वव्यापकत्व को बता देते हैं। अतः यहां पर श्रीकृष्ण के लोकविक्रांत चरणों की प्रशंसा से सर्वव्यापकत्व रूप मंत्रार्थ का अनुसंधान किया गया।

अंत में बलदेवजी के उत्थापन से मंत्रार्थसारभूत, भागवतशेषत्व का अनुसंधान किया जाता है। तथाहि; श्रीमंत्र का स्पष्ट वाच्यार्थ यह है कि जीवात्मा भगवान का शेष है। इससे बँढकर दूसरा कए

तात्पर्यार्थ यह बताया जाता है कि यह जीवात्मा भगवद्भक्तोंका शेषभूत है। यथा श्री परकालस्वामीजी ने अनुगृहीत किया—:“निन् तिरुवेट्टेलुत्तुम् कत्तु नान्—उत्तदुमुन्नडियार्क्कडिमै” अर्थात् हे भगवन्! आपका अष्टाक्षर मंत्र सीखकर मैंने भागवतशेषत्वरूप इसी अर्थको समझा। यह अर्थ तो प्रसिद्ध ही है कि बलभद्र जी शेषावतार हैं। लक्ष्मण जी के रूप में छोटा भाई होकर उन्होंने जो भगवान की सेवा की, उसको बडे भाई बलभद्र होकर भी उन्होंने किया ही। अत: उनको जगाने का अर्थ है भागवतशेषत्व की प्रार्थना। आगे दोनों से जागने की जो विनती की जाती है, उसका यह तात्पर्य है कि भगवच्छेषत्व और भागवतशेषत्व रूप ये दोनों अलग अलग दो वस्तु नहीं; मगर एक ही वस्तुकी दो अवस्थाएँ। अर्थात् भगवच्छेषत्व की ही एक परिपाकावस्था है भागवतशेषत्व; अत एव एकको छोडकर दूसरा न रह सकता है।

तथाच उक्त चार वस्तुओं में अपनी भक्ति को प्रकाशित करना इस पद्यका व्यंग्यार्थ सिद्ध हुआ ॥१७॥

(गाथा) उन्दु मदकळित्तन् ओडाद तोळ्वलियन् * नन्दगोपालन् मरुमहळे नप्पिन्नाय् *
कन्दङ्कमलुम् कुळली कडैतिरवाय् * वन्देङ्गुम् कोळियळैत्तन काण् * मादवि
प्पन्दल्मेल् पल्काल् कुयिलिनङ्गळ् कूविन काण् * पन्दार् विरलि उन्मैत्तुनन् पेर्पाड *
शेन्दामरैक्कैयाल् शीरार्वळैयोलिप्प * वन्दु तिरवाय् महिळ्न्देलोरेम्बावाय् ॥ १८ ॥

उन्दु मदकळित्तन्	मद बहनेवाले हाथियों के स्वामी अथवा, मत्तहाथीको जीतनेवाले, अथवा मत्तहाथी के सदृश, (एवं)
ओडाद तोळ् वलियन्	(युद्धक्षेत्र से) पलायन न करने आवश्यक भुजबलवाले अथवा, लोकविलक्षण भुजबलवाले
नंदगोपालन् मरुमहळे	हे नंदगोपजीकी पुत्रवधू!
नप्पिन्नाय्	हे नप्पिन्नै (नीला) देवी!
कन्दम् कमलुम् कुळली	हे सुगंध वाहक केशवाली!
कडै तिरवाय्	(कपाट का) अर्गला खोलो।
कोळि एङ्गुम् वन्दु अळैत्तनकाण्	मुर्गा सर्वत्र जाकर आवाज निकाल रहे हैं।
मादविप्पन्दल् मेल्	माधवी लता पर (बैठकर)
कुयिल् इनङ्गळ्	कोकिलगणों ने
पल् काल्	बारं बार
कूविन काण्	चूँ चूँ कर दिया।
पन्दु आर् विरलि	हे (श्रीकृष्ण के साथ खेलने का साधन) गेंद से युक्त अंगुली वाली (देवी)!
उन् मैत्तुनन् पेर् पाड	तुम्हारे स्वामी श्रीकृष्ण के नाम संकीर्तन (हम) करें, इस तरह से
शीर् आर् वळै ओलिप्प वन्दु	श्रेष्ठ (तुम्हारी) चूडी से आवाज निकालती हुई आकर,
शेम् तामरै कैयाल्	लाल कमलपुष्प के समान अपने हाथ से
महिळ्न्दु तिरवाय् एलोरेम्बावाय्	(हमारे प्रति) प्रसन्न हो कर (कपाट) खोलो॥

पूर्व पद्य में अत्यादर पूर्वक जगाये जाने पर भी जब श्रीकृष्ण प्रसन्न न हुए, तब गोपियों ने सोचा कि, “प्रधान महिषी नीलादेवी को जगाये विना श्रीकृष्ण की संनिधि में जाकर हमने बडी भूल की।

महात्माओं का कथन है कि पुरुषकार के विना भगवान प्रसन्न नहीं होते हैं।" अतः अब नीला देवी का उत्थापन करती हैं इस पद्य से।

यह तत्व है—"राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि" इत्यादि प्रमाण के अनुसार श्रीमहालक्ष्मी जी का अवतार रुक्मिणी देवी ही श्रीकृष्णावतार में भगवान की प्रधान महिषी मानी जाती हैं। और अर्चावतार में भी श्रीकृष्ण के पास रुक्मिणी और सत्यभामा विराजमान हैं। तथापि आल्वारों की गोष्ठी में नीलादेवी की ही प्रसिद्धि है। दिव्यप्रबंध की चार हजार गाथाओं में रुक्मिणी सत्यभामाओं का प्रस्ताव बहुत कम किया गया है। नीलादेवी का उल्लेख तो सैकडों स्थलों में किया जाता है। इसका कारण श्रीकूरेशस्वामीजी से सुन्दरबाहुस्तव में (१०७) अनुगृहीत किया गया —"नीला कुलेन सदृशी" इत्यादि सें। श्रीभक्तिसारमुनीन्द्र ने भी तिरुच्चन्दविरुत्त नामक दिव्यप्रबंध में (४१) "आयनाहि आयर्मङ्गै वेयतोळ् विरुम्बिनाय्" गाते हुवे बताया कि गोपकन्या नीलादेवी से परिणय करने के उद्देश्य से ही श्रीकृष्ण ने गोकुल में प्रवेश किया। इन नीलादेवी का द्राविडी नाम है नप्पिन्नै। "वैकुंठे तु परे लोके श्रीसहायो जनार्दनः। उभाभ्यां भूमिनीलाभ्यां सेवितः परमेश्वरः॥" इत्यादि प्रमाणों में, एवं तदनुसारि श्रीरामानुजस्वामीजी की शरणागति गद्यस्थ "एवंभूत भूमिनीलानायक" इस श्रीसूक्ति में उपवर्णित नीलादेवी के अंशतया अवतीर्ण होने से नप्पिन्नै नीला कहलाती हैं। आप, यशोदाजी के भाई कुंभ की पुत्री थीं। सात वृषभों का दमन कर श्रीकृष्ण ने उनसे परिणय किया। श्रीभागवत में उपवर्णित प्रधान अष्ट महिषियों में एक रानी के परिणय के लिए भी श्रीकृष्ण से सप्तवृषभदमन किया गया था। परंतु वह क्षत्रियकुमारिणी थी, और उससे परिणय भी बाद में संपन्न हुआ। नीलादेवी तो व्रजनिवासिनी गोपी थीं और कंसवध से पहले, जब कि श्रीकृष्ण व्रज में ही विराजते थे, उनसे परिणय हो चुका था। इन देवी का उल्लेख श्रीभागवत में, अथवा श्रीविष्णुपुराण में नहीं किया गया है। तो भी यादवाभ्युदय काव्य व्याख्यान में अप्पय्यदीक्षित लिखते हैं कि हरिवंशपुराण में नीलादेवी का वृत्तांत उपवर्णित है। अस्तु। व्रज में गोपजन्म को अपनानेवाले श्रीकृष्ण की आप अनुरूप, एवं अत्यंत प्रिय पत्नी थीं; इस कारणसे दिव्यसूरियों आपका वर्णन करते हैं। गोदादेवी भी इसी मार्ग में चलती हैं।

इस पद्य में नीलादेवी का संबोधन है हे नंदगोपजी की पुत्रवधू! पुकारना था, कि हे कुंभपुत्री। इस तरह से पितृसंबंध छोडकर ससुर संबंध लेकर संबोधित करने का एक कारण है। वह यह है कि कुलस्त्रियां अपने पितृकुल को भूलकर पतिगृह में ही रह जाती हैं और उसमें ही अभिमान रखती हैं! श्रीरामायण में यह बात कहीं भी नहीं बतायी गयी कि सीताजी ने विवाहित हो कर अयोध्या आ जाने के बाद, मिथिला का, एवं माबापों का स्मरण तक किया। एवं लंका में हनुमानजी को अपना परिचय देती हुई आप पहले "स्नुषा दशरथस्याहम्" कहकर बाद में "दुहिता जनकस्याहम्" कहती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सीताजी को ससुर संबंध ही विशेष प्रिय था। एवं नीलादेवी भी नंदगोप संबंध का ही विशेष आदर करती थीं; इस लिए आप यहां उस संबंध से ही पुकारी जा रही हैं।

नंदगोपजी के दो विशेषण दिये गये हैं। पहला विशेषण है (उन्दु मदकळित्तन्)। (उन्दु-बहनेवाला, अथवा दबा जानेवाला; मद - मदजल, कळिरु - हाथी; अन् - वाला अर्थक प्रत्यय है।) इसका तीन प्रकार से अर्थ किया जा सकता है। (१) बहनेवाले मदजल से युक्त जो हाथी हैं, उनसे सहित, यानी मत्तगजों के स्वामी। अर्थात् बडे श्रीमान् होने के कारण, नंदगोपजी के पास गाय भैंस आदि की तरह अनेक मत्तगज भी थे। कहावत है कि "गजान्तमैश्वर्यम्" यानी ऐश्वर्य की सीमाभूमि हाथी है। परंतु अगर आग्रह किया जाय कि नंदगोपजी के पास हाथी की सत्ता इतिहासपुराणादि में कहीं सुनी नहीं गयी है, तो समझ लेना कि स्वयं श्रीकृष्ण ही यहां पर मत्तगज कहे गये हैं। अनेक प्रकारों से मत्तगज के सदृश होने से दिव्यसूरियों तत्र तत्र भगवान को मत्तगज ही कहते हैं। विशेषतः श्रीभट्टनाथ स्वामीजी एवं गोदा देवीजी ऐसा वर्णन करते हैं। अतः श्रीकृष्ण के स्वामी होने से नंदगोपजी को मत्तमातंगाधिपति कहना उचित है। (२) दूसरा अर्थ है मत्त गज को दबानेवाले, यानी जीतनेवाले; (३) तीसरा अर्थ भी इस से मिलता जुलता है—बहनेवाले मदजल सहित हाथी के सदृश। दोनों का तात्पर्य यह है कि नंदगोपजी हाथी के समान अथवा हाथी को भी अपने हाथ से दबा देनेवाले अमित पराक्रमवान हैं। आपके इस पराक्रम का एक अंश ही श्रीकृष्ण को भी मिला था और कुवलयापीड वधमें उपयुक्त हुआ था।

दूसरा विशेषण है (ओडाद तोळ्वलियन्)। इस में भी ओडाद शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। "युद्धे चाप्यपलायनम्" इत्याद्युक्त प्रकार से लडने का प्रसंग आने पर, युद्धक्षेत्र से पलायन न कर, धैर्य से ठहर कर, युद्ध करने आवश्यक बाहुबलवान् हैं नंदगोपजी। अथवा लोक में दूसरे किसी में नहीं दीख पानेवाला जो अन्यादृश भुजबल होगा, उससे युक्त हैं; अथवा आवश्यकता आने पर, यानी रणरंग में शत्रुओं से लडने के प्रसंग में कभी भी न चूकनेवाला जो भुजबल है उससे युक्त हैं नंदगोपजी। नंदगोपजी के भुजबल की प्रशंसा अन्यत्र सुनने में बेशक न मिलती हो, तो भी चिंता नहीं। श्रीकृष्ण का भुजबल तो प्रसिद्ध है न? इससे अनुमान लगा जा सकता है कि नंदगोपजी भी जरूर ऐसे पराक्रमी थे। गोपियों का अभिप्राय है कि ऐसे अमित भुजबलवाले नंदगोपजी से डरते हुवे ही कंस, श्रीकृष्ण को मारने के लिए स्वयं व्रज में न आ सका, किंतु दूसरों को भेजता रहा। जैसे रावण ने एक वार रामबाणों का स्वाद लेने पर दूसरी वार स्वयं युद्धक्षेत्र आने से डरते हुवे, कुंभकर्ण को, अपने पुत्रों को, अन्यान्य राक्षसों को, मेघनाद को और मूलबल को भी भेज दिया। अंततः जब सब समाप्त हो गये, तभी वह स्वयं निकला। हमेशा कंससे डरनेवाली गोपियों के मन में इस एक बात से कुछ शांति मिलती है कि ऐसे बलवान नंदगोपजी की सुरक्षा में रहने से श्रीकृष्ण आपदों से दूर होंगे। अथवा, लौकिक क्षुद्र विषयों का अनुभव करने के लिए जब विशेष बलकी आवश्यकता होती है; तब समस्त लौकिकविषय विलक्षण भगवद्विषय का अनुभव करने के लिए कितना बल अपेक्षित होगा? यथा श्रुति ने कहा कि "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"। नंदगोप जी तो सदा श्रीकृष्ण भगवान का ही अनुभव करते रहे। फिर आप कैसे बलवान हुये होंगे! यह बल भी आपको भगवान की ही देन थी। यथा श्रुति ने कहा, "य आत्मदा बलदाः।" इस का अर्थ यह है कि

भगवान भक्तों को अपना अनुभव देते हुवे, उसका अपेक्षित बल भी देते हैं। अतः यह अर्थ स्पष्ट है कि नंदगोपजी को आत्मप्रदान करनेवाले भगवान ने अपने अनुभव के अपेक्षित बल का भी प्रदान किया था। यही विलक्षण बल यहां पर कीर्तित है।

इस तरह से, "हे परमोदार एवं अमितबलसंपन्न नंदगोपजी की पुत्रवधू!" पुकारे जाने पर भी नीलादेवी ने प्रत्युत्तर न दिया। उनका अभिप्राय था कि श्री कृष्णावतार होने के बाद पुरुष, वृद्धा, एवं शिशुओं को छोडकर दूसरी सभी जनता नंदगोपजी की पुत्रवधू बन गयीं। फिर कौन जाने कि ये गोपियां किससे बात कर रही हैं? इस अभिप्राय को जानकर गोपियां स्पष्ट संबोधन करती हैं—(नप्पिन्नाय्)। हे देवि! श्रीकृष्ण के प्रेमपात्र होने मात्र से दूसरी औरतें नंदगोपजी की पुत्रवधू थोडी हो सकती हैं? अब तो हम श्री कृष्ण की विवाहिता धर्मपत्नी आपकी कृपा मांगती आ रही हैं। अतः हे नीलादेवी! आप कृपा कर जागिए। इतने में भी प्रत्युत्तर न देने चाहनेवाली आपका फिर संबोधन करती हैं— (कन्दम कमलुम् कुळली।) हे सुगंध वाहक केशवाली! आपका ऐसा अभिप्राय होगा कि आपके चुप रह जाने से, हम आपको यहां पर अनुपस्थित मानकर इधर से निकल जाएँगी। परंतु आपके केशपाश की सुगंध ही आपकी उपस्थिति को बता रही है। किसी प्रकार से आप इसको छिपा नहीं सकती हैं। हमने तो व्रतांगतया पुष्प न पहन ने की प्रतिज्ञा कर रखी। इसके विरुद्ध, आप अकेली पुष्पधारण करती हैं, जिससे आपका केशपाश सुगंधित होकर चारों ओर सुगंध फैला रहा है। यद्यपि आपको कृष्णप्राप्ति के लिए व्रत करने की आवश्यकता न होगी। तथापि सब के साथ मिलकर व्रत करने उद्युक्त होनेपर यथासंकेत चलना तो चाहिए। उससे विरुद्ध आपका यह आचरण कैसे बना? अस्तु। यह लीला छोडकर आप कृपया अर्गला खोल दीजिए।

तब नीलादेवी बोली—"बहुत अच्छा है। मगर अभी आधीरात है। प्रातःकाल होते ही कपाट खोल दूँगी।" अतः प्रातःकाल होने का लक्षण बताया जाता है (वन्देङ्गुम्) इत्यादि से। मुर्गा इधर उधर सर्वत्र फिरकर आवाज कर रहे हैं और माधवीलताकुंज में बैठ कर कोकिलशिशु भी चूँ चूँ कर रहे हैं। अतः प्रातःकाल हो चुका। यह सुनकर भी निद्रा का अभिनय करती नीलादेवी चुप रह गयीं। अतः गोपियां कहती हैं—(पन्दार विरलि) इत्यादि। खिडकी से देखने पर अंदर नीलादेवी हाथ में गेंद पकडकर सोती दीख पडी। रातभर आपने स्पर्धापूर्वक श्री कृष्ण के साथ गेंद खेलकर उनको जीत लिया। अतः अपने विजयका हेतु उस गेंद को हाथ में रखकर ही आयास के मारे आप सो गयीं। इस अर्थ का सूचक है यह संबोधन। तब नीलादेवी ने पूछा कि अब हमें क्या करना चाहिए। इसका उत्तर दिया जाता है (उन् मैत्तुनन् पेर पाड)। हम और क्या करेंगी? सब मिलकर आपके नाथ (और हमारे नाथ) श्रीकृष्ण के नाम संकीर्तन करेंगी। इससे प्रसन्न नीलादेवी बोली—"ठीक है। कपाट तो एकदम बंद नहीं किया गया है। बाहर खडी होकर ही तुम अर्गला खोल सकती हो। अतः क्यों देर करती हो? कपाट खोलकर अंदर आओ न।" इसका प्रत्युत्तर गोपियों से कहा जाता है (शेन्दामरैक्कैयाल्) इत्यादि

से। यह भाव है—कपाट खोलने मात्र से हम तृप्त न होनेवाली हैं। परंतु प्रसन्नता पूर्वक आप ही दौडते दौडते हमारी ओर आ जावें, तब आपकी विलक्षण शोभा देखकर. और हाथ की चूडियों की मधुर ध्वनि सुनकर हम धन्य होने चाहती हैं। अतः कमल के समान अपने शुभ हस्त से कपाट का अर्गला खोल दीजिए ॥

संप्रदाय वेत्ता इस गाथा का दो वार अनुसंधान करते हैं और कहते हैं कि श्रीरामानुज स्वामीजी इसका बहुत आदर करते थे। आप भिक्षा मांगने जाने की वक्त इस तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध का अनुसंधान करते थे। एक दिन ऐसे करते आप अपने गुरु श्री महापूर्ण स्वामीजी के घर पहुँच गये। घर का महाद्वार बंद था। परंतु गुरुपुत्री अत्तुळाय् (तुलसी देवी) ने तिरुप्पावै गानध्वनि सुनकर कपाट खोलती बाहर आगयी। श्रीरामानुज स्वामीजी उसको देखते ही मूर्छित गिर पडे। अत्तुळाय् ने इससे बहुत डरकर अंदर दौडकर पिताजी से यह वृत्तांत सुनाया। तब श्रीस्वामीजी ने कहा कि, "उन्दुमदकळित्तन् का अनुसंधान चलता होगा।" यह तात्पर्य है—जब श्रीरामानुज स्वामीजी अपने गुरु के महल पर पहुँचे, तब आप इस पद्य का अनुसंधान करते थे। यह तो कहने की आवश्यकता नहीं है कि साथ में अर्थ का चिंतन भी चलता ही था। जब अंतिम चरण का अनुसंधान चलता था, ठीक उसी समय में अत्तुळाय् भी हाथ में गेंद पकडकर कपाट खोलती बाहर आ गयी। उसको देखते ही श्री स्वामीजी को यों लगा कि साक्षात् नीलादेवी ही आ रही है। इससे आप हर्ष का परवश होकर मूर्छित हो गये। महापूर्णस्वामीजी श्रीरामानुजस्वामीजी के स्वभाव से ठीक परिचित रहने के कारण इस रहस्य को जान सके॥

व्यंग्यार्थ का विवरण ॥ पूर्वपद्यटीका में बताया गया कि नंदगोप शब्द का व्यंग्यार्थ, आचार्य हैं। इस पद्य में भी वही अर्थ है। उसका अत्यंत प्रिय शिष्य ही पुत्रवधू कहलाता है। आचार्य के दो विशेषण दिये गये हैं गाथा के पहले पाद में। उसमें पहले विशेषण में गजशब्द से अनेक प्रकारों से गज के सदृश भगवान सूचित किये जाते हैं। तथाहि—(१) अत्यंत बलवान होकर भी गज खूंटे में बांधा जाता है; सर्वशक्त होने पर भी भगवान उलखल में बांधे गये। (२) गज अपने बंधन के लिए जंजीर को स्वयं अपने हाथ से उठाकर पालक को देता है; भगवान भी अपने को बांधनेवाले भक्तिपाश को स्वयं दे देते हैं—"ददामि बुद्धियोगम्।" (३) गजपर चढनेवालों को स्वयं गज ही, अपने पाद को सीढी बनाकर देता है; भगवान भी अपनी प्राप्ति के साधनतया अपने पादारविंद ही दिखाते हैं। (४) अपने पालक की अनुमति के विना अपने पास आनेवालों को हाथी दूर कर देता है; भगवान भी आचार्य की अनुमति के विना किसी को अपने पास आने न देते हैं। (५) गज, अपने पालक की आज्ञा के अनुसार ही स्नान पान भोजन शयन इत्यादि सभी काम करता है; भगवान भी (अर्चावतार में) अपने पूजारी की मरजी के अनुसार ही सब व्यापार करते हैं। "अर्चकपराधीनाखिलात्मस्थितिः" यह श्रीपराशरभट्टर स्वामीजी की श्रीरङ्गराजस्तव श्रीसूक्ति है। श्री भक्तिसार मुनी की प्रार्थना के अनुसार श्री कांचीपुरी में विराजमान यथोक्तकारि भगवान ने जो अद्भुतलीला की, वह प्रसिद्ध है।

अर्चावतार की मर्यादा भी छोडकर आप अपनी शेषशय्या से उठकर स्वामीजी के पीछे चलने लगे, और फिर आपसे प्रार्थित होकर वापस लौटकर यथापूर्व लेट गये। (६) अत्यादर से स्नान किये जाने पर लीला परवश हाथी रास्ते में से धूली उठाकर अपने पीठपर डाल देता है ; अत एव उसका स्नान गजस्नान नाम से प्रसिद्ध हो गया है ; भगवान भी संस्कृत द्राविड वेदरूपी महामहिम श्रीसूक्तियों से प्रकाशित होने पर भी हमारे सरीक अल्पज्ञ भक्तों की सूक्ति को, मलिन बनने का कारण होने पर भी स्वीकार करते हैं। यथा श्री पराशरभट्टर स्वामीजीने श्रीरंगराजस्तव में अनुगृहीत किया—त्वं संस्कृत द्राविड वेदसूक्तैः भान्तं मदुक्तैः मलिनीकरोति। श्रीरङ्गकम्रः, कलभं क एव स्नात्वाऽपि धूलीरसिकं निषेद्धा॥ इसका तात्पर्य यह है— संस्कृत व द्राविड वेद रूपी श्रीसूक्ति पाकर उससे अत्यंत उज्वल बने हुवे अपने को, ये श्रीरंगनाथ भगवान रूपी बालगज अब मेरी वाणी से मलिन बना रहे हैं ; स्नान करने के बाद धूली में खेलनेवाले गज को उस काम से कौन रोक सकेगा ? (७) गज पहाडों में वास करना पसंद करता है; भगवान भी श्री वेंकटाद्रि, हस्तिगिरि, यादवाद्रि, वनगिरि इत्यादि पहाडों पर विराजने चाहते हैं। (८) गज का एक ही हाथ (सूंड) होता है ; भगवान को भी दान करनेवाला एक ही हाथ होता है ; नतु किसी से कुछ लेनेवाला दूसरा भी एक हाथ। "दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात्", "न ह्यस्माभिः प्रतिग्राह्यं सखे देयं तु सर्वदा" इत्यादि इस विषय में प्रमाण हैं। इसका यह तात्पर्य है कि भगवान प्रत्युपकार में अपेक्षाशून्य, हमेशा दूसरों को उपकार करते रहनेवाले परमोदार हैं। महाबलि के पास भूमि मांगना भी, औदार्य की सीमाभूमि ही है। कारण कि उस बलि को भगवान ने स्वर्ग से भी सौगुन अधिक रसातल साम्राज्य दिया, और स्वयं उसका द्वारपालक बन गया। उससे प्रतिगृहीत त्रैलोक्य राज्य भी इंद्रको दिया गया। अतः इसमें भगवान का कोई स्वार्थ न था। (९) गज, अपने को दिये जानेवाले द्रव्य को अपने पालक के लिए दे देता है ; अर्चारूपी भगवान अपने भक्तों की ओर से जो कुछ भेंट पूजा आदि मिलें, उन सब को अपने पूजारी का वश कर देते हैं। (१०) अत्यंत बलवान होते हुवे भी गज अत्यल्प अंकुश से डरता है ; भगवान भी भक्तिक्रीत होकर भक्ति करनेवालों से मानों डरते होंगे, इस तरह से उनके पराधीन होते हैं। (११) हाथी ऐसा एक आश्चर्यमय जानवर है जिसको देखते देखते लोग कभी तृप्त न होते ; भगवान के भी दर्शन करनेवाले भक्तों के मन में कभी तृप्ति न होती है ; क्षणे क्षणे आप नये नये मालुम पडते है। अतएव श्री कूरेशस्वामीजी ने वरदराजस्तव में अनुगृहीत किया - "सदातनत्वेऽपि तदातनत्ववत्" इत्यादि। (१२) गजस्त्री के द्वारा ही लोग हाथी को पकडते हैं ; भगवान भी लक्ष्मीपुरुषकार से ही प्राप्य हैं। (१३) गज की बोली गजपालक ही जान सकता है ; भगवान के अभिप्राय को श्री कांचीपूर्ण स्वामीजी जैसे आपके अंतरंग भक्त ही जानते हैं। (१४) हाथी का हाथ (सूंड) बहुत लंबा होता है ; "बाहुच्छायामवष्टब्धो यस्य लोको महात्मनः" इत्याद्युक्त प्रकार से समस्तलोकों का आश्रय देनेवाले भगवान के बाहू भी बडे होते हैं। (१५) हाथी के खाना खाते जो अन्न चारों ओर गिर जाता है, उससे पिपीलिकादि सैकडों प्राणियों का पेट भर जाता है ; मंदिरों में जो अन्न भगवान को भोग लगाया जाता है, उससे यानी उस महाप्रसाद से

सैकडों भक्त लोग तृप्त हो जाते हैं। (१६) मर जाने पर भी हाथी की कीमत न घटती है, क्योंकि उसकी हड्डी कीमतवाली होती है; श्रीरामकृष्णादि अवतार समाप्त होने पर भी भगवान श्री रामायण भागवत आदि ग्रंथों द्वारा भक्तों के उपकारक रहते ही हैं। ऐसे अनेक प्रकारों से गज के सदृश होने से भगवान दिव्यसूरियों से तत्र तत्र गज ही पुकारे जाते हैं। तथाच मत्तगज कहने लायक भगवान से युक्त होने से आचार्य को मत्तगजै सहित बताना उचित हुआ।

एवं आपको मत्तगज विजेता कहना भी सर्वथा उचित है। कारण कि "बलवान् इन्द्रियग्रामः" इत्याद्युक्त प्रकार से अत्यंत बलिष्ठ, अत एव जीतने कठिन इंद्रिय रूपी मत्तगज के आप विजेता हैं।

एवं आचार्य को मत्तगजसदृश बताना भी ठीक है। इस विषय में एक इतिहास है। एक समय में भगवान भाष्यकार श्री रामानुज स्वामीजी श्रीवेंकटाद्रि में विराजमान थे। तब एक दिन, आपने शिष्यों की प्रार्थना से रहस्यत्रय का अर्थवर्णन करते सुंदर प्रवचन किया। उस मधुरोपन्यास के समाप्त होने के बाद, वहां उपस्थित, आपके प्रियशिष्य [तिरुमलै अनन्ताळ्वान् नामसे प्रसिद्ध] श्रीमदनन्ताचार्य स्वामीजी ने एक छोटी-सी, मगर अत्यद्भुत विनंती कर सबको आनंद सागर में डुबा दिया। आपने कहा—श्रीभूतयोगी के द्वितीयान्तादि प्रबंध में, "पेरुहुमदवेळम्" इत्यादि (७५-वी) गाथा से इस वेंकटाद्रिका ऐसा वर्णन किया गया है—श्री वेंकटाद्रि में मदजल बहानेवाला हाथी अपनी स्त्रीको सामने खडी रखकर उसको दो खंडवाले (यानी दो गांठवाले) मृदु बालबाँस तोडकर पास ही रहनेवाले मधु में डुबाकर खिलाता है। यह तो स्वभावोक्ति है कि हाथी को बालबाँस बहुत प्यार लगता है; और वह उसको तोडकर मधु से मिलाकर अपनी स्त्री को खिलाता है। तो भी इस गाथा का निगूढ अर्थ अभी हमारी समझ में आ गया। तथा हि—श्री रामानुज स्वामीजी ही यहां पर मत्तगजत्वेन उपवर्णित हैं। हमारे सरीक आपके प्रियशिष्य ही आपकी पत्नी हैं। द्वयमंत्र ही दो गांठवाला बांस है। उसके दोनों पार्श्व में अनुसंधीयमान श्रीमंत्र एवं चरमश्लोक मंत्र ही पार्श्वस्थ मधु है। भगवान के मुखारविंद से निकलने से इनको मधु कहना उचित हुआ। तथा च हाल में श्रीस्वामीजी ने द्वयमंत्र के मधुर अर्थ को, श्रीमंत्र तथा चरमश्लोक मंत्रों के सुमधुर अर्थ से मिलाकर हम सब को जो खिलाया, इसका वर्णन करना ही इस गाथा का परम उद्देश्य है। अर्थात् भूतयोगीने अपनी ज्ञानदृष्टि से पहले ही इस अर्थ को जान लिया, कि श्री रामानुज स्वामीजी वेंकटाद्रि पधारकर अपने शिष्यों को मंत्रार्थ का उपदेश देंगे। अतः आपने रूपांतर से इसकी सूचना देते प्रकृत गाथा गायी। यह था श्रीमदनन्ताचार्य स्वामीजी के उपन्यास का प्रकार। इसके अनुसार आचार्य को मत्तगज कहना भी उचित प्रतीत होता है।

आचार्य का दूसरा विशेषण यह दिया गया है कि अद्वितीय भुजबलवाला। भुजबल शब्द से संसार को पार करने आवश्यक बाहुबल ही सूचित किया जाता है। श्रीगुणरत्नकोश में श्रीपराशरभट्टर स्वामीजी से, "यद्वा न मे भुजबलं तव पादपद्मलाभे" इत्यादि में उपवर्णित भुजबल तो यही है, नतु मल्लयुद्ध करने आवश्यक शरीरबल। श्रुति भी कहती कि "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।" अतः यहां पर आचार्य,

स्वयं संसार सागर तरने, एवं शिष्यों को भी तराने पर्याप्त बलवान बताये जा रहे हैं। तथा च ऐसे आचार्य का प्रिय शिष्य संबोधित किया जाता है। (नप्पिन्नाय्)—नीलादेवी ! अमित परा क्रमवाले सात वृषभों का दमन कर श्रीकृष्णने नीलादेवी को अपनाया; एवं आचार्य भी बलवान काम क्रोधादि विरोधियों का निरसन कर शिष्य को अपनाते हैं। एवं, जैसे भवगान प्रणय से नीलादेवी के परतंत्र रहते हैं, इसी तरह से आचार्य भी प्रेम की वजह से शिष्य के परतंत्र रहते हैं।

(कन्दङ्कमलुम् कुळली) यानी सुगंधयुक्त केशवाली कहने से गर्वरहित, विनयनम्र आपके शिर की स्थिति बतायी जाती है। लोकव्यवहार में भी विनय को सिरकी सुगंध कहते हैं। अथवा, "काषाय-शोभिकमनीय शिखानिवेशम्" इत्याद्युक्त प्रकार से श्रीवैष्णवसन्यासियों की, स्वाभाविक सुगंधयुक्त शिखा का वर्णन किया जाता है। मतांतर के सन्यासी शिखा, यज्ञोपवीतों को भी छोड देते हैं। हमारे मत में तो दोनों रखे जाते हैं। (कडैतिरवाय्)—कपाट खोलो कहने का यह तात्पर्य है कि हमें आचार्य संनिधि पहुँचा दो।

प्रातःकाल होने के जो दो चिह्न बताये गये हैं, उनमें कुक्कुट शब्द से, आलस्यशून्य एवं सारग्राही सच्छिष्य बताये जाते हैं। तथा हि—उषःकाल में ही, जब कि लोग तमोमय निद्रामग्न रहते हैं, जागना, एवं कूडाकरकट से धान्य निकालना कुक्कुट का स्वभाव है। इससे आलस्याभाव एवं सारभूत अर्थों को ढूँढकर निकालने का सामर्थ्य सूचित किये जाते हैं। तथाच यह तात्पर्य हुआ कि ऐसे आलस्यशून्य एवं सारग्राही शिष्यलोग इधर उधर भटककर, सदुपदेश देने समर्थ आचार्य के अभाव से यहां आकर खडे हैं; उनको आचार्यसंनिधि पहुँचा दीजिए। कोकिलकूजित से भी सच्छिष्यों की कंठध्वनि सूचित की जाती है। तथाहि। (१) गोदादेवी एवं श्रीशठकोप स्वामीजी पुंनागवृक्ष में निवास करनेवाले कोकिल का वर्णन करते हैं। पुंनागवृक्ष शब्द सुनते ही संप्रदाय के ज्ञाता, श्रीरङ्गक्षेत्र में चंद्र पुष्करणी तट पर विराजमान पुंनाग वृक्ष की याद करते हैं, जिसकी छायामें एकत्रित होकर हमारे पूर्वाचार्य नानाप्रकारकी शास्त्रार्थचर्चा करते थे। तथा च इस तरह से पुंनागवृक्षच्छाया में बैठकर अनेक आचार्यों से अनेक अर्थों को सुनकर, बहुश्रुत विरुदधारी ज्ञानी सच्छिष्य यहां पर सूचित किये जाते हैं। (२) कोकिल का प्रसिद्ध नाम है, परभृत। इसका अर्थ है दूसरे से पालित; एवं सच्छिष्य भी आचार्य से पालित होता है। (३) श्रीपरकालस्वामीजी कहते हैं कि कोकिल, पहले आमपल्लव खाकर अपने मुख को कडुवा बनाकर, बाद में पनस फल खाकर उसको मीठा बना देता है। इस तरह से शिष्यलोग भी पहले काव्य नाटकादियों का, एवं सामान्य शास्त्रों का अभ्यासकर कषायितमुखवाले होकर, बाद में वेदांतशास्त्र का अभ्यासकर भगवान का ज्ञान प्राप्तकर मधुरमुख बनते हैं। (४) कहावत है कि "वसन्तकाले संप्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः।" अर्थात् रूप से कौएके समान रहने पर भी वसंतकाल में मधुर स्वर निकालते हुए कोकिल सबको प्रसन्न करता है, और अपनी श्रेष्ठता दिखाता है; इसी तरह से विनय विभूषित होने के कारण सामान्यतः अपने पांडित्य का प्रकाशन नहीं करने पर भी योग्य अवसर पाने पर अतिमधुर अपनी वाणी से सब को प्रसन्न कर अपने पांडित्य का

भी परिचय देते हैं सच्छिष्य लोग। (५) "पिकः कूजति पञ्चमम्" इत्याद्युक्त प्रकार से पिक की वाणी पंचमस्वर कहलाती है; एवं महात्माओं की वाणी भी इतनी गंभीर होती है कि उसको सुननेवाले कहते हैं कि यह क्या पंचमवेद है ? कोकिलों को माधवी लता में बैठ रहने की बात से उक्त सच्छिष्यों का विष्णुपत्नी होने से माधवी पुकारी जानेवाली श्रीमहालक्ष्मीजी के आश्रय में रहना सूचित किया जाता है। तथा च यह अर्थ सूचित किया गया कि, ऐसे महामहिम सच्छिष्य यहां पर उपस्थित होकर शास्त्रार्थ चर्चा कर रहे हैं।

(पन्दार् विरलि)—हे कंदुकहस्ते। "हरे विहरसि क्रीडाकन्दुकैरिव जन्तुभिः" इत्यादि वाक्यों में संसार को निभाना ही कंदुकक्रीडा कहलाता है। इस क्रीडा का खिलाड़ी वास्तव में भगवान हैं। तो भी आपकी विशेष आज्ञाबल से आचार्य भी यह खेल खेल सकते हैं। करवलयों की आवाज निकालने का यह तात्पर्य है कि समस्त शास्त्र आचार्य के करगत रहते हैं, और प्रवचन के समय में उनके अर्थों की मधुर ध्वनि सुनी जाती है; जो शिष्यों को बहुत प्रसन्नचित्त बनाती है। करकमल से कपाट खोलने की प्रार्थना का यह अर्थ है कि शिष्यों का अज्ञान मिटा देनेवाली एवं उनको आनंदित करनेवाली उपदेश मुद्रिका दिखाते हुवे उपदेश देने की प्रार्थना करना। "पश्येम लक्ष्मणमुनेः उपदेशमुद्राम्", "शठारि हस्तमुद्रिका हठाद्धुनोतु मे तमः" इत्यादि ॥ .... (१८)

(गाथा) कुत्तुविळक्केरिय कोट्टुक्काल् कट्टिल्मेल्* मेत्तेन्नपञ्चशयनत्तिन्मेलेरि*
कोत्तलर्पूङ्कुळल् नप्पिन्नै कोङ्गैमेल् *वैत्तुकिडन्द मलर्मार्पा वाय् तिरवाय्*
मैत्तडङ्कण्णिनाय् नीयुन्मणाळनै* एत्तनैपोदुम् तुयिलेळ वोट्टाय् काण्*
एत्तनैयेलुम् पिरिवात्तकिलायाल्* तत्तुवमन्नु तहवेलोरेम्बावाय् ॥ १९ ॥

कुत्तु विळक्कु एरिय	(चारों ओर) पंचमुखी दीप स्तंभ जलते रहें, तब
कोट्टु काल् कट्टिल् मेल्	गजदंत के पैया से युक्त खाट पर
मेत्तेन्न पञ्च शयन-त्तिन् मेल् एरि	अति मृदुल एवं (सौंदर्य, शैत्य, मार्दव, सुगंध व परिशुद्धि नामक) पांच गुणों से युक्त शयनपर चढकर
कोत्तु अलर् पूकुळल्	गुच्छगुच्छ होकर खिलनेवाले पुष्प धारक केशवाली
नप्पिन्नै कोङ्गै मेल्	नीलादेवी के स्तनपर
वैत्तु किडन्द मलर् मार्पा	(अपना वक्ष) रखकर शयन करनेवाले हे विकसित हृदय !
वाय् तिरवाय्	मुख खोलकर हमसे एक बात कीजिए;
मै तड कण्णिनाय्	हे अंजनालंकृत विशालनयने (नीलादेवी) !
नी उन् मणाळनै	तुम अपने पति श्री कृष्ण को
एत्तने पोदुम्	एक क्षण भर के लिए भी
तुयिलेळ ओट्टाय् काण्	शयन से उठने न देती हो;

एत्तने येलुम्	- अत्यल्पकाल का भी	तहवु अन्नु	ऐसे रहना तुम्हारे लिए उचित नहीं है;
पिरिवु आत्तकिल्लाय्	(उनसे) विश्लेष का सहन न कर सकती हो;		
आल्	- अहो ! अहो !	तत्तुवम्	- यह बात तथ्य (सत्य) है।

पूर्वपद्य में अपनी सखियों से जगा जाने पर उनपर अनुग्रह दिखाती हुई नीलादेवी, कवाट खोलने के लिए शयन से उठने लगीं। परंतु उतने में श्री कृष्ण ने सोचा कि, "अहो, मेरे भक्तों पर स्वयं अनुग्रह दिखाती हुई, यह नीला यह क्या कर रही है? इससे मेरी बदनामी ही होगी। अतः इस प्रयत्न से इसको निवृत्त कराना चाहिए।" यों सोचकर आपने देवी को उठने से रोककर पलंग पर सुला दिया। तो भी करुणामयी नीलादेवी ने अपना प्रयत्न न छोडा। तब श्रीकृष्ण भी उनको सर्वथा उठने का अवकाश न हो इस तरह से उनकी छातीपर सो गये, और इस स्पर्श से परवशचित्त होकर ऐसे ही चुप सो गये। बाहर खडी हुई गोपियों ने खिडकी से यह विलक्षण दृश्य देखकर, निर्वेद के साथ श्रीकृष्ण से एवं नीलादेवी से जो प्रार्थना की उसका वर्णन करती है यह गाथा। इस दिव्यप्रबंध के मुखपद्य का प्रथम पाद, "नीलातुङ्गस्तनगिरितटीसुप्तमुद्बोध्य कृष्णम्" इस प्रकृत गाथा का ही तात्पर्य बताता है। "हे नीलादेवीं के स्तन पर शयन करनेवाले भगवन् !" यह संबोधन ही भगवान को बहुत प्यार लगेगा। तो भी इसमें गोपियों की ईर्ष्या भी प्रकाशित होती है। तथा हि—श्रीकृष्ण में गाढ अनुराग रखने पर भी हमें आपका अनुभव मिलता नहीं। अगर कदाचित् मिलता भी हो, तो कहीं अंधकार को ढूँढना पडता है; वृक्षों से परिवृत किसी वन के बीच में गाढ अंधकार में कांटे कंकडों से व्याप्त खुली जमीन पर सोना पडता है। श्री कृष्ण के वचन पर विश्वास रखकर, उनकी प्रतीक्षा करते कभी कभी रातभर यमुनातट पर आशा, भय, उद्वेग आदियों के चक्कर में पडकर, समय बिताते, अंत में धूर्त उनके अनागमन से दुःखी होना पडता है। यह है हमारी स्थिति। परंतु हजारों जन्मों में उपार्जित पुण्य के प्रताप से नीलादेवी को कैसी भाग्यपरंपरा मिली है ! अनेक दीपों के प्रकाश में श्रीकृष्ण के मुखकमल का दर्शन करती हुई, पलंग पर श्रेष्ठ शय्या बिछाकर, किसी प्रकार के भय, संकोच आदि के विना, रातभर आपका अनुभव करती हैं। देवदेवदिव्यमहिषी होने के कारण आपको यह भाग्य मिलना उचित है; तो भी दिव्यदंपतियों की पैर दबाना इत्यादि सेवा करने का भाग्य हमको मिलना चाहिए। यह भी हमको न मिलेगा क्या? ऐसा निर्वेद भी यहां पर सूचित किया जाता है।

कुवलयापीड इत्यादि दुष्ट गजों को स्वयं श्रीकृष्ण मारकर, उनके दांत निकाल कर उनसे पलंग बनाकर अपनी प्रिया वीरपत्नी नीला देवी को दे देते हैं, जिस पर शयन करना ही आपको बहुत प्रिय होता है। ऐसे पलंग पर सुलक्षणपूर्ण शय्या फैलायी गयी है; चारों ओर मंगलमय एवं प्रकाशमान दीप जल रहे हैं। ऐसी शय्यापर पूर्वोक्त प्रकार से दिव्यदंपती शयन कर रहे हैं। पंचशयन शब्द का अर्थ है पांच गुणों से युक्त शय्या। शय्या के अपेक्षित पांच गुण ये हैं--देखनेको सुंदर होना, सुशीतल रहना, कोमल

रहना, सुगंध युक्त होना और शुभ्र होना। इन में से विशेषतः अपेक्षित गुण तो कोमल रहना ही है। इस अर्थ की सूचना देने के लिए अलग भी एक विशेषण दिया गया है, (मेत्तेन्न) यानी मृदु। अथवा, पल्लव, पुष्प, कपास, मृदुतर ऊन, व रेशम, इन पांच वस्तुओं से बनाया हुआ शयन पंचशयन कहलाता है। अब इसका अलग (मृदु) विशेषण देना आवश्यक होता है।

(कोत्तलर् पूङ्गुळल्) इत्यादि, श्रीविष्णु पुराण में उपवर्णित रासक्रीडा के एक कथाभाग का स्मारक है। रासक्रीडा प्रकरण में, जब गोपियों का आनंद सीमातीत बहने लगा, तब उससे उनको बचाने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण एकदम अंतर्हित हो गये। इससे आनंद रस ही दुःख के रूप में बदल गया। तब गोपियां आप को ढूंढने लगीं। जाते जाते एक जगह ऐसा चिह्न दीख पडा कि वहां पर श्रीकृष्ण, दूसरी एक गोपी से प्यार करते हुवे, उसको फूलों से सजाते विराजमान थे। तब गोपियां बोल उठीं— "अत्रोपविश्य सा तेन काऽपि पुष्पैरलंकृता। अन्यजन्मनि सर्वात्मा विष्णुरभ्यर्चितो यया॥" (वि, पु. ५-१३-३५) इसका यह तात्पर्य है—इस जगह पर बैठकर उन्होने असीम भाग्यवती किसी एक गोपी को पुष्पों से अलंकृत किया है, जिसने पूर्वजन्म में पुष्पों से भगवान की ठीक अर्चना की। अर्थात् पूर्वजन्मकृत विशेष भगवत्पूजा फलतया उस महाभाग्यवती को भगवान की असीम कृपा मिली, जिस से वह खुद आपके श्रीहस्त से ही पुष्पों से अलंकृत हुई। हमने तो जरूर ऐसा अर्चन नहीं किया; अत एव हम भगवान से वंचित हो गयीं। हाल में नीलादेवी का ऐसा सुंदर वर्णन करनेवाली गोपियों का यह भाव होगा कि उस प्रकरण में उपवर्णित भाग्यवती गोपी नीलादेवी ही हैं।

(नप्पिन्नै कोङ्गैमेल् वैत्तुक्किडन्द मलर्मार्पा) नीलादेवी के स्तनों से संश्लेष से विकसित हृदय, कहने का यह तात्पर्य है कि भगवान का वक्ष देवी के संश्लेष से फूल गया है। यह सुनते ही कोई कोई अरसिक लोग बोल उठते हैं कि "अविकाराय शुद्धाय····सदैकरूपरूपाय" इत्यादि प्रमाणों से निर्विकार बताये जानेवाले भगवान को देवीसंश्लेष से यह विकार कैसे होगा। परंतु भगवान में कर्मकृत विकारों का अभाव ही उन प्रमाणों से कहा जाता है। भक्तसंश्लेषप्रयुक्त विकास तो तत्र तत्र ज्ञानियों से उपवर्णित ही है। श्रीपरांकुश स्वामीजी तिरुविरुत्त नामक दिव्यप्रबंध में कहते हैं कि यशोदाजी से बंधित होने पर श्रीकृष्ण का हृदय फूल गया। यहां पर नीलास्तनस्पर्श से उसका विकास बताया गया है। भक्तजन संश्लेष से भगवान के दिव्यमंगलविग्रह में होनेवाला विकास, आपके प्रणयित्व, भक्तवात्सल्य आदि गुणों का सूचक हो कर मंगलमय होता है। अतः इसका इनकार करना अशक्य होगा।

अम्बरमे तण्णीरे (१७) इत्यादि पद्य में गोपियों ने श्रीकृष्ण से यों प्रार्थना की थी कि "हे देवाधिदेव! आप उठिए।" इस पद्य की प्रार्थना इतनी ही है कि, "हे नीलास्तनोपरि निक्षिप्तवक्ष भगवन्! आप प्रतिवचन दीजिए"। इसका यह तात्पर्य है—हे प्रभो! आप अपने वक्ष को बेशक नीलादेवी को दीजिए; उसको हम मांगती नहीं। परंतु हमें दुःखनाशक अपनी अभय वाणी मात्र दीजिए; उससे ही हम कृतार्थ हो जाएँगी। अर्थात् दिव्यदंपतियों की मिलाप में बाधा डालना गोपियों का अभिमत नहीं है। अभयवचन मात्र पर्याप्त है।

गोपियों का यह प्रार्थनावचन सुनने पर भगवान के मन में बडी दया उत्पन्न हो गयी। आपने झट उनको अभयवचन देने की चेष्टा की। परंतु उतने में नीलादेवी ने संज्ञा से आपको मुख खोलने से रोक दिया। उस समय में दोनों के बीच में यह एक अद्भुत संवाद ही चला।

नीलादेवी बोलीं—ये गोपियां मेरी सखियां हैं; अतः उनसे वार्तालाप करना मेरा ही काम है। आप चुप रहिए।

भगवान—ये मेरी भी भक्त एवं सखियाँ हैं; और मेरेसे मिलने के लिए ही आयी हैं। अतः इनका स्वागत करना मेरा कर्तव्य है।

नीलादेवी—यह तो ठीक है। परंतु जरा बताइए तो सही कि अपने भक्तों पर अब इतनी दया दिखानेवाले आपने पहले ही (१७—गाथा में) जब इन्होने आपको जगा दिया, तब क्यों इनको प्रत्युत्तर तक न दिया। अब, जब कि ये मेरी शरण में आयी हैं, मैं ही उनका स्वागत करूँगीं; आपको यह अवकाश न मिलेगा।

भगवान—यह देखो देवी! तुम्हारा काम तो पुरुषकार (यानी सिफारिश करना) मात्र है; फल देने का काम मेरा ही है। अतः अब मैं ही इनसे वार्तालाप करूंगा।

नीलादेवी—प्रभो! मोक्ष देने के प्रस्ताव में आपका वचन बिलकुल सत्य है कि आप फल देनेवाले हैं, और पुरुषकार करना मेरा कृत्य है। परंतु अब तो इन गोपियों को मोक्ष देनेका प्रसंग नहीं है। अतः अब मैं जरूर ही इनका स्वागत, सत्कार आदि करूंगी। मेरी यह बदनामी न होनी दीजिए कि अपने घरपर आकर सविनय प्रार्थना करनेवाली गोपियों से नीलाने वार्ता तक न की।

इत्यादि प्रकारों से यह संवाद (अथवा विवाद) चलता रह गया। फलतः गोपियां उपेक्षित रह गयीं। फिर उन्होने खिडकी द्वारा अंदर देखकर वस्तुस्थिति को समझ गया कि अब नीलादेवी भगवान को उठने से एवं बात करने से रोक रही हैं। अतः फिर उनसे ही विनती करती हैं—(मैचडङ्कण्णिनाय्) इत्यादि से। प्रार्थना का यह सार है—"वैयत्तु वाळ्वीर्काळ्" इत्यादि दूसरी गाथा में, व्रत करने उद्युक्त हम गोपियों ने संकल्प किया कि व्रत समाप्त होने तक हम आंख में काजल न लगावेंगी, केश को फूल से न सजाएंगी इत्यादि। इस संकल्प के विरुद्ध, तुम तो पुष्पका धारण करती हो, और काजल भी लगाती हो। यह तुम्हारा पहला दोष है। इसके उपरांत हमारे प्रति अनुग्रह दिखाने उद्युक्त भगवान को उस काम से रोक रही हो। यह दूसरा दोष हुआ। भगवान तो दंडधर होने का कारण कदाचित् चेतन का अपराध देखकर उसकी उपेक्षा कर सकते हैं, अथवा दंड भी दे सकते हैं। परंतु नित्यमज्ञातनिग्रहा, कारुण्यरूपिणी, अनुग्रहमयी, अशरण्यशरण्या इत्यादि बिरुदविभूषित तुम्हें भी अब हमारे ऊपर ऐसी निर्दयता कहां से आगयी? यह तो तुम्हारे लिए सर्वथा अनुचित है। शायद एक क्षणभर के लिए भी भगवान के विरह का सहन करने में अशक्त होकर तुम आपको उठने से रोकती होगी। परंतु यह भी उचित नहीं है।

क्यों कि तुम्हारे भगवान से नित्यसंश्लिष्ट रहने का कारण (अथवा प्रयोजन) भक्तों को उनसे मिला देना ही है। और तुम्हारा स्वभाव भी यह है कि भक्तों की भलाई के लिए तुम भगवान से विरहित भी होती हो; जैसा कि सीताजी ने किया। अतः अबका तुम्हारा काम सत्य ही अपने उचित नहीं है॥

व्यंग्यार्थ का विवरण॥ इस गाथा के पूर्वार्ध से आचार्य का, एवं उत्तरार्ध से आपके प्रधान शिष्य का उत्थापन किया जाता है। श्रीरामानुज स्वामीजी के हजारों शिष्य थे, जिन पर आप कृपा करते थे। परंतु उनमें से विशेष ज्ञान, भक्ति, विरक्ति आदि गुणों से विभूषित श्री कूरेश स्वामी पर आप विशेष अनुग्रह दिखाते रहे। एवं दूसरे आचार्यलोग भी अपने शिष्यों के बीच में किसी एक विशेष व्यक्ति पर विशेष कृपा करते हैं। ऐसे आचार्यशिष्यों का उत्थापन करना 'इस पद्य' का काम है। स्तनशब्द का व्यंग्यार्थ भोग साधन भक्ति है। अतः यहां पर यों कहा जाता है कि आचार्य अपने शिष्य की अत्यद्भुत भक्ति देखकर प्रसन्नहृदय होते हैं कि वाह! यह कैसी भक्ति है! विषय प्रकाशक ज्ञानका संकेत है दीप। पंचमुखी दीप कहने से, श्रुति, स्मृति, इतिहासपुराण, श्रीपांचरात्रशास्त्र एवं सदाचार्यदिव्यसूक्तिरूप पांच स्थलों से प्राप्त विशेष ज्ञान कहा जाता है। तथा च यह तात्पर्य हुआ कि इस शिष्यने उक्त पांचों प्रकारों से पुष्कल चमकने वाला, यानी विलकुल स्पष्ट ज्ञान प्राप्त किया है। गजदंतमयी खट्वापर सोनेका यह अर्थ है— थकावट से विरहित होकर शांति पाने के लिए लोग खाट पर सोते हैं। ज्ञानि के लिए तो इस तरह से दुःख मिटाकर आनंद देनेवाला शास्त्र है। अतः यहां पर यों कहा जाता है कि प्रकृत शिष्य हमेशा शास्त्राध्ययन करने में निरत होने से समस्त दुःखों को पारकर ब्रह्मानंद समान आनंद को लूट रहा है। खाट के चार पग होते हैं। शास्त्र में भी चार संख्यावाले अनेक अर्थ उपवर्णित होते हैं, यथा आचार्यहृदय में कहा गया है—"चतुर्विध देह वर्णाश्रमाधिकारफलमोक्षसाधन गति युग धर्मव्यूहरूप क्रिया" इत्यादि। इसका अर्थ विवरण करेंगे—संसारी चेतन के शरीर चार प्रकार के होते हैं—देव, मनुष्य, तिर्यक व स्थावर; ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र, ये चार वर्ण हैं; ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, व संन्यास ये चार आश्रम हैं; "आर्तो जिज्ञासु रर्थार्थी ज्ञानी" इस गीतोक्त अधिकार चार हैं; फल, यानी पुरुषार्थ भी चार हैं—धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष; मोक्ष भी चार प्रकारका कहा जाता है—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य व सायुज्य; साधन यानी मोक्षोपाय भी कर्म ज्ञान भक्ति प्रपत्ति नामक चार है; शरीर छोडने के बाद अपने कर्माद्यनुसार चेतन को मिलनेवाली गति भी चार प्रकारकी होती है—गर्भगति, याम्यगति, धूमादिगति और अर्चिरादि गति; कृत, त्रेता, द्वापर व कलि ये चार युग है; भगवान का ध्यान, यजन, अर्चन, कीर्तन नामक चार युगधर्म हैं; वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न अनिरुद्ध नामक भगवान के चार व्यूह हैं; श्वेत, पीत, श्याम, नील रूप आपके चार वर्ण हैं; सृष्टि, स्थिति, संहार, व मोक्षप्रदान ये चार आपके काम हैं; आमोद प्रमोद संमोद वैकुंठ नामक चार व्यूह स्थान हैं; इस तरह से चार चार के जत्थे में बताये जाने-वाले अर्थ शास्त्रों में अनेक होते हैं। ये ही शास्त्ररूपी खट्वा के चार पैये हैं।

मृदुतर पंचशयन का अर्थ, शास्त्रों में सूक्ष्मतया समझ लेने लायक अर्थपंचक है । अर्थात् शास्त्रों में नाना प्रकार के अर्थ उपदिष्ट हैं। परंतु उन सबको जानना अशक्य एवं अनुपयुक्त है। खास जानने लायक अर्थ तो ये पांच ही हैं—(१) परब्रह्मस्वरूप, (२) जीवात्मस्वरूप, (३) ब्रह्मप्रापिका उपाय, (४) ब्रह्मप्राप्ति का फल, और (५) उस ब्रह्मप्राप्ति में बाधा डालनेवाला विघ्न। तथा च यों कहा जाता है कि प्रकृत आचार्य, व शिष्य, ये दोनां इस अर्थपंचक के ठीक ज्ञाता हैं। पुष्पालंकृतकेश का अर्थ है शिरोभूषणभूत विनयसे युक्त होना। तथा च, आचार्य से ऐसी प्रार्थना की जाती है कि, "हे गुरो! ऐसे प्रभाव युक्त एक ही शिष्यपर विशेष कृपा दिखानेवाले आप हमें भी अपनी उपदेशामृतवाणी का प्रदान कीजिए।

अंजनाञ्चित विशालनयन का अर्थ है भक्तिविभूषित, व अनेक शास्त्रार्थों को जानने समर्थ तीक्ष्ण मन। नयन तो देखने का साधन है। अतः शास्त्र जानने का साधन मन ही नयन शब्द का अर्थ होता है। नेत्र में अंजन लगाने के प्रयोजन अनेक होते हैं –सामान्यतः नेत्र का अलंकार के लिए, गुप्त निधि आदि देखने पर्याप्त सामर्थ्य देने के लिए, एवं नेत्रगत पीत आदि दोष मिटाने के लिए। मनोरूपी नेत्रका भी अलंकार रूप, दोषनाशक एवं ब्रह्मसाक्षात्कार करने अपेक्षित सामर्थ्य देनेका साधन भक्ति है। अतः यह भक्ति ही यहां पर अंजन कही गयी है । "मनसि विलसतीक्ष्णा भक्तिसिद्धाञ्जनेन," "त्वद्भक्तिभावित विकल्मषशेमुषीकाः" इत्यादि आचार्य श्रीसूक्ति इस विषय में प्रमाण हैं। इस भक्ति के विना कोई भी, वह चाहे जैसा विद्वान क्यों न हो, भगवत्तत्व को ठीक नही जान सकता हैं; शास्त्र भी उसका ठीक अर्थ बोधक न होगा। अत एव संजयने कहा कि "भक्त्या शास्त्राद्वेद्मि जनार्दनम्।" अतः शिष्य को भक्तियुक्त होना आवश्यक है। तथा च ऐसे माहात्म्यवान गुरुभाई से यों विनती की जाती है कि, "हे महात्मन्! हमारे गुरुजी को आप ही सदा अपने अभिमुख बनाकर, अनुभव कर रहे हैं; यह तो बडा ही अनुचित हैं। हम भी गुरुजी की कृपा के प्रतीक्षी हैं; अतः आप उनकी कृपा को हमारे ऊपर भी बहा दीजिए॥ (१९)

(गाथा) मुप्पत्तु मूवरमरर्क्कु मुन् शेन्नु* कप्पन्तविर्क्कुम् कलिये तुयिलेळाय्*
शेप्पमुडैयाय् तिरलुडैयाय्* शेत्तार्क्कु वेप्पम् कोडुक्कुम् विमला तुयिलेळाय्*
शेप्पेन्न मेन्मुलै चेव्वाय् शिरुमरुङ्गुल्* नप्पिन्नै नङ्गाय् तिरुवे तुयिलेळाय्*
उक्कमुन्तट्टोलियुम् तन्दुन्मणाळनै* इप्पोदेयेम्मै नीराट्टेलोरेम्बावाय् ॥ २० ॥

मुप्पत्तुमूवर् अमरर्कु - तेतीस देवताओं के सामने
मुन् शेन्नु - (दुःख आने से पहले) ही उपस्थित होकर
कप्पम् तविर्क्कुम् - कंप (यानी उनका दुःख) मिटानेवाले
कलिये - हे सामर्थ्य शालिन्!
तुयिल् एळाय् - शयन छोडकर उठिए;
शेप्पम् उडैयाय् - हे (आश्रितों का रक्षण करने में) आर्जव गुणवाले!
तिरल् उडैयाय् - हे (शत्रुओं का नाश करने पर्याप्त) बलशालिन्!

शेत्तार्क्कु वेप्पम् कोडुक्कुम्	हे शत्रुओं को ज्वर (यानी भय) देनेवाले
विमला	- परिशुद्धस्वभाव !
तुयिल् एळाय्	- शयन छोडकर उठिए;
शेप्पु अन्न	- हे सुवर्णकलश के समान
मेन् मुलै	(और विरह का सहन करने में असमर्थ स्तन,
शेम् वाय्	- लाल मुख (यानी अधर)
शिरु मरुङ्गुल्	- (और) सूक्ष्म मध्यभागवाली !
नप्पिन्नै नङ्गाय्	- हे नीळा देवी !
तिरुवे	- हे महालक्ष्मी !
तुयिल् एळाय्	- शयन से उठो;
उक्कमुम् तट्टोळियुम्	(उठने के बाद, व्रतोपकरण) पंखा और दर्पण
उन् मणाळनै	और अपने वल्लभ श्रीकृष्ण (इन सबको)
तन्दु	- (हमें) देकर
एम्मै	- (विरह दुःख से संतप्त) हमको
इप्पोदे नीराट्टु एलोरेम्पावाय्	इसी क्षण में स्नान करा दो ॥

पूर्वगाथा में प्रदर्शित दिव्यदंपतियों की परस्पर स्पर्धा इतने में भी शांत न हुई ; फलतः दोनों चुप रह गये। गोपियों की आर्ति तो क्षणे क्षणे बढ रही है। अतः इस गाथा में भी वे दिव्यदंपतियों को सुमधुर स्तुतिपूर्वक जगाती हैं। पूर्वगाथा में भगवान के प्रणयित्व अथवा श्रृंगारलीला रसिकत्व गुण का वर्णन किया गया। इस पद्य में आपके शौर्यवीर्यादियों का वर्णन किया जा रहा है।

(मुप्पत्तुमूवर्) इत्यादि। आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य और दो अश्विनी देव ; सब मिलकर तेत्तीस देवता कहलाते हैं। देवताओं में ये मुख्य गिने जाते हैं। ये देवतालोग यद्यपि विशेषपुण्य के प्रताप से श्रेष्ठ देवतापद को प्राप्त कर मानवों से यज्ञादि से पूजित हो कर उनके दुःखों को दूर करते हैं और उनसे अपेक्षित सुख देते हैं। परंतु कभी कभी इन पर भी ऐसे दुःख आ पडते हैं कि उनको पार करने में अशक्त हो कर ये बहुत परेशान हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में खुद भगवान ही इन पर कृपा करते हुवे इनका दुःख मिटा देते हैं। यथा श्रीयामुनाचार्य स्वामीजी ने अनुगृहीत किया—"वेदापहार गुरुपातक दैत्यपीडाद्यापद्विमोचन महिष्ठफलप्रदानैः, कोऽन्यः प्रजापशुपती परिपाति····॥" वेदापहरण दुःख से चतुर्मुख को, एवं ब्रह्महत्या, भसासुर पीडारूप संकट से शिवजी को मुक्त करानेवाले भगवान ही ठहरे। एवं अन्यदेवों को भी बलि, नमुचि, हिरण्याक्ष, रावण, नरकासुर इत्यादि असुर राक्षसों की ओर से उत्पन्न भय से बचानेवाले खुद भगवान् ही हैं। अतः यहां पर भगवान का आपदुद्धारकत्व एवं तदनुगुण विक्रम कीर्तित होते हैं।

(मुन् शेन्नु) आगे बढ कर। इसका अर्थ दो प्रकार से होता है। विपत्ति आने से पहले ही उनके वहां जाकर उस आपत्ति से उनको भगवान बचाते हैं। अर्थात् लोक संरक्षण दीक्षित होने के कारण, भगवान हमेशा जागरूक होकर, अपने भक्तों को तदा तदा प्राप्त होनेवाली आपत्तियों को पहले से ही निवृत्त कर देते हैं। यद्यपि द्रौपदी वस्त्रापहरण, गजेंद्रमोक्षण, प्रह्लाद परित्राण इत्यादि प्रसंगों में ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान ने दुःख आने के बाद ही भक्तों की रक्षा की। तथापि समझना चाहिए कि आपने

उनको दूसरी ऐसी सेकडों आपदों से बचाया है। इस चेतन के पाप इतने प्रबल होते हैं कि इनके प्रभाव से इसको क्षणे क्षणे अनेक आपत्तियों में फंस जाना पडता है। आनेके पहिले ही ये भगवान से निवारित हो जाती हैं; अतः हमें इनके आगमन की एवं निवृत्त होने की सूचना तक नहीं मिलती हैं। फलतः हम नहीं जान सकते हैं कि भगवान की ओर से हमें कितनी रक्षा मिली है। अस्तु। (मुन् शेन्नु) का दूसरा अर्थ यह होता है कि भक्तरक्षण प्रसंग में अगर कभी शत्रुओं से लडने की जरूर हो तब भगवान भक्तों के आगे स्वयं रणक्षेत्र में खडे हो कर शत्रु के अस्त्रशस्त्रों को अपने शरीर से रोक कर भक्तों की सुरक्षा कर देते हैं। जैसे श्रीकृष्ण ने अर्जुन के सारथि बनकर उसके आगे बैठकर उसको बचाया। एक दिन भगदत्त नामक एक वीरने अर्जुन पर एक महास्त्र छोड दिया। तब श्रीकृष्ण ने अपनी छाती से उसका धारण कर अर्जुन को बचा दिया। अगर वह अस्त्र अर्जुन को लगता, तो जरूर उसको मार डालता। एवं रामरावण युद्ध प्रसंग में भी एक समय में रावण ने अपने भाई विभीषणजी पर छोडने के लिए एक बडा शक्त्यायुध उठाया, जिससे जरूर उनकी मृत्यु हो जाती थी। उतने में, इस तत्व को जानकर लक्ष्मणजी विभीषण के आगे जाकर खडे हो गये। फलतः वह शक्ति आपकी छाती में लग गयी। आप मूर्छित हो गये; परंतु विभीषणजी बच गये। यह है भगवान के आश्रितसंरक्षण करने का प्रकार।

देवताओं की विपद को दूर करनेवाले कहनेवाली गोपियों के नाना प्रकार के अभिप्राय होते हैं -- (१) हे कृष्ण! क्या आपका यह अभिप्राय है कि, तेतीस देवताओं के दुःख को ही मिटा दूंगा, नतु पांच लाख गोपियों के? (२) अथवा क्या ऐसा व्रत होगा कि, पुरुषों का दुःख ही मिटा दूंगा, न तु औरतों का? (३) अथवा, क्या ऐसी भावना होगी कि वीरों का दुःख दूर करूंगा, नतु अबलाओं का? (४) अथवा, क्या ऐसा संकल्प होगा कि "सोऽहं" कहनेवाले, अहंकार भरितों की ही रक्षा करूंगा, न तु "दासोऽहं" कहते हुवे विनीत रहनेवालों की? (५) अथवा क्या ऐसी इच्छी होगी कि ऐश्वर्यादि नश्वर पुरुषार्थ मांगनेवालों का ही उपकार करूंगा, नतु कैंकर्यरूप परमपुरुषार्थ मांगनेवालों का? (६) अथवा, क्या ऐसा विचार होगा कि, दुःख आने पर बडे विनय का अभिनय करते पाद में पडकर, बाद में "ईश्वरोऽहं" कहते हुवे वगर संकोच अपना तिरस्कार करनेवाले कृतघ्नों का ही काम करूंगा, नतु सर्वदा अपनी पाद सेवा करने में निरत कृतज्ञों का? (७) अथवा क्या ऐसा नियम होगा कि अपने दिव्य मंगल विग्रह को नानाविध परिश्रम देनेवालों की प्रार्थना को ही मानूंगा, नतु सीमातीत प्रेमके परवश होकर मंगला-शासन करनेवालों का? (८) अथवा ऐसी एक विचित्र मरजी होगी कि नश्वर शरीर को दुःख देनेवाली आपत्तियों से बचने चाहनेवालों की ही रक्षा करूंगा, नतु शाश्वत जीवात्मा पर घेरनेवाली आपत्तियों से उद्धार पाने इच्छुक भक्तों की? ऐसे प्रश्नों का यह परमतात्पर्य है कि गोपियों भगवान से यों पूछ रही हैं कि, क्षुद्रपुरुषार्थकामुक, राजस तामस गुण भरित, स्वार्थलोलुप, अहंकारी देवताओं की भी रक्षा करनेवाले हे भगवन! आप क्यों, सब प्रकारों से उनसे विपरीत, अर्थात् आपके नित्य कैंकर्य मांगनेवाली, सत्वगुण संपन्न, आपकी भलाई चाहनेवाली, अनन्यगति हमारी उपेक्षा कर रहे हैं?

आगे भगवान के और भी कतिपय गुणों का वर्णन किया जाता है। उनमें (शेप्पम्) आर्जवगुण को कहते हैं। आर्जव शब्द का अर्थ है मन तन वाणी में एकरूप रहना, अर्थात् कपट न करना। पंचवटी में शूर्पणखा से पूछे जानेपर श्री रामचंन्द्रजी ने कपटबुद्धिवाली उस राक्षसी को अपनी सारी कथा सुनायी। आपके इस गुणसे चकित होकर वाल्मीकी जी कहते हैं कि, "ऋजुबुद्धितया सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे" (अर्थात् श्रीरामचंद्रजी सीधी बुद्धि से अपना वृत्तांत कहने लगे)। कोई ऐसा मानेगा भी, कि कपटी के रूप में प्रसिद्ध श्रीकृष्ण में इस आर्जवगुण का अभाव है; परंतु बात यह नहीं हैं। क्यों कि आर्जव का उपयोग तो भक्तों के रक्षण में है। अर्थात् भगवान जिसकी रक्षा करने का वचन देते हैं, उसका जरूर रक्षण करेंगे; नतु रक्षा करने की बात करते हुवे किसीका भक्षण भी कर देते हैं। यह आर्जव गुण श्रीकृष्ण में भी परिपूर्ण है ही। आप की कपटी होने की प्रसिद्धि तो बाललीलाओं में होगी, अथवा शत्रुओं के विषय में, नतु कदापि भक्तरक्षणविषय में। (तिरलुडैयाय्)। तिरल् का अर्थ है बल। भगवान के प्रधानतम छः गुणों के बीच में बलनामक एक गुण है, जिसका विवरण यों किया जाता है—बलं धारण सामर्थ्यम्; अर्थात् भगवान चेतनाचेतन रूप समस्त पदार्थों का अपने शरीरत्वेन, विना प्रयास जो धारण करते हैं, इस सामर्थ्य का नाम बल हैं। इस बलका एक छोटासा भाग ही गोवर्धनोद्धरण प्रसंग में प्रकाशित हुआ था।

(शेत्तार्क्कु वेप्पम् कोडुक्कुम्) शत्रुओं को भयज्वर देनेवाले। रावण, कंस आदि इस गुण के लक्ष्य हैं। मारीच, सपने में भी श्रीरामचंद्रजी के दर्शन करते हुवे, एकैक वृक्ष में भी आपका साक्षात्कार पाते हुवे, रकार सुनते ही आपके शुभनाम का स्मरण करते हुवे, इस तरह से सदैव आपके भय से कांपता था। एवं रावण भी एक वार आपसे पराजित होकर भय से कांपने लगा। कंस का भय तो प्रसिद्ध है। शायद इसी भयके मारे उसने श्रीकृष्ण को मारने के लिए दूसरों को भेजा, न तु स्वयं व्रज आनेका साहस किया। यह अर्थ पहले ही (दसवी गाथा की टीकामें) सूचित किया गया है कि "समोऽहं सर्वभूतेषु" कहनेवाले भगवान को वास्तव में कोई भी शत्रु न होता; परंतु भक्तों पर द्रोह करनेवाले को भगवान् अपना शत्रु मानकर उसको दंड देते हैं। आगे (विमला) संबोधन से यह अर्थ सूचित किया जाता है कि उक्तरीति से किसी की शिक्षा करनें पर भी भगवान को निर्दयत्व अथवा पक्षपात रूप दोष न लगता है; कारण कि आप सदा दोषदूर रहते हैं। कहने का यह तात्पर्य है कि "समोऽहम्" कहनेवाले भगवान ही किसी के विषय में "ददामि बुद्धियोगम्" कहते हैं, और दूसरे किसी के विषय में "तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु.... क्षिपामि" भी कहते हैं। ये तीनों वचन परस्पर विरुद्ध नहीं होते हैं; परंतु सब समंजस हैं। भगवान से दंड अथवा सन्मान पाने का खास कारण उस उस व्यक्ति का दौर्जन्य अथवा सौजन्य होगा। इसके अतिरिक्त भगवान का पक्षपात कुछ नहीं।

उत्तरार्ध से नीलादेवी, स्तुतिपूर्वक जगायी जाती हैं। प्रथमतः आपके सौन्दर्य का वर्णन किया जाता है। इसका यह तात्पर्य है—श्रीवचनभूषण में बताया गया है कि पुरुषकार कृत्य करनेवाली

महालक्ष्मीजी, अपराधी चेतन एवं भगवान, इन दोनों के बीचमें खडी हो कर, उचित उपदेशों के द्वारा दोनों को समझाकर परस्पर अनुरक्त बनाती हैं। ऐसा करने के समय में कदाचित् भगवान इस चेतन के अतिप्रबल पापों पर ध्यान देते हुवे, लक्ष्मीजी की प्रार्थनानुसार उसका स्वीकार करने नहीं चाहते हैं। तब लक्ष्मीजी अपना सौंदर्य दिखाकर उससे भगवान् को अपने परवश बनाकर, आपसे उस चेतनपर अनुग्रह दर्शाने का आग्रह करती हैं। कहने का मतलब यह है कि भगवान अगर कभी लक्ष्मीजी के वचनानुसार किसी चेतन की रक्षा करने इनकार करें, तो उनके सौंदर्य के परवश हो कर आपको ऐसा करना पडेगा ही। अर्थात् लक्ष्मीजी का पुरुषकार कभी व्यर्थ न होगा; और आपका सौंदर्य भी चेतन के लाभ के लिए भगवान को अपने वश करने में उपयुक्त होगा। अतः यहां पर नीला देवी के सौंदर्य का वर्णन करनेवाली गोपियों का यह अभिप्राय है कि, "हे देवी! हमारी प्रार्थना सुनने पर भी प्रसन्न न होनेवाले भगवान को आप अपने सौंदर्य से परवश बनाकर उनको हम पर अनुग्रहवाले बना दीजिए।" (सेन्मुलै)—कोमलस्तन। स्तनों को कठिन बताना कविसंप्रदाय है। कोमल बताना उससे विरुद्ध होगा। अतः इस शब्द का ऐसा अर्थ करना चाहिए कि भगवान से एक क्षण के भी विश्लेष का सहन न कर सकें, ऐसे कोमलस्वभाववाले स्तन। आगे, (तिरुवे)—हे महालक्ष्मीजी! यह संबोधन भी उक्त पुरुषकारत्व का ही दृढीकरणार्थ है। यह तात्पर्य है—शास्त्रों में महालक्ष्मी जी ही पुरुषकार बतायी गयी हैं, न तु दूसरी कोई देवी। अत एव आप प्रधान महिषी बन गयी। तो भी दूसरी देवियां आपके अंश ही मानी जाती हैं; जैसे कि श्रीगुणरत्नकोश में "भोग्या वामपि" इत्यादि पद्य में उपवर्णित किया गया। अतः पुरुषाकार कृत्य करना इनका भी काम सिद्ध हुआ। तथा च इस संबोधन से यह प्रार्थना सूचित की जाती है कि "हे नीलादेवी! आप भी पुरुषकार कृत्य में महालक्ष्मी जैसी ही हैं। अतः इस अपने स्वधर्म को भूलकर शयन करना आपके लिए अनुचित है। कृपा कर शय्या छोडकर उठिए।"

इस प्रार्थना से प्रसन्न नीलादेवी ने पूछा, "हे सखियां! मैं निद्रा नहीं कर रही हूँ; अपितु तुम लोगों के कल्याण की ही चिंता कर रही हूँ। जरा सा बताओ तो सही, कि अब मुझे क्या करना चाहिये।" इसका उत्तर दिया जाता है (उक्कमुम्) इत्यादि से। इसका शब्दार्थ है व्रतोपयुक्त पंखा, ऐना आदि को, और व्रत निर्वाहक भगवान् को देना और मार्गशीर्षव्रतार्थ स्नान कराना। परंतु यह अर्थ पहिले ही बताया गया कि गोपियों का खास लक्ष्य भगवान से मिलना ही है; व्रत तो व्याज मात्र है; और स्नान करने का अर्थ भी यही भगवान से मिलना है। अतः प्रकृत प्रार्थना का भी यही तात्पर्य है कि "हमें भगवान से मिला दीजिए॥"

व्यंग्यार्थ का विवरण॥ पूर्व गाथा की तरह, यहां भी आचार्य सार्वभौम, एवं आपका अंतरंग शिष्य, ये दोनों जगाये जाते हैं। मुप्पत्तुमूवर का अर्थ है तीन भक्तिवाले तीन। अमरर् कहने का तात्पर्य है मामूली संसारियों से श्रेष्ठ, देव सरीक मुमुक्षु जन। तीन भक्ति शब्द से परभक्ति परज्ञान परमभक्ति

रूप भक्ति की तीन अवस्थाएँ बतायी जाती हैं। आगे के तीन शब्द से तीन प्रकार के प्रपन्न जन—अज्ञ, विशेषज्ञ, और भक्त बताये जाते हैं। तथा च यह तात्पर्य हुआ कि त्रिविध भक्तिवाले एवं तीन प्रकार के जो श्रेष्ठ प्रपन्न जन हैं, उनके दुख को दूर करनेवाले हैं आचार्य। दुःख शब्द से देहात्मभ्रम अन्यशेषत्वभ्रम आदियों को समझना चाहिए। आचार्य का आर्जव तो प्रसिद्ध कपटशून्यत्व ही है; अर्थात् त्रिकरणों से समरूप रहना आर्जव अथवा ऋजुत्व (सीधापन) है। एवं अगाध संसार सागर में डूब रहनेवाले मुमुक्षु को एकदम उससे उठाकर परमपद पहुँचाने अपेक्षित सामर्थ्य ही बल कहलाता है। पूर्वोक्त क्रम से भगवान से द्वेष करनेवाले एवं आप से प्रवर्तित शास्त्रों को बिगाडनेवाले दुर्वादियों को अपना शत्रु मानकर उनको जीतकर भयभीत करते हैं आचार्य। "पाषंडद्रुमषण्डदावदहनः" इत्यादि। विमल कहने का अर्थ यह है कि मनुष्य रूप से अवतीर्ण होकर इतर मानवों की तरह आहार विहारादि करते रहने पर भी आचार्य, "साक्षान्नारायणो देवः कृत्वा मर्त्यमयीं तनूम्। मग्नानुद्धरते लोकान् कारुण्यात् शास्त्रपाणिना॥" (अर्थात् साक्षात् नारायण ही मनुष्य रूपका धारण कर शास्त्र रूपी हाथ से संसार सागरनिमग्न मानवों का उद्धार करते हैं) इत्यादि प्रमाण से साक्षात् नारायण का ही अपरावतार होने से साधारण पुण्य पापों से अस्पृष्ट होकर सदा परिशुद्ध ही रहते हैं।

(शेप्पेन्न मेन्मुलै) इत्यादि में स्तन शब्द से भोगसाधन, शिष्य का विलक्षण ज्ञान कहा जाता है॥ अधर शब्द से आचार्य को अपना वश करने समर्थ शिष्यकी विनयपूर्ण वाणी कही जाती है। तनुमध्यशब्द से सूक्ष्म, यानी सारासार विवेचन कुशलिनी बुद्धि कही जाती है। लक्ष्मी पुकारनेसे लक्ष्मी की तरह आचार्य विषय में पुरुषकार करने का सामर्थ्य बताया जाता है। पंखा कहने से संसारताप का हरण करनेवाला द्वय मंत्र, एवं ऐना कहने से आत्मस्वरूप का प्रकाशक मूलमंत्र माँगे जाते हैं। अर्थात्, अर्थानुसंधान के साथ इन मंत्रों का नित्यानुसंधान सूचित किया जाता है॥ .... (२०)

(गाथा) एत्त कलङ्ग ळेदिर्पोङ्गि मीदळिप्प * मात्तादेपाल् शोरियुम् वळ्ळल् पेरुम्पशुक्कळ् *
आत्तप्पडैत्तान् महने यरिवुराय् * ऊत्तमुडैयाय् पेरियाय् * उलहिनिल्
तोत्तमाय् निन्न शुडरे तुयिलेळाय् * मात्तारुनक्कु वलितोलैन्दुन् वाशर्कण् *
आत्तादु वन्दुन्नडि पणियुमापोले * पोत्तियाम् वन्दोम् पुहळ्न्देलोरेम्बावाय्॥ २१॥

एत्त कलङ्गळ्	(दूध का) धारण करनेवाले अनेक पात्रों (में दूध)
एदिर् पोङ्गि	- ऊपर उमड उठ कर
मीदु अळिप्प	- बाहर बह जाय, इस तरह से
मात्तादे पाल् शोरियुम्	निरंतर दूध बहनेवाली
वळ्ळल् पेरु पशुक्कळ्	- परमोदार बडी बडी गायों को
आत्त पडैत्ताम् महने	विशेषतः (अपने पास) रखने वाले नंदगोपजी के हे पुत्र!
अरिवुराय्	- जागो;
ऊत्तमुडैयाय्	हे (भक्त रक्षण में) श्रद्धा रखनेवाले!

पेरियाय् - हे परब्रह्म भूत !

उलहिनिल् तोत्त माय् निन्न शुडरे { हे इस लोक में आविर्भूत तेजो रूपिन् !

तुयिलेळाय् - जागो ;

मात्तार् उनक्कु वलि तोलैन्दु { शत्रु लोग, तुम्हारे विषय में अपने पराक्रम के विफल होने से

उन वाशल् कण् - तुम्हारे महल के आगे

आत्ताद्दु वन्दु - अगति बनकर आकर

उन्नडि पणियुमापोले { जैसे तुम्हारी शरण में आते हैं, इस तरह से,

याम् पुहळन्दु, पोत्ति वन्दोम् एलोरेम्बावाय् { हम भी स्तुति करती हुई (तुम्हारे महल पर) आ पहुंच गयी हैं ॥

पूर्वगाथा के उत्तरार्ध से गोपियों से सादर जगा जानेपर प्रसन्न नीलादेवी उनसे, "हे सखियां ! तुम लोग क्यों कर इतना कष्ट उठाती हो ? तुम्हारे सब काम मैं ठीक कर दूँगी। मान लो कि मैं भी तुम्हारे में ही एक हूँ। अतः अब हम सब मिलकर प्रभु को जगाकर, आपसे अपनी पार्थना सुनावेंगी", कहती हुई कपाट खोलकर बाहर आकर इनकी गोष्ठी में मिल गयीं ! फिर सब मिलकर श्रीकृष्ण को इस गाथा से जगाती हैं। उसमें, नंदगोपजी की गोसमृद्धि का वर्णन कर, उसके पुत्रत्वेन श्रीकृष्ण का संबोधन करते, आपको विशेष प्रसन्न कराने का प्रयत्न करती हैं। नायकनाय् निन्न (१६) गाथा की टीका में यह अर्थ बताया गया कि श्रीकृष्ण अपने नंदगोपपुत्रत्व का बडा अभिमान रखते थे। गोवर्धनोद्धरण प्रसंग में आपने कहा कि, "नाहं देवो न गंधर्वः....अहं वो बान्धवो जातः—अर्थात् मैं देव, गंधर्व इत्यादि कोई भी नहीं, मगर आप लोगों का बाँधव बन गया हूँ।" एवं श्रीरामावतार में भी सीता जी के अग्निप्रवेश समय में जब समस्त देवतागण लंका आकर आपसे विनती करने लगे कि "आप साक्षान्नारायण होकर अपनी पटरानी महालक्ष्मी सीता जी की यह क्या परीक्षा लेने चाहते हैं ?" तब आपने यही प्रत्युत्तर दिया कि, "अरे ! आप लोग यह क्या कह रहे हैं ? मैं कुछ समझ नहीं सकता। आत्मानं मानुषं मान्ये रामं दशरथात्मजम् ; अर्थात् मैं अपने बारे में केवल इतना जानता हूँ, कि मैं दशरथात्मज राम हूँ। (अथवा मैं अपने नारायणत्व से भी बढकर दशरथात्मज रामत्व का ही बडा अभिमान करता हूँ।)" अतः यह अर्थ सिद्ध हो गया कि नंदगोपात्मज पुकारे जाने पर श्रीकृष्ण बहुत खुश होंगे। गोपियों का यह अभिप्राय हुआ कि इतः पूर्व त्रिविक्रमरूप से तीनों लोकों को नापना, नीलातुङ्गस्तनगिरितटी पर शयन करना, देवताओं की विपत्ति को दूर करना इत्यादि प्रशंसित होनेपर भी श्रीकृष्ण इस लिए प्रसन्न न हुए कि ये सब चरित्र उनके अभिप्राय से महत्व के नहीं थे। अतः अब गोपियां उनके अभिमत संबोधन करती हैं। एवं इस गाथा में नंदगोपजी की भी विलक्षण स्तुति की जाती है। सत्रहवी गाथा में आपके औदार्य की प्रशंसा की गयी; अठारहवी गाथा में आपका बल प्रशंसित हुआ; अब आपके ऐश्वर्य—गोसमृद्धि का वर्णन किया जाता है। ब्राह्मण का ऐश्वर्य वेदादिशास्त्र है; क्षत्रिय का भुजबल है और गोपका तो गोसमूह है। अतः जात्यनुगुण ऐश्वर्य का वर्णन यहां किया जा रहा है।

ओङ्गियुलहळन्द इत्यादि (३) गाथा में आशंसित प्रकार से नंदगोपजी की गायें इतना दूध देती हैं कि उससे एक क्षणमात्र में अनेक घड भर जाते हैं, और दूध बाहर भी बह जाता है। पुराणों में कहा गया है कि व्रज में कृष्णावतार होने के बाद गायें अत्यधिक दूध देने लगीं। अतः अनेक घडों को भर देने की इस बात में किंचिन्मात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है। इसके बाद इन गायों का दूसरा एक विशेषण दिया गया है—उदार। गाय का औदार्य अधिक दूध देने में होगा। परंतु यह अर्थ पुनरुक्त होता है। अतः दूसरी किसी तरह का औदार्य ही इसका अर्थ होगा। वह यह है कि हाथी के समान बडे आकारवाली होकर अत्यधिक दूध देने समर्थ होने पर भी, सींग से मारना, पैर से मारना इत्यादि दोषों से मुक्त होकर बचों को भी सुलभ रहना। अर्थात्, जैसे श्रीकृष्ण सर्वेस्वरपर होकर भी सौलभ्य से गोपबालक एवं गोवत्सों से मिलते जुलते उनसे एकरस व अत्यंत सुलभ रहे, इसी तरहसे ये गाय भी बच्चों को भी अतिसुलभ थीं।

इस तरह से प्रसंगात् नंदगोपजी की प्रशंसा करने के बाद, गोपियां श्रीकृष्ण से जो विनती करती हैं कि, "ऐसे महामहिम नंदगोपजी के हे सुपुत्र! आप कृपा कर उठिए," इसका यह तात्पर्य है—हे प्रभो! आप नित्यसूरियों से सेवित होकर आनंदैकार्णव परमपद में विराजने की अवस्था छोडकर, नानाविध दोषभरित इस संसार मंडल में अवतार लेकर, उसमें भी मथुरापुरी छोडकर, सर्वथा अज्ञ, गाय चराने निरत, अत एव पशुसमान गोपों का स्थान इस व्रज में नंदगोपपुत्रत्वेन जिस उद्देश्य से पधार गये हैं; उसका कुछ स्मरण कर दीजिए। हम जानती हैं कि आप हम पर अनुग्रह दर्शाने के उद्देश्य से ही यहां पधार गये हैं। हम तो नित्यसूरियों की तरह परमपद आकर, वहां अपने दुःख की विनती कर आपके आनंद में विघ्न न डाल रही हैं; न वा देवताओं की तरह क्षीरसमुद्र आकर असुर राक्षस पीडा बता कर बुबुकती हुई आपकी सुखमय योगनिद्रा का भंग कर रही हैं; न वा मथुरानगरी आकर आपसे अपने राजकार्य छोडने का अनुरोध कर रही हैं; अपितु हमारे सरीक पामरों पर अनुग्रह बरसाने के लिए ही आप जहां पधार रहे हैं, ऐसी इस व्रजभूमि में आपके पास आकर प्रार्थना कर रही हैं। अतः समझ लीजिए कि आपको हमारी प्रार्थना मानना अपना स्वकार्य साधन ही है, नतु परोपकार।

श्रीकृष्ण का दूसरा संबोधन है (ऊत्तमुडैयाय्)। इस शब्द के दो अर्थ होते हैं—दृढ प्रमाण सिद्ध एवं श्रद्धावान। "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति," "वेदैश्च सर्वै रहमेव वेद्यः" इत्याद्युक्त प्रकार से नित्यनिर्दोष वेद प्रमाण से स्थापित होना भगवान का दृढत्व है। आश्रितों का रक्षण करने में सुदृढ रहना, यह भी भगवान का एक महागुण है जिसका वर्णन अपनी वाणी से ही किया गया है—अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्। नतु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥ (अर्थात्, श्रीरामचंद्रजी कहते हैं कि हे सीते! मैं भला ही अपनी जान छोड दूं, तुमको छोड दूँ, अथवा लक्ष्मण को भी छोड दूं; परंतु ब्राह्मणों का रक्षण करने की प्रतिज्ञा न छोड सकता हूँ।) "न त्यजेयं कथंचन" (मेरी शरण में आनेवाले को मैं किसी कारण से न छोडूंगा), "न मे भक्तः प्रणश्यति" (मेरा भक्त कभी दुख न पाएगा), "न मे

मोघं वचो भवेत्" (द्रौपदी से श्रीकृष्ण का वचन है कि भक्त का रक्षण करने की मेरी वाणी कभी व्यर्थ न होगी) इत्यादि।

तीसरा संबोधन है (पेरियाय्) यानी हे महान्! अर्थात् हे परब्रह्मभूत ! ब्रह्म शब्द, भगवान का वेदांतसिद्ध नाम है। जिसका स्वरूप बहुत बडा (यानी विभु) है, और जिनके गुण अपरिमित एवं अति श्रेष्ठ हैं वह ब्रह्मशब्द का अर्थ है। भगवान तो अनंतकोटिकल्याणगुणसागरत्वेन प्रसिद्ध हैं। भक्तों को असंख्य उपकार करने पर भी "मैं ने क्या किया? कुछ नहीं; और क्या करूं? और क्या करूं?" यों चिंता करते रहना, गुण से महत्व है। अथवा, असंख्य प्रमाणों से आपके वैभवों के बताये जाने पर भी, और अवश्य बताये जाने लायक प्रभाव बहुत बच जाते हैं; अर्थात् भगवान के सभी वैभवों का पूर्णतया वर्णन कभी न हो सकता है। यह भी आपका एक प्रकार का महत्व है।

चौथा संबोधन है—(उलहिनिल्) इत्यादि। इस संसार में अवतीर्ण हो कर चमकनेवाले हे तेजोमय! भगवान का यह एक असाधारण स्वभाव है कि इस संसार में अवतार करते करते आप और प्रकाशमान बन जाते हैं। अर्थात् संसार में जन्म पाते पाते यह जीव अविद्या, कर्म, दुःख आदि का विवश हो कर मलिन बनता जाता है; संसार-छूटने पर ही इसका स्वाभाविक, ज्ञानानंदमय स्वरूप प्रकाश पाता है। परंतु भगवान का स्वरूप इससे विपरीत हैं। अर्थात् आप अखिल हेय प्रत्यनीक कल्याणैकतान (यानी समस्त दोष दूर और कल्याण भरित होने से, संसार में अवतार लेने से आपको कोई दोष न लगेगा, उलटा आपका प्रकाश (यानी तेज) और बढेगा। कारण कि अवतारों में आपके दया, क्षमा, सौलभ्य, सौशील्य इत्यादि शुभगुण विशेषतः प्रकाशित होते हैं, जो परमपद में, विषय के अभाव से गूढ रहते थे। अतः श्रुति ने भी कहा कि "स उ श्रेयान् भवति जायमानः --भगवान अवतार लेते लेते प्रकाश पाते हैं।" इस वाक्य के बीच में एक पद है—उ; वेद में इसका अर्थ है - एव—यानी, ही। यह चारो पदों के साथ मिलता है—(१) जायमानः स एव श्रेयान् भवति, माने भगवान ही अवतार लेते श्रेष्ठ बनते हैं; न तु जीव; (२) सः जायमानः श्रेयान् एव भवति, माने आप अवतार लेने से श्रेष्ठ ही बनते हैं, नतु मलिन; (३) सः जायमानः श्रेयान् भवत्येव, माने आप अवतार लेकर श्रेष्ठ बनते ही हैं, नतु कदाचित् ऐसे न बनते भी हैं; (४) सः जायमान एव श्रेयान् भवति—माने आप अवतार लेने पर ही विशेष प्रकाशित होते हैं, नतु परमपद में विराजते। श्री पराशर महर्षि ने श्रीकृष्णावतार का वर्णन करते हुवे, यों न कहा कि श्रीकृष्ण ने जन्म लिआ, अपि तु कहा, "ततोऽखिल जगत्पद्म बोधायाच्युत भानुना। देवकीपूर्वसन्ध्यायाम् आविर्भूतं महात्मना॥" अर्थात् समस्त जगद्रूपी कमल को खिलाने के लिए महात्मा अच्युत नामक सूर्य, देवकी रूप पूर्वदिशा में प्रकट हो गया। सूर्य तो उदय होने पर ही प्रकाश पाता है; नतु उससे पहिले। एवं भगवान भी विशेषतः प्रकाश पाने के लिए यहाँ पर प्रकट हुए। तथा च सारांश यह हुआ कि कर्म परवश हो कर जन्म लेने से जीव कलंकित होता है; कृपा परवश हो कर अवतार लेने से भगवान उज्वल होते हैं। इस पुराणवचन की छाया में ही इस गाथा का प्रकृत संबोधन, "हे लोक में आविर्भूत तेजो

रूप!" बना है। ऐसा संबोधन कर शयन से उठने की प्रार्थना जो की जाती है, इसका यह तात्पर्य है कि, "हे प्रभो! अगर आप हमारी विनती मानकर अब शय्या से न उठेंगे, तो आपके तेज की हानी ही होगी और आपका अवतार भी व्यर्थ होगा। ऐसा होने मत दीजिए।"

अब गोपियां अपने आनेका एक अद्भुत दृष्टांत देती हैं—(माचारुनक्कु) इत्यादि से। "त्रीन् लोकान् संपरिक्रम्य तमेव शरणं गतः" (काकासुर अपने पिता देवेंद्र, दूसरे देवगण, करुणामय महर्षियों, एवं तीन लोकों में फिरने पर भी, और किसी से रक्षा न पाकर, अंततः श्रीरामचंद्रजी की ही शरण में आ गया) इत्याद्युक्त प्रकार से जैसे काकासुर भग्नमान हो कर आ गया; ऐसे और भी बहुत शत्रु लोग प्रारंभ में भगवान से विरोध करते हुए गर्व भरित रहकर, पीछे आपके हाथ से मार खाकर, अपना गर्व छोडकर, नतमस्तक हो कर, आपकी स्तुति करते हुवे, आपकी संनिधि में आ पहुँचते हैं। गोपियां कहती हैं कि "हे प्रभो! हम भी अब ऐसी ही विनय भरित हो कर आ गयी हैं; अतः हम पर कृपा दृष्टि डालिए। यहां पर यह शंका होगी कि, भक्ति, विनय आदि सद्गुणों से बहुत दूर रहनेवाले, आसुरी प्रकृति के काकासुर, रावण, जैसे पापी लोग, जन्म से ही भक्तिपूर्ण, परमसात्विक गोपियों का दृष्टांत किस तरह से हो सकते हैं। इसका समाधान यही है—गोपियों का अभिप्राय है कि "हे प्रभो! कंस रावण काकासुर इत्यादि प्रसिद्ध असुरों से हम कम गर्वी नहीं हैं। हम भी अनादि काल से "ईश्वरोऽहमहं भोगी" कहती हुई, आपकी आज्ञा टालकर संसार में ही भटकती रह गयीं। अब ही आपके दिव्य रूप चेष्टित आदि से हमारा अभिमान चूर चूर हो गया, और हम आपके समक्ष आयी हैं। अथवा वाद के लिए मान भी लीजिए कि हम जन्म से ही आपकी भक्ता हैं। तो भी हमारे मन में यह स्त्रीत्वाभिमान अब तक सुदृढ रहा कि, प्रेयसी के पास आना पुरुष का कर्तव्य होगा, न तु प्रेयसी स्वयं प्रिय को ढूंढ कर उसके पास जा सकती हैं। अतः प्रभु को ही हमारे पास आना चाहिए। हमें इस बात का भान न हुआ था कि किंकर होने के कारण, हमें ही आपकी संनिधि पहुँच कर आप से योग्य सेवा मांगना चाहिए। परंतु आज, आपकी कृपा से हमें अपनी भूल समझ में आयी, और हम अपना स्त्रीत्वाभिमान छोडकर आ गयी हैं। पहिले अभिमानी रह कर, उसके नाश होने के बाद आपकी संनिधि आने में काक आदियों से हम बिल्कुल समान हैं।" समझ लेना चाहिए कि नैच्यानुसंधान करने का यह भी एक प्रकार है॥

व्यंग्यार्थ का विवरण॥ इस पद्य में, आचार्य, प्राचार्य, आचार्यपुत्र अथवा आचार्य के विशेष अभिमान का पात्र प्रधान शिष्य, इनकी स्तुति की जाती है। आचार्य की तरह आचार्यपुत्र में, एवं प्राचार्य में भी भक्ति करना शास्त्रविहित है। धर्म शास्त्र कहता है कि "आचार्यवदाचार्य पुत्रे वृत्तिः"। दूध का धारण करनेवाले पात्र कहने से, आचार्योपदिष्टज्ञान को ठीक अपने में भरकर, उसको स्वयं विशेषतः बढाते हुवे, "शिष्यादिच्छेत्पराजयम्" इत्याद्युक्त प्रकार से आचार्य से भी बडे ज्ञानी बनने समर्थ शिष्य लोग सूचित किये जाते हैं। श्री रामानुज स्वामीजी की जीवनी में हम सुनते हैं कि श्री स्वामीजी, सहस्रगीति के

अर्थ का उपदेश देनेवाले श्रीमालाधर स्वामीजी को स्वयं तत्र तत्र विशेष अर्थ बताते रहे। निरंतर दुग्ध प्रवाह निकालनेवाली गाय तो ऐसे महान ज्ञानी आचार्य हैं, जो, "भूय एव महाबाहो शृणु", "इदं च शृणु मैत्रेय" इत्याद्युक्त प्रकार से विशेष उपदेश देकर शिष्यको ज्ञान से भर देते हैं। एक गाय से अनेक पात्रों के भर जाने की जो बात की गयी है, इसका अर्थ यह है कि यामुनाचार्य स्वामीजी जैसे कोई कोई आचार्य इतने महान ज्ञानी होते हैं कि उनके ज्ञान को पूर्णतया कोई भी एक शिष्य ले नहीं सकता है; परंतु अनेक शिष्य मिलकर एकैक एकैक विद्या करके आचार्य के ज्ञान भंडार को अपने में विभाग कर लेते हैं।

इस प्रकरण में प्रयुक्त (मात्तादे) शब्द का नाना प्रकार से अर्थ होता हैं। एक साधारण अर्थ तो 'निरंतर' है, जिसका वर्णन किया जा चुका। अर्थात् शिष्य के अल्प प्रश्न के खास प्रत्युत्तरतया थोडा उपदेश देकर आचार्य तृप्त न होते हैं; परंतु उस विषय में जानने लायक सभी अर्थों का उपदेश कर डालते हैं। यहां पर दुग्ध शब्द से सामान्यतः ज्ञान को समझना है ही। इसके उपरांत, उस शब्द से भगवान का कल्याण गुण भी समझा जा सकता है; क्यों कि श्री शठकोप स्वामी जी उन गुणों को दुग्ध सदृश बताते हैं। अतः यह अर्थ हुआ कि शिष्य पर विशेष अनुग्रह करते हुवे आप भगवद्गुणों का निरंतर उपदेश करते हैं। अथवा, मात्तादे का अर्थ है पलटे विना, यानी बदल किये विना। इसका तात्पर्य यह है कि भगवद्विषय जैसे निगूढ अध्यात्म शास्त्रों में, जिन में अल्पज्ञ हमारी बुद्धि ठीक काम न कर सकती है, तपस्वी, और बडे ज्ञानी हमारे पूर्वाचार्यों से उपदिष्ट मार्ग में ही चलना आवश्यक है; उस अर्थ को पलट देना खतरनाक है। अत एव श्रीभाष्य के प्रारंभ में श्रीस्वामीजी ने प्रतिज्ञा की, "भगवद्बोधायनकृतां विस्तीर्णां ब्रह्मसूत्रवृत्तिं पूर्वाचार्याः संचिक्षिपुः। तन्मतानुसारेण सूत्राक्षराणि व्याख्यास्यन्ते।" (अर्थात् बोधायन महर्षि से विरचित विस्तृत ब्रह्मसूत्रवृत्ति नामक व्याख्यान को हमारे पूर्वाचार्यों ने संक्षिप्त किया; उनके मतके अनुसार अब मैं सूत्राक्षरों की व्याख्या करूँगा।) इस से आचार्य की प्रामाणिकता बतायी जाती है। कोई कोई लोग दूसरे प्रकार से भी अर्थ को पलट देते हैं। तथा हि, अपने मन में एक निश्चित अर्थ के अभाव से उपदेश देने के उस उस समय में स्वबुद्धि से सोचकर एक वक्त एक अर्थ का उपदेश करते हैं; दूसरा दिन कुछ सोचकर उस अर्थ को पलट देते हैं, और उससे विरुद्ध दूसरा ही कुछ उपदेश देते हैं; फिर तीसरा दिन उसको भी पलट कर और कुछ ही कहते हैं। कचित् शिष्य से अथवा दूसरे किसी से आक्षिप्त हो जाने पर, अपने से पहिले उपदिष्ट अर्थ को पलटकर दूसरा अर्थ कहते हैं। ऐसे आचार्यों के उपदेश पर कोई विश्वास न कर सकता है। परतु जो आचार्य, ऐसे दोषका अवकाश न देते हुवे पहिले ही एक पक्के अर्थका उपदेश देते हैं, जिसको किसी कारण से पलटने की जरूर न आ पडें, ऐसे निष्कृष्ट ज्ञानवान आचार्यों का उपदेश यहां पर कहा जाता है। अथवा, शिष्य को बहुश्रुत होने के लिए आचार्य को बदलने की आवश्यकता न देनेवाले आचार्य कहे जाते हैं। यह तात्पर्य है—श्रीरामानुज स्वामीजी पंचाचार्य पदाश्रित थे, अर्थात् पांच आचार्यों की पादसेवा से प्राप्तविद्य थे। आपने पांच आचार्यों की सेवा क्यों कर की? इस लिए की कि किसी एक आचार्य के पास आप सब विद्या का ग्रहण न कर सके। अतः आपको एकैक विद्याके लिए भी गुरु को बदलना पडा। ऐसा संकट न हो, इस तरह से स्वयं एक ही शिष्य के अपेक्षित सभी विद्याओं के दाता

सर्वज्ञ आचार्य यहां पर कहे जाते हैं। अथवा, मात्तादे का अर्थ है, प्रतारण किये विना। यह तात्पर्य है—उपदेश देनेवालों को प्राय: भ्रम, प्रमाद, अनवधान व विप्रलिप्सा नामक चार प्रकार के दोषों का शिकार बनना पडता है। भ्रम तो प्रसिद्ध है---अर्थ को ठीक न समझना। प्रमाद का अर्थ है अचानक, अर्थात् समीचीन अर्थको जानने पर भी उपदेश देने के समय में अचानक अपार्थ कह देना। अनवधान शब्द का अर्थ है असावधानी। विप्रलिप्सा तो इन सब से भयंकर दोष, कपट है। अर्थात् दूसरे को सताने के लिए कोई कोई लोग अपार्थ का उपदेश कर देते हैं; ग्रंथ में भी असत्य कथा, अविद्यमान प्रमाण, अप्रामाणिक अर्थ आदि लिख डालते हैं, जिससे अनेक प्रकार के अनर्थ होते हैं। इन दोषों से मुक्त हो कर ऋजु बुद्धि से, यथार्थ में अपने विदित अर्थ का उपदेश देनेवाले प्रामाणिक आचार्य यहां पर सूचित किये जाते हैं।

पात्र में भरनेवाला दूध तो ग्रंथरूप में लिखकर रखे जानेवाले उपदेश है। अर्थात्, दूध दो प्रकार का होता है। एक तो वह है जिसको बछडा पीता है; दुहकर पात्र में रखा जानेवाला दूध दूसरे प्रकार का है। एवं आचार्य के उपदेश भी दो प्रकार के होते हैं---शिष्यों को दिये जानेवाला मौखिक उपदेश और ग्रंथरूप में लिखे जानेवाला उपदेश, जो पात्रस्थ दुग्धवत् बहुत समय तक बहुत जनों के काम में आवेगा।

ऐसे आचार्य इसलिए उदार कहे जाते हैं कि आप गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी की तरह अनुवृत्तिप्रसन्नाचार्य न रहकर श्रीरामानुजस्वामीजी की तरह कृपामात्र प्रसन्नाचार्य होते हैं। फिर इनको बडी गाय कहने का यह तात्पर्य है कि, जैसे गाय घास पूस चरानेवाली एक जानवर होती हुई भी दूसरे मृगों से श्रेष्ठ होकर अमृतमय दुग्ध, दधि, नवनीत, घृत, एवं परमपवित्र पञ्चगव्य आदि देती है, इसी तरह से आचार्य भी साधारण मनुष्यगात्र प्रतीत होने पर भी अमृतमय उपदेश एवं परमपवित्र श्रीपादतीर्थ देनेवाले महान होते हैं। अत एव आचार्य भगवान से भी अधिक महिमावान होते हैं। उपदेश आदि से लोकोद्धार करने का भगवान का भी प्रयत्न कभी कभी विफल हो जाएगा; नतु आचार्य का प्रयत्न कदापि बेकार होगा। ऐसी श्रेष्ठ गायों के स्वामी कहने से ऐसे महाचार्यों के आचार्य, श्री यामुनाचार्य स्वामीजी जैसे परमाचार्य सूचित किये जाते हैं। उनके पुत्र तो उनके प्रधान, परमप्रेमभाजन शिष्य होते हैं। तथाच "व्यासं वसिष्ठनप्तारम्" इत्याद्युक्त प्रकार से आचार्यों की एक परंपरा की ही स्तुति इस गाथा से की गई।

(ऊत्तमुडैयाय्) शब्द के पूर्वोक्त दोनों अर्थ आचार्य विषय में भी ठीक लगते हैं। "आचार्यदेवो भव," "आचार्यवान् पुरुषो वेद," "उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिन:" इत्यादि अनेक प्रमाणों से आचार्य का वैभव बताया गया है। और आचार्य हमेशा शिष्य के उद्धार की चिंता में ही व्यग्र रहते हैं। एवं आचार्य को (पेरियाय्) महान् कहना भी उचित होगा; कारण कि आचार्य का प्रभाव उक्तरीति से भगवान से भी अधिक है; और सर्वव्यापक, परब्रह्म शब्दवाच्य, भगवान को भी आचार्य अपने हृदय के एक

कोने में रख देते हैं; और "ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्" इत्याद्युक्त प्रकार से आपका नियामक भी बनते हैं।

(उलहिनिल् तोत्तमाय् निन्न शुडरे!) भगवान की तरह आचार्य भी इस संसार में अवतीर्ण होकर विशेष चमकनेवाले ज्योति हैं। संसार में जन्म लेनेपर, क्षुद्र मानव की तरह आप मलिन न होते हैं; अपि तु विशेष प्रकाश पाते हैं। अत एव उनको सूर्य कहने में आया है। श्रीशठकोपस्वामीजी की स्तुति है—"यद्गोसहस्रमपहन्ति तमांसि पुंसां नारायणो वसति यत्र सशंखचक्रः। यन्मण्डलं श्रुतिगतं प्रणमन्ति विप्राः तस्मै नमो वकुलभूषणभास्कराय॥" (तात्पर्य यह है—अज्ञानांधकारविनाशक किरण सदृश वाणीवाले, शंखचक्रधारी नारायण का निवासस्थान, ज्ञानिवंद्य श्रीशठकोपनामक सूर्य को नमस्कार हो।) एवं "कलयामि कलिध्वंसं कविं लोकदिवाकरम्" (दोषविनाशक सूर्य समान श्रीकलिध्वंसि यानी परकाल सूरी का ध्यान करता हूँ), "पुण्याम्भोजविकासाय पापध्वान्तक्षयाय च। श्रीमानाविरभूद्भूमौ रामानुजदिवाकरः॥" (पुण्यरूपी कमल खिलाने के लिए, एवं पापरूपी अंधकार मिटाने के लिए इस भूमंडल पर श्रीरामानुज नामक सूर्य उगा।) इत्यादि भी आचार्यों की स्तुति प्रसिद्ध है। अर्थात्, जैसे भगवान अच्युतभानु कहलाते हैं, वैसे आचार्य भी रामानुजदिवाकर इत्यादि कहलाते ही हैं। शयन छोडकर उठने की प्रार्थना का यह अर्थ है कि अपने मनमें ही अर्थचिंतन करने की समाधिदशा छोडकर, शिष्यों को उपदेश देने अभिमुख हो जाइए। शत्रुओं का दृष्टांत यहां पर भी ठीक लगता है। तथाहि यादव प्रकाश, यज्ञमूर्ति, वेदान्ती इत्यादि अन्यमतवाले विद्वान लोग, श्रीरामानुजस्वामी श्रीभट्टरस्वामी आदियों के साथ वादविवाद करने आकर, पीछे वादयुद्ध में पराजित होकर, और आपके शुभगुणों से आकृष्ट होकर, अपना गर्व छोडकर आपकी शरण में आ गये। भक्त शिष्यगण आचार्य संनिधि आते हैं, इसमें कोई अचरज नहीं है; आपसे स्पर्धा करनेवाले अन्य मतानुयायी प्रबल विद्वान लोग नम्र होकर जो आ जाते हैं, वही आपके वैभव का प्रतीक है। तथा च यह अर्थ हुआ कि, हे आचार्य! हम भी आपके पांडित्य और कल्याणगुणों के परवश होकर आपकी संनिधि में आये हैं; हमें कृपया उपदेश दीजिए॥ २१॥

(गाथा) अङ्गण्मा ञालत्तरशर् * अभिमानभङ्गमाय् वन्दुनिन् पळ्ळिक्कट्टिल् कीळे *
शङ्गमिरुप्पार्पोल् वन्दु तलैप्पेय्दोम् * किङ्गिणिवाय् चेय्द तामरैप्पूप्पोले *
शेङ्गण् शिरुच्चिरिदे एम्मेल् विळियावो * तिङ्गलु मादित्तियनु मेळुन्दार्प्पोल् *
अङ्गणिरण्डुङ्कोण्डु एङ्गळ्मेल् नोक्कुदियेल् * एङ्गळ्मेल् शापमिळिन्देलोरेम्बावाय्॥ २२॥

अम् कण् मा ञालत्तु अरशर्	सुन्दर व विशाल पृथ्वीतल पर (शासन करनेवाले) राजा लोग	निन् पळ्ळि कट्टिल् कीळे	आपके विराजने के सिंहासन के नीचे (पास)
अभिमान भङ्गमाय् वन्दु	(अपने) अभिमान का नाश होने पर आकर	शङ्गम् इरुप्पार्पोल्	संघशः (जत्था बनकर) जैसे रहते हैं, (इस तरह से)

वन्दु तलैप्पेय्दोम्	(हम भी अभिमान शून्य होकर, आपके निवासस्थान ढूंढती) आकर आपके पास आ गयी हैं ;
किङ्गिणि वायूचेय्द	छोटी किंकिणी के मुख के समान, (यानी अर्धविकसित)
तामरैपू पोले	- कमल पुष्प की तरह
शेम् कण् शिरु शिरिदु	(आपकी) लाल आंखें धीरे धीरे
एम् मेल् विळियावो	हमारे ऊपर क्या नहीं पडेंगी ?
तिङ्गलुम् आदित्तियनुम्	चंद्रमा और सूर्य, (ये दोनों)
एलुन्दाप्पोल्	शायद उगते होंगे, इस तरह से
अम् कण् इरण्डुम् कोण्डु	(अपने) सुंदर उभय नेत्रों से
एङ्गळ् मेल् नोक्कुदि एल्	अगर (आप) हम पर कटाक्ष डालेंगे
एङ्गळ् मेल् शापम् इळिन्दु एलोरेम्बावाय्	(तो) हमारे ऊपर का शाप निकल जाएगा ॥

पूर्वगाथा में गोपियों ने दृष्टांतपूर्वक अपने अनन्यगतित्व की विनती की । तो भी और कुछ विशेषरूप से इनका अभिप्राय जानने की इच्छा से भगवान चुप रह गये । अतः फिर भी इस पद्य से गोपियां यह विनती करती हैं—"हे प्रभो ! अगर किसी कारणवशात् आप हमारी उपेक्षा ही करेंगे, तो भी हम और किसी के वहां न जा सकती हैं ; हम आपकी ही अनन्यभक्ता हैं । तथापि किसी पापके कारण, अब आपसे विरहित होकर हम दुःख पा रही हैं । आपके शुभ कटाक्षवीक्षण पाने मात्र से उस पाप से छूटकर हम धन्य बन जाएँगी । अतः हमें उसीका लक्ष्य बना दीजिए ।" तथा च, पूर्वगाथार्थ का ही विवरण पूर्वक भगवान के कृपाकटाक्ष को मांगना, इस गाथा का लक्ष्य हुआ ।

(अङ्गण् माञालत्तु) इत्यादि । पूर्व गाथा में प्रदर्शित राज दृष्टांत का ही इससे विस्तृत वर्णन किया जाता है । परंतु वहां शत्रुओं की बात की गयी ; यहां पर शत्रु मित्र आदि विभाग के विना केवल ऐश्वर्यमदमत्तों की बात की जा रही है । शास्त्र बताता है कि ब्रह्मा, इंद्र आदि बडे बडे देवोंकी पदवी भी चिरकाल तक पूजित भगवान की कृपा से ही मिलती है । फिर इस विशाल पृथ्वी के किसी एक कोने का राजा बनना भी आपके अनुग्रह का ही फल है, इस बात को बताने की आवश्यकता ही कौनसी है ? तो भी ऐसे एक क्षुद्र राज्य का प्रभु होने मात्र से ये राजा लोग पौंड्रक वासुदेव की तरह, अपने को ही खुद ईश्वर मानते हुवे गर्वकी सीमाभूमि पहुँच जाते हैं । परंतु कुछ समय के अंदर ही इस गर्व के फलतया, वे नाना प्रकारके दुःख पाते हैं, जिससे उनका गर्व भी चूरचूर हो जाता है । बाद में अपनी भूल के लिए पछताते हुवे विभवावतार में और अर्चावतार में भगवान की संनिधि में आ पहुँचते हैं और आपकी सेवा में निरत हो जाते हैं । अनेकत्र ऐसे राजाओं से बनाये हुए मंदिर, प्राकार, गोपुर, विमान, मंडप, पुष्करिणी इत्यादि अभी भी मौजूद हैं । श्रीपरकालसूरि से मदरासनगर में तिरुवल्लिक्केणी नामक कैरविणी क्षेत्र, कांची नगर में अष्टभुज क्षेत्र, व वैकुंठनाथ क्षेत्र, तिरुनरैयूर

नामक सुगंध क्षेत्र, इत्यादि स्थलों में ऐसी सेवा करनेवाले नरेशों की प्रशंसा भी की गयी है। इनमें कोई कोई ऐसे भी होते होंगे, जो कभी गर्व न करते, जन्म से ही भगवद्भक्त हुये हैं। अभ्राभिमान शब्द से इनको भी संगृहीत करना चाहिए। भगवान को छोडकर दूर रहने पर प्रकृति संयोगवशात् फिर गर्व के गर्त में पडने के भय से ये आपके श्रीपाद की छाया में ही रह जाते हैं। तथाच गोपियों की यह विनती सिद्ध हुई कि उक्त गर्वमुक्त राजाओं की तरह हमने भी स्त्रीत्वाभिमान इत्यादि सभी गर्व छोड कर अनन्यार्ह शेषत्व में अचल रहती हुई आपकी पादच्छाया की शरण ली हैं।

अव गोपियां खास अपनी प्रार्थना सुनाती हैं (किङ्गिणिवाय्) इत्यादि से। प्रार्थना यह है कि आप हमारे ऊपर अपने कटाक्ष क्या नहीं डालेंगे। उस कटाक्ष का यह सुंदर वर्णन किया जाता है— शेङ्गण्शिरुच्चिरिदे इत्यादि। एकदम आपका पूरा कटाक्ष हम पर पडे तो, हम उसका सहन नहीं कर सकेंगी। गंगाजी के महाप्रवाह की तरह वह हमको डुबा देगा। अतः धीरे धीरे, थोडा थोडा सा आंख खोलते हुवे क्रमशः कटाक्ष डालिए। ऐसे मनोहर नेत्र का दृष्टांत है, छोटी किंकिणी की तरह आधा विकसित कमलपुष्प। और भगवान के नेत्र स्वभाव से ही लाल होते हैं; इसके उपरांत भक्तों के प्रति अत्यधिक प्रेम करने से वे और लाल होते हैं। इन नेत्रों की एक अभूतोपमा दी जाती हैं (तिङ्गळुमादित्तियनुम्) इति। यह तात्पर्य हैं—चंद्रमा सुशीतल तथा मनोहर रहता है; और सूर्य तो तीक्ष्ण एवं तेजस्वी। दोनों एक समय में कभी उगते नहीं; अगरे उगते होंगे तो हम एक साथ दोनों प्रकाशों का अनुभव कर सकते। चंद्रोदय समय में कमल पुष्प बंद हो जाता और सूर्योदय में वह खिल जाता। एक दम दोनों का उदय होने पर वह आधा विकसित और आधा वंद रहेगा। हमारे अपराधों के दर्शन में नेत्र को बंद हो जाना चाहिए; और आनुषंगिक प्रासंगिक इत्यादि कोई गुणलेश रहे तो उसको देखने के लिए नेत्र खुलना चाहिए। अथवा परमभक्तों के लिए सुशीतल और आह्लादकारक रहना चाहिए और द्वेष करनेवाले पापियों का संतापक एवं भयंकर होना चाहिए।

उक्त भगवत्कृपाकटाक्ष का फल वताया जाता है (एङ्गळ् मेल् नोक्कुदियेल्) इत्यादि से। भगवान का स्वाभाविक, कृपापूर्ण कटाक्ष ही भक्तों के लिए कल्याण कारक एवं रम्य होता है, नतु निर्बंध से खेंचे जानेवाला कटाक्ष। प्रकृत शब्दसंदर्भ से यह अर्थ सूचित किया जाता है। गोपियां कहती हैं कि, हे प्रभो! आपके कृपाकटाक्ष से हमारे ऊपर लगे हुवे सब शाप एकदम नष्ट हो जायंगे। शाप शब्द का यह अर्थ नहीं है कि कभी किसी ऋषि ने गोपियों से रुष्ट होकर उनको शाप दिया था। परंतु अवश्य अनुभोक्तव्य प्रारब्ध कर्म (पाप) ही यहां पर शाप कहलाता है, जिसके प्रताप से अब इस विरहदुःख को भोगना पडा है। भगवान का कटाक्ष पडते ही यह पाप नष्ट हो जाएगा एवं उसका फल विरह भी समाप्त हो जाएगा। यह बात इतिहास पुराणादियों में प्रसिद्ध है कि भगवान का कटाक्ष समस्त पातकों को एवं दोषों को मिटाकर सबको परिशुद्ध बनावेगा। यथा श्रीरामायण में श्रीरामचंद्रजी से शबरी ने कहा, "चक्षुषा तव सौम्येन पूतासि रघुनन्दन" (अर्थात, हे रघुनंदन! आपके सौम्य कटाक्ष से मैं पवित्र बन गई)। महा

भारत की कथा है कि संधि कराने के लिए जब श्रीकृष्ण हस्तिनावती पधारे, तब आपने परमभागवतोत्तम विदुरजी के वहां ठहर कर, "तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः" इत्युक्त प्रकार से भक्तिप्रेरित उन महात्मा से उपहृत अन्न पा लिये। भोजन के बाद आप राजसभा पधारे; वहां पर दुर्योधन ने आक्षेप पूर्वक आपसे यों पूछा कि, "भीष्मद्रोणावतिक्रम्य मां चैव मधुसूदन। किमर्थं पुण्डरीकाक्ष भुक्तं वृषलभोजनम्॥ हे मधुसूदन! ज्ञानवृद्ध भीष्म को, ब्राह्मणोत्तम द्रोणाचार्य को, एवं पराक्रम तथा ऐश्वर्य से समृद्ध मुझ को भी छोडकर, हे कमलनयन! तुमने क्यों कर शूद्र (विदुर) का अन्न खाया?" यह तो स्पष्ट है कि यहां पर दुर्योधन भगवान की निंदा कर रहा है। परंतु ऐसी वक्त वह संबोधन करता है मधुसूदन और पुंडरीकाक्ष! क्या ऐसा भी कदाचित् हो सकता है? परंतु दैवयोग से ऐसा हुआ। उसके हृदय में अंतर्यामी के रूप से रहनेवाले भगवान ने, उसके आक्षेप का समाधान खुद उसके मुख से ही बाहर निकाल दिया। अर्थात् पुंडरीकाक्ष शब्द ही दुर्योधनकृत आक्षेप का योग्य प्रत्युत्तर है। कैसे? इस तरह से, कि भगवान के पुंडरीक नयन के कटाक्ष का पात्र बनने मात्र से स्वयं विदुरजी एवं उनसे लाया गया हुआ अन्न, सभी एकदम परमपवित्र बन गये। फिर उस अन्न के भोजन में दोष कौनसा लगेगा? तथाच यह गोपियों की प्रार्थना हुई की हे प्रभो! हमें ऐसे परमपवित्र अपने कटाक्ष का लक्ष्य बना दीजिए॥

व्यंग्यार्थ का विवरण॥ आचार्य के पास शिष्य लोग अपनी प्रार्थना सुनाते हैं। पृथ्वीतल शब्द से पांचभौतिक यह शरीर सूचित किया जाता है। इसका मालिक, अहंकार ममकार पूर्ण जीवात्मा ही गर्वपूर्ण राजा कहलाता है। इस प्राकृतशरीर के संबन्ध से तो यह अहंकारी बन गया! ऐसे रहते, कदाचित् "सत्सङ्गाद्भवनिस्पृहः" इत्याद्युक्त प्रकार से महापुरुषों के संग के बल से इसका अहंकार व ममकार नष्ट हो जाते हैं, और यह आचार्य के पास जा पहुँचता है। क्रमशः यह उन आचार्य का अनन्यार्हशेष एवं अनन्यगति बन जाता है। तब वह आपसे प्रार्थना करता है कि, "हे स्वामिन्! आप कृपाकर ज्ञातव्य सकल अर्थों का उपदेश दीजिए। परंतु एकदम कठिन अर्थों को मैं समझ नहीं सकता हूँ; अतः धीरे धीरे, जैसे बालकों को उपदेश दिया जाता, वैसे क्रमशः उन अर्थों का उपदेश कीजिए।" सूर्यचंद्रों का उपमान बडा सुंदर है। भगवद्विषय, श्रीवचनभूषण आदि ग्रंथों का प्रवचन करने के समय में आचार्य का नेत्र आनंदपूर्ण एवं अत्यंत सौम्य रहता है। कारण कि इन ग्रंथों में भगवान के अनंत कोटि शुभ गुणों का, एवं आपकी दिव्यलीलाओं का ही वर्णन किया जाता है, जिनका विवरण करनेवाले का मुखकमल भी चंद्रमा की तरह बहुत प्रसन्न रहता है। परंतु प्रतिपक्ष खंडनपर कर्कश तर्क जटिल श्रीभाष्यादि ग्रंथों का प्रवचन करते करते, आचार्य का मुख सूर्य की तरह बहुत तेजस्वी रहता है, जिसके विवरण करने मात्र से मतांतर के दुर्वादी डर जाते हैं। एवं कृपा, वात्सल्य इत्यादि शोभन गुणों का लक्ष्य होनेवाले शिष्य को आचार्य चंद्रकी तरह परम मनोहर दीखते हैं; और आपके पांडित्य का ही ध्यान करनेवाले प्रतिपक्षियों को आप सूर्य जैसे तेजस्वी और अजेय दीखते हैं। आचार्य के ये दोनों प्रकार शिष्य का संतोषकारक

होते हैं। अतः दोनों की दिदृक्षा यहां बतायी जाती है। अथवा, आचार्य से प्रसन्नशीतल भगवद्विषयादि का, एवं कठिन तथा अप्रधृष्य श्रीभाष्यादि का उपदेश मांगा जाता है।

आगे आचार्य के दोनों नेत्रों का कटाक्ष मांगा जाता है। इस विषय में श्रीवेदांतदेशिकस्वामीजी का यह पद्य अनुसंधेय है—एकयैव गुरोर्दृष्ट्या द्वाभ्यां वाऽपि लभेत यत्। न तत्त्रिभिरष्टाभिस्सहस्रेणापि कस्यचित्॥ इसका यह तात्पर्य है—गुरू के एक नेत्रमात्र से अथवा दो नेत्रों से (अर्थात् एक वा दो नेत्रों का कटाक्ष पाने से) मानव को जो कल्याण होगा, वह तीन नेत्रवाले शिवजी के कटाक्ष से, अथवा चतुर्मुख होने से आठ नेत्रवाले ब्रह्माजी के कटाक्ष से, अथवा "सहस्रशीर्षा पुरुषः, सहस्राक्षस्सहस्रपात्" इत्याद्युक्त प्रकार से हजार नेत्रवाले श्रीमन्नारायण के कटाक्ष से भी न मिल सकेगा। आचार्य का एक नेत्र, कहने का यह अर्थ नहीं है कि आपका दूसरा नेत्र काना बन गया है। परंतु दो नेत्र शब्द से बाह्य नेत्र एवं भीतर का नेत्र ये दोनों कहे जाते हैं। शिष्य को कल्याण चाहनेवाला आचार्य का मंगलमय मन ही भीतर का नेत्र है। तथाच यह अर्थ निकला - आचार्य किसी को अपने कृपापूर्ण नेत्र से अगर एक वार देख लेवें तो, अथवा, प्रत्यक्ष दर्शन के अभाव में भी अपने मनमें किसी का मंगल होने का अनुग्रह करें तो भी वह मानव ऐसे श्रेष्ठ श्रेय का पात्र बन जाएगा, जो कि त्रिमूर्तियों के कटाक्ष से भी न मिलेगा। फिर आचार्य के उक्त दोनों दृष्टियों का पात्रभूत व्यक्ति, अर्थात् कल्याणकारी शुभ आशीर्वाद देनेवाले अपने मन के साथ बाह्य नेत्र से भी आचार्य जिस भाग्यवान को देखेंगे, उसके महाभाग्य के बारे में कहना ही क्या? इस प्रकार से अमोघ अनुग्रह करने समर्थ आचार्य के उभय प्रकार के नेत्रों का कटाक्ष यहां पर शिष्य से मांगा जाता है। सुना जाता है कि श्रीरामानुज स्वामीजी को श्री यामुनाचार्य स्वामीजी का ऐसा मंगलाशासनरूप कृपाकटाक्ष मिला था, जिसके बल से ही आप सत्संप्रदायनिर्वाहक, लोकोद्धार समर्थ, महान आचार्य बन गये। एवं श्रीवेदांतदेशिक स्वामीजी को भी बचपन में ही श्री वात्स्य वरदाचार्य स्वामीजी का एक महान अनुग्रह मिला था।

अब इस अर्थका विवरण अनपेक्षित है कि ऐसे महाचार्य के कटाक्ष मिल जाने पर शिष्य के समस्त पाप नष्ट हो जायंगे और वह समस्त कल्याण का पात्र बन जाएगा। कल्याण तो यही है कि आचार्य संनिधि में ही नित्यनिवास करना और आपकी सर्वदेश सर्वकाल सर्वावस्थोचित सर्वविध सेवा करना॥ (२२)

(गाथा) * * मारिमलैमुळञ्जिल् मन्निक्किडन्दुरङ्गुम् * शीरिय शिङ्गमरिवुत्तु तीविळित्तु *
वेरि मयिर्पोङ्ग वेप्पाडुम् पेर्न्दुदरि * मूरिनिमिर्न्दु मुळङ्गि प्पुरप्पट्टु *
पोदरुमापोले नी पूवैप्पूवण्णा * उन् कोयिल् निन्निङ्ङने पोन्दरुळि * कोप्पुडैय
शीरिय शिङ्गाशनत्तिरुन्दु * याम् वन्द कारियम् आराय्न्दरुळेलो रेम्बावाय्॥२३॥

मारि	-	वर्षाकाल में
मलै मुळज्ञिल्	-	पहाड की गुफा में
मन्नि किडन्दु उरङ्गुम्		(अपनी स्त्री के साथ) ठीक मिलकर लेटते गाढ निद्रा करनेवाला
शीरिय शिङ्गम्	-	(पराक्रम से) श्रेष्ठ सिंह
अरिवुत्तु	-	जागकर (शयन से उठकर)
ती विळित्तु		चिनगारी निकल जावें इस तरह से आंख खोलकर
वेरि मयिर् पोङ्ग		(जात्युचित) सुगंध बहनेवाले केशरको(अयाल) बिखराते हुवे
एप्पाडुम् पेर्न्दु	-	चारों ओर शरीर हिलाकर,
उदरि मूरि निमिर्न्दु		फिराकर, आलस्य निकालने के लिए हाथ पैर लंबा कर
मुळङ्गि पुरप्पट्टु	-	गर्जन कर, अंदर से निकल कर
पोदरुमा पोले	-	जैसे बाहर आता है, इस तरह से,
पूवैप्पू वण्णा नी		हे अतसी पुष्प समान रंगवाले श्रीकृष्ण! तुम
उन् कोयिल् निन्नु	-	अपने मंदिर से
इङ्ङने पोन्दरुळि		इस दिशा में (यानी आस्थान मंडप में) कृपया पधारकर,
कोप्पुडैय शीरिय शिङ्गशनत्तु इरुन्दु		मनोहर आकारवाले अति श्रेष्ठ सिंहासन पर विराजकर,
याम् वन्द कारियम्		हमारे आनेके निमित्त कार्य का (हमारी अपेक्षा का)
अराय्न्दरुळ् एलोरेम्पावाय्		कृपा से विचार करो ॥

पूर्वगाथोक्त प्रार्थना से भगवान गोपियों के प्रति खूब प्रसन्न हो गये और अत्यादर से उनसे बोले—"हे मेरी प्रिय गोपियां! आधी रात को उठकर, सब को जगाकर, और हमारे घरपर भी द्वारपालक आदियों को जगाकर, मेरे पास आ पहुँचनेवाली तुम लोगों ने कितना कष्ट उठाया! यह तो मुझे बहुत लजाता है कि मेरे लिए तुमको इतना कष्ट उठाना पडा। स्वयं तुम्हारे वहां जाकर, तुमसे पूछकर तुम्हारी सेवा करना, यह मेरा कर्तव्य था। अब तो यह उलटा हो गया। श्रीरामावतार में भी मुझे ऐसा ही एक संकट आया था। मैं तो महर्षियों की सेवा करने के लिए ही दंडकारण्य जाता रहा। उतने में वे ही महात्मा मेरे पास आकर राक्षसों की ओर से रक्षा मांगने लगे। उनका वचन सुनते ही मैंने जो संकोच का अनुभव किया, उसका कैसे वर्णन करूं। मैं ने तुरंत उनसे क्षमा मांगी—प्रसीदन्तु भवन्तो मे हीरेषा हि ममातुला। यदीदृशैर्महाभागैरूपस्थेयैरुपस्थितः" (हे महात्मा लोग! योग्य समयपर आपकी सेवा में उपस्थित होना मेरा कर्तव्य था। परंतु अब आप लोग अर्थी बनकर मेरे पास आ रहे हैं। इससे मुझे बहुत शरम लगती है। कृपया आप मेरे इस अपराध की क्षमा कर दीजिए) इत्यादि से। भक्ति में तुम लोग तो उन ऋषियों से भी श्रेष्ठ हैं। अतः तुमसे भी मुझे क्षमा ही मांगनी पडती है। अस्तु। अब मैं तुम्हारा इष्ट पूर्ण करना चाहता हूँ। कृपया बता दो कि तुम्हारी कौनसी अपेक्षा है। जो मांगोगी, सो दे दूँगा; वगर संकोच कह देना।" इस वचन के प्रत्युत्तर में गोपियां विनती करती हैं—"हे प्रभो! यह हमारी प्रार्थना शय्यापर रहस्य में रहकर आपसे सुनी जानेवाली नहीं है। मगर, आप कृपया दरबार में सिंहासनपर विराजिए; फिर हम अपनी प्रार्थना सुनावेंगी। और दूसरी बात यह भी है कि अब तो हमें आपके शयन काल के सौंदर्य का दर्शन मिला; एवं आपके उठने की, चलने की एवं

विराजने की शोभा का भी दर्शन करने हम चाहती हैं। अतः हमारी इस आशा को भी पूर्ण करते हुवे दयामय आप शय्या से उठकर, अपनी मनोहर गति से चलकर सिंहासन पर विराजिए। फिर हम अपनी प्रार्थना सुनावेंगी।" गोपियों की इस प्रार्थना का सुंदर वर्णन करना इस गाथा का काम है। भगवान के यात्रोत्सव का वर्णनपर होने से इसका दो वार पाठ किया जाता है।

श्रीकृष्ण भगवान की, शयन से उठकर अंतःपुर से बाहर पधारनेतक की अवस्था का एक बडा रोचक दृष्टांत दिया जाता है पूर्वार्ध से। वर्षाकाल में पर्वतगुहा में अपनी स्त्री के साथ सोकर नींद करनेवाला सिंह, बाद में उठकर, चारों ओर दृष्टि फैलाकर, कोई आगंतुक आया हो उसकी जांचकर, केशर के साथ अपना सारा शरीर हिलाकर, हाथ पैरों को लंबा करते हुवे बडी आवाज निकालकर, गंभीरतया बाहर निकलता है। ऐसा परमगंभीर सिंह ही भगवान का उपमान बताया गया है। पहली गाथा में ही श्रीकृष्ण बालसिंह कहे गये थे। वाल्मीकी ने भी श्रीरामचंद्रजी के प्रस्थान का यही उपमान दिया— निश्चक्राम सुमन्त्रेण सह रामो निवेशनात्। पर्वतादिव निष्क्रम्य सिंहो गिरिगुहाशयः ॥ (अयो. १६-१८) [इसका यह तात्पर्य है—पर्वतगुफा में शयन करनेवाले सिंह की तरह श्रीरामचंद्रजी सुमंत्र के साथ अंतःपुरसे बाहर निकलकर....] शायद इस पद्य का अनुसंधान कर ही गोदादेवी ने प्रकृतगाथा रची। अस्तु। अब शब्दार्थ का विवरण करेंगे।

(मारि) चौमासे में जब कि पानी से रास्ता सब कीचड बन जाता है, राजा लोग अपने शत्रुओं से वैरभाव भी छोडकर युद्ध से निवृत्त होकर घर पर ही रह जाते हैं। श्रीरामचन्द्रजी भी, सीतावियोग का सहन करने में सर्वथा अशक्त होते हुवे भी, वर्षा में विजय यात्रा करने का विचार छोडकर ऋश्यमूक पर्वत में चार मास चुप रह गये। इस तरह से सिंह भी इस समय में शिकार छोडकर पर्वतों की गुफा में निश्चिंत सो जाता है। एवं श्रीकृष्ण भी नीलातुङ्गस्तनगिरितटी सुप्त थे। बाद में निद्रा छोडकर उठते वह जो जो काम करता उसका स्वाभाविक वर्णन किया जाता है (वेरि मयिर् पोङ्ग) इत्यादि से। शयनकाल में संकुचित केशर, हाथ, पैर इत्यादियों को शरीर हलाने से सिंह खुला देता है। "मेरे निद्राकाल में इधर कौन आया था?" शायद यों जांच करता होगा, इस तरह से चारों ओर दृष्टि फिराता है। शरीर को स्वाधीन करने के लिए इधर उधर फिरता है। फिर गंभीर ध्वनि करता है। पश्चात् बाहर निकलता है। गंभीर स्वभाववाला होने से सिंह की ये सब चेष्टाएँ बडी मनोहर दीख पडती हैं। अब गोपियां श्रीकृष्ण की भी ऐसी चेष्टा देखने चाहती हैं। शायद इनमें से एक दो चेष्टा कम होंगे, अथवा इनसे अधिक भी कोई चेष्टा होगी। इस बातपर विवाद नहीं है। परंतु ऐसी सभी आपकी चेष्टाएँ अधिक मनोहर जरूर होती हैं। इस तरह से भगवान भी शयनावस्था में गोपियों का काम भूल गये थे, अब उस काम में जागने की प्रार्थना की जाती है। गोपियों की इस बडी गोष्ठी से पुकारे जानेपर भगवान के मनमें यह शंका उठेगी कि, "क्या इनको किसी दुष्टने दुःख दिया?" फिर उस मनोनीत दुष्ट पर क्रोध से आपके नेत्र अधिक चमकने लगते हैं। हाथ पैरों को हिलाना भी स्वाभाविक व मनोहर क्रिया है।

भक्तों को अभय देने का गंभीर स्वर गर्जन कहला सकता है। इस प्रकार से पधारकर दिव्य सिंहासनपर विराजने की प्रार्थना की जाती है। इस श्रेष्ठ धर्मासन पर विराजकर प्रजाओं के सुखदुख की जांच करना शासक का कर्तव्य होगा। धर्मासनस्थ प्रभु की आज्ञा कभी बदलेगी नहीं, और सबको शिरोमान्य होगी। अत एव गोपियां अभी अपनी खास प्रार्थना सुनाने को संकुचाती हैं; अर्थात् सिंहासनारूढ भगवान को स्तुतिवचनों से प्रसन्न करा कर, आपसे अभयवचन पाकर, बाद में, "शित्तम् शिरुकाले" इत्यादि (उंतीसवी गाथा में) प्रार्थना सुनाने की इच्छा रखती हैं। अन्यथा, असमय में विज्ञापन करने पर, स्वतंत्र भगवान उस प्रार्थना को कदाचित् टाल भी सकते हैं। इस कारण से सिंहासन पर विराज ने की यह मांग की जाती है।

व्यंग्यार्थका विवरण ॥ इस गाथा से, "जैनेभकंठीरवः" इत्यादि स्तुति के अनुसार, एवं वेदोंतसगुहाविहारपटुना श्रीशैलशृङ्गोल्लसन्मायाकेसरिमानितेन गहनन्यायाटवीचारिणा। गम्भीरेण परात्म भेदनमहानादेन नाथेन मे गुप्तोऽहं यतिसार्वभौमहरिणा वर्ते भृशं निर्भयः॥ (अर्थात् वेदांतरूपी गुफा में फिरनेवाले, श्रीशैल शिखर विहारी भगवान से संमानित, गहन न्याय रूप वन में संचार करनेवाले, गंभीर स्वभाववाले, दुर्वादियों का हृदय भेदन करने समर्थ वाग्वैभववाले, हमारे नाथ, श्री यतिराज रामानुजस्वामीजी नामक सिंह से सुरक्षित रहने के कारण मैं निर्भय रहता हूँ।) इस पद्य के अनुसार सिंहोपमेय श्री रामानुज-स्वामीजी संबोधित किये जाते हैं। आपको अतसी पुष्प सदृश कहने का यह तात्पर्य है कि जैसे पुष्प में मधु पीने के लिए भ्रमर उसको घिर लेते हैं, इसी तरह से आचार्य के मुखारविंद से निकलने वाला उपदेशामृत पीने के लिए रसिक शिष्य वृंद आपके पास हमेशा रहते हैं। अथवा उनके हृदयकमल में निवास करने वाले नीलमेघश्याम की छवि शरीर में छा रही है, जिससे शुद्ध स्फटिक समान उनका विग्रह भी नील प्रतीत होता है।

(मारि) शब्द से "अविवेकघनान्धदिङ्मुखे बहुधा संतत दुःख वर्षिणि। भगवन् भवदुर्दिने" इत्युक्तप्रकार से अविवेक रूप मेघाच्छन्न संसार में अविच्छिन्न बरसनेवाली दुःख वर्षा, अथवा ऐसा संसार सूचित किया जाता है। अथवा, "त्वदीक्षणसुधासिन्धु वीचिविक्षेपशीकरैः। कारुण्यमारुतानीतैः शीतलै-रभिषिञ्च माम्।" (हे वरदराज भगवन्! दयारूप पवन से लाये हुए, आपके कृपाकटाक्ष रूप अमृत सागर के लहरों के कणों से मुझको नहा दीजिए) इत्युक्त भगवत्कृपा कटाक्षवर्षण सूचित किया जाता है। श्रीकूरेशस्वामीजी ने भी इस वृष्टिका वर्णन किया—"हस्तीश! दृष्ट्यमृत वृष्टिभिराभजेथाः" (हे वरदराज भगवन्! अपने कटाक्षरूप अमृतवर्षा से मुझे अनुगृहीत करो)। तथा च, श्रीरामानुज स्वामीजी जैसे महान आचार्य, दुःख वर्षण करनेवाले इस संसार में रहते हुए भी भगवान के कृपाकटाक्ष वर्षण का पात्र होकर विराजते हैं; और अपने पादाश्रित सज्जनों को दुःखवर्षा दूरकर भगवत्कृपावर्षण दिलाते हैं—ऐसा अर्थ सूचित किया जाता है।

(मलैमुळ‌ञ्जिल्) इत्यादि। मलै यानी पर्वत शब्द से पर्वत की तरह अपार, अगम्य वेदादि शास्त्र कहे जाते हैं। उनकी गुफा तो, रहस्य शास्त्रार्थों से भरित उनके विशेष प्रकरण हैं; अर्थात् उपनिषदादि श्रेष्ठ अर्थ बोधक भाग हैं। उसमें (मन्नि) - स्थिरचित्त होकर, (किडन्दु उरङ्गुम्) — अनन्यचित्त होकर, यानी दूसरे किसी पदार्थ पर जाने से मन को बंदकर, एकाग्रचित्त से उन रहस्यार्थों का चिंतन करनेवाले होते हैं आचार्य। समाधि जैसी यह एकाग्रचित्त ध्यानावस्था ही यहां पर निद्रा कही जाती है। निद्रा से जागने का यह तात्पर्य है कि उस समधि को छोडकर शिष्योद्धार रूप अपने अवतारके प्रयोजन में जागृत होना। ऐसे जागृत होने पर, "पाषण्ड द्रुमषण्डदावदहनः" (पाषंडीरूपी वृक्षसमूह को दावाग्नि के समान हैं श्रीरामानुजस्वामी) इत्याद्युक्त प्रकार से आपके कटाक्ष वीक्षण से ऐसे अग्निकण निकलते हैं कि उससे सभी दुर्वाद एक दम जल जाते हैं। अवयवों को हिलाना तो, "श्रीरङ्गं करिशैलम्" इत्याद्युक्तप्रकार से धर्म प्रचारार्थ श्री स्वामीजी से की जानेवाली दिव्यदेश यात्रा है। (वेरि मयिर् पोङ्ग) कहने से, दूसरे यतियों की तरह शिखायज्ञोपवीतों का त्याग न करते हुए, उनसे समलंकृत श्रीस्वामीजीका दिव्य मंगल विग्रह सूचित किया जाता है। "काषायशोभि कमनीयशिखानिवेशम्" इत्यादि। फिर, आलस्य छोडना तो स्पष्ट ही है—नित्यकर्मानुष्ठान, सेवा, पूजा उपदेश इत्यादि कामों में किसी प्रकार का आलस्य न करना। गरजने का अर्थ भी शास्त्रार्थ का प्रवचन है, जिस से शिष्यलोग प्रसन्न होते हैं और दुर्वादि मिट्टी में मिल जाते हैं। श्री रामानुज स्वामीजी की दिग्विजययात्राओं में सर्वत्र ऐसा सिंहगर्जन ही गर्जन था।

(कोयिल्निन्नुम्) इत्यादि। गर्भगृह का लक्ष्य है अवतारस्थल श्रीभूतपुरी। श्री स्वामीजी का अवतार भूतपुरी में हुआ तो सही। परंतु जब आप उधर से निकल कर बाहर आ गये, फिर आप वापिस कभी वहां पधारे नहीं। वहां से कांचीपुरी, श्रीरंगक्षेत्र, वेंकटाद्रि, यादवाद्रि इत्यादि क्रम से अन्यत्र ही आप घूमते रह गये। श्रेष्ठसिंहासनशब्द से आपकी आचार्य गद्दी सूचित की जाती है। प्रवचन करने के समय में विराजने के लिए आचार्यों की विलक्षण गद्दी रहती है। अथवा "गाथा ताथागतानां गलति" इत्यादि यतिराजसप्तति पद्य में "भजति यतिपतौ भद्रवेदीं त्रिवेदीम्" इत्युक्त प्रकार से भेदश्रुति, अभेदश्रुति, घटक-श्रुति नामक तीनों प्रकार के श्रुति वाक्यों का समन्वय पूर्वक समस्त श्रुतियों का समंजस अर्थ बतानेवाले श्रीरामानुजस्वामीजी की असाधारण उक्त त्रिवेदीगद्दी यहां पर सूचित की जाती है। "ऐसी गद्दीपर विराजमान होकर, हमारी आवश्यकता का विचार करो" कहने से प्रवचन समय में शिष्यों पर किये जानेवाला विलक्षण अनुग्रह मांगा जाता है॥ (२३)

(गाथा) अन्निव्वुलहमळन्दा यडि पोत्ति * शेन्नङ्गुत्तेन्निलङ्गै शेत्ताय् तिरल् पोत्ति *
पोन्नचहडमुदैत्ताय् पुहळ् पोत्ति * कन्नु कुणिला वेरिन्दाय् कळल् पोत्ति *
कुन्नुकुडैयायेडुत्ताय् गुणम् पोत्ति * वेन्नु पहै केडुकुम् निन्कैयिल्वेल् पोत्ति *
एन्नेन्नुन् शेवहमे येत्ति प्परैकोळ्वान् * इन्नुयाम् वन्दोमिरङ्गेलोरेम्बावाय् ॥ २४ ॥

अन्नु	उस समय में (जब कि इंद्रादि देव गण महाबलिसे पीडित हुए थे),
इव्वुलहम् अळन्दाय्	इन लोकों को (अपने दो चरणों से) नापनेवाले (हे त्रिविक्रम भगवन् !)
अडि पोत्ति	(तुम्हारे उन श्रीचरणों की जय हो ।
अङ्गु शेन्नु	उधर जाकर (जहां सीताप-हरण करनेवाला रावण निवास करता था),
तेन् इलङ्गै शेत्ताय्	सुंदर लंकापुरी का नाश कर देनेवाले (हे श्रीरामचन्द्र !)
तिरल् पोत्ति	(तुम्हारे) पराक्रम की जय हो ।
शकटम् पोन्न उदैत्ताय्	शकटासुर नष्ट हो जाय, इस तरह से (उस शकट पर) लात मारनेवाले हे (श्रीकृष्ण) !
पुहळ् पोत्ति	(तुम्हारे) यश की जय हो ।
कन्नु कुणिला एरिन्दाय्	बछडे के रूप में आनेवाले (वत्सासुर नामक) एक असुर को दंड बनाकर (उसको कपित्थासुर के ऊपर) फेंकने-वाले हे (नंदनंदन) !
कळल् पोत्ति	(तुम्हारे) पादारविंदों की जय हो ।
कुन्नु कुडैया एडुत्ताय्	हे गोवर्धन पर्वत का छत्र के रूप में धारण करनेवाले !
गुणम् पोत्ति	(तुम्हारे सौशील्य सौलभ्यादि) गुणों की जय हो ।
वेन्नु पहै क्केडुक्कुम्	(शत्रुओं को) जीतकर द्वेष मिटा देनेवाले हे (विजयिन्) !
निन् कैयिल् वेल् पोत्ति	तुम्हारे हस्तगत वेलायुध (चक्रायुध) की जय हो ।
एन्नु एन्नु	- इन इन प्रकारों से
उन् शेवकमे एत्ति	तुम्हारे वीर चेष्टितों का ही यशोगान करती हुई,
याम् इन्नु परै कोळ्वान् वन्दोम्	हम आज पुरुषार्थ लेने केलिए (तुम्हारे पास) आ गयी हैं।
इरङ्गु एलोरेम्पावाय्	- दया करो ॥

भगवान का एक महान विरुद है-भक्त पराधीन, जो भक्तों से विशेषतः प्रशंसित होता है। सर्वस्वामी होकर भी भगवान अपने प्राणप्यारे भक्तों का किङ्कर बन जाते हैं प्रेम की वजह से। अत एव आप भारतयुद्ध के समय में अर्जुन का रथ हांकनेवाला सारथी बन गये; पांडवों का दूत भी बन गये। अतः, हाल में भी अपने इस गुण का प्रकाशन करते हुए, गोपियों से सादर यों कहते हुए कि, "अरे मेरी प्राणप्यारी गोपिकाएँ ! तुम्हारी अपेक्षा के अनुसार मैं अभी आ रहा हूँ," आप शय्या छोडकर दिव्यास्थान मंडप की ओर चलने लगे। यह दृश्य देखते ही गोपियों के मन में बडा सङ्कोच और पश्चात्ताप होने लगा। भगवान के सौंदर्य के दर्शन करने की आशा से पूर्वगाथा में उन्होने आपसे सवारी निकलने की प्रार्थना की तो सही। परंतु अब आपकी अतिमात्र कोमलता उनके ध्यान में आयी। अर्थात् कमल के पराग भी जिनके पग को कांटा प्रतीत होते, चेटियों की नजर पडने पर भी जिनकी शोभा फीकी पड जाती, हाथ में लीला कमल धरना भी जिन को साहसकार्य प्रतीत होता, ऐसे परम कोमल दिव्य मंगल विग्रहवाली

श्री महालक्ष्मी जी भी जिनके पैर दबाती बहुत सकुचती हैं, अर्थात् लक्ष्मीजी का करस्पर्श भी जिन पादारविंदों को कठिन प्रतीत होता है, ऐसे सुकुमारतर दिव्य पादों को श्रीकृष्ण ने इस कठिनतम पृथिवी पर धर दिया न ? इससे आपको कितना दुःख लगता होगा ? हाय ! कठिनचित्त, पापिनी हमने यह क्या प्रार्थना की ! यह तो बडा अनुचित हो गया । ऐसे विचार करती हुई गोपियां अत्यंत प्रेमपरवश होकर आपका मंगलाशासन करती हैं इस गाथा से ।

भगवान के अलौकिक सौंदर्य व सौकुमार्य का दर्शन करते ही लोग इतने परवश हो जाते हैं, कि वे अपने स्वकार्य को भी एकदम भूलकर मंगलाशासन करने लग जाते हैं । यथा, दंडकारण्य के निवासी ऋषिगण राक्षसों से पीडित हो कर, रक्षा पाने के लिए बहुत समय से श्रीरामचंद्रजी की प्रतीक्षा करते थे । परंतु जब आप उनके बीच में पधार गये, तब क्या हुआ ? रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम् । ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वनचारिणः ॥ ते तं सोममिवोद्यन्तं दृष्ट्वा वै धर्मचारिणः । मङ्गलानि प्रयुञ्जानाः प्रत्यगृह्णन् दृढव्रताः ॥ (अर्थात् वनेचर वे ऋषियों श्रीरामचंद्रजी के अलौकिक सौंदर्य, शोभा, सुकुमारता, सुंदरवेष आदि के दर्शन करते आश्चर्य परवश हो गये । जप तप आदि करने में ही निरत, और उस अपने व्रत से कदापि न चूंकनेवाले वे महर्षि, उगनेवाले पूर्णचंद्र के समान उन श्रीरामचंद्रजी के दर्शन करते ही, आपका मंगलाशासन करते स्वागत करने लगे ।) यह तात्पर्य है कि प्रभुकी सुकुमारता पर नजर डालते ही वे लोग अपने स्वकार्य को भी भूलकर, यों विचार करने लगे कि, " कांटा कंकड आदि से भरे हुए इस जंगल में चलते फिरते अतिसुकुमार इनको कितना दुःख लगता होगा, और क्रूर राक्षसों से परिपूर्ण इस वन प्रदेश में उन दुष्टों की ओर से न जाने कब कौनसी आपत्ति आवेगी । अतः इन दुःखों को दूर करने के लिए हमें कुछ न कुछ प्रयत्न करना ही चाहिए ।" यही काम है मंगलाशासन - मंगल की कामना करना, यानी कुशल चाहना ।

यहां पर ऐसी एक शंक की जा सकती है कि, मंगलाशासन तो आशीर्वाद देना है । लोक व्यवहार में हम देख रहे हैं कि बडे लोग, अपने पुत्र शिष्य आदियों को आशीर्वाद देते हैं; नतु छोटा बडों को देता है । कारण कि आशीर्वाद देने की शक्ति बडों में रहती है, नतु छोटे में । एवं भगवान तो सर्वशक्त, समस्त दोषदूर एवं सर्वकल्याणनिधि हैं । अतः आपको अमंगल होना ही असंभावित है ; और अगर कभी किसी कारणवशात् हो भी जाय, तो क्या यह अल्पज्ञ तथा अल्पशक्तिवाला जीव उसको मिटा भी सकेगा ? नहि नहि । वस्तुतस्तु यह चेतन ही अपना अमंगल मिटाने के लिए, एवं कल्याण पाने के लिए, भगवान के पास जाता है । अतः यह मंगलाशासन न केवल व्यर्थ है, किंतु अपने स्वरूप का विरुद्ध भी है ।

श्री लोकाचार्य स्वामीजी ने श्रीवचनभूषण नामक अपने दिव्यग्रंथ में इस विषय की खूब चर्चा की है । उसका सारांश मात्र यहां पर बताया जाता है । भगवान के प्रति भक्तों की प्रेमावस्था दो प्रकार की होती

है—ज्ञानावस्था एवं उत्कट प्रेमावस्था। ज्ञानावस्था में भक्त, भगवान के सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तियुक्तत्व, मंगल मयत्व, आदि सभी गुणों को ठीक जानते हैं, और सर्वरक्षक आप से अपनी रक्षा मांगता है। परंतु, जब यह ज्ञान ही कुछ बढकर अधिक प्रेमरूपी बन जाता और भगवान का सौंदर्य एवं सौकुमार्य ही विशेषतः जब भक्त के अनुभव का विषय वनता, तब सर्वज्ञत्व सर्वरक्षकत्व आदि भगवान के सभी पूर्वोक्त गुण एकदम विस्मृत हो जाते हैं, और भक्त आपकी रक्षा करने का विचार कर देता है। प्रेम का यह स्वभाव है कि उससे मनुष्य अंध-सा हो जाता है। इस प्रेमान्ध्य से वह अपने को रक्षक एवं भगवान को रक्ष्य, मान लेता है और तदनुगुण चेष्टा भी करने लगता है। यह चेष्टा समय के अनुगुण मानसिक, मौखिक अथवा कायिक होती हैं। मौखिक चेष्टा का नाम है मंगलाशासन, अथवा जयकार बोलना। इतिहास पुराणों में, इस तरह से प्रेम परवश हो कर भगवान को मंगलाशासन करनेवालों के अनेक चरित्र उपलब्ध हैं। भगवान की विशेष कृपा से उभयविभूति के समस्त वृत्तांतों का विशद साक्षात्कार करनेवाले आल्वार गाते हैं कि समस्त प्रकार के दुःखः क्लेश, आपत्ति इत्यादियों से मुक्त परमपद में विराजमान नित्यसूरि वर्ग भी, भगवान के सौकुमार्य का अनुसंधान करते हुए आपकी सुरक्षा करने का प्रयत्न करते रहते हैं। उनके अनुयायी पूर्वाचार्य भी इन नित्यसूरियों की प्रशंसा करते हैं कि ये "स्नेहादस्थानरक्षाव्यसनी" हैं। अर्थात्, जहां पर किसी प्रकार की आपत्ति न हो सकती है, वहां, विना कारण, रक्षा करने उद्यत रहतें हैं ये अनंत गरुड विष्वक्सेन सुदर्शन पांचजन्य आदि सूरिगण। तथा च, "अत्यंत भक्तियुक्तानां न शास्त्रं नैव च क्रमः" इत्याद्युक्त प्रकार से सीमातीत भक्तिवाले लोग भगवान के सौंदर्य व सौकुमार्य देख कर आपकी रक्षा करने की जो चेष्टा करते हैं, यह तो सर्वथा उचित ही है।

विशेषतः मंगलाशासन तत्पर श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी की सुपुत्री श्रीगोदादेवी को भी यह क्रिया अवर्जनीय है। इनका प्रेमान्ध्य इतना घनिष्ठ होता है कि ये, कभी बीत गये चरित्रों के लिए अब मंगलाशासन करती हैं! इस विचित्र बर्ताव का कारण यह है कि गोदादेवी के अभिप्राय से अतीत उन उन लीलाओं के समय में किसी ने भगवान का मंगलाशासन करने की सोच तक न की; सब एकदम द्वेषी, स्वार्थलोलुप अथवा उदासीन ठहर गये; अतः उस न्यूनता के परिहार के लिए अब हमें मंगलाशासन करना चाहिए।

(अन्रिव्वुलहमळन्दाय्) इत्यादि से त्रिविक्रमावतार में तीन लोकों को नापनेवाले भगवान के श्रीचरण का मंगलाशासन किया जाता है। त्रिविक्रमावतार का यह प्रसिद्ध वृत्तांत है—इंद्र को जीतकर महाबलि ने जब तीनों लोकों पर अपना आधिपत्य जमा दिया, तब उसकी एवं अदिति कश्यपों की प्रार्थना मानकर भगवान ने एक वामन ब्रह्मचारी के रूप में अवतार लिया और यज्ञशाला में महाबलि के पास जाकर उससे तीन पग भूमि माँगी; और वह दान पाकर, झट त्रिविक्रम नामक बडे रूप का धारण कर, एक पग से सारी पृथ्वी का, एवं दूसरे से आकाशका नाप कर दिया। तीसरा पग धरने का स्थान ही न मिला। अतः आपने उसको महाबलि के सिरपर रखकर, उसको रसातल भेज दिया। इस समय में कांटे, कंकड आदि से व्याप्त इस कठिन पृथिवी पर धरने से भगवान के कोमल पग को जो दुःख हुआ, उसकी सोच

कर उन पादारविंदों का मंगलाशासन करनेवाला कोई भी न था। दैत्य दानव लोग तो स्वभाव से ही भगवान से द्वेष करनेवाले होते हैं और हाल में अपना ऐश्वर्य खोकर विशेष दुःखी भी थे; अतः वे कथंचिदपि मंगलाशासन करने में उद्युक्त न थे। देवता लोग यद्यपि भगवान के भक्त थे; अतः वे मंगलाशासन कर सकते थे। तथापि उस समय में अपने नष्ट ऐश्वर्य की प्राप्ति से वे इतने मस्त हो गये थे कि उन्होने एकदम भगवान को भूल ही गया। और संसार में रहनेवाले मामूली लोग सर्वथा अपने लौकिक कार्य में मग्न होकर इस वृत्तांत को जान भी न सके; दूर रह गयी मंगलाशासन करने की बात। अतः किसी के मंगलाशासन से विरहित उस त्रिलोकाक्रमण वृत्तांत के लिए अब गोपियां मंगलाशासन करती हैं।

यह मंगलाशासनस्तुति सुनकर श्री कृष्णने कहा—"गोपियां! तुम्हारा प्रेम वास्तव में ही अतिश्रेष्ठ है। तो भी इस विषय में तुम्हारी एक भूल हो गयी है। तुम मान रही हो कि त्रिविक्रमावतार में किसीने मेरा मंगलाशासन न किया। परंतु वास्तव में उस वक्त भी मंगलाशासन निरत भक्त एक दो थे ही। इन में जांबवान एक है। उसनें "भगवान की जय हो! जय हो!" पुकारते हुआ ढंका मारते सारी पृथ्वी की परिक्रमा की। अतः तुम निश्चिंत रह सकती हो।" अतः गोपियां दूसरे चरित्र का गान करती मंगलाशासन करती हैं (शेन्ड्रु) इत्यादि दूसरे पाद से। त्रिविक्रमावतार वृत्तांत तो एक दो घंटे में समाप्त हो गया। अतः उस समय में विशेष आपत्ति कोई भी न आ पडी। परंतु रामावतार की बात कुछ दूसरी है। राज्य छोडकर, ऐश्वर्य छोडकर, हाथी, घोडा रथ इत्यादि वाहन भी छोडकर, चौदह वर्षोंतक, भयंकर दंडकारण्य में आप चलने लगे। विराध, कबंध, मारीच इत्यादि असंख्य राक्षसों ने आपको उस समय में कितना कष्ट दिया! बाद में आपने दुष्ट रावणकी राजधानी लंका पधारकर, राक्षसों के साथ क्रूर युद्ध कर, उन सब को जीतकर, उस नगरी को भी भस्म कर दिया। ऐसे आपके अप्रतिम पराक्रम का मंगलाशासन करना अत्यंत आवश्यक है। अतः वही किया गया इस पाद से।

फिर श्री कृष्ण बोले-"गोपियां! इस विषय में भी तुमने बडी भूल की। श्रीरामावतार में मुझे जितना मंगलाशासन मिला, उतना, शायद दूसरे किसी अवतार में नहीं मिला होगा। श्रीरामायण मंगलाशासनमय है। मेरे से अवतार करने की प्रार्थना करनेवाले देवता लोगों ने ही पहिले पहिले मुझे खूब मंगलाशासन कर दिया—तमेव हत्वा सबलं सबान्धवं विरावणं रावण मुग्रपौरुषम्। स्वर्लोकमागच्छ गतज्वरश्चिरं सुरेन्द्रगुप्त गतदोषकल्मषम्॥ अवतार करने के बाद पहिले पहिले, ताटकावध प्रकरण में विश्वामित्रजी ने वाह! कैसा मंगलाशासन किया—विश्वामित्रोऽपि ब्रह्मर्षिः हुंकारेणाभिभर्त्स्य ताम्। स्वस्ति राघवयोरस्तु जयं चाप्यभ्यभाषत॥ सीताविवाह प्रकरण में जनकजी का मंगलाशासन था—इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव। प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना॥ मिथिला से अयोध्या लौटने पर, तत्रत्य सभी स्त्री, बाल, एवं वृद्ध प्रतिदिन, दोनों संध्या में सभी देवताओं से मेरे कल्याण की प्रार्थना करते रहे—स्त्रियो वृद्धास्तरुण्यश्च सायं प्रातस्समाहिताः। सर्वान्देवान्नमस्यन्ति रामस्यार्थे यशस्विनः॥ पिताजी के पास जाने प्रस्थित मुझको स्वयं सीताजी ने मंगलाशासन किया—पूर्वां दिशं वज्रधरो दक्षिणां पातु ते यमः। वरुणः पश्चिमामाशां

धनेशस्तूत्तरां दिशम् ॥ इत्यादि से। बाद में वन के लिए प्रस्थान करनेवाले मुझको माताजी का भी अमोघ आशीर्वाद मिला था—यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताऽकल्पयत्पुरा। अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ इत्यादि। एवं दंडकारण्य में प्रवेश करते करते ही महर्षियों का मंगलाशासन मिला था—मङ्गलानि प्रयुञ्जानाः प्रत्यगृह्णन् दृढव्रताः। खरदूषणादि चौदह हजार राक्षसों का संहार करने के अवसर पर समस्त ऋषिगणों ने एकत्रित होकर मुझे सुशोभन आशीर्वाद दिया—जयतां राघवो युद्धे पौलस्त्यान् रजनीचरान्। चक्रहस्तो यथा युद्धे सर्वानसुरपुङ्गवान् ॥ जटायु ने, देखो, कैसा मंगलाशासन किया—"यामोषधिमिव आयुष्मन्! अन्वेषसि महावने।" इस मंगलाशासन के प्रताप से ही मैंने उस सीतावियोगदुःख को भी पार कर सका। सेतु से समुद्र का पार करने के बाद. अनेक महात्मा, महर्षि लोग शुभ तीर्थ लेकर मेरे पास आगये और मुझे खूब आशीर्वाद दिये—जय स्वशत्रून्नरदेव मेदिनीं ससागरां पालय शाश्वतीस्समाः। इतीव रामं नरदेवसत्कृतं शुभैर्वचोभिर्विविधैरपूजयन् ॥ इस तरह से रामावतार में मुझे पुष्कल मंगलाशासन मिल चुका। अतः उसके लिए अब चिंता करने की आवश्यकता नहीं रहती है। दूसरी बात यह है कि वह रामावतार कभी बीत गया। अब मैं कृष्ण बैठा हूँ। क्या इस अवतार की कोई ऐसी चेष्टा नहीं हैं, जो मंगलाशासन पाने लायक होगी? अतः दूसरी किसी चेष्टा का गान करो।" अतः तीसरे पाद से श्री कृष्ण चेष्टित का मंगलाशासन किया जाता है—(पोन्नचहडम्) इत्यादि। शकटासुर भंजन करनेवाले पादारविंद की जय हो। यशकी जयघोषणा करना, पादारविंद की जयघोषणा का पर्याय है। शकटासुर भंग की यह प्रसिद्ध कथा है कि एक दिन यशोदाजी श्रीकृष्ण को घर के आंगन में एक गाडी के नीचे झूले में सुवा कर स्वयं यमुना चली गयीं। इस समय में एक असुरने उस गाडी में घुसकर, श्रीकृष्ण पर बहकर आपको मारने चाहा। तब श्रीकृष्ण ने भी भूख से स्तन्यार्थ रोने की भावना दिखाते हुए, अपने पैरों को उठाकर उस गाडी को मारा। फलतः वह चूर चूर हो गया और असुर भी नष्ट हो गया। यद्यपि पुराणों में केवल गाडी की ही बात की गई है, न तु उसमें असुरावेश होने की। तथापि अतिप्रेमी, और अत एव मंगलाशासन निरत आल्वारों का अभिप्राय है कि वहां जरूर असुरावेश था। अन्यथा उसका ध्वंस करने की आवश्यकता ही कौन सी थी? इस चरित्र में पादारविंदों की यह कीर्ति है कि माता पिता इत्यादि किसी रक्षक के अभाव में शकटासुर से प्राप्त आपत्ति को श्रीकृष्ण किशोर ने स्वयं उनसे मिटा दिया। अर्थात् खुद श्रीकृष्ण की भी रक्षा करने से पादारविंद का यह चिरंतन यश, माने ये ही सर्वरक्षक हैं, ठीक प्रतिष्ठापित किया गया। अतः इस यश का मंगलाशासन करना आवश्यक है।

फिर श्री कृष्ण ने आज्ञा दी कि, "हे गोपियां! यह तो ठीक हुआ। मगर शकटासुर भञ्जन का यह वृत्तांत मेरे शैशव में बना; अतः मुझे बिलकुल उसकी याद तक नहीं है। अतः दूसरे किसी चेष्टित का वर्णन करो।" अतः, (कन्नु कुणिला वेरिन्दाय्) इत्यादि चौथे पाद से वत्सकपित्थासुर भञ्जन का वृत्तांत मङ्गलाशासन पूर्वक गाया जाता है। कथा यह है—कंसप्रेरित दो असुर व्रज के पास एक वन में आ गये जहां श्री कृष्ण बछडा चराने के लिए रोज पधारते थे। एक असुर वहां के एक कपित्थवृक्ष में घुस

गया, और दूसरा एक बछडे का रूप लेकर श्रीकृष्ण से पालित बछडों के साथ मिल गया। यह रहस्य जानकर श्रीकृष्ण ने पैर पकडकर उस बछडे को उठाया और खूब घुमाकर कपित्थ पर फेंक दिया। फलतः दोनों एक साथ नष्ट हो गये। एक वजनदार वस्तु को उठाने में और जोर से दूर फेंकने में पैरों को भूमिपर दृढ रखना पडता है; अन्यथा उस वजन से फेंकनेवाला स्वयं नीचे गिर जाएगा। अतः हाथ की तरह पैरों का बल भी इस काम में अपेक्षित होता है। इस कारण से यहां पर पादारविंदों का मङ्गलाशासन किया जाता है।

इस पर, फिर श्रीकृष्ण का अभिप्राय हुआ, कि "यह तो बडा सुंदर है। परंतु उक्त लीला समाप्त कर जब मैं घर लौटा, तब मेरी माताने यह वृत्तांत जानकर मेरा खूब मङ्गलाशासन कर दिया, जिसका वर्णन पेरियाळ्वार तिरुमोळि (३-३-७) में किया गया है। अतः दूसरे किसी वृत्तांत का वर्णन किये तो ठीक होगा।" अतः (कुन्नु कुडैयायेडुत्ताय्) इत्यादि पांचवे पाद से गोवर्धनोद्धरण करनेवाले आपके महान गुण का मंगलाशासन किया जाता है। गोवर्धनोद्धरण की भी कथा प्रसिद्ध है—व्रज में प्रतिवर्ष कार्तिकशुक्ल प्रतिपदा को बडे समारोह के साथ महेंद्र की पूजा की जाती, जिसके लिए बहुत दिनों से तैयारी की जाती। एक साल में ऐसी तैयारी देखकर श्रीकृष्ण ने अपने मन में विचार किया कि, "देवाधिदेव मेरे सामने दूसरे देव की पूजा होना अनुचित है। अतः किसी प्रकार से इसको रोकना चाहिए।" तब आपने गोपवृद्धों से यों विनती की कि, "हे आर्यजनों! आपसे की जानेवाली यह महेंद्रपूजा सर्वथा अनुचित है। जरा बताइए तो सही, कि इंद्र से हमें कौनसा उपकार मिल रहा है; वह कथंचिदपि हमारा निजी देव न होगा। वास्तव में गायों के अपेक्षित चारा पानी देनेवाला यह गोवर्धन पर्वत ही हमारा निजी देवता है। अतः इसकी ही पूजा करना उचित है।" इस मधुरवाणी का परवशचित्त बनकर गोपों ने अपने से सङ्गृहीत समस्त पदार्थों से गोवर्धन पर्वत की ही पूजा की। इस तरह से अपनी पूजा के बंद होने पर महेंद्र श्रीकृष्ण पर नाराज हो गया और उसने भयङ्कर वर्षा से सारे व्रज को एक साथ नष्ट कर देने के लिए मेघों को भेज दिया। तब श्रीकृष्ण ने भी, पहिले अपने से जो गोवर्धन पर्वत रक्षक बताया गया था, उसी को अपने हाथ से उठाया और छत्र की तरह धर दिया। व्रजनिवासी सभी गोगोपीगण उसके नीचे रहकर बच गये। अब गोपियां इस चरित्र से प्रकाशित श्रीकृष्ण के शुभ गुण का मङ्गलाशासन करती हैं। गोगोपियों को इतना बडा दुःख देनेवाले महेंद्र का सिर काट डालना था। परंतु दयामय श्रीकृष्ण ने सोचा, कि "अन्न चूक जाने के क्रोध से इंद्र ने ऐसा किया है। कुछ समय के बाद यह क्रोध उतर जाएगा और वह होश में आ जाएगा। इसलिए अभी उसको दंड देना अनुचित है।" अतः इस महागुण का मङ्गलाशासन होना अत्यंत उचित व आवश्यक है।

इस के बाद श्रीकृष्ण ने कहा—"हे मेरी प्यारी गोपियां! क्या तुम नहीं जानती कि गोवर्धनोद्धरण करने के बाद स्वयं महेंद्र ही मेरे पास आया और माफी मांगकर, मंगलाशासन करता चला गया? यह सुनकर

गोपियां भगवान के दिव्यायुध का मंगलाशासन करती हैं (वेन्नु पहै केडुक्कुम्) इत्यादि छठे पाद से। श्रीकृष्ण के हस्त में गोपजात्युचित वेल (भल्ला) नामक आयुध विराजमान है, जो वास्तव में चक्रराज का ही रूपांतर है। अर्थात् ज्ञानियों का कहना है कि चक्रराज श्रीसुदर्शन ही भगवान के भिन्न भिन्न अवतारों में तत्तत् प्रसंगोचित• अनेक रूपों का धारण करता है। तथा हि - वह वराह भगवान की दंष्ट्रा, नरसिंह भगवान का नख, परशुरामजी का परशु, श्रीरामचंद्रजी का वाण, बलरामजी का हल, श्रीकृष्ण का वेल, और एक समय पर वामन का दर्भपवित्र भी बन गया। अतः हाल में वेलायुध का मंगलाशासन, चक्रराज का ही मंगलाशासनरूप होता है। तिरुप्पल्लाण्डु दिव्यप्रबंध में भगवान के दिव्यायुधों का मंगलाशासन करनेवाले श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी की सुपुत्री गोदादेवी के श्रीमुख से भी ऐसी ही मंगलशासन वाणी का निकलना उचित ही है।

इससे प्रसन्न भगवान ने आज्ञा की—"गोपियो! तुम्हारी इस स्तुति से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। कहो! तुम्हें क्या चाहिए। तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा।" इसके प्रत्युत्तर में गोपियां विज्ञापन करती हैं—(एन्नेन्नुन् शेवकमे) इत्यादि। "हे प्रभो! हमारी इच्छा दूसरी कौनसी होगी? बस! हम यही चाहती हैं कि इस तरह से आपके नानाविध दिव्य चरित्रों का नित्य मंगलाशासन करती करती आपके पास ही हम रह जायँ। इसी पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए हम अब आपके पास आ गयी हैं। अतः कृपा कीजिएगा।"

व्यंग्यार्थ का विवरण ॥ आचार्य का मंगलाशासन इस गाथा से किया जाता है। त्रिविक्रम भगवान से आचार्य का साम्य तीसरी गाथा की टीका में बताया गया। संक्षेपतः परमपावन श्रीपादतीर्थ देनेवाले आपके पादारविंद का मंगलाशासन किया जाता है। लंकाध्वंस करनेवाला कहने से हनुमानजी को समझकर तत्सदृश आचार्य को जानना चाहिए। हनुमानजी से आचार्य का सादृश्य (कनैत्तु) इत्यादि बारहवी गाथा की टीका में बताया गया। शकट शब्द से गाडीकी तरह चेतन को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचानेवाले गर्भादि मार्ग बताये जाते हैं। ये मार्ग तो चार होते हैं—गर्भगति (जिस से चेतन को फिर दूसरा जन्म मिलेगा), याम्य गति (जिस से नरक प्राप्त होगा), धूमादि गति (जिस से स्वर्ग मिलेगा), और अर्चिरादि मार्ग (जिससे परमपद मिलेगा)। इनमें दुष्ट शकट कहने से पहले के तीनों मार्ग सूचित किये जाते हैं। आचार्य के श्रीपाद से संबंध रखनेवाले पुरुष के लिए ये सब नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् सदाचार्य, अपने शिष्य को गर्भगति इत्यादि मार्ग मिलने न देते हैं; परंतु उन सब को अपने पाद संबंध से दूरकर अर्चिरादि मार्ग दिखाते हैं। वत्सकपित्थासुर भंग प्रसंग का यह तात्पर्य है कि आचार्य एक शत्रु की ओर से ही दूसरे का विनाश करा देते हैं। अर्थात् अपने प्रतिवादियों के वादों में एक दूसरे से (परस्पर) विरोध बताकर उन उन वादों से ही उन उनका निरास करा देते हैं। गोवर्धन पर्वत का उद्धार करनेवाले भगवान का यह यश बताया गया कि अपराधी इंद्र को भी आपने शिक्षा न दी। इस तरह से आचार्य भी मात्सर्य आदि से अपने विषय में अपराध करनेवाले के प्रति कदापि स्वयं प्रत्यपकार करने की सोच तक न करते हैं। श्रीरामानुजस्वामीजी, श्रीकूरेश स्वामीजी इत्यादियों की जीवनी में ऐसे अनेक प्रसंग पाये जाते

हैं। अंत में भगवान के श्रीहस्त में विराजमान वेलायुध शब्द से श्रीरामानुज स्वामी का त्रिदंड, जो कि "चारित्रोद्धारदण्डम्" इत्यादि से प्रशंसित है, सूचित किया जाता है। आगे स्पष्ट है॥ (२४)

(गाथा) ओरुत्ति महनाय्प्पिरन्दु * ओरिरविलोरुत्ति महनायोळित्तुवळर *
तरिक्किलानाहि तान्तीङ्गु निनैन्द * करुत्तैप्पिळैप्पित्तु कञ्जन्वयित्तिल् *
नेरुप्पेन्न निन्न नेडुमाले * उन्नैयरुत्तित्तु वन्दोम् परैतरुदियाहिल् *
तिरुत्तक्क शेल्वमुम् शेवहमुम् याम्पाडि * वरुत्तमुम् तीर्न्दु महिळ्न्देलोरेम्बावाय्॥ २५॥

ओरुत्ति महनाय् पिरन्दु	भाग्यवती एक महिला (देवकी जी) के पुत्र के रूप में जन्म पाकर,
ओर् इरविल्	(अवतार के) उसी दिन की रात्रि में (व्रज पधार कर)
ओरुत्ति महनाय्	भाग्यवती (यशोदाजी नामक) महिला का पुत्र बनकर
ओळित्तु वळर	गुप्तरूप से (आपके), प्रवृद्धमान होने के समय
तान् तरिक्किलान् आहि	स्वयं (इस आपकी वृद्धि का) सहन न कर सकते हुवे
तीङ्गु निनैन्द	(यों निश्चयकर कि किसी प्रकार से इसको मार डालना ही चाहिए), द्रोह की चिंता करनेवाले
कञ्जन् करुत्तै पिळैप्पित्तु	कंस के अभिप्राय को व्यर्थ बनाकर,
वयित्तिल्	- (उस कंस के) पेट में
नेरुप्पु एन्न निन्न	आग के समान (दुःख देते हुवे) रहनेवाले
नेडु माले	- हे सर्वेश्वर! परमप्रेमशालिन्!
उन्नै अरुत्तित्तु वन्दोम्	आपसे (पुरुषार्थ) मांगती (अथवा आपको मांगती) हम (यहां) आ गयी हैं;
परै तरुदि आहिल्	(हमारे अपेक्षित) पुरुषार्थ को अगर आप दे देंगे, तो
तिरुत्तक्क शेल्वमुम्	श्रीलक्ष्मीजी के योग्य (आपके) ऐश्वर्य का
शेवकमुम्	- और पराक्रम का भी
याम् पाडि	- हम कीर्तन कर,
वरुत्तमुम् तीर्न्दु	- विश्लेष व्यसन मिटाकर,
महिळ्न्दु एलो-रेम्बावाय्	महानंदपूर्ण भी हो जाएंगी॥

पूर्वोक्त परम मनोहर मङ्गलाशासन स्तुति सुनकर श्रीकृष्ण, आनंद सागर निमग्न होकर बोले, "वाह! गोपियो! तुम्हारे वचन कैसे मीठे मीठे हैं और कैसे प्रेम भरित हैं! परंतु मेरे ऊपर सीमातीत प्रेम करनेवाली तुम्हारे मुख से ऐसी मङ्गलाशासन-मय मधुरवाणी निकलती है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। यह तो तुम्हारे लिए जन्मसिद्ध है। अस्तु। इससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। आधी रात में ही उठकर, थंडी की भी परवाह न करती तुम आयी हो। इससे तुमको जरूर, वडा क्लेश हुआ है। अब कहो कि तुम्हारी क्या इच्छा है?" इसके प्रत्युत्तर में गोपियां बोली, "प्रभो! "जन्म कर्म च मे दिव्यम्" (भगवद्गीता) इत्यादि, अपने से ही प्रशंसित आपके दिव्य चेष्टितों का गान करती करती सानंद आनेवाली हमें क्लेश किधर से आएगा? क्लेश का अभाव मात्र नहीं; परंतु अधिक आनंद का ही अनुभव करती हम आ

गयीं। आने का उद्देश पूछते हो। आपको छोडकर हमें दूसरी कौनसी चीज अपेक्षित होगी? कोई नहीं। हम आपको ही चाहती आयी हैं।" इस अर्थ का विवरण प्रकृत गाथा से किया जाता है।

इस दिव्यप्रबंध में अब तक भगवान के अनेक दिव्य प्रभावों का वर्णन किया जा चुका। उन सब से विलक्षण एक प्रभाव इस गाथा में कीर्तित हो रहा है। वह है आपका जन्मवृत्तांत। तथा हि— भगवान् के जन्म के बारे में ज्ञानियों के अभिप्राय नाना प्रकार के होते हैं। सामान्यतः लोग समझते हैं कि इस संसार में जन्म तो कर्मकृत, दुःखकर, और अत एव हेय होता है; कर्मपरवश जीव ही जन्म लेकर दुःख भोगता है। भगवान तो कर्मपरवश न होते हैं; अतः आप जन्म भी न लेते हैं। रामकृष्णादि रूप तो दिखावट मात्र है; नतु वास्तव में जन्म। अत एव उनको अवतार अथवा आविर्भाव कहते हैं। यथा पराशर महर्षि ने कहा, "अच्युतभानुना देवकीपूर्वसन्ध्यायामाविर्भूतम्।" प्रातः काल में पूर्वदिशा में सूर्य का उदय तो न हि, उसका जन्म हो सकता है; अपितु आविर्भाव मात्र है। इसी तरह से श्रीकृष्ण भगवान का भी आविर्भाव मात्र हुआ, नतु जन्म। परंतु हमारे आचार्यों का अभिप्राय ऐसा नहीं है। स्वयं वेद पुरुष ने घोषणा की कि, "अजायमानो बहुधा विजायते" (कर्मकृत जन्म से रहित होते हुवे ही भगवान अनेक प्रकार के जन्म लेते हैं। "पिता पुत्रेण पितृमान् योनियोनौ" (समस्तलोक के पिता होते हुए ही आप अनेक योनियों में अपने पुत्र (किसी एक चेतन) को ही पिता बना देते हैं; अर्थात् स्वयं अपने पुत्र किसी एक चेतन के पुत्रतया स्वयं जन्म लेते हैं) इत्यादि। इससे स्पष्ट होता है कि भगवान बडे कुतूहल के साथ ही इस संसार में जन्म लेते हैं। अत एव वसुदेव - देवकी ने आपसे विनती की कि, "जातोऽसि देवदेवेश!" वाल्मीकि भगवान ने भी कहा, "कौसल्या अजनयद्रामम्।" परंतु, यों डरते हुवे, कि जन्म शब्द सुनते ही आसुरी प्रकृतिवाले मूर्ख लोग भगवान को भी कर्मपरवश मान लेंगे, पराशरादि कतिपय महर्षियों ने आविर्भाव की बात की। तो भी यह उक्ति भगवान को प्रिय न लगी। अत एव यह रहस्य जाननेवाले आल्वार लोग, वारंवार भगवान के जन्म की ही बात उठाते हैं। यथा श्रीशठकोपस्वामीजी ने अपने पहले प्रबंध (तिरुविरुत्त) के पहली गाथा में ही गाया, कि "हे एकैक योनि में भी जन्म लेनेवाले देवाधिदेव!" इस कारण से भगवान भी दिव्यसूरियों को ऋषियों से भी अधिक प्यार करते हैं। जन्म लेने मात्र से किसी को दोष न लगेगा। परंतु, कर्मपरवश होकर यह चेतन गर्भवास एवं प्रसव काल के अनेकविध क्लेशों का सहन करते हुवे जो जन्म लेता है, और बाद में भी नानाविध तापत्रय शब्दवाच्य दुःख जो भोगता है; और अंत में अनेक प्रकार के रोगों का शिकार बनकर, दुःख से शरीर छोडकर नरकादि जो पाता है, इस कारण से जन्म खराब कहलाता है। मगर भगवान के जन्म इस प्रकार के नहीं होते हैं। आप तो इस संसार में पडे हुवे चेतनों के उद्धार के लिए अपनी असीम कृपा से प्रेरित होकर जन्म लेते हैं; और स्वयं अखिलहेयप्रत्यनीक, यानी समस्त दोष प्रतिभट होने के कारण, जन्म संबंधी समस्त दोषों से दूर रहते हैं। इस विशेषता की सूचना देने के लिए आपके जन्म को अवतार कहते हैं। अत एव स्वयं आपने ही कहा "जन्म कर्म च मे दिव्यम्।" श्रुति भी है—"स उ श्रेयान् भवति जायमानः।"

(एत्तकलङ्गळ् इत्यादि २१-वी गाथा की टीका में इसका विवरण किया गया।) इस तरह से अतिश्लाघ्य श्रीकृष्ण का जन्मवृत्तांत अब गाया जाता है।

(ओरुत्ति मह्नाय्) इत्यादि। देवकी जी का अथवा यशोदा जी का नाम लिए विना ही "ओरुत्ति, ओरुत्ति" (एक महिला, एक महिला) कहना बडा गंभीर है। इन दोनों महिलाओं के भाग्य का कौन वर्णन कर सकता है? साक्षात् भगवान को ही अपने पुत्र के रूप में पाना, यह तो साधारण भाग्य नहीं है। एकने, अपने गर्भ में भगवान का धारण कर, आपका जन्म दिया; और दूसरी ने आपको स्तन्य पिलाया, बडे प्रेम के साथ आपको पाला, पोसा और आपकी वाचामगोचर बाल्यलीलाओं का खूब अनुभव किया। इस महाभाग्य की सूचना करने के लिए, नाम लिए विना (ओरुत्ति) कहा गया। एक शब्द का अर्थ होता है अद्वितीय। ऐसी भाग्यवती देवकी के पुत्र रूपेण जन्म लेकर, कंस भय व्याज से श्रीकृष्ण, उसी रात में व्रज पधारकर यशोदाजी के पुत्र बन गये और वहां पर गुप्तरूप से प्रवधमान होते रहे।

(तरिक्किलानाहि) इत्यादि। उक्त रीति से मथुरा छोडकर सुदूर भाग जानेपर भी दुष्ट कंसने श्रीकृष्ण के प्रति अपनी असहिष्णुता को नहीं छोडा, परंतु कपटबुद्धि से उनका द्रोह करना चाहा। उसने यों विचार किया—"गुप्तरूप से असुरों को व्रज भेजकर, उनके हाथ से इस शत्रुका संहार करा कर, सब के सामने, 'हाय! हाय! मेरा भानजा मर गया' कहते रोने का अभिनय करने से, मेरा इष्ट भी पूर्ण होगा; दुनिया में मेरा अपयश भी न होगा।" परंतु श्रीकृष्णने उससे प्रेषित सब असुरों का स्वयं संहार कर दिया, और धनुर्याग के व्याज से मथुरा पधारने के बाद उधर भी गुप्तरूप से कंसप्रेषित कुवलयापीड, मुष्टिक, चाणूर आदियों का ध्वंस कर, कंस के पेट में भयंकर अग्नि जला दी; और बाद में कंस को भी मार डाल कर, मामी के सामने आप रोने लगे कि, "हाय! हाय! मेरा मामा मर गया।" यह है कंसके अभिप्रायको उल्टा कर देने का अर्थ।

यहां पर कंसको (तीङ्गु निनैत्त) यानी द्रोह की चिंता करनेवाला कहने में आया है। कहना था, "द्रोह करने वाला।" अर्थात् कंसने द्रोह की चिंतामात्र न की, अपितु अनेक प्रकार से परिपूर्ण द्रोह कर चुका ही था। तो 'भी चिंता करनेवाला' कहने का एक विशेष कारण आचार्यों से बताया जाता है। तथाहि—इस साधारण शास्त्र को सब जानते ही हैं कि भगवान अपनी स्तुति, पूजा आदि करनेवालों पर अनुग्रह करते हैं, और निंदा, द्वेष आदि करनेवाले को दंड देते हैं। परंतु इसमें एक विशेष है। तन, मन, वाणी नामक तीन करणों में से किसी एक से सेवा करने पर भी आप ऐसी सेवा को स्वीकार कर लेते हैं। अर्थात्, नकली भक्ति का अभिनय मात्र करते हुवे, आपकी सेवा करनेवाला भी अनुग्रह का पात्र बन जाएगा। "मित्रभावेन संप्राप्तम्" इतिवत्। "कथंचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति" (कथंचित् किये जानेवाले एक उपकार से श्रीरामचंद्रजी संतुष्ट हो जाते हैं।) "यथा तथा वापि सकृत्कृतोऽञ्जलिः" (किसी तरह से की जानेवाली अंजलिमुद्रा कल्याणकारक होती है।) इत्यादि इस विषय में

प्रमाण हैं। परंतु अपराध का अनुगुण दंड देने की बात कुछ दूसरी है। तथाहि—कदाचित् किसी रीति से किये जानेवाले अपराध पर भगवान अपनी नजर न डालते हैं। परंतु तीनों करणों से परिपूर्ण अपराध करने पर ही आप किसीको अपराधी मानते हैं और दंड देने के उद्यत होते हैं। शरीर मात्र से अपराध करने पर भगवान यों मानेंगे कि यह अपराध शायद प्रामादिक, अगतिक अथवा अबुद्धिपूर्वक होगा; इतने मात्र से दंड देना अनुचित है। परंतु परीक्षा करने पर अगर मालूम होगा कि इस पापी के हृदय में भी द्रोह ही भरा है, तभी आप उसको दंड देंगे। कंसके विषय में भी यही न्याय है। कंसप्रेरित अनेक असुरों के व्रज आने पर भी, एवं मथुरापुरी में कुवलयापीड एवं मल्लों से पीडित होने पर भी, श्रीकृष्ण उन सबके प्रेरक कंसपर नाराज न हुए। परंतु आपके सुनते सुनते ही जब उसने अपने नौकरों को आज्ञा दी कि, "अरे! इन बालकों को पकडो; नंदगोप को पकडो, गोपों को मारो" इत्यादि, तभी आपने निश्चय किया कि इस कंसके मनमें भी द्रोहचिंता भरी है; अतः इसको समाप्त कर देना ही उचित है। इस अर्थ की सूचना करने के लिए यहां पर कहा गया, कि, "द्रोह की चिंता करनेवाला कंस"। इसका यह अर्थ है, कि कंस ने तो न केवल द्रोह का आचरण मात्र किया; किंतु उसके मन में भी यही द्रोहचिंता भरी थी; अर्थात् तीनों करणों से वह द्रोही ठहरा। ऐसे कंसके पेट में अग्नि डालने का यह तात्पर्य है कि कंस से पीडित साधुओं के मन में जो भयाग्नि थी, उसको उठाकर श्रीकृष्णने कंसके पेट में डाल दी। अर्थात् जैसे जैसे कंसप्रेरित असुरों का संहार होता रहा, तैसे तैसे सत्पुरुषों के मन से भय मिटता गया, और कंसके मन में वही भय बढता गया। यह तो प्रसिद्ध है कि मारीच की तरह कंस भी भगवान से डरते डरते ही कालयापन करता था।

(नेरुप्पेन्न निन्र नेडुमाले), हे अग्निसमान परमप्रेमशालिन्! संबोधनों की यह मिलाप बडी विचित्र है। द्राविडी में माल् शब्द का अर्थ है व्यामोह अथवा सीमातीत प्रेम। भक्तों पर अनहद प्रेम करने से भगवान का नाम ही हो गया-माल। ऐसे होने से, आपने अपने प्रेमपात्र भक्तों के प्रति द्रोह करनेवाले कंस के पेट में आग लगा दी। अर्थात् भक्तों का शत्रु होने से कंसने भगवान से दंड पाया। "समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः" कहनेवाले भगवान को कंसद्वेषी एवं भक्तप्रेमी पुकारना भी कुछ विचित्र-सा दीख पडेगा। परंतु उक्त गीतावचन का यह तात्पर्य नहीं हो सकता है कि भगवान अपने प्रेमी व द्वेषी, दोनों को एक समान मानते हैं। ऐसा मानना सर्वथा अशक्य, एवं अवांछनीय होगा। अत एव उक्त पद्य का यह उत्तरार्ध गाया गया—ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्। परमचेतन होने के कारण, भगवान अपने ऊपर प्रेम करनेवालों के ऊपर स्वयं अत्यधिक प्रेम करते हैं, और उन भक्तों के शत्रु को अपना ही शत्रु मानकर, उसको दंड देते हैं। इस अर्थ का सूचक है यह विलक्षण शब्दसंयोग।

(उन्नै यरुत्तित्तु वन्दोम्)। यह बडा सुंदर शब्दसन्निवेश है। ऊपर से देखनेवालों को इसका यह अर्थ प्रतीत होता है कि, हम तुमसे कुछ मांगने आयी हैं। परंतु गोपियों का हार्द अभिप्राय यह है कि हम तुमको मांगने आयी हैं। यह तात्पर्य है—"आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी" इत्यादि भगवद्गीतोक्तरीति से

भगवान का भजन करनेवालों में अधिक भाग आपसे ऐश्वर्य कैवल्यादि कुछ पुरुषार्थ मांगते हुए, उसको पाने पर आपसे विदा लेकर स्वस्थान चले जाते हैं। "वासुदेवस्सर्वमिति" इत्याद्युक्त प्रकार से भगवान को ही धारक पोषक भोग्यरूप अपने सर्वस्व माननेवाले, और अत एव दूसरे किसी पुरुषार्थ में चित्त नहीं लगानेवाले उच्चकोटि के भक्तलोग तो हमेशा आपकी सेवा करते पास ही रहने को चाहते हैं; न तु दूसरा कुछ लेकर लौटने चाहते हैं। अतः इनका अपेक्षित, स्वयं भगवान ही हैं। समझना चाहिए कि गोपियां यहां पर अपने इस अनन्यप्रयोजनत्व का प्रख्यापन कर रही हैं। (परै तरुदियाहिल्) । इस प्रबंध में आदि से अंततक अनेक गाथाओं में व्रत की और व्रतोपकरणों की जो बात कही गयी है; इसके अनुसार, यहां भी व्रतोपकरणभूत सामग्री 'परै' मांगी जाती है।

अंत में गोपियां अपने क्लेशाभाव का एवं परमानंद का वर्णन करती हैं—(तिरुत्तक्क) इत्यादि से। अर्थात्, गोपियां भगवान से यों कह रही हैं कि, "हे प्रभो! आपके ऐश्वर्य का एवं पराक्रम (अथवा लीलाओं) का गान करती करती आनेवाली हमको रास्ते में किसी तरह का क्लेश न हुआ, मगर आनंद ही आनंद था।" लक्ष्मीजी का उचित ऐश्वर्य, कहने का यह तात्पर्य है कि "तुल्यशील वयोवृत्तां तुल्याभिजन लक्षणाम्। राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा॥" (अर्थात् अपने समान स्वभाव, वय, चेष्टित, जन्म, और शरीरलक्षणवाली सीताजी श्रीरामचंद्रजी की लायक पत्नी हैं, और कृष्णनेत्रवाली इनके आप लायक पति हैं), "भगवन्नारायणाभिमतानुरूप स्वरूप रूप गुण विभवैश्वर्य शीलाद्यनवधिकातिशयासङ्ख्येय कल्याणगुणगणाम्" (अर्थात्, लक्ष्मीजी भगवान के अत्यंत अनुरूप एवं अतिप्रिय स्वरूप, विग्रह, गुण, वैभव ऐश्वर्यवाली हैं) इत्यादि से दिव्यदंपतियों का जो परस्पर आनुरूप्य प्रशंसित किया गया है, उसका कीर्तन गोपियों से किया गया।

व्यंग्यार्थ का विवरण॥ मायनै इत्यादि पांचवीं गाथा की टीका में बताया गया कि श्रीकृष्ण की तरह आचार्य की भी दो माताएं होती हैं—गायत्री तथा अष्टाक्षरी। आचार्य गायत्री में जन्म लेकर अष्टाक्षरी से पालन पोषण पाते हैं। रात्रि में जन्म लेने का अर्थ है अज्ञानांधकाराक्रांत इस संसार में जन्म लेना। कृष्ण गुप्तरूप से पालित हुआ; आचार्य भी अपना वैभव छिपाकर सामान्य मानव की तरह रह जाते हैं। कंस शब्द कलिपुरुष का द्योतक है। यह पुरुष आचार्य के विषय में अनेक प्रकार से द्रोह कर अंततः आपसे पराजित होता है। "पाषण्डद्रुमषण्डदावदहनः" (पाषंडरूपी पेडों के महावन में अग्निरूपी हैं श्रीरामानुजस्वामीजी), "पाषण्डसागर महाबडवामुखाग्निः" (श्रीस्वामीजी पाषंडसागर का शोषण करनेवाला बडवाग्नि हैं) इत्यादि आपका प्रताप ही, यहां पर (नेरुप्पेन्न) शब्द से कीर्तित हुआ है। एवं (नेडुमाले) शब्द से अपने परमभक्त शिष्यों के प्रति आचार्य का व्यामोह कहा जाता है। भगवद्भक्त की तरह आचार्य भक्त भी अनन्यप्रयोजन होकर अपने इष्ट देव को मांगता ही है। यह अर्थ (उन्नै यरुत्तिु) इत्यादि से कहा जाता है। (तिरुत्तक्क) इत्यादि से आचार्य का लक्ष्मी समानत्व कहा जाता है। तथाहि— लक्ष्मीजी का काम है चेतन के विषय में भगवान से सिफारिश करना। आचार्य का भी यही काम है। क्योंकि यथा लक्ष्मीपुरुषकार के विना भगवान किसी चेतन की रक्षा न करेंगे, इसी तरह से आचार्य

पुरुषकार के विना भी आप किसीका अङ्गीकार नहीं करते । अत एव श्रीवेदांतदेशिकस्वामीजी ने कहा कि, "दत्ते रङ्गी निजमपि पदं देशिकादेशकाङ्क्षी," अर्थात् श्रीरङ्गनाथ भगवान मोक्षपद को, उसके खुद अपना अधीन होनेपर भी, आचार्य की अनुमति पाकर ही किसीको देते हैं । पुरुषकार कृत्य करनेवाली लक्ष्मीजी के ये तीन गुण—चेतन के प्रति कृपा, भगवान के प्रति पारतंत्र्य तथा अनन्यार्हत्व, विशेषतया अनुसंधेय होते हैं; इसी तरह से आचार्य में भी उक्त तीनों गुण रहते हैं और अनुसंधेय भी होते हैं । ऐसे महान आचार्य का वैभव तो प्रसिद्ध आपका सर्वविद्यापारङ्गतत्व, संसारियों का उद्धार करना, दुर्मतों को मिटाना इत्यादि वैभव है ॥ २५

(गाथा) माले मणिवण्णा ! मार्हळि नीराडुवान् * मेलैयार् शेय्वनहळ् वेण्डुवन केट्टियेल् *
ञालत्तै येल्लाम् नडुङ्ग मुरल्वन * पालन्न वण्णत्तुन् पाञ्चशन्नियमे *
पोल्वन शङ्गङ्गळ् पोय्प्पाडुडैयनवे * शालप्पेरुम्परैये पल्लाण्डिशैप्पारे *
कोलविळक्के कोडिये वितानमे * आलिनिलैयायरुळेलोरेम्बावाय् ॥ २६ ॥

माले	हे (भक्तों के विषय में) व्यामोह करनेवाले !
मणिवण्णा	- हे नीलमणि के समान !
आलिन् इलैयाय्	हे (प्रलयकाल में) वटदलपर शयन करनेवाले ! (भगवन् !)
मेलैयार् शेय्वनहळ्	- जो बडों से किया जाता है,
मार्हळि नीराडुवान्	ऐसे मार्गशीर्षस्नान (व्रत) करने के लिए,
वेण्डुवन केट्टियेल्	अपेक्षित वस्तुओं को अगर सुनने चाहते हो, (तो कहेंगी, सुनो);
ञालत्तै एल्लाम्	- सारा पृथ्वीमंडल
नडुङ्ग मुरल्वन	-कांप उठें, ऐसी ध्वनि करनेवाले
पालन्न वण्णत्तु	दूधके समान वर्णवाले (यानी सफेद)
उन् पाञ्चशन्नियमे पोल्वन शङ्गङ्गळ्	तुम्हारे पाञ्चजन्य के ही समान शङ्ख;
पोय्प्पाडु उडैयनवे	- अत्यंत विशाल
शाल पेरुम्परैये	- (और) बहुत बडी भेरी,
पल्लाण्डु इशैप्पारे	- मङ्गळाशासन करनेवाले,
कोलम् विळक्के	- मङ्गळदीप,
कोडिये, वितानमे	- ध्वज और छादनी (इन सबको)
अरुळ् एलोरेम्पावाय्	- कृपासे दे दो ॥

पूर्वगाथा में अपना अनन्य प्रयोजनत्व बतानेवाली गोपियों ने साथ ही साथ व्रतोपकरण की भी बात की । इसको सुनकर भगवान ने कहा, "अहो गोपियो ! तुम लोग परस्पर विरुद्ध बातें कर रही हैं । स्पष्ट बता दो कि तुम्हारे क्या क्या पदार्थ अपेक्षित है ।" इसके प्रत्युत्तर में गोपियों इस गाथा से यों विनती करती है कि "हे प्रभो ! हमारे पूर्वजों से अनुष्ठित मार्गशीर्ष स्नान नामक एक व्रत है ; जिसको बडों की आज्ञा से हम भी अब करनी चाहती हैं । एतदर्थ, शंख, भेरी, दीप, ध्वज, वितान इत्यादि कतिपय पदार्थ अपेक्षित हैं । अतः आप कृपा कर हमें इनका प्रदान कीजिएगा ।" यद्यपि अनन्यप्रयोजन इन गोपियों को भगवान

के पास जाकर आपसे किसी लौकिक वस्तु को मांगना अनुचित है। तथापि इस प्रबंध की अवतारिका में उक्त प्रकार से, हाल में मार्गशीर्षव्रत करने के लिए ही गोपवृद्धों ने इन गोपियों को श्रीकृष्ण के पास जाने की अनुमति दी है। जब तक यह व्रत चालू रहेगा, तब तक यह अनुमति भी चलती रहेगी। अतः उनको प्रसन्न रखने के लिए व्रतानुष्ठान करना आवश्यक हुआ। इस कारण से तदुपयुक्त सामग्री मांगी जा रही है। इसमें यह एक चमत्कार है कि हाल में ये गोपियां ऐसे पदार्थ मांगती हैं, जिनको लेते खुद भगवान को ही इनके साथ आ जाना पडता है। यथा पांचजन्य का समान शंख स्वयं पांचजन्य ही हो सकता है; नतु दूसरा कोई। गोपियों को पांचजन्य देकर भगवान स्वयं घर पर न रह सकते हैं; कारण कि यह शंख भगवान को छोडकर न जा सकता है। अतः पांचजन्य उठाकर खुद भगवान को ही गोपियों के पीछे पीछे जाना पडता है। अतः पदार्थांतर मांगना भी रूपांतर से भगवान को ही मांगना है। इस अर्थ का विवरण आगे किया जाएगा।

गाथा के उपक्रम में भगवान का संबोधन है (माले) हे व्यामुग्ध! पूर्वगाथोक्त संबोधन के पुनः कथन से जाना जाता है कि हालमें भगवान ने गोपियों के प्रति अपने विशेष व्यामोह प्रकाशित किया। तथा हि—पूर्वगाथा की मनोहर विज्ञप्ति सुनकर भगवान ने सोचा कि, "वाह! छोटी उम्रवाली ये गोप बालिकाएं बडे सवेरे उठकर, अपनी सखियों को नाना उपायों से जगाकर, थंडी की भी परवाह न करती हुई, हमारे घर पर आकर, द्वारपालक, पिताजी, माताजी, बडे भाई जी इनको जगाकर, मुझको जगाकर, हमारी प्रेयसी नीलादेवी को जगाकर, फिर नाना प्रकार की मधुरवाणी से हम दोनों को जगाकर, मुझको सिंहासन पर बिठाकर, नाना प्रकार की मधुर मंगलाशासन स्तुति सुनाकर, अंततः अपने अनन्यप्रयोजनत्व का प्रकाशन कर रही हैं। अहो! इनका ज्ञान, भक्ति व वैराग्य अत्यद्भुत हैं!" इससे इन पर आपका भी प्रेम सीमातीत हो कर उमड गया और इस समग्र व्यामोह की सूचक अपनी दृष्टि से आप इन गोपियों को निहारते हुए परवशचित्त रह गये। इस अर्थ को जान कर गोपियां भी आपके इस व्यामोह की स्तुति करती हुई आपका संबोधन करती हैं (माले!) और आपको होश में लाने के लिए चेतावनी देती हैं (केट्टियेल्)—सुनो। गोपियों का सिद्धांत है कि व्यामोह ही श्रीकृष्ण भगवान का असाधारण स्वभाव है। सीताजी ने सिद्धांत किया कि शरणागतवात्सल्य ही श्रीरामचंद्रजी का असाधारण स्वभाव है। अत एव आपने रावण को उपदेश दिया कि "विदितस्स हि धर्मज्ञः शरणागतवत्सलः।" शरणागतवात्सल्य से भी आगे बढ गया यह श्रीकृष्ण का व्यामोह; क्यों कि यह शरणागत व्यामोह मात्र नहीं कहा गया, अपितु सर्वसाधारण व्यामोह। अस्तु।

श्री कृष्ण का दूसरा संबोधन है मणिवर्ण! इससे सौलभ्य, सौंदर्य आदि आपके अनेक गुण कहे जाते हैं। तथाहि—(१) कीमतवाला होता हुआ ही रत्न इतना सुलभ रहता है कि उसको लोग अपने वस्त्र के पल्ले में बांध रख सकते हैं; परात्पर होते हुए ही भगवान भक्तों को अतिसुलभ होते हैं, यथा यशोदाजी ने उनको उलूखल में बांध दिया; और अर्जुन ने अपना सारथि बना दिया। (२) भगवान के दिव्यमंगलविग्रह

की शोभा इंद्रनीलमणि की तरह अत्यंत मनोहर होती है। (३) रत्न कमानेवाला निद्रा भी छोडकर उसके लिए बहुत प्रयास उठाता है; और कमाने के बाद उसकी रक्षा के लिए निद्रा छोडकर जागरूक होता है; भगवान से मिलने के इच्छुक भक्त भी आपकी प्राप्ति से पहिले विरह दुःख संतप्त होने के कारण, निद्रा न कर सकते हैं; एवं प्राप्ति के बाद भी "सदा पश्यन्ति" इत्यादि श्रुति के अनुसार आपका नित्यानुभव करने में निरत होकर निद्राशून्य बनते हैं। (४) रत्न, पहाड में और समुद्र में मिलता है; भगवान भी श्रीवेंकटाद्रि इत्यादि पर्वत पर एवं क्षीर समुद्र में मिलते हैं। (५) अज्ञ को मिलने पर रत्न अल्प कीमत में बेचा जाता हैं; उसको पहिचाननेवाले बनिए को मिलने पर ठीक कीमत में बेचा जाता है और सार्वभौम को मिलने पर, स्वयं प्रयोजनतया उससे पहना जाता है; अज्ञ लोग भगवान को भी धन, पुत्रादि क्षुद्र सांसारिक फल के लिए बेच डालते हैं; अर्थात् भगवान के मिलने पर आप से अल्प फल पाकर निवृत्त होते हैं; कुछ विशेषज्ञ लोग आपसे मोक्ष पाकर लौट जाते हैं, और परम रसिक भक्ताग्रेसर तो हमेशा आपका ही अनुभव करते ब्रह्मानंद लूटते रहते हैं; अर्थात् वे आपसे दूसरा कुछ मांगते नहीं; परंतु स्वयं परमभोग्यतया आपका नित्यानुभव करने में निरत होते हैं। (६) रत्न का मालिक गर्वी होता है; जिसको भगवान मिल गये हों, वह भी अपने वाचामगोचर महाभाग्य का अनुसंधान करते आनंद से मस्त रहता है। (७) रत्न के मालिक के पीछे दस आदमी हमेशा पडे रहते हैं; जिन को भगवान मिल गये हों, ऐसे भाग्यवान व्यास पराशरादि ज्ञानियों के पीछे, उनसे ज्ञान पाने के इच्छुक अनेक शिष्य लोग पडे रहते हैं। (८) दलाल के द्वारा ही लोग रत्न बेचते हैं और खरीदते हैं; पुरुषकारद्वारा ही भगवान की प्राप्ति होगी। (९) किसी किसी आश्रय में रहने पर रत्न का वैभव बहुत बढ जाता है; दिव्यसूरियों से संस्तुत श्रीरंगादि दिव्यदेशों में विराजने पर भगवान भी विशेष गौरव पाते हैं। (१०) रत्न हमेशा प्रभावान होता है; भगवान भी प्रभा कहलानेवाली लक्ष्मीजी से नित्ययुक्त होते हैं। "अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा" इत्यादि। (११) प्रभा से ही रत्न की कीमत होती है; भगवान का वैभव भी लक्ष्मी जी का अधीन है। "श्रद्धयाऽदेवो देवत्वमश्नुते," "अपाङ्गा भूयांसो यदुपरि परं ब्रह्म तदभूत्" "वेदान्तास्तत्वचिन्तां मुरभिदुरसि यत्पादचिह्नैस्तरन्ति" इत्यादि इस विषय में प्रमाण हैं। (१२) जिसके पास से रत्न गायब हो जाय, वह रो रो कर दुख पाता है; भगवान से विरहित भक्त भी "विललाप सभामध्ये", "एकस्मिन्नप्यतिक्रान्ते मुहूर्ते ध्यानवर्जिते। दस्युभिर्मुषितेनेव युक्तमाक्रन्दितुं नृणाम्" (एक क्षण भी भगवान के ध्यान के विना अगर निकल जाय, तो चिल्लाते रोना पडता है) इत्याद्युक्त प्रकार से रोता है। (१३) विवेक शून्य मानव नकली रत्न से धोखा खाते हैं; विवेकी नहीं; कदाचित् बडा गडबड करनेवाले देवतांतर को अविवेकी लोग ही परदेवता मानते हैं; विवेकी जन तो वास्तव परतत्व को जान सकते हैं। इत्यादि अनेक प्रकारों से भगवान का रत्न से साम्य है। अतः आप मणिवण्णन् पुकारे जाते हैं।

(मार्गळि नीराडुवान्) इत्यादि। मार्गशीर्षस्नान नामक एक व्रत है, जिसका विधायक कोई शास्त्र उपलब्ध नहीं होता; तथापि शिष्टों से आचरित होने के कारण, हम भी हाल में उसके अनुष्ठान में

उतरी हैं। इससे यह शास्त्रार्थ बताया जाता है कि स्पष्ट शास्त्रविधि के अभाव में भी हमें कितने ही शिष्टाचार प्राप्तकाम करना पडता है; अर्थात् वेद की तरह शिष्टाचार भी प्रमाण है। अत एव महर्षियों ने कहा कि "धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्च।" श्रीयामुनाचार्य स्वामीजी ने भी कहा, "विधयश्च वैदिकाः त्वदीयगम्भीर मनोऽनुसारिणः।"

(ञालत्तैयेल्लाम्) इत्यादि से व्रतके लिए अपेक्षित पदार्थों की पट्टी बनी जाती है। पहला पदार्थ शंख है। यात्रा के निकलने की सूचना देने के लिए शंख बजाना पडता है। अतः यह मांगा जाता है। (शङ्ङ्ङ्ळ्) इस बहुवचन से अनेक शंख मांगे जाते हैं। इनके दो विशेषण दिये जाते हैं। पहिला विशेषण है, सारे भूमंडल को कंपाने योग्या शब्द करने में समर्थ। भारतयुद्ध के प्रारंभ में जब भगवान ने शंख बजाया, तब उसकी ध्वनि से समस्त कौरवों कैं हृदय फट गये—"स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।" गोपियों का अभिप्राय है कि इसी तरह से अपने से बजाये जानेवाले शंखों से भी ऐसी बडी ध्वनि निकलनी चाहिए, जो संसार भर में फैल जाएगी और जिसको सुनते ही पापीलोगों का हृदय फट जाएगा, और सत्पुरुष भी प्रसन्न हो जायँगे। दूसरा विशेषण है दुग्ध समान श्वेत पांचजन्य के सदृश होना। नीलमेघश्याम भगवान की परभाग शोभा देनेवाला पांचजन्यशंख एकदम सफेद होता है। ऐसे पांचजन्य के ही समान अनेक शंख मांगे जाते हैं। अगर भगवान के समान दूसरे भी कितने लोग मिलते होंगे, तो पांचजन्य के समान दूसरे भी कतिपय शंख मिलेंगे। गोपियों का आशय है कि अंततोगत्वा अपना एक ही शंख लेकर स्वयं भगवान ही पधार लें। शंखनाद के बाद, जब यात्रोत्सव निकलेगा, तब वीथियों में भेरी बजाना आवश्यक है; इस लिए बहुत बडी भारी भेरी माँगी जाती है। जब देनेवाले साक्षात् श्री कृष्ण ठहरे, तब उनसे छोटी चीज मांगना अनुचित है, कल्पवृक्ष से कौपीन मांगने की तरह। अतः बडी बडी चीजें मांगी जा रही हैं। गोष्ठी के आगे "पल्लाण्डु पल्लाण्डु पल्लायिरत्ताण्डु" इत्यादि मंगलाशासनस्तुति गानेवाले भक्ताग्रेसर गायक महात्मालोग अपेक्षित हैं। उनकी गोष्ठी की शोभा बढाने के लिए मंगलदीप होना चाहिए। दूरसे ही देखनेवालों के मन को प्रसन्न कराने के लिए ध्वज चाहिए। भगवान के यात्रोत्सव में गोष्ठी के आगे नानाप्रकार के ध्वज लिये जाते हैं। शिरपर हिम न पडें इस तरह से रक्षक छादनी चाहिए।

यह सुनकर श्री कृष्ण ने कहा कि, गोपियो! यह तो ठीक है; परंतु इतनी वस्तुओं को, जिनमें एकैक भी दुर्लभ-सी प्रतीत होती है, मैं किधर से लाऊँ? अतः गोपियां कहती हैं—(आलिनिलैयाय् अरुळ्) यानी हे वटपत्रशायिन्! आप कृपा से दीजिए। यह तात्पर्य है—वटपत्र शयन वृत्तांत से भगवान की एक विलक्षण शक्ति बतायी जाती है। तथा हि, प्रलयकाल में जब समस्त जगत नष्ट हो गयी थी और सर्वत्र पानी ही पानी भर गया था, तब भगवान् एक छोटे बालक के रूप से उस पानी में एक वटपत्र पर शयन करते थे, और आपके पेट में यह सारी जगत समा गयी थी। कोई इस बात की कल्पना तक न कर सकता है कि उस छोटे बालक के पेट में यह जगत किस तरह से रह सकी, और उस

प्रलयार्णव में वह वटदल किधर से आया जिस पर वह बालक लेट सका। अतः इस चरित्र से भगवान का अघटितघटनासामर्थ्य प्रकाशित किया जाता है। अत एव श्रीकूरेशस्वामीजी ने गाथा कि "मुग्धशिशुर्वटदले शयितोऽतितन्वा तन्वा जगन्ति बिभृषे सविकासमेव। ऐशीमिमां तव तु शक्तिमतर्कितव्याम् ॥" अतः गोपियों का यह अभिप्राय है कि "हे प्रभो! हम आपकी विचित्र शक्ति से खूब परिचित हैं। अतः अगर आपको हमारा इष्टार्थ देने की कृपा हो तो, उसको देने में फिर आपको कोई क्लेश न होगा; अर्थात् आपके ही दुर्लभ पदार्थ संसार में कौनसा होगा? कृपा करें तो आप सब कुछ दे सकते हैं ॥

व्यंग्यार्थ का विवरण ॥ इस गाथा में कथित संबोधन आचार्य के भी ठीक लगते हैं। पहला संबोधन है, हे व्यामुग्ध! श्री रामानुजस्वामीजी का यह तनियन् स्तुतिपद्य प्रसिद्ध है—"यो नित्यमच्युतपदाम्बुजयुग्मरुक्मव्यामोहतः तदितराणि तृणाय मेने।" इसका यह तात्पर्य है श्री स्वामीजी, भगवान के पादारविंद नामक स्वर्ण में व्यामुग्ध होने के कारण दूसरे समस्त पदार्थों को (माने सांसारिक क्षुद्रविषयों को) तृण समान मानते थे। व्यामोह का यह स्वभाव है कि उससे आक्रांत मानव, अपने व्यामोह के विषय एक वस्तु को छोडकर दूसरे समस्त पदार्थों को बिलकुल क्षुद्र मान लेता है। अथवा, भगवान की तरह, अथवा उनसे भी अधिक मात्रा में आचार्य भी संसार सागर में पडकर दुख पानेवाले मानवों के प्रति सीमातीत व्यामोह रखते ही हैं। ऐसे व्यामोह परवश होकर ही श्रीरामानुजस्वामीजी ने, उनके उद्धार के लिए वाचामगोचर प्रयत्न किये। एवं आचार्य को मणिवर्ण कहना भी उचित है। भगवान में मणि का सादृश्य जितने प्रकारों से बताया गया, वे सभी प्रायः आचार्य में भी अन्वित होते हैं। वटपत्रशयनवृत्तांत से प्रदर्शित अद्भुतशक्ति आचार्य में भी भरी है। भगवान के पेट में जैसे चौदह लोक भरे थे वैसे आचार्य में चौदह विद्याएं भरी हैं। पहली गाथा की टीका में बताया गया कि मार्गशीर्षस्नानव्रत शब्द का व्यंग्यार्थ आचार्यनिष्ठा है। अब इसका प्रमाण बताया जाता है—शिष्टाचार। कोई कोई पूछा करता है कि आचार्यनिष्ठानामक इस उपाय का प्रमाण कौन है? अर्थात् कर्म ज्ञान भक्ति की तरह क्या आचार्यनिष्ठा भी शास्त्रोक्त उपाय है? इसका उत्तर यह है कि शास्त्रों में यह विहित हो या न हो, यह चर्चा ही अनपेक्षित है। कारण कि शास्त्र से भी प्रबल शिष्टाचार ही इसमें प्रधान प्रमाण है। यथा श्रीयामुनाचार्य स्वामीजी ने बताया—"पितामहं नाथमुनिं विलोक्य प्रसीद मद्वृत्तमचिन्तयित्वा।" श्रीकूरेश स्वामीजी ने भी कहा—"रामानुजांघ्रि शरणोऽस्मि कुलप्रदीपस्त्वासीत्स यामुनमुनेः स च नाथवंश्यः। वंश्यः पराङ्कुशमुनेस्स च सोऽपि देव्या दासः ....॥" (हे प्रभो! मैं श्रीरामानुज स्वामीजी का कृपापात्र हूँ। वे यामुनाचार्य स्वामीजी के कृपापात्र हैं। वे नाथमुनि स्वामीजी के कृपापात्र हैं। वे शठकोपस्वामीजी के कृपापात्र हैं। वे तो लक्ष्मीजी के कृपापात्र हैं; अतः इस परंपरा से आप मुझ को भी अपना दास मान लीजिए।) एवं श्री वेदांत देशिक स्वामीजी ने कहा—"अन्धोऽनन्धग्रहणवशगो याति रङ्गेश! यद्वत् पङ्गुर्नौकाकुहरनिहितो नीयते नाविकेन। भुङ्क्ते भोगानविदितनृपस्सेवकस्यार्भकादिः त्वत्संप्राप्तौ प्रभवति तथा देशिको मे दयालुः॥" (जिस तरह से अंधा मानव दूसरे अनंध का हाथ पकड कर अपना उद्दिष्ट स्थान

पहुंच जाता है, एवं जैसे लंगडा भी नाव में बिठा जाने पर नाविक से उस पार लिया जाता है, एवं राजसेवक के पुत्र बांधव आदि लोग राजा को स्वयं नहीं जानते हुवे भी (उस राजा से प्रदत्त) अनेक भोगों को भोगते हैं, इसी तरह से गुरुजी के प्रभाव से मेरा भी काम बन जाएगा।)

क्ष्मोपकरण शङ्ख भेरी आदि मांगने का यह तात्पर्य है कि खुद हम ही शङ्ख भेरी आदि (यानी उनके सदृश) बन जाएँगे। पांचजन्य, शुद्ध सत्वगुण का एवं विशुद्धज्ञान का सङ्केत है। अतः यों प्रार्थना की जाती है कि हम शुद्ध सात्विक एवं ज्ञानी बनेंगे। एवं आचार्य वैभव की घोषणा करनेवाली भेरी बनेंगे। तथा आपका निरंतर मङ्गलाशासन करने में निरत होंगे। यह मङ्गलाशासन - तत्परता अभी भी है; तो भी उसके चालू होने की प्रार्थना की जाती है। स्वपरप्रकाशक दीपकी तरह हम भी प्रकाशवान ज्ञानी बनेंगे। भगवद्रामानुजसिद्धान्त विजयध्वज भी हम बनेंगे। वितान शब्द से "दासस्सखा वाहन मासनं ध्वजो यस्ते वितानम्" इत्यादि से संस्तुत गरुडजी की तरह सर्वदेशकालावस्थाव्यापिनी सेवा करनेवाला प्रिय सेवक होने की प्रार्थना की जाती है। तथाच इस श्रेयःपरंपराकी प्रार्थना करना इस गाथा का लक्ष्य हुआ॥ (२६)

(गाथा) कूडारै वेल्लुम् शीर्गोविन्दा ! * उन्तन्नै पाडिप्परैकोण्डु याम्पेरु शम्मानम् *
नाडु पुहलुम्परिशिनाल् नन्राह * शूडहमे तोळ्वळैये तोडे शेविप्पूवे *
पाडहमे येन्रनैय पल्कलनुम् यामणिवोम् * आडैयुडुप्पो मदन्पिन्ने पाल् शोरु *
मूडनेय पेय्दु मुळङ्गै वळिवार * कूडियिरुन्दु कुळिर्न्देलोरेम्बावाय् ॥ २७ ॥

कूडारै वेल्लुम् शीर्	अपने से मिलने के अनिच्छुक जन को भी जीतने में समर्थ कल्याणगुणवाले
गोविन्दा	- हे गोविंद !
उन्तन्नै पाडि	- तुम्हारा (नाम) संकीर्तन कर
परै कोण्डु	(तुम से अपने अपेक्षित) पुरुषार्थ पानेके बाद
याम् पेरु शम्मानम्	हमें जो बडा सन्मान मिलना चाहिए, (वह इस प्रकारका है कि—)
नाडु पुहलुम् परिशिनाल्	सारी दुनिया प्रशंसा करें, इस तरह से
शूडकमे तोळ्वळैये	- चूडी, भुजा का आभरण,
तोडे शेविप्पूवे	- कर्ण कुंडल, कर्णपुष्प,
पाडकमे	- पाद का अलंकार पैंजनी
एन्रनैय पल् कलनुम्	- इत्यादि अनेक भूषणों को
याम् नन्राह अणिवोम्	हम ठीक पहनेंगी ;
आडै उडुप्पोम्	(इस के बाद) हम वस्त्र पहनेंगी ;
अदन् पिन्ने पाल् शोरु	- पीछे क्षीरान्न को
मूड नेय् पेय्दु	(वह अन्न) ढांका जाय इस तरह से उस में घृत डालकर
मुळङ्गै वळि वार	(वह घृत भी) कोहनी के द्वारा बह जाय इस तरह से (खायेंगी ;)
कूडि इरुन्दु	- (तुम और हम) सब मिलकर
कुळिर्न्दु एलोरेम्बावाय्	(उक्त प्रकार से हम) ऐसा शिशिर भोग भोगेंगी ॥

पूर्वगाथोक्त प्रार्थना-वचन सुनकर श्रीकृष्णने अपने मन में विचार किया कि, "ये गोपियां तो वास्तव में "वासुदेवस्सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः" इत्याद्युपवर्णित अनन्यप्रयोजन परमभक्ताग्रेसर हैं। इस अर्थ को सूचित करती हुई इन्होने कहा कि हम तुमको ही मांगती हैं। अतः शंख भेर्यादि व्रतोपकरण देने की इनकी जो प्रार्थना है, उसका अर्थ भी एतदनुगुणतया मेरी ही मांगनी है। तथाहि—पांचजन्य समान शंख मांगने का तात्पर्य है पांचजन्यधारी मुझको ही मांगना; घटनर्तन करने के समय में मेरी कमर में जो भेरी बांधी गयी थी, उसके सौंदर्य से आकृष्ट ये गोपियां उक्त भेरी विशिष्ट मुझको ही मांग रही हैं; मंगलाशासन करनेवालों को चाहनेवाली ये, अस्थानरक्षाव्यसनि पंचायुधादि नित्यसूरियों के साथ मुझको ही प्राप्त करना चाहती हैं; मंगलदीप शब्द से "श्रीरङ्गहर्म्यतलमंगल.दीपरेखाम्" इत्यादि से संस्तुत लक्ष्मीजी से (यानी हाल में नीला देवी से) युक्त मुझ को ही चाहती हैं; ध्वज शब्द से गरुडध्वज मुझको मांगती हैं; वितान शब्द से भी "निवास शय्यासन....वर्षातप वारणादिभिः" इत्याद्युक्त प्रकार से हिमबाधा को रोकनेवाले शेषजी के साथ मुझको ही मांग रही हैं। इस तरह से समस्त परिजन परिचारक विशिष्ट मुझको ही मांगनेवाली इन गोपियों की भक्ति व वाक्चातुरी वर्णनातीत है। अतः ये मेरा अनुग्रह पाने योग्य हैं।"

यों सोचकर भगवानने उनसे कहा—हे मेरी प्यारी गोपियो ! तुम अलभ्य वस्तुओं को ही मांग रही हो। तो भी तुम्हारी इच्छा को सफल बनाना मेरा कर्तव्य है। अतः प्रयत्नकर तुम्हारे अपेक्षित सभी पदार्थों को दे दूंगा। इनको लेकर सानंद लौट जाओ। फिर दूसरी बात न करना। ये तुम्हारे अपेक्षित अनेक शङ्ख ले लो—एक तो मेरा पांचजन्य; दूसरा यहां के मंदिर का शङ्ख, जिसका वर्णन तुमसे ही छठी गाथा में किया गया; और तीसरा शङ्ख वह है, जिसको गाय चराने के समय मैं ले जाता। तुम भेरी मांगती हो। मेरे त्रिविक्रमावतार के समय जांबवान से बजाई हुई एक भेरी है; लंकायुद्ध में मेरी विजय की घोषणा करनेवाली भी एक भेरी थी; एवं कुम्भनर्तन करने के समय में मैंने कमर में एक भेरी बांधी थी; इन तीनों में तुम जिसको अतिविशाल एवं बहुत बडी मानती, होगी, उसको ले लो। मङ्गलाशासन करनेवाले तो तुम ही हो; अथवा मङ्गलाशासन निरत विष्णुचित्तस्वामीजी एवं शठकोपस्वामीजी हैं; इनको लेते जाओ। मङ्गलदीप, लक्ष्मीजी का अवतार नीलादेवी है, जो भी तुम्हें सुप्राप है। ध्वज तो मेरा गरुडध्वज है ही। शेषजी हीं वितान है, जिन्होने मथुरा से व्रज आनेवाले मेरे पीछे पीछे ही आते हुवे मुझको वर्षा से बचा दिया। तथाच इन सब वस्तुओं को तुम लोग सानंद ले सकती हो। और क्या आज्ञा है ?" इसके प्रत्युत्तर में गोपियां विनती करती हैं कि, "हे प्रभो ! आपकी कृपा के लिए धन्यवाद हो। परंतु ये सब पदार्थ व्रत के अपेक्षित उपकरण मात्र है। अतः इतने मात्र से हम कैसे तृप्त हो सकेंगी। व्रत समाप्त होने के वाद हम आपके श्रीहस्त से कुछ विशेष सन्मान पाने को चाहती हैं; उसके प्रकार को भी कृपया सुन लीजिए।" गोपियों से अपेक्षित इस सन्मान का वर्णन करना ही प्रकृत गाथा का काम है।

इस गाथा के प्रारंभ में भगवान का एक अद्भुत संबोधन किया जाता है—(कूडारै वेल्लुम् शीर्) अर्थात् अपने से मिलने न चाहनेवालों को भी जीतनेवाले हे भगवन् ! इसका यह तात्पर्य है कि भगवान

अपने से न मिलते हुवे दूर दूर रहनेवालों को भी उचित उपायों से जीतकर अपने वश में लेते हैं; फिर अपने परमभक्तों को जीतने के विषय में कहना ही क्या ? अथवा दूसरों को भगवान जीत सकते हैं; नतु भक्तों को; कारण कि आप भक्तपराधीन होने से भक्त लोग ही वास्तव में आपको जीत लेते हैं। इसमें, "हे शत्रु को जीतनेवाले !" कहने की जगह, "हे अपने से न मिलने चाहनेवालों को जीतनेवाले !" कहना बडा सुंदर है। इससे मालुम होता है कि न केवल शत्रु, किंतु कितने ही मित्र, एवं उदासीन भी कदाचित् आपसे मिलना नहीं चाहते हैं। यह बात बिलकुल ठीक है। हमेशा भगवान का ही चिंतन करते हुवे, आपसे मिलने के समय की ही "कदा ? कदा ?" पुकारकर, प्रतीक्षा करते रहनेवाले परमभक्ताग्रेसर भी कदाचित् भगवान को छोडकर दूर भाग जाना चाहते हैं। ऐसा करने के दो कारण होते हैं— प्रणयरोष एवं नैच्यानुसंधान। प्रणयरोष तो प्रसिद्ध है, जो गोपियों के मन में बारंबार उत्पन्न होता ही रहता है। विरह व्यथा से पीडित भक्तों से अपेक्षित, ठीक उसी समय में, अथवा भगवान से ही पहले सूचित उसी सङ्केत समय में, अपने पास नहीं आते हुवे, कुछ विलंब से आनेवाले भगवान के दर्शन करते ही भक्त लोग बहुत नाराज हो जाते हैं, और उस जगह से स्वयं निकल जाना चाहते हैं, अथवा आपको ही वहाँ से निकाल देने की चेष्टा करते हैं। और कदाचित भगवान के दर्शन करने पर, उनकी महत्ता को, एवं अपनी अल्पता को भी सोचते हुवे भक्त लोग ऐसा सङ्कोच करते हैं, कि, "हाय ! हाय ! ऐसे परमपवित्र एवं परमविलक्षण भगवान को, सब प्रकारों से नीच मैं ने जो प्राप्त करना चाहा, यह सर्वथा अनुचित है, महापराध है; मैं आपके पास जाने लायक नहीं हूँ; यहाँ से दूर भाग जाना ही मेरे लिए लायक है।" फलतः वे दूर जाना चाहते हैं। भगवान से द्वेष, ईर्ष्या आदि करनेवाले भी आपसे मिलना न चाहते हैं, यह तो है ही। एवं कितने ही लोग भगवद्विषय में उदासीन रह जाते हैं—अर्थात् वे न तो द्वेषी हैं न वा भक्त। ये भी भगवान से मिलना न चाहते हैं। तथा च भगवान का यह प्रभाव यहाँ पर बताया जाता है कि, आप उक्त चारों प्रकार के व्यक्तियों को (यानी (१) प्रणयरोषवाले, (२) नैच्यानुसंधान निरत, (३) द्वेषी और (४) उदासीन) तत्तदुचित उपायों से जीत लेते हैं। तथा हि— (१) प्रणयरोषवाली प्रेयसी के विषय में आप अत्यंत विनय का प्रदर्शन करते हैं, तथा अतिमनोहर शृंगारलीला करने में अपने सामर्थ्य का प्रकाशन करते हैं, जिसको देखकर वे कोप छोडकर प्रसन्न हो जाती हैं। (२) नैच्यानुसंधान से विमुख होनेवालों को जीतने का उपाय तो भगवान के शीलगुण का प्रकाशन है। स्वयं महान होते हुवे क्षुद्रजनों से मिलने का स्वभाव ही शील अथवा सौशील्य कहलाता है। (३) शत्रु विजय का साधन तो स्पष्ट ही है—शौर्य वीर्य पराक्रम। (४) उदासीनों के प्रति भगवान अपने सौंदर्य, लावण्य, इत्यादि नानाविध गुणों का प्रयोग करते हुवे उनको जीत लेते हैं। भगवान के इस महावैभव का वर्णन करता है प्रकृत संबोधन।

(गोविन्दा)। श्रीकृष्ण भगवान का एक असाधारण बिरद, या नाम है गोविंद। इसका अर्थ है गोपाल। गोवर्धनोद्धरण होने के बाद, इंद्र को ज्ञानोदय हुआ और उसने अपनी भूल के लिए पछताता हुआ

भगवान के पास आकर, आप से क्षमा मांगी। उस समय उसने कामधेनु के दूध से आपका अभिषेक कर, आपको "गोविंद" बिरद से विभूषित किया। अतः यह शब्द भगवान का अत्यंत प्रिय नाम है। इस नाम से आप को संबोधित करने का कारण आगे की (करवैहळ्) इत्यादि गाथा टीका में बताया जायगा।

(उन्तनैप्पाडिपरैकोण्डु)। ऊपर से इसका अर्थ है तुम्हारा नामसंकीर्तन कर पुरुषार्थ लेकर। गोपियों का हृद्गत अभिप्राय तो यह है कि तुम्हारा नामसंकीर्तन रूप पुरुषार्थ पाकर। हाल में कृष्ण नाम संकीर्तन ही गोपियों का अलभ्य पुरुषार्थ है। सुना जाता है कि हिरण्यासुर के नगर में उसकी कठोर आज्ञा यह थी कि किसी को भगवन्नाम संकीर्तन न करना चाहिए। इस समय व्रज में भी ऐसी ही परिस्थिति थी; अर्थात् गोपवृद्धों की कठोर आज्ञा थी कि गोपियों को श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन ही नहीं, वरन श्रीकृष्ण नाम स्मरण तक न करना चाहिए। परंतु अब भगवान की विशेषकृपा से यह आज्ञा शिथिल हो गयी और गोपियां जत्था बनकर बडे स्वर से श्रीकृष्णनाम संकीर्तन करने में समर्थ हो गयीं। अतः वास्तव में यही उनके लिए परमपुरुषार्थ था। मेरी लेने की बात तो बनावट है; गोपवृद्धों को प्रसन्न रखने के लिए जो बारंबार की जाती है। यों समझ लेने पर कि गोपियों का खास अभिप्राय तो श्रीकृष्ण से मिलना ही है, फिर ये गोप अपनी पुरानी आज्ञाको चालू कर देंगे कि श्रीकृष्ण की नजर में इनको नहीं आनी चाहिए। इस कारण से इस प्रबंध में आदि से अंततक अनेकत्र व्रतकी और व्रतोपकरणों की बात आती रहती है। यह अर्थ (शित्तम् शिरुकाले) इत्यादि (२९-वीं) गाथा में स्पष्ट होगा। अस्तु।

(याम्पेरु शम्मानम्) इत्यादि। नाम संकीर्तन करती करती हमने शंखभेर्यादि व्रतोपकरण पाये तो सही; परंतु उतने मात्र से हम कृतार्थ नहीं होनेवाली। आपकी ओर से हमें खूब सन्मान भी मिलना चाहिए। वह भी ऐसा विलक्षण सन्मान होना चाहिए जिसकी प्रशंसा सारी दुनिया से की जायेगी। सर्वत्र, इस सन्मान प्रशंसा का ऐसा गूंजारव उठना चाहिए कि, "वाह! वाह! श्रीकृष्ण ने गोपियों के कैसा सन्मान किया! संसार भर में दूसरे किसी को ऐसा सन्मान कदापि न मिला था; नवा आगे मिलेगा। अहो! गोपियों की भक्ति कैसी है! अहो! भगवान की कृपा कितनी विलक्षण है! अहो! आपका औदार्य है!" इत्यादि। ख्यातिलाभ से विरक्त परमभक्ताग्रेसर इन गोपियों के मन में क्या दूसरों से अपनी प्रशंसा सुनने की भी इच्छा रहती है? हाँ जी! पुष्कल रहती है। सन्मान की प्रशंसा तो वास्तव में भगवान की कृपा की अथवा औदार्य की ही प्रशंसा होती है, जो भक्तों के अपेक्षित ही है। गोपियों की प्रशंसा भी भगवान की प्रशंसा में ही पर्यवसित होती है। क्यों कि आपके अनुग्रह से ही ये प्रशंसापात्र बन गयी हैं। अतः ऐसी प्रशंसा के चाहने में अथवा सुनने में कोई आपत्ति नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि यह प्रशंसा सुनकर कितने ही उदासीन एवं द्वेषी जन भी ऐसे सन्मान पाने के लिए भगवान में भक्ति करने लगेंगे। अतः लोककल्याणकारक यह प्रशंसा अपेक्षणीय भी होती है।

श्रीरामचंद्रजी ने अपने राज्याभिषेक के समय उपस्थित समस्त वानरवीरों को सन्मान दिये; परंतु हनुमानजी को जो सन्मान मिला, वह बडा विलक्षण था। महेंद्रने श्रीरामचंद्रजी को एक अनर्घ मुक्ताहार की

भेंट की; प्रभुने उसको सीताजी को देदिया; सीताजी ने उसको हाथ में उठाकर प्रभुकी ओर देखा; तब प्रभुने कहा कि "इस बडी वानरगोष्ठी में तुम्हारी परिपूर्ण कृपा का जो पात्र होगा, उसको यह हार दे दो!" फिर सीताजीने वह हार हनुमान जी को दिया, जिसको पाकर हनुमान जी खूब प्रकाशमान हो गये। ये हैं वाल्मीकि रामायण के कतिपय पद्य—सर्वरत्नसमायुक्तं मणिभिश्च विभूषितम्। मुक्ताहारं नरेन्द्राय ददौ शक्र प्रचोदितः। मणिप्रवरजुष्टं तं मुक्ताहारमनुत्तमम्। सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम्॥ अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी। अवैक्षत हरीन्सर्वान्भर्तारं च मुहुर्मुहुः॥ तामिङ्गितज्ञस्संप्रेक्ष्य बभाषे जनकात्मजाम्। प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भामिनि॥ ददौ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षणा। हनूमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः॥ हाल में गोपियों की यह आशा है कि इस तरह से श्रीकृष्ण और नीलादेवी, दोनों मिलकर अत्यंत कृपा व आदर के साथ अपने स्वहस्त से सन्मान दें।

सन्मान की पट्टी दिखाई जाती है (शूडहमे) इत्यादि से। पहिले पहिले पाणिग्रहण पूर्वक ही भगवान से संबंध होगा। अतः भगवान से पकडे जानेवाले हस्तका आभरण चूडी मांगी जाती है। पाणिग्रहण के बाद आलिंगन करने के समय अगर भुज शून्य रहेगा तो भगवान का रस बिगड जाएगा; अतः भुज का आभूषण केयूर मांगा जाता है। पीछे कान से कान मिलाकर रहस्य संलाप होता है; अतः कर्णाभरण अपेक्षित है। इस के दो प्रकार हैं—कान के नीचे के भाग में पहिनने का अभूषण कुंडल, एवं ऊपर के भाग के लिए कर्णपुष्प। प्रणय के उन्मस्तक हो जाने पर ऐसा एक प्रकरण आ जायगा जब नायक, प्रेयसी का पैर पकडने को उद्युक्त होगा। उस समय में पैरों को शून्य रखना बडा अनुचित है। अतः पादाभरण भी अपेक्षित है। एवं दूसरे अंगों को भी उचित आभरण से अलंकृत होने चाहिए। सुंदर वस्त्र के विना यह सब सजावट बिलकुल फीकी पड जाएगी। अतः वस्त्र भी मांगा जाता है। द्रौपदी ने गोविंद नामोच्चारण से अक्षयवस्त्र प्राप्त किया। ये गोपियां भी इस गाथा के उपक्रम में गोविंद नामोच्चारण कर अब वस्त्र मांग रही हैं। शायद इनका यह अभिप्राय है कि गोविंद नामोच्चारण ही वस्त्र पाने का साधन है।

अलंकारासन के बाद भोज्यासन होना स्वाभाविक है। अतः घृतपूर्ण, श्रेष्ठ, क्षीरान्न माँगा जाता है (पाल् शोरु) इत्यादि से। व्रतांगतया एक मास तक घृत दुग्ध दधि आदि का उपयोग गोपियों से छोडा गया था। व्रत समाप्त हो जाने पर उपवास कर्शित आपके दिव्य विग्रह को क्षीरान्न देकर आनंदित करना भी आवश्यक है। वस्तुतस्तु, भगवान को ही धारक, पोषक, भोग्य आदि सब कुछ माननेवाली इन गोपियों के मन में क्षीरान्न खाने की इच्छा न होगी। तथापि जिस अभिप्राय से वस्त्र व भूषण मांगे गये, उसीसे क्षीरान्न को भी मांगना अनुचित न होगा। तथाहि—भगवान के भोगने के लिए ही गोपियों ने अपने शरीर सजाना चाहा; फिर आपके साथ रहकर क्षीरान्नसेवन करना कैसे अनिष्ट होगा? अतः भगवान के भोग के लिए ही यह सब आडंबर रचा जा रहा है। (कूडियिरुन्दु) शब्द से यह अर्थ स्पष्टतया कहा जाता है। इसका अर्थ यह है कि आप दिव्य दंपतियों के साथ रहकर ही हम इन सब भोगों को भोगना चाहती

हैं। तथा च यह अर्थ सिद्ध हुआ—भगवान के भोग के लिए यह चेतन वस्त्र, भूषण, अन्नपान आदि सभी का उपयोग कर सकता है; स्वभोग के लिए तो किसी को चाहता नहीं।

(मूड नेय् पेय्दु) यह क्षीरान्न का वर्णन भी बडा सुंदर है। अन्न में इतना घृत डालना चाहिए कि क्षीरान्न को हाथ में लेते ही वह घृत हाथ में से कोहनीतक बह कर जमीन पर गिर जाय। व्रत में उद्युक्त होने के कारण एक मास भर गोपियों ने घृत आदि का उपयोग न किया; फिर श्रीकृष्ण भी अकेले इनका उपयोग न कर सका। फलतः व्रज में इतना घृत इकठ्ठा हो गया कि उसको रखने की जगह दुर्लभ हो गयी। अतः अब गोपियां कहती हैं कि वह सब घृत क्षीरान्न में लगा दिया जाय।

(कूडियिरुन्दु कुळिर्न्दु)। उक्त प्रकार से आप से मिलकर, आप दोनों के श्रीहस्त से सन्मान पाकर, क्षीरान्न का भी सेवन करने से चिरकाल के विरह से हमारे मन में जो दुःख जमकर रहा था, वह एकदम शांत हो जायगा। ऐसा महान पुरुषार्थ हमें अपेक्षित है॥

व्यंग्यार्थ का विवरण॥ उपक्रम के दो संबोधन भगवान की तरह आचार्यों को भी ठीक लगते हैं। कृपामय, सुमधुर एवं विद्वत्तापूर्ण उपदेश से, एवं सुशोभन अपनी वर्ताव से आचार्य, विमुखों को भी अपने वश कर लेते हैं। श्रीरामानुज स्वामीजी की जीवनी से हम जानते हैं कि आपने क्षुद्रविषयचपल धनुर्दास, द्वेषी यादवप्रकाश, विद्यामदमत्त यज्ञमूर्ति इत्यादियों को जीत लिया। श्रीपराशर भट्टार्य स्वामीजी ने षड्दर्शनाचार्य वेदांती को जीतकर अपना शिष्य बना दिया। अन्य आचार्यों के जीवन में भी ऐसी अनेक घटनाएँ बनी हैं। एवं आचार्य का नाम गोविंद भी होता है। गो—शब्द, माने वेद वेदांतादि समस्त शास्त्रगण; इसको विंद–पानेवाले, अर्थात् सकलशास्त्रविदग्रेसर हैं आचार्य।

आचार्य की ओर से मांगे जानेवाले भूषणों का यह रहस्य है—चूडी शब्द से हस्त का भूषण अंजलि मांगी जाती है। यह तो आचार्य कृपा के विना न मिल सकती है। तथा च आचार्य से यों मांगा जाता है कि, "हे गुरो! आपकी कृपा से हम विनय संपन्न बनकर आपकी संनिधि में सदा अंजलिहस्त रहें, ऐसा अनुग्रह कीजिए।" भुजभूषण तो शङ्खचक्रांकन है, जो आचार्य की कृपा से ही मिलनेवाली चीज है। कान का भूषण तो प्रसिद्ध भगवत्कथाश्रवण है। दूसरा भूषण भी आचार्यवैभवश्रवण होगा। "हरेर्गच्छाङ्घ्रियुग्मालयम्" इत्याद्युक्त प्रकार से भगवत्संनिधि में, अथवा आचार्यसंनिधि में जाना पाद का भूषण है। अर्थात् करचरणादि समस्त अवयवों से आचार्य की निरंतर सेवा करने का भाग्य मांगा जाता है।

वस्त्र पहिनने की प्रार्थना कुछ निगूढ है। भूमंडल पर रहनेवाले प्राणियों में मानवमात्र वस्त्र पहिनता है, नतु दूसरा कोई जानवर। परंतु जो वास्तव में "वृत्त्या पशुर्नरवपुः", "ज्ञानेन हीनः पशुभिस्समानः" इत्याद्युक्त प्रकार से मनुष्यशरीर का धारण करते हुवे ही आत्मकल्याणकारक ज्ञान से विरहित होकर केवल पेट भरने का काम ही जानता है, उसको पशु मानना पडता है, और उसका वस्त्रधारण करना भी व्यर्थ है। अतः अब आचार्य से यों प्रार्थना की जाती है कि, "हे गुरुजी! अबतक हम नरपशु रहकर वस्त्र

पहिनने के भी अनधिकारी ठहर गये थे। अब आपकी कृपा से सच्चा ज्ञान पाकर, हम वस्त्र पहिनने लायक, मानव बनेंगे।"

घृतमिश्रित क्षीरान्न का अर्थ बडा सुंदर है। अन्न शब्द का अर्थ, "अहमन्नादः" इत्यादि श्रुति के अनुसार परमात्मा है; दूध तो उनके कल्याणगुण है। घृत भी उसको रसवत्तर बनानेवाले आचार्यगुण हैं। तथा च आचार्यगुणों के साथ मिलाकर भगवान का एवं आपके कल्याणगुणों का अनुभव करने की प्रार्थना की जाती है। कोहनी द्वारा घी बहाने का यह तात्पर्य है—प्याऊ में पानी पीनेवाला अंजलि से पीता है। तब उसकी कोहनी द्वारा पानी नीचे बहता रहता है। उतने में दूसरा एक मानव पानी पीने को आता है। उसकी तरस इतनी अधिक है कि वह पहिले के आदमी के पानी पीकर निकल जाने तक की देरी का सहन न कर सकता है। अतः वह उसकी कोहनी से जो पानी गिर रहा है, उसीको अंजलि में उठाकर पीता है। इतने में और एक तृषार्त आकर उक्त दूसरे आदिमी की कोहनी से निकलनेवाला जल पीता है। इस तरह से यह परंपरा बहुत दूरतक चलती रहती है। इसी तरह परंपराक्रम से अनेक पुरुषों का (शिष्याचार्य परंपरा से) किया जानेवाला भगवद्भागवताचार्यगुणानुभव कोहनीप्रवाह शब्द से कहा जाता है॥

(गाथा) करवैहळ् पिन् शेन्नु कानम् शेर्न्दुण्बोम् * अरिवोन्नु मिल्लाद वाय्क्कुलत्तु * उन्तन्नै
प्पिरवि पेरुन्तनै पुण्णियम् यामुडैयोम् * कुरैवोन्नुमिल्लाद गोविन्दा! उन्तन्नोडु
उरवेल् नमक्कु इङ्गोळिक्कवोळियादु * अरियाद पिळ्ळैहळोम न्बिनाल् * उन्तन्नै
शिरुपेरळैत्तनवुम् शीरियरुळादे * इरैवा नी ताराय् परैयेलोरेम्बावाय्॥ २८॥

कुरैवु ओन्नुम् इल्लाद कोविन्दा	किसी प्रकार की न्यूनता से शून्य हे गोविंद!
याम्	- हम
करवैहळ् पिन् शेन्नु	- गायों के पीछे जाकर
कानम् शेर्न्दु	- जंगल पहुंचकर
उण्बोम्	(शरीरपोषण के लिए) वहां भोजन करती हैं;
ओन्नुम् अरिवु इल्लाद	बिलकुल ज्ञान से शून्य
आय् कुलत्तु	- गोपकुल में (अवतीर्ण)
उन्तन्नै	- तुमको
पिरवि पेरुन्तनै पुण्णियम् उडैयोम्	(हम अपने सजातीय के रूप में) पाने के पर्याप्त पुण्यवती हैं;
इरैवा	- हे हमारे स्वामी!
उन्तन्नोडु उरवु	- तुम्हारे साथ (हमारा) संबंध,
इङ्गु नमक्कु ओळिक्क ओळियादु	इधर तुम्हारे से और हमारे से तोड डालने को अशक्य है;
अरियाद पिळ्ळैहळोम्	- ज्ञान शून्य बालिका हमने
अन्बिनाल्	- प्रेम से
उन्तन्नै	- तुमको
शिरु पेर् अळैत्तनवुम्	अल्प नाम से जो पुकारा, इसलिए

नी	- आश्रितवत्सल तुम	परै ताराय्	(हमारे अपेक्षित) पुरुषार्थ
शीरि अरुळादे	- नाराज मत हो जाओ ;	एलोरेम्पावाय्	दे दो ॥

अतीत दो गाथाओं से गोपियों ने भगवान से व्रतोपकरण शंख भेर्यादि कतिपय पदार्थों की, एवं व्रत समाप्ति के बाद लभ्य, वस्त्र भूषणादि कतिपय सन्मानों की मांग की। इन दोनों वचनों का पुनः पुनः सावधानी से अनुसंधान कर श्रीकृष्णने अपने मन में निश्चय किया, कि गोपियों से अपेक्षित ये वस्तु केवल सांसारिक कोई पदार्थ नहीं हैं; परंतु संसार छोडकर परमपद चलनेवाले मुक्तात्मा को उधर मिलनेवाला सत्कार है, जिसको मुक्तभोगावली कहते हैं। तथाहि—अर्चिरादि मार्ग से चलकर, विरजानदी में स्नानकर, उसका पार कर, अमानव करस्पर्श से सूक्ष्म शरीर छोडकर, दिव्य शरीर पाकर, परमपद की ओर चलने वाले चेतन के स्वागत के लिए वहां असंख्य जन एकत्रित रहते हैं। वे भेरी बजाते हैं, काहली बजाते हैं, वाचा स्तुति करते हैं, ध्वज वितान आदि धरते हैं, मंगलदीप धरते हैं, और भी नाना प्रकार के संभ्रम करते हैं। "माले मणिवण्णा" इत्यादि गाथा से यही भोग मांगा गया है। बाद में हाथ में माला, अंजन, सुगंध चूर्ण, वस्त्र, भूषण आदि उठाकर पांच सौ अप्सराएं आती हैं और उस मुक्त पुरुष को उन वस्तुओं से सजाती हैं। उसके बाद वह भगवान की संनिधि जाकर उनका परिपूर्ण अनुभव कर देता है; यह अनुभव ही गोपियों से क्षीरान्नभोग कहा गया है। अतः साक्षात् मुक्तभोगावली मांगनेवाली ये लोग, गुप्तरूप से दूसरी कुछ बात कर रही हैं। अस्तु।

यों सोचकर श्रीकृष्ण ने उनसे कहा "हे गोपियो! तुम्हारा अभिप्राय मैं ने जान लिया। तुम तो बडा पुरुषार्थ मांगती हो। परंतु शास्त्र की मर्यादा है कि जिसको पुरुषार्थ पाना हो, उसको तदनुगुण उपाय का अनुष्ठान करना चाहिए। अगर उपाय के विना भी किसी को कोई पुरुषार्थ मिलता होगा, तो सब को सब कुछ, अनायासतः मिल जाएगा। अतः अब बतावो कि तुमने कौन से उपाय का अनुष्ठान किया है, जिसके फलतया मैं तुम्हारी प्रार्थना सफल बनावूं।" इसका प्रत्युत्तर, जो गोपियों से दिया गया, उसका वर्णन प्रकृत गाथा से किया जाता है। प्रत्युत्तर भी इतना मात्र ही है—"न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमां स्त्वच्चरणारविन्दे, अकिंचनोऽनन्यगतिः।" उत्तमपुरुषार्थ प्राप्ति के साधनतया, शास्त्रों में कर्म, ज्ञान, भक्ति इत्यादि कतिपय उपाय बताये गये हैं तो सही; परंतु उनमें उतरनेवाले के विषय में भगवान झट प्रसन्न न होते हैं। आकिंचन्य व अनन्यगतित्व से युक्त मानव तो शीघ्र ही आपकी कृपा का पात्र बन जायगा। अतः भगवान ने गोपियों से यह जानना चाहा कि, इनकी निष्ठा कैसी है। इस रहस्य को जाननेवाली गोपियां भी अपने आकिंचन्य व अनन्यगतित्व का सुचारु वर्णन करती हुई अपने से अनुष्ठित अपराधों के लिए भगवान से क्षमा भी मांगती हैं, इस गाथा से।

भगवान का संबोधन करती हैं—(कुरैवोन्नुमिल्लाद गोविन्दा)—हे सर्वथा परिपूर्ण गोविन्द! भगवान, ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य तेज नामक छे गुणों से इस लिए परिपूर्ण हैं, कि इनसे भक्तों के अज्ञान अशक्ति

इत्यादि सभी न्यूनताओं को एकदम पूर्ण कर देवें। अगर हम भी ज्ञान शक्त्यादि से पूर्ण ही होती, तो आपके पास क्यों कर आती, और आपकी पूर्णता का उपयोग ही क्या होता? अतः इस आपकी पूर्ति को सफल बनाते हमारी प्रार्थना सफल कीजिए।

यह सुनकर श्री कृष्णने कहा—"मेरी प्रशंसा करने मात्र से तुम्हारा काम सिद्ध न होगा। अपने उपायानुष्ठान का वर्णन तो करो जिससे तुम्हारी अधिकारपूर्ति को मैं समझ सकूँगा।" इसका प्रत्युत्तर है (करवैहळ् पिन् शेन्नु) इत्यादि। हे प्रभो! हम कर्मयोग की अथवा ज्ञानयोग की गंधतक न जानती हैं। बडे बडे ज्ञानियों के पीछे पडकर उनका अनुग्रह पाकर लोग ज्ञानी बनते हैं। हम तो हमेशा जानवरों के पीछे पीछे रहती हैं। फिर आप ही जान लीजिए कि हमारा ज्ञान कैसा होगा। जप तप तीर्थयात्रा इत्यादि कर्मयोग कहलाते हैं। हमारा कर्म तो गायों के पीछे जंगल में जाना, और वहां जो मिले उसको, उन गायों की तरह विना नियम, खा डालना, इतना ही है। भोजननियम भी हमें अज्ञात है। लीजिए, यह है हमारी उपायानुष्ठानसंपत्!

तब श्रीकृष्ण बोले—गोपियो! अगर यही तुम्हारा सुकृत हो, तो फिर क्यों कर तुम मेरे पास आकर गड बड करती हो? जाती रहो। मैं ने पहिले ही कहा न, कि किसी प्रकार के सुकृत के विना परमपुरुषार्थ न मिलेगा? फिर सुकृत के अभाव में मेरे से मांगने से क्या लाभ है? गोपियां इसका प्रत्युत्तर देती हैं—(अरिवोन्नुमिल्लाद) इत्यादि दो पादों से। यह तात्पर्य है—प्रभो! हमने इतना ही कहा कि हमारे पास अपने स्वप्रयत्न से कमाया हुआ कोई सुकृत नहीं है; इसका यह अर्थ नहीं है कि हम सर्वथा सुकृत से शून्य हैं। कर्म ज्ञानों के अभाव में भी आपसे अपनी निर्हेतुक कृपा से प्रदत्त बडा सुकृत हमारे पास है। सर्वथा ज्ञानहीन गोपकुल में हमारे बंधु के रूप में आपने जो अवतार लिया है, ऐसे आपके साथ हमारा यह संबंध ही हमारा बडा भाग्य है, जिसके बल से हम आपके सामने नीडर खडी होकर बात कर रही हैं। ज्ञानी लोग आपको ही साक्षात् धर्म पुकारते हैं। और उपनिषद का आदेश है "सोऽन्वेष्टव्यस्स विजिज्ञासितव्यः" (भगवान को ढूंढना चाहिए और जानना चाहिए)। इसके अनुसार सबसे ढूँढे जानेवाले पुण्यस्वरूपी आपने ही हमको ढूंढकर हमारे गोपकुल में हमारे बंधु होकर जो जन्म लिया है, यह क्या अल्प भाग्य है? जान लीजिए कि हम ऐसी महद्भाग्यवती हैं। अब वताइए कि ऐसी हमारी प्रार्थना को आप किस तरह से टाल सकते हैं।

यह सुनकर श्रीकृष्ण ने सोचा—वडे वडे ज्ञानियों का भी दुर्लभ सुदृढ अध्यवसाय, ज्ञानशून्य गोपकुल में समुत्पन्न इन वालिकाओं में देखा जाता है। अहो इनका भाग्य है! परमपुरुषार्थ पाने का ऐसा उत्तम अधिकारी दूसरा कौन होगा? अस्तु। इनकी और भी कुछ परीक्षा कर लूंगा; और इनकी मधुरवाणी सुनूँगा। इस अभिप्राय से आपने कहा—"गोपियो! यह वात तो सत्य है कि मैं यशोदा नंदगोपजी के पुत्र होकर अवतीर्ण हूँ। इससे कदाचित् उनका काम करना मेरा कर्तव्य होगा। परंतु यह क्या निर्बंध है कि तुम्हारे वचन को भी मुझे मानना चाहिए?" गोपियां इसका

प्रत्युत्तर देती हैं—(उन्तन्नोडुरवेल्) इत्यादि से। यह भाव है—प्रभो! यह आपका कहना अनुचित है कि हमारा तुम्हारा कोई संबंध नहीं। कारण कि हमारा भी पुष्कल संबंध है। क्या आप नहीं जानते कि नंदगोपात्मज, यशोदा-नंदन इत्यादि नामों की तरह, आपका यह भी एक शुभ नाम है—गोपीजनवल्लभ। यह नाम, अथवा विरद पाने के लिए ही आपने इस गोकुल में अवतार लिया? अतः हमारे बीच में रहनेवाला यह भर्तृभार्याभावरूपसंबंध न तो हमसे, न वा आपसे तोड डाला जा सकता हैं। आचार्यों का भी कहना है कि प्रणव के मध्यमाक्षर उकार से जीवेश्वरों का यही भर्तृभार्याभावरूप अभेद्य सम्बन्ध बताया जाता है। अतः, प्रभो! भर्ता होकर आप किसी प्रकार से हमारी उपेक्षा न कर सकते हैं।

इस विनती से खूब प्रसन्न होकर भगवान ने कहा—"यह तो बहुत ठीक है। अच्छा। तुम लोग अब मुझको गोपीजनवल्लभ, गोविंद आदि पुकारती, अपने साथ मेरा असाधारण संबन्ध बता रही हो। परंतु मुझे लगता है कि ठेठ से तुम्हारे मनमें यह भावना न थी। क्यों कि तुमने पहिले वारंवार मुझको नारायण पुकारा, जो सर्वात्मसाधारण सम्बन्ध का ही सङ्केत है। फिर मैं कैसे जान सकूँगा कि तुम्हारा सच्चा भाव कौनसा है?" यह सुनकर गोपियों के मन में बडी लज्जा, भीति और पश्चात्ताप हो गया; क्यों कि उन्होंने समझ लिआ श्रीकृष्ण को नारायण पुकारना बडा अपराध है। उनके मुख से यह नाम तीन वक्त (गाथा १, ७, १० में) निकल चुका था। प्रभुने इस अपराध को पहिचान भी लिया। फिर अब क्या किया जाय? अतः इसके लिए भगवान से क्षमा मांगती हैं (अरियाद पिळ्ळैहळोम्) इत्यादि से। "हे प्रभो! अज्ञ गोपबालिका होने से, और उसके बाद अत्यंत प्रेमपरवश होने से हमने आपको अल्प नाम से पुकारा; कृपया इस अपराध की क्षमा कर दीजिएगा।

यह भाव है—भगवान के नाम दो प्रकार के होते हैं—परत्वसूचक और सौलभ्यसूचक। नारायण नाम परत्वसूचक नामों में मुख्य है; क्यों कि इससे आपका सर्वव्यापकत्व, सर्वाधारत्व इत्यादि परत्वसूचक गुण बताये जाते हैं। यद्यपि इसमें सौलभ्य भी सूचित हो सकता है। तथापि यह गुण कुछ निगूढ है; परत्व ही सब से स्पष्ट जाना जाता है। गोविंद नाम तो इससे विपरीत है; कारण कि पूर्वगाथा-टीकोक्तरीति से यह शब्द गोपों से एवं गायों से भगवान का संबंध बताता है। और यह भी अर्थ वारंवार बताया गया कि भगवान, परत्व में विरक्त हो कर, सौलभ्य के प्रकाशन के लिए ही गोकुल पधार गये। अत एव, गोवर्धनोद्धरणरूप आपका अतिमानुषकृत्य देखकर चकित गोपों से, "अये! क्या तुम देव हो अथवा दानव?" इत्यादि पूछे जाने पर आप नाराज हो गये और बोल उठे कि, "मैं देव, गंधर्व आदि कोई भी नहीं परंतु तुम्हारा बन्धु बन गया हूँ"। इस वृत्तांत से यह अर्थ जाना जाता है कि देव पुकारनेवाले के प्रति श्रीकृष्ण नाराज होते हैं, और गोविन्द दामोदर माधव गोपीजनवल्लभ इत्यादि पुकारनेवाले के प्रति बहुत प्रसन्न होते हैं। फिर नारायण कहनेवालों को शिक्षा ही मिलनी चाहिए! अर्थात् नारायण नाम अल्प नाम हुआ और गोविंदनाम महान नाम हुआ। इस प्रबंध के प्रारंभ में तीन वक्त अल्प नाम का उच्चारण जो किया गया, उसके

प्रायश्चित्ततया अब तीन वार (२७, २८, २९ गाथाओं में) गोविंद नामोच्चारण किया जाता है। शायद गोदा देवी से यहां शिक्षित होने के कारण ही आजकल भी भगवन्नाम संकीर्तन करनेवाले भक्तलोग विशेषतः गोविंद नाम का ही कीर्तन करते हैं और वह भी तीन वार! अस्तु।

मूल गाथा में प्रसक्त अल्प नाम का परिचय नहीं दिया गया है; अर्थात् यह नहीं बताया गया है, कि गोपियां किसको अल्पनाम कहती हैं। आचार्यों का व्याख्यान है कि नारायण नाम ही अल्पनाम है। परंतु कई लोग इस पर आक्षेप करते हुवे कहते हैं कि गोविंद नाम ही अल्प नाम है। भगवद्गीता में विश्वरूपाध्याय इसका प्रमाण बताया जाता है। तथा हि—विश्वरूप के दर्शन से अर्जुन के मन में ऐसा विचार हुआ कि, "सर्वस्मात्पर इन महानुभाव को मैं ने अज्ञान से मानवमात्र मानकर उनसे तदनुगुण ही व्यवहार किया। यह तो महान अपराध हो गया। अतः इसके लिए क्षमा मांगनी चाहिए।" फिर उसने ऐसा ही किया, "सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति। अजानता महिमानं तवेमं मया प्रमादात् प्रणयेन वापि। यच्चापहासार्थं मसत्कृतोऽसि विहारशय्यासन भोजनेषु। एकोऽथ वाऽप्यच्युत तत्समक्षं तत् क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥" अतः हाल में भी गोपियां गोविंद नाम को छोटा नाम कह रही हैं। इस वादकी तभी कुछ कीमत होती, जब इस क्षमा-प्रार्थना के बाद फिर यह गोविंद नाम न पुकारा जाता। परंतु आगे की गाथा में यही नाम लिया जानेवाला है, न तु नारायणादि दूसरा कोई नाम। अतः यह अर्थ स्पष्ट होता है कि गोपियों के अभिप्राय में गोविंद नाम ही बडा नाम है। अर्जुन का अभिप्राय इस से विपरीत था; मगर इससे कोई आपत्ति नहीं होती। कारण कि भगवान के अनंत गुणों में कोई परत्वादि किसी गुण को श्रेष्ठ अथवा मुख्य मानता है; दूसरा भक्त सौलभ्य आदियों को प्रधान मानता है और तीसरा और किसी गुण को मुख्य मानता है। जिस भक्त को जब, भगवान के जिस गुण का विशद साक्षात्कार मिलता है, वह तब उस गुण को मुख्य मानता है। उसमें भी परत्व सौलभ्यों के बीच में एक को छोडकर दूसरे का ही अनुभव करने में कुछ आपत्ति भी होगी। तथाहि परत्व को भूलकर सौलभ्य मात्र का अनुभव करता रहनेवाला—"अवजानन्ति मां मूढाः" इत्याद्युक्त प्रकार से कदाचित् भगवान का तिरस्कार भी कर सकेगा तब भगवान उसको अपने परत्व का प्रकाशन करते हैं; जिसको जानते ही भक्त होश में आता है और अपनी भूल के लिए क्षमा मांगता है। विश्वरूपाध्याय में यही काम चला। परत्वमात्र का अनुसंधान करनेवाले दूसरे भक्त लोग आपके प्रति सीमातीत प्रेम रखते हुवे भी, भय, लज्जा, संकोच आदि के कारण आपको छोड देने चाहते हैं। तब भगवान उनको अपना सौलभ्य दिखाते हैं, जिस के दर्शन से वे प्रसन्न होते हैं और आपसे सानंद मिलते हैं। इस दशा में उनका यह विचार होता है कि परत्व का ध्यान अथवा वर्णन करना ही बडा अपराध है। तथांच यह अर्थ होता है कि प्रकृत गाथा में गोपियां अपने आकिंचन्य व अनन्यगतित्व की विनती करती हुई, भगवान के सौलभ्य का वर्णन करने के बाद जो अल्पनाम बोलने के अपराध की क्षमा मांगती हैं, वह नाम जरूर नारायण नाम ही होगा॥

व्यंग्यार्थ का विवरण॥ आचार्य की संनिधि में शिष्यलोग अपनी अयोग्यता की विनती कर, अपराधों की क्षमा मांगते हुवे, परमपुरुषार्थ भी मांगते हैं। हे सर्वथा परिपूर्ण! कहने से आचार्य,

ज्ञानानुष्ठान क्षमा दया इत्यादि से परिपूर्ण बताये जाते हैं। हम गायों के पीछे जाकर, वनमें खाते हैं कहने का तात्पर्य दो प्रकारों से होता है। हालमें हम ज्ञानशून्य, अत एव पशुप्राय क्षुद्र जनों का अनुसरण करते हुवे संसारमरुकांतार में पडकर क्षुद्रविषयों का अनुभव कर रहे हैं। परंतु हमारी प्रार्थना यह है कि अब हम आपके कृपापात्र बनकर, चतुर्दशविद्याधारक ज्ञानियों का अनुसरण करते हुवे बृहदारण्यक, उपनिषद में प्रवेशकर भगवान का परिपूर्ण अनुभव करेंगे। मूलगाथास्थ (कानम्शेन्दु) शब्द का अर्थ "गान पाकर" भी हो सकता है। इसका यह तात्पर्य है कि हम परमपद पहुँचकर सामगान करने निरत हो जावें। आचार्य भी हमारे भाग्य से ही अपने निजस्थान परमपद भी छोडकर हमारे उद्धार के लिए सर्वथा ज्ञानहीन हमारे बीच में अवतीर्ण हो गये हैं। और ऐसे महात्मा आचार्य के साथ हमारा संबंध, आत्म संबंध होने से नित्य होने के कारण किसी प्रकार से तोडा नहीं जा सकता है। ऐसे महोपकारक आचार्य के विषय में भी भूल से हम नानाविध अपचार कर देते हैं, जिन के लिए आपसे क्षमा मांगना अवश्य कर्तव्य होगा ॥ २८ ॥

(गाथा) शित्तम् शिरुकाले वन्दुन्नै चोवित्तु * उन् पोत्तामरे यडियै पोत्तुम्पोरुळ् केळाय् *
पेत्तम् मेय्त्तुण्णुम् कुलत्तिर्प्पिरन्दु * नी कुत्तेवलेङ्गळै क्कोळ्ळामर्प्पोहादु *
इत्तै प्परै कोळ्वानन्नु काण् गोविन्दा ! * एत्तैक्कु मेळेळ् पिरविक्कुम् * उन्तन्नोडु
उत्तोमे यावोमुनक्के नामाळ्शेय्वोम् * मत्तै नङ्कामङ्गळ् मात्तेलोरेम्बावाय् ॥ २९ ॥

गोविन्दा - हे गोविन्द !
शित्तम् शिरु काले - बडे सबेरे
वन्दु - (इधर) आकर
उन्नै सेवित्तु - तुम्हारा नमस्कार कर,
उन् पोत्तामरै अडियै - तुम्हारे स्वर्णसमान पादारविंदों का
पोत्तुम् पोरुळ् केळाय् - मङ्गळाशासन करने का प्रयोजन सुनो;
पेय्त्तम् मेय्त्तु उण्णुम् - गाय चराते जीवन करनेवालों के (गोपों के)
कुलत्तिल् पिरन्दु नी - कुल में जन्म लेनेवाले तुमको
एङ्गळै कुत्तेवल् कोळ्ळामल् पोहादु - हमसे अंतरंग सेवा लिये विना नहीं रहना चाहिए; अर्थात तुमको हमसे सेवा लेनी ही चाहिए;

इत्त परै कोळ्वान् - आज (तुम्हारे दिये जानेवाले व्रतोपकरण) भेरी (आदि) लेने के लिए ही
अन्नु काण् - हम नहीं (आयी हैं); (किंतु)
एत्तैक्कुम् - हमेशा के लिए, (तथा)
एळेळ् पिरविक्कुम् - (तुम्हारे और हमारे) प्रत्येक जन्म में भी (हम)
उन्तन्नोडु - तुम्हारे साथ
उत्तोमे आवोम् - सम्बंध रखनेवाली ही बनेंगी;
नाम् उनक्के आळ् शेय्वोम् - (और) हम तुम्हारी ही सेवा करेंगी ;
मत्तै नम् कामङ्गळ् मात्तु - (इससे विरुद्ध) हमारी दूसरी अपेक्षाओं को (कृपा से) शांत करो ॥

तिरुप्पावै दिव्य प्रबंध की यही शांतिगाथा है ; अर्थात् गोपियों से अनुष्ठित व्रत का वर्णन इस गाथा में समाप्त हो जाता है। आगे की गाथा तो इस प्रबंध के अध्ययन का फल बतानेवाली है। भगवान को जगाकर, दिव्यसिंहासन पर विराजमान कर, मंगलाशासन करने के बाद उनसे गोपियां जो अपने अभीष्ट मांग रही है, यह प्रार्थना वचन इस पद्य में समापित किया जाता है। इस प्रबंध में, आदि से शुरूकर "परै" (मेरी, व्रतोपकरण, पुरुषार्थ) शब्द जो बारंबार कहा गया है, उसका विवरण करना प्रकृत गाथा का लक्ष्य है। स्तोत्तरत्न में विराजमान, "भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरं प्रशान्तनिश्शेषमनोरथान्तरः । कदाहमैकान्तिकनित्यकिंकरः प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितः ॥" यह पद्य इस गाथा - तात्पर्य का वर्णन करनेवाला है। भट्टर स्वामीजी से विरचित "नीलातुङ्ग" इत्यादि मुखपद्य का दूसरा पाद, "पारार्थ्यं स्वं श्रुतिशतशिरस्सिद्ध मध्यापयन्ती," यह भी प्रकृत गाथा का तात्पर्य बतानेवाला है । तथा हि-गोपियां इस गाथा द्वारा भगवान से यों प्रार्थना करती हैं कि, "हे प्रभो ! हम जन्मजन्मांतरों में भी आपके साथ ही रहती हुई आपकी सर्वदेश सर्वकाल सर्वावस्थोचित सर्वविध सेवा करेंगी। यही हमारे अपेक्षित परमपुरुषार्थ है।" इसीको भट्टरस्वामीजी श्रुतिशत - शिरस्सिद्ध पारार्थ्य कहते हैं।

यह तात्पर्य है—वेदांत वाक्यों में सामान्यतः ब्रह्मप्राप्ति ही परमपुरुषार्थतया उपवर्णित होता है। परंतु इस प्राप्ति शब्द का कुछ विवरण अपेक्षित है। अर्थात्, यह चेतन; परब्रह्म को प्राप्त कर क्या करेगा ? इस प्रश्न का विवरण करना आवश्यक है। इस विवरण के बिना प्राप्ति शब्द का अर्थ अपूर्ण रहेगा। यह विवरण भी उपनिषदों में ही मिलता है। तथाहि-एक उपनिषद्वाक्य ने कहा कि "सोऽनुश्ते सर्वान् कामान् सह, ब्रह्मणा विपश्चिता", अर्थात् मुक्त पुरुष कल्याणगुणविशिष्ट ब्रह्म का अनुभव करेगा। अनुभव के बाद क्या करेगा ? सेवा करेगा। कारण कि भगवद्गुणानुभव करने पर इस चेतन के मन में इतनी प्रीति उत्पन्न होगी, जो आपकी कुछ न कुछ सेवा किये बिना शांत न होगी; अतः यह मुक्त सेवा में उतरेगा। इस सेवा का भी अल्प परिचय उपनिषदों में दिया गया है—"तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांस समिन्धते, विष्णोर्यत्परमं पदम्" (भगवान के परमपद में, निद्रा यानी ज्ञानसङ्कोच के बिना, आपकी स्तुति करनेवाले विप्र (नित्य व मुक्त) विराजते हैं।) "एतत्साम गायन्नास्ते, हावु हावु हावु" (मुक्तपुरुष हावु हावु हावु इत्यादि स्तुति करता रहता है) इत्यादि। तथाच, यह उपनिषदर्थ सिद्ध हुआ कि भगवान की अविच्छिन्न सेवा करना ही मोक्षशब्दार्थ है। परंतु उपनिषदों में अनेकत्र बिखरे हुवे अनेक वाक्यों को उठाकर, परस्पर मिलाकर इस अर्थ को समझना पडता है। ऐसे क्लेश का सहन करने में अशक्त कोमलबुद्धिवाले लोग तो एक दम कह देते हैं कि उपनिषदों में मुक्तपुरुष को भगवदनुभव मात्र बताया गया है; नतु सेवा करना भी। इस भ्रमको दूर करने के उद्देश्य से गोदादेवी इस गाथा में, गोपियों के वचन से कैंकर्य प्रार्थना करती हैं।

इसमें और भी एक रहस्य है। सामान्यतः लोग समझते हैं कि, शरीर छोडकर परमपद पहुँचने के बाद ही मोक्ष मिलेगा; क्योंकि शरीरसंबंध उस मोक्ष का विरोधी है। मोक्ष शब्द का अर्थ ही छूट जाना

है। किससे ? शरीर-संबंध से; प्रकृति-संबंध से। परंतु विशेषज्ञों का मत यह है कि भगवदनुभवरूप मोक्ष इस शरीर से भी मिल जायगा; इस लिए परमपद जाने की खास आवश्यकता न रहती है। अथवा, परमपद के अनुभव से भी इस लोक का अनुभव ही बढिया है। अत एव ज्ञानियों ने कहा—पत्युः प्रजानामैश्वर्यं पशूनां वा न कामये। अहं कदम्बो भूयासं कुन्दो वा यमुनातटे ॥ (मैं प्रजापति, पशुपति आदियों की पदवी न मांगता हूँ। परंतु यमुनातट पर मैं कदंब अथवा कुंद वृक्ष बन जाऊँ, जो कालियमर्दन का या गोपीवस्त्रापहरण-लीला का साक्षी है।) "आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्। या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥" (मैं वृंदावन में कोई लता, गुल्म, पौध आदि हो जाऊँ, जिन पर उन गोपियों की चरणधूली पड गयी; जिन्होने छोडने अशक्य अपने ससुर पति पुत्र इत्यादि समस्त बांधवों को एवं सामान्य नीति को भी एकदम छोडकर वेदांत से ढूँढे जानेवाले भगवान के पादमूल को रासक्रीडा - प्रसङ्ग में प्राप्त किया।) गोपियों का भाग्य तो अनेक भक्तों से नाना प्रकारों से गाया गया है—धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली। गोपीपीनपयोधर मर्दन निर्दय कर युगशाली ॥ श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि रमयति कामपि रामाम्। धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ॥ इत्यादि। इस प्रकार का भाग्य, अगर इसी जगह मिल जाय, तो परमपद की क्या विशेषता है ?

गुणानुभव करने की दृष्टि से भी भक्तजन परमपद की अपेक्षा संसार में ही विशेष आदर करते हैं। क्यों कि समस्त भगवद्गुणों का प्रकाशन इधर ही हो रहा है। अत एव श्रीपाणसूरि, श्रीकलियैरिसूरि इत्यादि आल्वार परमपद जाने में अरुचि बताते हैं। शायद इन सबके मार्गदर्शी हनुमानजी थे, जिन्होंने, अयोध्यागत चेतनाचेतन समस्तपदार्थों को भी श्रीरामचंद्रजी के साथ परमपद जाते देखकर, उनके साथ चलने का स्पष्ट इनकार कर दिया। आपने कहा—स्नेहो मे परमो राजन् त्वयि नित्यं प्रतिष्ठितः। भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छति ॥ (अर्थात्, हे रघुवीर! आपके इस अवतार में प्रकाशित कल्याणगुणों में ही मैं इतना स्नेही व भक्त बन गया हूँ, कि मेरा मन इनका अनुभव छोडकर अन्यत्र जा नहीं सकता।) यह तो प्रसिद्ध है कि हनुमानजी चिरंजीवी होकर अभी भी श्रीरामगुणानुभव करते श्रीरामायणकथा सुनते, इस धरातल पर ही विराजमान हैं। इस तरह से गुणानुभव, स्तुति इत्यादि अनेक प्रकारोंसे भगवान की नित्यसेवा करने में इच्छुक ये गोपीजन अपने अपेक्षित पुरुषार्थ का मनोहर वर्णन करती हैं, इस गाथा से।

(शित्तम् शिरुकाले) इत्यादि। हे कृष्ण! बहुत समय से ही हम आपके प्रेमपात्र हैं। परंतु अबतक आप ही हमारे ऊपर प्रणय करते, हमारे पास आकर, विनय से हमारे पैर दबाते हुवे, मीठी मीठी बात करते हमको प्रसन्न कराने की चेष्टा करते थे। उस समय में हम तो आपकी उन चेष्टाओं से मोहित होकर, अपने को मालकिन मानकर आपको हमारा शेष समझ बैठी थीं। हाय! हमने कैसी भूल की! हमने अपने स्वरूप को ही खो लिया। परंतु आज, आपकी कृपा से हम ठीक ठीक अपना स्वरूप

जानकर, प्रातःकाल ही उठकर नम्रता के साथ आपके पास आ गयी हैं। "अद्य मे सफलं जन्म सुप्रभाता च मे निशा।" (उन् पोत्तामरैयडिये)—आपके स्वर्णमयपादारविन्द का। भगवान के पादों को स्वर्णकमल-सदृश कहने से वे ही उपाय, उपेय एवं परमभोग्य बताये जाते हैं। स्वर्ण का उपयोग, दूसरी वस्तु खरीदना भी होगा, आभरणादि के रूप में स्वयं पहिनना भी होगा। अर्थात् स्वर्ण, उपाय व उपेय, दोनों होता है। कमल तो भोग्यता में प्रसिद्ध है। इस दृष्टांत से भगवान के पाद उपायदशा में भी भोग्य बताये जाते हैं।

(पोत्तुम् पोरुळ् केळाय्)—मङ्गळाशासन करने का प्रयोजन सुनो। उक्त प्रकारक वैभववाले पादों के विषय में हमसे की जानेवाली सेवा तो, उनका मङ्गलाशासन ही है। अतः हम यही करती हैं। इस मङ्गलाशासन के फलतया हमारे अपेक्षित पुरुषार्थ सुनो। यद्यपि संसारियों की तरह, मङ्गलाशासन का फल मांगना, अथवा ढूंढना अनुचित माना जायगा। परंतु हम मङ्गलाशासन से दूसरा कोई क्षुद्रफल नहीं मांग रही हैं; किंतु यों मांग रही है कि यही सेवा आगे भी निरंतर चलती रह जाय। इससे गोपियों का अनन्य-प्रयोजनत्व सुदृढ स्थापित किया जाता है। वार्ता करते करते बीच में (केळाय्—सुनो) कहने का यह तात्पर्य है—इनकी भक्तिपूर्ण मधुर वाणी सुनते सुनते, एवं इनके मनोहर सुकुमार शरीर देखते देखते भगवान परवशचित्त होकर स्तब्ध रह गये। अतः उनको जगाने के लिए "सुनो" कहती हैं। अथवा, वेदादि शास्त्रों में समस्त चेतन भगवान के शेष बताये गये हैं। परंतु दौर्भाग्य की बात है कि लोग, "ईश्वरोऽहमहं भोगी" कहते हुवे, इस शेषत्व का साफ इनकार कर देते हैं। इन हतभाग्यों को सुधारने के लिए भगवान भी बहुत प्रयत्न करते रहते हैं, परंतु विफल ही होते रहते हैं। तब भगवान विचार करने लगते हैं कि, "बहुत समझा जानेपर भी ये लोग मुझे अपने स्वामी नहीं मानते हैं। यह नहीं कहा जा सकता है कि अविवेक से ये ऐसे कर रहे हैं; कारण कि ये जरूर बुद्धिमान हैं। अतः शायद इनका अभिप्राय ही सत्य होगा। अर्थात् वास्तव में ये लोग मेरे शेष नहीं होंगे।" यों सोचकर भगवान इन चेतनों की चिंता छोड देते हैं। अब गोपियां कहती हैं कि, "हे प्रभो! हम आपको एक अपूर्व अर्थ सुना रही हैं; आप अन्यपरता छोडकर एकाग्र चित होकर सुनिए। हम आपकी माल हैं, और आप हमारे मालिक हैं।" इस अर्थ का विवरण करते हुए ही भट्टर स्वामीजी ने इस ग्रंथ के तनियन पद्य में कहा—"अध्यापयन्ती।" यह तो गुरु का काम है कि आप अपने से उपदेश पानेवाले शिष्य की अन्यपरता रोकने के लिए, बीच बीच में कहते हैं "सुनो, सुनो"। यथा भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कहा—भूय एव प्रवक्ष्यामि शृणु; एवं पराशरजी ने श्रीविष्णुपुराण में मैत्रेय से कहा, इदंच शृणु मैत्रेय इत्यादि। अतः भट्टर स्वामीजी ने ठीक कहा—"अध्यापयन्ती—उपदेश देनेवाली।"

गोपियों की इच्छा बतायी जाती है—(पेत्तम् मेय्त्तुण्णुम्) इत्यादि से। गोपियों की प्रार्थनासर्वस्व यही है कि, "हे प्रभो! आपको हमसे सेवा लेनी ही चाहिए।" यह वचन तो, कुछ आज्ञा जैसी प्रतीत होती है। विनय की वाणी ऐसी होती है कि, "प्रभो! कृपया हमारी सेवा का स्वीकार कर

लीजिए।" तो भी भगवान की वल्लभा होने के कारण, ये अपने विज्ञापन को विनय की शैली से भी कर सकती हैं, और आज्ञा की शैली से भी कर सकती हैं। दोनों में कोई अंतर नहीं होता। प्रेमियों के बीच में नाना प्रकार के वार्तालाप होना स्वाभाविक है। शैली कैसी भी हो। तात्पर्य तो कैङ्कर्यप्रार्थना ही है। (गोपकुल में उत्पन्न आपको) कहने का यह तात्पर्य है कि श्रीवैकुंठादि दूसरे स्थान अस्कर सेवा करने में अशक्त गोपों से सेवा लेने के लिए ही, हे प्रभो! आपने इस गोपकुल में जन्म लिया। अतः इस अवतार-प्रयोजन को सफल बना दीजिए। अथवा, गायों के ऊपर प्रेम से उनके साथ विहार करने के उद्देश्य से आप गोसमृद्ध हमारे कुल में शायद उत्पन्न हुए। तो भी आपकी कृपापात्र उन गायों को चरानेवाली हमको भी आपकी कृपापात्र होना चाहिए न? अतः हमारी सेवा भी आपको स्वीकार्य हो।

यह प्रार्थना सुनकर भगवान ने कहा—"हे मेरी प्यारी गोपियो! यह तो बहुत ठीक है। परंतु अब तुम आयी हो कुछ व्रतोपकरण लेने के लिए। उनको दे दूँगा; लेकर व्रत करने जाओ। बाद में योग्य अवसर पाकर तुमसे सेवा लूँगा।" इसके उत्तर में गोपियां साफ कहती है कि हे गोविंद! हम व्रतोपकरण लेने नहीं आयी हैं—(इत्तै परैकोळ्ळान् अन्नु काण् गोविंदा।) गोविंद! पुकारने का यह तात्पर्य है कि अज्ञ गोपकुल में जन्म लेने से आप भी शायद इतने भोले बन गये हैं कि हमारे हृद्गत अभिप्राय को आप न जान सकते हैं। अब हम स्पष्ट कह देती हैं कि हम शङ्खभेर्यादि सामग्री लेने के लिए आपके समक्ष नहीं आयी। फिर, इन्होंने वारंवार उसकी बात क्यों की? इस लिए की, कि हाल में व्रत करने के व्याज से ही इनको श्रीकृष्ण से मिलने का अवकाश प्राप्त हुआ है; अतः गोपवृद्धों की प्रसन्नता के लिए, अथवा उनके विषय में उपकार-स्मृति से, व्रत करना भी इनको अनिवार्य हो गया; इस कारण से व्रतोपकरण मांगना पडा। परंतु प्रकृत गाथा में बता जा रहा है कि मात्र यह व्रत करना गोपियों का लक्ष्य नहीं है। अतः खास व्रतोपकरण लेने को ही ये श्रीकृष्ण के पास नहीं आयी; किंतु अपने हृदय की आशा, आपकी नित्य-सेवा मांगना और प्राप्त करना है। तथा 'परै' शब्द का ऊपर का अर्थ मेरी है; (मेरी शब्द से शङ्ख भेर्यादि समस्त व्रतोपकरणों को समझना चाहिए) और निगूढ अर्थ पुरुषार्थ, माने भगवान की नित्य सेवा है। दोनों अर्थों को मन में रखकर ही, ये आदि से वारंवार परै परै कहती आयी हैं।

(एत्तैकुमेळेळ् पिरविक्कुम्) इत्यादि। जब तक यह आत्मवस्तु रहेगी, तब तक, एवं जन्म जन्मान्तरों में भी हम आपके साथ ही रहेंगी और आपकी ही सेवा करेंगी। यह बडी विलक्षण प्रार्थना है। दिन में एक दो घडी सेवा करने मात्र से, अथवा दो चार दिन, मास अथवा संवत्सर, सेवा करने से भी ये तृप्त न होनेवाली हैं। परंतु जबतक यह शरीर रहेगा, तबतक अविच्छिन्न सेवा मिलनी चाहिए। इतना मात्र नहीं; बाद में जन्म जन्मान्तरों में भी सेवा मिलनी चाहिए। यहां पर जन्मशब्द से, न केवल गोपियों के जन्म लिये जाते हैं, अपितु भगवान के भी जन्म। यह तात्पर्य है—"बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि" कहनेवाले भगवान, चेतनों की रक्षा करने के लिए वारंवार इस संसार में जन्म (यानी अवतार) लेते ही रहते हैं। अब गोपियों की प्रार्थना है कि अगर इस जन्म में ही इनको मोक्ष

मिलनेवाला हो, तो भी, आगे जब भगवान अवतार लेंगे, तब इनको भी साथ लाना चाहिए । सुना जाता है कि जब भगवान इस लीलाविभूति में अवतार लेते हैं, तब आपके साथ ही, "राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि" इत्याद्युक्त प्रकार से श्रीमहालक्ष्मीजी इत्यादि कितने नित्यसूरिगण भी, अवतार लेते हैं। अतः उनके साथ ये गोपियां भी अवतार लेना चाहती हैं। इसमें और भी एक विशेषता है। भगवान की नित्यानपायिनी दिव्यमहिषी लक्ष्मीजी भी सीतावतार में, कुछ समय तक प्रभु से विरहित हो गयीं। गोपियां मांगती हैं कि हमें अवतारों में आपसे कदापि विरहित न होना चाहिए; किंतु हमेशा आपके साथ ही रहना चाहिए। और आपकी नित्य-सेवा में ही निरत होना चाहिए । तथाच इतने अंश मांगे जा रहे हैं,—(१) वर्तमान शरीर जब तक रहेगा तब तक नित्यसेवा मिलें, (२) उसके बाद परमपद में नित्यसेवा मिलें, (३) उसके बाद भगवान के अवतारों में आपके साथ ही फिर अपना भी जन्म हो, (४) उन जन्मों में कभी भी आपसे विरह न हो, और (५) एक क्षण भर के लिए भी आपकी सेवा छूट न जाय। गोपियों को छोडकर दूसरा कौन यह विलक्षण पुरुषार्थ-परंपरा मांग सकेगा ?

(उनक्के नामाळ् शेय्वोम्)—हम आपकी ही सेवा करेंगी। कर्मपराधीन होकर यह संसारी चेतन दूसरी अनेक व्यक्तियों की सेवा करता है; और उससे कदाचित् कुछ लाभ पाता है, और कदाचित् उसको स्वयंप्रयोजन भी मानता है। और कई लोग भगवान की सेवा भी करते हैं और दूसरों की भी सेवा करते हैं। अब गोपियों की प्रार्थना है कि, "हे प्रभो ! आपकी कृपा से हमें, आपको छोडकर दूसरों की सेवा करने का दौर्भाग्य न हो। भगवत्परिजनों की सेवा, भक्तों की सेवा, आचार्य-सेवा इत्यादि तो भगवत्सेवा का ही एक प्रकारांतर है; अतः उनको हम बेशक करेंगी । परंतु उक्तरीति से कर्माधीन दूसरी किसीकी सेवा हम न करेंगी। अथवा, आपकी ही सेवा कहने का यह तात्पर्य है कि आपकी प्रसन्नता के लिए हम सेवा करेंगी।

इसका विवरण है—(मत्तै नङ्गामङ्गळ् मात्तु)—हमारी अन्य आशाओं को शांत करो । ऊपर से इसका अर्थ होता है कि भगवत्सेवा को छोडकर दूसरे पुरुषार्थों में हमें आशा न हो । परंतु यह बिलकुल व्यर्थ है। क्यों कि गोपियों ने अनेकत्र अपने अनन्यप्रयोजनत्व का ऐसा सुंदर वर्णन किया है, जिसको सुननेवाले के मन में क्षुद्र पुरुषार्थ की याद तक न आ सकेगी। अतः यहां पर ऐसी एक आशा की निवृत्ति मांगी जाती है, जो अनन्यप्रयोजन परमभक्तों के मन में भी उत्पन्न हुई करती हैं। वह है स्वार्थसेवा। अर्थात्, भगवान की सेवा करनेवाले बहुत लोग यों मानते हैं कि उस सेवा से अपने को आनंद मिलेगा। अर्थात् प्रकृत गोपियों की ऐसी भावना हो सकती है कि पूर्वोक्त प्रकार से भगवान की सेवा करती हम, अभी तक अपने से अनुभूत सांसारिक दुःखों को पार कर, ब्रह्मानंद लूट लेंगी। अतः अब भगवान से ये मांगती हैं कि, "हे प्रभो ! अपने स्वलाभ के लिए आपकी सेवा करने की हमारी स्वार्थता को मिटा दीजिए। अर्थात् हम आपकी प्रसन्नता के लिए ही सेवा करें; न तु स्वार्थ के लिए, हमें ऐसी बुद्धि दीजिए।"

यह अर्थ समझने में कुछ कठिन है। क्यों कि यह सामान्यतः लोकानुभवसे एवं शास्त्रमर्यादा से विरुद्ध-सा प्रतीत होता है। मानवमात्र की, अथवा प्राणिमात्र की इच्छा है कि मैं सुखी हो जाऊं, दुखी न होऊं। एतदर्थ वह नानाप्रकार के प्रयत्न करता है और यथोचित फल भी पाता है। वेदांतशास्त्र भी पुकारता है कि यह जीव ज्ञाता, कर्ता, एवं भोक्ता है; अर्थात् यही शास्त्रों का अभ्यास कर, ज्ञान प्राप्त कर, तदनुगुण प्रयत्न कर, फल भी भोगता है। लोकानुभव के अनुसार भी मानव सुखदुःखों का भोग करता है। जो ज्ञाता न हो, कर्ता न हो, एवं भोक्ता भी न हो, ऐसा तत्व तो अचेतन है, नतु चेतन। अतः मोक्ष भोगनेवाला भी चेतन ही है; अन्यथा वह पुरुषार्थ ही न होगा। यह तो जरूर सामान्य शास्त्रार्थ है। परंतु शास्त्रों का गाढ अध्ययन करनेवाले हमारे पूर्वाचार्य इसमें कुछ रहस्य बताते हैं। यह तो प्रसिद्ध शास्त्रार्थ है कि भगवान चेतनमात्र के स्वामी, मालिक, शेषी इत्यादि कहलाते हैं; और यह चेतन भी सर्वात्मना आपका परतंत्र है, आपकी माल है। इस विषय में चेतन व अचेतन, दोनों के बीच में कोई अंतर नहीं है। इस तरह से सर्वात्मना भगवान का परतंत्र होने के कारण, इस स्वरूप के ज्ञाता चेतन को कर्म, ज्ञान इत्यादि मोक्षोपायों में उतरना आत्मनाशक है। अत एव ऐसा ज्ञानी अपने स्वरूपानुरूप प्रपत्ति मार्ग में उतरता है। प्रभु को ही रक्षक मानना सेवक को उचित है। अब यह विचार करना चाहिए कि संसार छोडकर इस चेतन के परमपद जाने से कृतार्थ होनेवाला कौन है, जीवात्मा अथवा परमात्मा? खोई गयी हुई माल पाने से मालिक ही खुश होता है। इस तरह से अनादि काल से संसार में पडकर, अपने से दूर दूर भटकते रहनेवाला यह जीव, जब उस संसार को पारकर परमपद पहुँचता है, तब उसकी प्राप्ति से स्वयं भगवान ही आनंद पाते हैं। श्रीरामायण का यह एक प्रसिद्ध पद्य है—"अभिषिच्य च लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम्। कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह॥" इसका यह तात्पर्य है—रावणसंहार के बाद विभीषण जी को लङ्काराज्य में अभिषिक्त कर, तभी श्रीरामचंद्र जी कृतकृत्य, एवं चिंताशून्य बन कर खूब आनंदित भी हुए। राजगद्दी मिलने पर विभीषण को खुश होना स्वाभाविक है। परंतु यहां पर उसकी बात ही नहीं की गयी। पुत्र का उत्सव देखकर खुश होनेवाले पिता की तरह विभीषण के राज्याभिषेक से श्रीरामचंद्रजी आनंदित हो गये। इस न्याय से परमपदनाथ भी इस संसारी चेतन को पाने के लिए अनादि काल से ही बहुत प्रयत्न करते रहते हैं; और अंततः इसके फलतया परमपद पहुँचनेवाले इसको पाकर स्वयं खुश होते हैं। अत एव उधर जानेवाला मुक्त पुरुष "अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्" गाता है। इसका अर्थ है, मैं भगवान का भोग्य हूँ, यानी भगवान मेरे भोक्ता हैं। अतः मोक्ष में चेतन-लाभ से आनंदित होनेवाले स्वयं भगवान हैं। इस कारण से चेतन को मोक्ष में अपना आनंद खोजना अपने स्वरूप से विरुद्ध सिद्ध हुआ। अत एव आचार्य उपदेश देते हैं कि "मोक्षसुख में स्वार्थ बुद्धि करते हुए भगवान के भोग को सङ्कुचित मत करो; परंतु अचेतन की तरह सर्वात्मना परतंत्र रहकर, आपके भोग पर ही ध्यान दो।" इस अर्थ का सूचक है प्रकृत गाथा का यह भाग, (मट्रै नङ्गामङ्गळ् माट्रु)। तथाच इसका यह अर्थ हुआ—"हे प्रभो! आपकी सेवा करते करते, उसमें हमें जो स्वार्थसाधन (यानी स्वभोगसाधन) की बुद्धि होगी, उसको भी आप मिटा दीजिए।"

श्रीमंत्र के मध्य में जो नम:पद हैं, इसके तीन अर्थ होते हैं—स्वरूपविरोधी को मिटाना, उपाय विरोधी को मिटाना और प्राप्यविरोधी को मिटाना। इनके अर्थ ये हैं—चेतन स्वरूप को सर्वात्मना भगवान का (और भगवद्भक्तों का) ही शेष जानना, भगवान को छोडकर दूसरे किसी में, (अपने से अनुष्ठित प्रपत्ति में भी) उपायबुद्धि न करना और परमपद पहुँचने पर भी अचेतन की तरह सर्वात्मना भगवान का परतंत्र रह जाना। इनमें प्राप्य-विरोधि-निवृत्ति-प्रार्थना का उदाहरण देनेवाले हमारे आचार्य इस तिरुप्पावै गाथाखंड को दिखाते हैं। पूर्वोक्त स्तोत्ररत्न में "प्रहर्षयिष्यामि" शब्द, इस अर्थ का वाचक है। तथाहि, कहना था, "भवन्तमेवानुचरन् .... कदा प्रहृष्यामि ?" (अर्थात् मैं समस्त सांसारिकचिंताओं से दूर होकर, आपकी ही नित्यसेवा करता हुआ कब आनंदित हो जाऊँ ?) परंतु स्वामीजी कहते हैं कि "मैं कब आपको आनंदित करूँ ?" इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि चेतन से नित्यसेवा लेकर स्वयं भगवान आनंद पाते हैं और उस आनंद का निमित्त होना मात्र चेतन का काम है।

यह बात सुननेवालों के मन में यह एक शङ्का हो सकती है कि चेतन होते हुवे भी यह आत्मा सर्वात्मना स्वार्थ भोग छोडकर एकदम अचेतन की तरह कैसे परतंत्र रह सकेगा। इसका प्रत्युत्तर यह है कि भगवद्भोग के दर्शन से स्वयं आनंद पाना ही चैतन्य का कार्य अथवा प्रयोजन है। यह भाव है — जब भगवान इस चेतन का अनुभव करते हैं, तब यह चेतन, समुचित वाचिक व कायिक व्यापारों से भगवान का भोग बढाता है, और भगवान का वह भोग देखकर स्वयं कृतार्थ और आनंदवान होता है। यही इसके चैतन्य का फल है। अर्थात् भगवान के आनंद से यह भी खुश होता है; यही ब्रह्मानंद है। इस विषय में और विशेषार्थों को मंत्रार्थ-कालक्षेप में सुन लेना चाहिए॥

व्यंग्यार्थ का विवरण॥ इस गाथा में वर्णनीय रहस्यार्थों का वर्णन हो चुका। अत: व्यंग्यमर्यादा से वर्णनीय कोई अर्थ बचता नहीं। तथापि उपक्रम के अनुसार आचार्यमहिमा-वर्णन प्रकरण में, इस गाथा से, आचार्य-संनिधि में शिष्य अपनी विनति को समाप्त करते हैं—अज्ञानांधकार से समावृत होने के कारण, हम इतने दिन आपके संनिधि में न आ सके; अभी वह अंधकार नष्ट-सा हो गया, और प्रबोध का उदय होने लगा। अत: हम इधर आये। हमने आपकी सेवा की। हमारा मन भगवत्पादारविंद को भी नहीं चाहता; आपके पादारविंद में ही वह टिक गया है। आपके दिव्यमंगलविग्रह का मंगलाशासन करना ही हमारा नित्यकर्म है। अज्ञानी एवं संसारार्णवनिमग्न हमारे बीच में अवतार लेने पर आपको हमसे सेवा लेनी ही चाहिए। यह नहीं है कि हम विद्याभ्यास करने तक ही आपकी सेवा करेंगे; और बाद में आपको एवं आपकी सेवा को छोडकर निकल जायंगे; परं तु "अत्र परत्र चापि नित्यं यदीयचरणौ शरणं मदीयम्" इत्याद्युक्त-प्रकार से, इस लोक में और परलोक में भी आपके दिव्यपादारविंद ही हमारे लिए गति हैं। इतना ही नहीं। संसारियों के उद्धार के लिए जब जब आप फिर इस धरातल पर अवतार लेते होंगे, तब तब हम भी आपके साथ ही जन्म लेकर, आपकी सेवा करेंगे। आपको मनुष्यसमान अथवा भगवान के समान मानने का विचार अगर कभी हमारे मन में उत्पन्न हो, तो कृपया उसको मिटा दीजिए और आपको भगवान से भी अधिक मानने की बुद्धि दीजिए॥ .... (२९)

(गाथा.) वङ्गकडल् कडैन्द मादवनै केशवनै * तिङ्गळ् तिरुमुहत्तु चेयिळैयार्शेन्निरैञ्जि *
अङ्गप्परै कोण्डवात्तै* अणि पुदुवै प्पैङ्कमलत्तण्डेरियल् पट्टर्पिरान् कोदै शोन्न *
शङ्गत्तमिळ् मालै मुप्पदुम् तप्पामे * इङ्गिप्परिशुरैप्पा रीरिरण्डु माल्वरैत्तोळ् *
शेङ्गण् तिरुमुहत्तु चेल्वत्तिरुमालाल् * एङ्गुम् तिरुवरुळ् पेत्तिन्बुरुवरेम्बावाय् ॥ ३० ॥

तिङ्गळ् तिरुमुहत्तु	चंद्र के समान सुंदर मुख वाली (एवं)
शे इळैयार्	- अच्छे आभूषणवाली गोपियों ने
वङ्गकडल्	- लहरों से युक्त (क्षीर)सागर का
कडैन्द मादवनै	(देवताओं के लिए) मथन करनेवाले लक्ष्मीपति,
केशवनै	- श्रीकृष्ण भगवान के पास
शेन्नु इरैञ्जि	- जाकर, आपसे मांगकर
अङ्गु परै कोण्ड आत्तै	व्रज में (अपने अपेक्षित) पुरुषार्थ जो पाया, उस वृत्तांत का वर्णन करनेवाली
अणि पुदुवै	(जगत के) अलंकारभूत श्री विल्लिपुत्तूर नगर के (स्वामी)
पै कमलम् तण् तेरियल् पट्टर्पिरान्	हरे कमलपुष्पों की सुशीतल माला से अलंकृत श्रीभट्टनाथ स्वामी जी की (सुपुत्री)
कोदै शोन्न	- गोदादेवी से प्रोक्त
शङ्गत्तमिळ् मालै मुप्पदुम्	जत्था जत्था बनकर (भक्तों से गान करने लायक) द्राविड भाषामालारूप इन तीस गाथाओं का,
इङ्गु इप्परिशु	- इस भूमंडल में, इसी प्रकार
तप्पामे उरैप्पार्	अचूक पाठ करनेवाले (भक्तलोग)
ईरिरण्डु माल्वरै तोळ्	पर्वत के समान चार भुजवाले,
शेम् कण् तिरुमुहत्तु	लाल नेत्रवाले, सुंदर मुखवाले, (एवं)
शेल्वम्	- ऐश्वर्यवाले
तिरुमालाल्	- श्रियःपति से
एङ्गुम् तिरुवरुळ् पेत्तु	सर्वत्र (आपकी अथवा लक्ष्मीजी की) कृपा पाकर
इन्बुरुवर् एम्बावाय्	- ब्रह्मानंद प्राप्त करेंगे ॥

पूर्वगाथा में गोपियों ने भगवान से नित्यसेवा मांगी। इस गाथा में गोदादेवी कहती हैं कि भगवान ने बडी कृपा से उस प्रार्थना को सफल बना दिया; अर्थात् गोपियों ने अपने इष्टार्थ पाये। यह काम जरूर होनेवाला ही था। परमभक्त गोपियों की इस स्वरूपानुरूप प्रार्थना को भगवान किस तरह से टाल सकते हैं ? टालना सर्वथा अशक्य है। अतः आपने, कृपामय कटाक्ष से, मनोहर इंगित से, मंदहास से, सिर झुकाने से एवं गंभीरध्वनि से अपने अनुग्रह को प्रकाशित किया। तथा च गोपियों ने अपने इष्टानुसार नित्यसेवा को प्राप्त किया। इस वृत्तांत का वर्णन करनेवाले गोदादेवी से विरचित इस दिव्यप्रबंध का अध्ययन करनेवाले भक्तलोग भी उनही भगवानके कृपापात्र बनकर ब्रह्मानंद भोगेंगे।

(वङ्गकडल् कडन्द) इत्यादि। कहना था कि श्रीकृष्ण के अनुग्रह से गोपियों ने पुरुषार्थ पाया; परंतु यहांका वचन ऐसा है कि क्षीरसागर का मथन करनेवाले माधव के अनुग्रह से इत्यादि। इसका यह तात्पर्य है—समुद्र का मथन कर अपने पादाश्रित भक्त देवताओं को आनंदित करने से, एवं स्वयं लक्ष्मी को पाकर माधव होने से, उस समय में भगवान बहुत प्रसन्न थे। हाल में इन गोपियों पर अनुग्रह करते भी भगवान का मुखमंडल ऐसा ही प्रसन्न दीख पडा। इस अर्थ को बताती हुई गोदादेवी समुद्रमथन वृत्तांत का उल्लेख करती हैं। अथवा, इसका ऐसा तात्पर्य होगा कि जब प्रयोजनांतरपर स्वार्थी देवताओं के लिए ही भगवान ने बडे प्रयास से अपने वासस्थान समुद्र का भी मथन कर डाला; फिर अनन्यप्रयोजन भक्ताग्रेसर गोपियों की प्रार्थना सफल करने में आप क्या कभी विलंब करेंगे; नहीं नहीं।

(तिङ्गळ् तिरुमुहत्तु) इत्यादि। गोपियों का विशेषण है चंद्र के समान सुंदर मुखवाली एवं सर्वाभरण विभूषित। ये दोनों भगवत्कृपालब्ध विशेषण हैं। तथा हि—वेदांतशास्त्र का उपदेश है कि ब्रह्मोपासन का फल है ब्रह्म का समान होना। अर्थात् मुक्तपुरुष ब्रह्म का समान हो जाता है। इस प्रबंध की पहिली गाथा में बताया गया कि भगवान सूर्य एवं चंद्र के समान मुखवाले हैं। इसमें सूर्यसमान होना भगवान का असाधारण धर्म है। अतः उसको छोडकर, गोपियां चंद्रसमान हो गयीं। अर्थात्, मोक्ष पानेवाला चेतन, "परमं साम्यमुपैति" इत्यादि श्रुति के अनुसार भगवान का समान होते हुवे भी, जगत्कारणत्व, लक्ष्मीपतित्व इत्यादि कतिपय, भगवान के असाधारण लक्षणों को छोडकर दूसरे अंशों में ही समान होते हैं। तथाच, प्रकृत विशेषण से, गोपियों से प्राप्त सायुज्य सूचित किया जाता है। भूषण - भूषित कहने का यह तात्पर्य है कि "कूडारै वेल्लुम् शीर्" (२७) इत्यादि पद्योक्तरीति से भगवान ने इनको खूब सन्मानित किया। तथा च गोपियों को ऐहिक व आमुष्मिक सभी पुरुषार्थ मिल गये; और अत एव वे कृतकृत्य हो गयीं।

अब कहा जाता है कि श्री गोदादेवी इस प्रबंध की कवयित्री हैं। ख्यातिलाभपूजादि से विरक्त आल्वार लोग प्रबंध गाते गाते, इस लिए अपने नाम लेते हैं, कि उससे उस प्रबंध में लोग विश्वास करें। वेद में भी तत्तत्, "ब्रह्मवादिनो वदन्ति" (अर्थात्, ब्रह्मज्ञानी कहते हैं—), "स होवाच व्यासः पाराशर्यः" पराशरपुत्र व्यास जी बोले—) इत्यादि वाक्य सुने जाते हैं। ऐसे वचनों का यह तात्पर्य है कि यह अर्थ ज्ञानियों से समादृत होने से बिलकुल प्रामाणिक है। इसी तरह से, "यह दिव्यप्रबंध गोदादेवी से विरचित है; यह श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी की श्रीसूक्ति है; यह श्री शठकोपस्वामीजी से गीत है; यह श्रीपरकालस्वामीजी का ग्रंथ है" इत्यादि रीति के वचन सुनकर लोग उन उन ग्रंथ पर विशेष आदर करें, इस लिए यह कविनामाङ्कन किया जाता है। इसमें गोदादेवी का यह विशेष है कि आप इस प्रबंध में, एवं "नाच्चियार तिरुमोळि" नामक दूसरे प्रबंध में भी अपने को नियमेन (पट्टर्पिरान् कोदै) यानी श्रीभट्टनाथ-गोदा कहती हैं। परंतु आप कहीं यों स्पष्ट न कहती हैं कि मैं भट्टनाथ की पुत्री हूँ। आपकी जीवनी में बताया गया कि आप श्रीभट्टनाथ स्वामीजी की स्वीकृत पुत्री थीं। इतना मात्र नहीं; श्रीस्वामीजी आपके

गुरु भी थे। और आपका यह दृढ निश्चय था (जो दूसरे प्रबंध में प्रकाशित किया जायगा) कि, श्रीस्वामीजी के संबंध से ही अपना कल्याण होनेवाला है। अतः इस आचार्यसंबन्ध को भी सूचित करने के उद्देश्य से ही यहां पर 'पुत्री' इत्यादि विशेष शब्द लिये विना सामान्यतः "भट्टनाथ की गोदा" कहा गया।

श्री स्वामीजी के दो विशेषण दिये जाते हैं—(अणि पुदुवै) इत्यादि से। श्रीविल्लिपुत्तूर (जिसका संस्कृत नाम श्रीधन्विनव्यपुर है) का संक्षिप्त नाम है पुदुवै; और यह, जगदाभरण बताया गया है। यह विशेषण बिलकुल सत्य है। कारण कि इस दिव्यदेश में श्रीवटपत्रशायी भगवान का, श्रीमहालक्ष्मीजी के अपरावतार गोदादेवी का एवं आचार्य-सार्वभौम श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी का—तीनों मूर्तियों का—वैभव वाचामगोचर विराजमान है। ऐसा दूसरा कौनसा क्षेत्र मिलेगा ? गोदादेवी का एवं श्रीविष्णुचित्तस्वामीजी का अवतारस्थल भी यही क्षेत्र हैं। श्रीस्वामीजी का शुभनाम है श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी; और भट्टनाथ तो आपका बिरुद है जो पांड्यराज सभा में परतत्वनिर्णय करने पर आपको मिला था। आपका दूसरा विशेषण है सुंदर व सुशीतल कमलमाला से सुशोभित। शास्त्रों में क्वचित् कमल मणिमाला की तरह, कमलपुष्प-माला का भी धारण विहित है; एवं तुलसीपत्रमालाधारण भी क्वचित् विहित है। श्रीस्वामीजी ने तिरुप्पल्लाण्डु दिव्यप्रबंध में स्पष्ट बता दिया कि हम भगवान के शेषप्रसाद तुलसीमाला पहनते हैं। अतः यह भाव भी होगा कि कमल एवं तुलसीमणिमाला के साथ, श्रीस्वामीजी भगवत्प्रसाद-रूपी कमलमाला के भी धारक हैं। तथाच, "ये कण्ठलग्नतुलसीनलिनाक्षमालाः ये बाहुमूलपरिचिह्नितशङ्खचक्राः। ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्राः ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ॥" इत्याद्युक्त प्रकार से श्रीस्वामीजी के समस्त श्रीवैष्णवलक्षण-विभूषितत्व बताया गया।

ऐसे महावैभववाले श्रीविष्णुचित्तस्वामीजी की कृपापात्र गोदादेवी से अनुगृहीत इस दिव्य प्रबंध के तीन विशेषण दिये जाते हैं—(१) जत्था जत्था बनकर भक्तों से गाने लायक होना, (२) द्राविडी भाषा-मयत्व, एवं (३) पुष्पमालासदृश होना। यह भाव है—जैसे बडी गोष्ठी बनकर गोपियां श्रीकृष्ण के समीप गयीं, इसी तरह से भक्त लोग भी बडी गोष्ठी में रहकर इस दिव्यप्रबंध का पाठ करते हैं। यह तो अनुभव-सिद्ध वार्ता है कि दूसरे दिव्यप्रबंधों की अपेक्षा तिरुप्पावै की गोष्ठी बडी होती है। कोई भी कवि अपने ग्रंथ की भाषा का नाम लिखने का कष्ट नहीं उठाता। परंतु यहांपर गोदादेवी बता रही हैं कि यह द्राविडी ग्रंथ है। इससे इसका माधुर्य बताया जाता है। अर्थात् गोदादेवी का यह अभिप्राय है कि यह दिव्यप्रबंध अतिमधुर भाषा में रचा गया है। माला कहनेका यह तात्पर्य है कि जैसे माला भगवान एवं भागवतों के शिरोधार्य होती है, इसी तरह से यह तिरुप्पावै ग्रंथ भी दोनों को शिरोधार्य होता है। गोदादेवी ने भगवान को एक पुष्पमाला दी, और भक्तों को पद्यमाला दी। भगवान अपने सिरपर पुष्पमाला का धारण करते हैं और भक्त जन सिर, मुख एवं हृदय से इस पद्यमाला का धारण करते हैं।

(मुप्पदुम् तप्पामे) इत्यादि। इन तीस गाथाओं का भी, इसी तरह से इधर अचूक पाठ करने वाले। यह दिव्यप्रबंध, भगवद्गीता, सहस्त्रगीति इत्यादिवत् अधिक विस्तृत नहीं है; जिससे इसका मूलपाठ एवं अर्थ सीखने में सुविधा है। और अष्टाक्षरादि मंत्रवत् यह अत्यंत संक्षिप्त भी नहीं है; जिससे इसके अर्थ अतिगूढ न रहते हैं। तीस पद्य रहने से मूल पाठ करना भी सुलभ है और धनुर्मास के एकैक दिनमें एकैक गाथा क्रमसे तीस दिनों में समग्र ग्रंथ का अर्थ भी जाना जा सकता है। जैसे कींमतवाले बडे रत्नहार का एकैक रत्न भी अमूल्य एवं अवर्जनीय होता है, जिनमें से एकके अभाव में भी समग्र हार ही अधूरा एवं शोभाहीन बन जायगा, इस तरह से इस ग्रंथ में तीसों गाथाएं मुख्य हैं और एक को छोड देने पर भी बडी न्यूनता हो जायगी। अतः एक पद्य को भी न छोडना चाहिए। इतना ही नहीं। एकैक गाथा में एकैक शब्द, अक्षर, मात्रा आदि में भी न्यूनता न होनी चाहिए। एवं शुष्कहृदय होकर इसका अनुसंधान न करना चाहिए। किंतु गोपियों की भावना जिस तरह से गोदादेवी में परिपूर्ण भरी थी, इसी प्रकार भावनापूर्ण होकर सप्रेम इसका पाठ करना चाहिए। (इङ्गु) इधर, यानी भूमंडल में कहने से यों सूचित किया जाता है कि दूसरे लोकों में, यानी परमपद में भी इस प्रबंध का पाठ चलता है। इसका पाठ करनेवालों को पूर्वोक्त भावबुद्धि के सिवा दूसरा कोई विशेषण नहीं दिया गया। इससे प्रथमगाथोक्तप्रकार यह सर्वाधिकार बताया जाता है।

पाठ करनेवालों से लभ्य पुरुषार्थ का वर्णन किया जाता है (ईरिरण्डु) इत्यादि से। उक्तप्रकार से इस दिव्य प्रबंध का पाठ करनेवाले भक्तलोग भगवान की विशेष कृपा का पात्र बनकर सर्वत्र आनंद पायेंगे। मूल में (तिरु-अरुळ्) शब्द का अर्थ (भगवान की) श्रेष्ठ कृपा, अथवा लक्ष्मी जी की कृपा हो सकता है। फ़लतः दिव्यदंपतियों की कृपा कही जाती है। भगवान के विशेषण दिये जाते हैं—चतुर्भुज, कमलनयन सौम्यमुख एवं लक्ष्मीपति। एक ही समय में भक्तों के अपेक्षित चारों पुरुषार्थ देने के लिए भगवान चार बाहु रखते हैं। अर्थात्, भगवान के चार भुज देखने से हम जान सकते हैं कि आप चारों पुरुषार्थों के प्रदाता हैं। भक्तों पर भगवान का अनुग्रह दिखानेवाले, एवं उनको पवित्र बनाकर उत्तरोत्तर श्रेयोमार्ग में लगानेवाले आपके दिव्यनेत्र हैं। सदा भक्तों के श्रेय का ही चिंतन करते रहने से भगवान का मुख भी बडा सौम्य रहता है। कदाचित् चेतन के अपराध पर ध्यान देने से उसको दंड देने का विचार अगर भगवान् को हो जाय, तो उसको दबाकर अनुग्रह संकल्प ही बढानेवाली लक्ष्मीजी का नित्यसांनिध्य कहा जाता है—लक्ष्मीपति विशेषण से। ऐसे भगवान की कृपा का पात्र बननेवाला भक्त इस लोक में एवं पर लोक में समस्त सौभाग्य संपद को प्राप्त कर ब्रह्मानंद को लूट लेगा, इसमें अचरज क्या है? तथाच, इस गाथा का यह तात्पर्य निकला कि इस तिरुप्पावै प्रबंध का सप्रेम, अस्खलित पाठ करनेवाले भक्तलोग करुणामूर्ति भगवान की एवं लक्ष्मीजी की कृपा के पूर्ण लक्ष्य होकर, इस संसार में भगवत्कैंकर्य करने के लिए अपेक्षित आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, सत्संतान इत्यादि समस्त पुरुषार्थ पाकर, अंततः परमपद भी पहुंचकर ब्रह्मानंद लूट लेंगे॥

व्यंग्यार्थ का विवरण ॥ इस गाथा में अपूर्वतया निरूपणीय विशेषार्थ कोई रहता नहीं, जो अभी तक न बताया गया। ऊपर से भगवान के विशेषणत्वेन प्रतीत होनेवाले सभी शब्द आचार्य के ही वैभव-प्रकाशक होते हैं। भगवान ने क्षीरसमुद्र का मथनकर उससे अमृत निकालकर देवों को दिया। आचार्य, वेदादि शास्त्रसागर का मथन कर उससे सार भूत एवं मधुर अर्थों को निकालकर सच्छिष्यों को उपदेश देते हैं। द्राविडी में (मातवन्) शब्द का अर्थ माधव भी होता है; महातपस्वी भी होता है। आचार्य महातपस्वी होते हैं, और श्रीमान भी। केशव-शब्द से दुष्टेंद्रियरूपी घोडों का दमन करनेवाले आचार्य संस्तुत होते हैं। भगवान के पास जाकर, स्तुतिकर गोपियों ने अपने अपेक्षित पुरुषार्थ पाया; आचार्य के पास जाकर उनकी स्तुतिकर सच्छिष्य-गणने आचार्यनिष्ठा रूप अपने अपेक्षित पुरुषार्थ पाया। गोपियां सौम्यमुख एवं आभरणालंकृत थीं। शिष्य भी आचार्योपदिष्ट सदर्थों के लाभ से प्रसन्नमुख एवं शमदमादि आत्मालंकारों से अलंकृत रहते हैं। इस पुरुषार्थ-प्राप्ति का वर्णन करना इस तिरुप्पावै दिव्य प्रबंध का तात्पर्य है। उत्तरार्ध में प्रयुक्त विशेषण भी आचार्य को लग सकते हैं। अतः ऐसा तात्पर्य बताया जा सकता है कि इस प्रबंध का अध्ययन करनेवाले सच्छिष्य आचार्यकृपापात्र बनकर अपने अपेक्षित आचार्यनिष्ठारूप परमप्रयोजन पाकर इस लोक में और परलोक में सीमातीत आनंद प्राप्त करेंगे। "अत्र परत्र चापि नित्यं यदीयचरणौ शरणं मदीयम्" इत्याद्युक्त प्रकार से, इस लोक की तरह परलोक में भी सच्छिष्यों को आचार्य पादारविंद ही गति है। और "आचार्यादिह देवतां समधिकामन्यां न मन्यामहे (यानी आचार्य को छोडकर उनसे अधिक दूसरे किसी देव को हम न मानेंगे) इत्याद्युक्त प्रकार से ये लोग आचार्य को ही अपने फलप्रद देव मानते हैं। अतः ऐसे महान आचार्य की कृपा से पुरुषार्थ प्राप्ति का वर्णन करना उचित होगा। तथापि इनको भगवान सर्वथा त्याज्य न हो सकते हैं; परंतु सेवनीय ही होते हैं। कारण कि आचार्य का यही उपदेश है कि भगवान का भजन सेवन आदि करो। अतः इस उपदेश के अनुसार, आचार्य की प्रसन्नता के लिए आचार्यनिष्ठावान भी भगवान् की सेवा करेंगे ही, और प्रसन्न उनसे अनुग्रह पायेंगा भी। परंतु भगवान से इनको मिलनेवाला फल अपनी आचार्यनिष्ठा में दार्ढ्य ही होगा। अतः प्रकृत गाथा के उत्तरार्ध का तात्पर्य यह भी होगा, कि इस दिव्यप्रबंध का अध्ययन करनेवाला मानव भगवान की एवं लक्ष्मीजी की विशेष कृपा का पात्र होकर आचार्यनिष्ठारूप ऐश्वर्य पाकर इहामुत्र च सुखी होगा ॥ .... (३०)

॥ सटीक तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध समाप्त हुआ ॥

॥ श्रीगोदादेवी की जय हो ॥

—: * :—

सन् 1953 के साल में मुद्रित संस्कृत टीका पुस्तक में इस पद्य की टीका में, दो तीन जगह, "त्रिंशतं गाथाः" जगह प्रमाद से "त्रिंशदिमा गाथाः" शब्द छप गया है। वाचकों से हमारा अनुरोध है कि वे कृपया इस भूल को सुधार कर वांच लें:—**श्रीकांची प्र. भ. अण्णङ्गराचार्य स्वामी**

अनुबंध

तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध की एकैक गाथा में प्रतिपादित प्रधान अर्थ, वाचकों की जानकारी के लिए यहां पर क्रमशः लिखा जाता है।

(१) काल, अधिकारी, और निर्वाहक श्रीकृष्ण की स्तुतिकर, गोपियां मार्गशीर्षव्रत करने को उद्युक्त होती हैं।

(२) व्रत करनेवालों से अवश्य कर्तव्य, एवं अवश्यवर्जनीय कृत्यों का वर्णन किया जाता है।

(३) इस व्रतानुष्ठान का फल विना संकोच समस्त देशों में व्याप्त बताया जाता है।

(४) लोककल्याण के मूलकारण पर्जन्यदेव को खूब पानी बरसने की आज्ञा दी जाती है।

(५) प्रसक्तव्रत में विघ्न होने की शंका दूर की जाती है।

(६-१५) इस व्रतमें मिलनेवाली कितनी गोपियोंको अनुपस्थित रहने से उनके घरपर जाकर उनका उत्थापन किया जाता है इन दस पद्यों से। इनमें एकैक पद्यसे एकैक विलक्षण गुणवाली गोपी जगायी जाती है।

(६) भगवदनुभव में नवीनतया अवतीर्ण गोपीका उत्थापन।

(७) गोपियों की गोष्ठी में नायकमणि के समान प्रधान गोपीका उत्थापन।

(८) भगवद्विषयक कुतूहलवाली का उत्थापन। (९) मामाजी की पुत्री का उत्थापन।

(१०) कृतकृत्या का उत्थापन। (११) स्वधर्मानुष्ठाननिरतगोपपुत्री का उत्थापन।

(१२) अविच्छिन्न भगवत्सेवानिरत गोप की बहिन का उत्थापन।

(१३) भगवान को भी अपने वश करने समर्थ सुंदरनेत्रवाली का उत्थापन।

(१४) सबको स्वयं जगाने की बात कर रखकर उसको भूलकर शयन करनेवाली का उत्थापन।

(१५) सब सखियों से पूर्ण बडी गोष्ठी देखने चाहनेवाली का उत्थापन।

(१६) नंदगोपजी के दिव्यभवन पर गोपियां जाकर उनसे मंदिर खोलने की प्रार्थना करती हैं।

(१७) नंदगोपजी यशोदाजी श्रीकृष्ण एवं बलदेवों का उत्थापन।

(१८) कृष्णावतार में भगवान की प्रधानमहिषी नीलादेवी का उत्थापन।

(१९-२०) श्रीकृष्ण का एवं नीलादेवी का वारंवार उत्थापन।

(२१) नीलादेवी की अनुमति से, अथवा आपके साथ मिलकर, गोपियां श्रीकृष्ण की स्तुति करती हैं।

(२२) गोपियां अपने अनन्यार्हत्व का प्रकाशन करती हुई, श्रीकृष्ण के कृपाकटाक्ष मांगती हैं।

(२३) श्रीकृष्ण की शयनावस्था की शोभा देखने पर, आपकी यात्रा की एवं विराजने की शोभा भी देखने की इच्छा से गोपियां आपसे शय्यागृह से पधारकर आस्थान-मंडप में दिव्य-सिंहासन पर विराजने की प्रार्थना करती हैं।

(२४) प्रार्थनानुसार सिंहासनपर विराजनेवाले श्रीकृष्ण की दिव्यलीलाओं की स्तुति पूर्वक आपको मङ्गलाशासन किया जाता है।

(२५) भगवान से कुशलप्रश्न किये जाने पर गोपियां विनती करती हैं कि आपके दिव्य चेष्टितों का कीर्तन करती, हम विना क्लेश आपके संनिधि में आ गयी हैं।

(२६) मार्गशीर्षव्रतानुष्ठान के लिए अपेक्षित शंख भेर्यादि पदार्थ मांगे जाते हैं।

(२७) व्रतसमाप्ति के बाद भगवान की ओरसे बहुमान मांगे जाता हैं।

(२८) अपने आकिंचन्य का प्रकाशन करती हुई गोपियां अपराध की क्षमा मांगती हैं।

(२९) इस प्रबंध में, आदि से वारंवार प्रस्तुत पुरुषार्थ का सच्चा स्वरूप स्पष्ट बताया जाता है। अर्थात्, गोपियां श्रीकृष्णसे यों विनती करती हैं कि, "हे प्रभो! आपकी नित्यसेवा छोडकर दूसरी किसी चीज में हम आशा नहीं करती।

(३०) भगवान ने गोपियों की प्रार्थना को सफल बना दिया और इस प्रबंध का भक्तिपूर्वक पाठ करनेवाले लोग आपकी विशेष कृपा का पात्र बन कर ऐहिकामुष्मिक समस्त श्रेय पाकर आनंदित हो जायंगे। (इस फलश्रुति के साथ यह दिव्यप्रबंध समापित किया गया।)

श्रीगोदादेवी की जय हो।

—: * :—

उत्तर शांति पाठ

तिरुप्पावै का पाठ समाप्त करने के बाद इन पद्यों का भी पाठ करना संप्रदाय है। इनमें पहले पद्य से श्रीविल्लिपुत्तूरं दिव्यनगरी की, एवं दूसरे से तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध की प्रशंसा की जाती है।

कोदै पिरन्द वूर् गोविन्दन् वाळुमूर् * शोदिमणि माडन्तोन्नुमूर् *
नीदियाल् नल्लपत्तर् वाळुमूर् * नान्मरैहळोदुमूर् * विल्लिपुत्तूर् वेदक्कोनूर् ॥

श्रीविल्लिपुत्तूर नामक दिव्य नगर, गोदादेवी का जन्मगृह है; भगवान का वासस्थान है; उज्वल माणिमय महलों से अलंकृत है; अच्छे भक्त यहां पर नीति से विराजते हैं; चार वेदों का अध्ययन इधर खूब चलता है; वेदाचार्य श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी का यह अवतार स्थल है।

पातकङ्गळ् तीर्कुम् परमनडिकाट्टुम् * वेदमनैत्तुकुम् वित्ताहुम् *
कोदै तमिळैयैन्दुमैन्दुम् अरियाद मानिडरै * वैयम् शुमप्पुदुम् वम्बु ॥

समस्तपापों का नाश करनेवाले, भगवान के पादारविंद पहुँचानेवाले एवं समस्तवेदों के बीजभूत, गोदादेवी से अनुगृहीत, द्राविडभाषामय (तिरुप्पावै नामक) तीस पद्यों को नहीं जाननेवाले भूभार हैं॥

॥ आण्डाळ् तिरुवडिगळे शरणम् ॥

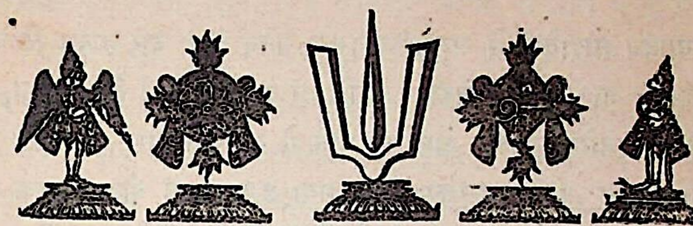
॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

॥ श्री गोदादेव्यै नमः ॥

तिरुप्पावैदिव्यप्रबन्ध समाप्त ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः । श्रीमद्वरवरमुनये नमः । अस्मद्गुरुपरंपराभ्यो नमः ।



द्राविडवेद नामक चार हजार दिव्यप्रबंध के अंतर्गत
पहले हजार का चौथा प्रबंध
॥ नाच्चियार तिरुमोऴि नामक श्रीगोदासूक्त दिव्यप्रबंध ॥
जगदाचार्य सिंहासनाधीश श्रीकाञ्ची प्रतिवादिभयङ्कर - अण्णङ्गराचार्य लिखित
संस्कृत टीकानुसारसे श्रीयादवाद्रि अकारकनिः सम्पत्कुमाराचार्य लिखित हिंदीटीका समेत

मुखपद्य की टीका

अल्लिनाळ् तामरैमे लारणङ्गिनिन् तुणैचि * मल्लिनाडाण्ड मडमयिल्-मेल्लियलाळ्
आयर्कुलवेन्दनाहत्ताळ् तेन्पुदुवै * वेयर्पयन्द विळक्कु ॥

दल सहित, तभी खिले हुवे कमलपुष्प में वास करनेवाली महालक्ष्मीजी की इष्ट सखी, तिरुमल्लिनामक राज्य की नायकी, सुंदर मोर के समान अत्यंत सुकुमार स्वभाववाली गोदादेवी, गोपकुल के स्वामी श्रीकृष्ण के दिव्यमंगलविग्रह में अनुरागवाली एवं सुंदर श्रीविल्लिपुत्तूर नगर के स्वामी वैदिकोत्तम श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी से उपलब्ध दीप की सदृश हैं ॥

इस पद्य से गोदादेवी की स्तुति की जाती है। भूदेवी का अवतार होने से, "लक्ष्मीप्रिय सखीं देवीम्" इत्यादि भूसूक्त के अनुसार आप कमलनिवासिनी लक्ष्मी जी की प्यारी सखी हैं। ज्ञान भक्ति इत्यादि अपने शुभगुणों से आप समग्र तिरुमल्लि देश (जिसकी राजधानी श्रीविल्लिपुत्तूर है) के जनों को प्रसन्न कर उनकी नायकी बनी हैं। श्रीकृष्ण भगवान के दिव्यमंगलविग्रह में आप इतनी अनुरक्ता हैं कि एक क्षणभर के लिए भी आप उसके विश्लेष का सहन न कर सकती हैं। और आप भक्ताग्रेसर श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी से प्राप्त मंगलदीप सदृश हैं ॥

|| श्रीः ||

|| नाच्चियार तिरुमोळि की अवतारिका ||

यह दिव्यप्रबंध गोदादेवी से अनुगृहीत दूसरा प्रबंध है। चार हजार दिव्यप्रबंध में पहिले हजार का यह चौथा प्रबंध माना जाता है। द्राविडी में नाच्चियार शब्दका अर्थ है नायिका, अर्थात् प्रकृते देवदेव-दिव्यमहिषी श्रीगोदादेवी। इनसे अनुगृहीत श्रेष्ठ ग्रंथ होने से यह नाच्चियार् तिरुमोळि कहा जाता है। अत एव संस्कृत में इसका अनुवाद "श्रीगोदासूक्त" किया गया है। इसमें चौदह दशक एवं कुल १४३ गाथाएं हैं। इसका एकैक दशक, एवं एकैक गाथा भी गोदादेवी की सीमातीत भगवद्भक्ति का प्रतीक है। ऐसा अनुभव दूसरे दिव्यसूरियों के प्रबंधों में कथंचिदपि देखने न मिल सकता है। इसका कारण भी स्पष्ट है, (जो तिरुप्पावै टीका में बताया गया) कि "नारीणामुत्तमा वधूः" इत्याद्युक्त प्रकार से नारीरत्न होने के कारण पुरुषोत्तम भगवान से आपका अनुभव स्वाभाविक व रसघन हुआ है। ऐसा अनुभव पाने की लालच से ही श्रीशठकोपसूरी इत्यादि दिव्यसूरिओं मध्ये मध्ये स्त्रीभावना प्राप्त करते हैं। इस तरह से रसघन इस दिव्यप्रबंध में भक्तिरस के अलावा और भी अनेक शास्त्रार्थ निगूढ रहते हैं, जिन को गुरु के उपदेश से ही जानना उचित होगा। अतः तात्पर्य और आवश्यक कतिपय विशेष मात्र का वर्णन करते हुवे यह सरल व संक्षिप्त हिंदी टीका लिखी जा रही है ||

|| श्रीः ||

|| श्री गोदादेव्यै नमः ||

नाच्चियार तिरुमोळि प्रारंभ

पहला दशक

|| तैयोरु तिङ्गळ् (कामदेव का समाश्रयण) ||

अवतारिका—श्री गोदादेवी ने भगवान से विरहित अपने दुःख को शांत करने के लिए व्रजनिवासिनी गोपियों से अनुष्ठित मार्गशीर्ष स्नान व्रत का अनुकरण करती हुई तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध रचा; और उसमें प्रसंगात् अपने इस सुदृढ निश्चय को प्रकाशित किया कि अविच्छिन्न, अनन्यप्रयोजन भगवत्कैंकर्य ही परमपुरुषार्थ है और स्वयं भगवान ही यह पुरुषार्थ देनेवाला उपाय हैं। इससे आपका विरह दुःख कुछ समयतक दबा गया तो सही; परंतु बिलकुल नहीं मिट गया। और आपके सिद्धोपाय स्वीकार एवं अनन्यप्रयोजनत्व जानकर भी भगवान आप पर पूर्ण प्रसन्न न हुए। फलतः गोदादेवी को उनका साक्षात्कार एवं अनुभव न मिला। इससे आपकी विरहव्यथा बहुत बढ गयी और आपके मन में उसी क्षणमें भगवान

से मिलने की तीव्र इच्छा हुई। तब आपने सोचा, "कौन से उपाय से मैं अभी भगवान को पा सकूंगी? आ:! ज्ञात हुआ। प्रेमियों को मिला देनेवाला देव कामदेव (मन्मथ) है। अत: मैं उसकी पूजाकर उसकी कृपापात्र बनूंगी।" बस! तुरंत आप इस काम में प्रवृत्त हो गयीं; अर्थात् नाना उपकरणं सजाकर, मन्मथ की पूजाकर, प्रार्थना करने लगीं कि, "हे कामदेव! समग्र पौषमास में तुम्हारी यात्रा निकलनेवाली वीथियों को साफकर, मनोहर सूक्ष्म रेती से उनको सजाकर, मंडलपूजा के लिए वेदी रचकर, धत्तूरं किंशुकादि पुष्प, मत्स्यध्वज, घोडे, चंवर की सेवा करनेवाली युवतियां, इक्षुधनु, इत्यादि सामग्री इकट्ठा कर, कामतंत्र निष्णात जनों से मंत्रपाठ कराती हुई तुम्हारी और तुम्हारे भाई सांबकी, प्रणामपूर्वक सेवा करूंगी। इससे प्रसन्न होकर तुम अपने इक्षु धनुष में विकसित पुष्प बाणों को लगाकर, उससे मुझको श्री वेंकटाद्रीश्वर, बकासुरहंता, गोपालकृष्ण में मिला दो। भगवान का अर्पण करने लायक हविको अगर जंगल में फिरने वाला सियार सूंघ लेगा, तो वह हवि जैसे एकदम अपवित्र एवं अत एव बेकार हो जाएगा, इस तरह से भगवान के लिए ही संकल्पित यह मेरा शरीर दूसरे किसी मानव का उपभोगार्थ कथंचिदपि न होगा। अत एव मानव से विवाहित होने के प्रस्ताव को भी मैं सह न सकती हूं। अत: तुम से मैं यही मांग रही हूं कि तुम मुझपर ऐसा अनुग्रह दर्शाओ कि मेघश्याम भगवान मुझको अपने कृपाकटाक्ष का लक्ष्य बनाकर, सुकुमार अपने श्रीहस्त से मेरा शरीर छूकर, मुझे अपने पादारविंद दबाने की सेवा दें।" इस प्रार्थना का सुंदर वर्णन इस दशकसे किया जाता है। अथवा गोपियों से अनुष्ठित कामसमाश्रयण का अनुकरण ही गोदादेवी से किया जाता है। यद्यपि इस दशक की किसी गाथा में गोपियों का अथवा अनुकरण का वाचक कोई भी शब्द न मिलता है। तथापि दूसरे दशक में गोपीकृष्ण संवाद का स्पष्ठ अनुवाद किया जाता है; अत: उसके अनुसार यहां भी गोपियों का अनुकरण माना जा सकता है। कैसा भी हो; यह बात तो निश्चित है कि इसमें गोदादेवी का स्वानुभव भी भरा है ॥

इस पर एक बडी शंका होती है कि अनन्यार्हशेषत्व, अनन्यशरणत्व इत्यादि आकारत्रयविभूषित, परमैकांती भगवद्भक्त होकर गोदादेवी कामदेव की शरण में कैसे गयीं? इससे आपकी निष्ठा चूक जाएगी न? संक्षेपत: इसका प्रत्युत्तर यह है कि देवनांतर को परदेवता मानकर उससे स्वातंत्र्येण कोई फल मांगने पर ही श्रीवैष्णव का स्वरूप विगड जाएगा। यहां पर तो गोदादेवी ऐसा नहीं कर रही हैं; परंतु प्रेमियों को मिलाने के काम में कामदेव को अधिकृत मानकर उनसे इतनी ही प्रार्थना कर रही हैं कि मुझको भगवान से मिला दो। अत: इससे कोई दोष न लगेगा। यद्यपि कामदेव से इतनी प्रार्थना करना भी सामान्यत: अयुक्त है। यह भी प्रार्थना भगवत्संनिधि में ही करनी लायक है। तथापि हाल में गोदादेवी की दशा बहुत नाजूक बन गयी है। उसी क्षण में भगवान के दर्शन न पानेपर शायद आपके प्राण ही निकल जायंगे। परंतु भगवान तो मुख नहीं दिखाने चाहते हैं। फिर क्या किया जाय? अगति होकर आपको कामदेव का पैर पकडने पडा। अपने से मिलने की सीमातीत आशा के फलतया बने हुवे इस कामसमाश्रयण से भगवान भी खूब प्रसन्न ही होते हैं। आप विचार करते हैं कि, "वाह! यह गोदा मेरे से मिलने के लिए कैसा कैसा काम करती है! धन्य है इसका प्रेम!" इस पर भी अगर पूछा जाय कि

" भगवान से प्राप्य फल को कामदेव से मांगना वास्तव में अज्ञान का काम है; इस दोष का परिहार कैसे किया जाय ? " तो इसका प्रत्युत्तर यही है कि अत्यधिक प्रेम से होने वाला अज्ञान भी प्रेमका परिणामरूपी होकर बडा गुण ही हैं, नतु कथंचिदपि दोष। कर्मकृत अज्ञान ही दोष है; नतु प्रेमकृत। अन्यथा मंगलाशासन भी दोष ही होगा। अतः जिस विषय में प्रेम गुण माना जाता है, उसमें प्रेमकृत अज्ञानादि भी बडा गुण ही है॥

अथवा अपने अपेक्षित समय में दर्शन नहीं देनेवाले भगवान पर प्रणय से कुपित गोदादेवी उनको दुःख अथवा दंड देने की भावना से यह कामोपासना करती हैं। अपने भक्त, अपने से रक्षा न पाने के कारण अगर देवतांतर की उपासना करने में उतर जाय, तो यह भगवान की बदनामी है; अतः इसका सहन न करते हुवे आप शीघ्र ही दर्शन देकर सांत्वना भी करने लगते हैं। इस आशा से यह काम किया जाता है। प्रणयरोष को और तत्प्रयुक्त कामों को प्रणय का ही प्रकारविशेष होने से, कोई उनको दोष न मानेगा। कैसा भी हो; सारतमवार्ता यही है कि सीमातीत प्रेमकार्य होने से, उस प्रेम का सूचक यह कामसमाश्रयण गोदादेवी का स्वरूपनाशक न बनेगा॥

॥ श्रीः ॥

॥ अथ प्रबन्धोपक्रमः ॥

प्रथम दशक

(गाथा.) तैयोरुतिङ्गळुम् तरैविळक्कि तण्मण्डलमिट्टु माशि मुन्नाळ् *
ऐय नुण्मणल्कोण्डु तेरुवणिन्दु अळहिनुकलङ्करित्तनङ्गदेवा *
उय्यवुमाङ्कोलो वेन्नु शोल्लि उन्नैयुमुम्बियैयुम् तोलुदेन् *
वेय्यदोर्तळलुमिळ् शकरक्कै वेङ्गडवर्केन्नै विदिक्किट्टियेे॥ १॥

हे कामदेव! समग्र पौषमास में तुम्हारी यात्रा निकलने योग्य वीथियों को साफ कर, मंडलपूजा के लिए सुंदर मंडल वेदी बनाकर, माघमास के पूर्वपक्ष में सुंदर बारीक रेती से वीथियों को सजाकर उज्जीवन पाने के लिए तुमको और तुम्हारे भाई सांबको प्रणाम करती हूं। इससे तुम प्रसन्न होकर मुझको सुतीक्ष्ण एवं ज्वालामाली चक्रराज से अलंकृत हस्तवाले श्रीवेंकटाद्रिनाथ भगवान की नित्यकिंकरी बना दो॥ [कामदेव से यों मांगती हुई गोदादेवी भगवान के प्रति अपने सीमातीत प्रेम का प्रकाशन करती हैं॥] .... (१)

(गाथा.) वेळ्ळै नुण्मणल् कोण्डु तेरुवणिन्दु वेळ्वरैप्पदन्मुन्नम् तुरैपडिन्दु *
मुळ्ळुमिल्ला चुळ्ळियेरिमडुत्तु मुयन्रुन्नै नोर्किन्नेन् कामदेवा *
कळ्ळविळ् पूङ्कणै तोडुत्तुकोण्डु कडल्वण्णनेन्वदोर् पेरेळुदि *
पुळ्ळिनै वायू पिळन्दानेन्वदो रिलक्किनिल् पुहवेन्नै येयूकिट्टियेे॥ २॥

हे कामदेव! बिलकुल सफेद एवं सूक्ष्म रेती से वीथियों को सजाकर, संध्याप्रकाश होनेसे पहिले तालाव में स्नानकर, परिशुद्ध समिध से अग्नि में होम कर, इन तरहों से परिशुद्ध होकर मैं तुम्हारी पूजा रूप व्रत कर रही हूं। इससे प्रसन्न तुम भी मधु बहनेवाले पुष्पों को अपने धनुष में बाणरूप से जुडाकर सागरवर्ण श्री कृष्ण के नाम मनमें रखकर बकासुर का संहार करनेवाले उन भगवान को लक्ष्यकर (अर्थात् उस लक्ष्यमें मैं लग जावें इस तरह से) मेरा प्रयोग कर दो। [अर्थात् तीर में मुझको रखकर भगवान पर छोड दो; जिससे मैं उन पर टिक जाऊं। इसका तात्पर्य यह है कि भगवान से मुझको मिला दो ॥]

(गाथा.) मत्तनन्नरु मलर्मुरुक्कमलर्कोण्डु मुप्पोदु मुन्नडि वणङ्गि *
तत्तुवमिलियेन्नु नेञ्जेरिन्दु वाशह त्तलित्तुन्नै वैदिडामे *
कोत्तलर्पूङ्कणै तोडुत्तुकोण्डु गोविन्दनेन्बदोर् पेरेलुदि *
वित्तहन् वेङ्गडवाणनेन्नुम् विळक्किनिल् पुहवेन्नै विदिक्किन्तिये ॥ ३ ॥

हे कामदेव! तुम्हारे इष्ट धुत्तूरपुष्प एवं किंशुक पुष्पों को लेकर (प्रातः मध्याह्न एवं सायं, इन) तीनों कालों में तुम्हारे पादपद्म में प्रणामकर तुमसे प्रार्थना करनेवाली मैं, "यह नकली देव है" कहती हुई तुम्हारा नाम विगाड कर हृदयवेदना से तुम्हारी निंदा न कर डालूं, इस तरह से खिले हुवे पुष्परूपी बाणों को अपने धनुष में लगाकर गोविंद नाम को मन में रखकर, बडे चतुर श्री वेंकटनाथ नामक दीप में मुझको मिला दो ॥ [यह भाव है—भगवान से मिलने की आशा से मैं तुम्हारी सेवा कर रही हूं। अगर तुम कृपाकर मेरी इच्छा को पूर्ण न करोगे तो मैं बहुत संताप पाकर सर्वत्र तुम्हारी बदनामी फैलाऊंगी। अतः ऐसा होने का अवकाश न देते हुवे तुरंत मुझको श्रीवेंकटनाथ भगवान् से मिला दो ॥] .... (३)

(गाथा.) शुवरिल् पुराण निन्पेरेलुदि शुरवनल् कोडिकलुम् तुरङ्गङ्गलुम् *
कवरिप्पिणाक्कलुम् करुप्पुविल्लुम् काट्टित्तन्देन् कण्डाय् कामदेवा *
अवरैप्पिरायम् तोडङ्गियेन्नुम् आदरित्तेलुन्दवेन् तडमुलैहळ् *
तुवरैप्पिरानुक्के सङ्कल्पित्तु तोळुदुवैत्तेनोळ्ळै विदिक्किन्तिये ॥ ४ ॥

बहुत काल से ही मेरा उपकार करनेवाला हे कामदेव! भींत पर तुम्हारे नाम लिखकर तुम्हारे लिए मत्स्यरूपी ध्वज, घोडे, चामर धरनेवाली औरतें, ईख का धनुष, इन की भेंट कर दूंगी। ऐसा संकल्पकर कि "बचपन से ही श्रीकृष्ण में ही प्रेम रखकर उगनेवाले मेरे विशाल स्तन द्वारकाधीश उन भगवान के उपयोग के लिए ही हो" मैं तुम्हारी सेवा करती आयी हूं। इस मेरे संकल्प को तुम शीघ्र ही सफल बना दो ॥ .... (४)

(गाथा.) वानिडैवाळुमव्वानवर्क्कु मैरयवर्वेळ्वियिल् वहुत्तववि *
कानिडैत्तिरिवदोर्नरिपुहुन्दु कडप्पदुम्मोप्पदुम् शेय्वदोप्प *
ऊनिडैयाळिशङ्गुत्तमर्कैन्नु उन्नित्तेलुन्दवेन् तडमुलैहळ्
मानिडवर्कैन्नु पेच्चुप्पडिल् वाळहिलेन् कण्डाय् मन्मदने ॥ ५ ॥

हे मन्मथ! स्वर्ग में रहनेवाले उन देवताओं के लिए ब्राह्मणों से याग में दिये गये हुए हवि को जंगल में फिरनेवाला सियार अपने पैर से छूकर अगर सूंघेगा तो वह जैसे अपवित्र व बेकार हो जाएगा, इस तरह से शंखचक्रधर दिव्यमंगल विग्रहवाले पुरुषोत्तम भगवान के भो ा के लिए ही प्रेमसें उत्पन्न हुए मेरे मोटे स्तनों के बारे में किसी मानवमात्र के भोग्य होने का प्रस्तावमात्र सुननेपर भी मैं जीवित न रह सकूंगी। [भगवान के उपभोग के लिए ही मैं ने जन्म लिया हूं। अतः आपको छोडकर दूसरे किसी मानव से मैं विवाहित न हूंगी। ऐसा प्रस्ताव होनेपर भी मेरे प्राण उड जायंगे। भगवान के लिए ही संकल्पित इस शरीर को दूसरों को देना, देवताओं के भोग के लिए संकल्पित हवि को क्षुद्र जानवर सियार को देने की तरह सर्वथा अनुचित है। अतः ऐसे होने न दो॥] .... (५)

(गाथा.) उरुवुडैयारिळैयार्हळ्नल्लार् ओत्तुवल्लार्हळैक्कोण्डु * वैहल्
तेरुविडैयेदिर्होण्डु पङ्गुनिनाळ् तिरुन्दवे नोर्किन्नेन् कामदेवा *
करुवुडैमुहिल्वण्णन् कायाबण्णन् करुविळैपोल्वण्णन् * कमलवण्ण-
त्तिरुवुडैमुहत्तिनिल् तिरुक्कण्गळाल् तिरुन्दवे नोक्केनक्करुळ् कण्डाय्॥ ६॥

हे कामदेव! कामशास्त्र की अच्छी वेत्ता, उस शास्त्र के अनुसार चलनेवाली सुंदरी युवतियों का पुरस्कार पूर्वक, तुम्हारे फाल्गुनमहोत्सव में (यात्रोचित) वीथियों को सजाकर, तुम्हारा स्वागत कर, मनः पूर्वक, प्रतिदिन तुम्हारा व्रत करूंगी। जलभरित मेघ के समान वर्णवाले, अतसीपुष्प सुकुमार, वन्यपुष्प के समान उज्वल भगवान, कमल के समान कांतिवाले अपने मुख में विराजमान नयनों से मेरे ऊपर विशेष कृपा पूर्वक कटाक्ष करें, ऐसा अनुग्रह करो॥ .... (६)

(गाथा.) कायुडैनेल्लोडु करुम्बमैत्तु कट्टियरिशियवलमैत्तु *
वायुडैमरैयवर्मन्दिरत्ताल् मन्मदने युन्नै वणङ्गुहिन्नेन् *
तेशमुन्नळन्दवन् तिरिविक्किरमन् तिरुक्कैहळालेन्नै त्तीण्डुम्वण्णम् *
शायुडैवयिरुमेन्तडमुलैयुम् तरणियिल् तलैप्पुहळ् तरक्कित्तिये॥ ७॥

हे मन्मथ! धान्यसहित शालिगुच्छ के साथ ईंख को मिलाकर, एवं गुड, चावल तथा पृथुक आदियों का भी भोग बनाकर, कामतंत्र में निपुण सुंदर जनों से तुम्हारे स्तुतिमंत्रों का पाठ करवाकर मैं तुम्हारा व्रत कर रही हूं। पूर्वकाल में सकल लोकों को भी अपने पादारविंद से नापनेवाले त्रिविक्रम बिरुदधारी भगवान, मेरी उज्वल पेट का तथा विरहासहिष्णु मोटे स्तनों का भी स्पर्श करें, तुम ऐसा अनुग्रह कर इस संसारमें मेरा यश भी बढाओ॥ .... (७)

(गाथा.) माशुडैयुडम्बोडु तलैयुलरि * वायूप्पुरं वेलुत्तोरुपोदुमुण्डु *
तेशुडैत्तिरलुडैक्कामदेवा नोर्किन्ननोन्विनैक्कुरिकोळ् कण्डाय् *
पेशुवदोन्नुण्डिङ्गेम्बेरुमान् पेण्मैयैत्तलैयुडैत्ताक्कुम्वण्णम् *
केशवनम्बियैक्काल्पिडिप्पाळेन्नुम् * इप्पेरेनक्करुळ्कण्डाय्॥ ८॥

हे विरहियों को मिला देने का यशवाला, बलवान, हमारा स्वामिन्, कामदेव! मैं मलिन शरीरवाली होकर, केश बिखरकर, एवं विवर्ण ओष्ठवाली बनकर, एकवेला भोजन करती हुई जो व्रतानुष्ठान कर रही हूं, उसको ध्यान में रखो। अब मेरी प्रार्थना यह एक ही है कि मेरी सत्ता की रक्षा करते हुवे मुझे इस यश का प्रदान करो कि "यह श्री केशव भगवान की पादसेवा करनेवाली है"। [अर्थात् भगवान के पैर दबाने की सेवा न मिलनेपर मैं एक क्षणमात्र भी जीवित न रह सकूंगी ॥] .... (८)

(गाथा.) तोऴुदुमुप्पोदुमुन्नडिवणङ्गि तूमलर्तूय्त्तोऴुदेत्तुहिन्रेन् *
पऴुदिन्रिप्पार्कडल्वण्णनुक्के पणिशेय्दु वाऴप्पेराविडिल्नान् *
अऴुदऴुदलमन्दम्मावऴङ्ग आत्तवुमदुवुनक्कुरैक्कुङ्कण्डाय् *
उऴुवदोरेरुत्तिनै नुहङ्गोडुपाय्न्दु ऊट्टमिन्रित्तुरन्दालोक्कुमे ॥ ९ ॥

हे कामदेव! तीनों संध्याओं में प्रणाम करती हुई, तुम्हारे पादों में परिशुद्ध पुष्पों का अर्पण कर, तुम्हारी स्तुतिरूप सेवा करनेवाली मैं भूमंडल को घिरने वाले सागर के समान भगवान की निर्दोष सेवा कर अगर कृतार्थ न बन जाऊंगी, तो फिर हमेशा रोती रोती हाय हाय करती अगर मैं दुःख पाऊंगी, तो इससे तुमको बडा पाप लगेगा। खेती हलने में निरत बैलको दंड से मारकर, फिर उसको चारा चराने से भी रोकने का समान होगा यह तुम्हारा काम ॥ [अर्थात् तुमको ऐसा पाप लगेगा ॥] .... (९)

(गाथा.) करुप्पुविल्मलर्क्कणैक्कामवेळै कऴलिणै पणिन्दङ्गोर् करियलर *
मरुप्पिनैयोशित्तुप्पुळ्वायूपिळन्द मणिवण्णर्क्केन्नै वहुत्तिडेन्नु *
पोरुप्पन्नमाडम्पोलिन्दुतोन्रुम् पुदुवैयर्कोन्विट्टुशित्तन्कोदै *
विरुप्पुडैयिन्तमिऴ्मालै वल्लार् विण्णवर्कोनडिनण्णुवरे ॥ १० ॥

इक्षुधनु का एवं पुष्पबाणों का धारण करनेवाले मन्मथ के दोनों पादों का प्रणाम कर, उससे यों प्रार्थना करनेवाली कि, "मुझको कंस के वहां रहनेवाला कुवलयापीड नामक हाथी, भय व दुःख के मारे रोरोते गर्जन करें इस तरह से उसके दांत तोड डालनेवाले, बकासुर का मुख चीर डालनेवाले एवं नीलमणि समानवर्णवाले श्री कृष्ण की वल्लभा बना दो," पहाड के समान बडे बडे महलों से अलंकृत श्रीविल्लिपुत्तूर दिव्यनगर निवासियों के स्वामी श्रीविष्णुचित्तस्वामीजी की (अभिमानपुत्री) गोदा से सामिनिवेश गीत इन मधुर द्राविडी गाथाओं का कीर्तन करनेवाले नित्यसूरियों के नाथ भगवान के पादारविंद पहुंच देंगे ॥ [इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया ॥] .... (१०)

—* इस दशक का सारांश संग्राहक पद्य यह है *—

कृष्णादन्यः पतिर्मे न भवितुमिह कोऽप्यर्हतीति स्वकीयं
सिद्धान्तं संप्रकाश्य प्रपदनमकरोन्मन्मथे भ्रातृयुक्ते ।
अज्ञानं ज्ञानपाकोद्भवमिह तनुते यत्तदाद्यत्यसेवे-
त्येनं राद्धान्तमुच्चैर्जगति विदधती विष्णुचित्तात्मजाऽऽद्ये ॥

श्री विष्णुचित्तस्वामीजी की सुपुत्री गोदादेवी ने अपने प्रबंध के पहिले दशक से, "श्री कृष्ण को छोडकर दूसरा कोई मेरा पति न होगा" इस अपने सिद्धांत का प्रकाशन करती हुई, भाई के साथ मन्मथ की शरणागति की। इससे यह सिद्धांत स्थापित किया गया कि ज्ञान के ठीक पक जाने पर उसके फलतया जो अज्ञान बनेगा, वह सर्वथा आदरणीय ही है [नतु निंद्य]॥

॥ नाच्चियार् तिरुमोऴि में पहला दशक समाप्त हुआ ॥

॥ आण्डाळ् तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ श्रीः ॥

दूसरा दशक

॥ नाममायिरमेत्तनिन्न ॥

(गोपियों का क्रीडागृह तोडना)

अवतारिका—पूर्व दशक में गोपियों से अनुष्ठित कामदेव व्रत से भगवान का मन बहुत रंजित हो गया। आपने अपने मन में विचार किया—"हाय! मैं ने क्या कर दिया? अनन्यभक्त इन गोपबालिकाओं से मिलने में मैं ने बिना कारण ही विलंब कर दिया। इसके फलतया इन्होने अपने अनन्यार्हशेषत्व को भी भूल कर कामदेव का आश्रयण कर दिया। मेरे रूबरू ही मेरे भक्त देवतांतर की उपासना कर डालें, यह कैसी लज्जा की बात है?" यों पछताते हुवे आप गोपियों के आगे प्रकट हो गये। परंतु उतने में इस अल्प विलंबका भी सहन करने अशक्त गोपियों का प्रणय कोप और बढ गया था। उन्होने अपने मन में निश्चय कर रखा कि "अब इस निर्दय कृष्ण को हम एकदम भूलकर लौकिक बालकों की तरह खेलती कूदती काल बितावेंगी। कृष्ण अगर इधर आ जाय, तो भी हम उसकी ओर न देखेंगीं, नवा उससे वार्ता ही करेंगी।" एतदनुसार वे वीथी में रेती से छोटे छोटे मकान बनाने की खेल में लग गयीं। अभी भी हम देख सकते हैं कि, वीथी में खेलनेवाले बच्चे लोग रेती से छोटे छोटे मकान बनाते हैं। अतः गोपियों का विचार यह हुआ कि एसी खेल में मग्नचित्त होने की भावना से हम श्रीकृष्ण की उपेक्षा करती हुई उसका तिरस्कार कर देंगी। फिर श्रीकृष्ण उधर आकर देखते हैं कि ये गोपियां अपने संकल्प के अनुसार खेलने में ही तत्पर होकर अपनी ओर नजर भी न डालती हैं। यह तो आपको बहुत बूरा लगा। अतः आप उनसे धीरे धीरे वार्ता करने लगे, श्रृंगार चेष्टा करने लगे, और अंततः उनके लीलागृहको तोड डालने लगे। तब आपको इस काम से रोकने के लिए वार्तालाप करना गोपियों को अनिवार्य हो गया। ये आपसे बोलीं, कि तुम हमारी खेल में बाधा मत डालो, झट यहां से दूर भाग जा। आपने कहा, कि अगर तुम्हें खेलना ही हो, तो मेरे साथ खेलो, मेरे बिना नहीं। इस प्रकार से दोनों के बीच में बडा ही वादविवाद मच गया। यह विवाद ऊपर से देखने में कलह जैसा प्रतीत होता; मगर दोनों को यह अत्यंत अपेक्षणीय था। प्रेमियों की अपेक्षणीय वस्तु तो आपस में वार्तालाप है; वह चाहें कलह के रूप में हो, अथवा दूसरे किसी रूप में। अब गोदादेवी स्वयं उन प्रणय कुपित गोप बालिकाओं की भावना को अपना कर उनकी वार्ता का वर्णन करती हैं इस दशक से।

गोपियों के सविनय सप्रेम वचन इस प्रकार के हैं—हे कृष्ण ! क्या तुम अंध हो गया, जब कि हमारे से विनिर्मित इन लघु मकानों को तोड डाल रहे हो ? हमारी मनोहर खेले देखकर अपने नेत्र को धन्य तो बनावो । बहुत कालतक अत्यधिक परिश्रम उठाकर हमसे बनाये हुवे इन रमणीय क्रीडागृहों का विनाश करने से तुम्हारा क्या लाभ होगा ? अभी भी हमारे ऊपर तुम दया क्यों न करते हो ? परंतु आश्चर्य की बात है कि इतने दुःख देने पर भी तुम्हारे पर से हमारा मन विरक्त होना न चाहता । तुम्हारे प्रणय मधुर वचन, मनोहर कटाक्ष एवं धूर्तचेष्टित, ये सब हमारे मन को चुर रहे हैं । क्या तुम नहीं जानते कि हम अभी बहुत छोटी उम्रवाली बालिकाएं हैं जिनके स्तन भी उगे नहीं ? ऐसी बच्चियों हम से नानाविध शृंगारमय भाषण करने सें तुमको कौन सा लाभ मिलेगा ? रसिकश्रेष्ठ प्रौढ औरतें बहुत रहती हैं । अगर तुम उनसे ऐसे मनोहर शृंगारमय वार्तालाप करोगे, तो वह उचित कहलावेगा । यद्यपि हम ठीक पहचानती हैं कि तुम शंखचक्रगदापाणि साक्षात् नारायण हो। तथापि हम तुमको प्यार नहीं करती हैं, इस में कोई आश्चर्य नहीं है । कारण कि, अगर किसी के मन में मिस्री में कडुवा होने की बुद्धि हो जाय, तो वह जरूर उसको दूर करेगा । तुम तो एकदम हमारे नजदीक आकर हमको छूते हुवे नानाविध शृंगारचेष्टा करते हो। इसको कोई देखे तो फिर क्या कहेंगे ? व्यर्थ अपवाद का अवकाश मत दिया करो । हमारे क्रीडागृहों का विनाश मत करो ॥ *

(गाथा.) नाममायिरमेत्तनिन्न नारायणा नरने * उन्नै
मामिदन्महनाहप्पेत्ताल् एमक्कु वादै तविरुमे *
कामन्पोदरु कालमेन्नु पङ्गुनिनाळ् कडैपारित्तोम् *
तीमैशेय्युम् शिरीदरा एङ्गळ्शित्तिल्वन्दु शिदैयेले ॥ १ ॥

हे हजार नामों से स्तोत्र किये जानेवाले नारायण ! हे नररूपधारिन् ! धूर्त तुमको अपनी सासू का पुत्र भी बननेवाली हमको क्या कदापि दुःख मिटेगा भी ? इस फाल्गुन मास में मन्मथ का यात्रोत्सव होगा; इस लिए हम वीथियों को सजा रही है । हे धूर्तचेष्टित करनेवाले श्रीधर ! हमारे खेलने की जगह आकर क्रीडागृह का भंग मत करो । [पति को आर्यपुत्र कहना स्त्रियों का संप्रदाय है । वही यहां पर सासू का पुत्र कहा गया । जब श्रीकृष्ण अपने से सर्वथा संबंध रहित व्यक्तियों को भी नानाविध चेष्टाओं से दुःख देने का स्वभाववाला है, तब अपनी पत्नी होनेवाली गोपबालिकाओं को वह कितना दुःख देगा ! इस दुःख से बचने का कोई भी उपाय है ही नहीं ॥] .... (१)

(गाथा.) इन्नुमुत्तमुदुहुनोत्र इरुन्दिलैत्तविच्चित्तिलै *
नन्नुङ्कण्णुरनोकि नाङ्गोळुमार्वन्दन्नैत्तणिकिडाय् *
अन्नुपालहनाहि आलिलैमेल् तुयिन्नवेम्मादियाय् *
एन्नुमुन्दनकेङ्गळ्मेल् इरक्कमेळाददेम्बावमे ॥ २ ॥

आज दिन भर पीड़ा का दुःख देकर बैठती हुई हमसे बनाये गये हुवे इन क्रीडागृहों को तुम अत्यादर पूर्वक आंखों से देखकर हमारी आशा को सफल बना दो। महा प्रलय काल में छोटे बालक का रूप लेकर वटपत्र पर शयन करनेवाले हमारे स्वामिन् श्रीकृष्ण! हमारे ऊपर कभी भी तुम्हारे प्रेम का उदय जो नहीं होने चाहता है, वह सचमुच हमारे पाप का ही फल है॥ [गोपियों की यह आशा थी कि अपने से बनाये जानेवाले इन क्रीडागृहों को श्रीकृष्ण अत्यादर पूर्वक देखकर प्रसन्न होंगे। अब तो इससे विरुद्ध, आप इनको तोड रहे हैं। यह तो अनुचित है। इससे उनका आशाभंग हो गया। अतः ऐसा न होने की प्रार्थना करती हैं॥] .... (२)

(गाथा.) कुण्डुनीरुरै कोळरि मदयानै कोळ्विडुत्ताय् * उन्नै-
कण्डुमालुरुवोङ्गळै कडैकण्गळालिट्टु वादियेल् *
वण्डल्नुण्मणलतेळ्ळि याम् वळैक्कैहळाल् शिरमप्पट्टोम् *
तेण्डिरैक्कडर्प्पळ्ळियाय् एङ्गळ्शिट्रिल्वन्दु शिदैयेले॥ ३॥

हे अगाध सागर शायिन्! हे प्रतापशालि सिंह सदृश! हे मत्त गजेंद्र की बाधा का शमन करने वाला श्रीकृष्ण! आश्रितदुःख विनोचक तुमको देखकर पागल पागल बन जानेवाली हम को तुम अपने कटाक्षवीक्षण से पीडित मत करो। यह घर बनाने के लिए हमने कंकणालंकृत अपने हाथ से मिट्टी से सूक्ष्म रेती के कणों को निकालती हुई बहुत दुःख पाया है। अतः हे स्वच्छतरंग समावृत क्षीरसागर शायिन्! हमारे परिश्रम का ध्यान कर हमारे छोटे मकान को तोडो मत॥ .... (३)

(गाथा.) पेय्युमामुहिल्पोल्वण्णा उन्दन्पेच्चुम्शेय्हैयुम् * एङ्गळै
मैयलेत्तिमयक्क उन्मुहम्मायमन्दिरन्दान् कोलो *
नोय्यर्पिळ्ळैहळेन्बदर्क्कु उन्नैनोव नाङ्गळुरैक्किलोम् *
शेय्यतामरैक्कण्णिनाय् एङ्गळ्शिट्रिल्वन्दु शिदैयेले॥ ४॥

हे बरसनेवाले मेघ का सदृश श्रीकृष्ण! तुम्हारी बात और चेष्ठा हमको पूरा पागल बना देती हैं। तुम्हारा मुख क्या मायामंत्र गुटिका है? (जो हमको ऐसे मोहित करता है?) हम इसलिए तुम से कटुवचन न सुना रही हैं कि ऐसा करने पर तुम हमको अल्पबुद्धिवाली बालिका कहोगे। अस्तु। हे पुंडरीकनयन! हमारे क्रीडाघर का नाश मत करो॥ .... (४)

(गाथा.) वेळ्ळुण्मणल्कोण्डु शिट्रिल्विशित्तिरप्पड * वीदिवाय्-
त्तेळ्ळिनाङ्गळिळैत्तकोलम् अळित्तियाहिलुमुन्दन्मेल् *
उळ्ळमोडियुरुहलल्लाल् उरोडमोन्नु मिलोङ्कण्डाय् *
कळ्ळमादवा केशवा उन्मुहत्तन कण्गळल्लवे॥ ५॥

हे चोर ! माधव ! केशव ! अतिशुभ्र व सूक्ष्म रेती से वीथीयों में सब लोग देखकर आश्चर्य पावें इस तरह से बनाये हुए अद्भुत चित्रों का यद्यपि तुम नाश कर रहे हो ; तथापि इससे तुम्हारे सौशील्य का अनुसंधान करती हम द्रवितचित्त हो जाती हैं । नतु कोप कर सकती हैं । अस्तु । तथापि हमसे विनिर्मित इन सुंदर वस्तुओं का नाश करनेवाले तुम्हारे मुखपर क्या आंखें नहीं है ? .... (५)

(गाथा.) मुत्तिलादपिळ्ळैहळोम् मुलैपोन्दिलादोमै ॐ नाडोरुम्
शित्तिल्मेलिट्टुकोण्डु नीशिरिदुण्डुतिण्णेननामदु-
कत्तिलोम् ॐ कडलैयडैत्तरकर् कुलङ्गळै मुत्तवुम्
शेत्तु ॐ इलङ्गैयैप्पूशलाक्किय शेवहा एम्मै वादियेल् ॥ ६ ॥

सागर में पुल बांध कर लंकानगरी को युद्धभूमि बनाकर रक्षसकुलों का निश्शेष नाश करनेवाला हे प्रतापशालिन् ! हम अभी बालिकाएं हैं, नतु युवतियां ; हमें अभी स्तन भी उगे नहीं । ऐसे हमारे प्रति कृत्रिमगृह भंजन करने के व्याज से तुम रोज क्षुद्र चेष्टा कर रहे हो । तुम्हारी श्रृंगार कला से हम बिलकुल अपरिचित हैं । अत: वृथा हमें दु:ख देने का काम मत करो ॥ .... (६)

(गाथा.) पेदनन्गरिवाईळोडु इवैपेशिनाल् पेरिदिन्शुवै ॐ
यादुमोन्नरियाद पिळ्ळैहळोमै नीनलिन्देन्पयन् ॐ
ओदमाकडल्वण्णा उन्मणवाट्टिमारोडु शूळरुम् ॐ
शेदुबन्दन्तिरुत्तिनाय् एङ्गळ्शित्तिल्वन्दु शिदैयेले ॥ ७ ॥

हे लहरों से समावृत महासागर के समान ! तुम बहुत श्रृंगारमय मीठी मीठी बातें करते हो । इसका भाव व रस जानने समर्थ रसिकों से ऐसी बात करने पर वह उनके लिये अत्यंत भोग्य होगा । हम तो लौकिक ज्ञान से भी विरहित छोटी बालिका है । ऐसी हमको क्लेश देने से तुम्हें क्या लाभ होगा ? हे सेतुबंधन करने समर्थ भगवन् ! हम तुम्हारी पत्नियों पर सुगंध खाकर कहती हैं—हमारे क्रीडागृह का नाश मत करो ॥ .... (७)

(गाथा.) वट्टवाय्चिरुतूदैयोडु शिरुशुळहुम्मणलुङ्गोण्डु ॐ
इट्टमाविळैयाडुवोङ्गळै चित्तिलीडळित्तेन्पयन् ॐ
तोट्टुदैत्तु नलियेल् कण्डाय् शुडर्चकरङ्गैयिलेन्दिनाय् ॐ
कट्टियुङ्कैत्तालिन्नामै अरिदिये कडल्वण्णने ॥ ८ ॥

हे ज्योतिर्मय सुदर्शनचक्रराजालंकृतपाणितल ! हे सागर वर्ण भगवन् मुकुन्द ! लीलोपकरण छोटे कलश, शूर्प, रेती आदि लेकर इष्टानुसार खेलनेवाली हमारे से विनिर्मित छोटे मकानों का नाश कर देने से क्या लाभ होग ? छूते और लात मारते हमें हिंसा मत करो । क्या तुम नहीं जानते हो कि पित्तादि से जीभ अगर कडवी हो जाय, तो [अथवा मनमें वैरस्य का उदय हो जाय तो] गुड भी कडवा लगेगा ? (८)

(गाथा.) मुत्तत्तूडुपुहुन्दु निन्मुहङ्काट्टिप्पुन्मुरुवल्ल् शेयूदु *
शित्तिलोडेङ्गळ्ळ् शिन्दैयुम् शिदैक्ककडवैयो गोविन्दा *
मुत्तमण्णिडन्तावि विण्णुरनीण्डळन्दुकोण्डाय् * एम्मै-
प्पत्तिमेयूप्पिर्णाकिट्टकाल्ल् इन्दप्पकम् निन्नवरेन्शोल्लार् ॥ ९ ॥

हे गोविन्द! एक पाद से समग्र धरातल को नापकर, दूसरे पाद को परमपदतक बढा कर उससे तुमने समस्त ऊर्ध्वलोकों को नाप कर लिया। हमारे स्वकीय रहस्य क्रीडाङ्गण में घुसकर तुम अपना श्रीमुख दिखाते हुवे, मंदहास कर, हमारे क्रीडागृहों का विनाश कर, हमारे मन को भी क्योंकर शिथिल बना रहे हो? इसके बाद हमारे शरीर पर पडकर नानाविध शृंगार चेष्टा भी कर रहे हो। परंतु ईसको देखनेवाले जन क्या कहेंगे? [हमारी और तुम्हारी बदनामी ही कहेंगे॥] .... (९)

(गाथा.) सीतैवायमुदमुण्डाय् एङ्गळ्शित्तिल् नी शिदैयेलेन्नु *
वीदिवाय् विळैयाडुम् आयर्शिरुमियर्मळलैच्चोल्लै *
वेदवायुत्तोळिलार्हळ्वाळ् विल्लिपुत्तूर्मन्विट्टुशित्तन्ऱन् *
कोदैवाय् त्तमिळ्वल्लवर् कुरैविन्नि वैहुन्दम् शेर्वरे ॥ १० ॥

श्रीकृष्णसे, "हे सीतादेवी के अधरामृतपान करने में रसिक भगवन्! हमारे लीलागृहों का नाश मत करो" ऐसी विनती करनेवाली, वीथी में खेलनेवाली गोपबालिकाओं से जो मुग्धमधुर भाषण किया गया, उसका विवरण, वेदाध्ययनानुष्ठानादि संपन्न श्रेष्ठ श्रीवैष्णवों से अलंकृत श्रीविल्लिपुत्तूर के स्वामी श्रीविष्णुचित्त स्वामीजी की सुपुत्री गोदादेवी से द्राविडगाथा रूप में किया गया। उन इन गाथाओं का अध्ययन करनेवाले अटूट ऐश्वर्य पाकर योग्य समय में परमपद पहुंचेंगे॥ [इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया॥] .... (१०)

- * इस दशक का सारसंग्राहक पद्य यह है *—

श्लो॥ गोप्यः कार्यान्यपर्यप्रकटनकुतुकात् सैकतं सद्म कर्तुम्
प्रावर्तन्ताथ कृष्णो विहरणरसिकस्तत्र गत्वा स्वपद्भ्याम्।
तच्छैथिल्यं वितेने तदनु सविनयं प्रार्थयन्ते स्म मैवं
कार्षीरिति, एतदूचे सरसमधुरवाग्दिव्यगोदा द्वितीये॥

गोपियां अपनी अन्यपरता दिखाने के लिए रेती से मकान बनाती रह गयीं। रास्ते में फिरते फिरते उधर आकर श्रीकृष्ण ने भी उनको तोड दिया। तब गोपियों ने आपसे प्रार्थना की कि "हे प्रभो! ऐसा मत किया करो।" श्रीगोदादेवीने दूसरे दशक में, इस अर्थ का सरल मधुर वर्णन किया ॥....(२)

॥ नाच्चियार् तिरुमोळि में दूसरा दशक समाप्त हुआ॥

॥ आण्डाळ् तिरुवडिहळे शरणम्॥

॥ श्रीः ॥

तीसरा दशक

॥ कोळियळैप्पदन्मुन्नम् ॥

(गोपीवस्त्रापहरण क्रीडा)

अवतारिका—इस दशक में गोपीवस्त्रापहरण कथा का सुंदर वर्णन किया जाता है। भगवान से विरहित गोपियां अपना ताप मिटाने के लिए शीतल जलाशय में स्नान करने की इच्छा से बडे सबेरे उठकर गुप्तरूप से यमुना नदी के किसी ह्रद पर गयीं। श्री कृष्ण भी स्वयत्न से एवं अपने मित्रों के द्वारा, इन गोपियों की चेष्टा को तदातदा जान लेते। हाल में इनकी स्नानार्थ यमुना जाने की वार्ता आपके कान में पड गयी। तब आप उनके पीछे पडकर गुप्तरूप से स्वयं यमुनातट जाकर किसी एक पेड के पीछे छिपकर बैठ गये। उतने में गोपियां भी अपनी पद्धति के अनुसार अपने अपने वस्त्र भूषणों को उतारकर तटपर रखकर जल में उतर गयीं और खेलने लगीं। तब श्रीकृष्ण भी धीरे धीरे उन सब वस्त्रभूषणों को उठाकर वहां के एक कुंद वृक्षपर चढ गये और उन सब से अपने को और उस वृक्ष को सजाकर सानंद वृक्षपर ही बैठ गये। कुछ समय के बाद जलक्रीडा को समापित कर, गोपियां अपने वस्त्र देखती तो सब गायब हो गये थे! उनको पता न लगा कि ये किधर गये और कैसे गये। तब उनको ढूंढती वृक्षकी ओर अपनी नजर फिराकर गोपियों ने अपने समस्त वस्त्र व भूषणों से अलंकृत, अतिरमणीय शोभान्वित, मनमोहक-दिव्यमंगलविग्रहवाले श्रीकृष्णके दर्शन किये॥

अपना वस्त्र पहनकर ही ये लोग जल से बाहर आ सकती; परंतु वस्त्र कृष्ण के पास रह गये। स्त्रियां लज्जाधन होती हैं। अतः वस्त्र पहने विना ये बाहर न आ सकती; बहुत देर तक जल में भी न रह सकती, क्यों कि वहां नानाप्रकार के मत्स्य इनके शरीर काटकर बहुत दुःख दे रहे हैं। ऐसे दुविधा में पडकर इन्होंने विचार किया कि किस तरह से हम इस आपद से छूटेंगी। दूसरा उपाय कौन सा होगा? किसी प्रकार से श्री कृष्ण को प्रसन्न बनाकर उनसे वस्त्र पाना, यह एक ही बचने का उपाय था। ऐसा निश्चय करने पर गोपियां श्रीकृष्ण से वस्त्र मांगने लगीं। एक गोपीने माँगा, "हे दयामय! हे धूर्तचेष्टित! हे कृष्ण! कृपाकर हमारे वस्त्र दे दो।" दूसरी ने कहा, "हे प्रभो! तुम इधर कब, कैसे आगये? हमें पानी में उतरकर बहुत समय हो गया। मछलीं हमें खा रहे हैं। हम बहुत दुःख पा रही हैं। ऐसी हमें और भी दुःख मत दो। हे माधव! कृपा से हमारे वस्त्र दे दो।" और एक गोपी ने कहा, "अरे जारचोरशिखामणे! शीघ्र हमारे वस्त्र दे दो; नहीं तो हम अपने बंधुओं से कहकर तुम्हें कठिन दंड दिलावेंगी॥"

इस तरह से जब ये गोपियां, विनय, रोष, भय इत्यादि अपनी नाना भावनाओं को दिखाती हुई वस्त्र मांगने लगीं, तब श्रीकृष्ण ने कहा कि, "अच्छा, तुम्हारे सब वस्त्र वापस मिल जाएंगे। देखो!

एकैक करके तुम जल से बाहर तटपर आकर, हाथ जोडकर अपना अपना वस्त्र लेलो।" परंतु किस तरह से नंगे शरीर से बाहर आकर इनसे अंजलि की जा सकती? अंजलि किये विना वस्त्र मिलनेवाला न था। बहुत सोचकर अंत में उन्होने कहा कि, "हे प्रभो! हम लाज छोडकर ऐसे कैसे कर सकेंगी? तो भी तुम्हारी आज्ञा मानती हुई हम सखियां एक दुसरी के हाथ से मिलाकर अंजलि कर देती हैं। इससे प्रसन्न होकर कृपया हमारे वस्त्र भूषण दे दो।" फिर करुणामूर्ति श्रीकृष्ण ने उनके वस्त्र वापस दे दिये। अब इस दशक से गोदादेवी इस लीला का सुंदर वर्णन करती हैं॥

*

(गाथा.) कोळियलैप्पदन्मुन्नम् कुडैन्दु नीराडुवान्पोन्दोम् *
आळियञ्जेल्वनेळुन्दान् अरवणैमेर्प्पळ्ळिकोण्डाय् *
एळैमैयात्तवुम्पट्टोम् इनियेन्नुम्पोयुगैकु वारोम् *
तोळियुम् नानुमतोळुदोम् तुहिलैप्पणित्तरुळाये॥ १॥

हे शेषशय्यापर शयन करनेवाला! पानी में गोना मारकर स्नान करने के लिए हम मुर्गे के पुकारने से पहले ही इधर आ गयां। अब तो श्रीमान सूर्यदेव भी उग गया। हमने तुम्हारी ओर से बहुत दुःख पाया। हम सुगंध खाकर सत्य कहती हैं कि फिर कभी भी हम हृद नहीं आवेंगी। सखी से मिलकर [यानी दो दो सखियां मिलकर] हम तुमको अंजलि कर देती हैं। कृपासे हमारे वस्त्र दे दो॥ .... (१)

(गाथा.) इदुवेन्पुहुन्ददिङ्गन्दो इप्पोयुगैकेव्वारुवन्दाय् *
मदुविन् तुळाय्मुडिमाले मायने येङ्गळमुदे *
विदियिन्मैयालदुमाट्टोम् वित्तहप्पिळ्ळाय् विरैयेल् *
कुदिकोण्डरविल् नडित्ताय् कुरुन्दिडैकूरै पणियाय्॥ २॥

हे मधु वहनेवाली तुलसीमाला को सिरपर धारण करने वाला! हे अत्याश्चर्यमय दिव्य गुण व चेष्टावाला! हे हमें अमृत का समान प्रतीत होनेवाला! हाय! तुम इधर क्यों कर आगया? कौन से मार्गसे तुम यह जगह पहुंच सका? भाग्य हीन होने के कारण हम तुमसे मिलने न चाहती हैं। हे आश्चर्य-चेष्टित बालक! त्वरा मत करो। हे कालियनाग के फण पर कूदकर नर्तन करनेवाला! कुंद वृक्ष पर रखे हुवे हमारे वस्त्र दे दो॥ [श्रीकृष्ण पेड से नीचे उतरकर इनसे कुछ श्रृंगार चेष्टा करने लगा। अतः गोपियां कहती हैं कि हे बालक! तुम इस तरह से त्वरा मत करो; हमें तुमसे मिलनेकी इच्छा नहीं है; अतः यह चेष्टा छोड कर हमारे वस्त्र दो॥] .... (२)

(गाथा.) एल्ले ईदेन्नविळमै एम्मनैमार् काणिलोट्टार्
पोल्लाङ्गीदेन्नु करुदाय् पूङ्गुरुन्देरियिरुत्ति *
विल्लालिलङ्गैयळित्ताय् नीवेण्डियदेल्लान्तरुवोम् *
पल्लारुङ्गाणामे पोवोम् पट्टैप्पणित्तरुळाये॥ ३॥

हे धनुषसे लंका का विनाश करनेवाले भगवन्! यह क्या तुम्हारी बाललीला हैं? हमारी माताएं अगर इसको देख पायेंगी तो बहुत नाराज हो जाएंगी और हमको अपने घर आने न देंगी। तुम नही जानते हो कि इस तरह से हमको एक दम वस्त्रहीन कर डालना बिलकुल अनुचित है। पुष्पित कुंदवृक्ष पर चढकर बैठ गये हो। तुम हमसे जो जो मांगते हो वह सब दे देंगी। परंतु इस दशा में सब लोग हमको न देख लेवें, इस तरह से दूसरी जगह चली जाएंगी। कृपया हमारे वस्त्र दे दो॥ .... (३)

(गाथा.) परक्कविळिचेङ्गुम्नोक्कि प्पलर् कुडैन्दाडुम् शुनैयिल् *
अरक्कनिल्ला कण्णनीर्हळ् अलमरुहिन्नवा पाराय् *
इरक्कमेलोन्नुमिलादाय् इलङ्गैयळित्तपिराने *
कुरक्करशावदरिन्दोम् कुरुन्दिडैक्कूरैपणियाय्॥ ४॥

हे लंकाध्वंस करनेवाले हमारे स्वामिन्! बहुत लोगोंके स्नान करने के स्थान इस हृद में खडी रहनेवाली हमारी आंखसे, रोकने पर भी न रुकनेवाली अश्रुधारा निकल रही है। आंख खोलकर, चारों ओर फिराते हुवे यह करुणामय दृश्य देखो तो सही। हे सर्वथा करुणाशून्य भगवन्! हमने ठीक जान लिया कि तुम वानरों के स्वामी हो। कुंदवृक्ष पर रखे हुवे हमारे वस्त्र दे दो। [वारंवार वृक्ष से उतरते फिर चढते, एवं एक शाखा से दूसरी शाखा पर कूदते फिरते रहनेवाले श्रीकृष्ण को देखकर गोपियां परिहासपूर्वक कहती है कि "रामावतार में वानरों के नेता होकर, मालुम पडता है कि तुमने उनसे वृक्षारोहण चेष्टा सीख ली।] .... (४)

(गाथा.) कालैक्कदुविडुहिन्न कयलोडुवाळै विरवि *
वेलैप्पिडित्तेन्नैमार्हळोट्टिल् एन्नविळैयाट्टो *
कोलच्चित्ताडै पलवुङ्क्कोण्डु नीयेरियिरादे *
कोलङ्करिय पिराने कुरुन्दिडैक्कूरैपणियाय्॥ ५॥

हे श्याम सुंदर कृष्ण! नाना जात के मीन मिलकर हमारे पैर काट रहे हैं। इस वृत्तांत को अगर हमारे भाईयों सुन लेवें तो हाथ में वेलायुध उठाते आकर तुमको सुदूर भगा देंगे। देखो फिर तुम्हारी खेल का पर्यवसान क्या होगा। ऐसे न होने दो। अतः तुम हमारे सुंदर वस्त्र लेकर वृक्ष पर ही ठहरो मत; परंतु कुंद पर रहनेवाले हमारे वस्त्र दे दो॥ .... (५)

(गाथा.) तडत्तविळ्तामरैप्पोय्है त्ताळ्हळेङ्कालैक्कदुव *
विडत्तेळेरिन्दालेपोल वेदनैयात्तवुम्पट्टोम् *
कुडत्तैयेडुत्तेरविट्टु क्कूत्ताडवल्लवेङ्कोवे *
पडित्तैयेल्लान्दविन्दु एङ्गळ्पट्टैप्पणित्तरुळाये॥ ६॥

हे कुंभनर्तननिपुण कृष्ण ! इस विशाल एवं खिले हुवे कमलों से सुशोभित ह्रद में कांटेवाले कमल के नाळ विष भरित बिछू की तरह हमारे पैर में बहुत दुःख दे रहे हैं। [यह सुनकर श्रीकृष्ण गोपियों के पास आकर कुछ श्रृंगार चेष्टा करने लगे । तब वे कहती हैं।] तुह्मारे इन धूर्तचेष्टितों को छोडकर हमारे वस्त्र दे दो॥ .... (६)

(गाथा.) नीरिले निन्नयर्किन्नोम् नीदियल्लादनशेयुदाय् *
ऊरहम् शालवुम् शेयृत्ताल् ऊळियेल्लामुणर्वाने *
आर्वमुनक्केयुडैयोम् अम्मनैमार् काणिलोट्टार् *
पोरविडायेङ्गळ्पट्टै प्पूङ्गरुन्देरियिरादे ॥ ७ ॥

प्रलय काल में जगद्रक्षण चिंता में जांगरूक हे भगवन् ! बहुत समय से हम जल में खडी होकर दुःख पा रही हैं। तुम तो नीतिविरुद्ध चेष्टा कर रहे हो। (इससे बचकर हम घर जाने की चिंता भी न कर सकेंगी ; क्यों कि) हमारा गाँव (व्रज)और घर, सब, हाय ! बहुत दूर रहते हैं। [इस तरह से बहुत दुख देने पर भी] हम तुम्हारे प्रति प्रेम ही करती हैं। तुम्हारी चेष्टाओं का परवश रहनेवाली हमको अगर हमारी माताएं देख लेतीं, तो न जाने क्या कर देंगी। कृपा से हमारे वस्त्र दे दो। कुंदवृक्ष पर बैठ कर हमें बाधा मत पहुंचाओ॥ .... (७)

(गाथा.) मामिमार्मक्कळेयल्लोम् मत्तुमिङ्गेल्लारुम्पोन्दार् *
तूमलर्क्कण्गळ्वळर तोल्लैयिरात्तुयिल्वाने *
शेममेलन्निदुशाल चिक्कननामिदुशोन्नोम् *
कोमळवायर्कोलुन्दे कुरुन्दिडैकूरै पणियाय् ॥ ८ ॥

हे नित्यजागरूक भगवन् ! (हाल में इस जगह पर रहनेवाली) हम सब तुम्हारी पत्नी होनेवाली ही नहीं; परंतु और भी नानाप्रकार के संबंधवाली भी यहां रहती हैं। अतः हे कोमल गोपालबालक ! हम सुदृढ कह देती हैं कि तुमसे की जानेवाली यह चेष्टा बिलकुल अनुचित है। कुंदवृक्ष पर रखे गये हुवे हमारे वस्त्र दे दो॥ .... (८)

(गाथा.) कञ्जन्वलै वैत्तवन्नु कारिरुळेल्लिर्प्पिळैत्तु *
नेञ्जुदुकम्शेय्यप्पोन्दाय् निन्नविकन्नियरोमै *
अञ्जवुरप्पाळशोदै आणाडविट्टिट्टिरुक्कुम् *
वञ्जहप्पेय्च्चिपालुण्ड मशुमैयिलि कूरैताराय् ॥ ९ ॥

जब कंस ने तुम्हारा वध करने के लिए मायाजाल रच रखा, तब, इस तरह से कुमारी हमको नग्नकर दुखी बनाने के उद्देश्य से ही तुम अवतारकाल की गाढांधकारमय उसी रात्री में कंस का जाल तोडकर व्रज आ गया। तुम्हारी माता यशोदा भी [ऐसी चेष्टा छुडाने के लिए] तुमको डराती नहीं ; उलटा ऐसी धूर्त चेष्टा करने में ही तुमको प्रोत्साह देती तुमको पालती है। हे कपटमय पिशाची पूतना का स्तन्य पीनेवाले ! निर्लज्ज ! हमारे वस्त्र दे दो॥ .... (९)

(गाथा.) कन्नियरोडेङ्गळ्नम्बि करियपिरान्विळैयाट्टै *
पोन्नियल्माडङ्गळ्शूळ्न्द पुदुवैयर्कोन्पट्टन्कोदै *
इन्निशैयाल् शोन्नमालै ईरैन्दुम्वल्लवर्दाम्पोय् *
मन्नियमादवनोडु वैहुन्दम्पुकिरुप्पारे ॥ १० ॥

श्यामसुंदर हमारे प्रभु श्री कृष्ण की, गोप कन्याओं के साथ संपन्न दिव्यलीला का वर्णन करनेवाली, स्वर्णमय महलों से अलंकृत श्रीविल्लिपुत्तूर के स्वामी श्री भट्टनाथस्वामीजी की गोदा से कीर्तित, मधुरगीत इन दस गाथा सीखनेवाले, उचित समय में अर्चिरादि मार्ग से परमपद पहुंचकर, वहां पर नित्य-वास करनेवाले श्रीमन्नारायण का नित्यानुभव करेंगे ॥ [इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया ॥] .... (१०)

—* इस दशक का सार संग्राहक पद्य यह है *—

प्रत्यूषे गोपकन्याः स्वदयितविरहश्रान्तिशान्त्यै स्रवन्त्यां
कालिन्द्यां स्नातुकामा ययुरथ वसनादीनि कूले निधाय ।
सस्नुः, कृष्णस्तदात्वे कथमपि सहसाऽऽगत्य वासांसि हृत्वा
तासां शुश्राव याच्ञागिर इति मधुरं प्राह गोदा तृतीये ॥

तीसरे दशक में गोदादेवी इस अर्थ का मधुर वर्णन करती हैं—अपने प्यारे श्रीकृष्ण से विरहित गोपकन्याएं अपना ताप मिटाने के लिए बडे सबेरे यमुना नदी जाकर, वहां अपने वस्त्र भूषणादि को उतारकर तटपर रखती हुई स्नान करने लगीं । उस समय में श्रीकृष्ण ने भी किसी रीति से उधर आकर उन वस्त्रों का अपहरण कर लिया और गोपियों की प्रार्थनावाणी सुनी ॥

॥ नाच्चियार तिरुमोळि में तीसरा दशक समाप्त हुआ ॥

॥ आण्डाळ् तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ श्रीः ॥

चौथा दशक

॥ तेळ्ळियार्पलर् ॥

(शकुनपरीक्षा)

अवतारिका—विरहिजनों को चित्तशांति का एवं काल बिताने का यह एक मार्ग है—दैव-प्रश्नपरीक्षण । विरहि के मन में हमेशा यही चिंता बनी रहेगी, कि मैं अपने प्रिय से कब मिलूंगी । अतः किसी प्रश्नशास्त्र के वेत्ता को अथवा किसी दैवी शक्ति से आविष्ट पुरुष को पाकर वे उनसे पूछती हैं कि, "मेरे स्वामी कब आवेंगे?" अगर किसी समयपर ऐसा कोई व्यक्ति न मिलें, तो वे स्वयं ही इस प्रश्न

विधान काम में उतरती हैं। तथाहि—जमीन पर उंगुली से अथवा दूसरे किसी साधन से अनेक रेखा लिखी जाती हैं। वाद में इष्टदेवता स्मरण पूर्वक, उन रेखाओं की, दो दो करके गिनती की जाती है। ऐसे करते करते, अंत में अगर दो रेखाएं बच जाती हैं, तो यों समझा जाता है कि, "हमारे स्वामी शीघ्र आ जायंगे, और हम दोनों खूब आनंदित रह जायंगे।" इससे विरुद्ध, अगर एक ही संख्या बच जाय, तो यों माना जाता है कि, "स्वामी अभी न आवेंगे, और मुझे अकेली रहकर दुःख भोगना चाहिए।" इस परीक्षा से अपने मन को कुछ शांत करना विरहियों का स्वभाव है। इसको द्राविड शास्त्र में "कूडलिळैत्तळ्" कहते हैं। श्री कृष्ण से विरहित गोपियां पूर्वकाल में इस खेल में प्रवृत्त हो गयी थीं; श्री गोदादेवी प्रकृत दशक में इस खेल का स्वानुभव पूर्वक अनुकरण करती हैं। श्रीरंगनाथ भगवान, श्रीवनाद्रिनाथ, श्रीवेंकटाचलाधिपति, श्रीकृष्णपुरके स्वामी, कालियदर्प का दमन करनेवाले, कुवलयापीड-नामक मत्तगज के हंता, यमलार्जुन भंगकर्ता, कंसहन्ता, शिशुपाल का सिर काटनेवाले, द्वारकाधीश, वसुदेवतनय, यशोदा पुत्र, श्रीकृष्ण अगर अभी मेरे यहां पधारनेवाले हो तो, हे संघटन देव! उसकी सूचना करो; इस प्रकार से भगवान से सद्यः मिल जाने की गोदादेवी की तीव्र उत्कंठा का प्रदर्शन इस दशक में किया जा रहा है॥ *

(गाथा.) तेळ्ळियार् पलर् कैदोळुन्तेवनार् * वळ्ळल् मालिरुञ्जोलैमणाळनार् *
पळ्ळिकोळ्ळुमिडत्तु अडिकोट्टिड * कोळ्ळुमाहिल् नीकूडिडु कूडले॥ १॥

हे संघटन देव! प्रसन्नचित्त अनेक भक्तों से संसेवित, परमोदार तिरुमालिरुंशोलैमलै (श्रीवनाद्रिक्षेत्र) के स्वामी भगवान् जहां पर (श्रीरंगक्षेत्र में) शयन करते हैं, वहां पर अगर आप मुझे अपने पैर दबाने की सेवा देनेवाले हो, तो तुम मिला दो (अर्थात् सूचना करो।)। [विरही दंपतियों को मिला देने समर्थ, मन्मथ जैसा कोई देव है, इस भावना से गोदादेवी उसको संघटन देव पुकारती हैं। अथवा संघटनप्रश्नका यथार्थ उत्तर देनेवाले देव का यह संबोधन है। तुम मिला दो कहने का यह तात्पर्य है कि भगवान से मेरी मिलाप की तुम सूचना दो॥].... .... (१)

(गाथा.) काट्टिल्वेङ्गडम् कण्णपुरनगर् * वाट्टमिन्रि महिळ्न्दुरै वामनन् *
ओट्टरावन्दु एन्कैप्पत्ति * तन्नोडुङ्कूट्टुमाहिल् नीकूडिडु कूडले॥ २॥

हे संघटन देव! वन में रहनेवाले वेंकटाचल में एवं श्रीकृष्णपुर नामक दिव्यनगर में सानंद नित्य विराजमान वामन भगवान् दौडते शीघ्र आकर मेरा हाथ पकड कर अगर मुझको अपनी छाती से लगा देंगे, तो तुम मिला दो॥ .... (२)

(गाथा.) पूमहन्पुहळ्वानवर् पोत्तुदर्कामहन् * अणिवाणुदल् देवकि-
मामहन् * मिक्कुशीर् वसुदेवर् दम् * कोमहन्वरिल् कूडिडुकूडले॥ ३॥

हे संघटन देव ! कमळ में उत्पन्न ब्रह्मा की एवं नित्यसूरियों की स्तुति पाने लायक पुरषोत्तम सुंदर मुखवाली देवकी जी के सुपुत्र, शुभगुणभूषित वसुदेवजी के श्रेष्ठ पुत्र अगर इधर आनेवाले हो, तो तुम मिला दो ॥ .... (३)

(गाथा.) आयूच्चिमार्हलुम् आयरुमञ्जिड * पूत्तनीळ् कडम्बेरिप्पुहप्पायन्दु *
वायूत्तकाळियन्मेल् नडमाडिय * कूत्तनार् वरिल् कूडिडु कूडले ॥ ४ ॥

हे संघटनदेव ! समस्त गोपी व गोप भयभीत हो जाय, इस तरह से पुष्पभरित ऊंचे कडम्बवृक्ष पर चढकर, वहां से ह्रद में कूदकर भाग्यशाली कालिय नाग के फणों पर नाचनेवाले नटराज अगर इधर आनेवाले हो, तो मिला दो ॥ [अपने सिर से भगवान के पादों का धारण करने से कालिय नाग यहां पर भाग्यवान पुकारा गया है।] .... (४)

(गाथा.) माडमाळिहैशूल् मदुरैप्पदि नाडि * नम्तेरुविन्नडुवे वन्दिट्टु *
ओडैमामदयानै उदैत्तवन् * कूडुमाहिल् नीकूडिडु कूडले ॥ ५ ॥

हे संघटनदेव ! कुवलयापीड नामक अलंकृत मत्तगज का संहार करनेवाले श्री कृष्ण अनेक मंजिलवाले महलों से भरी हुई मधुरापुरी में हमारे घर को ढूंढते हुवे, अगर हमारी वीथी में आनेवाले हो, तो तुम मिलादो ॥ [गोदादेवी की यह आशा है कि, धनुर्याग के व्याज से मधुरापुरी पधारनेवाले श्रीकृष्णभगवान लोगों से "गोदादेवी का गृह किधर है?" पूछते हुवे हमारी वीथी में आ जाय। यद्यपि यह दशक गोदादेवी कृत गोपियों का अनुकरणमात्र है। अतः यह आशा भी गोपियों की होगी। तथापि यह अर्थ बारंबार बताया गया है कि इस अनुकरण में खुद गोदा देवी का स्वानुभव भी मिला हैं। वस्तुतस्तु अनुकरण करने के व्याज से गोदादेवी अपने अनुभव का ही वर्णन करती है। इसपर शंका होगी कि, क्या मथुरा में गोदादेवी का एक मकान भी है। इसका प्रत्युत्तर यह है कि भगवान के निवासस्थान समस्त दिव्यदेशों में भागवतों का भी मकान रहता ही हैं। किंच मथुरा में भक्ताग्रेसर एक मालाकार विराजमान थे न? उनके मकान में मालाकार श्रीविष्णुचित्तस्वामीजी की सुपुत्री गोदादेवी का भी भाग जरूर होगा। अर्थात् मालाकार गृह ही गोदादेवी का मकान है ॥] .... (५)

(गाथा') अत्तवन् मरुदमुरिय नडैकत्तवन् * कञ्जनै वञ्जनैयिल् *
शेत्तवन् * तिहलुम् मदुरैप्पदि कोत्तवन्वरिल् कूडिडु कूडले ॥ ६ ॥

हे संघटनदेव! मेरे सर्वस्व, यमलार्जुन वृक्षों को तोड डालते रिंगनेवाले, कंस का संहार करनेवाले, उज्वल मथुरापुरी के स्वामी श्रीकृष्ण अगर इधर आवेंगे तो मिलादो ॥ .... (६)

(गाथा.) अन्निन्नादनशेय् शिशुपालनुम् * निन्ननीळ्मरुदुम् एरुदुम्पुळ्ळुम् *
वेन्निवेव्विरल् कञ्जनुम्वीळ * मुन्कोन्नवन्वरिल् कूडिडु कूडले ॥ ७ ॥

हे संघटनदेव! पूर्व काल में निन्द्यकर्म ही करनेवाले शिशुपाल को, यमलार्जुन को, सात वृषभों को, बकासुर को एवं जयप्रदवेलायुधधारी कंसको मार डालनेवाले श्रीकृष्ण अगर इधर आवेंगे तो मिला दो ॥ (७)

(गाथा.) आवलन्बुडैयार् तम् मनत्तन्निमेवलन् * त्रिशूल् तुवरापदि
कावलन् * कन्रुमेय्त्तु विळैयाडुम् * कोवलन्वरिल् कूडिडु कूडले ॥ ८ ॥

हे संघटनदेव! भक्ति व अभिनिवेश से युक्त भक्तों का हृदय छोडकर अन्यत्र न रहनेवाले, सुगंधभरित मथुरापुरी के स्वामी एवं बछडा चराकर खेलनेवाले गोपाल कृष्ण अगर इधर आनेवाले हो तो तुम मिला दो ॥

(गाथा.) कोण्डकोल कुरलुरुवाय्चेन्रु * पण्डुमावलिदन् पेरुवेळ्वियिल् *
अण्डमुमुनिलनुम् अडियोन्निनाळ् * कोण्डवन्वरिल् कूडिडु कूडले ॥ ९ ॥

हे संघटनदेव! पूर्वकाल में कौपीन, कटिसूत्र, मौञ्जी, मृगचर्म, पलाशदंड, पवित्र आदियों से विभूषित सुंदर वामन ब्रह्मचारि रूप को धारण करते हुए, महाबली की यज्ञशाला में पधारकर एकैक पग से भूमि व आकाश को नापनेवाले त्रिविक्रम भगवान अगर इधर आनेवाले हो तो तुम मिला दो ॥ .... (९)

(गाथा.) पळहुनान्मरैयिन् पोरुळाय् * मदमोळुहुवारणम् उय्यवळित्त * एम्
अळहनार् अणियाय्चियर् शिन्दैयुळ् * कुळहनार्वरिल् कूडिडु कूडले ॥ १० ॥

हे संघटनदेव! अनादि चतुर्वेदों से प्रतिपाद्य, मद जल बहानेवाले गजेंद्र का दुःख मिटाकर कृपा से उसका संरक्षण करनेवाले, हमारे चित्त को परवश करने समर्थ सौंदर्यवाले, और सुंदरी गोपियों के मन में नित्य निवास करनेवाले श्रीकृष्ण अगर इधर आनेवाले हो, तो तुम मिला दो ॥ .... (१०)

(गाथा.) ऊडलूकूडलुं उणर्दलुं पुणर्दलै * नीडुनिन्र निरैपुहळाय्चियर् *
कूडलै कुळक्कोदै मुन्कूरिय * पाडल्पत्तुमवल्लार्कु इल्लै पावमे ॥ ११ ॥

(भगवान पर) प्रणय से रुष्ट होना, फिर दूतप्रेषणादि मुख से अपनी इच्छा बता देना, फिर आप से मिलना, इन कामों में चिरात् संलग्न, विशेष कीर्तिमती गोपियों से कृत संघटनदेव प्रार्थना प्रकार का वर्णन करनेवाली, सुंदर केशपाशवाली गोदादेवी से विरचित इन दस गाथाओं का कीर्तन करनेवाले भक्तजन भगवान से विश्लेष देनेवाले पाप से मुक्त होंगे। [इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया] ॥

—* इस दशक का सारसंग्राहक पद्य यह है *—

श्लो ॥ श्रीरङ्गे श्रीवनाद्रौ वृषगिरिशिखरे चोल्लसन् देवदेवः
कैङ्कर्यं पादसेवात्मकमिह कृपया स्वीचिकीर्षुर्मदीयम् ।
आगच्छेद्वा कृपालुर्हरिरिति विमृशन्ति स्म गोप्यः पुरा, तत्
तत्तादात्म्येन गोदा कथयति दशकेऽस्मिंश्चतुर्थेऽनुरागात् ॥

पूर्वकाल में गोपियों ने ऐसा विचार किया कि, श्रीरङ्गक्षेत्र में, श्रीवनाद्रिक्षेत्र में एवं श्री वेंकटाद्रि में विराजमान दयालु देवाधिदेव श्री कृष्णभगवान मेरे से पादसेवारूप कैंकर्य लेने के लिए क्या इधर पधारेंगे। चौथे दशक में गोदादेवी उन गोपियों की भावना को अपनाकर उस वृत्तांत का वर्णन करती हैं॥

॥ नाच्चियार् तिरुमोऴि में चौथा दशक समाप्त हुआ ॥

॥ आण्डाळ् तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ श्रीः ॥

पांचवां दशक

॥ मन्नुपेरुम्पुहऴ् ॥

(कोकिलप्रार्थना)

अवतारिका—यह दशक कोकिल पक्षि से गोदादेवीकृत प्रार्थनारूप है। गोदादेवी के उद्यान में कोयल, मोर, आदि अनेक पक्षि भी थे, जिनको आप भगवान के नाम गुण आदि सिखाकर पालती थी। उनमें से सुंदर रूपवाले, मधुरवाक् एक कोकिलशिशु का संबोधन कर उससे आप कहती हैं—"तुम ऐसा मधुरशब्द करो, जिससे श्री वेंकटाद्रि के स्वामी, श्रीरामचंद्र, गरुडध्वज, लोकों को नापनेवाले, श्रीविल्लिपुत्तूर् के नाथ, शंखचक्रधारी, क्षीरसागर में शयन करनेवाले, शार्ङ्गचापधारी, मेरे नाथ भगवान् श्रीमन्नारायण शीघ्र इधर आ जावें। ऐसे करने पर मैं तुम्हारे विषय में बहुत कृतज्ञ रहूंगी; और मेरे से पालित शुक शिशु को तुम्हारा दोस्त बनावूंगी। अगर तुम मेरी प्रार्थना न मानोगे, तो तुमको इस उद्यान से बाहर निकाल दूंगी। और तुम्हारे बुलाने पर अगर भगवान इधर पधारेंगे तो, उनके प्रति मैं जो करूंगी [अर्थात् प्रणयरोष से उनको जो दंड दूंगी] उसको देखने का भी भाग्य तुम्हें मिल जाएगा।" इत्यादि॥

यहां पर अवश्य कर्तव्य एक विचार है। गोदादेवी ठीक जानती ही हैं कि कोकिल शिशु भगवान से वार्तालाप नहीं कर सकेगा; फिर उससे आपको बुलाने की यह मांग (अथवा आज्ञा) क्यों कर की जाती है? यद्यपि कोई कह सकता है कि अत्यंत विरहदुःख से अपना विवेक खोकर गोदादेवी यह काम करती हैं। तथापि दिव्यप्रबंधों में ऐसे दूतप्रेषण अनेकस्थलों में मिलते हैं, जिनका ठीक अध्ययन कर हमारे पूर्वाचार्यों ने यह निश्चय किया है कि सर्वत्र यही समाधान न लग सकता है। अतः भगवान के पास जाकर, आप को संदेश पहुंचाने समर्थ ज्ञानी लोग ही, कतिपय प्रकारों से पक्षी के सदृश होने से पक्षि कहलाते हैं। महर्षियों का वचन है कि, "उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः। तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते पुरुषोत्तमः॥" इसका तात्पर्य है—जैसे दो पंखों से पक्षी आकाश में उडते हैं, इस तरह से ज्ञान व तदुचित अनुष्ठान इन दोनों की सहायता से ही मानव संसार का पार कर भगवान को प्राप्त कर सकता है। इस पद्य का अनुसंधान करने पर हम सहज में ही जान सकते हैं कि पक्षीशब्द से आलवार, ज्ञानानुष्ठान संपन्न किसी महात्मा का ही संबोधन कर रहे हैं। "आचार्य हृदय" नामक ग्रंथ में विवेचन पूर्वक यह अर्थ

स्पष्ट बताया गया है कि, आलवार, अपने आचार्य, गुरुभाई, पुत्र, अथवा शिष्य को ही दूत बनाते हैं। उस उस प्रकरण में किये जानेवाले दूतके वर्णन से यह विशेष समझा जा सकता है। प्रकृत दशक में प्रायः शिष्यों का ही संबोधन किया जाता है। उसमें भी, तीसरी गाथा में "हे प्रेयसी के साथ रहनेवाला कोकिल!" इस संबोधन से यह अर्थ सूचित किया जाता है कि प्रकृत दूत गृहस्थ है। दसवी गाथा में यों कहने से, कि, "अगर तुम भगवान को न बुलावोगे, तो मैं तुमको इस उद्यान से बाहर निकाल दूंगी," यह अर्थ प्रकाशित होता है कि आचार्य से दिये जानेवाले दंड को भी जो सानंद स्वीकार करेगा, ऐसे शिष्यलक्षणपूर्ण महात्मा ही यहां विवक्षित है। ऐसे अनेक अर्थ आचार्यमुख से ज्ञातव्य है। तिरुप्पावैं में "उन्दुमदकळित्तन्" इत्यादि अठारहवी गाथा की टीका में कोकिलके विशेषार्थ बताये गये हैं। उनको भी वांच लेना चाहिए॥

*

(गाथा.) मन्नुपेरुम्बुहळ्मादवन् मामणिवण्णन्मणिमुडिमैन्दन्
तन्नै * उहन्दुकारणमाह एन्शङ्गिळकुम्बवळक्कुण्डे *
पुन्नैकुरुक्कत्तिनाळल्शेरुन्दि प्पोतुम्बिनिल्वाळङ्कुयिले *
पन्नियेप्पोदुमिरुन्दु विरैन्दु एन्पवळवायन्वरक्कूवाय्॥ १॥

पुन्नाग-माधवी-प्रियङ्गु-सुरपुन्नागादि वृक्षभरित वन में रहनेवाला हे कोकिल! नित्यनिस्सीम यशवाले, लक्ष्मीनाथ, नीलमणिसमान वर्णवाले, नवरत्नखचित किरीटधारी, धीर भगवान के प्रति अनुराग करने मात्र से ही, मेरे हाथ से चूडियां निकलकर गिर गयीं; क्या ऐसा भी होना चाहिए? प्रवाल के समान होठवाले मेरे नाथ इधर, मेरे पास, आ जावें, इस तरह से तुम दिन रात उनके नामों का ही रटन करते, शीघ्र उनको बुलालो॥ [भगवान पर सीमातीत प्रेम करने से विरह के समय में गोदादेवी का विग्रह बहुत शिथिल हो गया, और चूडियां हाथ से निकल गयीं। आप पूछती हैं कि, क्या अपने ऊपर प्रेम करने वालों को भगवान यही इनाम देते हैं; यह क्या उचित है?"] .... (१)

(गाथा.) वेळ्ळैविळिशङ्गिडङ्गैयिर्कोण्ड विमलनेनकुरुकाट्टान् *
उळ्ळम्पुहुन्देन्नै नैवित्तु नाळुमुयिर्प्पेय्दु कूत्ताट्टुकाणुम् *
कळ्ळविळ्शेण्बहप्पूमलर्कोदि कळित्तिशैपाडुङ्कुयिले *
मेल्लविरुन्दुमिळत्ति मिळत्तादु एन्वेङ्गडवन् वरक्कूवाय्॥ २॥

मधु बहनेवाले चंपक पुष्प का सार लेकर आनंद से गान (चूं चूं) करनेवाला हे कोकिल! शुद्धस्वभाववाले एवं अपने वाम भुज में शब्दायमान शंख का धारण करनेवाले परमपवित्र भगवान् मुझे अपने दर्शन नहीं देने चाहते हैं; उलटा, मेरे हृदय में घुसकर, मन को बहुत शिथिल बनाकर, निकल जानेवाले प्राणों को जबरदस्ती रोककर, मेरा दुःख देखकर स्वयं संतोष पा रहे हैं। तुम भी मेरे पास रहते हुवे अपने अव्यक्तमधुर स्वर से मेरा दुःख मत बढाओ; किंतु मेरे लिए श्री वेंकटाचल में विराजनेवाले

भगवान को इधर बुलाओ ॥ [इस गाथा के पूर्वार्ध में गोदादेवी यों कहती हैं कि भगवान मुझे अत्यधिक विरहदुःख देकर, उससे चडपडाती हुई मुझको देखकर स्वयं इतने बहुत खुश हो रहे हैं कि मानो कोई बडी खेल देखते होंगे। अत एव आप मुझे अपने मनोहर दर्शन भी नहीं देते हैं, और मरने भी न देते हैं। अर्थात् जब कभी इस व्यथा से मुझे मर जाने की अवस्था आ पहुंच जाय, तो आप झट कुछ न कुछ उपाय कर उस दुःख को कम कर देते हैं। परंतु इसका फल क्या है? बस, इतना ही है कि यही विरहदुःख आगे भी चलता रहेगा। अहो! मुझपर भगवान की निर्दयता!] .... (२)

(गाथा.) मादलितेर्मुन्बुकोल्कोळ्ळु मायनिरावणन्मेल्ट् * शरमारि
तायूतलैयत्तुचीळ चोड्डुत्ततलैवन्वरवेङ्गुङ्काणेन् *
पोदलर्कविल्लपुदुमणमूनार प्पोरिवण्डिन् कामरङ्केट्टु * उन्
कादलियोडुडन्वाळ्कुयिले एन्करुमाणिकम् वरकूवाय् ॥ ३ ॥

तभी खिलनेवाले श्रेष्ठ पुष्पों की नई सुगंध से व्याप्त उपवन में सुंदर भ्रमर का मधुर गीत सुनते अपनी प्रेयसी के साथ विहार करनेवाला हे कोकिल! पूर्वकाल में, जब कि मातलि ने चाबूक लेकर (रावण रथ के) सामने अपना रथ खडा कर दिया, तब मायावी रावण के प्रति शरवर्ष वरसाते हुवे, उनके सिर को वारंवार काट कर जमीन पर गिरा देनेवाले मेरे स्वामी का आगमन कहीं देखा नहीं जाता है। अतः नीळ रत्न के सदृश दिव्य मंगलविग्रहवाले मेरे नाथको इधर बुलाते हुवे अवाज करो ॥ .... (३)

(गाथा.) एन्बुरुहियिनवेल्नेडुङ्कण्गळ् इमैपोरुन्दा पलनाळुम् *
तुन्बकडल् पुकुवैहुन्दनेन्बदोर् तोणिपेरादुळल्हिन्नेन् *
अन्बुडैयारैप्पिरिवुरुनोयदु नीयुमरिदिकुयिले *
पोन्बुरैमेनिकरुळकोडियुडै प्पुणियनैवरकूवाय् ॥ ४ ॥

हे कोकिल! मेरे शरीर की हड्डियां पिघल गयीं; वेलायुध के समान विशाल आंखें तो बहुत काल से ही निद्रा छूट जाने से पलक मारती नहीं। इस तरह से विश्लेषदुःख नामक इस महार्णव में डूबती हुई मैं वैकुंठ नामक नाव के अलाभ से उस समुद्र में ही गोता मारती उठती भटकती खिन्न रही हूं। तुम भी ठीक जानते ही हो कि अपने प्रिय व्यक्ति का विरह मानव को कितना असह्य दुःख देता। अतः सोने के समान दिव्य सुंदर विग्रहवाले, गरुडध्वज, साक्षात् पुण्यस्वरूपी भगवान को इधर बुला लो॥ (४)

(गाथा.) मेन्नडैयन्नम्परन्दु विळैयाडुम् विल्लिपुत्तूरुरैवान्दन् *
पोन्नडिकाण्बदोराशैयिनाल् एन्पोरुकयर्कण्णिणैतुञ्जा *
इन्नडिशिलोडु पालमुदूट्टि एडुत्तवेन्कोलकिळियै *
उन्नोडुतोळमैकोळ्ळुवन्कुयिले उलहळन्दान्वरकूवाय् ॥ ५ ॥

जहांपर सुंदर गतिवाले हंसपक्षी सर्वत्र खेल रहे हैं, ऐसे श्रीविल्लिपुत्तूर दिव्यक्षेत्र में विराजमान भगवान के स्वर्ण समान मनोहर श्रीपादों के दर्शन करने की आशा से, परस्पर स्पर्धा करनेवाले मछलियों के सदृश मेरे दोनों नेत्र नींद नहीं ले रहे हैं। हे कोकिल! दूध से मिला हुआ मधुर अन्न खिलाकर पोषित मेरे सुंदर तोते को तुम्हारा मित्र बनाऊंगी; अगर तुम लोकोंको नापनेवाले त्रिविक्रम भगवान को इधर बुलाओगे॥ [इस गाथा में श्रीविल्लिपुत्तूरदिव्यनगर संकीर्तित है; और उसमें हंसोंके विहार करने की बात की जा रही है। वास्तव में गोदादेवी, अपने पिता श्री विष्णुचित्त स्वामीजी को ही यहां पर हंस कह रही हैं। पानी से दूध को अलग करने में हंसका सामर्थ्य प्रसिद्ध है। श्री स्वामीजी भी युक्तायुक्त विवेचन कुशल हैं। हंस ज्ञानप्रदाता है; अर्थात् एक समय में भगवान ने हंसावतार लेकर वेदों का उपदेश दिया। श्री स्वामीजी ने भी पांड्यराज सभा में परतत्व का निर्णय करते हुवे "गुरुमुखमनधीत्य प्राह वेदानशेषान्" इत्युक्त प्रकार से वेदार्थों का उपदेश दिया। हंस की गतिचातुरी की तरह श्री स्वामीजी की अनुष्ठानचातुरी बडी आकर्षक होती है। ऐसे महात्मा के संचार से वह दिव्यनगरी बहुत शोभायमान है॥] .... (५)

(गाथा.) एत्तिशैयुममरर् पणिन्देत्तुम् इरुडीकेशन्वलिशेय्य *
मुत्तन्नवेण्मुरुवर्चेय्यवायुम् *मुलैयुमळहलिन्देन्नान् *
कोत्तलर्काविल्मणित्तडम् कण्बडैकोळ्ळुमिळङ्कुयिले * एन्
तत्तुवनै वरक्कूहित्तियाहिल् तलैयल्लाल् कैम्मारिलेने॥ ६॥

खिले हुवे पुष्पगुच्छों से सुंदर उद्यानवन के मनोहर एक स्थल में निद्रा करनेवाला हे कोकिल शिशो! चारों ओर रहकर नमनेवाले देवों से संस्तूयमान हृषीकेश [समस्त प्राणियों के इंद्रियों का अपनी ओर खेंचनेवाले भगवान] मुझे अपने दर्शन न देते हुवे त्रास दे रहे हैं। इस कारण से मैं इतनी कृश बन गयी हूं कि मोती के समान मेरा शुभ्र मंदहास, लाल होठ, और स्तन, ये सभी अपना सौंदर्य खो कर फीके पड गये। हे कोकिल! मेरे प्राणधारण करने का मूलकारण उन भगवान को अगर तुम इधर बुला सकते हो, तो इस जन्मभर अपने सिर को तुम्हारे पैर के नीचे रखकर कृतज्ञताप्रकाशन करने के इस काम को छोड कर, मैं दूसरा कौन सा प्रत्युपकार कर सकूंगी? [सारे अवयव फीके और कृश हो जाय, इतना बडा विरह दुःख होने पर भी गोदादेवी इस बल से मृत्यु का वश न हो जाती हैं कि, भगवान आपके प्राणों को संभाल रहे हैं। अतः उनको "तत्व" कहने में आया है॥] .... (६)

(गाथा.) पोङ्गियपार्कडर्प्पळ्ळिकोळ्वानै प्पुणर्वदोराशैयिनाल् * एन्
कोङ्गैकिळर्न्दु कुमैत्तुक्कुदुहलित्तु आवियैयाकुलञ्जेय्युम् *
अङ्गुयिले * उनक्केन्नमरैन्दुरैवु आळियुञ्जङ्गुमोण्तण्डुम् *
तङ्गियकैयवनै वरक्कूविल्नी शालत्तरुमम्पेरुदि॥ ७॥

हे सुंदर कोकिल! लहरों से समावृत क्षीरसागर में शयन करनेवाले भगवान से आलिंगित होने की आशा से मेरे स्तन बडे उत्साह से बढकर (फिर उस संश्लेष के अलाभ से हताश होकर) मेरी आत्मा

को बहुत व्याकुलित कर रहे हैं। (यह बात सुनकर वह कोकिल शायद यों मानता हुवा कि, "यह गोदा अब मुझको क्षीर समुद्र जाने की आज्ञा करेगी; मैं तो उतनी दूर न जा सकता हूं", अपने को किसी झाड के पत्तों में छिपाकर बैठ गया। अत: गोदादेवी उससे कहती हैं)—मेरी नजर में न आते हुवे छिपकर रहने से तुमारा कौन सा लाभ होगा? अपने हाथ में शंख चक्र गदाओं का धारण करनेवाले भगवान को अगर तुम बुलावोगे, तो तुझे बडा धर्म होगा। [अर्थात् तुम बाहर कहीं जाओ मत; परंतु इधर बैठे बैठे ही भगवान को बुलाओ। इतने मात्र से तुमको बडा पुण्य मिलेगा ॥] .... (७)

(गाथा.) शार्ङ्गम्वळैयवलिकुम् तडकैचदुरन्पोरुत्तमुडैयन् *
नाङ्गळेम्मिलिरुन्दोट्टियकच्चङ्गम् नानुमवनुमरिदुम् *
तेङ्गनिमाम्बोळिर्चैन्दळिर्कोदुम् शिरुक्कुयिले * तिरुमालै
आङ्गुविरैन्दोल्लैकूहित्तियाहिल् अवनैनान् शेय्वन्काणे ॥ ८ ॥

हे मधुरफलयुक्त आम्रोपवन में लालपल्लव खाने तत्पर कोकिल! अपने धनुष को खेंच कर नमाने पर्याप्त शक्तिमान बडे भुजों से सुशोभित, एवं सकलविध चातुर्यपूर्ण भगवान् प्रणय करने में भी बडे समर्थ हैं। ऐसे आप और मैं जब मिल रहे थे, उस समय के हमारे बीचके संकेतों को हम दोनों ही जानते हैं, नतु दूसरा कोई। अब बहुत दूर रहनेवाले उन लक्ष्मीपति भगवान को, अगर तुम अति शीघ्र ही इधर बुलावोगे, तो उनके विषय में मैं जो करूंगी, उसको तुम देख पाओगे ॥ [यह भाव है—हे कोकिल! भगवान बडे वीर हैं और कामशास्त्र में भी निपुण हैं। ऐसे आप कुछ समय पहले मेरेसे मिलने आये थे। तब हम दोनों के बीच में यह संकेत हुआ था कि अब हम एक दूसरे को छोडकर विरहव्यथा न भोगेंगे। परंतु इसको भूलकर अब भगवान दूर रहते हुवे मुझे बहुत दु:ख दे रहे हैं। अत: अगर तुम आपको शीघ्र यहां बुलाओगे, तो मैं आपका उचित दंड दूंगी। ऐसा विलक्षण दृश्य देखने का सुयोग भी तुझे मिलेगा; यह तुम्हारे से कृत उपकार का बक्षीस होगा। गोदादेवी से भगवान को दिया जानेवाला दंड, आपको मारना कूटना इत्यादि नहीं; परंतु प्रणयरोष दिखाती हुई आपसे पराङ्मुख होना, वार्ता न करना इत्यादि ही है ॥]

(गाथा.) पैङ्गिळिवण्णन्शिरीदरनेन्बदोर् पाशत्तहप्पट्टिरुन्देन् *
पोङ्गोळिवण्डिरैक्कुम्पोलिल्वाळ्कुयिले कुरिकोण्डिदुनीकेळ् *
शङ्गोडुशक्करत्तान्वरकूवुदल् पोन्वळैकोण्डुतरुदल् *
इङ्गुळ्ळकाविनिल्वाळकरुदिल् इरण्डत्तोन्निल् तिण्णम्वेण्डुम् ॥ ९ ॥

हे मनोहर प्रभायुत मधुपान मत्त भ्रमरों के आनंदगीत से व्याप्त उपवन में सानंद विहार करने वाला कोकिल! सावधानी से मेरी यह बात सुनो। सुंदर शुकशिशु के समान मनोहर वर्णवाले श्रीधर नामक एक जाल में मैं फँस गयी हूं। अत: शंखचक्रधारी भगवान को यहां पर बुलावो; अथवा मेरे हाथ से निकल गयी हुई चूडियों को लाकर दो। अगर तुम इस उद्यानवन में रहना चाहते हो, तो तुम्हें, इन

दोनों में एक काम करना ही चाहिए। (अन्यथा मैं तुमको यहां से बाहर निकाल दूंगी।) [इस दशक की पहली गाथा में बताया गया कि विरहव्यथा से गोदादेवी बहुत कृश हो गयीं और आपके हाथ से चूडियां निकल गयीं। अतः अब आप कोकिल से कहती हैं कि तुम उन चूडियों को लाकर दो, अथवा भगवान को इधर बुलाओ। परंतु चूडियां तभी मिल सकती है जब कि फिर भगवान से मिलाप हो और गोदादेवी का दिव्यविग्रह उस आनंद से हृष्टपुष्ट हो जाय। अतः भगवान को बुलाना और चूडियों को देना, ये दोनों अलग अलग दो काम नहीं है; परंतु एक ही है। अतः इसको दो काम बताना, बोलने का एक चमत्कार मात्र है। तथाच यह तात्पर्य है कि, हे कोकिल! तुम भगवान को यहांपर बुला लो, जिससे मैं आपके दर्शन पाकर संतुष्ट हो जाऊंगी॥] .... (९)

(गाथा.) अन्नुलहमळन्दानैयुहन्दु अडिमैक्कणवन्वलिशेय्य *
तेन्नलुन्तिङ्गळुमूडरुत्तु एन्नैनलियुमुरैमैयरियेन् *
एन्नुमिक्काविलिरुन्दिरुन्दु एन्नैत्तदैत्तादे नीयुङ्कयिले *
इन्नुनारायणनैवरक्कूवायेल् इङ्गुत्तुनिन्नुन्तुरप्पन् ॥ १० ॥

पूर्वकाल में तीनों लोकों को नापनेवाले भगवान की सेवा करने को मैं ने चाहा; परंतु आप मुझको सता रहे हैं। (जिससे मैं बहुत दुःख पा रही हूं; इसी समय में) यह दक्षिणपवन एवं शीत किरण चंद्र, ये दोनों मेरा शरीर चीरकर, अंदर घुसकर जो दुःख दे रहे हैं, इसका मतलब मेरी समझ में नहीं आता है। हे कोकिल! तुम भी हमेशा इस उद्यानवन में रहते हुवे (मेरी विरहव्यथा के इसी समय में) मुझे और दुःख मत दिया करो। अब अगर तुम नारायण को इधर नहीं बुलवोगे, तो मैं तुमको इस उद्यान से बाहर निकाल दूंगी॥ .... (१०)

(गाथा.) विण्णुरनीण्डडितावियमैन्दनै वेर्कण्मडन्दै विरुम्बि *
कण्णुरवेन्कडल्वण्णनै क्कूवुकरुङ्गुयिलेयेन्नमाात्तम् *
पण्णुरुनान्मरैयोर् पुदुवैमन्नन् पट्टर्पिरान्कोदैशोन्न *
नण्णुरुवाचकमालैवल्लार् नमोनारायणायवेन्बारे ॥ ११ ॥

अपने पाद को लंबाकर उससे लोकोंको नापनेवाले त्रिविक्रम भगवान पर प्रेम करनेवाली, वेलायुध के समान, विशाल व सुंदर नेत्रवाली, स्त्रियों के उचित गुणवाली "हे कृष्ण कोकिल! मैं सागरवर्ण मेरे नाथ के दर्शन करूं, इस तरहसे आपको इधर बुलावो" कहनेवाली, स्वरप्रधान चार वेदों का अध्ययन करनेवाले श्री वैष्णवों से भरित, श्री विल्लिपुत्तूर के स्वामी श्री विष्णुचित्त सूरी की श्रीगोदादेवी से अनुगृहीत अतिमधुर इन गाथाओं का कीर्तन करनेवाले श्रीमदष्टाक्षर महामंत्र के अनुसंधान का फल पाएंगे। (अर्थात् स्वरूपानुरूप भगवत्कैंकर्य पावेंगे॥) [इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया॥] (११)

—* इस दशक का सारसंग्राहक पद्य यह है *—

उद्याने वर्ध्यमानं ललितमधुरवाग्वैखरीकं मनोज्ञं
पुन्नागादिद्रुमस्थं परभृतशिशुमुद्दिश्य भोः कोकिलाग्र्यं।
मन्नाथं जारचोरं मणिनिभवपुषं माधवं कूजितैस्स्वैः
अत्र द्राक् प्रापयेथा इति कथितवती पञ्चमे दिव्यगोदा ॥ ५ ॥

इस पांचवे दशक में गोदादेवी अपने उद्यान वन में पालित, ललित मधुर वचनवाले, पुंनागादि वृक्षपर रहनेवाले सुंदर कोकिल से यों कहती हैं कि, "हे कोकिलश्रेष्ठ ! जारचोर शिखामणि, मणिसदृश, लक्ष्मीपति मेरे नाथ को तुम शीघ्र यहां पर बुला लो ॥ ". .... (५)

॥ नाच्चियार् तिरुमोऴि में पांचवां दशक समाप्त हुआ ॥

॥ आण्डाळ् तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ श्रीः ॥

छठां दशक

॥ वारणमायिरम् ॥

(स्वप्न विवाहवर्णन)

अवतारिका—पूर्व दशक में कोकिल प्रार्थना के बहाने से गोदादेवी से प्रदर्शित सीमातीत आशा को कथंचित् सफल बनाने की इच्छा से दीनबंधु भगवान श्री कृष्णने उनके स्वप्न में अतिविलक्षण एवं मनोहर अनुभव देकर उनका कुछ आश्वासन दिया। अर्थात् गोदादेवी के स्वप्न में श्री कृष्णकिशोर से आपका सांग सविधि विवाह संपन्न हो गया। प्रातःकाल होनेपर आप जागकर अपनी सखी से सुमधुरशब्दों से इस वृत्तांत का वर्णन करती हैं, इस दशक में। तथाहि—असंख्य मत्तगजों से परिवृत भगवान श्रीमन्नारायण श्री कृष्ण मेरे सामने आ रहे हैं; तत्र तत्र सोने के पूर्णकुंभ स्थापित किये गये हैं; और सुपारी के फल, केले के स्तंभ, तोरण, मालिका इत्यादि नानाविध अलंकार सर्वत्र खूब किये गये हैं; यह घोषणा की गयी है कि कल ही विवाह महोत्सव मनाया जाएगा; समस्तविध अलंकारों से सजाये हुवे विवाहमंडप के पास गोविंद आ रहे हैं; वरपक्षवाले इंद्रादि समस्त देवतागण आकर विवाहांग तत्तत्कार्य करने निरत रहे हैं; ननद दुर्गादेवी मुझे मंत्र से पवित्र दिव्यदीक्षावस्त्र पहना कर, दिव्यपुष्प से भी सजाती हैं; शिष्टाग्रेसर और वैदिकोत्तम ब्राह्मणश्रेष्ठ नाना दिशाओं से पुण्यतीर्थ लाकर मंगलाशासन पूर्वक प्रोक्षण कर रहे हैं; श्री कृष्ण को एवं मुझको रक्षासूत्र (यानी कंकण) बांधा गया है; अनेक सुवासिनी तरुणियां मंगलदीप एवं सुवर्णकलश उठाकर आती हैं; मथुरापुराधीश श्री कृष्ण भगवान् पादुका पहन कर मनोहर ध्वनि निकालते पधार रहे हैं; शंख मुरजादि नानाप्रकार के वाद्य बजाये जा रहे हैं; तब भगवान ने

मेरा पाणिग्रहण किया ; वैदिक लोग पुरुषसूक्तादि का पाठ कर रहे थे ; तब भगवान ने विधिपूर्वक अग्नि कार्य किया, फिर मेरा हाथ पकडकर अग्नि की परिक्रमा की ; अश्मारोहण कार्य (मंत्रपूर्वक पत्थर पर चढना) भी यथाविधि संपन्न हुआ ; लाजहोम भी ठीक किया गया ; अलंकृत महागज के सिरपर दंपतियों को विठाकर नानाविध मंगलालंकारों से सजायी हुई वीथियों में शोभायात्रा निकाली गयी ; बादमें मंगलस्नान महोत्सव भी मनाया गया । इस तरह से गोदादेवी से स्वप्न में अतिविशदतया अनुभूत अपने विवाह महोत्सव का अति मनोहर वर्णन किया जाता है । मंगलमय प्रबंध होने से लौकिक विवाह समय में भी इस दशक का पाठ करने की रूढि है ॥

(गाथा.) वारणमायिरम् शूळवलञ्जेय्दु * नारणनंम्बि नडक्किन्नानेन्नेदिर् *
पूरणपोर्कुडम् वैचुप्पुरमेङ्गुम् * तोरणमूनाट्ट कनाकण्डेन् तोळी नान् ॥ १ ॥

हे मेरी सखि ! यों निश्चयकर कि, सकलसद्गुण परिपूर्ण, श्रीमन्नारायण हजारों हाथियों से परिवृत होकर, प्रदक्षिण मार्ग से पधार रहे हैं, हमारे नगर में सर्वत्र सामने सुवर्णमय पूर्णकुंभ रख कर तोरण भी बांधे गये हैं । मैं ने ऐसा स्वप्न देखा ॥ .... (१)

(गाथा.) नाळैवदुवै मणमेन्नु नाळिट्टु * पाळैकमुहु परिशुडैप्पन्दर्कीळ् *
कोळरिमादवन् कोविन्दनेन्बानोर् * काळैपुहुद कनाकण्डेन् तोळी नान् ॥ २ ॥

"गोविंद के साथ गोदादेवी का कल विवाह महोत्सव मना जाएगा," यों निश्चय होने पर फल सहित सुपारी के पेडों से सजाये हुवे विवाह मंडप में, नरसिंह, माधव, गोविंद इत्यादि शुभनामवाले एक विलक्षण युवक प्रविष्ट हो गये । हे सखि ! मैं ने ऐसा स्वप्न देखा ॥ .... (२)

(गाथा.) इन्दिरनुळ्ळिट्ट तेवर्कुळामेल्लाम् * वन्दिरुन्दॆन्नै महळ्पेशिमन्दिरित्तु *
मन्दिरक्कोडियुडुत्ति मणमालै * अन्दरिशूट्ट कनाकण्डेन् तोळीनान् ॥ ३ ॥

इंद्र प्रभृति समस्त देवगणने इधर आकर, मुझको कृष्णपत्नी निश्चयकर, उसके बाद विवाह के विषय में कर्तव्य नानाप्रकार के प्रबंधों के बारे में भी चर्चाकर, निर्णय किया ; फिर (ननद) दुर्गादेवी ने भी मुझे मंत्रवस्त्र [यानी विवाहसमय में पहनने का मंगलमय दीक्षावस्त्र] पहनाकर सुगंधपुष्पमाला से भी सजा दिया । हे सखि ! मैं ने ऐसा स्वप्न देखा ॥ .... (३)

(गाथा.) नात्तिशैत्तीर्त्तम् कोणर्न्दुननिनल्हि * पार्प्पनचिट्टर्हळ् पल्लारेडुत्तेत्ति *
पूप्पुनैकण्णि प्पुनिदनोडेन्दन्नै * काप्पुनाणकट्ट कनाकण्डेन् तोळीनान् ॥ ४ ॥

शिष्टाग्रेसर अनेक ब्राह्मणों ने चारों दिशाओं से पुण्यतीर्थ लाकर, उनसे प्रोक्षण कर, ऊंचे स्वर से स्वस्तिवाचन मंत्रों का पाठ करते हुवे, नाना पुष्पमाला से अलंकृत, परमपावन श्री कृष्ण के साथ मुझको [मिलाते हुवे] रक्षाबंधन किया । हे सखि ! स्वप्न में मैंने ऐसा देखा ॥ .... (४)

(गाथा.) कदिरोळिदीपम् कलशमुडनेन्दि * शदिरिळमङ्गैयर् दाम् वन्देदिर्कोळ्ळ *
मदुरैयार्मन्नन् अडिनिलैतोट्टेङ्गम् * अदिरप्पुहुद कनाकण्डेन्तोळीनान् ॥ ५ ॥

सुंदर बालयुवतियां सूर्य के समान जाज्वल्यमान दीपों को, एवं सोने के घडों को हाथ में धरकर सामने आ रही हैं; तब मधुराधिनाथ भगवान पादुका पहन कर गंभीर ध्वनि निकालते हुवे पधार रहे हैं। हे सखि! स्वप्न में मैंने ऐसा देखा ॥ .... (५)

(गाथा.) मत्तळङ्गोट्ट वरिशङ्गम्निन्नूद * मुत्तुडैत्तामम् निरैताळ्न्दपन्दर्कीळ् *
मैत्तुनन्नम्बि मदुशूदन्वन्देन्नै * कैत्तलम्पत्त कनाकण्डेन् तोळीनान् ॥ ६ ॥

नगाडा बजाये रहे हैं; और सुंदररेखालंकृत शंख भी बजाये रहे हैं; मेरे स्वामी, मधुसूदन, भगवान, श्रीकृष्णने लटकनेवाली मोती की मालाओं से अलंकृत वितान की छाया में आकर मेरा पाणिग्रहण किया। हे सखि! मैं ने ऐसा स्वप्न देखा ॥ .... (६)

(गाथा.) वायुनल्लार् नल्लमरैयोदिमन्दिरत्ताल् * पाशिलैनाणल्पडुत्तु प्परिदिवैत्तु *
कायुशिनमाकळिरन्नान् एन्कैपत्ति * तीवलञ्जेय्य कनाकण्डेन् तोळीनान् ॥ ७ ॥

ठीक वेदाध्ययन करनेवाले वैदिक जन श्रेष्ठ व मनोहर वेद पाठ कर रहे हैं; उस उस प्रकरण के उचित वेदमंत्रों का उच्चारण करते हुवे, हरे कुशों से(अग्नि की) चारों ओर परिस्तरण रचकर समिधों से आहुती देकर, मत्तगजसदृश भगवान ने मेरा हाथ पकडकर अग्नी की परिक्रमा की। हे सखि! मैने ऐसा स्वप्न देखा ॥ .... (७)

(गाथा.) इम्मैक्कुम् एळेळ्पिरविक्कुम्पत्तावान् * नम्मैयुडैयवन् नारायणन्नम्बि *
शेम्मैयुडैय तिरुक्कैयाल्ताळ्पत्ति * अम्मिमिदिक्क कनाकण्डेन् तोळीनान् ॥ ८ ॥

हे सखि! न केवल इस जन्म में ही, अपि तु आगे आनेवाले अनेक जन्मों में भी हमारे शरण्य होनेवाले, हमारे स्वामी, सकलकल्याणगुण परिपूर्ण श्रीमन्नारायण श्रीकृष्ण, अतिसुंदर अपने हाथ से मेरा पैर पकडकर पत्थर पर चढाते हुवे स्वप्न में मेरे से देखे गये ॥ [विवाह में यह भी एक विधि है कि वर, अपने हाथ से बहू का पैर पकड कर मंत्र बोलते हुवे उसको एक पत्थर पर चढाता है; इसको सप्तपदी कहते हैं ॥]

(गाथा.) वरिशिलैवाण्मुहत्तु एन्नैमार्दाम्वन्दिट्टु * एरिमुहम्पारित्त एन्नैमुन्नेनिरुत्ति *
अरिमुहनच्चुदन् कैम्मेलेन्कैवैत्तु * पोरिमुहन्दट्ट कनाकण्डेन् तोळीनान् ॥ ९ ॥

हे सखि! धनुष के सदृश सुंदर भ्रूवाले एवं प्रकाशमान मुखवाले मेरे भाईलोग आकर, अग्निको ठीक जला कर, उसके सामने मुझको खडीकर, (हिरण्यासुरवध के लिए) नरसिंहरूप से अवतीर्ण श्रीकृष्ण के हाथ पर मेरा हाथ रखकर लाजहोम कराने का दृश्य मैं ने स्वप्न में देखा ॥ .... (८)

(गाथा.) कुङ्कुममप्पि कुळिर्शान्दम्मट्टित्तु * मङ्गलवीदि वलञ्जेयूदु मणनीर् *
अङ्ग्वनोडुम् उडन्शेन्नङ्गानैमेल् * मञ्जनमाट्ट क्कनाक्कण्डेन् तोळीनान् ॥ १० ॥

हमारे शरीर पर कुंकुम का लेपकर, और शीतल चंदन लगाकर, मत्त गज के सिरपर श्रीकृष्ण के साथ मुझको बिठाकर, विवाहार्थ सजायी हुई वीथियों में वरघोडा निकालकर, प्रदक्षिण से वीथियों का परिक्रम कराकर, सुगंधमय मंगलजल एवं हलदी से हम दोनों को स्नान किया गया। हे सखि! मैंने स्वप्न में यह दृश्य देखा ॥ .... (१०)

(गाथा.) आयनुक्काह त्तान्कण्डकनाविनै * वेयर्पुहळ् विल्लिपुत्तुर्क्कोन्कोदैशोल् *
तूयतमिळ्माले ईरैन्दुम्वल्लवर् * वायुंनन्मक्कळैप्पेत्तु महिळ्वरे ॥ ११ ॥

वैदिकों से संस्तुत श्रिविल्लिपुत्तूर के स्वामी (श्रीविष्णुचित्त सूरी की) सुपुत्री श्रीगोदादेवी से दृष्ट श्रीकृष्ण के साथ संपन्न अपने विवाहविषयक स्वप्न का वर्णन करनेवाले परिशुद्ध इन दस द्राविडी गाथाओं को जाननेवाले श्रेष्ठ गुणसंपन्न विलक्षण संतान पाकर आनंदित हो जाते हैं॥ [इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया ॥] .... (११)

—* इस दशक का सार संग्राहक पद्य यह है *—

श्लो॥ मत्तानां वारणानामयुतमुपनयन् माधवो नन्दसूनुः
नानालङ्कारचित्रं निजगृहममरैस्साकमिन्द्रादिभिश्च।
आगत्याम्नायघोषैस्सह च मुरजशंखादिनादैश्च पाणिं
जग्राह स्वप्नकाले हरिरिति कथयामास षष्ठेऽत्र गोदा॥ ६ ॥

इस छठे दशक में गोदादेवी अपने से दृष्ट एक विलक्षण स्वप्न का वर्णन करती हैं कि-लक्ष्मीपति नंदनंदन श्रीकृष्ण भगवान ने लाखों मत्तगजों से परिवृत होकर, इंद्रादि देवताओं को भी अपने साथ लेकर, विविध अलंकारों से सजाये हुवे गोदादेवी के मकान पर पधारकर, वेद घोष एवं शंखभेर्यादि मंगलवाद्यध्वनि के बीच में आपका पाणिग्रहण किया ॥ .... (६)

॥ नाच्चियार तिरुमोळिमें छठां दशक समाप्त हुआ ॥

॥ आण्डाळू तिरुवडिहळे शरणम् ॥

———

॥ श्री. ॥

सातवां दशक

॥ करुप्पूरं नारुमो ॥

(शंख संबोधन)

अवतारिका—पूर्वदशक में गोदादेवी को यद्यपि अत्यानंदमय एवं अतिविलक्षण विवाहमहोत्सव का अनुभव मिल गया। तथापि वह स्वप्नमात्र ठहरा। अर्थात् वह आनंद अल्प समयतक रह कर शांत हो गया। फिर पूर्ववत् विरहदुःख ने अपना सिर उठाया। तब गोदादेवी ने विचार किया "हाय! हाय! यह क्या है? स्वयं भगवान ने मुझे स्वप्नभोग मात्र देकर धोखा दे दिया? क्या आपका स्वभाव ही ऐसा है कि अपने भक्तों को भी एकदम सता देते? आप क्या सभी भक्तों से ऐसा कपटव्यवहार ही करते हैं, अथवा किसी को सच्चा अनुभव देकर आनंदित भी करते हैं?" यों विचार करते करते आपको ज्ञात हुआ कि महाभाग्यवान पांचजन्य शंख, भगवान की बाँयी हथेली में नित्यनिवास करते हुवे, हमेशा आपके अधरामृत का पान करते हुवे, एक क्षणमात्र के लिए भी विरहित न होकर नित्यसंश्लेषरूप महारस लूट रहा है। शंखराज के इस भाग्य का चिंतन करते करते गोदादेवी के मन में एक ओर बडा संतोष हुआ और दूसरी ओर कुछ ईर्ष्या भी उत्पन्न हो गयी। कुछ समयतक आपने उस शंख का ही ध्यान किया। इस ध्यान के बल से आपको उस पांचजन्य का मानसिक साक्षात्कार मिल गया। अर्थात् आपको ऐसा लगा कि अपने सामने पांचजन्य शंख खडा है। ऐसे भासमान शंख को लक्ष्यकर, इस दशक में गोदादेवी कहतीं हैं—हे भाग्यवान शंखराज! तुम तो हमेशा नंदनंदन का दिव्य अधरामृत पीते हो। जरा बतावो कि उस अधर की गंध कैसी है, और अधरामृत का स्वाद कैसा है। कान से यह सुनकर मुझे धन्य होने दो। हे शंख! तुम तो लवणसागर में पैदा हुआ; फिर पंचजन नामक असुर के पेट में पोषित हुआ; ऐसा होते हुवे भी तुम भगवान के हाथ पर चढ कर आसुर प्रकृतियों का हृदय चीर डालने समर्थ गंभीर शब्द करोगे। अहो तुम्हारा अहोभाग्य है! दामोदर भगवान के हस्त में सदा विराजते हुवे, शायद आपके कान में कुछ रहस्य का उपदेश करते हो, ऐसे देख पडते हो। तुम्हारा वैभव वाचामगोचर है। तुम्हारी जन्मभूमि (दरिया) में तुम्हारे साथ कितने शंख जन्मित हुए होंगे! इस संसार भर में कोई उनकी चिंतातक न करेगा। अकेली तुमको ही यह असाधारण वैभव मिला है। लोक में वेवे जन देशांतर जाकर बहुत परिश्रम से पुण्यतीर्थ प्राप्तकर उनमें स्नान करते हैं। तुम तो भगवान के हस्त में ही नित्यनिवास करते हुवे अनायास ही परमपवित्र तीर्थ में स्नान कर रहे हो। कमलपुष्प में रहकर सदा मधु पीनेवाले हंस की तरह भगवान के करारविंद पर चढ कर, आपके अधरामृत का पान करनेवाले तुम्हारा भाग्य सत्य ही अतिविलक्षण है। भगवान का अधरामृत ही तुम्हारा अनुदिन का आहार है; नित्यनिवास स्थान तो आपका करकमल है। ऐसे तुमको देखकर मेरी सरीक ललनाएं कैसे ईर्ष्या न करेंगी? क्या तुम यह नीति भी न जानते हो कि, "मधुरपदार्थ का उपयोग,

किसी को अकेली न करना चाहिए ?'' तुम्हारा काम सर्वथा अनुचित होता है। भगवान के दिव्य अधरामृत पीने चाहनेवाली, मैं एक ही नहीं; परंतु सोळह हजार महिषियां हैं। हम सबका साधारण भोग्य वस्तु का अगर तुम एकाकी भोग करोगे, तो हम कैसे चुप रह सकेंगी ? इत्यादि ॥ *

(गाथा.) करुप्पूरमृनारुमो कमलप्पूनारुमो * तिरुप्पवळच्चेव्वायृदान् तित्तित्तिरुक्कुमो *
मरुप्पोशित्तमादवन्दन् वायृच्चुवैयुमृनात्तमुम् * विरुप्पुत्तुकेट्किन्नेन् शोल्लाळिवेण्शङ्गे ॥ १ ॥

हे गंभीर शुभ्र शंख ! कुवलयापीड नामक मत्तगज का दांत तोडनेवाले श्रीकृष्ण के अधर का स्वाद एवं गंध के बारे में मैं तुमसे सादर पूछती हूं। कहो तो सही कि सुंदर प्रवाल के समान आपका अधर क्या कर्पूर के समान गंधवाला होता है, अथवा कमल पुष्प के समान गंधवाला; अथवा क्या मधुर रसवाला होगा। उसका प्रकार बतावो ॥ .... (१)

(गाथा.) कडलिल्पिरन्दु करुदादु * पञ्चशनन् उडलिल्वळर्न्दुपोयृ ऊळियान्कैत्तल
त्तिडरिल् * कुडियेरि चीयवशुरर् * नडलैप्पडमुळङ्गुम् तोत्तत्तायृनर्चङ्गे ॥ २ ॥

हे सुंदर शंख ! तुम लवणसमुद्र में पैदा होकर पंचजन नामक असुर के पेट में बढकर, अपनी जन्मभूमि व वासभूमि की चिंतातक न करते हुवे भगवान का करतलरूपी उच्चस्थान पर चढ कर दुष्ट असुरों का हृदय दारण करने समर्थ ध्वनि करने का भाग्य प्राप्त कर विराजते हो। [एक क्षुद्रस्थान में जन्म लेकर, दूसरे एक क्षुद्रस्थान में बढकर भी तुमने भगवान का पाणितलरूप अत्यंत श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त किया; अहो तुम्हारा भाग्य है।] .... (२)

(गाथा.) तडवरैयिन्मीदे शरर्कालशन्दिरन् * इडैयुवाविल्वन्दु एळुन्दालेपोल *
नीयुम् वडमदुरैयार्मन्नन् वासुदेवन्कैयिल् * कुडियेरिवीत्तिरुन्दायृ कोलप्पेरुम्शङ्गे ॥ ३ ॥

हे सुंदर महान शंख ! पूर्णिमा का दिन बडे उदयपर्वत पर उगनेवाले शरत्काल के पूर्ण चंद्र की तरह तुम भी उत्तरमथुरा पुरी के स्वामी श्रीकृष्ण के पाणितल में नित्यनिवास करते हुवे विराजमान हो। [अहो तुम्हारा भाग्य है!] .... (३)

(गाथा.) चन्दिरमण्डलम्बोल् तामोदरन्कैयिल् * अन्दरमोन्निन्नि एरियवन्शेवियिल् *
मन्दिरङ्कोळ्वायेपोलुम् वलम्बुरिये * इन्दिरनुमुन्नोडु शेल्वत्तुक्केलाने ॥ ४ ॥

हे दक्षिणावर्त शंख ! दामोदर भगवान के पाणितल में चंद्र मंडल की तरह नित्यनिवास करते हुवे, तुम आप के कान में शायद कोई रहस्यवार्ता बोलते होगे, ऐसे दीख पडते हो; ऐश्वर्य के विषय में साक्षात् देवेंद्र भी तुम्हारा सदृश न होगा ॥ [भगवान के हाथ में विराजमान शंख का दर्शन करनेवालों के मन में ऐसी शंका उत्पन्न होती है कि, यह क्या भगवान के हाथ में चंद्रमंडल बैठा है। और यह शंख भगवान के कान के पास रहता है। इससे यों प्रतीत होता है कि यह तो भगवान से कुछ रहस्यमय वार्तालाप कर रहा है। अतः प्रसिद्ध ऐश्वर्यवाले महेंद्र का ऐश्वर्य भी श्री पांचजन्य के उक्त ऐश्वर्य के सामने फीका दीख पडता है।] .... (४)

(गाथा.) उन्नोडुडने ओरुकडलिल्वाळ्वारै * इन्नारिनैयारेन्नु एण्णुवारिल्लैकाण् *
मन्नाहिनिन्न मदुशूदन्वायमुदम् * पन्नाळुमुण्गिन्नाय् पाञ्चजन्नियमे ॥ ५ ॥

हे पांचजन्य! महासागर में तुम्हारे साथ और कितने ही पदार्थ रहते हैं। मगर कोई भी उनको एक पदार्थतयापि मानता नहीं; (अर्थात् वे सब एकदम उपेक्षणीय तुच्छ पदार्थ हैं।) तुम एक तो सर्वस्वामी मधुसूदन भगवान के अधरामृत का नित्य पान कर रहे हो ॥ .... (५)

(गाथा.) पोय्त्तीर्त्तमाडादे निन्नपुणर्मरुदम् * शाय्त्तीर्त्तान्कैत्तलत्ते एरिक्कुडिकोण्डु *
शेयूत्तीर्त्तमायुनिन्न शेङ्गण्माल्तन्नुडैय * वाय्त्तीर्त्तम्पायुन्दाडवल्लाय् वलम्बुरिये ॥ ६ ॥

हे दक्षिणावर्त शंख! बहुत दूर चलते जाकर गंगादिपुण्यतीर्थों में स्नान करने का क्लेश छोडकर, नारद जी के शाप से खडे रहनेवाले यमुलार्जुन वृक्षों को तोडकर गिरानेवाले श्रीकृष्ण के पाणितल पर चढकर तुम वहां पर नित्यवास करते हुवे, उन कमलनयन भगवान के परम पवित्र वागमृत तीर्थ में स्नान करने वाले भाग्यवान हो ॥ .... (६)

(गाथा.) शेङ्गमलनाण्मलर्मेल् तेनुहरुमन्नम्पोल् * शेङ्गण्करुमेनि वासुदेवनुडैय *
अङ्गैत्तलमेरि अन्नवशङ्गेय्युम् * शङ्गरैयावुन्शेल्वम् शालवळहियदे ॥ ७ ॥

तभी खिले हुवे लाल कमल पर बैठकर शहद पीनेवाले हंस पक्षि की तरह, लाल नेत्रवाले श्यामसुंदर श्रीकृष्ण का सुंदर पाणितल चढकर वहां सुखनिद्रा करनेवाला हे शंखराज! तुम्हारा ऐश्वर्य बहुत प्रशंसनीय है ॥ .... (७)

(गाथा.) उण्बदुशोल्लिल् उलहळन्दान्वायमुदम् * कण्बडैकोळ्ळिलल् कडल्वण्णन्कैत्तलत्ते *
पेण्पडैयारुन्मेल् पेरुम्पूशल्शात्तुहिन्नार् * पण्वलशेयुहिन्नायू पाञ्चजन्नियमे ॥ ८ ॥

हे पांचजन्य! लोकों को नापनेवाले भगवान का वागमृत ही तुम्हारा आहार है; और सागर वर्ण उन भगवान का पाणितल ही तुम्हारा शयनगृह है। ऐसे अनितरसाधारण दिव्यानुभव करनेवाले तुम्हारे विषय में सब स्त्रियां बडा आक्रोश करती हैं (कि यह हमारे जीवन का चोर है)। उनको दुःख देने का यह तुम्हारा काम बिलकुल उचित नहीं है ॥ [अर्थात् भगवान का अधरामृत आपकी सभी दिव्यमहिषियों को भी मिलना चाहिए। परंतु हाल में तुम अकेला उसका अनुभव कर रहे हो। इससे दुःखी होकर वे सब तुम्हारी निंदा कर रही हैं। उनको ऐसा दुःख देना तुम्हारे लिए उचित नहीं है ॥] .... (८)

(गाथा.) पदिनारामायिरवर् तेविमार् पार्त्तिरुप्प * मदुवायिक्कोण्डाप्पोल् मादवन्तन्वायमुदम् *
पोदुवाहवुण्बदनै प्पुकुनीयुण्डक्काल् * शिदैयारोवुन्नोडु शेल्वप्पेरुम्शङ्गे ॥ ९ ॥

हे महदैश्वर्यसंपन्न शंख! सोलह हजार दिव्यमहिषियां श्री कृष्ण भगवान का अधरामृत पीनेकी प्रतीक्षा कर रही हैं। भगवान से संबंधित सभी व्यक्तियों से मिलकर अनुभव करने लायक उन माधव के वागमृत को अगर तुम अकेला रह कर मधुपान करने की तरह पीआगे तो, दूसरे लोग तुमसे क्या विवाद न करेंगे? [जरूर करेंगे ही ॥] .... (९)

(गाथा.) पाञ्चजन्नियत्तै प्पर्प्पनाबनोडुम् * वायुन्दपेरुन्शुत्तम् आक्कियवण्पुदुवै *
एयुन्दपुहल्प्पट्टर्पिरान् कोदैतमिळीरैन्दुम् * आयुन्देत्तवल्लारवरुम् अणुक्करे ॥ १० ॥

पद्मनाभ भगवान के साथ अति समीप संबंधवाले पांचजन्य को लक्ष्यकर, सुंदर श्री विल्लिपुत्तूर में अवतीर्ण, परिपूर्ण यशवाले श्री भट्टनाथ सूरी की सुपुत्री गोदादेवी से गीत इन दस गाथा ओं का विमर्शकर, इनसे भगवान की स्तुति करनेवाले, पांचजन्य की तरह भगवान से हमेशा मिलकर (आपका अंतरंग किंकर बन कर) रहेंगे। [इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया ॥] .... (१०)

—* इस दशक का सारसंग्राहक पद्य यह है *—

श्लो ॥ स्वामीं दिव्यानुभूतिं हृदि मुहुरनुचिन्त्याथ नन्दात्मजस्य
श्रीमत्कृष्णस्य वक्त्रे रसभरमनघं सौरभं चातिभोग्यम् ।
पृच्छन्ती पाञ्चजन्यं तदनुभवकलादेशिकाग्रेसरं, स्वाम्
ईर्ष्यां प्रख्यापयन्ती कथयति मधुरं सप्तमं सूक्तमार्या ॥ ७ ॥

पूर्व दशक में अपने से दृष्ट विलक्षण स्वप्न का पुनः पुनः चिंतन करनेवाली गोदादेवी, बाद में अविच्छिन्न भगवदनुभव करने निरत पांचजन्य शंख से, भगवान नंदनंदन श्रीकृष्ण के मुखारविंद का अति मनोहर रस एवं गंध के बारे में पूछती हुई, एवं उसके प्रति अपनी ईर्ष्या का भी प्रकाशन करती हुई, यह सातवां दशक गाती हैं ॥ .... (७)

॥ नाच्चियार् तिरुमोळि में सातवां दशक समाप्त हुआ ॥
॥ आण्डाळ् तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ आठवां दशक—विण्णील मेलाप्पु ॥

(श्री वेंकटाद्रीश भगवत्संनिधि में मेघदूत को भेजना)

अवतारिका— गोदादेवी की भगवद्विरहव्यथा जाते जाते बहुत बढ गयी। विरहियों का दुःख बढाने वाला वर्षाकाल भी आ गया। बिजली से चमकते हुवे एवं गंभीर गर्जन करते हुवे अतिमनोहर रूपवाले मेघ भी आकाश में घूमने लगे। इनके दर्शन से गोदादेवी को भगवान के वचन का स्मरण हुआ। तथाहि— गोदादेवी से मिलकर उनपर अनुग्रह दर्शाकर बाद में उनसे विदा लेकर जाने के समय में भगवान ने वर्षाकाल में फिर आने का वचन दिया था। परंतु अपने वचनानुसार आप अब आये नहीं। तब गोदादेवी ने मेघों से पूछा कि "मेरे स्वामी क्या पधार रहे हैं?" परंतु मेघों ने इसका उत्तर न दिया। किसी ओर से भगवान के आगमन की सूचनातक न मिली। अतः बहुत खिन्नमना होकर गोदादेवी उन मेघों को ही श्रीवेंकटाद्रिनाथ भगवान की संनिधि में दूत के रूप में भेजती है इस दशक में। मेघ से की जानेवाली आपकी प्रार्थना इस प्रकार की है— हे मेघ! तुम्हारे साथ

श्रीवेंकटाद्रि भगवान भी क्या इधर पधार रहे हैं? अथवा नीलमेघश्याम आपकी कोई वार्ता सुनायी जाती है? विश्लेष दुःख से रो रो कर शिथिल बन जानेवाली मेरा सत्तानाश करना क्या आपका उचित है? क्या कठोर दक्षिण पवन से पीडित होकर दुःख से रात को बिताना ही मेरे भाग्य में लिखा गया है? मेरा दैन्य देखकर इस मेरे शरीर की शोभा, सौंदर्य, हाथ की चूडियां, ये सभी और अंततः मेरा मन भी मुझको छोडकर निकल गये। ऐसी दशा में श्रीवेंकटाद्रिनाथ के नामस्मरण करने मात्र से मैं किस तरह से जीवित रह सकूंगी? कृपया लक्ष्मीनाथ आपसे विनती करो कि मेरे ये स्तन आपके वक्षसे आलिंगन करने अत्यंत उत्सुक हैं। आपने मेरी चूडियों का अपहरण कर दिया; और मेरे शरीर के अंदर घुसकर उसके सार को भी अपना लिया। ऐसी अवस्था में अगर आप एक ही दिन भी क्यों नहो, यहां पधारकर मुझको आलिंगन कर देंगे तो ही मैं जीवित रह सकूंगी; अन्यथा नही। इस मेरी दुर्दशा को आपसे कह दो। आपके नामसंकीर्तन करती करती ही मैं बहुत शिथिल बन गयी। ऐसी मुझसे आप क्या एक सांत्वनावचन भी न कहेंगे? आश्रितरक्षा करने में नित्यनिरत आप, अगर मेरी उपेक्षा करेंगे, और मेरी मृत्यु होने का अवकाश दे देंगे, तो यह स्त्रीवध का आपका अपयश इस संसार भर में सर्वत्र फैल जाएगा; यह क्या आपका उचित होगा? अतः ऐसी आपत्ति होने का अवकाश न देते हुवे तुरंत रक्षा करने की मेरी प्रार्थना को आप से सुना दो॥

इस दशक की एकैक गाथा में भी मेघ के जो विशेषण दिये जाते हैं, उनका गाढ परामर्श करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह मेघ, मामूली अचेतन मेघ नहीं है; परंतु शास्त्र सागर में खूब गोता मारकर उससे सदर्थों को उठाकर समस्त प्राणियों का उद्धार करते हुवे बरसनेवाले महान आचार्य ही मेघशब्द से पुकारे जा रहे हैं। भगवान से विरहित इस चेतन की करुणामय दुर्दशा को आपसे सुनाकर इसको आपकी कृपा का लक्ष्य बनाना, यह तो आचार्य का ही काम हैं। अतः आपको ही दूत (यानी संदेशहारी) बनाना उचित है। और, यह अर्थ तिरुप्पावै की चौथी गाथा (आऴिमऴैक्कण्णा) की टीका में बताया गया कि नानाप्रकारों से मेघ के सदृश होने से आचार्य मेघ ही पुकारे जा सकते हैं। विशेषतः इस दशक में दूततया प्रेषित व्यक्ति, दूसरा कोई नही हैं; अपितु साक्षात् श्रीरामानुज स्वामीजी ही हैं, जो गोदाग्रज (यानी गोदादेवी के बडे भाई) बिरुद विभूषित हैं। यद्यपि गोदादेवी का अवतार श्री रामानुजस्वामीजी से बहुत पहले ही हो चुका था; तथापि भगवान की दिव्य महिषी होने से, एवं आपकी विशेष कृपा का पात्र होने से आप सर्वज्ञ होकर, भविष्यद्वृत्तांत का भी साक्षात्कार पाकर वर्णन कर सकती थीं। अथवा, महात्माओं की वाणी का यह विशेष प्रभाव है कि उनसे अविवक्षित भविष्यद्वृत्तांत भी उससे सूचित होते हैं। कैसा भी हो। यहां पर दिये जानेवाले सभी मेघ के विशेषण श्रीरामानुज स्वामीजी को ठीक लगते हैं। तत्तत् गाथा में इस अर्थ का वर्णन किया जाएगा॥

*

(गाथा.) विण्णीलमेलाप्पु विरित्ताप्पोल्मेघङ्गाळ् * तेण्णीर् पायुवेङ्गडत्तु एन्तिरुमालुम्पोन्दाने *
कण्णीर्हळ्मुलैक्कुवट्टिल् तुळिशोरचोर्वेनै * पेण्णीमैयीडळिक्कुमिदु तमक्कोर् पेरुमैये ॥ १ ॥

अकाश में बांधे गये हुवे विशाल नीलवर्ण वितान के समान देखायमान हे मेघों! शुद्धतीर्थ बहनेवाले श्रीवेंकटाद्रि में निवास करनेवाले मेरे नाथ भगवान भी क्या तुम्हारे साथ यहाँ पधार गये है? (विरह संतप्त) जिसकी आंख से निकलनेवाली अश्रुधारा चूचुक पर पडकर वहां से नीचे बह जा रही है, ऐसी मेरे स्त्रीत्व का सत्तानाश करना क्या आपकी महिमा का उचित होगा?

इस गाथा में मेघ को वितान कहने से श्रीरामानुज स्वामीजी का अवतांरहस्य सूचित किया जाता है। आप शेषावतार थे। शेषजी का काम तो भगवान का वितान होना है; यथा मथुरा से नंदगोकुल पधारनेवाले श्रीकृष्ण के पीछे पीछे, आपका वितान बन कर शेषजी जाते रहे। अत एव स्तोत्ररत्न में आपका वर्णन करनेवाले "निवासशय्यासन" इत्यादिपद्य में "वर्षातपवारणादिभिः" कहा गया। वर्षा एवं धूप, इनको रोकना तो वितान का काम है। अतः इस गाथा का वितान शब्द शेषजी को सूचित कर, उसके द्वारा यह अर्थ बताता है, कि हे शेषावतार श्री रामानुज स्वामिन्॥ .... (१)

(गाथा.) मामुत्तनिदिशोरियुम् मामुहिल्हाळ् * वेङ्कडत्तु चामत्तिनिरङ्गोण्ड ताळाळन्वार्तैयेन्ने *
कामत्तीयुळ्पुहुन्दु कदुवप्पट्टिडैकङ्गुळ् * एमत्तोऱ्तेन्नलुक्कु इङ्गिलक्कायृनानिरुप्पेने ॥ २ ॥

हे श्रेष्ठ मोती को तथा निधि को वरसनेवाले महान मेघों! क्या श्यामसुंदर श्री वेंकटाद्रिनाथ का कोई संदेश हैं? भीतर घुसकर जलनेवाले कामाग्निसे पीडित होकर आधीरात में चलनेवाले दक्षिण मारुत से भी संतप्त होकर मैं दुख भोग रही हूं। यह क्या उचित है?

इस गाथा में यों संबोधन किया जाता है कि, "हे निधि के समान अतिश्रेष्ठ श्रीभाष्यादि ग्रंथों के, तथा मोती के समान दूसरे उपदेशवचनों के वर्षुक श्रीरामानुजस्वामिन्! नवनिधियों की तरह श्री स्वामीजी से अनुगृहीत ग्रंथ भी नव ही हैं॥ .... (२)

(गाथा.) ओळिवण्णम्वळैशिन्दै उरक्कत्तो्डवैयेल्लाम् * एळिमैयालिट्टेन्नै ईडळियप्पोयिनवाल् *
कुळिररुविवेङ्गडत्तु एन्कोविन्दन्गुणम्पाडि * अळियत्तमेघङ्गाळ् आविकात्तिरुप्पेने ॥ ३ ॥

हे कृपामय मेघों! मेरे शरीर की शोभा, रंग, चूडियां, मन और निद्रा, ये सभी मेरा दैन्य देखकर, मुझको छोडकर मुझे और दीन बनाकर, हाय! दूर चले गये। सुशीतल निर्झरों से अलंकृत श्री वेंकटाद्रि के नाथ मेरे नाथ गोविंद के शुभगुणों का कीर्तन करती हुई मैं [उस कीर्तन मात्र से विरह दुःख को पारकर] किस तरह से जीवित रह सकूंगी?

इस गाथा में, "अस्मद्गुरोर्भगवतोऽस्य दयैकसिन्धोः" इत्यादि में उपवर्णित श्रीरामानुजस्वामीजी की सीमातीत दया कीर्तित हुई है। आपका यह असाधारण बिरुद है—कृपामात्रप्रसन्नाचार्य। इसका अर्थ यह है कि शिष्य से चिरकाल सेवा लिये विना ही, एवं उसकी कठोर परीक्षा किये विना ही, संसार सागर में निमग्न उसकी दयनीय दुर्दशा देखकर अत्यंत दया के परवश होकर, आप सदुपदेशों से उसको अनुगृहीत करते थे। ऐसी आपकी विशेष दया की प्रशंसा यहां पर की जाती है॥ .... (३)

(गाथा.) मिन्नाहत्तेळुहिन्न मेघङ्गाळ् * वेङ्गडत्तु त्तन्नाहत्तिरुमङ्गै तङ्ग्यिशीमार्विर्क्कु *
एन्नाहत्तिळङ्कोङ्गै विरुम्बित्तान्नाडोरुम् * पोन्नाहम्पुल्हुदर्क्कु एन्पुरिवुडैमै शेप्पुमिने ॥ ४ ॥

अपने शरीर में बिजली चमकानेवाले हे मेघों! श्रीमहालक्ष्मीजी का नित्यनिवासस्थान श्रेष्ठ वक्षवाले श्रीवेंकटाद्रिनाथ भगवान से विनती कर लीजिए कि ये मेरे बालस्तन आपके सुंदर वक्ष से आलिंगित होने के लिए बडे लालायित रहते हैं ॥

विद्युल्लतालंकृत मेघ कहने का यह तात्पर्य है कि ये मेघ पानी से खूब भरकर बरसने तैयार हैं; क्यों कि शुष्कमेघ में बिजली न दीखेगी। अत: इस विशेषण से यह अर्थ सूचित किया जाता है कि श्री रामानुजस्वामीजी शिष्य का उद्धार करने समर्थ सदर्थ बरसने तैयार रहते हैं। एवं शिखायज्ञोपवीत इत्यादि से शून्य मतांतरस्थ संन्यासियों से विरुद्ध, "काषाय शोभि कमनीयशिखानिवेशम्" इत्यादिसे उपवर्णित आपके दिव्यमंगलविग्रह की विशेष शोभा सूचित की जाती है। बिजली के स्थान में सुंदर काषाय, त्रिदंड, शिखा, यज्ञोपवीत इत्यादि लिये जा सकते हैं ॥ .... (४)

(गाथा.) वान्कोण्डुकिळर्न्देंळुन्द मामुहिल्हाळ् * वेङ्गडत्तु तेन्कोण्डमलर्शिदर त्तिरण्डेरिप्पोळिवीर्हाळ् *
ऊन्कोण्डवळ्ळुहिराल् इरणियनैयुडलिडन्दान् * तान्कोण्डशरिवळैहळ् तरुमाहिल्शाद्दुमिने ॥

हे आकाश में सर्वत्र व्याप्त होते उगकर, वेंकटाद्रिस्थ मधु बहनेवाले पुष्पों का विनाश करते बरसनेवाले कालमेघों! बलिष्ठ एवं तीखे नखों से हिरण्यासुर का शरीर चीर डालनेवाले भगवान् अपने से अपहृत मेरी चूडियों को क्या मुझे वापस लौटावेंगे? कहो। [भगवान से विरहित गोदादेवी का शरीर दु:ख से बहुत कृश बन गया; अत: चूडियां हाथ से निकल गयीं। इनको वापस लौटानेका यह तात्पर्य है कि फिर भगवान से संश्लेष हो, और शरीर हृष्टपुष्ट होकर उनका धारण कर सकें। तथा च भगवान का संश्लेष ही प्रार्थित हो जा रहा है ॥]

इस गाथा में आकाशशब्द, परमाकाश शब्दवाच्य परमपद का सूचक है। आकाश को व्याप्त करने का यह अर्थ है कि परमपद को अपने अधीन में रखना। श्री रामानुज स्वामीजी का यह असाधारण वैभव है कि आप "विभूतिद्वयनायक" बिरुद के अनुसार, अपने पादारविंद में आश्रित भक्तजनों को स्वयं परमपद दे सकते हैं। और संप्रदायवृद्धों का यह सिद्धांत है कि श्रीस्वामीजी का संबंध पाये विना किसीको मोक्ष न मिलेगा। आपका यह वैभव इस गाथा में बताया गया ॥ .... (५)

(गाथा.) चलङ्कोण्डुकिळर्न्देंळुन्द तण्मुहिल्हाळ् * मावलियै निलङ्कोण्डान्वेङ्गडत्ते निरन्देरिप्पोळिवीर्हाळ् *
उलङ्गुण्डविळङ्गनिपोल् उळ्मेलियप्पुहुन्दु * एन्नै नलङ्कोण्डनारणर्कु एन्नडलैनोय् शेप्पुमिने ॥

हे (समुद्र) जल लेते ऊपर उठकर विराजमान सुशीतल मेघों! महाबलि के पास से भूमिको अपना अधीन कर लेनेवाले भगवान के नित्यनिवासस्थान श्री वेंकटाद्रि में फैलाकर ऊपर रहते बरसनेवाले हे मेघों! कीट भक्षित कपित्थ फल की तरह मैं अपना अंतस्सार खो जावें इस तरह से मेरे अंदर घुस कर मेरा सर्वस्वापहार करनेवाले नारायण से मेरा अपार मनोदु:ख सुना दो ॥

श्रीरामानुज स्वामीजीने श्री कांचीपुरी में शालकूप नामक एक कुंएसे पानी उठाकर श्रीवरदराज भगवान को अर्पण किया था; इस चरित्र का सूचक है इस गाथा में संबोधन— हे जललेकर उठनेवाले मेघ। अथवा द्राविडी में चल शब्द छल अथवा कपट का भी वाचक होता है। तथा च, छल जानकर दूर निकल जानेवाला, ऐसा भी अर्थ होता हैं। इससे, गंगास्नान करने के उद्देश्य से यादवप्रकाश के साथ चलते चलते ही, उनका छल जानकर बीच में ही विंध्याटवी से लौट जानेवाले श्रीस्वामीजी का वृत्तांत सूचित किया जाता है। तथाहि– जब श्री स्वामीजी यादवप्रकाश के वहां उपनिषदों का अध्ययन करते रहे, तब दोनों के बीच में वारंवार शास्त्रार्थ चर्चा होती; फलतः गुरु के मन में शिष्य के प्रति बडी ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी। तब वे श्री स्वामीजी को गंगाजी में डुबा कर समाप्त कर देने की इच्छा से आपके तथा दूसरे शिष्यों के साथ यात्रा निकल गये। परंतु दैवयोग से श्री स्वामीजी इस रहस्य को जानकर वह गोष्ठी छोडकर लौट गये। यह घटना विंध्यारण्य में हुई। श्री वरदराज भगवान ने उस समय में आपको सोते सोते ही वहां से एक रात में कांची पहुंचा दिया। इसी प्रसंग में श्री स्वामीजी ने शालकूप से पानी उठाकर भगवान को पिलाया। यह समग्र चरित्र यहांपर सूचित किया जाता है॥ .... (६)

(गाथा.) शङ्गमाकडल् कडैन्दान् तण्मुहिल्हाळ्*वेङ्गडत्तु च्चेङ्गण्माल्शेवडिकीळ् अडिवीळ्चिविण्णप्पम्*
कोङ्गैमेल्कुङ्गुमत्तिन् कुळम्बळियप्पुहुन्दु * ओरुनाळ् तङ्गुमेल् एन्नावितङ्गुमेन्नुरैयीरे ॥ ७ ॥

हे शंख भरित महासमुद्र का मथन करनेवाले भगवान से संबंधित मेघों। श्री वेंकटाद्रि में नित्य निवास करनेवाले कमलनयन भगवान के पादारविंदों में दासी मेरी यह प्रार्थना सुना दो—मेरे स्तनोंपर लगाये हुवे सारे कुंकुमलेप को निकालते हुवे अगर आप एक दिन यहां पधारकर मेरा आलिंगन करेंगे, तो ही मैं जीवित रह सकती हूं॥

इस गाथा में, भगवान का आलिंगन पाने की जो इच्छा प्रकट की जाती है, यह तो प्राकृत भोग की मांग जैसी लगेगी। परंतु इस दिव्यप्रबंध में अनेकत्र (१-८, ५-१) स्पष्ट बताया गया है कि भगवान की पादसेवा करना ही गोदादेवी के अपेक्षित परमपुरुषार्थ है। अतः प्रकृतगाथा में भी उससे विरुद्ध प्राकृत भोग की मांग न की जा सकती है; किंतु तदनुगुण कोई महान पुरुषार्थ ही प्रार्थित होगा। वह है ज्ञान भक्तियों का वैशद्य। तथाहि— स्तनशब्द से भगवद्भोगसाधन ज्ञान व भक्ति कहलाते हैं। इनके दो आकार होते हैं— स्वाभाविक और आरोपित। मात्र भगवान को लक्ष्य करना स्वाभाविक आकार है; और विषयांतर को अथवा स्वार्थ को लक्ष्य करना आरोपित आकार है। अर्थात् निष्काम ज्ञान भक्ति स्वाभाविक हैं और सकाम आरोपित। स्तनों पर कुंकुम लगाने से उनका स्वाभाविक आकार ढांका जाता है और दूसरा आकार आ जाता है। इस आरोपित आकार का नाश अब भगवान के संश्लेष से प्रार्थित हो जा रहा है। इसका यह तात्पर्य है कि भगवान की कृपा से, आपके दर्शन से अथवा मिलाप से सभी कामनाएं नष्ट हो जाय और सर्वथा शुद्ध ज्ञान भक्तियों का उदय हो जाय। एवं कुंकुम तो लालरंग का होता हैं; इससे रजोगुण सूचित किया जाता है। कुंकुम का नाश होना तो रजोगुण का ही नाश हुआ।

तथा च इससे रजोगुण का नाश प्रार्थित होता है। तमोगुण का नाश भी अर्थात् प्रार्थित है ही। फलतः रजस्तमोगुणों के परिपूर्ण विनाश से शुद्ध सत्वगुण ही मांगा जाता है। इस गाथा में समुद्र का मथन करनेवाले भगवान से मेघ का संबंध बताया जाता है। समुद्र से अमृत निकालकर देवों को देने के लिए भगवान ने क्षीरसागर का मथन किया। अतः देवतालोग आपके भक्त होते हैं। एवं उपनिषद पुकारती है कि "भीषास्माद्वातः पवते, भीषोदेति सूर्यः" इत्यादि। (अर्थात् भगवान से डरते हुवे पवन सूर्य इत्यादि सभी देव अपना अपना काम करते हैं। इसका भी यही अर्थ हुआ कि ये देव भगवान के सेवक हैं। अतः मेघ का भी यही संबंध इस गाथा में बताया जाता है॥

समुद्र मथन करनेवाले भगवान का संबंध श्री रामानुजस्वामीजी में भी पर्याप्तमात्रा मे है ही। अथवा अपने जीभ से शास्त्रसागर का मथन कर उससे सहस्रगीति नामक भक्तामृत निकालकर उसके पान से मानवमात्र को अमर बनानेवाले श्री शठकोपस्वामीजी, यहां पर समुद्रमथनकर्ता कहे जाते हैं। आपके पादाश्रित है श्री रामानुजस्वामीजी। "श्रीमाधवाङ्घ्रिजलजद्वयनित्यसेवाप्रेमाविलाशयपराङ्कुशपादभक्तम्॥" (७)

(गाथा.) कार् कालत्तेलुहिन्न कार्मुहिलहाळ् * वेङ्गडत्तु प्पोर् कालत्तेलुन्दरुळि प्पोरुदवनार् पेर्शोल्लि *
नीर् कालत्तेरुक्किल् अम्पळविलैपोल्वीळवेनै * वार्कालत्तोरुनाळ् तम्वाशहमुन्दरुळारे॥ ८॥

हे वर्षाकाल में श्रीवेंकटाचल में दर्शन देनेवाले काल मेघों! युद्धसमय में रणरंग पधारकर लडकर विजय पानेवाले श्रीरामचंद्र जी के नामसंकीर्तन कर, वर्षाकाल के सुपक्व अर्कपत्र की तरह शिथिल बननेवाली मेरे लिए इस दीर्घकाल में आप एक अनुग्रहमय संदेश भी न भेजेंगे क्या?

वर्षाकाल शब्द से, "अविवेकघनान्ध दिङ्मुखे बहुधा संततदुःखवर्षिणि। भगवन्! भवदुर्दिने", (अर्थात् यह संसार रूपी वर्षाकाल में अविवेकरूपी मेघ छाकर दिशाओं को प्रकाशरहित बनते हैं; अविच्छिन्न दुःखवर्षण हो रहा है।) इत्यादि स्तोत्ररत्न के अनुसार, सब से अनुभूयमान सांसारिक दुःख रूपी वर्षाकाल में, अर्थात् ऐसे दुःखमय संसार मंडल में श्रीरामानुजस्वामीजी का अवतार सूचित किया जाता है। अथवा भगवान के कृपामय कटाक्षवीक्षण ही वर्षा है; उसका लक्ष्य होकर श्री स्वामीजी अवतीर्ण हैं। "त्वदीक्षणसुधासिन्धुवीचिविक्षेपशीकरैः। कारुण्य मारुतानीतै श्शीतलैरभिषिञ्च माम्॥" (हे वरदराज भगवान्! अपनी कृपारूपी पवन से लाये जानेवाले कटाक्षरूपी अमृतसागरतरंगवर्षण से मुझे अभिषिक्त कीजिए।) "हस्तीश! दृष्ट्यमृतवृष्टिभिराभजेथाः" [हे वरदराज भगवन्! अपने कटाक्षरूपी अमृतवर्षण से मुझको अनुगृहीत कीजिए।] इत्यादि॥ .... (८)

(गाथा.) मदयानैपोलेलुन्द मामुहिलहाळ् * वेङ्गडत्तै प्पदियाहवाळ्वीर्हाळ् पाम्बणैयान्वार्त्तैयेन्ने *
कदियेन्नुन्तानावान् करुदादु * ओर् पेण्कोडियै वदैशेयुदानेन्नुञ्जोल् वैयहत्तार्मदियारे॥ ९॥

उठकर मत्तगज के समान दर्शन देनेवाले हे वेंकटाद्रि में नित्यनिवास करनेवाले कालमेघों! शेषशायी भगवान की क्या कोई वार्ता है? आश्रितों के स्वयं सदा रक्षक होकर, अपना यह स्वभाव

भूलकर अगर आप एक बालिका मेरी उपेक्षा कर वध कर डालूं देंगे, तो स्त्रीघातुक आपको कोई लोग न मानेंगे। (अर्थात् आपकी उपेक्षा से अगर मैं मर जाऊंगी तो इस संसार में आपका भक्तरक्षणयश नष्ट हो जाएगा और बदनामी फैल जाएगी ॥)

श्रीरमानुजनूत्तंदादि नामक, श्री स्वामीजी की स्तुति करनेवाले दिव्यप्रबंध में (गाथा-६४) आपको सहस्रगीति का अध्ययनानंद रूपी मदजलसंपन्न एवं वेददंड से दुर्वादियों का संहार करने समर्थ मत्तगज बताया है। एवं तिरुप्पावै दिव्यप्रबंध की "उन्दुमदकळित्तन्" इत्यादि अठारहवी गाथा की टीका में ऐतिह्यपूर्वक बताया गया कि श्रीरामानुजस्वामीजी मत्तगज समान हैं। वही अर्थ प्रकृत गाथा में भी उपवर्णित है ॥ .... (९)

(गाथा.) नागत्तिनणैयानैनन्दुदलाळ् नयन्दुरैशेयू मेघत्तै * वेङ्गडकोन् विडुतूदिल्विण्णप्पम् *
भोगत्तिल्वळुवाद पुदुवैयर् कोन्कोदैतमिळ् * आहत्तुवैत्तुरैप्पारवर् अडियाराहुवरे ॥ १० ॥

विलक्षणललाटशोभिनी एवं किसी प्रकारकी न्यूनता के विना परिपूर्ण भगवदनुभव करने निरत श्रीविल्लिपुत्तूर के नायक श्रीविष्णुचित्त सूरी की सुपुत्री गोदादेवी ने शेषशायी श्री वेंकटाद्रिनाथ भगवान को चाहकर, आपके संनिधि में मेघों को दूत भेजती हुई इन द्राविडगाथाओं को गाया; इनको अपने हृदय में धारणकर वाचा कीर्तन करनेवाले भगवान का नित्यकैंकर्य करने का भाग्य पाएंगे ॥ [इस गाथा में श्रीविष्णुचित्तसूरी का विशेषण, अचूक भगवदनुभव करनेवाले, बडा सुंदर है। आपने श्रीकृष्ण भगवान का जो विलक्षण अनुभव किया, (जिसका वर्णन २६० गाथाओं से आपसे किया गया है,) वह पराशर व्यास शुकादि महर्षियों को भी न मिला था, वसुदेव-देवकी, नंदगोप-यशोदा इत्यादियों को भी नहीं मिला। आपके इस असाधारण भाग्य की सूचना करती हैं श्रीगोदादेवी प्रकृत विशेषण से। [इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया ॥] .... (१०)

—* इस दशक का सारांश संग्राहक पद्य यह है *—

श्लो॥ तत्ताद्दग्दिव्यभोगानधिगमजमहादुःखनिर्विण्णचित्ता
जीमूतान् पूर्णगर्भान् नयनहररुचो वीक्ष्य संबोध्य चैनान्।
संश्लिष्येद्वेङ्कटेशो यदि कुचघुसृणक्षोदलोपं दिशन्मे
जीवेयं ब्रूत तस्मा इदमिति गदति स्माष्टमे दिव्यगोदा ॥ ८ ॥

पूर्वदशक में स्वप्नमात्र में दिव्यभोग का अनुभव पानेसे, वस्तुतः उस अनुभव के अलाभ से अत्यंत दुःख पानेवाली भगवती गोदादेवी ने पानी से भरकर सुंदर दर्शन देनेवाले मेघों को देखकर, उनका संबोधन करती हुई उनसे यों संदेश भेजती हुई यह आठवां दशक गाती हैं कि, "श्रीवेंकटेशभगवान अगर अभी आकर मेरे स्तनों का कुंकुमलेप मिटाते हुवे आलिंगन करेंगे, तो ही मैं जीवित रह सकूंगी, अन्यथा नहीं; तुम जाकर आपसे इस अर्थकी विनती कर दो ॥"

॥ नाच्चियार् तिरुमोळि में आठवां दशक समाप्त हुआ ॥
॥ आण्डाळ् तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ नवां दशक — शिन्दुरच्चेम्पोडिपोल् ॥

(विरहव्यथावर्णन तथा श्रीवनाद्रि भगवान से कैंकर्यप्रार्थन)

अवतारिका—पूर्वदशक में गोदादेवीने अपने सामने उपस्थित मेघों से यों बहुत प्रार्थना की कि, "हे मेघों! तुम श्रीवेंकटाद्रिनाथ भगवान के पास जाकर आपसे विरहजन्य मेरी दुर्दशा की विनती कर आपसे मुझको मिला दो।" परंतु किसी कारणवशात् मेघोंने यह प्रार्थना न मानी, किंतु अपने काम में निरत होकर सर्वत्र खूब पानी बरस दिया। फलतः वर्षाकाल के उचित नानाप्रकार के पुष्प तत्र तत्र बहुत फूल गये। एवं इंद्रगोप, कोयल, मोर इत्यादि नानाजातके पक्षी भी अपना सिर दिखाने लगे। गोदादेवी की तो भगवान के दर्शन पानेकी इच्छा, एवं तदलाभ प्रयुक्त विरहव्यथा बहुत बढती गयी। ऐसी अवस्था में आपके दिव्यमंगलविग्रह की याद दिलानेवाले उन पुष्पों का दर्शन सुतरां असह्य हुआ। एवं पक्षियों के दर्शन से भी यही व्यथा और बढ गयी। ऐसी असह्यवेदना का वर्णन अत्र दो दशकों से किया जाएगा। इस दुःख का परिहारार्थ मध्ये श्रीसुंदरबाहु भगवान का कैंकर्य करने की आशा भी बतायी जाती है इस दशक में॥

(गाथा.) शिन्दुरच्चेम्बोडिप्पोल् तिरुमालिरुञ्जोलैयेङ्गुम् * इन्दिरकोपङ्गळे एळुन्दुम्परन्दिट्टनवाल् *
मन्दरम्नाट्टियन्नु मदुरकोळुञ्जारुकोण्ड * शुन्दरत्तोळुडैयान् शुळलैयिल्निन्नुय्दुङ्गोलो ॥ १ ॥

तिरुमालिरुं शोलैक्षेत्र में (वनगिरि में)जहां देखो वहां, सर्वत्र, लाल सिंधूर के सदृश इन्द्रगोपकीट (तितली) उठकर, हाय! फैल गये हैं। उस समय में जब कि समस्त देवतालोगों ने शरणागत होकर क्षीरसागर से अमृत निकालकर देनेकी प्रार्थना की, तब मंदर पर्वत को मंथन दंड के रूप में स्थापित कर उससे क्षीरसमुद्र का मथन कर, अतिमधुर अमृत निकालनेवाले सुंदरबाहु भगवान के मायाजाल से मैं किस तरह से बचकर रह सकूं? (अर्थात् सुंदरबाहु भगवान् अपने अधर के स्मारक लाल इंद्रगोप कीटों को सर्वत्र फैलाकर मेरी विरहव्यथा को बढा रहे हैं; इस उद्दीपक से मैं अपनेको किस तरह से बचा सकूं?)

इस गाथा में सागर मथन से उत्पन्न अमृत का यह विशेषण दिया गया है कि—अति मधुर। आल्वारों की गोष्ठी में इस अमृत को क्षार रस कहने का संप्रदाय है। अतः यहां पर अतिमधुररस शब्द से प्रसिद्ध इस अमृत को समझना उतना उचित न होगा; परंतु साक्षात् श्रीमहालक्ष्मी जी को ही समझना चाहिए। श्रीकूरेशस्वामीजी ने श्री सुंदरबाहुस्तव में स्पष्ट शब्दों से इस अर्थ का वर्णन किया कि, "उदधिगमंदराद्रि मथिमन्थनलब्ध पयो मधुररसेन्दिराह्व सुध सुन्दरदोः परिधम्।" यह श्लोकार्ध प्रकृत गाथा के तीसरे पादका व्याख्यान है॥ .... (१)

(गाथा.) पोर्कळिरुपोरुम् मालिरुञ्जोलैयम्बूम्बुरविल् * ताकोंडिमुल्लैहळुम् तवळनहैकाट्टुहिन्न *
कार्कोळ्पडाक्कळ्निन्नु कळरिचिरिक्कत्तरियेन् * आर्किंड्होतोळी अवन्तार्शेय्दपूशलैये ॥ २ ॥

युद्ध करने समर्थ (अथवा अपने दांतों से पहाड को खोदने में निरत) मत्तगजों से परिवृत तिरुमालिरुञ्जोलै पर्वत के सानुप्रदेश में विकसित यूथिका पुष्प श्री सुंदरवाहु भगवान के मंदहास की याद दिला रहे हैं। और दूसरी कितनी लताएं भगवान के हास की याद दिलानेवाले कलिका पुष्प आदि दिखाते हुवे, मानो यों कहती हुई कि "हे गोदे! हमको देखकर भी क्या तुम जीवित रह सकोगी?" मेरा उपहास कर रही हैं। हे मेरी प्राणसखि! मेरे से अपेक्षित उन भगवान की भुजमालिका से दिये जानेवाले इस दुःख का वर्णन मैं किससे करूं? (अर्थात् सुंदरवाहु भगवान से अपने भुजपर धारण की जानेवाली पुष्पमाला पाने की मेरी इच्छा हुई; इस अपराध के लिए मुझे वडा विरहदुःख भोगना पडा है। नानाप्रकारके ये सब पुष्प व पुष्पलता उन भगवान के मंद व प्रौढ हास की याद दिलाकर मुझे सीमातीत दुःख दे रहे हैं॥)

(गाथा.) करुविळैयोण्मलर्हाळ् कायामलर्हाळ् * तिरुमाल् उरुवोळिकाट्टुहिन्नीर् एनक्कुय्वलकोन्नुरैयीर् *
तिरुविळैयाडुतिण्डोळ् तिरुमालिरुञ्जोलैनम्बि * वरिवळैयिल्पुहुन्दु वन्दिपत्तुव्वळकुळदे ॥ ३ ॥

हे मनोहर काकणपुष्पों! हे अतसीकुसुमों! मेरे अनुराग का लक्ष्य भगवान के दिव्यमंगल विग्रह की शोभा का तुम स्मारक हो। अतः तुम्हारे दर्शन से उसकी याद कर दुःख पानेवाली मुझको इस दुःख का पार कर जीवित रहने का उपाय वता दो। श्री महालक्ष्मी का क्रीडास्थल दिव्यभुज से विभूषित श्री तिरुमालिरुञ्जोलै के नाथ श्री सुंदरवाहु भगवान ने स्वयमेव मेरा घर पधारकर बलात्कार से मेरी सुंदर चूडियों का जो अपहरण किया, यह क्या उचित है? (यह तात्पर्य है— भगवान अपनी निर्हेतुक कृपा से स्वयं मेरे यहां पधारकर मिलकर चले गये; इस विश्लेष दुःख से मेरा शरीर कृश हो गया और हाथ की चूडियां निकल गयीं। इस तरह से स्वयं अनुग्रह दिखाकर वाद में उपेक्षा कर दुःखी बनाना क्या आपका उचित होगा?) .... (३)

(गाथा.) पैम्पोळिल्वाळ्कुयिल्हाळ्मयिल्हाळ् ओण्करुविळैहाळ् * वम्बक्कळङ्गनिहाळ् वण्णप्पूवैनरुमलर्हाळ् *
ऐम्बेरुम्पातकर्हाळ् अणिमालिरुञ्जोलैनिन्न * एम्बेरुमानुडैयनिरम् उङ्गळुक्केन्शेय्वदे ॥ ४ ॥

विशाल उद्यान में निवास करनेवाले हे कोकिल पक्षियों! हे मयूरों! हे रमणीय काकण पुष्पों! हे नूतन कलाफलों! हे मनोहर रंग व सुगंधवाले अतसीपुष्पों! तुम पांचों पंचमहापातकी हो। रमणीय तिरुमालिरुञ्जोलै में विराजमान सुंदरवाहु भगवान के समान रंग तुमको क्यों कर मिला है? (ठीक इस लिए मिला है कि तुम अपने इस रूप से मुझे भगवान के दिव्यमंगलविग्रह की याद दिलाकर मेरी विरहवेदना वढा सकें। अवला एवं निरपराध मुझे ऐसा दुःख देनेवाले तुम सब सचमुच पंचमहापातकी हो॥) (४)

(गाथा.) तुङ्गमलर्प्पोळिल्शूळ् तिरुमालिरुञ्जोलैनिन्न * शेङ्गट्करुमुहिलिन् तिरुवुरुप्पोल् * मलर्मेल् ।
तोङ्गियवण्डिनङ्गाळ् तोहुपूञ्जुनैहाळ् * शुनैयिल् तङ्गुशेन्दामरैहाळ् एनकोर्शरणाहुमिने ॥ ५ ॥

ऊंचे विकसित पुष्पों से अलंकृत उद्यानवनों से परिवृत तिरुमालिरुञ्जोलै पर्वत में खडे रहनेवाले कमलनयन एवं मेघश्याम भगवान के सुंदर दिव्यमंगलविग्रह के समान, पुष्पपर वैठनेवाले हे भ्रमरों के समूह!

हे सुंदर तालाबों! उन तालाबों में विकसित हे कमलपुष्पों! (उद्दीपक होकर मेरी विरहव्यथा बढानेवाले) तुमको साक्षात् यमकिंकर माननेवाली मुझको कोई शरण (यानी इस दुःख से अपने को बचाने का उपाय) बता दो॥ .... (५)

(गाथा.) नारुनरुम्बोळिल् मालिरुञ्जोलैनम्बिक्कु * नान् नूरुतडाविल्वेण्णेय् वाय्नेर्न्दुपराविवैत्तेन् *
नूरुतडानिरैन्द अक्कारवडिशिल्शोन्नेन् * एरुतिरुवुडैयान् इन्दुवन्दिवैकोळ्ळुङ्गोलो ॥ ६ ॥

सुगंधभरित उद्यानवनों से परिवृत तिरुमालिरुञ्जोलै में विराजमान कल्याणगुणपरिपूर्ण भगवान को, मैं अपनी वाणी से एक सौ घडाभर मक्खन का अर्पण करती हूं; और एक सौ घडों में भरकर क्षीरान्न का भी भोग, अपनी वाणी से लगाती हूं। क्षणे क्षणे वर्द्धमान ऐश्वर्यवाले वे सुंदरबाहु भगवान यहां पधार कर (मेरी वाचिक सेवा) इस मक्खन का और क्षीरान्न का क्या स्वीकार करेंगे?

यह गाथा, और आगे की गाथा, ये दोनों कुछ विचित्र-सी दीख पडेंगी। अर्थात् विरह दुःख वर्णन प्रकरण में उस दुःख को भूलकर सेवा करने की प्रार्थना असमंजस प्रतीत होगी। परंतु इसका यह मतलब है। असह्य दुःख होनेपर कुछ शांति पाने के लिए शिष्टलोग द्वयमंत्र का अनुसंधान करते हैं। इस तरह से हाल में गोदादेवी ने अर्थस्मरणपूर्वक द्वयमंत्र का अनुसंधान किया। उक्तमंत्र के उत्तरखंड (दूसरे वाक्य) का तात्पर्य है श्रीमन्नारायण की सेवा मांगना। अतः आपने भगवान से यही मांगा कि, "मैं प्रभु की यह मक्खन व क्षीरान्न का अर्पणरूपी सेवा करने चाहती हूं; क्या भगवान इसका स्वीकार करेंगे?" इसमें और एक बात है। विरहदुःख से अत्यंत थक जानेके कारण, हाल में गोदादेवी शरीर से सेवा न कर सकीं; अतः वाचिक सेवा करती हैं। यहां पर एक ऐतिह्य अवश्य ज्ञातव्य है। जब श्री रामानुजस्वामीजी अपनी नित्यकालक्षेप गोष्ठी में इस नाचियार तिरुमोळि का प्रवचन करते थे, तब इस गाथा का विवरण करते करते आपको ऐसा लगा कि "यद्यपि असीम विरहदुःख से संतप्त गोदादेवी शरीर से सेवा न कर सकती हुई वाचिकसेवा मात्र से तृप्त हुई। तथापि, यह तो निश्चित है कि वास्तव में ही भगवान को इस भोग का अर्पण करने की आपकी आशा थी। अतः आपके शिष्य अथवा पुत्र के स्थान में रहनेवाले हमारा कर्तव्य यह है कि आपकी इच्छा को पूर्ण करना।" तब आप शीघ्र ही प्रवचन को समाप्त कर शिष्यमंडली के साथ तिरुमालिरुञ्जोलै पधारकर सुंदरबाहु भगवान को एक सौ घडा मक्खन का एवं एक सौ घडा क्षीरान्न का अर्पण कर दिया। बाद में वहां से लौटते आपने श्रीविल्लिपुत्तूर पधारकर गोदादेवी के दर्शन किये। तब गोदादेवी अत्यधिक आनंद से एक बालिका के रूप में सामने आकर श्री स्वामीजी को गले लगाकर बोल उठीं कि, "अहो! मेरी इच्छा को पूर्णकरनेवाले आप मेरे बडे भाई हो।" तबसे श्री स्वामीजी का विरुद हुआ, गोदाग्रज॥ .... (६)

(गाथा.) इन्नुवन्दित्तनैयुम् अमुदुशेय्दिडप्पेरिल् * नान् ओन्नुनूरायिरमाकोडुत्तु प्पिन्नुमाळुञ्जेय्वन् *
तेन्नल्मणङ्गमळुम् तिरुमालिरुञ्जोलैतन्नुळ्निन्नपिरान् * अडियेन्मनत्तेवन्दुनेर्पडिले ॥ ७ ॥

जहां पर सुगंधभरित दक्षिण मारुत चलता है, ऐसे तिरुमालिरुञ्जोलै में विराजमान हमारे स्वामी सुंदरबाहु भगवान अगर आज यहां पधारकर मेरे से वाचा अर्पित इस सेवा का स्वीकार करेंगे, और मेरे हृदय में अगर नित्यवास करेंगे, तो यह आपकी दासी मैं उक्त एकैक घडे के लिए फिर सौ सौ अथवा हज र हजार घडों का अर्पण कर, तदुपरांत आपकी दूसरी सर्वविध सेवा भी करूंगी ॥

भगवान के परिपूर्ण ऐश्वर्यवाले और अत एव अवाप्त समस्त काम होने से, आपको किसी से किसी प्रकार की सेवा लेने की आवश्यकता न रहती है। अतः भक्तपर अनुग्रह करने के उद्देश्य से ही आप किसी की सेवा को अपनाते हैं। इसलिए भक्त का काम यह होगा कि अपनी सेवा का स्वीकार करनेवाले भगवान के विषय में कृतज्ञ होना और तदनुरूप कुछ काम करना। दूसरी बात यह भी है कि क्षुद्रमानव भगवान की सेवा कर, उसके प्रतिफलतया आपसे कुछ अल्पफल मांगते हैं। परंतु तत्ववेत्ता अनन्य सेवक उक्तप्रकार से परिपूर्ण भगवान जब अपनेसे की जानेवाली अत्यल्प सेवा का स्वीकार करते हैं, तब आपका महान अनुग्रह समझकर उसके लिऐ बडे कृतज्ञ होते है और तदनुरूप कुछ कार्य में प्रवृत्त होते हैं। इस न्याय से गोदादेवी प्रकृत गाथा में कहती हैं कि "अगर भगवान मेरे यहां पधारकर, मेरे हृदय में विराजकर पूर्वोक्त मेरी सेवा का स्वीकार करेंगे, तो मैं आपके विषय में बहुत कृतज्ञ हो जाऊंगी और शतशः आपकी सेवा करूंगी ॥ .... (७)

(गाथा.) कालैयेलुन्दिरुन्दु करियकुरुविकणङ्गळ् * मालिन्वरवुशोल्लि मरुळ्पाडुदल्मेय्म्मैकोलो *
शोलैमलैप्पेरुमान् तुवरापदियेम्बेरुमान् * आलिनिलैप्पेरुमान् अवन्वार्त्तैयुरैक्किन्नवे ॥ ८ ॥

काले रंगवाले टिट्टिभपक्षिके समूह प्रातःकाल में उठकर तिरुमालिरुञ्जोलै के नाथ, द्वारकाधीश एवं वटपत्रशायी उन भगवान की वार्ता बोल रहे हैं; इस तरह से अव्यक्तमधुर स्वर से ये जो भगवान के इधर पधारने का गान कर रहे हैं, यह क्या सत्य ही होगा? [अर्थात् इनके गानानुसार क्या भगवान इधर पधारेंगे?] .... (८)

(गाथा.) कोङ्गलरुम्बोलिल् मालिरुञ्जोलैयिल्कोन्ऱैहळ्मेल् * तूङ्गुपोन्मालैहळोडु उडनाय्निन्ऱु तूङ्गुहिन्ऱेन् *
पूङ्गोल्तिरुमुहत्तु मडुत्तूदिय शङ्गोलियुम् * शार्ङ्गविल्नाणोलियुम् तलैप्पेय्वदेञ्जान्ऱुकोलो ॥

विकसितसुगंधपुष्पवाले वृक्षों से परिवृत तिरुमालिरुञ्जोलै पर्वतपर रहनेवाले कोन्रै नामक रौद्रवृक्षों में लटकनेवाले पुष्पों की तरह मेरा जन्म भी व्यर्थ हो रहा है; (भगवान से अपने) अतिरमणीय होठ पर रखकर बजाये जानेवाले पांचजन्यशंख की ध्वनि, एवं शार्ङ्गनामक आपके दिव्यधनुष का ज्याशब्द, ये दोनों कब मेरे समीप हो जायंगे? [अर्थात् इन दो ध्वनियों को मैं अपने कान से कब सुनूंगी?]

इस पद्य का अर्थ कुछ निगूढ है। श्रीवनाद्रि में कोन्रै नामक रौद्रवृक्ष बहुत रहते हैं। वर्षाकाल में ये बडा सुंदर पीले फूल फूलते हैं। परंतु यह पुष्प भगवान को नहीं चढाया जाता है; दूसरी देवता की पूजा में तो उपयुक्त हो सकता है। किंतु भगवान का क्षेत्र होने से वहां देवतांतर के भक्त नहीं आते हैं; भगवद्भक्तों को तो उस पुष्प से काम नहीं है। फलतः अपने उपयोग करनेवालों के अभाव से वह पुष्प

सर्वथा बेकार होता है। गोदादेवी प्रकृत गाथा के पूर्वार्ध में यों कहती हैं कि भगवान के उपयोग के लिए ही जन्म लेनेवाली मैं आपकी उपेक्षा से उक्त रौद्रपुष्प की तरह व्यर्थजन्मा हो रही हूं। अर्थात् दूसरा कोई मानव मेरा भोग न कर सकता है और उपभोक्ता भगवान उपभोग करने नहीं चाह रहे हैं; फलतः मेरा जन्म ही बेकार हो गया॥

उत्तरार्ध में गोदादेवी भगवान के दो दिव्यायुध, पांचजन्यशंख और शार्ङ्गधनुष की अवाज सुनने जो चाहती हैं, वह भी अभिप्रायगर्भ हैं। दिव्यायुधों की ध्वनि सुननेपर यह निश्चय होता है कि भगवान भी पधार रहे हैं, और इससे मन की शांति मिलती है। पूर्वकाल में ऐसा हुआ भी। तथा हि—श्रीरामावतार में युद्धकांडकी यह कथा है—श्री रामचंद्रजी समुद्रपर पुल बांधकर उसको पारकर जब लंका की ओर आगे बढते रहे, तब दुष्ट रावण ने सीताजी के सामने एक मायारामशिर फेंककर आपसे कहा कि "हे वृथा अभिमानिनी सीते! यह देखो! तुम्हारा राम मेरे सेनानायक से मारा गया" इत्यादि। यह दृश्य देख कर और रावण का वचन सुनकर सीताजी बहुत दुःखी हो गयी और रोने लगी। परंतु उतने में दूरसे श्रीरामचंद्र के शार्ङ्गधनुष की बडी अवाज सुनने में आयी, जिसको सुनते ही सीतादेवी भगवत्सांनिध्य का अनुभव करती हुई, अपना दुःख छोडकर बहुत प्रसन्न हो गयी। रुक्मिणीविवाह प्रकरण में भी ऐसा ही एक प्रसंग बना। आपका भाई रुक्मी ने शिशुपाल के साथ आपका विवाह कराने का निश्चयकर उसके लिए तैयारी कर रखा था। परंतु रुक्मिणीदेवी ने अपने मन से श्रीकृष्ण का ही वरण कर चुका था और आपको संदेश भी भेजा कि इस पापी शिशुपाल से मुझको बचाकर अपना लीजिए। भगवान ने भी ऐसा ही करनेका प्रतिसंदेश भेज दिया था। परंतु यह सब रहस्यमय था। प्रकाश में शिशुपाल के साथ ही आपके विवाह के लिए सब सन्नाह हो गये थे, और विवाहमुहूर्त भी आ गया। मगर भगवान के पधारने की कोई सूचना तक न दीख पडी। रुक्मिणीदेवी के मन में इतनी कातुरता भरी थी जो कही न जा सकती थी। उतने में श्रीकृष्ण भगवान उस नगर का बाह्योद्यान पधारकर अपना शंख बजाया। यह अवाज सुनते ही रुक्मिणीदेवी ने समझ लिया कि भगवान पधार गये हैं और शीघ्र ही मेरा मनोरथ सफल होनेवाला है। तथा च शार्ङ्गध्वनि और शंखध्वनि ये दोनों, अपनी दिव्य महिषियों का सीमातीत दुःख मिटाने के लिए भगवान से प्रेषित, अपने आगमन का सूचक दूत सिद्ध हुई। अब गोदादेवी ऐसी आशा करती है कि हाल में मेरे से अनुभूयमान दुःख भी पूर्वोक्त सीतादेवी के तथा रुक्मिणीदेवी के दुःख से कुछ कम नहीं है; अतः उन देवियों पर अनुग्रह करनेवाले भगवान मेरे पास भी आयुध ध्वनिरूप दूत भेजकर क्या मुझको अनुगृहीत न करेंगे॥ (९)

(गाथा.) शन्दोडुक्कारहिलुमुशुमन्दु तडङ्गळ्पोरुदु * वन्दिळियुमशिलम्बारुडै मालिरुञ्जोलैनिन्न सुन्दरनै *
शुरुम्बार्कुळर्कोदै तोहुत्तुरैत्त * शेन्दमिळ्प्पत्तुम्वल्लार् तिरुमालडिशेर्वर्हले॥ १०॥

चंदनकाष्ठ एवं अगुरुकाष्ठों को उठा लेकर, अनेक तालावों को भी भर भर कर बहनेवाली नूपुरगंगा से अलंकृत तिरुमालिरुञ्जोलै गिरि में विराजमान सुंदरबाहु भगवान को लक्ष्यकर भ्रमरपरिवृत केशवाली गोदादेवी से अनुगृहीत इन दस सुंदरद्राविडी दिव्यगाथाओं को जाननेवाले श्रीमन्नारायण के पादारविंद पहुंचेंगे। [इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया]॥ .... (१०)

—* इस दशक का सार संग्राहक पद्य यह है *—

श्लो॥ संदिष्टस्सोऽथ मेघो निजसलिलभरं सर्वतश्चाभिवर्षन्
नानापुष्पाणि हृद्यान्यभिनवसुषमान्युद्गमय्य प्रयातः।
तेषां वीक्षामसह्यां भृशमभिदधती श्रीवनाद्रीशभोग्यं
स्वाद्वन्नं चार्पयन्ती निजमुखवचसा लक्ष्मणार्यस्वसाऽभूत्॥ ९॥

पूर्वदशक में गोदादेवी से संबोधित वह मेघ सर्वत्र खूब पानी वरसाकर, सुगंध एवं कांतियुक्त नानाप्रकार के फूलों को खिलाकर चला गया। इस दशक में गोदादेवी यों कहती हैं कि इन पुष्पों का दर्शन मेरे लिए बहुत दुःखकारक है [क्यों कि विरहदशा में उद्दीपक वस्तुओं का दर्शन असह्य होता है]; और सुंदरबाहु भगवान को क्षीरान्न का भोग भी आपें अपनी वाणी से अर्पण करती हैं॥ (९)

॥ नाच्चियार् तिरुमोळि में नवां दशक समाप्त हुआ॥

॥ आण्डाळ् तिरुवडिहळे शरणम्॥

॥ दसवां दशक—कार्कोडल् पूकाळ्॥

(विरहव्यथावर्णन)

अवतारिका—पूर्वदशक में गोदादेवी की जो विरहव्यथा हुई, वह इस दशक में भी चलती है और बढती है। आठवें दशक में गोदादेवी से संदिष्ट एवं दूतत्वेन प्रेषित मेघों ने खूब पानी वरसाकर नाना जात के पुष्पों को विकसित कर दिया। उनके बीच में श्रीकृष्ण भगवान के दिव्यमंगलविग्रह के समान रूपवाले अतसीपुष्प बहुत फूल गये। उनके दर्शन से गोदादेवी की विरहव्यथा और खूब बढ गयी; क्यों कि वे श्रीकृष्ण भगवान की याद दिला देते थे। इस अपने दुख का वर्णन गोदादेवी से इस दशक में किया जाता है—"हा हा! हे वनकुसुमों! मुझे मार डालने के उद्देश्य से तुमको इधर भेज देनेवाले सागरवर्ण भगवान किधर रहते हैं? हाय तुम्हारे से किये जानेवाले अविनय के बारे में किसके सामने रोऊं? मैं तो अपने मन को अपना वश न रख सकती हूं। हे नाचनेवाले मोरों! तुम्हारे पाद पर मैं पडकर प्रणाम करूंगी। कृपा कर तुम्हारे नर्तन को बंद करो। मेरे स्वामी की याद दिला कर तुम मुझे मार रहे हो। हे गान करनेवाले कोकिलों! यह क्या तुम्हारी कर्णकठोर ध्वनि है? इस गान से विरत हो जा। श्रीवेंकटाद्रि के नाथ भगवान अगर इधर शीघ्र पधारकर मुझको संजीवित करेंगे, तो खुद मैं ही तुमको बुलाकर तुम्हारा गान सुनूंगी इत्यादि॥

गाथा.) कार्क्कोडल्पूक्काळ् कार्क्कडल्वण्णनेन्मेल् * उम्मै प्पोक्कोलज्ञेयुदु पोरविडुत्तवनेङ्गुत्तान् *
आर्क्कोविनिनाम् पूशलिडुवदु * अणितुळाय् त्तार्क्कोडुम्नेञ्जन्तन्नै प्पडैक्कवल्लेनन्दो॥ १॥

हे काले रंगवाले कोडल नामक पुष्पों। तुमको युद्धके लायक हो, इस तरह से सजाकर मेरे ऊपर आक्रमण करने के लिए यहां भेजनेवाले श्यामल सागर वर्णवाले घातुक श्री कृष्ण किधर रहते हैं? तुमसे बहुत संपीडित मैं अपनी दुरवस्था को किससे बताऊंगी? ऐसी दशा में भी यह मेरा मन उनकी तुलसी माला में आशा रख कर, उसके पीछे दौड रहा है। हाय! मैं क्या करूं?

कोडल—यह एक जात के काले पुष्प का नाम है, जो भगवान के दिव्यमंगलविग्रह की याद दिलाकर विरहियों को बहुत त्रास देता है॥ .... (१)

(गाथा,) मेल्तोन्िप्पूक्काळ् मेलुलहङ्गळिन्मीदुपोयू * मेल्तोन्तुञ्ञोदि वेदमुदल्वर्वलङ्गैयिन् *
मेल्तोन्नुमाळियिन् वेञ्जुडर् पोलच्चुडादु * एम्मै मात्तोलैप्पट्टवर् कूट्टत्तुवैत्तुक्कोळ्हित्तिरे॥२॥

हे (वृक्षादियों के) ऊपर खिलनेवाले पुष्पों! ऊपर के समस्त लोकों को पारकर विराजमान परमपद के निवासी वेदवेद्य श्रीमन्नारायण के दाहिने हाथ में शोभायमान चक्रराज के गरम प्रकाशवत् संताप न करते हुवे, उन भगवान के नित्यकिंकरों की गोष्ठी में क्या तुम मुझे मिला सकते हो? .... (२)

(गाथा.) कोवैमणाट्टि नीयुन्कोळुङ्गनिकोण्डु * एम्मै आवितोलैवियेल् वायलहर् दम्मैयञ्जुदम् *
पाविये‌न्तोन्ि प्पाम्बणैयार्क्कुन्दम्पाम्बुपोल् * नावुमिरण्डुळवायित्तु नाणिलियेनुक्के॥ ३॥

हे देवि बिंबलते! तुम अपने सुंदर पुष्पों से भगवान श्रीकृष्ण के मनोहर होठ की याद करती हुई, क्यों कर मुझको सता रही हो? बिंबफल समान सुंदर अधरवाले उन भगवान के स्मरण से भी मैं डरती हूं। पापिनी मेरा जन्म होने के बाद शेषशायी भगवान भी अपने शयन शेषजी के समान दो जीभवाले बन गये! दूसरों के विषय में आपकी ऐसी वर्ताव नहीं है, परंतु लज्जाशून्य बेचारी मेरे विषय में ही ऐसा हुआ है।" [अर्थात् भक्तरक्षण करने के विषय में अपनी प्रतिज्ञा को भी लांघकर आप अकेली मेरी उपेक्षा कर रहे हैं। वचन भ्रष्ट को दो जीभवाला कहना लोकस्वभाव है। सत्यवचनत्वेन प्रसिद्ध भगवान भी शायद दो जीभवाले शेषजी के संबंध से स्वयं दो जीभवाले बन गये। इस तरह से वचन भ्रष्ट होने पर भी मेरा मन उन्ही के पीछे पडा है अहो! मेरी निर्लज्जता है!] .... (३)

(गाथा.) मुल्लैप्पिराट्टि नीयुन्मुरुवल्हळ्कोण्डु * एम्मै अल्लल्विलैवियेल् आळिनङ्गायुन्नडैक्कलम् *
कोल्लैयरक्कियै मूक्करिन्दिट्ट कुमरनार् शोल्लुम्पोय्यानाल् * नानुम्पिरन्दमै पोय्यन्ने॥ ४॥

हे देवि! गंभीरस्वभाववाली यूथिकालते! भगवान के मंदस्मित की याद दिलानेवाले तुम्हारे विकास से मुझे त्रास मत दिया दो। इस लिये मैं तुम्हारी शरण में जाऊगी। मर्यादा का उल्लंघन करनेवाली शूर्पणखा का नाक काट डालनेवाले भगवान श्रीरामचंद्र का आश्रितरक्षण विषयक प्रतिज्ञावचन भी अगर मिथ्या हो तो होने दो, परंतु श्रीविष्णुचित्तस्वामीजी की पुत्री के रूप में मेरा जन्म भी क्या मिथ्या होगी? (यह भाव है "मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथंचन" (मित्र होने की भावना से जो मेरे पास आ जाएगा, उसका मैं किसी कारण से त्याग न करूंगा; अर्थात् जरूर मैं उसकी रक्षा करूंगा।) इत्यादि भगवान का भक्तरक्षण प्रतिज्ञावचन कभी भी व्यर्थ न होगा; तो भी निरंकुशस्वतंत्र होने के कारण, आप किसी समयपर भक्त की उपेक्षा भी करते होंगे; तथापि आचार्य का संबंध कभी भी, किसी भी दशा में, व्यर्थ न होगा। अतः हाल में गोदादेवी यों कहती हैं कि, भगवान किसी अज्ञात कारणवशात् अपनी प्रतिज्ञा को भी भूलकर मेरी उपेक्षा करते होंगे; परं तु यह बात न बन सकती है। क्यों कि मैं श्रीविष्णुचित्तस्वामीजी की

अभिमानपुत्री होकर आपकी कृपापात्र हूं। ऐसी मेरी उपेक्षा करना भगवान के लिए भी अशक्य है। अत एव शास्त्र पुकारता है कि, "सिद्धिर्भवति वा नेति संशयोऽच्युतसेविनाम्। न संशयोऽस्ति तद्भक्तपरिचर्यारतात्मनाम॥" अर्थात् खुद भगवान के श्रीपादों का आश्रयण करनेवालों को यह शंका होगी कि सिद्धि मिलेगी या नहीं। परंतु भगवद्भक्तों का आश्रयण करनेवालों को कभी भी ऐसी शंका न होगी। इस तरह से आचार्य संबंध की श्रेष्ठता इस गाथा से बतायी जाती है]॥ .... (४)

(गाथा.) पाडुङ्कुयिल्हाल् ईदेन्नपाडल् * नल्वेङ्गड नाडर्नमक्कोरुवाळ्वुतन्दाल् वन्दुपाडुमिन् *
आडुङ्करुळक्कोडियुडैयार् वन्दरुळ्शेय्दु * कूडुवरायिडिल् कूवि नुम्पाट्टुकल्केट्टुमे ॥ ५ ॥

हे गान करनेवाले कोकिलों! कर्णकठोर यह ध्वनि कौनसा गीत होगा? बडे श्रेष्ठ श्रीवेंकटाद्रि में विराजमान भगवान यदि मेरे पर अनुग्रह दर्शावेंगे, तो तब तुम इधर आकर गाओ। आनंदनर्तनशील गरुडध्वज भगवान कृपासे इधर पधारकर मेरे से अगर मिलेंगे, तो तब खुद मैं ही तुमको बुलाकर तुम्हारा गान सुनूंगी॥ [कोकिल का गान विरहियों को त्रास देता और संश्लेष काल में आनंद देता]॥....(५)

(गाथा) कणमामयिल्हाळ्कण्णपिरान्तिरुक्कोलम्पोन्नु * अणिमानडम्पयिन्नाडुहिन्नीर्क्कु अडिवीळ्हिन्नेन् *
पणमाडरवणै प्पर्पलकालमुम्पळ्ळिकोळ् * मणवाळर्नम्मैवैत्त परिशिदुकाण्मिने ॥ ६ ॥

हे श्रेष्ठ मयूरों के गण! श्रीकृष्ण भगवान के दिव्यमंगलविग्रह के समान तुम्हारा शरीर दिखाकर नाचनेवाले तुम्हारे पैरों पर पडकर मैं मांगती हूं कि दुःख बढानेवाली इस चेष्टा से विरत हो जा। हमेशा शेषशयन पर लेटनेवाले श्रीरंगनाथ भगवान ने हाय! मुझे यह दुर्दशा दी॥ [शेषजी से सकलविध कैंकर्य लेनेवाले भगवान से सर्वथा उपेक्षित होने के कारण, अत्यंत विरहव्यथा से पीडित होकर तुम्हारे दर्शन करने में भी अशक्त बनकर मैं तुम्हारा नमस्कार करती, तुमसे इस नृत्य को बंद कर देने की मांग कर रही हूं।] (६)

(गाथा.) नडमाडित्तोहैविरिक्किन्न मामयिल्हाळ् * उम्मै नडमाट्टङ्गाण प्पावियेन्नानोर्मुदलिलेन् *
कुडमाडुकूत्तन् कोविन्दन्कोमिरैशेय्दु * एम्मै उडैमाडुकोण्डान् उङ्गलुक्किनियोन्नुपोदुमे ॥

पिंछ खोलकर नाचनेवाले हे सुंदर मोर! तुम्हारा यह मनोहर नृत्य देखने की सामग्री मेरे पास अब न रहती है। [अर्थात् विरहव्यथा से पीडित होने के कारण, मैं अपनी आँखों से तुम्हारा यह सुंदर नृत्य न देख सकती हूं।] घटनर्तन करने समर्थ भगवान वासुदेव ने अपनी विलक्षण लीला से मेरा सर्वस्व का भी अपहरण कर लिया। ऐसी अवस्था में मेरे सामने नाचते हुवे मेरे प्राणों का भी अपहरण कर देना तुम्हारो लिए बडा अनुचित है॥ .... (७)

(गाथा.) मळैये मळैये मण्पुरम्पूशि उळ्ळायूनिन्न मेलुहूत्तिनाप्पोल् * ऊत्तुनल्वेङ्गडत्तुळ्निन्न *
अळहप्पिरानार् दम्मै एन्नेञ्जत्तहप्पड-त्तळुवनिन्नु * एन्नैत्तदैत्तुक्कोण्डु ऊत्तवुम्वल्लैये ॥ ८ ॥

हे मेघ! हे मेघ! बाहर मिट्टी का लेप लगाकर, अंदर के मधूच्छिष्ट को निकाल देनेवालों की तरह, मुझको पहले गले लगाकर, पीछे छूट कर मेरे अंदर रहनेवाली सारभूत वस्तु आत्मा को विरहव्यथा से द्रव बनाकर निकाल देनेवाले सुंदरमूर्ति श्री वेंकटाद्रिनाथ भगवान, जैसे मेरे से नित्यसंश्लिष्ट हो जाय, इस तरह से (आपको हमेशा मेरे साथ विराजमान) बना कर, फिर खूब बरसो॥ (यह भाव है—कांस्य आदि धातु से प्रतिमा बनानेवाले लोग, पहले मिट्टी से प्रतिमा बनाकर उसके ऊपर मधूच्छिष्ट का लेप कर, उसके ऊपर मिट्टी से दूसरा लेप लगाकर, बीच में रहनेवाले मधूच्छिष्ट को एक छेदके द्वारा बाहर निकाल देते है और उसकी जगह कांस्य, पीतल इत्यादि लोह को नरम कर घुसा देते हैं। अब गोदादेवी इस गाथा से कह रही हैं कि श्रीवेंकटनाथ भगवान मुझसे ऐसा व्यवहार कर रहे हैं। बाहर के मिट्टी के लेप की जगह भगवान के दिव्यमंगलविग्रह को समझना चाहिए। अर्थात् भगवान ने अपने श्रीविग्रह से गोदादेवी का आलिंगन कर उसके ऊपर लेप जैसा बना दिया। मधूच्छिष्ट की जगह अंतस्सारभूत आत्मवस्तु को समझना चाहिए। भगवान से एक बार मिलकर छूट जाने से, विरहव्यथा से संतप्त गोदादेवी की आत्मा नरम होकर मधूच्छिष्ट की तरह बाहर निकल रही हैं। "अगर आप मेरे से नित्यसंश्लेष करेंगे, तो मेरी ऐसी दुर्दशा न होगी। अत: हे मेघ! तुम कृपा से मुझको भगवान से मिला कर बाद में खूब बरसो; जब कि मुझे यह विरह व्यथा न होगी॥" .... (८)

(गाथा.) **कडलेकडलेयुळैक्कडैन्दु कलक्कुरुत्तु * उडलुळ्पुहुन्दुनिन्नु ऊरलरुत्तवर्क्कु * एन्नैयुम्**
उडलुळ्पुहुन्दुनिन्नु ऊरलरुक्किन्नमायर्क्कु * एन् नडलैहळेल्लाम् नाहणैक्के शेन्नुरैत्तिये॥ ९॥

हे सागर! सागर! भगवान ने मंदर पर्वत से अपने शय्यारूपी तुम्हारा मथन कर, तुमको कलुषितकर तुम्हारे अंतस्सारभूत अमृत को भी निकाल दिया न? इसी तरह से मेरी अंतस्सार आत्मा का भी अपहरण कर देनेवाले आपसे विनती करने के लिए, आपकी शय्या शेषजी से मेरे इस अगाध दु:ख को कह दो॥ [समुद्र का घोष सुनकर गोदादेवी उसका संबोधन करती हैं। भगवान से समुद्र का संबंध रहता है—भगवान सागर में शयन करते है और सागरवर्ण भी पुकारे जाते हैं। अत: इस संबंध के स्मरण से, उस सागर से आप विनती करती हैं कि, "हे समुद्रराज! मेरी दुर्दशा को भगवान से निवेदित करो; अथवा आपकी शय्या शेषजी से निवेदित करो; शेषजी भगवान से सुनायेंगे। तुम्हारा हमारा भी एक समानभावरूप संबंध रहता है। पूर्वकाल में भगवान ने तुम्हारा मथन कर अमृत निकाल कर तुमको निस्सार बना दिया; इसी तरह से आपने मेरे से पहले संश्लिष्ट होकर, बाद में विश्लेष दु:ख देकर मुझ को भी निस्सार बना दिया है। इस रीति से हम दोनों एक समान हो गये। अत: तुम मेरे लिए उक्त विज्ञापनरूपी उपकार अवश्य करो॥] .... (९)

(गाथा.) **नल्लवेन्तोळि नाहणैमिशैनम्परर् * शेल्वर् पेरियर् शिरुमानिडवर् नाम्शेय्वदेन् ***
विल्लिपुदुवै विट्टुशित्तर् तङ्गळ्देवरै * नल्लपरिशुवरुविप्परेल् अदुकाण्डुमे॥ १०॥

हे मेरी प्यारी सखि! शेषशय्यापर शयन करनेवाले भगवान बडे श्रीमान हैं; सब से श्रेष्ठ हैं; हम तो क्षुद्र मानव मात्र हैं। हाय! हम क्या कर सकते हैं? सर्वाधिक उन भगवान से अति क्षुद्र हमारी

मिलाप किस तरह से होगी? (ऐसी चिंता होनेपर इस प्रकार से मन की शांति मिल सकती है कि—) हमारे आचार्य श्रीविल्लिपुत्तूर के स्वामी श्री विष्णुचित्तसूरिवर्य, सर्वथा अपने विधेय भगवान को सुकर सदुपायों से अपने पास बुलाकर अगर विराजमान करावेंगे, तो तब हम विना क्लेश उनके दर्शन कर सकेंगे। [इसका यह तात्पर्य है कि आचार्य के द्वारा ही भगवान मिल सकते हैं, अन्यथा नहीं। इस दशक में फलश्रुति नहीं दीख पडती है; तथापि यही गाथा फलश्रुति भी मानी जा सकती है। तथाहि आचार्य निष्ठाबल से भगवान सुलभ होते हैं, यही इस पद्य का तात्पर्यार्थ बताया गया। इससे यह अर्थ सूचित किया जाता है, कि इस दशक का अध्ययन करनेवाले गोदादेवी के भक्त बनकर आपके द्वारा भगवान को भी प्राप्त कर सकते हैं]॥ .... (१०)

- ❋ इस दशक का तात्पर्य संग्राहक पद्य यह है ❋—

श्लो॥ वर्षाकालप्रफुल्लान्यविशयितरुचीन्यद्भुतानि प्रसूना-
न्यालोक्योद्विग्नचित्ता हरितनुसुषमां संस्मरन्ती रटन्ती॥
दृष्ट्वा नृत्ताभिरामानपि च शिखिगणान् कोकिलानां च नादं
श्रुत्वाऽसह्यार्तिभूम्ना कलितविलपना बोभवीत्यत्र गोदा॥ १०॥

इस दशक में गोदादेवी वर्षाकाल में फूलनेवाले मनोहर रंगवाले नानाप्रकार के सुंदर पुष्पों को देखकर, उससे भगवान के दिव्यमंगलविग्रह की याद कर, विरहव्यथा से अत्यंत उद्विग्न होकर हाय हाय करती हुई, और मनोहर नाचनेवाले मोरों को देखकर, तथा कोयलों का गान सुनकर अत्यंत दुःख के मारे प्रलाप करती हैं॥ .... (१०)

॥ नाचियार् तिरुमोळि में दसवां दशक समाप्त हुआ॥
॥ आण्डाळ् तिरुवडिहळे शरणम्॥

॥ ग्यारहवां दशक—तामुहक्कुम् तम् कैयिल्॥

(विरहव्यथावर्णन, अपनी दिव्यमहिषियों पर भगवत्कृत अनुग्रह का वर्णन)

अवतारिका—इस दशक में गोदादेवी, भूदेवी सीतादेवी रुक्मिणीदेवी इत्यादि अपनी रानियों के प्रति भगवान से प्रदर्शित अनुग्रहविशेषों का ध्यान करती हुई, शायद यों कहती रोती हैं कि, "इसी तरह से मेरे पर भी अनुग्रह दिखाने योग्य, शेषशायी, सर्वजगत के स्वामी मेरे नाथ, श्रीमान रंगनाथ भगवान, क्यों कर हाल में मेरी उपेक्षा कर रहे हैं? आप तो "अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन" (मैं कभी असत्य न बोला हूं, न वा आगे बोलूंगा;) "रामो द्विर्नाभिभाषते" (श्री राम दो बात न कहेगा) "न मे मोघं वचो भवेत्" (मेरा वचन कभी भी व्यर्थ न होगा) इत्याद्युक्त प्रकार से जरूर सत्यवचन हैं। परंतु दो जीभवाले, भुजंग शेषजी के साथ रहने से, आप भी दो जीभवाले, यानी मिथ्यावचन बन गये! (अथवा, शेषजी का काम है, लक्ष्मीजी की तरह पुरुषकार कृत्य करना; अर्थात् संसारी चेतनों को

भगवान से मिला देना। ऐसे महात्मा के साथ ही विराजमान होते हुवे भी भगवान मेरे ऊपर अनुग्रह न कर रहे हैं; यह तो बडे आश्चर्य की बात है।) हिरण्याक्ष नामक असुर से अपहृत भूदेवी का उद्धार करने के लिए आपने निकृष्ट वराह के रूप को भी अपनाया। सीतापहरण होने पर आपने विरहव्यथा से पीडित होकर, मधु, फल, मांस इत्यादि भोग्य पदार्थों का बिलकुल उपभोग न किया; नवा नींद ली; नवा अपने शरीर में पीडा पहुंचाने वाले मशक, मत्कुण, वृश्चिक, सर्प आदियों की परवाह की। इस तरह से उस समय में आपने कल्पनातीत दुःख का अनुभव किया, और अपनी प्रेयसी की प्राप्ति के लिए बहुत प्रयत्न उठाया। और एक समय में शिशुपाल के साथ अपना विवाह होने का निश्चय सुनकर अतिमात्र दुःख पाने वाली रुक्मिणीदेवी को अपनाने के लिए बहुत दूरदेश से आप अतिशीघ्र पधार गये। इस तरह से उन उन अपनी प्रेयसियों के प्रति अत्यंत प्रेमादरसे अतिमानुष दिव्य चेष्टितों के कर्ता वे ही भगवान् उनकी समान अपनी दिव्यमहिषी मेरे विषय में, हाय! इतने उदासीन बन गये हैं; इस दुःख का मैं किस तरह से सहन करूं?" इत्यादि॥ *

गाथा.) ताम्रुहक्कुन्तन्कैयिल् शङ्गमेपोलावो * याम्रुहक्कुमेन्कैयिल् शङ्गम्रुमेन्दिळैयीर् *
तीम्रुहत्तु नाहणैमेल् शेरुन्तिरुवरङ्गर् * आम्रुहत्तैनोक्काराल् अम्मनेयम्मने॥ १॥

हे भूषणालंकृत सुंदरियां! विषाग्नि का वमन करने वाले शेषशयन पर शयन करनेवाले श्रीरंगनाथ भगवान मेरा मुख भी न देखने चाह रहे हैं। (इस से मेरा शरीर बहुत कृश हो गया और हाथ से चूडियां निकलकर गिर गयीं।) मेरे अत्यंत इष्ट ये चूडियां, भगवान के प्रेमपात्र और उनके हाथ में विराजमान शंखराज के समान क्या नहीं होती है? (अर्थात् जिस तरह से भगवान अपने इष्ट शंखराज को एक क्षण भर के लिए भी अपने हाथ से विरहित न करते हैं, इसी तरह से मेरे हाथ की चूडियों को भी हमेशा के लिए स्वस्थान में स्थापित रखना आपका कर्तव्य है। यह तो तभी बनेगा, जब कि आप मेरेसे नित्य संश्लेष करेंगे। अर्थात् अपने इष्ट शंख के समान अतिश्रेष्ठ मेरे करवलय पर कृपा कर उनको स्वस्थान में ही स्थापित रखने के लिए, क्या भगवान को मुझपर अनुग्रह न करना चाहिए? [हे सुंदरियां! तुम लोग भगवान से यह पूछ लो॥] .... (१)

(गाथा.) एळिलुडैयवम्मनैमीर् एन्नरङ्गत्तिन्नमुदर् * कुळललहर्वायलहर् कण्णलहर् * कोप्पूळिल्
एळुकमलप्पूवलहर् एम्मानार् * एन्नुडैय कळल्वळैयैः ताम्रुङ्कळल्वळैयेयाक्किनरे॥ २॥

हे सुंदरी माताएं! मेरे परमभोग्य दिव्यामृत के समान श्रीरंगनाथ भगवान, अपने दिव्य केशपाशों से सुंदर हैं; दिव्य अधर से सुंदर हैं; दिव्य नेत्रों से सुंदर हैं; दिव्य नाभी में समुत्पन्न दिव्य कमल पुष्प से सुंदर हैं। ऐसे सर्व प्रकार सुंदर मेरे नाथ आप मेरे हाथ की चूडियों को हमेशा निकाल ही रहे हैं। [अर्थात् आप अपना संश्लेष न देकर, मुझे दुःखी, और अत एव कृश बना रहे हैं, जिससे चूडियां कभी भी हाथ में न ठहरती हैं; अपितु निकल जाती हैं॥].... .... (२)

(गाथा.) पोङ्गोदमुङ्गूळ्न्द पुवनियुम् विण्णुलहुम् * अङ्गादुम् शोरामे आळ्हिन्नवेम्बेरुमान् *
शेङ्गोलुडैय तिरुवरङ्गच्चेल्वनार् * एङ्गोल्वळैयाल् इडर्तीर्वराहादे ॥ ३ ॥

लहरों से समावृत सागर से परिवृत भूमि का एवं परमपद का ठीक परिपालन करनेवाले दिव्याज्ञादंड से विभूषित श्री रंगनाथ भगवान मेरे हाथ की चूडियों का अपहरण करने से क्या श्रीमान बन जाएंगे? [अर्थात्, उभय विभूतिनाथ होते हुवे भी आप मेरी चूडियों का, क्यों कर अपहरण करते हैं? यानी, उभय विभूति के रक्षक होते हुवे, अकेली मेरी उपेक्षा कर आप क्यों कर मुझको विरहव्यथा से कृश, और अत एव विगलितवलया करते हैं? शासन करनेवाले राजा के हाथ में शासकत्व का सूचक एक दंड रहता है, जिनको राजदंड, अथवा आज्ञादंड कहते हैं। श्री रंगनाथ भगवान के पास भी ऐसा एक दंड रहता है जिसको, द्राविडी में "शेङ्गोल्" कहते हैं॥] .... (३)

(गाथा.) मच्चणिमाड मदिळरङ्गर्वामननार् * पच्चैप्पशुन्देवर् ताम्पण्डुनीरेत्त *
पिच्चैक्कुरैयाहि एन्नुडैयपेय्वळैमेल् * इच्चैयुडैयरेल् इत्तेरुवेपोदारे ॥ ४ ॥

ठीक सजाये हुवे महलों से, एवं कोटों से परिवृत श्रीरंग दिव्य धाम में विराजमान देवाधिदेव भगवान श्री रंगनाथ ने पहले वामनरूप से अवतीर्ण होकर महाबली से मांगकर, उदक धारा पूर्वक जो भिक्षा प्राप्त की, उसमें कुछ न्यूनता शायद रह गयी; अतः उसकी पूर्ति के लिए अगर आप मेरी चूडी चाहेंगे, तो इस वीथी से क्यों कर न निकलते हैं? [अर्थात् वामनावतार में भिक्षा मांगकर सारी दुनिया को पाने पर भी, उसमें कुछ बाकी रह गया होगा। उसकी पूर्ति के लिए अगर भगवान मेरी चूडियों में इच्छा रखते हैं, तो यों स्पष्ट मांगते हुवे आप हमारे रास्ते में क्यों नहीं पधारते हैं? ऐसा करने पर महाबली की तरह मैं भी आपके गमनसौंदर्य से आकृष्टचित्ता होकर अपने सर्वस्व का भी अर्पण कर दूंगी। अर्थात् भगवान की दिव्ययात्रा की शोभा देखनी की गोदादेवी की इच्छा प्रकाशित हो गयी॥] (४)

(गाथा.) पोल्लाकुरळुरुवाय् प्पोक्कैयिल्नीरेत्तु * एल्लावुलहुम् अळन्दुकोण्डवेम्बेरुमान् *
नल्लार्हळ्वाळुम् नळिरङ्गनागणैयान् * इल्लादोम् कैप्पोरुळुम् एय्दुवानोत्तुळने ॥ ५ ॥

अतिविलक्षण वामनरूप का धारण कर, सुंदर अपने हाथ से भिक्षा लेकर तीनों लोकों को अपने अधीन करनेवाले, साधु महात्माओं के निवासस्थान समस्तसंतापहर श्रीरंग क्षेत्र में शेषशय्या पर शयन करनेवाले भगवान गरीब मेरे सर्वस्व का भी (यानी इस शरीर का भी) अपहरण करने इच्छुक प्रतीत होते हैं॥

(गाथा.) कैप्पोरुळ्हळ् मुन्नमे कैक्कोण्डार् * काविरिनीर् शेयूप्पुरळवोडुम् तिरुवरङ्गच्चेल्वनार् *
एप्पोरुट्कुम्निन्रार्क्कुमेय्दादु *नान्मरैयिन शोर्पोरुळायूनिन्रार् एन्मेयूप्पोरुळुम् कोण्डारे ॥६॥

सस्यभूमियों में सर्वत्र बहनेवाली शुद्धतीर्थपूर्ण कावेरी से परिवृत श्रीरंगक्षेत्र में विराजमान, समस्त पदार्थों के अंतर्यामी, सर्वदुर्लभ, चारों वेदों के समस्त शब्दों के परमतात्पर्यभूत श्री रंगनाथ भगवान ने पहले ही मेरे सर्वस्व को भी लूट लिया; अब तो आप मेरे इस शरीर को भी लेने चाहते हैं॥ (६)

(गाथा.) उण्णादुरङ्गादु ओलिकडलैयूडरुत्तु * पेण्णाक्कैयाप्पुण्डु तानुत्तपेदेल्लाम् *
तिण्णार्मदिळ्शूळ् तिरुवरङ्गच्चेल्वनार् एण्णादेतम्मुडैय नन्मैहळे एण्णुवरे ॥ ७ ॥

सुदृढप्राकार से परिवेष्टित श्रीरंग दिव्यधाम में विराजमान श्रियःपति भगवान ने श्री रामावतार समय में सीता नामक एक स्त्रीरत्न के दिव्यशरीर पर कामुक होकर, आहार एवं निद्रा भी छोडकर समुद्र में पुल बांधने के अतिमानुष कृत्य को संपन्न कर इस तरह से अपने सीमातीत व्यामोह को प्रकाशित किया। हाल में तो आप अपने इस पूर्ववृत्तांत को भूलकर, अपने परत्व का ही ध्यान करते हुवे गर्व से मेरी उपेक्षा कर रहे हैं। [श्री रामावतार में अपनी प्रेयसी से विरहित होने के कारण सीमातीत दुःख भोगनेवाले भगवान को ठीक जानना था, कि ऐसी असह्य विरहव्यथा को सुकुमारी यह गोदा कथंचिदपि सह न सकती है; अतः इसको नित्यसंश्लेष से संतुष्ट रखना चाहिए। परंतु आप इस तत्व को भूल कर अपनी महिमा के ध्यान से मस्त होकर मेरी उपेक्षा कर रहे हैं॥] .... (७)

(गाथा.) पाशितूर्त्तुक्किडन्द पार्मगट्कु * पण्डोरुनाळ्मासुडम्बिल् नीर्वारा मानमिलाप्पन्रियाम् *
तेशुडैयतेवर् तिरुवरङ्गच्चेल्वनार् * पेशियिरुप्पनहळ् पेर्क्कवुम्पेरावे ॥ ८ ॥

पहले एक समय में प्रलयार्णव में बहुत काल तक डूब रहने से विकार पानेवाली भूदेवी के उद्धार के लिए, पंक व जल बहनेवाले अतिमलिन शरीर का धारण कर लज्जाशून्य एक वराह बननेवाले तेजोमय देवाधिदेव श्री रंगनाथ भगवान ने जो अनुगृहीत किया, यह अभयवचन कथंचिदपि भूला नहीं जा सकता॥ ["अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्" (मैं अपने भक्त का स्मरण करूंगा और उसको परमपद ले जाऊंगा) इत्यादि श्री वराह चरम श्लोक मेरे मन में सुप्रतिष्ठित विराजमान है।] .... (८)

(गाथा.) कण्णालङ्गोडित्तु क्कन्निदन्नैक्कैप्पिडिप्पान् * तिण्णार्न्दिरुन्द शिशुपालन् तेशळिन्दु *
अण्णान्दिरुक्कवे आङ्गवळैक्कैप्पिडित्त पेण्णाळन्पेणुमूर् पेरुमरङ्गमे ॥ ९ ॥

पाणिग्रहणोत्सव के लिए आवश्यक सब पूर्वकर्तव्यों को समाप्त कर, रुक्मिणी देवी से विवाहित होने का सुदृढ अध्यवसाय रखनेवाला शिशुपाल निस्तेज होकर आकाश की ओर देखता रह जाय, इस तरह से अपने हाथ से उस देवी का हाथ पकडनेवाले स्त्रीजनवल्लभ भगवान से अपने निवासस्थानत्वेन सादर परिगृहीत दिव्यदेश का नाम प्रसिद्ध श्रीरंग क्षेत्र है॥ [हमें भी उधर जाकर भगवान के दर्शन करना चाहिए।]

(गाथा. शेम्मैयुडैय तिरुवरङ्गर् ताम्पणित्त * मेय्म्मैप्पेरुवार्त्तै विष्णुचित्तर् केट्टिरुप्पर् *
तम्मैयुहप्पारै त्तामुहप्परेन्नुमृशोल् * तम्मिडैयेपोय्यानाल् शादिप्पारारिनिये ॥ १० ॥

आर्जवगुणनिधि (अर्थात् तन मन वाणियों से एक रूप रहने के स्वभाववाले) श्रीरंगनाथ भगवान से श्रीकृष्णावतार समय में अपने पादाश्रित अर्जुन को लक्ष्यकर अनुगृहीत सत्यार्थ संपन्न चरमश्लोक नामक अभयवचन को मेरे आचार्य श्रीविष्णुचित्तस्वामीजी सुनकर तदुक्तरीति से निर्भर रहते हैं। [उनके श्री पाद में आश्रित मैं भी उसी संबंध से निर्भर रहती हूं।] "प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः" इत्यादि से,

आपसे अनुगृहीत आश्वासन रूपी "जो मुझपर प्रेम करेगा, उस पर मैं भी प्रेम करूंगा" इत्यादि वचन, अगर अपने में ही मिथ्या सिद्ध हो जाय, तो परमपुरुष आपपर दूसरा कौन नियंत्रण कर सकेगा? [पूर्वदशक की तरह इस दशक में भी फलश्रुति गाथा न बनायी गई] ॥ .... (१०)

—* इस दशक का सार संगूाहक पद्य यह है *—

श्लो॥ हाहा श्रीरङ्गनाथः फणिवरशयनस्सर्वलोकैकशास्ता
भूदेवीं भूमिपुत्रीं निजहृदयसमाकर्षिणीं रुक्मिणीं च।
संश्लेष्टुं सर्वथैव प्रकटितविविधाश्चर्यचर्यस्स कामी
मामेवं धिक्करोतीत्युपचितरुदिता ह्यभवीत्यत्र गोदा ॥ ११ ॥

शेषपर्यंकशायी, समस्त लोकों के शासक भगवान श्रीरंगनाथ अपनी प्रेयसी भूदेवी सीतादेवी तथा रुक्मिणी देवियों पर प्रेम से उनसे मिलनेके उद्देश्य से नाना प्रकारके अत्याश्चर्यमय दिव्यचेष्टित करते हुवे भी मेरा तो तिरस्कार ही कर रहे हैं—यों पुकारती हुई गोदादेवी इस दशक में बहुत रोती हैं॥ (११)

॥ नाच्चियार् तिरुमोऴि में ग्यारहवां दशक समाप्त हुआ ॥

॥ आण्डाळ् तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ बारहवां दशक—मत्तिरुन्दीर्हद्करियलाहा ॥

(श्री कृष्ण भगवान के क्रीडास्थान मथुरादि स्थल जाने को चाहना)

अवतारिका—इस दशक में गोदादेवी मथुरापुरी से शुरू कर द्वारकापुरीतक के श्रीकृष्ण-भगवान के तत्तत् विहरण स्थानों का अनुसंधान कर, तत्र तत्र जाकर भगवान का अनुभव करने को चाहती हुई, विरहव्यथा से दुर्बल शरीर होने के कारण स्वयं इधर उधर जाने में असमर्थ होकर, अपने बंधुओं से मांगती हैं कि तुम लोग मुझे उन क्षेत्रों में ले जाओ। तथाहि (१) "एष नारायणः श्रीमान् क्षीरार्णवनिकेतनः। नागपर्यङ्कमुत्सृज्य ह्यागतो मधुरां पुरीम्॥" (क्षीरसागरशायी श्रीमन्नारायण अपनी शेष शय्या छोडकर मथुरापुरी चले आये) इत्यादि पुराणवचन से गोदादेवी यों जानकर कि हाल में भगवान मथुरापुरी में श्रीकृष्ण के रूप में विराजमान है, अपने को वहां ले जाने की प्रार्थना करती हैं। (२) मथुरा पहुंचने पर यों जानकर, कि अवतार करते करते ही श्रीकृष्णशिशु यमुनाजी को पारकर व्रज पहुंचाये गये, आप अपने का व्रज ले जाने की मांग करती हैं॥ (३) व्रज में भी भगवान धन्यजन्मा नंदगोपजी के भवनपर विराजमान हैं—यों सुनकर उधर जाने को मांगती है॥ (४) बाद में नंदगोप गृहांगण छोडकर यमुनातीर में गोपियों के साथ रहस्यविहरण कर रहे हैं भगवान—इस अर्थ को जानकर आप कहती हैं कि मुझको उधर लेते चलो॥ (५) यमुनातीर पहुंचने पर अवगत हुआ कि श्रीकृष्ण, उस नदी के किसी ह्रद में रहकर विषका वमन करते हुवे सबको त्रास देनेवाले कालियनामक दुष्ट नाग का

दमन करने के लिए वहां पधारकर, किसी एक कदंबवृक्ष पर चढकर, वहां से उस नाग के सिरपर कूदकर वहां भयंकर तांडव नृत्य कर रहे हैं, आप मांगती हैं कि मुझे उस कालिय ह्रद पर छोड दो ॥ (६) ह्रद जानेपर विदित हुआ कि श्रीकृष्ण वहांसे भक्तविलोचन क्षेत्र पहुंच गये हैं, और वहां गोपकुमारों की प्रार्थना से प्रसन्नचित्त मुनिपत्नियों से सप्रेम समानीत भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्यादि नानाप्रकार के दिव्यान्न का भोग कर रहे हैं; अत: उस क्षेत्र की ओर जाने को आप मांगती हैं ॥ (७) फिर उधर का समाचार यह हुआ कि श्रीकृष्ण तभी वहांसे निकल कर अपने बडे भाई बलरामजी के साथ, प्रलंबासुर का संहार करने के लिए भाण्डीरवटस्थल चले गये; अत: आप उधर जाना चाहती हैं ॥ (८) वहां ज्ञात हुआ कि भूख के मारे कुपित महेंद्र से उत्पादित भयंकर वर्षा से पीडित समस्त गोगोपों की रक्षा करने के लिए भगवान गोवर्धन पर्वत को छत्र के समान धारण किये हैं, तब आप अपने को उसी जगह ले जाने को मांगती है ॥ (९) परंतु भगवान उधर भी न मिले; क्यों कि आप उतने में उस गोवर्धनपर्वत को अपने स्थान में रखकर, कालयवन से डरने का अभिनय करते हुवे मथुरापुरी छोडकर द्वारकापुरी को बसाकर वहां विराजमान हो गये। यह बात सुनकर गोदादेवी मांगती हैं कि मुझे द्वारकाक्षेत्र ले चलो। [दसवी गाथा में फलकीर्तन किया गया।] इस तरह से भगवान की विशेषलीला का स्थान नौ क्षेत्रों में अपने अतिमात्रप्रावण्य का प्रकाशन करती हैं गोदादेवी इस परममनोहर दशक में ॥ *

(गाथा.) मत्तिरुन्दीर्हट्कूरियलाहा मादवनेन्बदोरन्बुतन्नै *
उत्तिरुन्देनुक्कुरैप्पदेल्लाम् ऊमैयरोडुशेविडर्वार्त्तै *
पेत्तिरुन्दाळैयोलियवेपोय् प्पेर्त्तोरुतायिल्वळर्न्दनम्बि *
मल्पोरुन्दामर्क्कळमडैन्द मदुरैप्पुरत्तेन्नैयुय्त्तिडुमिन् ॥ १ ॥

मेरे अध्यवसाय से विरुद्ध रहनेवाली तुम्हारेसे समझने अशक्य माधवविषयक व्यामोहवाली मुझको तुम लोग जो उपदेश देती हैं, और उसका जो मैं प्रतिवचन देती हूं, यह सब मूकबधिर संवाद-सा है। (अर्थात् व्यर्थ है।) अत: अब मेरे लिए आपका कर्तव्य काम इतना ही होगा, कि जन्मदेनेवाली माता देवकी जी को छोडकर व्रज पधारकर, दूसरी एक माता यशोदा जी के घर पर बढनेवाले, मल्लयुद्ध विशारद भगवान श्रीकृष्ण के जन्मस्थल मथुरानगर में मुझे लेकर छोड दो ॥ (भगवान की निर्हेतुक कृपा पर ही भरोसा रखनेवाले, अत एव सिद्धोपाय निष्ठ प्रपन्न जन के लिए, आपसे मिलने की किसी प्रकार की चेष्टा करना अनुचित है; परं तु जब आपकी मरजी हो तब आप हमें स्वीकार करेंगे, इस दृढ निश्चय के साथ निर्भर रहना चाहिए; यह माता का अभिप्राय है। अत: आप अपनी पुत्री गोदादेवी से कहती है कि, "इस तरह से भगवान से मिलने के लिए तडपडाना अनुचित है। आपकी कृपा की प्रतीक्षा करती हुई धैर्यसे रहो" इत्यादि। परंतु पुत्री गोदादेवी का यह अभिप्राय है—"यह बात तो बिलकुल ठीक है कि भगवान से मिलने के लिए स्वप्रयत्न करना अनुचित है; आपकी कृपा की ही प्रतीक्षा करनी चाहिए। परंतु भगवान का सौंदर्य एवं कल्याणगुण इतने श्रेष्ठ हैं कि वे मेरे मन में घुसकर इसी क्षण में आपसे मिलने की प्रबल प्रेरणा कर रहे हैं। इस प्रेरणा को रोकने में मैं सर्वथा असमर्थ हूं। अत: अपने भोग की प्राप्ति के लिए

मुझसे कुछ न कुछ प्रयत्न करना ही पडेगा।" फिर इस विषय में दोनों के बीच में कुछ वादविवाद चलता है। अंत में गोदादेवी कह देती है कि, "जैसा भूखा आदमी आहार पाने का प्रयत्न करेगा ही, इस तरह से भगवान से आकृष्टचित्त मैं भी, आपसे मिलने का प्रयत्न करूंगी ही। इससे विरुद्ध तुम्हारे सब उपदेश व्यर्थ है। अत: इस प्रयत्न से विरत हो कर मुझको मथुरा नगरी पहुंचा दीजिए।" अतः यहां पर माता को भी प्रतिकूल कहने में आया है॥] .... (१)

(गाथा.) नाणियिनियोर् करुममिल्लै नालयलारुमरिन्दोलिन्दार् *
पाणियादेन्नै मरुन्दुशेय्दु पण्डुपण्डाक्कुरुदिराहिल् *
माणियुरुवायुलहलन्द मायनैक्काणिल् तलैमरियुम् *
आणैयाल् नीरेन्नैक्काक्कवेण्डिल् आय्प्पाडिक्केयेन्नैयुय्त्तिडुमिन् * ॥ २ ॥

अब लज्जावश होना व्यर्थ है; क्यों कि इस मेरी दशा को मात्सर्यवाले चारों लोगों ने ठीक समझ लिया। (सर्वत्र प्रसिद्ध विषय में लज्जा करने से क्या लाभ है?) विना विलंब योग्य उपचार कर मेरी पूर्वकालिक शरीर शोभा लौटाने को अगर तुम चाहती हो, और मुझको मृत्यु से बचाने को अगर तुम सत्य ही चाहती हो, तो मुझको लेकर व्रज में छोड दो। वहां पर यदि लोकों को नापनेवाले त्रिविक्रम भगवान के दर्शन मिलेंगे, तो मेरा यह दुःख कुछ शांत होगा। [मात्सर्यवाले चारों लोग कहने का यह तात्पर्य है—कर्म ज्ञान भक्ति रूप साधनांतर में निष्ठावान तीन व्यक्ति, और प्रपन्न होकर भी स्वगतस्वीकार में निष्ठावान एक व्यक्ति, कुल ये चार लोग परमैकांति शुद्ध प्रपन्न से मात्सर्य व द्वेष करते, उसके प्रतिकूल होते हैं। अत: यह परमैकांति भी उक्त चार व्यक्तियों से अविदित होकर ही अपनी निष्ठा में रहता है। परंतु जब दैवयोग से वे लोग इस निष्ठाविशेष को किसी तरह से जान लेते हैं, तब उनकी टीकाओं की परवाह न करते हुवे यह परमैकांति महात्मा अपने काम में निरत रह जाता है। अब गोदादेवी को ऐसी दशा प्राप्त हुई है॥] (२)

(गाथा.) तन्दैयुन्तायुमुत्तारुमनिर्क तनिवलिपोयिनाळेन्नुमशोल्लु *
वन्दपिन्नैप्पलिकाप्परिदु मायवन्वन्दुरुक्काट्टुहिन्नान् *
कोन्दळमाक्किप्परक्कलित्तु कुरुम्बुशेय्वानोर्महनैप्पेत्त *
नन्दगोपालन्कडैत्तलैक्के नळ्ळिरुट्कणेन्नैयुय्त्तिडुमिन् ॥ ३ ॥

इस संसार में अगर ऐसा अपयश फैल जाएगा कि, पिता माता और अन्य बंधुवर्ग, इन सबके रहते हुए ही यह छोरी इन सबको छोडकर अपने मार्ग में चली गयी, तो उसको मिटाना बहुत कठिन होगा; (हाल में ऐसा अपयश फैलने का यह कारण है कि,) अत्याश्चर्यमय गुण व चेष्टितवाले श्रीकृष्ण मेरे सामने आकर अपना मानस साक्षात्कार दे रहे हैं; (अत: मुझे उनके पीछे पडना अब अनिवार्य होगा। इस आपत्ति से मुझको बचाने के लिए) आप लोग मुझको अभी रात्री के अंधकार में उन नंदगोपजी के घर पर छोड दीजिए, जो दुर्विनीत धूर्त चेष्टितों के ही कर्ता एक पुत्र के पिता बन गये हैं॥ .... (३)

(गाथा.) अङ्गैत्तलत्तिडैयालिकोण्डानवन् मुहत्तन्निविळियेनेन्नु *
शेङ्गच्चुकोण्डु कण्णाडैयार्त्तु चिरुमानिडवरैकाणिल्लनाणुम् *
कोङ्गैत्तलमिवैनोक्किकाणीर् गोविन्दनुक्कल्लाल्वायिल्पोहा *
इङ्गुत्तैवाळ्वैयोळियवेपोय् यमुनैक्करैक्केन्नैयुयुत्तिडुमिन् ॥ ४ ॥

सुंदर हथेली से चक्रराज का धारण करनेवाले भगवान गोपालबालक को छोडकर दूसरे किसी के मुख को न देखने के दृढ संकल्प से अच्छे लाल कंचुक से अपना मुँह बंदकर बैठे रहनेवाले, और अत एव सामान्य मानवों को देखने पर अधिक जुगुप्सा व लज्जा पानेवाले मेरे स्तनों की ओर देख लिजिए। मैं फिर दावा कर कहती हूं कि ये मेरे स्तनों गोविंद को छोडकर दूसरे किसी को न चाहते हैं । अत: मुझको यहां से शीघ्र विदाकर यमुना जी के तीर में छोड दीजिएगा॥ .... (४)

(गाथा.) आर्कुमेन्नोयिदरियलाहादु अम्मनैमीर् तुळङ्गिप्पडादे *
कार्क्कडल्वण्णनेन्बानोरुवन् कैक्कण्डयोगन्तडवत्तीरुम् *
नीर्करैनिन्न कडम्बैयेरि काळियनुच्चियिल् नट्टम्पायृन्दु *
पोर्क्कळमाहनिरुत्तमृशेयृद पोयृहैकरैक्केन्नैयुयुत्तिडुमिन् ॥ ५ ॥

हे माताओं! यह मेरा विलक्षण रोग, किसी की समझ में, वह चाहे जैसा ज्ञानी क्यों न हो, न आएगा। तो भी आप इस उग्र रोग के लिए चिंता मत किजिए। क्यों कि इसको एकदम मिटा देने में समर्थ यह सिद्धयोग है कि नीलसागरवर्ण एक महात्मा (माने श्रीकृष्ण) का करस्पर्श। अत: अब आपका कर्तव्य काम इतना ही होगा, कि तटपर खडे हुवे कदंब वृक्ष परसे कालियनाग के फन पर कूदकर, उसीको रणरंग बनाते हुवे भयंकर नर्तन करनेवाले श्रीकृष्ण के यमुनातीर में मुझको छोड देना॥ ....(५)

(गाथा.) कार्त्तण्मुहिलुङ्करुविळैयुम् कायामलरुङ्कमलप्पूवुम् *
ईर्त्तिडुहिन्ननवेन्नैवन्दिट्टु इरुडीकेशन्पक्कल्पोहेयेन्नु *
वेर्त्तुप्पशित्तुवयिरशैन्दु वेण्डडिशिलुण्णुम्पोदु * ईदेन्नु
पार्त्तिरुन्दुनेडुनोक्कुकोळ्ळुम् पत्तविलोशनत्तुयुत्तिडुमिन् ॥ ६ ॥

वर्षाकाल का शीतल मेघ, करुविळै नामक एक जात का पुष्प, अतसीपुष्प और कमल का पुष्प, ये सब मिल कर (भगवान के दिव्य अवयवों की याद दिलाते हुए) मुझको भगवान के पास जाने की प्रबलप्रेरणा कर रहे हैं। अत:, गाय चराने के आयास से पसीजा कर, भूख से पीडित हो कर, यों मानते हुवे कि, "यह तो अपेक्षित प्रसाद पाने का अवसर हो गया," महर्षिपत्नियों के आगमन की प्रतीक्षा करनेवाले श्री कृष्णभगवान के कटाक्षवीक्षण का लक्ष्य भक्तविलोचन नामक क्षेत्र में मुझको लेकर छोड दीजिए ॥

वृंदावन के पास भक्तविलोचन (भतरोड) नामक एक क्षेत्र है, जिसका वर्णन श्री भागवत में (१०–२३) किया गया है। कदाचित् श्रीकृष्ण व बलराम दूसरे सेकडों गोपबालकों के साथ गाय चराते हुवे, मध्याह्नके समय में यमुनातट पर एक स्थलमें बैठे गये हुवे थे। उस समय में भूख से पीडित गोप बालकों ने उन भाईयों से अन्न माँगा। तब श्री कृष्ण ने कहा कि, "उधर देखो! आंगिरस नामक यज्ञ करते हुवे कितने ही ऋषि रहते हैं; उनके पास जाकर, मेरे नामसे अन्न मांगो; मिलेगा।" बालकों ने ऐसा ही किया। परंतु रामकृष्णों के नाम सुनकर भी वे ऋषि लोग उन गोपाल बालकों की बात की उपेक्षा करते चुप रह गये। इस तरह से निराश होकर बालक भी शरमाकर वहां से लौट आये और श्री कृष्ण से यह वृत्तांत सुनाने लगे। तब श्री कृष्णने कहा कि, "ऋषियों से अन्न मांगते हुवे तुमने भूल की; कारण कि अन्न देना स्त्रियों का काम है, न तु पुरुष का। अतः तुम फिर जाकर ऋषिपत्नियों से माँगो।" बुभुक्षित बालक फिर ऋषिपत्नियों के वहां चले। श्री कृष्ण भगवान के नाम सुनते ही वे स्त्रियां आनंदमग्न हो गयीं, और अत्यंतभक्ति से नानाप्रकार के अन्न आदि पदार्थ लेकर आपके पास दौडती आयीं। भगवान ने भी उनसे अर्पित मिष्टान्न को अपने साथियों के साथ स्वीकार कर लिया और उन भक्तों को खूब आनंदित किया। यह काम दररोज, बहुत समय तक चलता आया। अर्थात् वे ऋषिपत्नी प्रतिदिन एक निश्चित समय पर अन्न लेकर श्री कृष्ण के वहां जाकर, सपरिवार आपकी आराधना करतीं। श्री कृष्ण भी मध्याह्न के उस समय के आनेपर, "अब हमारे अन्न के आनेका समय हो गया," कहते हुए उस दिशाकी ओर देखते बैठते। अब इस गाथा से गोदादेवी बताती हैं कि इसी कारण से उस स्थान का नाम हुआ भक्तविलोचन। भक्त—अन्न; विलोचन—देखना; अर्थात् अन्नकी प्रतीक्षा करते हुवे भगवान उस दिशाकी ओर जो देखते थे, इस लिए उसका नाम हुआ भक्त विलोचन ॥ .... (६)

(गाथा.) वण्णन्तिरिवुम्मनङ्कुलैवुम् मानमिलामैयुम् वायूवेळुप्पुम् *
उण्णलुरामैयुमुळ्मेलिवुम् ओदनीर्वण्णनेन्बानोरुवन् *
तण्णन्तुळायेन्नुम्मालैकोण्डु शूट्टत्तणियुम् पिलम्बनूतन्नै *
पण्णलियप्पलदेवन्वेन्न पाण्डिवटत्तेन्नैयुय्त्तिडुमिन् ॥ ७ ॥

शरीर शोभा का फीका पडना, मनका दुर्बल होना, लज्जाका मिट जाना, होठ का फीका पड जाना, अन्न में अरुचि होना, अंतःकरण को दुर्बल बन जाना, इत्यादि ये सभी प्रकार की दुरवस्थाएं तब मिट जाएंगी जब कि सागरवर्ण गोपालकृष्ण की तुलसीमाला मेरे सिरपर रख दी जाएगी। (अतः ऐसा ही कर दीजिए। परंतु अगर अभी ऐसा करना अशक्य हो, तो) मुझको अभी प्रलंबासुरहंता बलदेवजी से सनाथ पांड्यवट नामक दिव्यदेश पहुंचा दीजिए ॥ [पांड्यवट को भाण्डीरवन भी कहते हैं ॥] .... (७)

(गाथा.) कत्तिनम्मेयूकलुम्मेयूक्कप्पेत्तान् काडुवाळूशादियुमाहप्पेत्तान् *
पत्तियुरलिडैयाप्पुमुण्डान् पाविहाळ्ङ्गलुक्केच्चुकोलो *
कत्तनपेशिवशवुणादे कालिहळुय्य मळैतडुत्तु *
कोत्तकुडैयाहवेन्दिनिन्न गोवर्धनत्तेन्नैयुय्त्तिडुमिन् ॥ ८ ॥

(इतने में वहां के कितने लोग गोदादेवी से बोले कि, "श्रीरामचंद्र इत्यादि दूसरे किसी स्वरूप में चित्त लगाना ठीक है; गोपालबालक, जारचोरशिखामणि श्री कृष्ण को अपने प्रेमका लक्ष्य करना अनुचित हैं"। इसका सुंदर प्रतिवचन इस गाथा से दिया जाता है।) मेरे नाथ गोगण संचारण के काम में ही लग गये थे; नवनीतचौर्यप्रसंगमें पकडाकर उलूखल में बांधे भी गये। ये सब बिलकुल सत्य है। परंतु गुण को ही दोष बतानेवाले हे पापियों! असीम सौलभ्य से बने हुवे आपके ये सब चरित्र तुम्हारी निंदा का विषय बन गये। स्तोत्र करने लायक भगवान के विषय में निंदा करते हुवे, क्यों कर तुम लोग मेरे धिक्कार का पात्र बनते हो? ऐसा मत किया करो। परंतु गोगणों की सुरक्षा के लिए, वर्षा की बाधा मिटाते हुवे भगवान ने जिसका छत्र के रूप में धारण किया, मुझे ऐसे गोवर्धनपर्वत पर ही पहुंचा दो॥ .... (८)

(गाथा.) कूट्टिलिरुन्दुकिळियेप्पोदुम् गोविन्दागोविन्दावेन्नळैक्कुम् *
ऊट्टुक्कोडादु शेरुप्पनाहिल् उलहळन्दानेन्रुयरक्कूवुम् *
नाट्टिल्तलैप्पळियेय्दि उङ्गळ्नन्मैयिळन्दु तलैयिडादे *
शूट्टुयर्माडङ्गळ्शूळ्न्दुतोन्रुम् तुवरापदिक्कैन्नैयुय्त्तिडुमिन् ॥ ९ ॥

मेरे से पाला हुआ तोता पंजर में रहते रहते ही हमेशा 'गोविंद, गोविंद' पुकार रहा है; अगर मैं आहार न देती हुई उसको क्लेश दूंगी, तो वह और जोर से पुकारता हैं कि "हे त्रिविक्रम भगवन्!" (ऐसे भगवान्नामों के सुनने से मेरी विरहव्यथा सीमातीत बढ जाती है।) ऐसा ही रह जानेपर संसार में अपवाद फैल जाएगा; तुम्हारा यह भी नष्ट हो जाएगा; लज्जा से तुमको अपना सिर नमाना पडेगा। [अर्थात् मैं तुम सब को छोडकर श्री कृष्ण के पीछे चली जाऊंगी, जिससे तुम्हारा अपयश होगा।] ऐसा न होने दो। परंतु मुझको अभी ऊंचे महलों से अलंकृत द्वारकाक्षेत्र पहुंचा दो॥ .... (९)

(गाथा.) मन्नुमदुरै तोडक्कमाह वण्डुवरापदितन्नळवुम् *
तन्नैत्तमरुय्त्तुप्पेय्यवेण्डि त्ताळ्कुळलाळ् तुणिन्दतुणिवै *
पोन्नियल्माडम्पोलिन्दु तोन्रुम् पुदुवैयर्कोन्विट्टुशित्तन्कोदै *
इन्निशैयाल्चोन्नशेञ्जोल्मालै एत्तवल्लार्किडम् वैहुन्दमे ॥ १० ॥

सोने के महलों से समलंकृत श्रीविल्लिपुत्तूर के स्वामी श्रीविष्णुचित्तसूरी की सुपुत्री, मनोहर केश पाशवाली श्रीगोदादेवी ने मथुरा से द्वारकातक के कतिपय दिव्यक्षेत्रों के नाम लेकर, अपने बंधुओं से अपने को उन उन क्षेत्रों में ले जानेकी प्रार्थना करती हुई जिन दिव्य गाथाओं से अपने उस अध्यवसाय को प्रकट किया, उन इन दिव्यसूक्तियों का पाठ करनेवालों का निवासस्थान परमपद ही होगा। [इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया॥] .... (१०)

—※ इस दशक का सारसंग्राहक पद्य यह है ※—

श्लो॥ उत्सृज्याहीन्द्रशय्यां हरिरिह मधुरामेत्य चाभीरपल्लीं
नन्दस्यागारमागादथ च विषधरं हन्तुमैत्सूर्यकन्याम्।
पश्चाद्भक्तावलोकं वटतरुमथ गोवर्धनं द्वारकां च
इत्याकर्ण्यैतत्प्रदेशाननुभवितुमहो कामनां वक्ति गोदा॥ १२॥

ये वचन सुनकर कि, "भगवान अपनी शेषशय्या छोडकर मधुरा पधार गये हैं, वहां से व्रजमें नंदगोपजी के गृह पहुंच गये फिर कालियदमन के लिए यमुनाजी चले गये; पीछे भक्तविलोचन गीये; पश्चात् भाण्डीरवट गये; फिर गोवर्धन उठाने गये; और द्वारकाजी पधार गये;" गोदादेवी उक्त क्षेत्रों में जाने की अपनी इच्छा को इस बारहवे दशक में प्रकट करती हैं॥ .... (१२)

॥ नाच्चियार् तिरुमोळिमें बारहवां दशक समाप्त हुआ॥

॥ आण्डाळ् तिरुवडिहळे शरणम्॥

॥ तेरहवां दशक—कण्णनेन्नुम् करुन्दैवम्॥

(विरहव्यथा मिटानें के लिए भगवान की प्रसादी वस्तुओं को मांगना)

अवतारिका—पूर्वदशक में गोदादेवी ने अपने को मथुरादि दिव्यदेश पहुंचाने की प्रार्थना की। इसको सुनकर आपके बांधवों ने विचार किया कि, "बेचारी यह मुग्ध बालिका मथुरा, द्वारका आदि जाकर श्रीकृष्ण से मिलने चाहती हैं। श्रीकृष्ण तो साधुपरित्राणादि कृत्यों को समापित कर तभी स्वस्थान पहुंच गये। अब इस भूतलपर आपके दर्शन कैसे मिलेंगे? नहीं मिलेंगे। परंतु इस अर्थ को इससे कहना भी अनुचित है। क्यों कि इससे इसका दुःख ही बढेगा; अतः दूसरे किसी उपाय से इसकी प्रार्थना को टाल देना चाहिए।" यों सोचकर उन्होने कहा कि, "बेटी! तुम्हारी प्रार्थना के अनुसार ही करेंगे। चिंता मत करो। परंतु, अब देखो, वर्षा का समय है। तुम उतनी दूर न जा सकती हो। अतः भगवान के नामसंकीर्तन, गुणानुभव इत्यादि करती हुई कुछ समय तक धैर्य से रहो। पीछे चलेंगे।" इत्यादि। परंतु गोदादेवी धैर्य न रख सकी। आपकी विरहव्यथा बढती ही गयी। तब आपने यों प्रार्थना की कि, "अगर अभी मुझको श्रीकृष्ण भगवान से अधिष्ठित दिव्य देशों में पहुंचा नही सकते हो, तो भी चिंता नही। मगर उन भगवान के प्रसादरूपी किसी वस्तु लाकर मुझे दीजिए, जिससे मेरा दुःख कुछ कम हो जाय। तथाहि—आपके कमर में बांधा हुआ वस्त्र लाकर उससे मुझे हवा देकर मेरा संताप मिटा दीजिए; आपसे पहनी हुई तुलसीमाला लाकर मेरे सिरपर रखिए; अथवा आपकी वनमाला लाकर रखिए; अपर्याप्तामृत विरुद विभूषित मुकुंद का अधरामृत लाकर मुझे पिला दीजिए; गोधूलिधूसरित केशपाशवाले केशव की मुरली से निकलनेवाला अमृत लाकर, उससे मेरा मुख पोंछ दीजिए; मधुसूदन भगवान के पादन्यास से

धन्य पृथ्वीतल से धूली लाकर उससे मेरे शरीरपर लेपन करिए, जिससे मेरा दुःख कुछ कम हो जाय और मैं आनंदित हो जाऊं।" इत्यादि प्रकार से गोदादेवी इस दशक में भगवान के अभाव में आपसे संबंधित प्रसादरूपी किसी वस्तु की प्राप्ति से अपनी विरहव्यथा को कुछ घटाने की आशा करती हैं॥

(गाथा.) कण्णनेन्नुंक्करुन्देय्वम् काट्चिप्पळहिकिडप्पेनै*पुण्णिप्पुळिप्पेयूदाप्पोल प्पुरनिन्नळहु पेशादे *
पेण्णिन्वरुत्तमरियाद् पेरुमानरैयिप्पींदहवण्णवाडैकोण्डु * एन्नैवाट्टन्तणियवीशीरे ॥ १ ॥

हे माताएं! श्रीकृष्ण नामक श्यामसुंदर परदेवता के दर्शन करने में ही कुतूहल रखनेवाली मेरेसे शत्रु समान होकर, घांव पर इमली का रस छोडने की तरह, तुम लोग कठिन वचन सुनावो मत। परंतु स्त्रियों का दुःख जानने में अशक्त श्री कृष्ण महाप्रभु के कमर में पहने गये हुवे पीतांबर को लाकर उससे हवाई करो जिससे मेरा संताप कुछ घट जाय॥ .... (१)

(गाथा.) पालालिलैयिल् तुयिल्कोण्ड परमन्वलैप्पट्टिरुन्देनै *
वेलाल्तुन्नप्पेयूदाप्पोल् वेण्डित्तेल्लाम्पेशादे *
कोलाल् निरैमेय्त्तायनाय् कुडन्दैकिडन्दकुडमाडि *
नीलार् तण्णन्तुळायकोण्डु एन्नेरिमेन्कुळल्मेल्शूट्टीरे ॥ २ ॥

अत्यंत कोमल वटपत्र पर शयन करनेवाले परम पुरुष के प्रेमपाश में बांधी गई हुई मुझसे अपनी इच्छानुसार कठिन वचन सुनाकर मुझको और दुःखी मत बनाओ। किंतु गोपजाति के उचित दंड लेकर गाय चरानेवाले, घटनर्तनप्रवीण, श्री कुंभकोण क्षेत्र के स्वामी मुकुंद की थंडी और सुशोभन तुलसी माला लाकर मेरे कोमल, वक्र केशपर रखा करो॥

घटनर्तन — गोपों से किये जानेवाला एक प्रकार का विलक्षण नर्तन है। सिर पर और दोनों स्कंधों पर एकैक घट श्रेणी रखकर और दोनें हाथों से एकैक घडा लेकर जो नर्तन किया जाता है, और ऐसा करते करते हाथ के घडों का अदलबदल किया जाता रहता है, इसमें उक्त तीनों घट श्रेणियों का कोई चलना, गिर जाना इत्यादि विकार न होगा, यही अभ्याससाध्य घटनर्तन है। दिव्यसूरियों का कथन है कि श्री कृष्ण ऐसे नर्तन में प्रवीण थे॥ .... (२)

(गाथा.) कञ्जैकाय्न्दकरुविल्लि कडैक्कणेन्नुम् शिरैकोलाल् * नेञ्जूडुरुववेवुण्डु निलैयुन्दळर्न्दुनैवेनै *
अञ्जलेन्नानवनोरुवन् अवन्मार्वणिन्दवनमालै * वञ्जियादे तरुमाहिल् मार्विल्कोणर्न्दुपुरट्टीरे

कंस के हंता और धनुष के समान वक्रभ्रूलतावाले अपने (श्री कृष्ण के) कटाक्षपातरूपी तीर से ताडित, और उससे संदग्ध हृदयवाली, और इस तरह की भाग्यहानि से अत्यंत दुःख पाती रहनेवाली मेरे प्रति एक अभयवचन मात्र का भी अनुग्रह न दिखाने चाहनेवाले वे भगवान, कपट किये विना अपने वक्ष पर धारण की गयी हुई वनमाला को अगर दे देंगे, तो उसको लाकर मेरे वक्ष पर ठीक रख दो॥ (३)

(गाथा.) आरेयुलहत्तातुवार् आयर्पाडिकवन्दुंण्णुम् * कोरेरुळक्वुळकुण्डु तळन्दुंम्मुरिन्दुङ्किडप्पेनै *
आरावमुदमनैयान्तन् अमुदवायिल्लूरिय* नीर् तान्कोणर्न्दु पुलरामे परुकियिळैप्पैनीक्कीरे ॥ ४ ॥

इस सारी व्रजभूमि को अपना वश कर इसका अनुभव करनेवाले वृषभ समान श्यामसुंदर से पीडित होकर, अत्यंत दुःखी एवं शिथिल रहनेवाली मेरा आश्वासन देनेवाला इस संसार में कौन रहता? (कोई भी नहीं; अथवा अगर तुम कहती हो कि हम करेंगी, तो बहुत अनुभव करने पर भी तृप्ति न देने से) अपर्याप्तामृत कहलानेवाले गोपालकृष्ण के दिव्यमुखारविंद से निकलनेवाला अमृतरस लाकर मुझे पिलाकर मेरा संताप मिटा दो ॥ .... (४)

(गाथा.) अळिलुन्तोळिलुमुरुकाट्टान् अञ्जेलेन्नानवनोरुवन् *
तळुविमुळुशिप्पुहुन्देन्नै चुत्तिचुळन्नु पोहानाल् *
तळैयिन्पोलिल्वायुनिरैप्पिन्ने नेडुमालूदिवरुहिन्न *
कुळलिनुतुळैवायुनीर् कोण्डु कुळिरमुहत्तुत्तडवीरे ॥ ५ ॥

बहुत प्रलाप करने पर भी, एवं वारंवार प्रणाम करने पर भी अपने दिव्यमंगलविग्रह के दर्शन न देनेवाले, (एवं परोक्ष रहते हुवे भी क्यों न हो) अभयवचन का भी प्रदान न करनेवाले, ऐसे एक महापुरुष मेरे मन के सामने आकर मेरा गाढ आलिंगन कर डाल कर चारों ओर चलते फिरते मुझे बहुत त्रास दे रहे हैं। प्रत्यक्ष अनुभव के अभाव मे मैं बहुत दुःख भोग रहा हूं। अतः मोरपिंछ की छाया में, गायों के पीछे पीछे मुरली बजाते पधारनेवाले आश्रितव्यामुग्ध सर्वेश्वर आपकी मुरली के छेद से बहनेवाला अमृतबिंदु लाकर उससे पोंछ कर मेरे मुख को थंडा बना दो ॥ .... (५)

(गाथा.) नडैयोन्निल्लावुलहत्तु नन्दगोपन्महनेन्नुम् *
कोडियकडियतिरुमालाल् · कुळप्पुकूरुकोळप्पट्टु *
पुडैयुम्पेयरकिल्लेन्नान् पोट्टकन्मिदित्तवडिप्पाट्टिल् *
पोडित्तान्कोणर्न्दु पूशीर्हळ् पोहावुयिरेन्नुडम्बैये ॥ ६ ॥

स्वतः नीतिबाहर इस संसार में रहती हुई, नंदकिशोर नामक स्वार्थपर, निर्दय, एवं लक्ष्मीनाथ एक व्यक्ति से पीडित होकर, अवला मैं हाथ पैर हलाने में भी अशक्त बन गयी हूं। अतः धूर्त आपके पादन्यास से धन्य जगतीतल से आपका चरणरज लाकर स्थिरप्रतिष्ठितप्राणवाली मेरे शरीर पर लगा दीजिए ॥

श्री कृष्णकृत उपेक्षा से रुष्ट गोदादेवी कहती हैं कि यह संसार स्वत एव नीति से पराङ्मुख है; फिर कृष्ण के अवतार से यह और बिगड गया; इस कारण से दयनीय मेरी दुःरवस्था देख कर भी कोई मेरी चिंता न करता हैं। स्थिरप्रतिष्ठितप्राण इत्यादि का यह अर्थ है— इस अपार विरहव्यथा से बचने के लिए मैं मरने चाहती हूं। परंतु मेरा दौर्भाग्य इतना प्रबल है कि अनेक उपाय करने पर भी मेरे प्राण शरीर छोडकर बाहर निकलते नहीं। फलतः मुझे इस दुःख का सहन करना ही पडा हैं ॥ .... (६)

(गाथा.) वेत्तिक्करुळ्कोडियानुतन् मीमीदाडावुलहत्तु * वेत्त वेरिदेपेत्ततायु् वेम्बेयाहवळर्त्ताळे *
कुत्तमत्तमुलैतनै कुमरन्कोलप्पणैत्तोळोडु * अत्तकुत्तमवैतीर अणैयवमुक्किकट्टीरे ॥ ७ ॥

विजयी गरुडध्वजवाले भगवान की दिव्याज्ञा का उल्लंघन करने अशक्त इस लोक में यशोदा माताजी अपने पुत्र गोपालकृष्ण को एकदम किसी के उपयोग में न आवें इस तरह से और नीमवृक्ष की तरह कटु रहें इस तरह से पाला है। अस्तु। भगवान को छोडकर दूसरे में आशा न रखनेवाले इन मेरे स्तनों को उनही नंदगोपकुमार के सुंदर व विशाल भुजाओं के साथ सुदृढ लगाकर बांध दीजिएगा, जिससे इनके भगवदेकपरत्व रूप दोष का प्रायश्चित्त हो ॥

गरुडध्वज भगवान की दिव्याज्ञा का उल्लंघन न करनेवाला लोक इत्यादि पहले पाद का यह तात्पर्य है कि संसारी चेतनको मिलनेवाले सभी सुखदुखं भगवान की दिव्याज्ञा से ही मिलते हैं; न कि दूसरे किसी कारण वशात् । अतः [गोदादेवी अपने मन में यों सोचती हैं कि] हाल में मेरेसे अनुभूयमान यह विरहव्यथा भी मेरे किसी प्रारब्ध के अनुसार भगवान की ही देन है; अतः इस लिए रोना व्यर्थ है। भगवदिच्छा मानकर इसका सहन करना ही उचित होगा। भगवदेकपरत्वरूप दोष इत्यादि चौथा पाद चमत्कारपूर्वक वचन है। उसका यह भाव है। लोक में स्त्रियों के स्तन भगवान के उपभोग में ही विनियुक्त न होते हैं; अपितु सांसारिक पुरुषों को अर्पित किये जाते हैं। इस कारण से वे अपने अपेक्षित भोग पाकर खुश रहते हैं। परंतु गोदादेवी के स्तन तो इससे विपरीत, हमेशा के लिए दुःखी ठहरे। इसका कारण तो इनका अपराध ही होगा। विचार करने पर इनका अपराध भी यही निकला कि, इन्होने श्रीकृष्ण को छोडकर दूसरे किसी का मुखावलोकन न करने का नियम कर रखा। अपराधिको कैद में बांधकर रखना लोकनियम है। अतः इनको भी श्रीकृष्ण के बाहुपंजर में कैद कर रखना उचित दंड होगा। कहने का यह तात्पर्य है कि दूसरी स्त्रियों की तरह किसी एक पुरुष के साथ विवाहित होने का काम छोडकर भगवान से ही संबंधित होने का आग्रह करने से, और अभी उन भगवान के अलाभ से गोदादेवी अत्यंत दुःखी बन गयी है। इस दुःख की शांति तब मिलेगी जब कि स्वयं भगवान पधारकर आपका आलिंगन करेंगे। अतः एतदनुगुण प्रयत्न करने की मांग इस गाथा से गोदादेवी से, अपने बांधवों के पास की जाती है, चमत्कारपूर्ण शब्द से ॥ .... (७)

(गाथा.) उळ्ळेयुरुहिनैवेनै उळळोविलळोवेन्नाद * कोळ्ळैकोळ्ळिकुरुम्बनै गोवर्धननैकण्डक्काल् *
कोळ्ळुम्पयनोन्निल्लाद कोङ्गैतनैकिळङ्गोडुम् * अळ्ळिप्परिचिट्टवन्मार्विलेरिन्दु एन्नलैत्तीर्वेने ॥

मन में ही पिघलकर नरम होकर अत्यंत विह्वल होनेवाली मेरे प्रति इतना भी परामर्श न करनेवाले कि, "यह गोदा अभी जीवित है, या मर गयी?" मेरे सर्वस्व का भी अपहरण करनेवाले, और स्त्रियों के विषय में अत्यंत कठिनचित्त रखनेवाले गोपालबालक श्रीकृष्ण को अगर मैं एक दिन देख पाऊंगी, तो सर्वथा निष्फल मेरे स्तनों को जड के साथ उखाडकर उसके वक्ष पर फेंक कर कुछ शांति पाऊंगी ॥

भगवान के अनुभव से विरहित होने से स्तन व्यर्थ हो गये। अतः उनको सजड उखाड देना युक्त है। परंतु उनको श्रीकृष्ण के वक्षपर फेंक देने का मतलब शायद यह होगा, कि स्त्रियों की विरहव्यथा की कठोरता से अपरिचित उनके हृदय पर अगर ये स्तन लग जायंगे, तो ये अपने में जितना संताप है उसका परिचय आपको दे देंगे। अर्थात् अपने वक्ष पर इन स्तनों के लग जाने से भगवान शायद जान सकते है, कि स्तनवालों की विरहव्यथा कितनी असह्य होती है। अतः तुरंत यह दुःख मिटाने की चेष्टा करेंगे॥

(गाथा.) कोम्मैमुलैहळिडर्तीर गोविन्दर्कोर् कुत्तेवल् * इम्मैप्पिरविशेय्यादे इनिप्पोयू चेय्युन्तवन्दानेन् *
शेम्मैयुडैयतिरुमार्विल् शेर्त्तानेलुमोरुनाल् *सेयूम्मैशोल्लिमुहम्नोक्कि विडैतान्तरुमेल्मिहनन्ने ॥

[इतने में किसीने कहा कि, "भगवान का अनुभव तो शरीर छोड कर परमपद पहुंचने के बाद मिलनेवाली वस्तु है। अतः उसके लिए अभी उतावल करना अनुचित हैं। परमपद जाने के अवसर की प्रतीक्षा करते हुवे भगवद्गुणानुभव इत्यादि से काल विताना अवका कर्तव्य होगा" इत्यादि। इसके उत्तर में अब गोदादेवी बताती है कि 'इसी जन्म में भगवत्सेवा करने चाहनेवाली मुझको शरीर छोडकर परमपद जाने पर मिलनेवाला कैंकर्य क्या काम का? मैं उसको मानूंगी नहीं॥]

ठीक उगे हुवे इन स्तनों का संताप मिट जाय इस तरह से इसी जन्म में की जानेवाली भगवान गोविंद की सेवा छोडकर दूसरा शरीर लेकर और किसी समय में की जानेवाली सेवा क्या कामकी? वे भगवान अपने सुशोभन वक्षसे अगर मेरा आलिंगन करेंगे तो ठीक है। अथवा, अगर आप ऐसा न करने चाहें तो, मेरे सामने आकर, सत्य कह देवें कि "गोदे! मैं तुमको चाहता नहीं" तो और भी अच्छा है॥

भगवान से तिरस्कृत होना भी इस लिए मांगा जाता है कि ऐसा तिरस्कार करते आपको अपने दर्शन देने पडते हैं और वार्तालाप भी करना पडता हैं। किसी प्रकार सें ये दोनों मिल गये तो अच्छा हैं ही॥

(गाथा.) अल्लल्विळैत्तपेरुमानै आयर्पाडिकणिविळक्कै * विल्लिपुदुवैनहर्नम्बि विट्टुशित्तन्वियन्कोदै *
विल्लैत्तोलैत्तपुरुवत्ताळ् वेट्कैयुत्तुमिहविरुम्बुम् * शोल्लैत्तदिकवल्लार्हळ् तुन्बकडलुळ्तुवळारे ॥

(भक्तों का ताप मिटाने के बदले में उनको विरह) संताप देनेवाले और इससे महात्मा बननेवाले, मंगलदीप की तरह व्रज को प्रकाशित करनेवाले गोपालकृष्ण को लक्ष्य कर, श्रीविल्लिपुत्तूर के स्वामी श्री विष्णुचित्तस्वामीजी की पुत्री, अत्याश्चर्यगुणविभूषित, तथा धनुष पर विजय पानेवाले भ्रुवों से अलंकृत गोदादेवी से अत्यंत आदर तथा अभिनिवेश के साथ अनुगृहीत इन गाथाओं का प्रशंसापूर्वक पाठ करनेवाले दुखसागर में पडकर क्लेश न पावेंगे॥ (इस फल श्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया॥ (१०)

—* इस दशक का सारसंग्राहक पद्य यह है *—

श्लो॥ स्त्रीदुःखाज्ञस्य शौरेः कटितटवसनं मालिकां वैजयन्तीं
वक्त्राम्भोजामृतौघं सुमधुरमुरलीद्वारनिर्यत्सुधां च।
पादाब्जन्यासधन्यस्थलजमपि रजो दिव्यमादाय मह्यं
दत्त्वा मां मोदयध्वं द्रुतमिति कथयत्यत्र सूक्ते तु गोदा॥ १३॥

इस दशक में गोदादेवी यों कहती हैं कि, स्त्रियों के विरह दुःख का प्रकार न जाननेवाले श्रीकृष्ण के कमर का वस्त्र, तुलसीमाला, वैजयन्तीमाला, मुख से बहनेवाला अमृतप्रवाह, मधुर मुरलीद्वार से निकलनेवाला अमृत, आपके पादारविंद से धन्य बनी हुई भूमिपर की दिव्य धूली इत्यादि किसी प्रसादी वस्तु लाकर मुझे देकर मेरा संताप मिटाकर मुझको आनंदित बना दीजिए ॥ .... (१३)

॥ नाच्चियाड् तिरुमोलि में तेरहवां दशक समाप्त हुआ ॥

॥ आण्डाळ् तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ चौदहवां दशक—पट्टिमेयुन्दोर्कारेरु ॥

(भगवान के दर्शन का वर्णन)

अवतारिका—भगवान् परमकारुणिक एवं भक्तों की कामना को पूर्ण करनेवाले होते हैं। उसमें भी यह आपका एक विशेष रोचक स्वभाव है कि स्वानुभव के कामुक भक्तों को आप पहले उस अनुभव के आवश्यक परिपूर्ण आशा को सदुपायों से बढा देते हैं। और जब वह आशा पर्याप्त मात्रा में पक गयी हो, तब आप उनको तुरंत अपना स्वानुभव देकर कृतकृत्य एवं आनंदित करते हैं । इस न्याय से हाल में भी आपने गोदादेवी को बहुत समयतक अपने दर्शन न देकर, विरहव्यथा को ही, अर्थात् अपनेसे मिलने की आशा को ही, खूब बढा दिया; जिसका वर्णन इस दिव्यप्रबंध में बहुत किया गया। अब, जब कि वह आशा सुपक्व हो गयी, भगवान आपको अपने दिव्यदर्शन देकर कृतार्थ बनाते हैं, जिसका वर्णन इस चौदहवे दशक से किया जाता हैं और यह दिव्यप्रबंध भी समापित किया जाता है। परंतु इसमें एक चमत्कार है। गोदादेवी यहां यों स्पष्ट न कह देती हैं कि मैंने भगवानके दर्शन किये; परंतु आप दो सखियों के रूप का धारण कर, एककी वाणी से पूछती हैं कि क्या तुमने भगवानके दर्शन किये ? और दूसरी की वाणी से आप प्रत्युत्तर देती हैं कि, हां, ऐसे ऐसे भगवान के दर्शन मैंने बृंदावन क्षेत्र में कर लिये । तथा च इस दशक की प्रत्येक गाथा के पूर्वार्ध से ऐसा प्रश्न किया जाता है कि, "मेरे प्राणनाथ, बलदेवजी के साथ विहरण करनेवाले, जारचोरशिखामणि, मुझे अपना विरहदुःख देनेवाले, धूर्त इधर कहीं घूमते फिरते क्या तुमको देखने में आये हैं?" फिर उत्तरार्ध से ऐसा प्रत्युत्तर दिया जाता है कि, "हां, अभी हमने बृंदावन धाममें उन भगवान के दर्शन पाये जो कि, गोवत्सों को चराते हुवे, धेनुक वत्सक कपित्थ केशि इत्यादि दुष्ट दैत्यों का दमन करते हुवे, खेलते रहते हैं और जो नटविट शिखामणि, नंदनंदन, नीलमेघश्याम, गरुड जी के पंखों की छाया में विहार करनेवाले, बालगज के समान, पीतांबरधारी, अपने दिव्यमंगलविग्रह की दिव्य शोभा से समग्र वीथी को ही भरा देनेवाले होते हैं।" इत्यादि ॥ *

(गाथा.) **पट्टिमेयुन्दोर्कारेरु बलदेवर्कोर्कीळ्क्कन्नाय् * इट्टीरिट्टुविळैयाड़ि इङ्गेपोदक्कण्डीरे ***

इट्टमान पशुक्कळै इनिदुमरित्तुनीरूट्टि * विट्टुकोण्डु विळैयाड विरुन्दावनत्ते कण्डोमे ॥ १ ॥

क्या तुमने श्रीकृष्ण नामक श्याम वृषभ को कहीं देखा, जो कि किसी प्रकार के रोकठोक के विना अपनी मरजी के अनुसार घूमते फिरते, अपने को वलदेव जी का अन्यादृश छोटाभाई बताते हुवे, अत्यंत संतोष के मारे नाना प्रकार के कोलाहल मचाते हुवे, इधर से निकला होगा? (इस प्रश्न का प्रत्युत्तर यह है कि—) हां! श्रीवृंदावन दिव्यधाम में हमने उनके अच्छी तरह से दर्शन किये जो कि अपने प्रेमपात्र गोसमूहों को सानंद चराकर, पानी पिलाकर, उनके साथ खेल रहे हैं॥

प्रश्न करनेवालों का यह अभिप्राय है कि परमपद में विराजमान होते भगवान, मानों कैद में बंधित हुवे होंगे, इस तरह से शेषजी के फणों के, विष्वक्सेन जी के वेत्रदंडके और गरुडजी के पंखों के नीचे ही रहते हुवे वहां से बाहर निकलने में अशक्त थे। श्रीकृष्ण के रूप में अवतार करने पर तो, आपके ये सब निर्बंध एकदम छूट गये; अतः आप गाय चराने के व्याज से घर छोडकर बाहर निकल कर अपनी इच्छानुसार सर्वत्र घूमने लगे। वलदेव जी का छोटाभाई कहने का यह अभिप्राय है कि वलदेव जी उतने साधु थे, जितने श्रीकृष्ण धूर्त थे। अतः कभी दूसरे किसी के घर में मक्खन चोरी आदि धूर्तकृत्य करने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण जब घुस जाते, और घर में रहने वाला कोई व्यक्ति आप से पूछते कि "कस्त्वं बाल!" (अरे बालक! तू कौन है?) इत्यादि, तो आप तुरंत उत्तर दे देते कि "बलानुजः" (यानी मैं बलदेव जी का लघु भाई हूं)। आपकी भावना थी कि बलदेव जी का भाई कहनेपर लोग अपने को भी बडे भाई की तरह साधु ही समझेंगे॥ .... (१)

(गाथा.) अनुङ्गवेन्नैप्पिरिवुशेय्दु आयर् पाडि कवर्न्दुण्णुम् * कुणुङ्गुनारिकुट्टेच्चै गोवर्धननैक्कण्डीरे *
कणङ्गलोड्डुमिन्मेघम् कलन्दाप्पोल्वनमालै* मिनुङ्गनिन्नु विळैयाड विरुन्दावनत्तेकण्डोमे॥ २॥

क्या तुमने उन गोपालक कृष्ण को देखा जो कि मुझको विरहदुःख देते हुवे यहां से पधारकर व्रज का आक्रमण कर गोपी जनों का यथेच्छ अनुभव करते हैं, तथा मक्खन की गंध से सुगंधित हैं एवं बाल वृषभकी तरह देखाते हैं? हाँ! बृंदावन क्षेत्र में हमने उनके दर्शन पाये जो कि मानों बिजली और बादल दोनों मिल गये होंगे इस तरह से, अपने श्यामविग्रह पर शोभायमान वनमाला से विभूषित होकर अपने मित्रों के साथ खेल रहे हैं॥ .... (२)

(गाथा.) मालाय्प्पिरन्दनम्बियै मालेशेय्युम्मणाळनै *
एलाप्पोयूहलुरैप्पानै इङ्गेपोदक्कण्डीरे *
मेलालपरन्द वेयिल्काप्पान् विनतैशिरुवन्शिरहेन्नुम् *
मेलाप्पिन्कील्वरुवानै विरुन्दावनत्तेकण्डोमे॥ ३॥

क्या तुमने उनको इधर कहीं चरते फिरते देखा जो कि स्वयं मूर्तिमान (भक्त विषयक) व्यामोह प्रतीत होते हैं, और दूसरों को भी ऐसे व्यामोहित करते हैं, एवं असंगत अनृत वचन ही करते हैं? हाँ! हमने बृंदावनधाम में उनके दर्शन पाये जो कि ऊपर छानेवाली धूप को रोकने के लिए विनतासुत गरुडजी के पंख रूपी वितान की छाया में पधार रहे हैं॥

असंगत अनृत भाषण शब्द का अर्थ, "नवनीतभाण्डकुहरे हस्तं किमर्थं न्यधाः ? मातः कंचन वत्सकं मृगयितुम्" इत्यादि होते हैं। अर्थात् नवनीत चौर्य इत्यादि करते हुवे पकडे जाने पर श्री कृष्ण को झूट बोलना आवश्यक होता । तब आप ऐसे असंगत मृषावाद करते जिसको कोई भी, एक क्षणभर के लिए भी सत्य मान न सकता। इसका एक दृष्टांत उपरोक्त पद्यखंड में वर्णित किया गया है। किसी एक गोपी के वहां जाकर मक्खन उठाने के लिए श्री कृष्ण घडे में अपना हाथ छोडते रहे। उतने में वह गोपी स्वयं उधर आ गयी और कठिन स्वर से पूछने लगी कि "अरे? तुम कौन हो, क्या कर रहे हो, मक्खन के घडे में क्यों हाथ डाल रहे हो?" इत्यादि। तब श्री कृष्ण ने उत्तर दिया कि, "माताजी, क्षमा करो, इसको अपना घर समझकर मैं यहां आ गया; मेरा एक बछडा कहीं गायब हो गया था; उसको ढूंढने के लिए मैंने घडे में हाथ धरा कि शायद वह इधर आ गया होगा।" इत्यादि। उत्तरार्ध में यों कहा जाता है कि जब भगवान गाय चराने के लिए अरण्य में पधारते हैं, तब कडी धूप में आपका सुकुमार दिव्य मंगल विग्रह सूखा न जाय, इस तरह से गरुड जी आपके ऊपर उडते हुवे अपने पंखों से छाया करते हैं। अत'एव स्तोत्ररत्न में "दासस्सखा वाहन मासनं ध्वजः" इत्यादि पद्य में गरुडजी को "वितान" भी कहा गया है॥ .... (३)

(गाथा.) कार्त्तण्कमलक्कण्णेन्नुम् नेडुङ्कयिरुपडुत्तु * एन्नै ईर्त्तुकोण्डु विळैयाडुम् ईशनृतन्नैक्कण्डीरे *
पोर्त्तमुत्तिन्कुप्पाय प्पुहर्मल्यानैक्कन्नेपोल् * वेर्त्तुनिन्नु विळैयाड विरुन्दावनत्तेकण्डोमे ॥ ४ ॥

क्या तुमने उन मेरे स्वामी को इधर कहीं खेलते देखा, जो कि कालमेघ में उगनेवाले कमल पुष्पों की तरह शोभायमान अपने दिव्यनेत्ररूपी विशाल जाल में मुझको फँसाकर, अपने साथ ही खेंचकर ले जाते हैं? हाँ! हमने बृंदावन क्षेत्र में उनके दर्शन किये जो कि मोती से जडा हुआ कुर्त्ता पहन कर शोभायमान बडे गजशिशु की तरह दर्शन देते हुवे खेद बिंदु से अलंकृत होकर खेल रहे हैं॥ .... (४)

(गाथा.) मादवनेन्मणियिनै वलैयिल्पिळैत्तपन्निपोल् * एदुमोन्नुङ्कोळत्तारा ईशनृतन्नैक्कण्डीरे *
पीदहवाडैयुडैताळ प्पेरुङ्कार्मेगकन्नेपोल् * वीदियारवरुवानै विरुन्दावनत्ते कण्डोमे ॥ ५ ॥

क्या तुमने नीलमणि समान लक्ष्मीपति मेरे नाथ को कहीं देखा जो कि जाल से छूटे जानेवाले वराह की तरह अत्यंत गर्वित होकर दूसरों को अपनी किसी वस्तुका दान न करते हैं? (यानी मुझको अपने दर्शन नहीं देने चाहते हैं?) हाँ! हमने बृंदावनक्षेत्र में उनके दर्शन किये जो कि अपने घुटनेतक लटकनेवाले पीतांबर से अलंकृत होकर, एक बडे कालमेघ शिशु की तरह वीथी को पूर्ण करते हुवे विलक्षण शोभायात्रा में पधार रहे हैं॥ .... (५)

(गाथा.) तरुममरियाक्कुरुम्बनै त्तन्कैच्चार्ङ्गमदुवेपोल् *
पुरुववट्टमळहिय पोरुत्तमिलियैक्कण्डीरे *
उरुवुकरिदाय् मुहमूशेय्दाय् उदयपरुप्पदत्तिन्मेल् *
विरियुङ्कदिरेपोल्वानै विरुन्दावनत्ते कण्डोमे ॥ ६ ॥

क्या तुमने उनको कहीं देखा जो कि दयानामक परमधर्म को बिलकुल नहीं जानते हुवे, परमधूर्त होकर, अपने हस्तस्थित शार्ंगधनुष के समान वक्र व सुंदर भ्रू से अलंकृत होकर अपने प्रिय भक्तों को छोडकर घूमते रहते हैं? हाँ! हमने वृंदावन क्षेत्र में उनके जरूर दर्शन किये जो कि श्यामसुंदरविग्रहवाले, कमल के समान लाल मुखवाले तथा उदयपर्वतपर उगनेवाले सूर्यकी तरह विराजते हैं॥ [सूर्यदृष्टांत से श्रीकृष्ण के तेजोविशेष की, एवं कमलदृष्टांत से आनंदकरत्व की, तथा श्यामसुंदर कहने से तापहरत्व की सूचना की जाती हैं॥]....   .... (६)

(गाथा.) पोरुत्तमुडैयनम्बियै पुरम्बोलुल्लुङ्करियानै *
करुत्तैप्पिळैत्तुनिन्न अकरुमाझुहिलैकण्डीरे *
अरुत्तित्ताराकणङ्गळाल् आरप्पेरुहुवानम्बोल् *
विरुत्तम्पेरिदायूवरुवानै विरुन्दावनत्तेकण्डोमे ॥ ७ ॥

क्या तुमने उन परम साधुको कहीं देखा, जो कि अपने दिव्यमंगलविग्रह की तरह मनमें भी काले रहते हैं, मेरे मनोरथों को जो व्यर्थ बना देते हैं, और जो बडे श्यामल मेघ के समान सुंदर विराजते हैं? हाँ! हमने वृंदावनक्षेत्र में उनके दर्शन किये, जो कि बडे सुंदर नक्षत्रों से समलंकृत आकाश की तरह, अपने असंख्य मित्रों से मिलकर शोभायात्रा से पधार रहे हैं॥ .... (७)

(गाथा.) वेळियशङ्गोन्लुडैयानै प्पीदहवाडैयुडैयानै *
अळिनन्गुडैयतिरुमालै आळियानैकण्डीरे *
कळिवण्डेङ्गुङ्कलन्दाप्पोल् कमळ्पूङ्गुळल्हळ्तडन्दोळ्मेल् *
मिळिरनिन्नु विळैयाड विरुन्दावनत्ते कण्डोमे ॥ ८ ॥

क्या तुमने श्वेतशंखधारी, पीतांबरधारी, परमकृपावान्, चक्रायुधधारी लक्ष्मीपती को कहीं देखा? हाँ! हमने वृंदावनधाम में उनके दर्शन किये, जिनके विशाल भुजोंपर, सुगंधि एवं सुंदर केशपाश, मानों कि मधुपान से मत्त भ्रमर सर्वत्र फैल रहे हैं, ऐसी शोभा देते हुवे लटक रहे हैं॥ .... (८)

(गाथा.) नाट्टैप्पडैयेन्नयन्मुदलात्तन्द नळिर्मामलरुन्दि * वीट्टैप्पण्णिविळैयाडुम् विमलन्तनैक्कण्डीरे ॥
काट्टैनाडित्तेनुहनुम् कळिरुम्पुळ्ळुमुडन्मडिय* वेट्टैयाडिवरुवानै विरुन्दावनत्ते कण्डोमे ॥ ९ ॥

क्या तुमने उन विमल को कहीं देखा, जो कि जगत की सृष्टि करने के लिए अपने शीतल विशाल नाभीकमल से ब्रह्मा इत्यादि प्रजापतियों की सृष्टि कर इस तरह से जगत्सृष्टि रूप लीला कर रहे हैं? हाँ! हमने वृंदावनक्षेत्र में उनके दर्शन किये, जो कि धेनुकासुर, कुवलयापीड गज, बकासुर आदियों का संहार करते हुवे, वन में पधार कर शिकार खेल कर पधार रहे हैं॥ .... (९)

(गाथा.) परुन्दाळ्कळिट्रुकरुळ्शेयूद परमन्तनैप्पारिन्मेल् *
विरुन्दावनत्तेकण्डमै विट्टुशित्तन्कोदैशोल् *
मरुन्दामेन्नु तम्मनत्ते वैत्तुकोण्डुवाळ्वारहळ् *
पेरुन्दाळुडैय पिरानडिकीळ् प्पिरियादेन्नुमिरुप्पारे ॥ १० ॥

बडे पैरवाले गजेंद्र पर कृपा करनेवाले परमपुरुष के दर्शन इसी भूमंडल पर बृंदावन क्षेत्र में मिल गये; ऐसे अर्थ का वर्णन करनेवाली श्री विष्णुचित्त सूरी की सुपुत्री गोदादेवी से अनुगृहीत इन गाथाओं को, संसारव्याधि का भेषज मानकर अपने मन से जो इनका मनन करते विराजते हैं, वे महामहिम श्री पादवाले भगवान के चरणों के नीचे रहते हुवे, उनसे कभी विश्लेष न पाते नित्यानुभव करेंगे॥ (इस फलश्रुति के साथ यह दशक तथा दिव्यप्रबंध समापित किया गया॥ .... (१०)

—* इस दशक का सारांश संग्राहक पद्य यह है *—

श्लो॥ मत्प्राणेशो मुकुन्दो मुसलिसहचरस्तस्करो जारडिम्भो
मह्यं विश्लेपदुःखप्रद इह कितवः कोऽपि कच्चिन्नु दृष्टः? ।
दृष्टो दृष्टोऽद्य बृन्दावनभुवि विहरन् चारयन् गास्सवत्साः
निघ्नन् दैत्यांश्च कोऽपीत्यनुभवमतुलं वक्ति गोदाऽन्त्यसूक्ते ॥ १४ ॥

गोदादेवी अपने दिव्यप्रबंध के इस अंतिम (चौदहवे) दशक में यों संवाद का वर्णन करती हैं। प्रश्न यह हैं कि, क्या मेरे प्राणनाथ, बलदेव सहित श्री कृष्ण, जो कि जारचोरशिखामणि हैं और मुझे विश्लेष दुःख देते हैं, ऐसे धूर्त हैं, ये कहीं इधर देखने में आये क्या? इसका प्रत्युत्तर यह है कि, हाँ; हाँ; अभी बृंदावन में गायों को और बछडों को चराते, खेलते, कूदते और दुष्टदैत्यों का संहार करते विराजमान आपके दर्शन मिल गये हैं। इस तरह से अत्यद्भुत भगवदनुभव का वर्णन इस दशक में किया गया है॥

॥ नाच्चियार तिरुमोळि में चौदहवां दशक समाप्त हुआ ॥

इस प्रकार से गोदादेवी ने भक्ति बढानेवाली रसघन, अत्यद्भुत अनुभवों का प्रकाशक अपनी शुभवाणी से इस द्राविड दिव्यप्रबंध को अनुगृहीत किया। द्राविडी से अपरिचित भावुक विद्वानों के उपयोग के लिए, नानाभाषाओं में दिव्यप्रबंध के टीकाकार जगदाचार्य सिंहासनाधिपति श्री कांची प्रतिवादिभयंकर अण्णंगराचार्य स्वामीजी ने इसका संस्कृत विवर्त किया। इसके तथा आपकी द्राविडी व्याख्या के अनुसार यह हिंदी अनुवाद सामान्य भक्त श्री वैष्णव जनता के उपयोग के लिए लिखा गया है इति शम्॥

यह टीकालेखन श्री बृंदावन क्षेत्र में श्री गोदा रंगनाथ भगवान के वार्षिक ब्रह्मोत्सव समय में रथोत्सव के शुभदिन में रथयात्रा के समाप्त हाने के बाद भगवान की सवारी के तिरुमंजन मंडप पर पधारते ही समापित किया गया॥

ता. २९–३–१९६२.

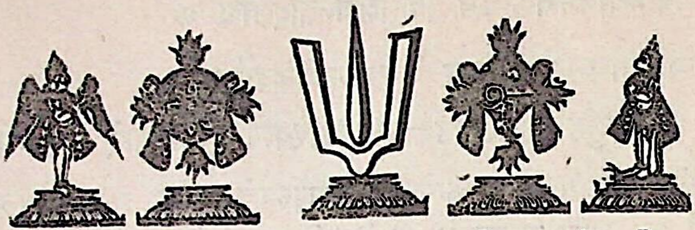
॥ नाच्चियार तिरुमोळि दिव्यप्रबंध समाप्त हुआ ॥

॥ आण्डाळ् तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

श्रीपराङ्कुशपरकालयतिवर वरवरमुनीन्द्रेभ्यो नमः ॥

श्रीमते कुलशेखरसूरये नमः ॥



द्राविडवेद नामक चार हजार दिव्यप्रबंध के पहले सहस्र का पांचवां प्रबंध

श्री कुलशेखर सूरि से अनुगृहीत

॥ पेरुमाळ् तिरुमोळि अर्थात् श्रीकुलशेखर सूक्त ॥

(हिंदी अनुवाद व टीका सहित)

तनियन् अथवा मुखपद्य

इन्नमुदमूट्टुहेनिङ्गे वा पैङ्गिळिये तेन्नरङ्गम्पाडवल्ल शीर्पेरुमाळ् पोन्न-
ञ्जिलैशेर्न्दुदलियर्वेंळ् शेरलर्कोनेङ्गळ् कुलशेखरनेन्रे कूरु ॥ १ ॥

हे मनोहर शुक शिशो ! तुम्हें एक परमभोग्य अमृत पिला दूंगा, इधर आजा ; श्रीरङ्गक्षेत्र की स्तुति करने में निरत, शुभगुण समलंकृत, महात्मा, सुंदरियों के मनोहर, केरलदेशके राजा, हमारे कुलशेखर सूरी के नाम बोलो ॥ [श्री कुलशेखर आळ्वार के चरित्र में लिखा गया है कि आप तोते को रामनाम सिखाकर, उससे उस दिव्य नाम को सुनते सुनते आनंद पाते थे । इसी तरह से आळ्वार के भक्त एक महात्मा तोते के मुख से आपके दिव्यनाम सुनने की इच्छा से एक तोते को बुलाते हैं कि, "हे कीर पोत ! इधर आजा, मैं तुमको अमृत पिला दूंगा ।" इससे प्रतीत होता है कि आचार्य नामोच्चारण अथवा उसका शिक्षण ही अमृतप्राशन है । वस्तुतस्तु सच्छिष्य ही यहांपर कीर कहलाता है ; और उससे यों कहा जाता है कि, अगर तुम कुलशेखर आळ्वार के नाम पुकारोगे तो मैं तुमको आपकी श्रीसूक्ति नामक अमृत पिलाऊंगा ॥]

आरङ्गेडप्परनन्बर्कोळ्ळारेन्रवर्हळुक्के * वारङ्गोडु कुडप्पाम्बिल् कैयिट्टवन् मात्तलरै *
वीरङ्गेडुत्त शेङ्गोल् कोल्लिकावलन् विल्लवर्कोन् * शेरन्कुलशेखरन् मुडि वेन्दर्शिखामणिये ॥ २ ॥

जब कि अमात्यों ने नवरत्नमालिका का अपहरण कर भगवद्भक्त श्रीवैष्णवोंपर कलंक लगाने की चेष्टा की, तब यों शपथ खाते हुवे कि "भगवद्भक्त कभी चोरी न करेंगे," सर्पवाले घडे में हाथ धरनेवाले, शत्रुओं के प्रताप को मिटानेवाले, कोल्लिनामक नगर के अधीश, धनुर्विद्या जाननेवालों में श्रेष्ठ, अभिषिक्त क्षत्रिय सार्वभौम कुलशेखर सूरि हैं । [आपकी जय हो ॥]

इस पद्य में श्री कुलशेखर सूरि के चरित्र की एक महत्वपूर्ण घटना उपवर्णित है ; जिसका विवरण अभी प्रकाशित किये जानेवाले आपके जीवन चरित्र में स्पष्ट किया जाएगा ॥ .... (२)

॥ तनियन् पद्यों का विवरण समाप्त हुआ ॥

॥ श्री कुलशेखर आळ्वार का वैभव ॥

चेरमंडल नामक राज्य में कोळिक्कोडु नामक नगर में दृढव्रत नामक राजा राज्य करते थे। बहुतकाल तक संतानहीन रहने से आप दुःखी हो गये थे और बाद में महात्माओं के उपदेश से आप भगवान के ध्यान, भजन, पूजन आदि में विशेषरूप से लग गये। इस आराधन के फलतया आपके एक सुपुत्र, तिरुवञ्जिक्कळं नामक नगर में कुंभमास के पुनर्वसु नक्षत्र में उत्पन्न हो गये। उन दिव्य शिशु की शोभा देखकर और दूसरे भी कितने कारणों से यों जानकर कि "यह बालक मेरे कुलकी कीर्ति को खूब बढा एगा," राजाने अपने उस पुत्र को कुलशेखर नाम से विभूषित कर अत्यंत आदर से उसका पालन किया। फलतः कुलशेखर ने कालोचित चौल उपनयन इत्यादि संस्कारों को प्राप्त करके वेदवेदांगादि विद्याओं के साथ अपनी जाति के अनुरूप नीतिशास्त्र अस्त्रशस्त्रविद्या इत्यादि विविध विद्याओं को भी प्राप्त किया। इस तरह से समस्तविद्या संपन्न एवं सकलशुभगुणशोभित अपने पुत्र को देखते देखते राजा दृढव्रत बहुत प्रसन्न हो कर आपको युवराजा बनाकर आनंदित हो गये ॥

पश्चात् चतुरंग सेना लेकर कुलशेखर जी अपनी राजधानी से निकलकर चोल पांड्य इत्यादि अनेक राज्यों को जीतकर "चेरचोलपांड्यदेशाधिपति" इत्यादि अनेक बिरुदों को प्राप्तकर स्वदेश लौटे। तब पिताजी ने भी आपको पक्के राजा बनाकर, प्रजारक्षण सेवा में आपको नियुक्तकर स्वयं वानप्रस्थाश्रम में प्रविष्ट हो गये। पिता जी की आज्ञाके अनुसार श्रीकुलशेखर जी भी धर्म से राज्य का परिपालन करने लगे; और गृहस्थाश्रम को अपनाकर दृढव्रत नामक एक पुत्र के और इला नामक पुत्री के पिता बन गये। आपका ऐश्वर्य परिपूर्ण रहा; किसी बात की कमी न थी ॥

इस तरह से लौकिक विषय में परिपूर्णकाम होने पर आपका मन परलोक कल्याण की खोज में व्यापृत हो गया। अतः विद्वानों को बुलाकर उनकी गोष्ठी में बैठकर आप वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण इत्यादिग्रंथों का अध्ययन करने लगे। इससे और भगवानके विशेष अनुग्रह से आपके हृदय में तत्वज्ञान का उदय हो गया और भगवद्भक्ति बढने लगी। फलतः आपका मन लौकिक विषयों में विरक्त हो गया और लक्ष्मीनाथ भगवान श्रीमन्नारायण में सुप्रतिष्ठित हुआ। भगवान के रूप तो अनंत होते हैं। परंतु इनमें से विभवावतारों में श्रीरामावतार के और अर्चावतारों में श्रीरंगनाथ भगवान के आप अनन्यभक्त हो गये। श्रीरामयणकथा सुनने में आपकी बडी शौक थी; और अतिथिसत्कार में और उसमें भी श्रीवैष्णवों के पूजन में आप बडा आदर करते थे। भगवान श्रीरामचंद्रजी की तथा भगवान राजगोपाल जी की परमसुंदर तथा सर्वाभरण विभूषित दिव्यमूर्तियां आपके गृहार्चन में विराजमान थीं; जिनकी नित्यनैमित्तिकादि पूजाएं बडे आदर के साथ की जाती थीं। इस तरह से आप असाधारण भगवद्भागवत भक्ति से विभूषित होकर विराजमान थे।

विद्वान होने के कारण आप स्वयं ग्रंथों का पाठ प्रवचन इत्यादि कर सकते थे ही। तो भी आप मानते थे कि स्वयं वांचने से भी, महात्माओं के मुख से भगवत्कथा को सुनना ही रसवत्तर है। अतः

आप परमभागवतोत्तम एक पंडित को नियुक्त कर, उनसे रोज श्रीरामयण की कथा सुनने लगे। परंतु कथा सुनते सुनते आप उसमें इतने तल्लीन हो जाते कि आप एकदम मान लेते थे कि यह रामायण चरित्र हाल में हमारी आँखों के सामने चल रहा है; यह तो पूर्वकाल के किसी वृत्तांत का वर्णन मात्र नहीं है। ऐसी थी आपकी विलक्षण भावना। एक दिन की बात है। आरण्यकांड की कथा चलती थी। खरदूषणादि राक्षसों के साथ युद्ध का प्रसंग आया। उस प्रकरण का यह एक पद्य है—चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्। एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धं भविष्यति॥ इसका तात्पर्य यह है—जब खरदूषण त्रिशिर आदि घोर राक्षस प्रबल सेना के साथ श्रीरामचंद्रजी से लडने को पंचवटी आये, तब इस युद्ध को देखने के लिए समस्त देवगण आकर आकाश में खडे हो गये और आपस में कहने लगे कि, "एक ओर चौदह हजार क्रूर राक्षस लोग इकट्ठे हो गये हैं और दूसरी ओर धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी अकेले खडे हैं। फिर इस विषमयुद्ध का परिणाम क्या होगा?" जब पौराणिक महात्मा ने इस पद्य का विवरण किया, तब भक्तवर कुलशेखर जी ने सोचा कि, "जब मेरे प्रभुवर ऐसी घोर आपद में पडे हैं, तब चुपचाप होकर इधर बैठे रहना हमारे लिए बडा अनुचित है। अतः सेना लेकर आपकी सहायता के लिए तुरंत जाएंगे।" अतः आप झट उठ गये और शीघ्र पंचवटी जाने के लिए सेना को प्रेरित करते हुवे बहुत कोलाहल करने लगे। इस पागलपन को देखकर सब लोग चकित और किंकर्तव्यतामूढ हो गये। तब दैवयोग से पौराणिक पंडित जी को एक उपाय सूझा। आपने तत्क्षण "तं दृष्ट्वा शत्रुहंतारं महर्षीणां सुखावहम्। बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे॥" यह श्लोक पढकर उसका अर्थविवरण कर दिया। पद्य का तात्पर्य यह है—खरदूषणादि उन चौदह हजार राक्षसों का संहार करके श्रीरामचंद्रजी अपनी पर्णशाला पहुंच गये; तब जानकी जी विजयलक्ष्मी से सुशोभित आपके दिव्यमंगल विग्रह के दर्शन कर और प्रेमसे आलिंगन कर अत्यन्त संतुष्ट हो गयीं। यह वृत्तांत सुनकर कुलशेखर जी बहुत संतुष्ट हुये और अपने कोलाहल को बंद कर शांतचित्त हो गये। इसके बाद पौराणिक महात्मा कथा वर्णन करने में बडे होशियार हो गये। भगवान का विजय होने के प्रसंगों का विस्तृत वर्णन करते, और दुःख प्रसंगों को संक्षेपतः सूचित करते, आप प्रवचन करने लगे॥

इस प्रकार से श्री रामायण का प्रवचन चलता रहा। एक दिन, जब कि पौराणिक महाशय किसी कार्यवशात् बाहर चले गये, उनके पुत्र प्रवचन करने आ गये। श्री कुलशेखर सूरिजी के पूर्वोक्त विशेष स्वभाव से आप अपरिचित थे। इस लिए आपने उस दिन का प्रवचन विषय सीतापहरण वृत्तांत का कुछ अधिक विस्तृत वर्णन कर दिया। उसको सुनते ही राजा बहुत दुःखी हो गये और यों चिल्लाते हुवे कि, "हाय! हाय! माताजी के ऊपर यह कैसी आपत्ति आगयी। मैं अभी समस्त सेना के साथ लंका जाकर दुष्ट रावण का वध कर माताजी को छुडा दूंगा" आप दक्षिणदिशा की ओर चलने लगे। इस आश्चर्य को समस्त लोगों ने देखा तो सही; परंतु आपको रोकने की शक्ति किसी में न रही। अतः कातुरता से सब देखते देखते रह गये। भक्तमणि कुलशेखर जी तो किसीसे किसी प्रकार का वार्तालाप किये विना, आगे बढते जाते थे। क्रमशः आप समुद्र के किनारे पहुंच गये। तो भी आप रुके नहीं।

पैरों से ही उसको भी पार करने की वार्ता करते हुवे आप समुद्र में उतर कर चलने लगे। कंठ तक पानी आ गया। परंतु आप रुके नहीं। इस परमविलक्षण भक्ति से प्रसन्न होकर श्री रामचंद्र भगवान सीतालक्ष्मणों के साथ प्रत्यक्ष हो गये और अपने से अनुष्ठित रावणादि वध का वर्णन करते हुवे, बोले, "चलिए, महाराजाधिराज! अब दुष्टदमन हो चुका; यहां देखिए, सीता भी विमुक्त हो गयी; अब नगर लौटेंगे।" यों कहते हुए आप कुलशेखर महाराज को स्वदेश लौटाकर अंतर्हित हो गये। भगवान भक्तों को संसार सागर से जो पार कर देते हैं, उसकी यह सूचना समझी जा सकती है। ऐसी परम विलक्षण थी महात्मा कुलशेखर के भगवत्कथा सुनने की रीति॥

इस तरह से नाना प्रकारकी भगवत्कथाओं को सुनते सुनते, आपके मन में श्रीरंगक्षेत्र जाकर श्रीरंगनाथ भगवान की सेवा करने की इच्छा उत्पन्न हो गयी। तब आप उसके अपेक्षित तैयारी करने लगे। इसको देखते अमात्यों ने सोचा कि, "अगर आप श्रीरंग जायंगे, तो वहीं नित्य निवास करने लगेंगे; न तु कथंचित् इधर लौटेंगे। फिर इस राज्य की रक्षा कौन करेगा? अतः आपको इस प्रयत्न से निवृत्त करना ही उचित है।" ठीक उस समय में वहां पर कितने ही परमभागवत श्रीवैष्णव महात्मा लोग अकस्मात् पधारे। अमात्यों ने उनको महाराजा के पास भेज दिया। उनके दर्शन पाते ही आपने इस वचन का स्मरण किया कि, षष्टिवर्ष सहस्रान्तं विष्णोराराधनात्फलम्। सकृद्वैष्णवपूजायाः फलेन न समं भवेत्॥ [अर्थात् साठहजारवर्ष की जानेवाली भगवान की सेवा का फल, एक बार की जानेवाली भगवद्भक्त वैष्णवों की सेवा के फल के समान न होगा।] तब आप अपने प्रयाण को बंद कर उन श्री वैष्णवों की सेवा में मग्न हो गये, जिससे कुछ समय बीत गया। फिर आपने श्रीरंगयात्रा करने की चेष्टा की, और मंत्रियों ने पूर्ववत् कतिपय श्रीवैष्णवों को आपके संमुख भेज दिया। इस तरह से वारंवार श्रीरंगयात्रा रोकी गयी। यह वृत्तांत इस प्रसिद्ध पद्य में उपवर्णित है कि, घुष्यते यस्य नगरे रंगयात्रा दिने दिने। तमहं शिरसा वन्दे राजानं कुलशेखरम्॥ [यह अर्थ है—जिनकी नगरी में श्रीरंगयात्रा की घोषणा प्रतिदिन की जाती है, ऐसे महात्मा कुलशेखर राजा का नमस्कार करूंगा। यह भाव है—श्रीरंगयात्रा करने के इच्छुक श्री कुलशेखर राजा अपनी नगरी में यों घोषणा कराते थे, कि "कल महाराजा श्रीरंग के लिए प्रस्थान करेंगे। जिनकी इच्छा हो वे आपके साथ चल सकते हैं।" परंतु उक्तरीति से यह यात्रा दूसरे दिन रुक जाती थी; दो चार दिन के बाद फिर घोषणा होती थी। इस तरह से नित्य यात्रा घोषणा चलती रही॥]

मंत्रियों की इस कूटनीति से महात्मा कुलशेखर की श्रीरंगयात्रा तो रुक गयी; परंतु श्रीवैष्णवों की सेवा करने में आपकी रुचि बहुत बढ गयी, और आपके वहां उनका समाज भी बहुत बढ गया। राजमहाल में श्रीवैष्णवलोग विना संकोच चलने फिरने लगे; और उनपर महाराजा की भावना भी खूब बढ गयी। इससे अमात्यों के मन में उन श्रीवैष्णवों के प्रति असूया उत्पन्न हो गयी; फलतः वे किसी प्रकार से महाराजा के मन को कलुषित कर उन पर से हठा देने की कूटनीति करने की चिंता में लग गये॥

श्रीरामनवमी का उत्सव आ गया। बडे वैभव के साथ यह उत्सव मनाया जाता था। भगवन्मूर्तियों के तिरुमंजन महोत्सव का प्रारंभ हुआ। तदर्थ, उनपर अर्पित अमूल्य वस्त्र व आभूषण उतारे गये। शास्त्रोक्त विधि के अनुसार वेदपाठ, स्तुतिपाठ, मंगलवाद्यघोष इत्यादि के साथ धूमधाम से तिरुमंजन समाप्त किया गया। फिर अलंकार होने लगा। परंतु उतने में एक अनर्घ रत्न का हार गायब हो गया था। पूजारियों ने उसको इधर उधर ढूंढा; परंतु पाया नहीं। तब अत्यंत भयभीत एवं दुःखी होकर उन्होने महाराजासे इस आपत्ति की विनती की। महाराजा ने अमात्यों को बुलाकर उनको आज्ञा दी, कि "रत्नमाला के चोर को अभी पकडकर इधर लाओ।" तब मंत्रियों ने विनय का अभिनय करते हुवे विनती की कि "प्रभो! हम क्या कहें? क्या करें? आपकी सीमातीत भक्ति के पात्र ये श्रीवैष्णव लोग इस राजमहाल में इतने अधिकार प्राप्तकर जम बैठे हैं, कि उनको कोई रोकठोक नहीं। इनके सामने हम कर्मचारियों का भी कुछ चलता नहीं है। इनको छोडकर दूसरा कौनसा चोर इधर आ सकेगा और भगवान के दिव्यभूषण की चोरी करने का साहस कर सकेगा? अतः इनको उचित दंड देनेपर रत्नहार स्वयं प्रकट होगा।" वास्तव में यह मंत्रियों की कूटनीति ही थी। क्यों कि उन्होने स्वयं उस हार की चोरी की थी और श्रीवैष्णवों पर यह कलंक लगाया था॥

यह बात सुनकर महात्मा कुलशेखर बहुत दुखी हो गये। श्रीवैष्णवों के कल्याणगुणों को आप खूब जानते थे, और आपको इस बातपर भी बडा विश्वास था कि वे महात्मा कभी किसी प्रकार का पाप काम करने की चिंता तक न करेंगे। अतः सहज में ही आप अपने अमात्यों पर अप्रसन्न हो गये और उनसे बोले कि, "अरे तुम लोग यह क्या कह रहे हो? सुदृढ जान लो कि श्रीवैष्णव महात्मा कभी भी ऐसा पाप मनसाऽपि न करेंगे। लो, इस विषय में मैं शपथ करूंगा। घडे में बंदकर एक सांप को यहां पर मंगावो।" तब सर्प लाया गया। उसको देखकर महाराजा बोले, "मैं शपथ करता हूं कि ये श्रीवैष्णव महात्मा हारके चोर नहीं हैं। अगर यह मेरी बात असत्य हो, तो, हे सर्पराज! तुम मुझको काट कर मार डालो; अन्यथा नहीं," यों कहते हुवे आपने उस घडे के अंदर अपना हाथ डाला। सर्प तो सत्य का वश होता है; अतः वह आपको काट न सका। इससे महाराजा की वाणी की सत्यता, और आपकी असीम श्रद्धा तथा श्रीवैष्णवों की शुद्धि ठीक ख्यापित हो गयीं॥

इस कल्पनातीत घटना से मंत्री लोग भयभीत हो गये और अपनी हार मानकर, कांपते हुवे स्वर में उन्होंने प्रभु से अपनी कूटनीति की विनती कर क्षमा मांगी। दयामूर्ति राजाने भी उनको अभय देते हुवे कहा, "यह तो तुम्हारा कल्पनातीत घोर अपराध हो गया। तो भी अगर तुमको क्षमा प्राप्त करने की इच्छा हो तो, फिर कभी भी ऐसा अपराध न करना। श्रीवैष्णवों को भगवान से भी पूज्य मानकर उनपर प्रेम व भक्ति के द्वारा नित्य उनकी सेवा करो। अभी का पाप मिटाने के लिए तो उन महात्माओं का चरणामृत पीना अनिवार्य होगा।" इस तरह से आपने सदुपदेश देकर और श्रीपादतीर्थ पिलाकर उन मंत्रियों को भी धन्य बनाया॥

कुछ समय के बाद श्री कुलशेखर स्वामीजी निरंतर भगवदनुभव विरोधी राजगद्दी से विमुख होकर अपने पुत्र को उस पर बिठाकर स्वयं सपरिवार श्री रंगजी पधार गये। आपकी एकमात्र पुत्री इला देवी ने श्रीरंगनाथ भगवान को अपने पतित्वेन स्वीकार कर लिया और तथैव उनको प्राप्त भी किया। इस रीति से श्री स्वामीजी महाराज़ श्रीरंगनाथ भगवान की एवं उनके भक्तों की सेवा करते हुवे कुछ समयतक श्रीरंगदिव्य-धाम में विराजमान थे। बाद में श्री वेंकटाद्रि, अयोध्या इत्यादि अनेक दिव्यदेशों की यात्रा करते हुवे आपने तत्र तत्र भगवान का मंगलाशासन भी किया। इन सब अनुभवों का प्रवाह ही आपके श्रीमुख से "पेरुमाळ तिरुमोळि" नामक दिव्यप्रबंध के रूप से निकल गया और समस्त चेतनों का उद्धार करने समर्थ हो गया। अपने ६७-के वर्षकी उम्र में आप परमपद पधार गये॥

उक्त दिव्यप्रबंध के चौथे दशक में जहां पर श्री वेंकटाद्रि की स्तुति की जाती है, श्री कुलशेखर आळ्वार श्री वेंकटाद्रिनाथ भगवान से यों प्रार्थना करते हैं कि, "हे प्रभुवर! आपके दिव्यमंदिर में सोपान (सीढी) बनकर, मैं आपका नित्यानुभव करने का भाग्य पाऊं।" अत: सर्वत्र दिव्यदेशो में ठीक भगवान के सामने जो बडी सीढी रहती है, उसको कुलशेखरप्पडी (पडि-सोपान) कहना सत्संप्रदायसिद्ध है॥

इस तरह से श्री कुलशेखर आळ्वार के वैभव का अनुसंधान करनेवाले मानव धन्य बन जाते हैं॥

॥ श्रीरस्तु ॥

श्री कुलशेखर आळ्वार की जय हो

॥ पेरुमाळ् तिरुमोळि अथवा श्रीकुलशेखरसूक्त ॥

अवतारिका—संप्रदायवृद्ध महात्मा लोग श्री रामचंद्रभगवान को द्राविडी में पेरुमाळ् (माने भगवान) कहते हैं। आपके अवतार नक्षत्र पुनर्वसू नक्षत्र में स्वयं अवतार करने से, और विशेषत: आपके अनन्यभक्त होने से श्री कुलशेखर आळ्वार को भी कुलशेखरप्पेरुमाळ् कहना सांप्रदायिक है। इस शब्द का संक्षिप्तरूप है पेरुमाळ्। अत: आपसे अनुगृहीत प्रकृत दिव्यप्रबंध का नाम "पेरुमाळ् तिरुमोळि" रखा गया [तिरुमोळि—श्रीसूक्त]। दिव्य प्रबंधों को चार हजार के रूप में विभक्त कर, उनमें भी आगे पीछे के एक क्रम का निर्णय करनेवाले श्री नाथमुनिस्वामीजी ने इस प्रबंध को पहले हजार में पांचवां स्थान दिया है। आळ्वार की विलक्षण भगवद्भक्ति का प्रकाशक यह दिव्यप्रबंध भक्तों के लिए परमभोग्य है। इस में दस दशक हैं और कुल १०५ गाथाएं हैं। इन दशकों के प्रमेय ये हैं—(१) श्रीरंगनाथ भगवान के दर्शन करने की आल्वार की इच्छा नानाप्रकारों से उपवर्णित है। (२) श्रीरंगनाथ भगवान के भक्तों का वाचामगोचर वैभव वर्णित है। (३) श्रीरंगनाथ भगवान के विषय में सीमातीत प्रेम, एवं इतर लौकिक विषयों में विरक्ति बतायी गयी हैं। (४) श्री वेंकटाद्रि में नित्यवास करने लायक नानाविध तिर्यक्, स्थावर इत्यादि जन्म मांगे गये हैं। (५) केरलदेशस्थ तिरुवित्तुवक्कोडु नामक दिव्य देशस्थ भगवान के विषय में आल्वार की अनन्यगतित्वनिष्ठा अनेक दृष्टांत पूर्वक बतायी गयी हैं।

(६) श्री कृष्णभगवान के प्रति प्रणयरोषवती गोपिकाओं की वाणी अनूदित है। (७) श्री कृष्ण की बाललीलादि के अनुभव से वंचित देवकीजी का प्रलाप वर्णित है। (८) श्रीरामचंद्र शिशु को झूले में सुआकर गान करनेवाली कौसल्या जी के हिंडोलागीत का वर्णन किया गया है। अर्थात् तिरुक्कण्णपुर नामक दिव्यदेश के स्वामी भगवान का अनुभव भी किया गया है। (९) कैकेयी के वाग्जाल से व्यथित होकर श्रीरामचंद्र जी को वन भेजनेवाले दशरथ चक्रवर्तीका प्रलाप वर्णित है। (१०) चित्रकूट नामक दिव्यदेश के प्रभु भगवान के अनुभवद्वारा समग्ररामायण कथा का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। इस तरह से दस प्रकार के भगवदनुभव कराते हुवे, भक्तों को भक्तिसागर में डुवाने वाला यह दिव्य प्रबंध सर्वदा सर्वोपभोग योग्य है॥ *

॥ पेरुमाळ् तिरुमोळि – पहला दशक – इरुळिरिय ॥

(श्रीरंगनाथ भगवान के दर्शन करने की इच्छा का वर्णन)

(गाथा.) इरुळिरियच्चुडर्मणिहळिमैकुमूनेत्ति इनचुत्तियणिपणमायिरङ्गळान्र्द *
अरवरशप्पेरुञ्जोदियनन्तनेन्नुम् अणिविळङ्गुमुयर्वेळ्ळैयणैयैमेवि *
तिरुवरङ्गप्पेरुनगरुळ्तेण्णीर्प्पोन्नि तिरैक्कैयालडिवरुडप्पळ्ळिकोळ्ळुम् *
करुमणियैकोमळत्तैक्कण्डुकोण्डु एन्कण्णिणैहळेन्नुक्कोलोकळिक्कुनाळे ॥ १ ॥

श्रीरंगदिव्यधाम में अंधकार निरासक मणियों से तथा बिंदुओं से युक्त सहस्रफनवाले, तेजोमय, नागराज, अनंत नामक अतिसुंदर, समुत्तुंग, शुभ्र शय्यापर, स्वच्छजलवाहक कनकसरित् नामक कावेरीजी के लहर रूपी करों से सेवित पादारविंद होकर, आराम से शयन करनेवाले, नीलमणिश्याम, परमसुकुमार दिव्यमंगलविग्रह वाले श्रीरंगनाथ भगवान के दर्शन करती हुई मेरी आँखें कब आनंदित होंगी? [दोनों कावेरियों के बीच में, श्रीरंग दिव्यक्षेत्र में, शेषशय्यापर शयन करनेवाले श्रीरंगनाथ भगवान के दर्शन करने की आल्वार की अत्युत्कट इच्छा इस पद्य से बतायी जाती हैं। इस गाथा के अनुसार ही श्रीपराशरभट्टार्य स्वामीजी का यह प्रसिद्ध पद्य अवतीर्ण हुआ हैं—कदाऽहं कावेरीतटपरिसरे रङ्गनगरे शयानं भोगीन्द्रे शतमख-मणिश्यामलरुचिम् इत्यादि ॥] .... (१)

(गाथा.) वायोरीरैञ्जूरुतुदङ्गळान्र्द वळैयुडम्बिनळल्नाहमुमिळ्न्दशेन्दी *
वीयादमलर्चेन्निवितानमेपोल् मेन्मेलुम्मिहवेङ्गुम्परन्ददन्कीळ् *
कायाम्पूमलर्प्पिरङ्गलन्नमालै कडियरङ्गत्तरवणैयिल्पळ्ळिकोळ्ळुम् *
मायोनैमणत्तूणेपत्तिनिन्नु एन्वायारवेन्नुकोलोवाळ्त्तुनाळे ॥ २ ॥

सुगंध से परिवृत (अथवा प्राकार रूप रक्षा से युक्त) श्रीरंगदिव्यधाम में, सहस्रनामों का कीर्तन करने वाले सहस्र फणों से युक्त, शुभ्रविग्रहवाले, निरपाय स्थान में भी अपाय शंका करने के स्वभावसे

अपने मुखों से विषज्वाला निकालकर उससे ऊपर एक लाल पुष्पमय छत जैसे बनानेवाले शेषजी के ऊपर शयन करनेवाले, अतसीपुष्प के समान कांतिवाले, अत्याश्चर्यमय दिव्य गुण चेष्टितवाले, महानुभाव श्रीरंगनाथ भगवान के सामने आमोदस्तंभ का अवलंबन करते हुवे, मैं कब अपनी वाणी से आपकी स्तुति कर पाऊंगा?

श्रीरंगनाथ भगवान के सामने सुवर्ण कवचालंकृत दो स्तंभ विराजमान हैं जिनको आमोदस्तंभ अथवा मणत्तूण् कहते हैं। भगवान के दिव्यमंगलविग्रह की सुगंध ही इन स्तंभों का रूप धारण कर रही है; इस कारण से इनका यह नाम आगया। इस गाथा में आल्वार यों कहते हैं कि "आमोदस्तंभों का अवलंबन कर," न तु "उनके पास खडा होकर" इत्यादि। अर्थात् आप इन स्तंभों को सुदृढ पकडना चाहते हैं। क्यों? इसका कारण श्री पराशर भट्टार्य स्वामीजी से श्रीरंगराजस्तव के "शेषशयलोचनामृत...." इत्यादि (५९) पद्य में उपवर्णित हैं। उसका यह तात्पर्य है—भक्तों को देखते ही भगवान के दिव्य नेत्रों से कटाक्ष का एक महान प्रवाह निकलता है, जिसमें भक्त लोग बह जाते हैं। ऐसी अवस्था में वे इन स्तंभो को सुदृढ पकड कर अपने को संभालते हैं॥ .... (२)

(गाथा.) एम्माण्विनयन्नान्गुनाविनाल्लुमेड्डुत्तेत्ति ईरिरण्डुमुहमुङ्कोण्डु *
एम्माडुमेळिर्कण्गळेट्टिनोडुम् तोळुदेत्तियिनिदिरैञ्जनिन्नशेम्बोन् *
अम्मान्तन्मलर्क्कमलकोप्पूळ्तोन्न अणियरङ्गत्तरवणैयिल्पळ्ळिकोळ्ळुम् *
अम्मान्तनडियिणैकीळलर्हळिट्टु अङ्गडियवरोडेन्नुकोलोवणुहुनाळे ॥ ३ ॥

अत्यधिक प्रभाववाले चतुर्मुख ब्रह्माजी, अपने चारों मुखों से स्तुति करें, एवं वेदों का पाठ करें, एवं आठों नयनों से सादर दर्शन करें, इस तरह से श्रीरंगदिव्यधाम में शेषशय्या के ऊपर नाभी कमल को प्रकट करते हुवे शयन करनेवाले प्रभु के पादारविंदों में पुष्पों का अर्पण कर, तत्रस्थ भगवत्किंकरों से मैं कब मिलूंगा? [इस गाथा के अनुसार ही श्री पराशर भट्टार्य स्वामीजी ने श्रीरंगराजस्तव के उत्तर शतक में "सर्गाभ्यासविशालया" इत्यादि पद्य (७६) लिखा हैं॥] .... (३)

(गाथा.) माविनैवाय्पिळन्दुहन्दमालै वेलैवण्णनैयेन्कण्णनैवन्कुन्नमेन्दि *
आविनैयन्नुय्यकोण्डवायरेत्तै अमरर्हळ्तन्तलैवनैयन्दमिळिनिन्ब-
प्पाविनै * अव्वडमोळियैप्पत्तर्हळ् पयिलरङ्गत्तरवणैयिल् पळ्ळिकोळ्ळुम् *
कोविनैनावुरवळुत्तियेन्तन्कैहळ् कोय्मलर् तूयेन्नुकोलोकूप्पुनाळे ॥ ४ ॥

कंसप्रेरित केशिनामक दैत्य घोडे को मारकर आनंदित, समुद्रसवर्ण, हमारे जैसों को भी सुलभ होकर श्री कृष्णरूप से अवतीर्ण, एक समयमें, जब कि इंद्र ने कठोर वर्षा की, गोवर्धन पर्वतको छत्र के रूप में उठाकर उससे गायों की रक्षा करनेवाले, गोपालश्रेष्ठ, नित्यसूरियों के स्वामी, अतिमधुरद्राविड दिव्यप्रबंध सदृश, सुंदरसंस्कृत भाषामय वेद श्रीरामायणादिप्रतिपाद्य, सांसारिक बंधनों से विमुक्त मुक्तप्राय महात्माओं से सेवित श्रीरंगक्षेत्र में शेषशय्यापर शयन करनेवाले मेरे प्रभु का जोर से संकीर्तन कर, कालोपनीत पुष्पों का अर्पण कर, मैं कब अंजलि से पूजा कर पाऊँगा? .... (४)

(गाथा.) इणैयिल्लाविन्निशैयाळ्केळ्ळमि इन्बत्तुम्बुरुवुम् नारदनुमिरैञ्जियेत्त *
तुणैयिल्लाचोन्मरैनूल्तोत्तिरत्ताल् तोन्मलर्कणयन्वणङ्गियोवादेत्त *
मणिमाडमाळिगैहळ् मल्हुशेल्व मदिळरङ्गत्तरवणैयिल् पळ्ळिकोळ्ळुम् *
मणिवण्णनम्मानैक्कण्डुकोण्डु एन्मलर्च्चेन्नियेन्नुक्कोलोवणङ्गुनाळे ॥ ५ ॥

परमानंदमग्न तुंबुरु व नारद मुनियों से अति मधुर तथा अतिविलक्षण वीणागान से कीर्तित तथा उनसे संसेवित, अपने नाभी कमल से समुत्पन्न चतुर्मुख ब्रह्मा से नमस्कार पूर्वक अनादि अद्वितीय वेदशास्त्रादि स्तुतिवचनों से निरंतर संस्तुत, मणिमय प्रासाद संपद्युक्त कोटों से परिवृत श्रीरंगदिव्यधाम में शेषशय्यापर शयन करनेवाले मणिवर्ण परमपुरुष के दर्शन पाकर, मैं कब पुष्पालंकृत अपने शिरसे आपके चरणों में नमस्कार कर पाऊंगा? .... (५)

(गाथा.) अळिमलर्मेलयनरनिन्दिरनोडु एनैयमरर्हळ्तमक्कुळ्ळुवुमरम्बैयरुम्मत्तुम् *
तेळिमदिशेर्मुनिवर्हळ्तङ्क्कुळुवुमुन्दि त्तिशैतिशैयिल्मलर् तूविच्चेन्नुशेरुम् *
कळिमलर्शेर् पोळिलरङ्गत्तुरगमेरि क्कण्वळरुङ्कडल्वण्णर्कमलक्कण्णुम् *
ओळिमदिशेर् तिरुमुगमुङ्कण्डु कोण्डु एन्नुळ्ळमिहवेन्नुक्कोलोत्तुरुहुनाळे ॥ ६ ॥

मधुपानार्थ घिरे हुवे भ्रमरों से सुशोभित कमल में समुत्पन्न ब्रह्माजी, शिवजी, महेंद्र इत्यादि देवों से संसेवित, रंभाप्रभृति अप्सराएं तथा अतिप्रसन्न बुद्धिवाले सनकादि महर्षियों से परस्पर स्पर्धा से नाना दिशाओं में पुष्पसमर्पणपूर्वक संसेवित, मधु बहनेवाले पुष्पों से भरित उपवनों से समलंकृत श्रीरंगदिव्यधाम में शेषशय्यापर शयन करनेवाले, सागरवर्ण भगवान के कमलनयनों के तथा प्रकाशमान श्रीमुखचंद्र के दर्शन करते हुवे मैं कब द्रवितहृदय बनूंगा? .... (६)

(गाथा.) मरन्तिहळुम्मनमोळित्तु वञ्जमात्ति वन्पुलन्गळडक्कियिडर्प्पारित्तुन्बम् *
तुरन्दु * इरुमुप्पोळुदेत्तियेल्लैयिल्लात्तोन्नेरिक्कण् निलैनिन्नतोण्डरान *
अरन्तिहळुम्मनत्तवर्तम्मक्कदियैप्पोन्नि अणियरङ्गत्तरवणैयिल् पळ्ळिकोळ्ळुम् *
निरन्तिहळुम्मायोनैक्कण्डेन्कण्गळ् नीर्मल्हवेन्नुकोलो निर्क्कुनाळे ॥ ७ ॥

मन के दोषों को दूरकर, कपट छोडकर, अमार्ग में चलनेवाली इंद्रियों को रोककर, उपर्युपरि दुःख को ही बढानेवाले पापों को समूल उखाडकर, पंचकालों में भगवान की सेवा करते हुवे, प्राचीन सदाचार मर्यादा में निरत रहनेवाले, धर्मचितारतमनवाले, दास्यलक्षणसंपूर्ण परम भागवतोत्तमों के परमप्राप्य-भूत, कावेरीपरिवृत श्रीरंगदिव्यधाम में शेषशय्यापर शयन करनेवाले, परमसुंदर, अत्याश्चर्यमय भगवान के दर्शन कर मेरी आँखें कब आनंदाश्रु से भर जायेंगी?

पंच कालों में भगवत्सेवा करने का यह अर्थ है—श्रीपांचरात्र शास्त्र में यों बताया गया है कि एक दिन को छः छः घडीवाले पांच विभाग कर, उनमें एकैक में भी एकैक प्रकार से भगवान की सेवा करना परमभागवतों के लिए आवश्यक है। पांच कालों के नाम ये हैं—(१) प्रातःकाल, (२) संगवकाल,

(३) मध्याह्नकाल, (४) अपराह्णकाल और (५) सायाह्नकाल। इनमें क्रमशः कर्तव्य कार्यों के ये नाम हैं—(१) अभिगमन, (२) उपादान, (३) इज्या, (४) स्वाध्याय और (५) योग। शय्या से उठकर शौच, स्नान, संध्या इत्यादि करते हुवे अपने आराध्यदेव के प्रदक्षिण नमस्कार स्तुति इत्यादि करना प्रातःकाल का अभिगमन है। पूजोपयोगी तीर्थ, पुष्प, तुलसी, गंध इत्यादियों को एवं पाकोपयोगी पदार्थों को इकट्ठा कर, पाक बनाकर पूजा की तैयारी करना संगव काल का उपादान है। माध्याह्निकस्नान, जपतपादि करने के बाद सविधि भगवान की पूजा कर अतिथिसत्कार, भोजन इत्यादि करना मध्याह्नकाल की इज्या है। अपराह्णकालका स्वाध्याय तो सद्ग्रंथो का अभ्यास, प्रवचन, लेखन इत्यादि। सायंकाल के स्नान, संध्या, पूजा, भोजन इत्यादि के बाद एकान्त में बैठकर इंद्रियों को बाह्य विषयों से रोककर भगवान के दिव्यमंगल विग्रह का ध्यान करना योग कहलाता है। सूर्योदय से पहले का कुछ समय प्रातःकाल में मिल जाता है और अस्तमय के बाद कतिपय घडियां सायाह्नकाल में मिलती हैं। इस तरह से निरंतर भगवत्सेवा करनेवाले पंचकालपरायण कहलाते हैं। इस गाथा में यों कहा जाता है कि ऐसे पंचकालपरायण भक्तों के योगक्षेमों का निर्वहण स्वयं श्रीरंगनाथ भगवान से किया जाएगा॥ .... (७)

(गाथा.) कोलान्र्दनेडुंशार्ङ्गम् कूनर्चङ्गम् कोलैयालिकोडुन्तण्डुकोत्तवोळ्वाळ् *
कालान्र्दकदिक्करुडनेन्नुम् वेन्निक्कडुम्परवैयनैत्तुम्पुरम्शूळ्काप्प *
शेलान्र्दनेडुङ्कळनिशोलैशूळ्न्द तिरुवरङ्गत्तरवणैयिल् पळ्ळिकोळ्ळुम् *
मालोनैक्कण्डिन्बकलवियेयूदि वलिनैयेनेन्नुकोलो वाळुनाळे॥ ८॥

बाणों के साथ रहनेवाला श्री शार्ङ्गनामक धनुष, मनोहर पांचजन्यशङ्ख, शत्रुओं को ध्वंस करनेवाला सुदर्शन चक्र, तथाविध कौमोदकी गदा, जयशील उज्वल नंदक नामक असि (तलवार), वायुवेग विजयी गरुडजी, ये सब दूसरे ऐसे भक्तों से मिलकर चारों ओर रक्षा करें इस तरह से, मीनभरित विशाल खेतियों से तथा उपवनों से परिवृत श्रीरंगदिव्यधाम में शेषशय्यापर शयन करनेवाले सर्वश्रेष्ठ भगवान के दर्शन पाकर महापापी मैं आपसे मिलकर कब आनंदित हो जाऊंगा?

"त्वां सेवितम्" इत्यादि श्रीवैकुंठस्तव का पद्य (७६), तथा श्रीरंगराजस्तव का "नाथनिद्रोचितोन्निद्र" इत्यादि पद्य (पृ. ५५) यहां पर अनुसंधेय हैं॥ .... (८)

(गाथा.) तूरादमनकादल् तोण्डर्तङ्गळ्कुळाङ्कुळुमि त्तिरुप्पुहळ्हळ्पलवुम्पाडि *
आरादमनक्कळिप्पोडळुदकण्णीर्मळैशोर निनैन्दुरुहियेत्ति * नाळुम्
शीरान्र्दमुळवोशैपरवैकाङ्कुम् तिरुवरङ्गत्तरवणैयिल् पळ्ळिकोळ्ळुम् *
पोरालियम्मानैक्कण्डुतुळ्ळि प्पूतलत्तिलेन्नुकोलो पुरळुनाळे॥ ९॥

निरंतर भगवदनुभव करने पर भी अतृप्तमानस, उत्तरोत्तर अनुभव के इच्छुक परमभक्ताग्रेसरों की गोष्ठी में मिलकर, भगवान के यशोगान कर, उतने से भी अतृप्त होकर आंखों से आनंदाश्रु प्रवाह को बहाते हुवे, भगवान का स्मरण कर, स्तुति करते हुवे, समुद्रघोषसमान नित्य वाद्यघोष से व्याप्त श्रीरंगदिव्यधाम में शेषशय्या पर शयन करनेवाले, कठोर चक्रधारी श्रीरंगनाथ भगवान के दर्शन कर ससंभ्रम नाचते हुवे, अपने को भी भूलकर मैं कब भूमिपर लुठूंगा?

भगवान का ध्यान, कीर्तन, दर्शन इत्यादि करनेवाले परमभक्तों के अनहद आनंद कृत व्यापार नाना प्रकार के होते हैं। गायन्ति केचित् प्रलपन्ति केचित् नृत्यन्ति केचित् प्रणमन्ति केचित्। पतन्ति केचित् विलुठन्ति केचित् क्रन्दन्ति केचित् प्रवदन्ति केचित्॥ इत्यादि॥ .... (९)

(गाथा.) वन्पेरुवानहमुय्यवमररुय्यमण्णुय्य मण्णुलहिल् मनिशरुय्य *
तुन्बमिहुतुयरहल अयर्वोनिल्लाच्चुहमूवळर अहमहिलुन्तोण्डर्वाळ *
अन्बोडुतेन्तिशैनोक्किप्पळ्ळिकोळ्ळुम् अणियरङ्गन्तिरुमुत्तचडियार्तङ्गळ् *
इन्बमिहुपेरुङ्कुलुवुकण्डु यानुमिशैन्दुडनेयेन्नुकोलो इरुकुनाळे॥ १०॥

नैमित्तिक प्रलय में नष्ट न होनेवाले वैभवोपेत स्वर्गादिलोकों के कल्याणार्थ, देवताओं के कल्याणार्थ, भूलोक के कल्याणार्थ, भूलोकवासी समस्त मानवों के कल्याणार्थ, अधिक दुःख देनेवाले पापों के विनाशार्थ, दुःख रहित सुख के वृद्धयर्थ, सर्वदा आनंद भरित चित्तवाले परमभक्तों के कल्याणार्थ, सप्रेम दक्षिणदिशाके अभिमुख होकर शयन करनेवाले श्रीरंगनाथ भगवान के मंदिर के आंगन में आनंदभरित परमभक्तों की गोष्ठी के दर्शन कर, उनके साथ एकमन होकर उस गोष्ठी में मैं कब मिल जाऊं? [आचार्यों का कहना है कि इस गाथा का पूर्वार्ध, "भुवो भूत्यै भूभुजां भूसुराणां दिवो गुप्तयै श्रेयसे देवतानाम्। श्रियै राज्ञां चोलवंशोद्भवानां श्रीमद्रङ्गं सह्यजामाजगाम॥" इस पौराणिक श्लोक के आधारपर रचा गया है॥](१०)

(गाथा.) तिडर्विळङ्गुकरैप्पोन्निनडुवुपाड्डु तिरुवरङ्गत्तरवणैयिल् पळ्ळिकोळ्ळुम् *
कडल्विळङ्गुकरुमेनियम्मानृतन्नै कण्णारकण्डुहकुङ्गादलृतन्नाल् *
कुडैविळङ्गुविरन्द् तानैकोत्तवोळ्वाळ कूडलर् कोन्कोडैक्कुलशेखरन्शोर्चेयृद *
नडैविळङ्गुतमिळ्मालैपत्तुम्वल्लार् नलन्तिहळ् नारणनडिकीळ् नण्णुवारे॥ ११॥

पुलिन से सुशोभित तीरवाली कावेरीनदी के मध्यमें श्रीरंगदिव्यधाम में शेषशय्यापर शयन करनेवाले समुद्र के समान शोभायमान श्यामल दिव्यमंगल विग्रहवाले भगवान श्रीरंगनाथ के दर्शन पाकर आपकी सेवा करने की इच्छा से, राजोचित श्वेतच्छत्रवाले, वलिष्ठ सेनावाले, प्रकाशमान विजयी खड्गवाले, स्वाभाविक औदार्यवाले (दक्षिण) मधुरानगर के स्वामी कुलशेखर आळ्वार से अनुगृहीत, सर्वलक्षणसंपन्न, परमभोग्य द्राविडभाषामय दस पद्यों की इस माला का अध्ययन करनेवाले, कल्याणगुणपरिपूर्ण श्रीमन्नारायण की पादच्छाया को प्राप्त करेंगे। (इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया॥ .... (११)

—* इस दशक का सार संग्राहक पद्य यह है *—

श्लो॥ श्रीरङ्गे दिव्यधामन्यजगिरिश सहस्राक्ष मुख्यैरमर्त्यैः
योगीन्द्रैर्नारदाद्यैरपि च कृतनुतिं भोगिभोगे शयानम्।
साकं भक्तैरनन्यैः परिचरितुमहो! हा कदा भाग्यभाक्स्याम्
इत्येवं स्वस्य कामानतिविपुलगिरा ख्यापयन् सूरिरीड्यः॥ १॥

श्रीरंगदिव्यधाम में, ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र इत्यादि देवता ओं से तथा नारदादि महर्षियों से संस्तुत होकर शेषशय्यापर शयन करनेवाले भगवान के अनन्यभक्तों से मिल कर मैं कब आपकी सेवा करने का भाग्य पाऊंगा? इस प्रकार से अपनी सीमातीत इच्छा को विशदरूप से वर्णन करनेवाले श्रीकुलशेखर सूरिवर्य हमारी स्तुति के लक्ष्य हैं ॥ (१)

॥ पेरुमाळ् तिरुमोळि में पहला दशक समाप्त हुआ ॥

॥ कुलशेखराळ्वार् तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ दूसरा दशक—तेट्टरुन्तिरल् ॥

(भगवद्भक्तविषयक भक्ति का वर्णन)

अवतारिका—श्रीकुलशेखर अळ्वार ने इस प्रबंध के पहले दशक में, भगवान के प्रति अपनी विशेष भक्ति का वर्णन किया। अब इस दूसरे दशक में, उससे भी बढकर भगवद्भक्त विषयक भक्ति का वर्णन करेंगे। यद्यपि पहले दशक में भी भागवतों की प्रशंसा तत्र तत्र की गयी थी। तथापि वहां पर मुख्यतया भगवान का अनुभव करने की इच्छा ही प्रकटित हुई। हालमें, उससे भी अधिकतया भक्तों से मिलने की आशा प्रकाशित की जाएगी। रसिकों का कहना है कि भगवद्भक्ति से भी भागवत भक्ति श्रेष्ठ है। क्यों कि जब भागवतभक्ति पूर्णतया पक जाएगी, तब भगवद्भक्ति भी सिद्ध होगी ही। और सच्ची भगवद्भक्ति तो भागवतभक्ति को उत्पन्न करेगी। अतः इन कारणों से प्रकृत दशक में श्रीस्वामीजी अपनी भागवतभक्ति को अनेक प्रकारों से प्रख्यापित करते हैं। तथाहि—इस दशक में ऐसे ऐसे विलक्षण अर्थों का वर्णन किया जाता है कि, भागवतों की गोष्ठी के दर्शन से ही आँखे धन्य होती हैं, उनकी श्रीपादधूली का सेवन गंगास्नान से भी श्रेष्ठ होता है—इत्यादि। गीताजी में स्वयं भगवान का वचन है कि "ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।" इसका यह अर्थ है कि ज्ञानी भगवान की आत्मा है और भगवान ज्ञानी का शरीर। श्रीभाष्यकारोक्त शरीरलक्षण के अनुसार, इसका यह तात्पर्य होता हैं कि भगवान अपने भक्तों को अपने नियामक, मालिक, शेषी इत्यादि मानते हैं। अतः यह अर्थ स्पष्ट होता है कि भगवद्भक्ति से भी, भगवान से ही अपनी आत्मत्वेन प्रशंसित भागवतों के विषय में भक्ति करना अधिक श्रेष्ठ हैं। इस श्रेष्ठ अर्थ का वर्णन करने से यह दशक हमारे पूर्वाचार्यों से विशेषतः समादृत हुआ है॥

*

(गाथा.) तेट्टरुन्तिरल्तेनिनै चेन्नरङ्गनै * तिरुमादुवाळ्
वाट्टमिल्वनमालैमार्वनै वाळ्त्तिमाल्कोळ्शिन्दैयराय् *
आट्टमेवियलन्दळैत्तु अयर्वेय्दुम्मेय्यडियार्हळ्तम् *
ईट्टङ्गण्डिडक्कूडुमेल् अदुकाणुङ्कण्पयनावदे ॥ १ ॥

स्वयत्न से प्राप्त करने चाहनेवालों को अत्यंत दुर्लभ, स्वानुभव के लिए आवश्यक बल देनेवाले, मधुके समान परमभोग्य, और लक्ष्मीजी के निवासस्थान अम्लान वनमाला से विभूषित वक्षवाले, श्रीरंगनाथ

भगवान की स्तुति कर उससे व्यामुग्ध होकर, नाचते हुवे और भगवान के दिव्यनामों को अपने मुख से रटते हुवे जो लोग थक जाते हैं, ऐसे ज्ञान परिपाक रूप अज्ञान से विभूषित सच्चे परमभागवतों की गोष्ठी के दर्शन करने का भाग्य अगर मिल जाएगा, तो, सत्य वही आँखों का फल होगा ॥

भगवान का यह स्वभाव है कि कोई भी मानव, वह चाहे जैसे श्रेष्ठ ज्ञानी क्यों न हो, आपको स्वप्रयत्न से प्राप्त नहीं कर सकता है; और भगवत्कृपा का पात्रभूत मानव तो, वह चाहे जैसा अज्ञानी क्यों न हो, उनको जरूर प्राप्त कर देगा। इस विषय में, "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः" इत्यादि श्रुति, "नाहं वेदैर्न तपसा" इत्यादि भगवद्गीता, एवं "समाहितैस्साधु सनंदनादिभिः सुदुर्लभं भक्तजनैरदुर्लभम्" (श्री वरदराजस्तव) इत्यादि आचार्यश्रीसूक्ति प्रमाण हैं। और भगवान अपने भक्तों को जब स्वानुभव का प्रदान करते हैं, तब साथ साथ उसके अपेक्षित बलका भी दाप्रन करते हैं। अत एव श्रुति ने भी कहा—"य आत्मदा बलदाः" इत्यादि। (अर्थात् भगवान भक्तों को अपना दान करते हैं, और आवश्यक बलका भी प्रदान करते हैं।) गीता का भी वचन है "दिव्यं ददामि ते चक्षुः।" अत्यल्प लौकिक विषयों के उपभोग में ही शक्ति की आवश्यकता जब रहती है, तब अतिश्रेष्ठ, परमविलक्षण भगवान के अनुभव में कितनी अधिक शक्ति की आवश्यकता होगी! यह शक्ति भी आपकी कृपा से ही मिल सकती है और मिलेगी भी। (वनमाला) पादारविंद तक लटकनेवाली माला वनमाला कहलाती है ॥ .... (१)

(गाथा.) तोड्डुलामलर्मङ्गैतोळिणैतोयुन्ददुम् शुडर्वाळियाल् *
नीड्डुमामरम्शेच्चदुम् निरैमेय्त्तदुमिवैयेनिनैन्दु *
आडिप्पाडियरङ्गवोवेन्नळैक्कुम् तोण्डरडिप्पोडि-
याडनाम्पेरिल् * गङ्गैनीर् कुडैन्दाडुम्वेट्कै एन्नावदे ॥ २ ॥

अनेक दलों से सुशोभित कमलपुष्प में निवास करनेवाली श्रीमहालक्ष्मीजी की भुजाओं को आलिंगन करना, (सुग्रीव को प्रसन्न करने के लिए) तेजोमयदिव्यबाण से सप्तसालवृक्षों को तोड डालना, गो समूह को चराना इत्यादि भगवान के दिव्यचरित्रों का स्मरण करते हुवे, प्रेम परवश होकर गाते, नाचते, "हे प्रभो रंगनाथ भगवन्!" इत्यादि चिल्लानेवाले भक्तों की पादधूलि में अगर नहने पाएंगे, तो फिर, गंगाजी में स्नान करने की आशा करना भी व्यर्थ हैं ॥ .... (२)

(गाथा.) एरडर्त्तदुमेनमाय्निलङ्कीण्डदुम् मुन्निरामनाय् *
मारडर्त्तदुम्मण्णळन्ददुम् शोल्लिप्पाडि * वण्पोन्निप्पे-
रारुपोल्वरुङ्कण्णनीर् कोण्डु अरङ्गन्कोयिल्तिरुमुत्तम् *
शेरुशेय्तोण्डर्शेवडि शेळुञ्जेरेन्शेन्निक्कणिवने ॥ ३ ॥

नीलादेवी से विवाह करने के लिए सात बैलों का दमन करना, दिव्य वराहरूप का धारण कर भूमि का उद्धार करना, श्रीरामरूप से अवतीर्ण होकर शत्रु राक्षसों का संहार करना, त्रिविक्रम रूपसे लोकों

को नाप लेना, इत्यादि भगवच्चरित्रों का गान करते हुवे, परमोदार व महती कावेरी नदी के प्रवाह की तरह बहनेवाले आनंदाश्रुप्रवाह से श्रीरंगनाथ भगवान के दिव्य मंदिरके आंगन को पंकमय बनानेवाले परमभागवतों के पादारविंद में संलग्न पंक को मैं तिलक के रूप में अपने भालपर लगाऊंगा ॥ .... (३)

(गाथा.) तोयूत्ततण्तयिर्वेण्णेयूपालुडनुण्डलुम् उडन्नायूचिकण्डु *
आर्त्ततोळुडैयेम्बिरान् एन्नरङ्गनुकडियार्हळायू *
नात्तलुम्बेल नारणावेन्नळैत्तु मेयूतलुम्बतोळु-
देत्ति * इन्बुरुन्तोण्डर्शेवडि एत्तिवाळुत्तुमेन्नेञ्जमे ॥ ४ ॥

तैयार रखा हुवा थंडा दही, मक्खन तथा दुग्ध को एककाल में पीकर, उस कृत्यको देखती रहनेवाली कुपित गोपी यशोदाजी से बांधे जानेवाले भुजों से सुशोभित, (ऐसे श्री कृष्णावतार चेष्टितवाले) हमारे स्वामी श्रीरंगनाथ भगवान के दास बन कर ऊंचे स्वरसे "हे नारायण" चिल्लानेवाले, तथा नमते, स्तुति करते आनंदित होनेवाले परमभक्ताग्रेसरों की ही मेरा मन स्तुति करता है ॥ .... (४)

(गाथा.) पोयूशिलैकुरलेत्तेरुत्तमिरुत्तु प्पोररवीर्त्तकोन् *
शेयूशिलैच्चुडर्शूळोळि त्तिण्णमामदिळूतेन्नरङ्गनाम् *
मेयूशिलैकरुमेघमोन्नु तम्नेञ्जिल्लनिन्नुतिहळप्पोयू *
मेयूशिलिर्प्पवर् तम्मैयेनिनैन्दु एन्मनम्मेयूशिलिर्क्कुमे ॥ ५ ॥

(नीलादेवी का परिग्रह करने के लिए) असुराविष्ट एवं कठोर गर्जन करनेवाले सात बैलों के पराक्रम को मिटा देनेवाले, लडने आनेवाले कालिय नागका दमन करनेवाले हमारे नाथ, तेजोमय सुदृढ प्राकार परिवृत श्रीरंगदिव्य क्षेत्राधिनाथ, सधनुष्क कालमेघ के समान, परमपुरुष भगवान का अपने हृदय में धारण करनेवाले, और अत एव सरोमांच शरीरवाले परमभक्तों का ही ध्यान करता हुआ, मेरा मन आनंद परवश हो जाता है ॥ .... (५)

(गाथा.) आदियन्तमनन्तमर्प्पुदमान वानवर्तम्पिरान् *
पादमामलर्शूडुम्पत्तियिलाद पाविहळुयून्दिड *
तीदिलनन्नेरिकाट्टि एङ्गुन्तिरिन्दरङ्गनेम्मानुक्के *
कादलशेयूतोण्डर्क्केप्पिरप्पिलुम् कादलशेय्युमेन्नेञ्जमे ॥ ६ ॥

सकल जगत के कारणभूत, प्रलयकाल में भी जागृत, देश काल वस्तु परिच्छेदशून्य होने से अनंत शब्द से संबोधित, अत्याश्चर्यमय, देवाधिदेव श्रीरंगनाथ भगवान के पादारविंदों को अपने सिरपर धारण करने अनिच्छुक पापियों को भी सुधारने के लिए (तीर्थयात्रादिव्याज से) सर्वत्र संचार कर अपने अनुष्ठान से दोषदूर सन्मार्ग को दिखानेवाले, हमारे नाथ श्रीरंगनाथ भगवान के विषय में परमभक्ति करनेवाले भागवतों के विषय में मेरा मन समस्त जन्मों में भी आशा रखता है ॥ .... (६)

(गाथा.) कारिनम्पुरैमेनिनर्कदिर् मुत्तवेण्णहैचेय्यवाय् *
आरमार्वनरङ्गनेन्नुम् अरुम्बेरुज्जुडरोन्निनै *
शेरुम्नेञ्जिनराहि चेन्र्दुकशिन्दिलिन्दकण्णीर्हळाल् *
वारनिर्प्पवर् ताळिणैक्कु ओरुवारमाहुमेन्नेञ्जमे ॥ ७ ॥

मेघसमूह के सदृश दिव्य मंगल विग्रहवाले, दिव्यलावण्यनिधि, मोती के सदृश मंदस्मित विभूषित दिव्याधर सुशोभित, मुक्ताहार विभूषित दिव्य वक्षवाले, विलक्षण तेजससमूहमय श्रीरंगनाथ भगवान का निरंतर अनुभव करनेवाले, अत एव हमेशा आनंदाश्रुधारा को बहानेवाले परमभक्तों के पादारविंदयुग में ही मेरा मन असीम प्रेम करता है ॥ .... (७)

(गाथा.) मालैयुत्तकडल् किडन्दवन् वण्डुकिण्डुनरुन्तुळाय् *
मालैयुत्तवरैप्पेरुन्तिरुमार्वनै मलर्क्कण्णनै *
मालैयुत्तेळुन्दाडिप्पाडि त्तिरिन्दरङ्गनेम्मानुक्के *
मालैयुत्तिडुन्तोण्डर्वाळ्वुक्कु मालैयुत्तदेन्नेञ्जमे ॥ ८ ॥

लहरों से समावृत क्षीरसमुद्र में शयन करनेवाले, मधु पीने के लिए समागत भ्रमरयुत तुलसी माला से समलंकृत विशालविमलवक्षवाले, कमल सदृश नेत्रवाले श्रीरंगनाथ भगवान पर प्रेम करनेवाले, तथा अत्यंत व्यामोह के मारे नाचते गाते हुवे दिव्य देशों में उन्मत्त की तरह भटकनेवाले परमभक्तों की विलक्षण संपत्ति को सोचकर मेरा मन अत्यंत व्यामोह पाता है। [अर्थात् ऐसे परमभागवतों का भाग्य देखकर, उसकी प्रशंसा करते हुवे, मैं स्वयं भी उसको चाहता हूं ॥] .... (८)

(गाथा.) मोय्त्तुकण्पनिशोरमेय्हळ्शिलिर्प्प एङ्गियिळैत्तुनिन्नु *
एय्त्तुकुम्बिडुनट्टमिट्टेळुन्दु आडिप्पाडियिरैञ्जि * एन्
अत्तनच्चनरङ्गनुक्कडियार्हळाहि अवनुक्के
पित्तरामवर् * पित्तरल्लर्हळ् मत्तैयार्मुत्तुम्पित्तरे ॥ ९ ॥

आँखों से निरंतर आनंदाश्रुधारा को बहाते हुवे, सारे शरीर में बाल खडा कराते हुवे, मन को शिथिल एवं कमजोर बनाते हुवे, बडे कोलाहल के साथ नर्तन कीर्तन इत्यादि करते हुवे, हमारे नाथ श्रीरंगनाथ भगवान की सेवावृत्ति को अपनाकर विराजमान होकर जो महात्मा लोग उन भगवान में ही चित लगाकर उन्मत्त जैसे दीखते हैं; वे वस्तुगत्या उन्मत्त नहीं हैं; परंतु उनको छोडकर दूसरे सभी सचमुच पागल हैं ॥

(गाथा.) अळिमामलर्मङ्गैनाथन् अरङ्गन्मेय्यडियार्हळ्तम् *
एळैयिलडिमैत्तिरत्तिनिल् एन्नुमेवुमनत्तनाम् *
कोळिकावलन्कूडल्नायकन् कोळिकोन्कुलशेखरन् *
शोळिनिन्नतमिळ्मालैवल्लवर् तोण्डर् तोण्डर्हळावरे ॥ १० ॥

विशालदलयुत कमलपुष्प निवासिनी श्री महालक्ष्मीजी के नाथ श्रीरंगनाथ भगवान के सच्चे भक्तों के दासानुदास कोल्लिनगर, मधुरापुरी, निचुलापुरी इत्यादियों के राजा श्री कुलशेखर सूरि से प्रणीत परमभोग्य इस द्राविडगाथामाला का अध्ययन करनेवाले स्वयं दासानुदास बन जायंगे। [इस फलश्रति के साथ यह दशक समापित किया गया ॥] .... (१०)

—* इस दशक का सार संग्राहक पद्य यह है *—

श्लो ॥ लक्ष्मीसंश्लिष्टवक्षस्स्थलमुरगशयं रङ्गनाथं प्रपन्नाः
ये भक्ता आर्द्रचित्ताः सततहरिकथाकीर्तनैकान्तवक्त्राः।
तद्वृन्दालोकनं तत्पदकमल परागावतंसित्वमेव
स्यान्मे, नान्यः पुमर्थो वसति मम हृदीत्यूचिवान् सूरिरीड्यः ॥ २ ॥

लक्ष्मीजी से समालिंगित वक्षवाले, शेषशायी श्रीरंगनाथ भगवान के प्रपन्न जो भक्तलोग भक्ति से शिशिरित चित्तवाले होकर मुख से हमेशा हरिकथा का ही कीर्तन करते रहते हैं; ऐसे महापुरुषों की गोष्ठी के दर्शन करने का तथा उनकी पादधूली का सिर पर धारण करने का ही भाग्य मुझे सर्वदा मिलें; दूसरे किसी पुरुषार्थ को मैं नहीं चाहता हूं; यों कहने वाले श्री कुलशेखर आळ्वार की जय हो ॥ २ ॥

॥ पेरुमाळ् तिरुमोळि में दूसरा दशक समाप्त हुआ ॥
॥ कुलशेखराळ्वार् तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ तीसरा दशक—मेय्यिल्वाळ्कैये ॥

(प्राकृतजनसंसर्ग की निंदा)

अवतारिका—पेरुमाळ् तिरुमोळि नामक इस दिव्यप्रबंध के पहले के दो दशकों से श्रीकुलशेखर आळ्वार ने भगवद्भक्ति एवं भागवतभक्ति का बडा रोचक वर्णन किया। अब इस तीसरे दशक से भगवान और भागवतों से विमुख संसारि जनों के विषय में अपने वैमुख्य का प्रकाशन करते हुवे आप हमको इस बात का उपदेश दे रहे हैं कि ऐसे हतभाग्यों के साथ हमें कैसी बर्ताव रखनी चाहिए। सच्चे भक्तों की यह वाणी है कि "वरं हुतवहज्वालापञ्जरान्त र्व्यवस्थितिः। न शौरिचिन्ता विमुख जन संवासवैशसम्॥" इसका तात्पर्य यह है कि, अग्निज्वालासे ही बनाये हुवे पंजर के बीच में बेशक हम बैठे रहेंगे; नतु भगवान की चिंता से विमुख जन के साथ सहवास करने के दुःख का सहन कर सकेंगे। इससे प्रतीत होता है कि अभक्त जन सहवास सच्चे भक्तों के लिए बहुत असह्य होता है। विभीषण जी ने रावण को सन्मार्ग मे लाने के लिए बहुत प्रयत्न किया। परंतु ये सभी प्रयत्न बेकार हो गये। इनके लिए पुरस्कार के रूप में आपको धिक्कार ही मिला। तब आपने निश्चय कर दिया कि सर्वथा भगवद्भक्ति से एवं भागवतभक्ति से विमुख इस पापी का सहवास करना भी अब मुझे ठीक नहीं है; और तुरंत वहां से

निकलकर आपने श्रीरामचंद्र भगवान की गोष्ठी को प्राप्त की। यह है परमभक्तों की भावना। ऐसी ही भावना इस तीसरे दशक में भी प्रकाशित हो रही है। तथाहि—देह को ही आत्मा माननेवालों के साथ मैं न रहूंगा; स्त्रीलोलुपों के पास भी न जाऊंगा; मदनकदन निपुण पामरों के नजदीक न पहुंचूंगा; खाने पीने की ही खोज में रहनेवालों से न मिलूंगा; सन्मार्ग छोडकर दुर्मार्ग जानेवालों से संबंध न रखूंगा; अधिक क्या कहूं? अपने से विपरीतस्वभाववालों से कथंचिदपि मैं न मिलूंगा—इत्यादि कहते हुवे श्री स्वामीजी दुर्जन सहवास की त्याज्यता का बडा सुंदर विवेचन करते हैं॥

*

(गाथा.) मेय्यिल्वाळ्क्कैयै मेय्येनकोळ्ळुम् * इव्वैयन्तन्नोडुम् कूडुवदिल्लैयान् *
ऐयने अरङ्गावेन्नळैक्किन्नेन् * मैयल्कोण्डोळिन्देन् एन्तन्मालुक्के॥ १॥

नश्वर जीवन को ही सच्चा माननेवाले पामर जनों से मैं न मिलूंगा; "हे मेरे नाथ! श्रीरंगनाथ भगवन्!" इत्यादि भगवन्नामों को ही मैं हमेशा रटूंगा। अपने प्रति विशेष प्रेम करनेवाले भगवान के विषय में मैं ने बहुत व्यामोह रख दिया॥ .... (१)

(गाथा.) नूलिनेरिडैयार् तिरत्तेनिर्कुम् * आलन्तन्नोडुम् कूडुवदिल्लैयान् *
आलिया अळैया अरङ्गावेन्नु * मालेळुन्दोळिन्देन् एन्तन्मालुक्के॥ २॥

कृशोदरी स्त्रियों में ही आसक्त पामर जनों से मैं न मिलूंगा; "हे श्रीरंगनाथ" इत्यादि जोर से रटते हुवे और नाचते हुवे मैं ने अपने विषय में प्रेम करनेवाले भगवान के विषय में बहुत व्यामोह रख दिया॥

(गाथा.) मारनार् वरिवेञ्जिलैक्काट्चेय्युम् * पारिनारोडुम् कूडुवदिल्लैयान् *
आरमार्वन् अरङ्गननन्तन् * नल्ल् नाराणन् नरकान्तकन्पित्तने॥ ३॥

मन्मथ के सुंदर व क्रूर वाण के लक्ष्य बनकर (विषयप्रवण होकर) फिरनेवाले इन भूतलवासी प्राकृत जनों से मैं न मिलूंगा; मुक्ताहार विभूषित वक्षवाले अपरिच्छेद्य स्वरूप स्वभाववाले, हमारे स्वामी, नरकान्तक श्रीरंगनाथ के विषय में ही मैं व्यामोहवान हूं॥ .... (३)

(गाथा.) उण्डिये उडैये उहन्दोडुम् * इम्मण्डलत्तोडुम् कूडुवदिल्लैयान् *
अण्डवाणन् अरङ्गन्वन्पेय्मुलै * उण्डवायन्तन् उन्मत्तन्काण्मिने॥ ४॥

आहार व वस्त्र को ढूंढते हुवे इधर उधर भटकनेवाले इन भूमंडलवासियों से मैं न मिलूंगा; किंतु, परमपदवासी, कठोरहृदया पूतना का स्तन्य पीनेवाले श्रीरंगनाथ के विषय में मैं (प्रेमसे) पागल बन गया हूं॥ .... (४)

(गाथा.) तीदिल्नन्नेरिनिर्क अल्लादुशेय् * नीदियारोडुम् कूडुवदिल्लैयान् *
आदियायन् अरङ्गनन्तामरै * पेदैमामणवाळन्तन् पित्तने॥ ५॥

दोषरहित सन्मार्ग के रहते हुवे ही, उसको छोडकर उससे विपरीत दुर्मार्ग में चलने के व्रतवालों से मैं न मिलूंगा; परंतु जगत्कारणभूत, श्रीकृष्णावतार में सर्वसुलभ बननेवाले, सुंदर कमलपुष्प निवासिनी श्री महालक्ष्मीजी के नाथ श्रीरंगनाथ भगवान के विषय में मैं (प्रेम से) पागल बन गया हूं ॥ (५)

(गाथा.) एम्बरत्तर् अल्लारोडुङ्कूडलन् * उम्बर्वाल्वै ओन्राहकरुदलन् *
तम्बिरानमरर्कु अरङ्गनगर् * एम्बिरानुक्कु एलुमैयुम्पित्तने ॥ ६ ॥

अनन्यप्रयोजनत्व में अपने सदृश न रहनेवालों से मैं न मिलूंगा; देवताओं के भोग की भी मैं परवाह नहीं करता हूं। नित्यसूरियों के नाथ श्रीरंगनाथ भगवान के विषय में मैं सदा (प्रेम से) पागल बन गया हूं ॥ .... (६)

(गाथा.) एत्तिरत्तिलुम् यारोडुङ्कूडुम् * अच्चित्तन्तन्नै त्तविर्त्तनन् शेङ्गण्माल् *
अत्तने अरङ्गावेन्नलैकिन्नेन् * पित्तनायोळिन्देन् एम्बिरानुक्के ॥ ७ ॥

पुण्डरीकाक्ष भगवान ने नाना विषयों में धूर्तमानवों से मिलने चाहनेवाले मन को मेरे से दूर कर दिया (अर्थात् भगवान की कृपासे मेरा मन, धूर्तों से मिलकर क्षुद्रविषयानुभव करने की आशा से निवृत्त है।) "हे मेरे नाथ! श्रीरंगनाथ!" इत्यादि उनके नाम ही रटूंगा; उन मेरे नाथ के विषय में ही मैं [प्रेम से] पागल बन गया हूं ॥ .... (७)

(गाथा.) पेयरेएनक्कियावरुम् यानुमोर्पेयने * एवर्क्कुमिदुपेशियेन् *
आयने अरङ्गावेन्नलैकिन्नेन् * पेयनायोळिन्देन् एम्बिरानुक्के ॥ ८ ॥

समस्त संसारी लोग मेरे अभिप्राय से पागल हैं; तथा उनके अभिप्राय से मैं भी एक पागल हूं। इसका विस्तृत वर्णन करने से क्या लाभ है? "हे श्रीगोपालकृष्ण! श्रीरंगनाथ भगवन्!" इत्यादि भगवन्नामों को ही रटूंगा; उन मेरे नाथ के विषय में ही मैं [प्रेमसे] पागल बना गया हूं ॥ .... (८)

(गाथा.) अङ्गैयाळि अरङ्गनडियिणै * तङ्गुशिन्दै त्तनिप्पेरुम्पित्तनाम् *
कोङ्गर्कोन् कुलशेखरन्शोन्नशोल् * इङ्गुवल्लवर्क्कु एदमोन्रिल्लैये ॥ ९ ॥

सुंदर हस्त से सुदर्शन चक्र का धारण करनेवाले श्रीरंगनाथ भगवान के पादारविंद में विन्यस्त मानस, लोकविलक्षण महा उन्मत्त चेरदेशाधिपति कुलशेखरसूरि से अनुगृहीत इन पद्यों का अनुसंधान करनेवालों को, भगवदनुभव में कोई विघ्न न आवेगा। [इस फलश्रुति के साथ नौ पद्यवाला यह दशक समापित किया गया] ॥ .... (९)

—* इस दशक का सारसंग्राहक पद्य यह है *—

श्लो ॥ देहे विद्युत्समाने विरचितरुचिभि र्भङ्गुरेष्वेव भोगे-
ष्वासक्तैः रङ्गिपादाम्बुजनतिविमुखैः प्राकृतैर्धूर्तचर्यैः ।
साकं नैवान्वितस्स्यां भगवति कमलावल्लभे रङ्गभर्त-
र्येकस्मिन्नस्मि सक्तोऽहमिति कथयता सूरिणाऽहं सनाथः ॥ ३ ॥

विजली के समान क्षणिक शरीर में ही प्रेम करते हुवे, प्राकृत विषयभोग में आसक्त होकर श्रीरंगनाथ भगवान के पादारविंद का नमस्कार करने से विमुख धूर्तचेष्टित संसारियों से मैं न मिलूंगा; मेरा मन लक्ष्मीनाथ श्रीरंगनाथ भगवान में ही मग्न हुआ है; एवं कहनेवाले श्री कुलशेखर आऴ्वार हमारे नाथ हैं॥

॥ पेरुमाळू तिरुमोऴि में तीसरा दशक समाप्त हुआ ॥

॥ कुलशेखर आऴ्वार तिरुवडिगळे शरणम् ॥

॥ चौथा दशक -- ऊनेरुशेल्वत्तु ॥

(श्री वेंकटाद्रि पर नानाविध जन्म पाने को चाहना)

अवतारिका—श्रीरंगनाथ भगवान और आपके भक्तों के प्रति अपनी सीमातीत भक्ति का एवं संसारी जनों के प्रति अपनी उदासीनता का वर्णन करनेके बाद, श्री कुलशेखर आऴ्वार, अब इस चौथे दशक से, श्री वेंकटाद्रिनाथ भगवान की ओर अपना चित्त दौडा कर आपके प्रति अपनी विलक्षण भक्ति का वर्णन करते हुवे एक महान शास्त्रार्थ को प्रकट करते हैं। तथाहि—कुल, रूप, वय, विद्या, धन इत्यादि गर्व के अनेक कारणों के होते हुवे भी, इन सबसे प्रबल कारण कुल है। अर्थात् बहुत लोग ऐसा गर्व करते हैं कि मैं श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हूं; अतः मैं दूसरों से श्रेष्ठ हूं। यह गर्व ही उनके अधःपतन का कारण बनता है। अत एव तत्वदर्शी ज्ञानी लोग यों मानते हुवे कि "वही जन्म श्रेष्ठ है जिससे भगवान व भगवद्भक्तों की सेवा करने में सुविधा हो," पूर्वोक्त कुलमद से मुक्त होते है। यथा श्री यामुनाचार्य स्वामीजी ने, "जनित्वाऽहं वंशे महति जगति ख्यातयशसां शुचीनां युक्तानां गुणपुरुषतत्वस्थितिविदाम्, निसर्गादेव त्वच्चरणकमलैकान्त मनसाम्" इस पद्य से अपने वंश की श्रेष्ठता को बताकर, उतने मात्र से तृप्ति न पाते हुवे, परमभागवतों के साथ संबंध पाने लायक क्रिमि कीटादि जन्म का भी स्वागत किया इस पद्य से—"तव दास्य सुखैक-सङ्गिनां भवनेष्वस्त्वपि कीटजन्म मे। इतरावसथेषु मास्म भूदपि मे जन्म चतुर्मुखात्मना ॥" और भी उद्धव इत्यादि परमभागवतों का यह उद्गार प्रसिद्ध है, कि "पत्युः प्रजानामैश्वर्यं पशूनां वा न कामये। अहं कदम्वो भूयासं कुन्दो वा यमुनातटे ॥ (मुझे प्रजापति, पशुपति आदियों का भी ऐश्वर्य अनपेक्षित है; परंतु यमुनातटपर मैं कदम्व अथवा कुंद हो जाऊं), "आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां बृंदावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्। या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम ॥" (बंधुबांधवादि

अपने सर्वस्व को भी छोडकर श्रीकृष्ण के पास जानेवाली गोपियों का जन्म पाऊं।)" इत्यादि। इस तरह से हालमें श्री कुलशेखरसूरी भी श्री वेंकटाचलपर नानप्रकार के जन्म पाने की अपनी इच्छा को इस दशक से प्रकट करते हैं ॥ *

(गाथा.) ऊनेरुशेल्वत्तु उडर्प्पिरवियान्वेण्डेन् * आनेरेळ्वेन्रान् अडिमैच्चिरमल्लाल् *
कूनेरुशङ्गमिडत्तानतन् वेङ्गडत्तु * कोनेरिवाळुम् कुरुहाय्प्पिरप्पेने ॥ १ ॥

नीला देवी से परिणय करने केलिए सात वैलों को जीतनेवाले भगवान की सेवा करना ही मैं चाहता हूं। न तु माँस से पुष्ट होनेवाले इस मनुष्य शरीर को। (अथवा भगवान की सेवा भी मिले या न, उसकी चिंता नहीं; किन्तु भगवान से संबंध रखनेवाले देश में कहीं एक कोने में भी मेरा जन्म हो)। दाये हाथ में शंखराजका धारण करनेवाले भगवान के स्थान श्री वेंकटाद्रि पर स्वामि पुष्करिणी में मुझे एक बगुले का जन्म मिलें।

यहाँ पर यह एक शंका हो सकती है कि अगर स्वामीजी को वेंकटाद्रि में नित्य निवास करना ही अपेक्षित हो, तो यों स्पष्ट माँगना ही उचित होगा। ऐसी तो माँग नहीं की जा रही है; मांसवाले शरीर की उपेक्षा क्यों कर बताई जा रही है? इसका प्रत्युत्तर यह है कि सांसारिक सुख भोगने उपयुक्त शरीर को स्वामीजी नहीं चाहते। इसका तात्पर्य यह है कि विषयभोग में लगाकर उससे भगवान के क्षेत्र में नित्य निवास करने में बाधा डालनेवाला शरीर अनपेक्षित है। स्वामि पुष्करिणी—श्री वेंकटाद्रि में मंदिर के पास रहनेवाला एक पुण्य तीर्थ है, जिसका माहात्म्य वराह पुराण आदि में उपवर्णित है ॥ .... (१)

(गाथा.) आनादशेल्वत्तु अरम्बैयर्हळ् तर्चूळ * वानाळुम्शेल्वमुम् मण्णरशुम् यान्वेण्डेन् *
तेनार्पूञ्जोलै त्तिरुवेङ्गडच्चुनैयिल् * मीनाय्प्पिरक्कुम् विदियुडैयेनावेने ॥ २ ॥

नित्य यौवन रूप ऐश्वर्य से युक्त अप्सरस स्त्रियों से परिवृत स्वर्गलोक भोग को, अथवा इस भूलोक के राज्य को, मैं नहीं चाहता। किंतु मधु बहनेवाले दिव्य उद्यानों से परिवृत श्री वेंकटाद्रि पर किसी जलाशय में मछली का जन्म लेने आवश्यक भाग्य मुझे मिल जाय।

पहली गाथा में बगुला होने की माँग की गयी। परन्तु पक्षी होने से बगुला कदाचित् उडकर वहाँ से बाहर जायेगा भी; ऐसा होने पर वेंकटाद्रि में नित्यनिवास करने का भाग्य चूक जाएगा। अंतः उस जन्म से अतृप्त होकर श्री स्वामीजी इस गाथा में दूसरे जन्म को माँगते हैं। मीन तो अपना आश्रय छोडकर बाहर नहीं जा सकता। अतः उस जन्म की माँग करना उचित है। यह निर्बंध नहीं है कि इसी क्षण में मीन जन्म मिलना चाहिए; किंतु कुछ समय के बाद मिले तो भी चलेगा। इस अर्थ का सूचक शब्द हैं "मछली काज न्म लेने आवश्यक भाग्य मुझे मिल जाया" ॥ .... (२)

(गाथा.) पिन्निट्टशडैयानुम् पिरमनुमिन्दिरनुम् * तुन्निट्टुप्पुहलरिय वैहुन्दनीळ्वाशल् *
मिन्वट्टच्चुडराळि वेङ्गडक्कोनूताञुमिळुम् * पोन्वट्टिल्पिडित्तुडने पुहप्पेरुवेनावेने ॥ ३ ॥

जटाधर शिवजी, चतुर्मुख ब्रह्मा जी, महेंद्र इत्यादि देवता गण भी भक्तों की भीड के मारे जिसके अंदर घुस नहीं सकते हैं, ऐसे भूलोक वैकुंठ पुकारे जानेवाले वेंकटाद्रि के विशाल द्वार पर चक्रायुध धारी श्रीनिवास भगवान से थूंके जानेवाले तांबूल का आधार, सोने के प्याला का धारण कर, आपके अनन्य भक्तों के साथ मंदिर के अंदर प्रवेश करने लायक भाग्यवान मैं हो जाऊँ।

पिछली गाथा में मछली का जन्म माँगा गया। परंतु उसमें भी स्वामीजी को एक दोष दीख पडा। मीन तो पानी में ही रहनेवाला एक प्राणी है। जल के सूखे जानेपर मछली मर जाएगा। अतः उस जन्म को छोडकर दूसरा जन्म माँगा जाता है। महाराजा, सेठ साहूकार इत्यादि अमीर लोग तांबूल चव्वाने के बाद उसको एक सोने के प्यालेमें थूंक देते हैं। इस प्याले को संभालने के लिए एक नौकर रहता है जो हमेशा उनके पास में खडा रहता है। अब इस गाथा में श्री स्वामीजी श्री वेंकटनाथ भगवान की यह सेवा माँगते हैं। स्वामीजी का आशय है कि यह सेवा करने पर भगवान के नित्य दर्शन व कैंकर्य मिलेंगे॥ .... (३)

(गाथा.) ओण्पवळवेलै उलवुतण्पार्कडलुळ् * कण्तुयिलुम्मायोन् कळलिणैहळ्काण्बदर्कु *
पण्वहरुम्वण्डिनङ्गळ् पण्पाडुम् वेङ्गडत्तु * शेण्बहमायूनिर्कुम् तिरुवुडैयेनावेने ॥ ४ ॥

मनोहर प्रवाल आदि रत्नों से प्रकाशमान शीतल क्षीरसागर में योगनिद्रा करनेवाले वेंकटनाथ भगवान के उभय पादारविंदों के दर्शन करने के लिए नाना प्रकार की गीत करनेवाले भ्रमरों से परिवृत श्री वेंकटाचल क्षेत्र में चम्पक वृक्ष का (अथवा चंपकवृक्ष के रूप में खडे रहने का) भाग्य मुझे मिल जाय।

पूर्व गाथा में स्वर्णपात्रधारी का जन्म जो प्रार्थित हुआ, उसमें भी एक दोष प्रतीत हुआ। हमेशा स्वर्णपात्र को हाथ में रखते रहनेपर कदाचित् उसकी चोरी करने का विचार भी होगा। एवं नजीक में रहने पर नानाप्रकार के अपचार भी शायद बनेंगे। अतः इन आपत्तियों से मुक्त एक पेड का जन्म माँगा जा रहा है। इस पर अगर यों पूछा जाय कि बाहर कहीं कोने में खडे रहनेवाले वृक्ष को भगवान के दर्शन कैसे मिल सकते हैं तो कहना पडता है कि जब भगवान की सवारी बाहर निकलेगी, तब आपके दर्शन मिलेंगे॥ .... (४)

(गाथा.) कम्बमदयानै कलुत्तहत्तिन्मेलिरुन्दु * इन्बमरुम्शेल्वमुम् इव्वरशुम्यान्वेण्डेन् *
एम्बेरुमानीशन् एळिल्वेङ्गडमलैमेल् * तम्बहमायूनिर्कुम् तवमुडैयेनावेने ॥ ५ ॥

मदोन्मत्त हाथी के सिर पर बैठकर नाना प्रकार के भोगों को भोगने पर्याप्त ऐश्वर्य को तथा विशाल साम्राज्य को मैं नहीं चाहता। सर्वेश्वर भगवान के सुंदर वेंकटाचल पर फल पुष्प आदियों से शून्य कोई एक वृक्ष बन जाऊँ॥

पिछली गाथा में संकीर्तित चंपक वृक्ष में भी एक दोष दीख पडता ही है। आळ्वार के मन में यह भय उत्पन्न होने लगा कि जैसे श्री कृष्ण भगवान अपनी प्रिय रानी सत्यभामा को प्रसन्न कराने के लिए स्वर्ग

लोक में महेंद्र के उद्यान से कल्पक वृक्ष को उखाडकर द्वारकाजी ले चले, उसी तरह श्री वेंकठाद्री की यात्रा करनेवाले असंख्य भक्तों के वीच में से कोई एक मालदार इस चंपक वृक्ष की शोभा से आकृष्ट चित्त होकर भगवान के संनिधि में कुछ द्रव्य भेंटकर आपकी सम्मति से उस वृक्ष को भी उखाडकर अगर ले चलेगा, अथवा लकडी के लोभ से उस पेड को कटवा देगा, तो आळ्वार की आशा एकदम व्यर्थ हो जाएंगी। अतः ऐसी आपद का अवकाश न देनेवाले एक फल पुष्प आदि वर्जित, माने सर्वथा निकम्मे वृक्ष का जन्म माँगा जाता है ॥ .... (५)

(गाथा.) मिन्ननैयनुणिडैयार् उरुप्पशियुम्मेनकैयुम् * अन्नवर्तम्पाडलोडुम् आडलवैयादरियेन् *
तेन्नवेनवण्डिनङ्गळ् पण्पाडुम्वेङ्गडत्तुळ् * अन्नैयपोर्कुवडाम् अरुन्तवत्तनावेने ॥ ६ ॥

ऊर्वशी, मेनका इत्यादि कृशोदरी अप्सराओं के गान नर्तन इत्यादि भोगों को मैं नहीं चाहता। किंतु भ्रमरों के झंकार से शब्दायमान श्री वंकटाद्रि पर मैं ऐसा ही एक पत्थर बनने का भाग्य पा लूँ ॥

पूर्व गाथा में अपेक्षित वृक्ष जन्म में भी यह अनुपपत्ति दीखने लगी कि कदाचित् वेंकटाद्री की सफाई करने उत्सुक कोई धनवान वहाँ से सभी अनुपयुक्त पदार्थों को दूर हठाते हुवे, इस वृक्ष को भी शोभाविनाशक मानकर कटवा कर दूर कर देगा। अतः हाल में पहाड का जन्म माँगा जाता है जिसको कभी भी दूर निकलने की आवश्यकता न होगी ॥ .... (६)

(गाथा.) वानाळुम्मामदिपोल् वेण्कुडैकीळ् * मन्नवर्तम् कोनाहिवीत्तिरुन्दु कोण्डाडुम्शेल्वरियेन् *
तेनार्पूञ्जोलै त्तिरुवेङ्गडमलैमेल् * कानारायुप्पायुम् करुत्तुडैयेनावेने ॥ ७ ॥

आकाश को प्रकाशित करनेवाले चंद्र मंडल के समान उज्वल श्वेतच्छत्र की छाया में विराजमान होकर राजाधिराज पुकारे जाने के ऐश्वर्य की मैं कभी परवाह नहीं करता; किन्तु मधुपूर्ण पुष्पों से अलंकृत शोभायमान सुगंध व सुशीतल उद्यानों से परिवृत श्री वेंकटाद्रि पर एक निर्झर बनने का संकल्प मुझे हो जाय ॥

पूर्व गाथा में प्रार्थित पत्थर के जन्म में भी यह दोष मालुम पडा कि नया महाल मंदिर आदि बनानेवाले लोग कहीं उस शिला को भी तोडकर बाहर ले चलेंगे। अतः इस आपत्ति से शून्य निर्झर का जन्म हाल में माँगा जा रहा है ॥ .... (७)

(गाथा.) पिरैयेरुशडैयानुम् पिरमनुमिन्दिरनुम् * मुरैयायपेरुवेळ्वि कुरैमुडिप्पान्मरैयानान् *
वेरियार् तण्शोलै त्तिरुवेङ्गडमलैमेल् * नेरियायुकिडकुम् निलैयुडैयेनावेने ॥ ८ ॥

बालचंद्र से अलंकृत जटावाले शिवजी, चतुर्मुख ब्रह्मा, और महेंद्र से अपनी अपनी योग्यता के अनुसार किये जानेवाले बडे बडे यज्ञों के फलतया उन उनके दुखों को मिटाकर अपेक्षित फल देने समर्थ परमतत्व, सुगंध व सुशीतल उद्यानों से परिवृत श्री वेंकटाद्रि पर यात्रियों के जाने का मार्ग बन जाऊँ ॥

पूर्व गाथा में अपेक्षित निर्झर भी गरमी में सूखा जायेगा; एवं वह वेंकटाद्रि को छोडकर बहुत दूर वह जाएगा भी। अतः दोनों तरह से श्री वेंकटाद्रि में नित्य निवास नहीं बन सकेगा। अतः यहाँ पर श्री वेंकटाचल का रास्ता होने की प्रार्थना की जा रही है। इस में और एक लाभ यह है कि इस मार्ग पर यात्रिक भक्त लोग हमेशा चलते फिरते रहते हैं; अर्थात् उनका पादस्पर्श भी मिलता रहेगा॥ .... (८)

(गाथा.) शेडियायवल्विनैहळ् तीर्कुन्तिरुमाले * नेडियाने वेङ्गडवा निन्कोयिलिन्वाशल् *
अडियारुम् वानवरुम् अरम्बैयरुङ्किडन्दियङ्गुम् * पडियाय्किडन्दु उन्पवळवाय् काण्बेने॥

प्रबल पापों से अपने भक्तों को छुडानेवाले हे श्रियःपति श्री वेंकटनाथ भगवन्! आपके दिव्य मंदिर के द्वारपर विराजमान परम भागवत गण तथा देवता एवं देवस्त्रियों के पैर रखने का स्थान एक सीढ़ी का जन्म पाकर मैं आपके प्रवाळ सदृश होठ का सेवन करूँ।

पूर्व गाथा में अपेक्षित मार्ग के जन्म में भी आळ्वार को एक दोष दीखने लगा। वह यह था कि कदाचित् दिव्यदेशों में नयी नयी सडक बनाने में उत्सुक भक्तजन इस मार्ग को कठिन मानकर दूसरा मार्ग अगर निकाल देंगे, तो सभी यात्री उस नयी सडक से ही निकलने लगेंगे, जिससे यह पुरानी सडक निकम्मा बन जाएगा। अतः श्री स्वामीजी हाल में ऐसी एक सीढी का जन्म माँगते हैं, जो हमेशा भगवान के सामने ही ठहरकर सदा आपके मुखारविंद के दर्शन करता रहेगा। इसी प्रार्थना के अनु सार श्रीवेंकटाद्रि में भगवान के सामने रहनेवाली सीढ़ी को कुलशेखरप्पडि कहते हैं। केवल वेंकटाद्री में ही नहीं, वरन सभी विष्णुमंदिरों में भगवान के सामने स्थित सीढ़ी को ऐसा ही कहने की प्रथा है। इससे विदित होता है कि श्रीस्वामीजी केवल वेंकटाद्री पर ही नाना जन्मों को नहीं माँग रहें है, किंतु समस्त दिव्यदेशों में भी॥ .... (९)

(गाथा.) उम्बरुलहाण्डु ओरुकुडैक्कीळ् * उरुप्पशितन् अम्बोर्कलैयलहुल् पेत्तालुमादरियेन् *
शेम्बवळवायान् तिरुवेङ्गडमेन्नुम् * एम्बेरुमान्पोन्मलैमेल् एदेनुमावेने॥ १०॥

श्वेतच्छत्र की छाया में बैठकर स्वर्गादि लोकों में राज करते हुए किये जानेवाले ऊर्वशी का भोग करने को भी मैं नहीं चाहता। लाल प्रवाल के समान मनोहर होंठवाले मेरे स्वामी के श्री वेंकटाद्रि नामक सुंदर पहाड पर मैं चाहे जैसा जन्म पाऊँ।

पिछली गाथा में आळ्वार से सीढी का जन्म जो प्रार्थित हुआ, उसमें आपकी दो अशायें थी—(१) निरंतर भगवान के दर्शन पाना और, (२) भक्तों के पाद का धारण करना। परन्तु थोडा विचार करने पर आप को प्रतीत हुआ कि उस सीढी पर कदाचित सोना चाँदी आदिका कवच अगर ढाँका जाय तो उक्त दोनों प्रयोजन अधूरे ही रह जायेंगे। अतः इस पद्य में आप किसी वस्तु का स्पष्ट नाम न

लेते हुवे, भगवान से यों प्रार्थना करते हैं कि श्री वेंकटाद्रि में नित्य निवास करने लायक चाहे जसा जन्म मुझे मिल जाय। श्री अनंताचार्य (अनंदाल्वान्) नामक महाचार्य इस गाथा में, चाहें जैसा जन्म शब्द का यों अर्थ बताये करते थे कि मैं स्वयं श्री वेंकटाद्रि के नाथ भगवान भी क्यों न हो, बन जाऊँ? इसका यह तात्पर्य है कि भक्तों के अभिप्राय से भगवान का शेष रहकर आपकी सेवा करने में ही वास्तव में मझा हैं; इसके वदले में स्वयं भगवान बनकर रहना बिल्कुल विरस है। हाल में श्री कुलशेखर आळ्वार का यह अभिप्राय बताया जा रहा है कि इस वैरस्य की भी परवाह नहीं करते हुवे, श्री वेंकटाद्रि में नित्य निवास करने का अवकाश मिलने पर मैं स्वयं वेंकटेश भगवान भी वन जाऊँगा। श्री पराशर भट्टर स्वामीजी ऐसा अर्थ बताते है कि श्रीशैल पर मुझे चाहे जैसा जन्म मिले जिसको स्वयं सर्वज्ञ भगवान भी न जाने; मैं भी न जानूँ। इसका भी यही तात्पर्य है कि श्रीशैल पर नित्य निवास करना ही अल्वार के अभिप्राय से परम पुरुषार्थ है; (तदर्थ लिये जानेवाले जन्म में दूसरी काई श्रेष्ठता अनपेक्षणीय है)॥ .... (१०)

(गाथा.) मन्नियतणूशारल् वडवेङ्गडत्तानूतन् * पोन्नियलुम् शेवडिहळ् काण्वान्पुरिन्दिरैञ्जि *
कोन्नविलुङ्कूर्वेल् कुलशेखरन्शोन्न * पन्नियनूल्तमिळ्वल्लार् पाङ्गायपत्तर्हळे॥ ११॥

चारों ओर अति शिशिर रहनेवाले श्री वेंकटाद्रि के नाथ श्रीनिवास भगवान के पादारविन्दों की सेवा करने इच्छुक, क्षत्रिय कुल के लायक पोशाक का धारण करनेवाले श्री कुलशेखर आळ्वार से संकीर्तित इस मधुर द्राविड सूक्त दस गाथाओं का अध्ययन करनेवाले सत्पुरुष भगवान के अच्छे भक्त बन जायेंगे। [इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया॥] .... (११)

—* इस दशक का तात्पर्य संग्राहक पद्य यह है *—

श्लो॥ भूयासं वेङ्कटाद्रौ बकजनिरथ वा मत्स्यजन्मा भवेयम्
यः कश्चित्किङ्करस्स्यामथ तरुरथ वा निर्झरो वाऽश्मखण्डः।
भूयासं मार्गरूपी हरिनिलयमुखे दिव्यसोपानकं स्याम्
यत्किञ्चिद्वस्तु वा स्यामिति विविधजनीराशशंसात्र सूरिः॥ ४॥

श्री कुलशेखर आळ्वार इस दशक में यों नाना प्रकार के जन्मों को माँग रहे हैं कि मैं वेंकटाद्रि में बक, मत्स्य, भगवान का सेवक, पेड, निर्झर, पत्थर, मार्ग, भगवान के सामने दिव्य सोपान, अथवा दूसरी चाहे जो वस्तु बन जाऊँ॥

॥ पेरुमाळ् तिरुमोळि में चौथा दशक समाप्त हुआ॥

॥ कुलशेखर आळ्वार तिरुवडिहळे शरणम्॥

॥ पाँचवां दशक — तरुतुयरम् तडायेल् ॥

(आळ्वार से अपने अनन्यशरणत्व का प्रख्यापन)

अवतारिका—भगवत्सन्निधि में शरणागति करनेवालों को आकिञ्चन्य व अनन्यगतित्व नामक ये दो आकार आवश्यक हैं। क्यों कि इनके विना शरणागति सिद्ध नहीं हो सकती है। अत एव श्री यामुनाचार्य स्वामीजी ने स्तोत्ररत्न में अनुगृहीत किया "न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविंदे" इत्यादि। (अर्थात् मेरे पास कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग इत्यादि कोई भी साधन नहीं है। अतः अकिंचन एवं अनन्यगति होकर मैं आपके पादारविंदों की शरण में आया हूं।) इस पद्य में श्री स्वामीजी अपने उक्त दो विशेषों का वर्णन करते हैं। इनमें आकिञ्चन्य का अर्थ यह होता है कि गरीबपन; अर्थात् अपेक्षित पुरुषार्थ प्राप्ति के लिए भगवान की कृपा के विना दूसरे किसी साधन से विरहित रहना। अपने में कर्म, ज्ञान, भक्ति इत्यादि साधनों का अभाव बताने से यह आकिञ्चन्य सिद्ध होता है। अनन्यगतित्व का अर्थ यह है कि, "हे प्रभो! आप अपनी मर्जी के अनुसार मेरे दुखों को चाहे दूर करिये अथवा चाहे और बढा दीजिये। दोनों अवस्थाओं में मैं दूसरे किसीको अपना रक्षक नहीं मानूँगा। किंतु आप ही मेरे रक्षक हैं। अर्थात् अनन्यगतित्वका अर्थ यह हुआ कि एक मात्र भगवान को ही अपना रक्षक मानना। हम देखते हैं कि लोग अपने को सुख मिलने पर भगवान की स्तुति करते हैं; दुख मिलने पर तो आपकी निंदा करते हैं। परंतु विशेषज्ञ परमभक्त दोनों अवस्थाओं को भगवत्कृपाजनित मानते हुवे सर्वदा आपकी प्रशंसा ही किये करते हैं। तथा हि—भगवान समस्त चेतनों के माता और पिता होने से हमेशा उनके प्रिय और हित करने में निरत होते हैं। प्रिय उसे कहते हैं जो तत्काल अच्छा लगता; और हित वह है जो तत्काल कडवा लगने पर भी बाद में कल्याण कारक होगा। भगवान जब किसी चेतन पर प्रिय करने चाहें, तो आप उसको सुख देते हैं; और जब हित करने चाहें, तब दुख देते हैं। दुख भोगने पर इस चेतन का कर्म नष्ट होता है और इसका मन भी शुद्ध बनता है। इस तरह से दुख को भी भगवान की कृपामय देन मानना उचित व आवश्यक है। प्रकृत दशक में विविध उदाहरणों का प्रदर्शन करते हुवे आळ्वार इस अर्थ का सुंदर विवरण करते हैं। केरल देश में 'तिरुवित्तुवक्कोडु' (श्री विद्वत् क्रोड) नामक दिव्यदेश के स्वामी भगवान की सन्निधि में यह दशक सुनाया जाता है। परंतु यह अर्थ अविस्मरणीय है कि एक दिव्यदेशाधिपति भगवान की सन्निधि में की जानेवाली प्रार्थना वस्तुतः समस्त दिव्यदेशाधिपतियों से की जाती है॥ .... *

(गाथा.) तरुतुयरन्तडायेल् उन्शरणल्लाल् शरणिल्लै * विरैकुळुवुम्मलर्प्पोळिल्शूळ् वित्तुवक्कोट्टम्माने * अरिशिनत्तालीन्नताय् अहत्तिडिनुम् * मत्तवळ्तन् अरुळ्निनैन्देयळुम्कुळवि अदुवेपोन्निरुन्देने॥

सुगंध भरित पुष्प समूह से विभूषित दिव्य उद्यानों से परिवृत तिरुवित्तुक्कोडु क्षेत्र में विराजमान हे भगवन्! आपसे ही दिये गये हुवे दुखों को आप दूर न करने पर भी आप ही हमारी गति हैं। हमें

आपके पादारविंदों को छोडकर दूसरी गति बिलकुल नहीं है । यथा लोक में कदाचित् माता अपने बच्चे को बडे कोपावेश से बाहर निकालेगी भी ; तथापि वह बच्चा माता की कृपा का ही ध्यान करता हुवा रोता रोता भी उसके पीछे पीछे ही चलता ।

यह अर्थ तो रसिक उभय वेदांत विद्वानों की गोष्ठी में प्रसिद्ध है कि, भगवान यामुनाचार्य स्वामीजी कूरेश स्वामीजी श्री पराशर भट्टार्य स्वामीजी इत्यादि हमारे पूर्वाचार्य अपने से अनुगृहीत स्तोत्रों में दिव्य प्रबंधों के रसघन अर्थों को ही भरे हैं । प्रकृत गाथा का अनुवाद सा है स्तोत्ररत्न का यह पद्य—निरासकस्यापि न तावदुत्सहे महेश ! हातुं तव पादपङ्कजम् । रुषा निरस्तोऽपि शिशुः स्तनन्धयो न जातु मातुश्चरणौ जिहासति ॥ .... (१)

(गाथा.) कण्डारिहल्वनवे कादलन्तान्शेय्दिडिनुम् * कोण्डानैयल्लाल् अरियाकुलमहल्पोल् *
विण्डोय्मदिल्पुडैशूल् वित्तुवक्कोट्टम्मा * नी कोण्डाळायाहिलुम् उन्कुरैकळलेकूरुवने ।।२।।

आकाश को छूनेवाले प्राकार से परिवृत तिरुवित्तुवक्कोडु दिव्यदेश में विराजमान हे स्वामिन् ! सब से गर्हणीय प्रकार से दंड देने पर भी जैसे कुलस्त्री अपने पति को छोडकर दूसरे से संबंध रखने न चाहती, इसी तरह से मैं भी, उपेक्षा करने पर भी आपको छोडकर दूसरी गति न जानता । किं तु आपके पादारविंदों का ही कीर्तन करूँगा ॥ .... (२)

(गाथा.) मीन्नोकुम्नीळ्वयल्शूल् वित्तुवक्कोट्टम्मा * एन् पाल् नोक्कायाहिलुम् उन्पत्तल्लाल् पत्तिलेन् *
तान्नोकादेत्तुयरम् शेय्दिडिनुम् * तर्वेन्दन् कोल्नोक्कि वाळुम् कुडिपोन्निरुन्देने ।। ३ ।।

मछलियों का सानंद निवासस्थान खेतियों से घिरे हुवे तिरुवित्तुवक्कोडु दिव्यदेश के नाथ ! मेरे नाथ ! हे भगवन ! मेरे ऊपर दयादृष्टि न करने पर भी मैं आपको नहीं छोडूंगा, किन्तु आपकी शरण में ही रहूँगा । जैसे कि प्रजापालन करने निरत राजा कदाचित् प्रजाओं की रक्षा न करते हुवे उलटा दुख ही दिये तो भी प्रजा उनकी ही आज्ञाधारक रहती है । (ऐसे मैं भी आपकी शरण में ही रहता) ॥ ... (३)

(गाथा.) वाळालरुत्तुच्चुडिनुम् मरुत्तुवन्पाल् * माळादकादल् नोयाळन्पोल्मायत्ताल् *
मीळात्तुयर्तरिनुम् वित्तुवक्कोट्टम्मा * नी आळावुनदरुळे पार्प्पनडियेने ।। ४ ।।

हे तिरुवित्तुवक्कोडु के स्वामिन् ! मेरे नाथ ! वैद्यराज अपने शरीर को भल ही आयुध से चीरें अथवा जलावें, तो भी उसपर ही अनहद प्रेम करनेवाले रोगी की तरह मैं भी हमेशा दुख देते रहने पर भी आपसे विरक्त न बनूँ; किंतु आपकी सेवा करने की रुचि से आपकी कृपा की ही प्रतीक्षा करता रहता ।

इस प्रकरण में यह प्राचीन पद्य अनुसंधेय है—हरिर्दुःखानि भक्तेभ्यो हितबुद्ध्या करोति वै । शस्त्रक्षाराग्निकर्माणि रुग्णाय हि भिषग्यथा ॥ इसका यह तात्पर्य है—जैसे वैद्य, शस्त्र विष अग्नि इत्यादि से रोगी की चिकित्सा करता है, इसी तरह से भगवान भी हितबुद्धि से कदाचित् अपने भक्तों को दुख देते है ॥

(गाथा.) वेङ्कट्टिण्कळिरडर्त्ताय् वित्तुवक्कोट्टम्माने * एङ्गुप्पोयुय्हेन् उन्निणैयडियेअडैयलल्लाल् *
एङ्गुम्पोय्क्करैकाणादु एरिकडल्वाय्मीण्डेयुम् * वङ्गत्तिन्कूम्बेरुम् माप्परवैपोन्नेने ॥ ५ ॥

भयंकर नेत्रवाले (कुवलयापीड नामक) बलिष्ठ मत्तगजका संहार कर डालनेवाले हे तिरुवित्तुवक्कोडु के स्वामिन् मेरे नाथ! आपके पादारविंदों की शरण में जाने के सिवा मेरे उज्जीवन का दूसरा कौनसा उपाय रहेगा? कुछ भी नहीं। जैसा लहरों से भरे हुवे समुद्र पर रहनेवाली एक नाव पर बैठा रहनेवाला कोई पक्षी स्वयं समुद्र में चारों ओर जाकर देखने पर भी कहीं आश्रय न पाने से लौटकर अपना स्वस्थान उसी नौका पर बैठ जाता (इसी तरह से मैं भी आपको ही अपना रक्षक मानता हूँ)॥ .... (५)

(गाथा.) शेन्दळलेवन्दु अळलैचेय्दिडिनुम् * शेङ्गमलम् अन्दरम्शेर् वेङ्गदिरोर्क्कल्लाललरावाल् *
वेन्दुयर्वीट्टाविडिनुम विंत्तुवक्कोट्टम्मा * उन् अन्दमिल्शीर्क्कल्लाल् अहङ्कुळैयमाट्टेने ॥ ६ ॥

हे तिरुवित्तुक्कोडु के स्वामिन् मेरे नाथ! जिस तरह से कमल का पुष्प आकाश में फिरने वाले सूर्य देव के गरम किरणों से खिलता है; न तु पास में ही रहनेवाली आग की गरमी से, इसी तरह से मेरा हृदय भी आपके सीमातीत कल्याणगुणगण से ही खिलेगा। भले ही आप मेरे क्रूरपापों का परिहार न करें॥ .... (६)

(गाथा.) एत्तनैयुम्वान्मरन्दकालत्तुम् पैङ्गूळ्हळ् * मैत्तेळुन्दमामुहिले पार्त्तिरुक्कुम्मत्तवैपोल् *
मेयूत्तुयर्वीट्टाविडिनुम् वित्तुवक्कोट्टम्मा * एन् शित्तमिक्कुन्पाले वैप्पनडियेने ॥ ७ ॥

हे तिरुवित्तुक्कोडु के स्वामिन्! मेरे नाथ! मेघ से बहुत समय तक उपेक्षित किये जाने पर भी हमेशा उसी कालमेघ की प्रतीक्षा करनेवाले सस्य की तरह आपका दास मैं भी अपने प्रबल पापों का पार न पहुंचा जाने पर भी, आपका ही परवशचित्त रहता हूँ॥ .... (७)

(गाथा.) तोकिलङ्गियारेल्लाम् परन्दोडित्तोडुकडले * पुकन्निप्पुरम्निर्क्क माट्टादमत्तवैपोल् *
मिकिलङ्गुमुहिल्निरत्ताय् वित्तुवक्कोट्टम्मा * उन् पुकिलङ्गुशीरल्लाल् पुकिलन्काण् पुण्णियने॥

निविड कालमेघ समूह के सदृश मनोहर दिव्यमंगलविग्रहवाले, पुण्यस्वरूपिन्! हे तिरुवित्तुवक्कोडु के स्वामिन् मेरे नाथ! जलप्रवाह से पूर्ण होकर इधर उधर बहनेवाली सभी नदियों का, अंतमें जैसे सागर ही मिलने का स्थान होता, इसी तरह से आपके मनोहर कल्याणगुण ही मेरे लिए शरण हैं। [यह तात्पर्य है, कि भगवद्भक्तों के लिए, अंततो गत्वा भगवान के कल्याणगुणों का अनुभव ही धारक पोषक व भोग्य होगा॥] .... (८)

(गाथा.) निन्नैयेतान्वेण्डि नीळ्शेल्वम्वेण्डादान् तन्नैये * तान्वेण्डुम्शेल्वम्पोल् मायत्ताल् *
मिन्नैयेशेर्तिहिरि वित्तुवक्कोट्टम्मा * निन्नैयेतान्वेण्डि निर्प्पनडियेने ॥ ९ ॥

हे जाज्वल्यमान चक्रराज का धारण करनेवाले तिरुवित्तुवक्कोडु के स्वामिन् मेरे नाथ! जैसे आपमें ही चित्त लगाने के कारण लौकिक संपत्ति का तिरस्कार करनेवाले भक्त के पास स्वयं वह ऐश्वर्य आ जाता, इसी तरह से मैं भी अपनी माया के बल से मेरी उपेक्षा करनेवाले आपको ही चाहता हूं॥

यद्यपि यह सामान्य नियम है कि भगवान अपने भक्तों को प्रायः लौकिक ऐश्वर्य न देते हैं, जिससे उनका अधःपतन हो जाएगा। तथापि क्वचित् विशेष भक्तों को किसी कारणवशात् आप ऐश्वर्य देते भी हैं। और ऐश्वर्य का यह स्वभाव है कि, जो उसको माँगता, उसको वह नहीं मिलता; और जो उसकी उपेक्षा करता, उसको वह जरूर मिलता। अत एव महाकवि कालिदास ने कहा—लमेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्। मूलगाथा में ऐश्वर्यवाचक जो शब्द है, "नीळ् शेल्वम्", इसका अर्थ मोक्ष भी हो सकता है। यह अर्थ भी यहां पर लिया जा सकता है। ऐसा करने पर यह तात्पर्य निकलेगा कि, "दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो नरके वा नरकान्तक प्रकामम्। अवधीरितशारदारविन्दौ चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयानि॥" इत्याद्युक्त प्रकार से केवल भगवच्चरणारविंद के ध्यान में ही सक्त मानव कदाचित् मोक्षसांराज्य की भी उपेक्षा कर सकता है। तथापि ऐसे परमभक्त को वह मोक्ष संपत् जरूर मिलेगी। पद्य का यह तात्पर्य है—हे भगवन्! आपकी मरजी के अनुसार मुझे स्वर्ग में (अथवा परमपद में), भूमिपर अथवा नरक में, चाहे जहां वास मिलें; (इस विषय में मेरा कोई आग्रह नहीं है;) परंतु मेरे अपेक्षित परमपुरुषार्थ यह एक तो अवश्य मिलना चाहिए, कि मैं सर्वदा आपके पादारविंदों का ही ध्यान करता रहूं॥ .... (१०)

(गाथा.) वित्तुवक्कोट्टम्मा नीवेण्डायेयायिडिनुम् * मत्तारुम्पत्तिलेनेन्नु अवनैत्ताळ्नयन्दु *
कोत्तवेल्तानै कुलशेखरन्शोन्न * नत्तमिळ्पत्तुमूवल्लार् नण्णार् नरकमे॥ १०॥

भगवत्संनिधि में यों विनती करते हुए कि, "हे तिरुवित्तुवक्कोडु के स्वामिन् मेरे नाथ! आपसे उपेक्षित होने पर भी मैं सर्वथा आपके सिवा दूसरे की शरण में नहीं जा सकूंगा", आपके पादारविंदों में ही अनहद प्रेम करनेवाले विजयी वेलायुध एवं सेना से युक्त, कुलशेखर आळ्वार से कथित इन दस मनोहर द्राविड गाथा जाननेवाले (पापी होकर भी, उस पाप से मुक्त होने के कारण) नरक नहीं जायंगे। [इस फल श्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया॥] .... (१०)

—* इस दशक का सार संग्राहक पद्य यह है *—

श्लो॥ विद्वत्कोडाभिधाने प्रथितरुचिरदिव्यस्थले भ्राजमानं
विष्णुं संसेव्य तत्पत्कमलपरिसरे स्वामनन्यार्हतां यः।
नानादृष्टान्तसंदर्शनमुखत उवाचातिभोग्यप्रणाल्या
तस्मिन् सूरौ सदा स्यामहमनुपधिना प्रेमभूम्ना समृद्धः॥ ५॥

जिन कुलशेखरस्वामीजी ने तिरुवित्तुवक्कोडु नामक प्रसिद्ध व मनोहर दिव्यदेश में विराजमान भगवान के दर्शन कर, उनके पादारविंद में अपने अनन्यार्हत्व को अनेक दृष्टांत वताते हुवे परमभोग्य प्रकार से प्रकाशित किया, ऐसे उन आळ्वार के विषय में मैं अनहद भक्तिवाला वनूं ॥

॥ पेरुमाळ् तिरुमोळि में पांचवां दशक समाप्त हुआ ॥

॥ कुलशेखर आळ्वार् तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ पेरुमाळ् तिरुमोळि छठां दशक—एर्मलर्पूंङ्गुळल् ॥

(गोपियों के प्रणयरोष का वर्णन)

अवतारिका—यह दशक वडी विलक्षण रीति से गाया जा रहा है। पिछले के पांच दशकों से अर्चारूपी भगवान का अनुभव करनेपर आळ्वार का लक्ष्य विभवावतार पर गया। उसमें भी श्री कृष्णावतार में भगवान की एक विलक्षण लीला का अनुभव करने की आपकी इच्छा हुई। प्रेमियों के प्रणयरसानुभव में प्रणयरोष नामक एक वडा सुंदर अनुभव होता है जिनकी रसिक लोग भूरि प्रशंसा करते हैं। प्रणयरोष का अर्थ है प्रेमसे कुपित होना। अर्थात् प्रेमी के अत्यल्प अपराध से कुपित होकर प्रेयसी उसपर जो उपेक्षा करती है, अथवा उसको दंड देने की चेष्टा करती है, यही प्रणयरोष पुकारा जाता है। श्रृंगार रस का वर्णन करनेवाले ग्रंथों में प्रायः इस प्रणयरोष का भी वर्णन रहता ही है। रामायण में भी तत्रतत्र यह वर्णित है। यथा, जव श्रीरामचंद्रजी पिता की आज्ञा को मानते हुवे दंडकारण्य पधारने का निश्चयकर, वहुत प्रार्थित होने पर भी सीतादेवी को साथ ले जाने को सहमत न हुवे, तव सीतादेवी आपसे नाराज होकर आपको कटुवचन सुनाने लगीं—किं त्वाऽमन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः। राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम् ॥ इत्यादि। (वास्तव में औरत रहकर, परंतु ऊपर पुरुष का वेषधारण करनेवाले तुमको पाकर, मेरे पिताने क्या सोचकर तुमको अपना जमाई बना दिया?) अत एव वाल्मीकी ने इस प्रकरण की स्पष्ट भूमिका रची, कि "प्रणयाच्चाभिमानाच्च परिचिक्षेप राघवम्।" (अर्थात्, सीतादेवी ने प्रेम से और रोष से श्रीरामचंद्रजी की निंदा की।) परंतु एकपत्नीव्रतस्थ श्रीरामचंद्रजी के विषय में प्रणयरोष करने का अवकाश मिलना कुछ कठिन है। अतः आपकी जीवनी में प्रणयरोष का वर्णन भी बहुत कम है। इससे विपरीत, पांच लाख गोपकन्याओं का उपभोग करने के लिए ही अवतीर्ण, जारचोरशिखामणि विरुदभाजन श्रीकृष्ण के दिव्यचरित्र तो प्रणयरोष से भरपूर है। इनका पूरा वर्णन करना सहस्रफणामंडलालंकृत स्वयं शेषजी का भी अशक्य है; फिर दूसरों के वारे में कहना ही क्या है? तथापि भक्तलोग भगवान की इस लीला का भी कुछ वर्णन कर अपनेको धन्य बना देते हैं। आळ्वारों में श्री शठकोप सूरी, सहस्रगीति के एक दशक से (६–२), श्री परकालसूरी एक दशक से (१०–८), और वर्तमान कुलशेखरसूरी प्रकृत दशक से, इस तरह से ये तीन ही आळ्वार इस प्रणयरोषलीला का वर्णन करते हैं। तथा च श्री कृष्ण के कपटव्यापारों से क्रुद्ध गोपियों के प्रणयरोष गर्भित वचनों का अनुवाद यहां पर श्री कुलशेखर सूरी से किया जा रहा है—यों समझना चाहिए ॥ .... *

(गाथा.) एर्मलर्पूङ्गुळलायर्मादर् एनैप्पलरुळ्ळविव्वूरिल् * उन्तन्
मार्वुतळुवुदकाशैयिन्मै अरिन्दरिन्देयुनुतन्पोय्यैकेट्टु *
कूर्मलैपोल्पनिकूदलेय्दि कूशिनड्ङ्गियमुनैयात्तिल् *
वार्मणक्र्कुन्निल् पुलरनिन्नेन् वासुदेवा वुन्वरवुपार्त्ते ॥ १ ॥

इस अर्थ को ठीक जानती हुई, कि मनोहर पुष्पालंकृत सुगंधकेशवाली असंख्य गोपियों से भरे हुवे इस व्रज में तुम्हारे वक्ष से आलिंगन करने का भाग्य मुझे कथंचिदपि न मिलेगा, तो भी तुम्हारी झूटी बातें सुनकर [उनको सच्ची मानकर], बडी वर्षा की तरह गिरनेवाले हिम से कांपती हुई, और किसी की नजर में आ जाने के भय से सकुचाती हुई, मैं यमुनाबदी के किसी पुलिन में तुम्हारे आगमन की राह देखती हुई, प्रातः काल तक (सारी रात) रह गयी। हे प्रभो! अब इधर से पधारो, पधारो ॥

भक्तों के अभिप्राय से भगवान के सभी चेष्टित एकदम परमशोभन होते हैं; न तु उनमें अच्छे बूरों का विभाग भी हो सकता है। अत एव शृंगाररस के अनभिज्ञ, वीतराग भक्तलोग भी वगर संकोच आपकी प्रणयलीलाओं का खुला वर्णन करते हैं। इसी न्याय से यहां पर भी भगवान की ऐसी कतिपय लीलाओं का वर्णन किया जाता है। किसी एक गोपी के मन में श्री कृष्ण से मिलने की बडी आशा थी; तथापि यों मानती हुई वह निराश हो गयी थी कि असंख्य सुंदरी गोपियों से परिपूर्ण इस व्रज में सब को छोडकर भगवान की कृपा मेरे ऊपर कैसे पडेगी। ऐसी दशा में श्री कृष्णने, उसके पास आकर मधुर शब्दों से कहा कि, "आज मैं तुमसे मिलना चाहता हूं; अतः रात को तुम यमुना जाकर पुलिन में अमुक जगह पर मेरी प्रतीक्षा करती रहो; मैं ठीक समय पर उधर आ पहुंचूंगा।" वेचारी वह गोपी भी इस वचन को सत्य मानती हुई, तथैव रात को यमुना जाकर कठोर ठंडी की भी परवाह न करती हुई रातभर उधर रह गयी; परंतु, हाय! श्री कृष्ण उधर नहीं गये। वह भी प्रातःकाल होने पर घर लौट गयी। इतने में यह वृत्तांत समाप्त न हुआ। फिर श्रीकृष्ण स्वयं उसके पास जाकर बोले, "कल अत्यावश्यक दूसरे काम में लग जाने से मैं तुम्हारे पास नहीं आ सका। आज रात को तो जरूर आ जाऊंगा; अतः तुम फिर उसी जगह जाकर मेरी प्रतीक्षा करो।" यह बात सुनकर, रुष्ट उस गोपी ने जो कहा, वह इस गाथा में उपवर्णित है। यद्यपि इस मूल गाथा में, यह शब्द नहीं है कि "इधर से पधारो, पधारो।" तथापि आगे की गाथओं में यह शब्द है; अतः उसको यहां पर भी लगाना उचित है। इसका यह तात्पर्य है कि, "तुम झूटी वार्ता करते, मेरे पास मत आओ; झट भाग जा यहां से॥" .... (१)

(गाथा.) केण्डैयोण्कण्मडवालोरुत्ति कीळैयहत्तुत्तयिर्कडैय
कण्डु * ओल्लैनानुङ्कडैवनेन्नु कळ्ळविळियैविळित्तुप्पुक्कु *
वण्डमर्पूङ्गुळल्ताळ्न्दुलाव वाण्मुहमूनेर्प्पचेव्वायुतुडिप्प *
तण्तयिर्नीकडैन्दिट्टवण्णम् दामोदरा मेय्यरिवन्नाने ॥ २ ॥

हे दामोदर! हमारी पूर्वदिशा के घर में रहनेवाली मीन के समान सुंदर नेत्रवाली एक गोपी जब अकेली दही का मथन करती रही, तब उसके पास जाकर, यों कहते हुवे कि "मैं भी तुम्हारे साथ मथन करूंगा," चोरदृष्टि से देखता हुआ, भ्रमरपरिवृतपुष्प से सजाया हुआ अपना केशपाश शिथिल होकर इधर उधर हिल जाय, और तेजोमय मुख पसीजा जाय, और लाल होठ कांप उठें, इस तरह से तुमने जो दही का मथन किया, उसको मैं ठीक जानती हूं; अतः तुम यहां से पधारो, पधारो ॥

यह गाथा दूसरी किसी गोपी का सरोष वचन है। पडोसी घरवाली के साथ दधिमथन लीला का अनुभव कर अपने में कपट प्रेम का अभिनय करते आनेवाले श्रीकृष्ण को देखकर यह गोपी रोष से कहती है कि, "मैं तुम्हारी चेष्टा को बराबर जानती हूं; अतः मेरे पास तुम्हारा कुछ न चलेगा। उसीके पास जाकर तुम फिर दही का मथन किया करो। झट भाग जा यहां से॥" .... (२)

(गाथा.) करुमलर्क्कून्दलोरुत्तितन्नै कडैक्कणित्ताङ्गेयोरुत्तितन्पाल् *
मरुविमनमूवैचुमत्तोरुत्तिकुरैत्तु ओरुपेदैकुप्पोयुकुरित्तु *
पुरिक्कुळल्मङ्गैयोरुत्तितन्नैप्पुणर्दि अवळुकुम्मेय्यनल्लै *
मरुदिरुत्तायुन्वळर्त्तियूडे वळर्हिन्नदालुन्तन्मायैताने ॥ ३ ॥

हे यमलार्जुनभंजन! कृष्ण! अहो! तुम्हारे वय के साथ ही तुम्हारे मायाचरित भी बढते जाते हैं। सुगंधपुष्पालंकृत काले केशवाली एक गोपी पर तुम अपना कटाक्षवीक्षण डालोगे; दूसरी किसी पर चित्त लगाओगे; (फिर उसको भी छोडकर) और एकसे कहते हो कि "मैं तुम्हारा दास हूं;" इसके बाद और एक गोपी से कपट से ही किसी एक संकेतस्थल जाने की बात कर, अंत में कुटिलकेश और एकको गले लगाते हो; परंतु वह भी संश्लेष कपट है नतु सच। (अहो तुम्हारी कपटविद्या है!)

गीतगोविंद के, "धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली, गोपीपीनपयोधरमर्दनचंचलकरयुगशाली, श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि रमयति कामपि रामाम्" इत्यादि गीत यहां पर अनुसंधेय हैं॥

(गाथा.) तायुमुलैप्पालिलमुदिरुक्क त्तवळन्दुतळर्नडैयिट्टुच्चेन्नु *
पेयूमुलैवायूवैत्तुनञ्जैयुण्डु पित्तनेन्ने पिररेशनिन्नाय् *
आयूमिहुकादलोडुयानिरुप्प यान्विडवन्दवेन्दूतियोडे *
नीमिहुभोगत्तैनन्नुहन्दायू अदुवुमुन्कोरम्बुकेक्कुमन्ने ॥ ४ ॥

(हे धूर्त कृष्ण!) दूधसे भरे हुवे माता यशोदाजी के स्तनों के रहते हुवे ही, उनको छोडकर, स्खलितगमन से धीरे धीरे रींगता हुवा पिशाची पूतना के स्तन में मुँह लगाकर, उसपर लगाये गये हुवे विष का पानकर, उस कारण से, "यह पागल है" ऐसे सब के परिहासवचन का तुम लक्ष्य बन गया। एवं अत्यधिक कामना से मैं जब तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी, तब तुमने मेरेसे प्रेषित दूती के साथ सानंद भोग कर लिया। यह भी तुम्हारी धूर्तताका अनुगुण ही है॥

और एक गोपी ने काम को रोकने में असमर्थ होकर श्री कृष्ण के पास एक दूती को भेजा। उसकी आशा थी कि वह दूती श्री कृष्ण को अपने साथ लेती आवेगी। परंतु वहां दूसरा कुछ ही हुआ। बहुत समयतक श्री कृष्ण के वहां टहरकर बाद में वह दूती अकेली ही लौट गयी। उसके शरीर पर भोग-चिह्न, दंतक्षत, नखक्षत इत्यादि बहुत दीखते थे। इनको देखकर जब यह गोपी ईर्ष्या व रोष से भर गयी, तब उसको प्रसन्न कराने की इच्छा से श्री कृष्ण उसके सामने प्रकट हो गये। तब उनको देखकर वह गोपी यह गाथा बोलती है। पूतनावृत्तांत का उल्लेख यहां पर इस लिए किया गया है कि इससे कृष्ण को अच्छी वस्तु छोडकर बूरी वस्तु का ग्रहण करनेवाला मूर्ख अथवा धूर्त बता जा सकता हैं। तथा हि—जैसे माता के दुग्ध पूर्ण स्तन छोडकर पिशाची का विषलिप्त स्तन पीना अनुचित है; इसी तरह से अत्यंत कामपरवश होकर अपनी प्रतीक्षा करनेवाली प्रकृत गोपी को छोडकर, निहीन उसकी दासी को भोगना भी बडा अनुचित है। परंतु बचपन से ही ऐसे काम करने का कृष्ण को अभ्यास हो गया॥ .... (४)

(गाथा.) मिन्नोत्तनुण्णिडैयाळैक्कोण्डु वीङ्गिरुळ्वायेन्तन्वीदियूडे *
पोन्नोत्तवाडैकुकूडलिट्टु प्पोहिन्नपोदुनान्कण्डुनिन्नेन् *
कण्णुत्तवळैनीकण्णालिट्टु कैविळिकिन्नदुङ्कण्डेनिन्नेन् *
एन्नुक्कवळैविट्टिङ्गुवन्दाय् इन्नमङ्गेनडनम्बिनीये ॥ ५ ॥

हे परिपूर्ण स्वामिन्! विजली के समान सूक्ष्म मध्यभागवाली किसी एक बालिका को अपने साथ लेकर, घन अंधकार में, पीतांबर से अपनेको ढांककर मेरी वीथी से निकलने के समय में (तुम दोनों को) मैने देख लिए। और भी उस समय में नजर में आनेवाली दूसरी एक बालिका के ऊपर अपना पूर्ण कटाक्ष डाल कर तुमने उसको हाथ से जो इशारा किया, उसको भी मैंने देख लिया। अब उसको छोडकर तुम क्यों कर मेरे पास आ गया? फिर उसीके पास जाओ।

अपने को धोखा देकर, दूसरी किनही दो गोपियों से प्रणयलीला करनेवाले श्रीकृष्ण से कुपित एक गोपी का वचन है प्रकृतगाथा। श्री कृष्णने प्रकृत गोपी के समक्ष में ही, दूसरी को संकेतस्थान ले गया और तीसरी से उधर आनेका संकेत कर दिया। यह बडे दुःख का कारण हुआ। यद्यपि वे अंधकार मय रात्री में, अपने शरीर को वस्त्र से ढांक कर गये; तथापि पीतवर्ण वह वस्त्र रात्रि में विजली की तरह चमकता हुआ उनके नीलविग्रह को खूब प्रकाशित करने लगा। और दूसरी बात यह थी कि अपने को छिपाकर जानेवाले को दूसरे रास्ते से निकलना उचित था; परंतु श्री कृष्णने ऐसा नही किया; प्रकृत गोपी के मकान के सामने से ही अपनी प्रेयसी के साथ वे निकले। इसका यही अर्थ होगा कि श्री कृष्ण अपनी इस लीला को प्रकृत गोपी को दिखा कर उसको दुःखी बनाने चाहते थे॥ .... (५)

(गाथा.) मर्प्पोरुतोळुडैवासुदेवा वल्विनैयेन् तुयिल्कोण्डवारे *
इत्तैयिरविडैयेमत्तेन्नै इन्नणैमेलिट्टहन्तुनीपोयू *
अत्तैयिरवुमोर्पित्तैनाळुम् अरिवैयरोडुमणैन्दुवन्दाय् *
एत्तुकुनीयेन्मरुङ्गिल्वन्दाय् एम्बेरुमान्नीयेलुन्दरुळे ॥ ६ ॥

हे मल्लों के साथ लडने समर्थ भुजवाला वासुदेव! उस रात के बीच के याम में जब कि पापिनी मैं निद्रा करने लगी, तब उस सुंदर शय्या में मुझको छोडकर तुम बाहर चला गया और उस रात भर और दूसरी रात में भी अनेक गोपियों से मिलकर अब इधर आ रहे हो। ऐसा तुम मेरे पास क्यों आते हो? हे मेरे स्वामिन्! तुम उनके पास ही पधारो ॥

कुपित इस गोपी को प्रसन्न कराने के लिए उसका आलिंगन करने का भाव दिखाते हुवे श्रीकृष्ण उसके नजदीक आ गये। तब वह बोलती हैं कि, "हे प्रभो! मेरे पास मत आओ; उनही के वहां जाओ, जिनके साथ आपकी दो रात वीत गयीं ॥" .... (६)

(गाथा.) पैयरविनणैप्पळ्ळियिनाय् पण्डैयोमल्लोम्नाम् * नीयुहक्कुम्
मैयरियोण्कण्णिनारुमल्लोम् वैहियेमूशेरिवरवोळिनी *
शेय्यवुडैयुन्तिरुमुहमुम् शेङ्गनिवायुङ्कुळलुङ्कण्डु *
पोय्योरुनाळ्पट्टदेयमैयुम् पुळ्ळुवम्पेशादेपोहुनम्बी ॥ ७ ॥

फणामंडल से सुशोभित मनोहर शेषशयन पर शयन करनेवाले हे पूर्ण भगवन्! अब हम पहले की तरह तुम्हारे कपट वचनरूपी जाल में फंसनेवाली भोली नहीं रहीं; न वा हम तुम्हारे प्रेमका पात्र, काजल से अलंकृत सुंदर हरिणनयना हैं। अत: विलंब से तुम हमारे घर मत आया करो। तुम्हारे दिव्य पीतांबर, श्रीमुखमंडल, लाल बिंबफलसमान होंठ और केश पाश को देखकर, उनमें व्यामुग्ध होकर, और तुम्हारे कपटवचन में विश्वास रखकर हमने जो उस दिन में दुख पाया, वही पर्याप्त है। फिर अपनी कृत्रिमवार्ता करते इधर मत आओ; (तुम्हारी उन प्रेयसियों के पास ही) जते रहो ॥

श्री कृष्ण से वंचित दूसरी एक गोपी का यह रोषभाषित है—हे मायाविन्! बहुत समयतक मैं भी तुम्हारे कपटमय भाषण चेष्टितादि से व्यामोहित रह गयी। परंतु अब तुम्हारे सब कपट को मैंने जान चुका। अत: फिर तुमसे वंचित न हो जाऊँगी। नवा तुम्हारा प्रेम पाने लायक सौंदर्य ही मेरे में है। जभी कभी इधर आकर अपना मुख दिखाना पर्याप्त है—ऐसी तुम्हारी मान्यता होगी। परंतु इतना परिश्रम भी क्यों उठाते हो? तुमपर विश्वास करने के फलतया अभी तक मैं ने जो दु:ख पाया, वही पर्याप्त है; और भी दुख भोगने मैं तैयार नहीं हूं। अत: बडी कृपा करके यहां से निकल जा; वारंवार कपट वचन कहते रहने से अब तुम्हें कोई लाभ न मिलेगा ॥ .... (७)

(गाथा.) एन्नैवरुहवेनक्कुरित्तिट्टु इनमलर्मुल्लैयिन्पन्दर्नीळल् *
मन्नियवळैप्पुणरप्पुक्कु मत्तेन्नैक्कण्डुळरानेहिल्न्दाय् *
पोन्निरवाडैयैक्कैयिल्तङ्गि प्पोय्यचङ्गात्तिनीपोदियेलुम् *
इन्नमेन्कैयहत्तीङ्गोरुनाळ् वरुदियेलेन्शिनन्तीर्वन्नाने ॥ ८ ॥

मुझसे ऐसा संकेत कर कि "तुम अमुक स्थानपर आ जा", फिर उधर पुष्पभरित माधवीलता वितान की छाया में बहुत देर पहले से रहनेवाली दूसरी एक गोपी से मिलने उद्युक्त होकर, उतने में मुझ को देखकर चकित होकर, तुम चुपचाप दूर निकल गया न? अपने पीतांवर को हाथ में धरकर, (मुझको देखने से) कृत्रिम भय का अभिनय करते हुवे, यद्यपि उस समय में तुम मेरे हाथ से निकल पडा; तथापि और किसी दिन, तुम अनन्यगति होकर मेरे पास अगर आओगे, तब उस समय में मैं अपने कोप का परिहार कर लूंगी ॥

यह दूसरी एक गोपी का प्रणयरोषभाषित है—पहले किसी और गोपी को अमुक समय में अमुक स्थानपर आनेका संकेत कर रखकर, फिर दाक्षिण्य के मारे मुझको भी उसी देश काल में आने का तुमने संकेत दिया। तुम्हारे वचन के अनुसार हम दोनों उधर आ गयीं तो सही। परंतु उसको तुमसे मिलने का भाग्य मिला, मैं तो वंचित रह गयी। अस्तु। फिर कभी भी तुम मेरेसे प्रणयभिक्षा माँगते हुवे मेरे यहां आओगे न? उस समय में मैं तुम को अपने कोप का पूर्ण परिचय दिलाऊंगी। कोप का परिचय इस तरह से दिया जाता कि, अत्यंत प्रेम दिखाते आनेवाले कृष्ण को देखते ही, यह गोपी दूसरी ओर अपना मुख फिराकर, उससे वार्ता भी न करती उसका अनादर करेगी; जिससे उसके मन में बडा दुख उत्पन्न होगा ॥ .... (८)

(गाथा.) मङ्गलनल्वनमालैमार्विलिलङ्ग मयिल्तलैप्पीलिशूडि *
पोङ्गिळवाडैयरैयिलशात्ति प्पूङ्कोत्तुक्कादिल्पुणरप्पेयूदु *
कोङ्गुनरुङ्कुळलार्हळोडु कुळैन्दुकुळलिनिदूदिवन्दाय् *
एङ्गळुक्केयोरुनाळ्वन्दद उन्कुळलिन्निशैपोदरादे ॥ ९ ॥

वक्ष पर मंगलमय विलक्षण वनमाला पहनकर, सिरपर मोरपिंछ का धारण कर, कमर में चमकने वाला सूक्ष्मवस्त्र पहनकर, एवं कान में पुष्पगुच्छों का भी मनोहर रीति से धारण कर, मधुगंध से युक्त केशवाली स्त्रियों से मिलकर उस संश्लेष आनंद का परवश होकर मनोहर मुरली बजाते हुवे तुम आया कर रहे हो। परंतु हाय! हमारे लिए कभी एक ही वार क्यों न हो, इस तरह से सानंद गान करने के लिए, तुम्हारी मुरली से गान नहीं निकलता है ॥

दूसरी एक गोपी कृष्ण से वंचित होकर अत्यंत दुख से कहती है कि, तुम्हारा मुरलीनाद सुनने के भाग्य से पापिनी मैं वंचित ही रह जाऊंगी; भाग्यवती दूसरी गोपियों को ही वह भाग्य मिल जाय ॥ (९)

(गाथा.) अळिमलर्त्तिरुमङ्गैकेल्वन्तन्नै नयन्दिळवायूच्चिमार्हळ् *
एळिप्पोलुदिनिलेमत्तूडि एळ्हियुरैत्तवुरैयदनै *
कोळिनहर्क्किरैकूडल्कोमान् कुलशेखरनिन्निशैयिल्मेवि *
शोळियविन्नुतमिळ्मालैपत्तुम् शोल्लवल्लार्किल्लैतुन्वन्ताने ॥ १० ॥

गोपबालिकाओं ने कमलनिवासिनी लक्ष्मीजी के नाथ, श्री कृष्ण भगवान पर व्यामोहित होकर, रात्रि के मध्ययाम में उन पर प्रणयरोष करती हुई, परवशचित्त होकर, उनसे जो जो कहा, उनको लेकर, कोल्लिनगरके राजा, मधुरापुराधीश, कुलशेखर आळ्वार से मधुरगीत के रूप में प्रणीत अतिमनोहर इन द्राविडी दस गाथाओं का अध्ययन करनेवालों को संसार दुःख न रहेगा ॥ [इस फलश्रुति॰ के साथ यह दशक समापित किया गया ॥] .... (१०)

—※ इस दशक का सारांश संग्राहक पद्य यह है ※—

श्लो ॥ पूर्वं कृष्णावतारे व्रजभुवि विविधाश्चर्यचर्यासमृद्धो
जारश्चोरो विटाग्र्यः कितव इति यशः प्रापिवान्नन्दसूनुः ।
यासु स्वं विप्रलम्भं प्रकटितमतनोत्ताभिराभीरजाभी
रोषावेशाद्यदुक्तं तदिदमनुवदन् तद्गिरा सूरिरीड्यः ॥ ६ ॥

पूर्वकाल में श्रीकृष्णावतार में, नानाविध आश्चर्यमय दिव्यलीला करनेवाले, जार, चोर, धूर्त, विटाग्रेसर इत्यादि विरुद पानेवाले भगवान ने जिन जिन गोपियों को धोखा दिया, उनउन से प्रणयरोष से जो जो बात कही गयीं, इन वचनों का अनुवाद करनेवाले आळ्वार हमारी स्तुति के लक्ष्य बन जाय ॥ (६)

॥ पेरुमाळ् तिरुमोळि में छठां दशक समाप्त हुआ ॥

॥ कुलशेखर आळ्वार तिरुवडिगळे शरणम् ॥

॥ सातवां दशक—आलैनीळ्करुम्बु ॥

(देवकीजी का प्रलाप)

अवतारिका—"एष नारायणः श्रीमान् क्षीरार्णवनिकेतनः । नागपर्यङ्कमुत्सृज्य ह्यागतो मथुरां पुरीम् ॥" [अर्थात् क्षीरसागरनिवासी श्रीमन्नारायण शेषशय्या छोडकर मथुरापुरी पधार गये] इस प्रसिद्ध पुराणवचन के अनुसार भगवान क्षीरसमुद्र से मधुरापुरी पधारकर वसुदेव-देवकीजी के पुत्ररूप से प्रकट हो गये । परंतु आप उधर न रह सके; तुरंत वसुदेवजी ने आपको उठाकर, उसी गाढ रात्री में प्रवाहभरित यमुनाजी का भी, विना क्लेश, पार करते हुवे, व्रज जाकर, उधर नंदगोप-यशोदा जी के घर में छोड दिया । श्री कृष्ण की अतिमधुर मनोहर व अमानुष बाललीलाएं—पूतनावध, शकटासुर भंजन, गोवर्धनोद्धरण, रासक्रीडाविहरण इत्यादि सभी—उस व्रज में बनीं और उनके दर्शन करने का अहोभाग्य नंदगोप-यशोदा नामक उन महात्माओं को मिला । वसुदेव-देवकियों को तो रोते रोते ही अपना समय बिताना पडा । उनका दुख वर्णनातीत था । अनेक वर्षों के बाद श्री कृष्ण मथुरा आ गये और कंस का वध कर मा बापों के पास गये । उस समय में, और उससे पहले भी देवकीजी ने, अपने असीम दुख का स्मरण करती हुई जो प्रलाप किया, उसका अनुवाद इस दशक में किया जाता है । अर्थात् देवकीजी की वाणी

से नंदगोप यशोदाओं का अहोभाग्य और अपने दंपतियों का [देवकी वसुदेवों का] दौर्भाग्य इस दशक में वर्णित किया जाता है ॥] .... *

(गाथा.) आलैनीळ्करुम्बन्नवनूतालो अम्बुयत्तडङ्कण्णिननूतालो *
वेलैनीनिंरत्तन्नवनूतालो वेळप्पोदहमन्नवनूतालो *
एलवार्कुळलेन्महनूतालो एन्नेन्नुन्नैयेन्वायिडैनिरैय *
तालोलित्तिडुन्तिरुविनैयिल्ला त्तायरिल्कडैयायिनताये ॥ १ ॥

[देवकीजी यों प्रलाप करतीं हैं कि] हे रसघन इक्षुखंड का समान कृष्ण! निद्रा करो; हे कमल के सदृश विशाल नयनवाला! निद्रा करो; हे सागरवर्ण! निद्रा करो; हे गजशिशु का समान! निद्रा करो; हे सुगंध व सुदीर्घ केशपाशवाला मेरा पुत्र! निद्रा करो। इत्यादि अनेक शयन गीतों का खूब गान करती हुई, तुमको झूले में सुआकर निद्रा कराने के भाग्य से उपवंचित मैं सब माताओं में से कनिष्ठ बन गयी हूं ॥

लोक में हम देख रहे हैं कि पुत्र का जन्म देनेवाली माताओं का यही बडा भाग्य समझा जाता है कि वे अपने बच्चे को झूले में रखकर सुमधुर गीत गाती हुई उसको सुआती हैं। श्री कृष्ण का अपने गर्भ में धारण कर, जन्म देने पर भी, देवकीजी को यह भाग्य न मिला; क्यों कि जन्म लेते ही उन्होंने श्रीकृष्ण को व्रज भेज दिया। अतः डोलागीत का स्मरण करती हुई रोना ही अब उनका काम हुआ। डोलागीत करने के समय में श्री कृष्ण से किये जाने लायक कतिपय संबोधनों का उल्लेख इस गाथा में किया गया है। ऐसे ऐसे संबोधन करती हुई मनोहर डोलागीत गाकर आनंदित होने के भाग्य से वंचित अपनी निंदा करती हैं देवकी जी ॥ .... (१)

(गाथा.) वडिकोळञ्जनमेळुदुशेम्मलर्कण् मरुविमेलिनिदोन्निनैनोकि *
मुडक्कियेवडिमलर्चिरुकरुन्दाळ् पोलियुनीर्मुहिर्कुळवियेपोल *
अडक्कियारच्चेञ्जिरुविरलनैत्तुम् अङ्गैयोडणैन्दानैयिकिडन्द *
किडक्कैकण्डिडप्पेत्तिलेनन्दो केशवाकेडुवेन्केडुवेने ॥ २ ॥

काजल से अलंकृत, तीक्ष्ण एवं लाल कमलके सदृश अपने नेत्र से, झूले के छत मे लगाये हुवे शुक इत्यादि क्रीडावस्तुओं में से किसी एकको आनंद से देखते हुवे, अंदर के भागमें लाल एवं ऊपर से काले अपने छोटे पैरों को मुडाकर, पानी से भरे हुवे मेघ के बच्चे की तरह, अतिसुंदर व मृदुतर पादांगुलियों को मुडाकर अपने हाथसे पकडते हुवे, गजशिशु की तरह (डोलेमें) शयन करनेवाले तुम्हारी शोभा देखकर प्रसन्न होने के भाग्य को पापी मैंने नहीं पाया। हाय! हे केशव! मेरा धिक्कार हो, धिक्कार हो ॥ (२)

(गाथा.) मुन्दैनन्मुरैयन्वुडैमहळिर् मुरैमुरैतन्दङ्कुरङ्गिडैयिरुत्ति *
एन्दैयेयेन्दन्कुलप्पेरुन्जुडरे एळुमुहिल्वणत्तेळिल्कवरेरे *
उन्दैयावनेन्नुरैप्पनिन्शेङ्गल्विरलिनुम् कडैक्कण्णिनुङ्काट्ट *
नन्दन्पेत्तनन्नल्विनैयिल्ला नङ्गळ्कोन्वसुदेवन्पेत्तिलने ॥ ३ ॥

परंपरागत संबंधवाली प्रेमी ललनाएं आकर तुमको (श्री कृष्ण को) एकैक करके अपने अपने गोद में लेकर पूछती हैं कि "हे मेरा नाथ ! हे मेरा कुलप्रदीप ! हे पानी पीकर उगनेवाले नीलमेघवृंद का समान श्यामसुंदर ! हे वृषभका सदृश ! तुम्हारे पिताजी कौन है ? बताओ !" तब तुमने अपनी सुकोमल लाल उंगुली से एवं मनोहर कटाक्षवीक्षण से जो पिताकी ओर इशारा किया, उस भाग्य को महात्मा नंदगोप ने पाया ; भाग्यहीन मेरे पति वसुदेव ने तो नहीं पाया ॥

यह तो एक साधारण लोकव्यवहार है कि जब किसी के वहां एक बचा पैदा हो जाय, तब उस गाँव में रहनेवाली सभी नातवाली एवं प्रेमवाली औरतें उधर आकर बचेको उठाकर अपने अपने गोद में बिठाकर, आलिंगन चुंबन आदि से प्यार करती हुई, मीठी मीठी बातों से उससे नाना प्रकार के प्रश्न करती हैं। उनमें से यह एक मुख्य प्रश्न है कि "तुम्हारा बाप कौन है, किधर है ?" इत्यादि। परंतु उस दशा में वह शिशु बात करने में अशक्त होकर, अपनी उंगुली से अथवा आँखों से पिताकी ओर इशारा करता है। बचे की यह चतुराई देखकर सब लोग, और उनमें से भी पिता सीमातीत आनंद पाते हैं। अब इस गाथा में देवकी जी रो रोकर कहती हैं कि, जब बालकृष्ण से ऐसा प्रश्न पूछा जाता, तो वह पिता होनेपर भी अपरिचित वसुदेव की ओर किस तरह से इशारा कर सकेगा ? कभी न कर सकेगा। परंतु लालन करनेवाले नंदगोप जी को अपना पिता बतावेगा। यशोदा के पति होने से उनको यह भाग्य मिला ; और भाग्यहीन मेरे पति होने से वसुदेव जी इस भाग्य को खो बैठे ॥ .... (३)

(गाथा.) कळिनिलावेळिल्मदिपुरैमुहमुम् कण्णनेतिण्कैमार्वुन्तिण्डोळुम् *
तळिर्मलर्क्करुङ्गुळल्पिरैयदुवुम् तडङ्गोळ्तामरैक्कण्गळुम्पोलिन्द *
इळमैयिन्बत्तैयिन्नेन्तन्कण्णाल् परुहुवेर्किंवळ्तायेननिनैन्द *
अळविल्पिळ्ळैमैयिन्बत्तैयिळन्द पावियेनेनदाविनिल्लादे ॥ ४ ॥

[यौवनदशा में श्री कृष्णके दर्शन करनेवाली देवकी जी उनसे कहती हैं कि—] हे कृष्ण ! सबको आनंदित करनेवाली चांदनी से युक्त पूर्णचंद्र के सदृश सुंदर मुख, सुदृढ (यानी बलाढ्य) हाथ, श्रीवक्ष, बलवान भुज, सुगंध व सुंदर केशपाश, अष्टमीचंद्र का समान मुख, विशाल कमल सदृश नयन, इन सबसे युक्त तुम्हारी परमभोग्य यौवनावस्था की भोग्यता को अब अपने नेत्रों से पीने की तरह परमानंद से देखनेवाली मैं, मुझको यों मानने लायक कि, "यह मेरी माता है" तुम्हारी उस शोभन बाल्यावस्था के सीमातीत आनंद को नहीं पा सकी; ऐसी हतभागिनी मैं किस तरह से जीवित रह सकूंगी ? .... (४)

(गाथा.) मरुवुनिन्‌तिरुनेत्तियिल्च्चुट्टियशैदर मणिवायिडैमुत्तम्
तरुदलुम् * उन्तन्‌तादैयैप्पोलुम्वडिवुकण्डुकोण्डु उळ्ळमुळ्कुळिर *
विरलैच्चेञ्जिरुवायिडैच्चेर्त्तु वेहुळियायूनिन्नुरैक्कुमव्वुरैयुम् *
तिरुविलेनोन्नुम्पेत्तिलेन् एल्लान्तेय्वनङ्गैयशोदैपेत्ताळे ॥ ५ ॥

हे कृष्ण! ललाटपर लटकनेवाली ललाटिका को हिलाते हुवे, तुमसे अपने सुंदर मुख से दिये जानेवाले चुंबन को लेना, पिताके सदृश तुम्हारे दिव्य विग्रह को देखती हुई असीम हार्द आनंद को पाना, अपनी उंगुलियों को सुंदर छोटे मुँह में रखकर, गुस्से में आकर तुमने मधुर तोतेली बातों से जो कहा, उसको सुनना, इत्यादि में किसी को भाग्यशून्य मैं ने नहीं मिल पाया; "देवता स्त्री" कहलाने लायक यशोदा ने ही इन सब भाग्य को पाया ॥ .... (५)

(गाथा.) तण्णन्तामरैक्कण्णनेकण्णा तवळ्न्देळुन्दुतळर्न्ददोर्नडैयाल् *
मण्णिल्च्चेम्बोडियाडिवन्दु एन्दन्मार्विनिल्मन्निडप्पेत्तिलेनन्दो *
वण्णच्चेञ्जिरुकैविरलनैत्तुम् वारिवायूक्कोण्डवडिशिलिन्मिचिल् *
उण्णप्पेत्तिलेन् ओकोडुविनैयेन् एन्नैयेन्शेय्यप्पेत्तदेम्मोये ॥ ६ ॥

सुशीतल व सुमनोहर कमल के सदृश नेत्रवाला हे कृष्ण! तुम रींगता हुआ, उठकर, धीरे धीरे स्खलित गति से चलकर, लाल धूली में खेलकर, उस मनोहर रूप के साथ मेरे पास आकर, मेरे वक्ष का आलिंगन करें, इस महाभाग्य को मैं ने नहीं पाया; हाय! यह कैसा दौर्भाग्य है? और, तुम लाल, सुंदर, छोटी अपनी समस्त उंगुलियों से उठाकर पाने के बाद बचे हुवे उस अन्न को पाने के भाग्य को भी मैं ने नहीं पाया। मैं इन सब आनंदों को खो जानेवाली पापिनी बन गयी। हाय! मेरी माता ने क्यों कर मेरा जन्म दिया? .... (६)

(गाथा.) कुळहनेयेन्‌तन्कोमळप्पिळ्ळाय् गोविन्दावेन्कुडङ्गैयिल्मन्नि *
ओळुहुपेरेलिलिळञ्जिरुतळिर्पोल्व ओरुकैयालोरुमुलैमुहमूनेरुडा *
मळलैमेन्नहैयिडैयिडैयरुळा वायिलेमुलैयिरुक्कवेन्मुहत्ते *
एलिल्कोळ्निन्‌तिरुक्कण्णिणैनोक्कन्तनैयुम् इळन्देनिळन्देने ॥ ७ ॥

हे सब से मिलने का स्वभाववाला! (यानी हे सौलभ्य नामक गुणवाला!) हे मेरा कोमल पुत्र, गोविन्द! (अगर तुम व्रज न जाकर मेरे यहाँ ही ठहर जाता, तो) तुम मेरे हाथ में आराम से सोते हुवे, परमसुंदर व सुकोमल एवं पल्लव के सदृश एक छोटे हाथ से मेरे एक स्तन के चूचुक को दबाते हुवे, दूसरे स्तन को अपने मुख में रखकर, (दूध पीते हुवे) बीच बीच में मेरा मुख देखकर मंदहास करते हुवे मनोहर तुम्हारे दोनों नयनों से मेरे ऊपर कटाक्ष डाला करते। इस दृश्य को भी पापिनी मैं ने खो दिया ॥...(७)

(गाथा.) मुळुदुम्वेण्णेयळैन्दुतोट्टुण्णुम् मुहिलिळञ्जिरुत्तामरैकैयुम् *
एळिल्कोळ्ताम्बुकोण्डडिप्पदर्केळ्हुनिलैयुम् वेणूतयिर्तोयुन्दशेव्वायुम् *
अळुहैयुमञ्जिनोक्कुमन्नोक्कुम् अणिकोळ्शेञ्जिरुवायूनेळिप्पदुवुम् *
तोळुकैयुमिवैकण्डयशोदै तोलैयिन्बत्तिरुदिकण्डाळे ॥ ८ ॥

भांड में रहनेवाले मक्खन सब को हाथ से छूते हुवे, फिर उठाकर खानेवाले (तुम्हारे) कोमल पल्लव व कमलपुष्प के सदृश हाथ को, (इस चोरी को देखने से कुपित माता), जब पीटने के लिए रस्सी उठाती है, तब उससे डरनेवाले तुम्हारी दशा को, सफेद दही से विलिप्त लाल मुंह को, रोदन को, भयसूचक कटाक्षवीक्षण को, सुंदर व लाल छोटे होंठ के चलन को, एवं अंजलि को, (तथाच इन सब तुम्हारी अवस्थाओं को) साक्षात् देख लेनेवाली यशोदा ने परमानंद के सीमा को देख लिया ॥

यह गाथा रसिक भक्तों के लिए परमभोग्य है। मक्खन चोरी की लीला का अनुभव करते करते भक्त लोग आनंद के परवश हो जाते हैं। इसका साक्षात्कार पानेवाले ही ठीक वर्णन कर सकते हैं। देवकीजी ने तो इसका साक्षात्कार न पाया; तथा आळ्वारने भी। फिर यह अद्भुतवाणी किसके मुखसे निकल रही है? सुनिए। दिव्यसूरियों का यह विशेष है कि वे भगवान की विशेष कृपा के फलतया, आपके स्वरूप रूप गुण विभव ऐश्वर्य चेष्टितों का ठीक साक्षात्कार कर लेते हैं। ऐसा साक्षात्कार पाने से ही वे आळ्वार बन गये और मीठे मीठे दिव्यप्रबंधों के रचयिता बने। अतः सुदृढ जान लेना चाहिए कि श्रीकुलशेखर आळ्वार ने भी भगवान की समस्त लीलाओं के प्रत्यक्ष दर्शन पाये हैं। अतः ऐसा समझना चाहिए कि आळ्वार स्वयं अपने से अनुभूत इस दिव्य लीला का, देवकी जी के मुख से वर्णन कर रहे हैं। मक्खन चोरी के समय में बालकृष्ण से जो जो लीला की गई, उन सब का अतिमनोहर वर्णन इस गाथा में किया जाता है। तथाहि—मक्खन में सीमातीत प्रेम रखनेवाला बालकृष्ण, एकदम घडे में रहनेवाले सब मक्खन को नहीं खा डालना चाहता है; तो भी यह जानने की उसकी आशा होती है कि भांड में कितना मक्खन है। अतः घडे के अंदर अपना पूरा हाथ घुसाकर पूरे मक्खन को अपने हाथसे छू छू कर, उसको नापने की चेष्टा करता हैं। फिर, थोडा थोडा उठाकर मुँह में डालता है। उतने में पास ही दही का पात्र दीखता हैं। तब वह उसमें से उठाकर थोडा दही पीता है। फिर इस चोरी को छिपा देने की भावना से हाथ में लगे रहनेवाले दही को मुँह में पोंछ लेता है। उतने में माता यशोदाजी एकदम उधर आ जाती हैं, और इस चौर्य को देख कर कुपित होकर, हाथ में रस्सी लेती हुई कृष्ण को पकडना चाहती हैं। तब वह नकली भय का अभिनय करते हुवे रोने लगता है। परंतु इतने मात्र से माताजी उसको नहीं छोडना चाहती हैं; यों कहती हुई कि, "अरे दुष्ट! चोरी कर, विना कारण क्या तुम रोने भी लगा?" वे उसको डराती है। इससे उसका भय और बढ जाता है और वह बडी आवाज से रोने की चेष्टा करता है। परंतु भयके मारे उसके कंठ से आवाज निकलती नहीं; केवल होठ ही चलता है। इतने में भी माता शांत न हुई। अतः वह एकदम अंजलि करता है। अंजलि का यह भाव है—"माताजी! अबके लिए मेरी क्षमा कर दो; फिर कभी भी मैं ऐसा न करूंगा।" कृष्ण का यह अनुभव है कि अति

प्रबल पाप करनेवाले भी लोग अंजलि करने मात्र से, अपने से (यानी भगवान से) छुटकारा पा लेते हैं। अतः स्वयं भी माता के प्रति उसी उपाय का प्रयोग करता है। इस दृश्यको देखने से यशोदाजी परवश चित्त होकर ब्रह्मानंद के सीमा में विहार करने लगती हैं। अब देवकी जी, इस गाथा से, उक्त विलक्षण आनंदानुभव करने के भाग्यसे उपवंचित अपने दौर्भाग्य का स्मरण करती हुई रोती हैं। वस्तुगत्या ऐसे महाभाग्य को खोनेवाले हमको भी रोना आवश्यक होना, अगर दिव्यसूरियों की ऐसे प्रकरणों का वर्णन करनेवाली श्री सूक्तियाँ न मिल पाती। परंतु भगवान की और आळ्वारों की असीम कृपासे परमविलक्षण दिव्यसूक्तियों का अनुभव मिल जानेसे, उतने से कुछ संतुष्ट अथवा संतृप्त होना शक्य है। भगवान की इस मक्खन चोरी लीला का स्मरण करते ही आळ्वार गण परवशचित्त होकर पानी पानी बन जाते हैं। श्री शठकोपसूरि तो छः मास तक मूर्छित पडे रहे। भगवान के सौलभ्य सौशील्य नामक गुणों को ठीक समझना, और अनुभव करना, यही आळ्वारों का विशेष है ॥ .... (८)

(गाथा.) कुन्निनाल्कुडैकवित्तदुम् कोलकुरवैकोत्तदुङ्कुडमाडुम् *

कन्निनाल्विळवेरिन्ददुम् कालाल्कालियन्तलैमिदित्तदुम्मुदला *

वेन्निशेर्पिळ्ळैनल्विळैयाट्टमनैत्तिलुम् अङ्गोरुळ्ळवुल्कुळिर *

ओन्नुङ्कण्डिप्पेत्तिलेनडियेन् काणुमारिनियुण्डेनिलरुळे ॥ ९ ॥

गोवर्धन पर्वत को छत्र के रूप में धारण करना, अति मनोहर रासक्रीडा चलाना, कुंभनर्तन करना, बछडे के रूप में आनेवाले एक असुरसे (असुराविष्ट दूसरे एक पेड से) कपित्थ फल को गिराना, पैरों से कालिय नाग के सिरको दवाना, इत्यादि तुम्हारी विजयशालिनी, परमविलक्षण बाललीलाओं के बीचमें से किसी एकको भी मैं ने उस समय में देखकर आनंद नहीं पाया। अगर मैं अभी भी उन लीलाओं को किसी उपाय से देख पा सकूंगी, तो कृपया वह उपाय बताओ ॥

श्री कृष्ण के अतिमानुष वैभव को ठीक जान कर देवकी जी उनसे अपनी बाललीलाओं को बता देने की प्रार्थना करती हैं। अर्जुन को विश्वरूप दिखानेवाले, एवं सांदीपिनिपुत्र को मृत्युलोकसे लौटानेवाले श्रीकृष्ण अपनी माता की इस प्रार्थना को भी जरूर सफल बना सकते हैं। सुना जाता है कि आपने ऐसा किया भी ॥ .... (९)

(गाथा.) वञ्जमेवियनेञ्जुडैप्पेय्च्चि वरण्डुनार्नरम्बेळकरिन्दुक *

नञ्जमार्तरुशुळिमुलैयन्दो शुवैत्तुनीयरुळ्शेय्दुवळन्दाय् *

कञ्जनाळ्कवर्करुमुहिलेन्दाय् कडैप्पट्टेन्वेरिदेमुलैशुमन्दु *

तञ्जमेलोन्निलेनुयुन्दिरुन्देन् तक्कदेनल्लतायैप्पेत्ताये ॥ १० ॥

कपटपूर्ण मनवाली पिशाची पूतना के शरीर को सुखाकर अंदर के रक्त मांस आदियों को बाहर निकालता हुआ, और नसों को भी विकृत कर गिरा देता हुआ, उसके विषलिप्त कपटमय स्तनों को चूसकर भी तुम, अहो! मेरे ऊपर कृपा करते हुवे जीवित रहे हो। हे कंस के आयु का अपहरण करनेवाला,

नील मेघ का सदृश, मेरा नाथ! मैं तो व्यर्थ ही इन स्तनों को ढोती हुई पापियों से भी पापिनी बन गयी हूं। तुमको छोडकर मेरी दूसरी कोई गति नहीं है। किसी समय में तुम्हारे दर्शन पाने की प्रतीक्षा से ही मैं अभी तक जीवित रही हूं। ओह! तुमने अच्छी माता को पाया ॥

कंस को मारनेवाला कालमेघ कहने का यह मतलब है कि जैसा मेघ पानी देकर समस्त सस्यों का पोषण करने पर भी अर्कवृक्ष का नाश कर देता है; इसी तरह से सब की रक्षा करनेवाले श्री कृष्ण भगवान ही दुर्दैव से कंस के संहारक वन गये। इस विषय में यह कविवचन अनुसंधेय है—त्वयि वर्षति पर्जन्ये सर्वे पल्लविता द्रुमाः। अस्माक मर्कवृक्षाणां पूर्वपत्रेषु संशयः॥ इसका यह तात्पर्य है—अर्कवृक्ष मेघ को संबोधित कर उससे कहता है कि, "हे मेघराज! आपके खूब पानी बरसने पर दूसरे सब पेड ठीक पल्लवित हो गये; परंतु हमारा दौर्भाग्य इतना प्रबल है कि पानी पडने पर हमारे पुराने पत्ते भी नीचे गिर गये।" "तुमने अच्छी माता को पाया" इसका यह तात्पर्य है––तुम को अपना स्तन्य पिलाने की आशा से मैं इधर बैठी थी; उधर तुम्हारी राह देखती यशोदाजी विराजमान थीं। परंतु तुम हम दोनों को छोडकर पूतना के विष लगाये हुवे स्तन पीने के लिए दौडा। यह कैसा काम है। विष पीकर भी तुम इस लिए जिंदा हो, कि तुमने अपनी असीम कृपा से मुझको अपने दिव्यदर्शन देने के लिए जीवित रहने का संकल्प कर दिया ॥ .... (१०)

(गाथा.) मल्लैमानगर्क्किरैयवन्तन्नै वान्शेलुत्तिवन्दीङ्गणैमायत्तु *
एल्लैयिल्पिळ्ळैशेय्वनकाणा दैवत्तेवकिपुलम्बियपुलम्बल् *
कोल्लिकावलन्मालडिमुडिमेल् कोलमाङ्कुलशेखरन्शोन्न *
नल्लिशैत्तमिळ्मालैवल्लार्हल् नण्णुवारोल्लैनारणनुलहे ॥ ११ ॥

ऐश्वर्य समृद्ध मथुरा महानगरी के राजा कंस को वीरस्वर्ग भेजकर [यानी मारकर], अपने पास आनेवाले श्रीकृष्ण के अत्यद्भुत दिव्य बाल चेष्टितों को उसी समय में देखने नहीं पानेवाली देवकी देवी के प्रलापमय वचनों का वर्णन करनेवाली, कोल्लिनगर के स्वामी, भगवत्पादारविंदों का ही अपने शिरोभूषणतया धारण करनेवाले कुलशेखर से गीत, मनोहररागवाली इस द्राविडगीतमाला का अध्ययन करनेवाले शीघ्र ही श्रीमन्नारायण का लोक श्री वैकुंठधाम पहुंचेंगे (इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया ॥) .... (११)

—* इस दशक का सार संग्राहक पद्य यह है *—

श्लो॥ देवक्या आत्मजस्सन्नधिमथुरमिहाविर्भवन् वासुदेवः
तस्माद्देशाच्चदैव व्रजभुवमुपयन् नन्दजायां यशोदाम्।
पूर्णानन्दाब्धिमग्नां व्यथित हि तदिदं देवकी चिन्तयन्ती
यद्यत्प्रोच्य प्रलापानकुरुत तदुशन् सूरिराश्चर्यसूक्तिः ॥

भगवान श्री कृष्णने मथुरापुरी में देवकीजी के पुत्र के रूप में अवतार लेने पर भी, उसी समय में वहां से व्रज पधारकर, उधर नंदगोपजी की पत्नी यशोदाजी को (अपनी लीलाओं से) अत्यंत आनंदित जो वना दिया, इसका चिंतन करती हुई देवकी जी ने रोती रोती जिन वचन कहे, उनका अनुवाद करनेवाले श्री कुलशेखरसूरि की वाणी अत्याश्चर्यमय है ॥ .... (७)

॥ पेरुमाळ् तिरुमोळि में सातवां दशक समाप्त हुआ ॥

॥ कुलशेखर आळ्वार तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ पेरुमाळ् तिरुमोळि–आठवां दशक—मन्नुपुहळ् कौसलैतन् ॥

(श्री कौसल्याजी से गीत डोलागीत)

अवतारिका—श्री कृष्ण को जन्म देने के भाग्य को प्राप्त करनेपर भी उनका पालन पोषण इत्यादि कर, उनकी बाललीलाओं के दर्शन करने के भाग्य से वंचित भाग्यहीन देवकी जी का प्रलाप पूर्व दशक में उपवर्णित किया गया। इससे आळ्वार को भाग्यवती कौसल्या देवी की याद आयी। आप तो सचमुच पूर्णभाग्यशालिनी ठहरी। श्रीरामचंद्र भगवान को आपने जन्म भी दिया; उनका पालन पोषण आदि भी किया; उनकी समस्त लीलाओं के दर्शन भी किये। अतः उनके मनोहर अनुभवों के बीच में से किसी एक का इस दशक में वर्णन करनेकी आळ्वार की इच्छा हुई। श्रीरामचंद्र भगवान के समस्त चरित्रों का परिपूर्ण वर्णन करने के दृढसंकल्प के साथ वैठकर श्रीरामायण लिखनेवाले श्रीवाल्मीकी जी ने एक बडी भूल की। श्रीरामचंद्रजी के असंख्य बाल्यचेष्टितों में आपने किसी एक का भी वर्णन नहीं किया; सब को एकदम छोड कर विश्वामित्रयागरक्षण से ही शुरू किया। तथाहि-जिस सर्ग में (बालकांड १८-सर्ग) श्रीरामावतार का वर्णन हुआ, उसी में, दस पंद्रह पद्यों में समस्तबाललीलाओं को समाप्त कर विश्वामित्रागमन का आपने वर्णन कर डाला। इसको एक बडी न्यूनता मानकर श्रीकुलशेखर आळ्वार, अब इस दशक में श्रीरामचंद्रजी की एक बाल्यलीला का वर्णन करते हैं। शिशुको झूले में सुआकर, कौसल्यादेवीने विविध मनोहर गीतों को गाती हुई जो अपने को धन्य बनाया, इस वृत्तांत का, उनकी भावनाधारी होकर आळ्वार इस दशक में गान कर स्वयं धन्य एवं ब्रह्मानंदभाजन बनते हैं। यह अनुभव आळ्वार को तिरुक्कण्णपुर नामक दिव्यदेश के स्वामी शौरिराज भगवान के विषय में चलता है। यह अर्थ पूर्व ही वताया गया है कि दिव्यसूरियों भगवान के अन्यरूपों की चेष्टाओं को प्रायः दिव्यदेशस्थ अर्चा मूर्ति के विषय में ही अनुसंधान करते हैं। यही इनका विशेष है, जो इतिहास पुराणादि में, अथवा दूसरे भक्तों की वाणी में नहीं मिल सकेगा।

चोलदेश में, जिसका प्रधान क्षेत्र श्रीरंग है, श्री कृष्णक्षेत्रत्वेन प्रसिद्ध तीन दिव्यदेश रहते हैं—(१) तिरुक्कण्णमङ्गै, (२) तिरुक्कण्णपुरम् और, (३) तिरुक्कण्णङ्गुडि। इनमें से पहला और तीसरा क्षेत्र केवल परकालसूरि की स्तुति का लक्ष्य हैं; दूसरा तिरुक्कण्णपुर तो श्रीपरांकुश भट्टनाथगोदादेवी इत्यादि अनेक दिव्यसूरियों से परमभोग्य श्रीसूक्तियों से संस्तुत है। श्रीविष्णुसहस्रनाम में "शौरि" नाम का भाष्य

लिखते हुवे भगवद्गुणदर्पण नामक अपने ग्रंथ में श्री पराशरभट्टार्यखामीजी इस दिव्यदेश के स्वामी श्री शौरिराज भगवानको ही उक्त नाम का विषय बताते हैं। और आपका एक पुराणप्रसिद्ध ध्यान श्लोक भी प्रसिद्ध हैं— उत्पलावदके दिव्ये विमाने पुष्करेक्षणम्। शौरिराजमहं वन्दे सदा सर्वाङ्गसुंदरम् ॥" इस प्रकार से सबसे प्रशस्यमान शौरिराज भगवान को ही श्रीरामचंद्र शिशु मानकर, आपके ही डोलाशयन का ध्यान कर, कौसल्या वेष का भी धारण कर, हाल में आळ्वार इस दशक की रचना कर रहे हैं ॥ *

(गाथा.) मन्नुपुहळ्कौसलैतन् मणिवयिरुवायूत्तवने * तेन्निलङ्गैकोन्मुडिहळ् शिन्दुवित्तायुशेम्बोन्शेर् *
कन्निनन्मामदिळ्पुडैशूळ् कणपुरत्तेन्करुमणिये * एन्नुडैयविन्नमुदे राघवने तालेलो ॥ १ ॥

हे शाश्वत बडी कीर्तिवाली कौसल्या देवी के पेट में से अवतीर्ण! हे दक्षिणदिशास्थ लंकानगरी के राजा रावण के दस सिरों को भी काटकर नीचे गिरानेवाले! शुद्ध सोने से विनिर्मित, विलक्षण, बडे कोटों से चारों ओर परिवृत तिरुक्कण्णपुर के स्वामी, हे नीलरत्न मणि समान मेरे स्वामिन्! हे मेरे परम भोग्य अमृतस्वरूपिन्! श्री राघव! मेरी यह गीत सुनो, डोले में सुखनिद्रा करो ॥

द्राविडी में "तालेलो" यह एक सांकेतिक शब्द है। इसका तात्पर्य हैं—आराम से निद्रा करो। कौसल्या की वाणी में कौसल्या नाम आ जाना कुछ अखरस मालुम पडेगा। इस लिए वहां, "कौसल्यानामक मेरे पेट में से" ऐसा अर्थ करना उचित होगा। वस्तुतस्तु, इस अर्थकी सूचना देने के लिए कि "यह कौसल्या का वचन है," आळ्वार आपका नाम ले रहे हैं। अथवा, पूर्वोक्त रीति से इस गीत में कौसल्याजी की भावना के साथ, आळ्वार की निजी भावना भी मिल गयी है। अतः प्रकृत गाथा के पहले पाद को खुद आळ्वार की वाणी मान लेना उचित होगा। यह तो स्पष्ट है कि कौसल्यादेवी डोलागीत गाने के समय में, न तो रावण वधवृत्तांत जानती थीं, नवा तिरुक्कण्णपुर में विराजने का अंश। ये दोनों आळ्वार की निजी भावना से कथित हैं। इसी तरह से पहले पाद को उपपन्न मानना कठिन नहीं है। और इस दशक में आळ्वार कहीं यों स्पष्ट नहीं कहते हैं कि मैं कौसल्यादेवी के वचन का अनुवाद कर रहा हूं। अतः इसका अर्थ यह भी होगा कि आळ्वार इसको अपनी निजी वाणी से ही गा रहे हैं। तथापि पूर्वाचार्य इस लिए इसको अनुवाद मानते हैं, कि दिव्यप्रबंधों में ऐसे वचन प्रायः दूसरों की वाणी का अनुवाद रूप ही होते हैं। नहि कुलशेखर आळ्वारने स्वयं श्रीराम शिशु को डोलागीत सुनाने के भाग्य को कभी पाया। अतः कौसल्या के वेष का स्वयं धारण कर उनकी वाणी से यह गीत गाना आवश्यक है। कैसा भी हो। इस दशक में उपवर्णित सभी कथाएं प्रायः कौसल्यादेवी को अविदित ही रहती हैं। अतः ये सब स्पष्ट ही आळ्वार की निजी भावना से गीत हैं। कौसल्या वेष तो भूमिका रचने मात्रमें उपयुक्त है। वादका अनुभव आळ्वार का है ॥ .... (१)

(गाथा.) पुण्डरिकमलरदन्मेल् भुवनियेल्लाम्पडैत्तवने * तिण्डिरलाळ्ताटकैतन् उरमुरुवविलेत्तळैत्ताय् *
कण्डवर्तम्मनम्वळङ्गुम् कणपुरत्तेन्करुमणिये * एण्डिशैयुमाळुडैयाय् राघवने तालेलो ॥ २ ॥

हे (अपने नाभी में उगे हुवे) कमलपुष्प में (चतुर्मुख ब्रह्मा को पैदाकर, उनके द्वारा) सकल लोकों की सृष्टि करनेवाले! हे मंडलीकृत अपने धनुषसे सुदृढ पराक्रमयुक्त ताटका के वक्ष को चीर डालने समर्थ बाणों को छोडनेवाले! हे अपने दर्शन करनेवालों के मन का अपहरण करनेवाले तिरुक्कण्णपुर के स्वामी नीलरत्न सदृश मेरे नाथ! हे आठों दिशाओं में रहनेवालों के स्वामिन्! (यानी हे सर्वशेषिन्!) हे श्रीराघव! मेरी गीत सुनते डोले में सुखनिद्रा करो ॥ .... (२)

(गाथा.) कोङ्गुमलिकुरुङ्गुळलाळ् कौशलैतन्कुलमदलाय् * तङ्गुपेरुम्पुहळ्जनकन् तिरुमरुहादाशरथी *
गङ्गैयिलुम्तीर्थमलि कणपुरत्तेन्करुमणियये * एङ्गळ्कुलत्तिन्नमुदे इराघवने तालेलो ॥ ३ ॥

हे परिमलयुक्त केशपाशवाली कौसल्या नामक मेरे पुत्ररत्न! हे नित्य श्रेष्ठ कीर्तिवाले जनक चक्रवर्ति के जमाई! हे दशरथात्मज! हे गंगाजी से भी पवित्रतर अनेक तीर्थों से परिवृत तिरुक्कण्णपुरके स्वामिन् नीलरत्न सदृश, मेरे नाथ! हे हमारे समग्रराजवंश के लिए अमृतवत् परमभोग्य रहनेवाले! श्री राघव! मेरी गीत सुनते डोले में सुखनिद्रा करो ॥ .... (३)

(गाथा.) तामरैमेलयनवनै प्पडैत्तवने * दशरथन्तन् मामदलाय् मैथिलितन्मणवाळा * वण्डिनङ्गळ्
कामरङ्गळिशैपाडुम् कणपुरत्तेन्करुमणिये * एमरुवुम्शिलैवलवा इराघवने तालेलो ॥ ४ ॥

हे कमलपुष्प में ब्रह्माजी को उत्पन्न करानेवाले! हे दशरथ चक्रवर्ती के ज्येष्ठ पुत्र! हे मैथिली-प्राणनाथ! हे भ्रमरगीतनिनादित तिरुक्कण्णपुर के स्वामी नीलरत्न सदृश मेरे नाथ! हे बाण सहित धनुष के धारिन् श्रीराघव! मेरी गीत सुनते डोले में सुखनिद्रा करो ॥ .... (४)

(गाथा.) पाराळुम्पडर्शेल्वम् भरतनम्बिक्केयरुळि * आरावन्बिलैयवनोडु अरुङ्कानमडैन्दवने *
शीराळुम्वरैमार्बा तिरुक्कण्णपुरत्तरशे * ताराळुन्नीण्मुडि एन् दाशरथी तालेलो ॥ ५ ॥

हे समग्र भूमंडलाधिपत्यरूप बडे ऐश्वर्य को भरतजी का अधीन बनाकर, परिपूर्ण भक्तिरूप परम प्रेमालंकृत लघु भाई लक्ष्मणजी के साथ गहन अटवी की ओर चलनेवाले! हे वीरलक्ष्मी का नित्यनिवासस्थान पर्वतसदृश वक्षसे सुशोभित! हे तिरुक्कण्णपुर के स्वामिन्! हे (सर्वरक्षण दीक्षितत्व का सूचक) मालालंकृत दिव्य किरीट धारिन्! मेरे स्वामिन्! हे दाशरथि! मेरी गीत सुनते डोले में सुखनिद्रा करो ॥ .... (५)

(गाथा.) शुत्तमेल्लाम्पिन्तोडर त्तोल्कानमडैन्दवने * अत्तवर्हट्करुमरुन्दे अयोत्तिनहर्क्कधिपतिये *
कत्तवर्हळ्ताम्वालुम् कणपुरत्तेन्करुमणिये * शित्तवैतन्शोर्कोण्ड श्रीरामा तालेलो ॥ ६ ॥

हे अपने पीछे पीछे आनेवाले बंधु मित्रादि समस्त पौरवर्ग के साथ पुरातन दंडकारण्य पधारनेवाले! हे अपने ही शेषभूत (अर्थात् परमैकान्ति) के लिए कल्याण कारक दिव्य औषध के समान हितैषिन्! हे अयोध्या नगर के राजा! हे ज्ञानियों के निवासस्थान तिरुक्कण्णपुरके स्वामी, नीलमणिसदृश मेरे नाथ! हे अपनी मासी कैकेयी के वचन को माननेवाले श्रीराम! मेरी गीत सुनते डोले में सुखनिद्रा करो ॥

इस गाथा के दूसरे पाद में परमैकान्ति शब्द से, शरभंगाश्रमस्थ महर्षिलोग सूचित किये जाते हैं; जिन्होने भगवान से यों प्रार्थना की कि, सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान्। त्वन्नाथोऽनाथवद्राम! राक्षसैर्हन्यते भृशम्॥ एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम्। हतानां राक्षसैर्घोरैः बहूनां बहुधा वने॥ इत्यादि। [यहां रहनेवाले वानप्रस्थ ब्राह्मणों का यह बडा समाज, अपने नाथ, आपके विराजमान होते हुवे ही, अनाथ की तरह राक्षसों से बहुत पीडित हो रहा है। वन में नानाप्रकारों से संपीडित हम मुनियों के शरीर को जरा देखिए तो सही।] श्री रामचंद्रजी ने इनको अभय दे दिया, और तदनुगुणतया उनकी रक्षा भी की। इसी प्रकरण में सीताजी से आपका यह प्रसिद्ध संवाद हुआ कि "अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्। नतु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥" [हे सीते! मैं भला ही अपनी जान छोडूं, प्राणेभ्योऽपि गरीयसी तुमको छोडूं, अथवा तुमसे प्रियतर लक्ष्मण को भी छोडूं; नतु कथंचिदपि भक्तजन संरक्षण प्रतिज्ञा छोड सकूंगा॥] .... (६)

(गाथा.) आलिनिलैप्पालहनाय् अन्रुलहमुण्डवने * वालियैकोन्ररशु इळैयवानरर्कुअळित्तवने *
कालिन्मणिकरैयलैक्कुम् कणपुरत्तेन्करुमणिये * आलिनहर्क्कधिपतिये अयोत्तिमनेतालेलो॥७॥

हे पूर्वकाल में, जब कि महाप्रलय आ गया तब, वटपत्र पर एक बच्चे का रूप लेकर, तीनों लोकों को अपने पेट में रखकर उनकी रक्षा करनेवाले! हे वाली का संहार कर उसके भाई सुग्रीव को किष्किधाराज्य देनेवाले! हे प्रवाह में आनेवाले रत्नों को तटपर विखरनेवाले तिरुक्कण्णपुर के स्वामी, नीलमणि सदृश मेरे नाथ! हे तिरुवालि तिरुनगरी नामक दिव्यदेशके स्वामिन्! हे अयोध्याधिपते! मेरी गीत सुनते सुखनिद्रा करो॥

तिरुक्कण्णपुरमें कावेरी के बडे नहर वहते हैं, जिनमें अनेक रत्न रहते हैं, जो तभी तभी तटपर आ जाते हैं। तिरुवालि तिरुनगरी—यह चोलदेश के अंतर्गत एक प्रसिद्ध दिव्यदेश है, जहां पर श्री परकालसूरी का अवतार हुआ॥ .... (७)

(गाथा.) मलैयदनालणैकट्टि मदिळिलङ्कैयळित्तवने * अलैकडलैक्कडैन्दु अमरर्क्कमुदरुळिचेय्दवने *
कलैवलवर्तामुवाळुम् कणपुरत्तेन्करुमणिये * शिलैवलवाशेवहने श्रीरामातालेलो॥८॥

हे पहाडों से समुद्र पर पुल बांधकर, कोटों से परिवृत लंकापुरी का ध्वंस करनेवाले! लहरों से समावृत (क्षीर) समुद्र का मथन कर, उससे निकालकर देवों के लिए अमृत देनेवाले! हे सकलकला निष्णात विद्वज्जन संसेवित तिरुक्कण्णपुर में विराजमान नीलमणिसदृश मेरे नाथ! हे (शार्ङ्गनामक) धनुष के चलाने में प्रवीण! हे वीराग्रेसर! हे श्रीराम! मेरी गीत सुनते सुखनिद्रा करो॥

रामावतार चरित्र का वर्णन करते हुवे, बीच में समुद्रमथन वृतांत का अनुसंधान करना एक विलक्षण काम है। समुद्रपर सेतुबंधन का उल्लेख करने पर आळ्वारों को समुद्रमथन चरित्र की याद आती है। दोनों भगवान के अतिमानुष चेष्टित हैं। इसके उपरांत दोनों में भगवान का आश्रितपक्षपात सूचित किया जाता है। आळ्वारों का यह भी अभिप्राय है कि ये दोनों काम लक्ष्मीप्राप्ति के लिए भगवान से

किये गये। यद्यपि ऊपर की कथा पढनेवाले मानते हैं कि भगवान ने देवताओं को अमृत पिलाने के उद्देश्य से ही क्षीरसागर का मथन किया। परंतु मर्मज्ञ आळ्वारों के भाव से भगवान की लक्ष्मीप्राप्ति ही इस कार्य का प्रधान फल है, और अमृत पिलाना बिलकुल अप्रधान है। अत एव श्री पराशरभट्टर स्वामीजी ने भी अनुगृहीत किया, "उन्मूल्याहर मंदराद्रि महिना तं संबधानामुना" (श्री रंगराजस्तव, उ० ८८), और "स्खलितकटकमाल्यै र्दोर्भिरब्धिं मुरारेः" (श्रीगुणरत्नकोश ४९.) इत्यादि। अथवा, यों कहने पर भी कि, देवताओं के लिए ही भगवान ने सागर का बंधन और मथन किया, आपका आश्रित पक्षपात प्रकाशित होता है। कैसा भी हो। उक्त दोनों काम एक लक्ष्य तो हो गये। अतः एकके अनुसंधान करने पर दूसरे का स्मरण होना अनिवार्य हुआ। प्रसंगात् स्मरण में आनेवाले भगवच्चरित्रों का भी वर्णन कर देना आळ्वारों का स्वभाव है॥ .... (९)

(गाथा.) तळैयविळ्ळ्नरुङ्कुञ्जि दशरथन्तन्कुलमदलाय् * वळैयवोरुशिलैयदनाल् मदिळिलङ्गैयळित्तवने *
कळैकळुनीर्मरुङ्गलरुम् कणपुरत्तेन्करुमणिये * इळैयवर्हट्करुळुडैयाय् इराववनेतालेलो॥९॥

हे सुगंधभरित केशबंधन से अलंकृत, दशरथ चक्रवर्ती के श्रेष्ठ पुत्र! हे अद्वितीय एक धनुष को नमाकर, उससे ही कोटों से परिवृत लंकाका ध्वंस करनेवाले! हे खिले हुए नीलोत्पलपुष्पों से सुशोभित (उद्यानवन परिवृत) तिरुकण्णपुर के स्वामी, नीलमेघ सदृश, मेरे नाथ! हे दीनदयालो! हे राघव! मेरी स्तुति सुनते डोले में सुखनिद्रा करो॥ .... (९)

(गाथा.) तेवरैयुमशुररैयुम् दिशैहळैयुम्पडैत्तवने * यावरुम्वन्दडिवणङ्ग अरङ्गनहर्त्तुयिन्नवने *
काविरिनन्नदिपायुम् कणपुरत्तेन्करुमणिये * एवरिवेञ्जिलैवलवा इराघवनेतालेलो॥ १०॥

हे देवों की, असुरों की, एवं समस्त दिशाओं की (अर्थात् समस्त लोकों की) सृष्टि करनेवाले! सभी मानव आकर अपने श्रीपादों में प्रणाम करें, इस तरह से हे श्रीरंगक्षेत्र में शयन करनेवाले! हे श्रेष्ठ कावेरी नदी के प्रवाह से सुशोभित तिरुकण्णपुर के स्वामी, नीलमणि सदृश मेरे नाथ! हे बाणों से विभूषित, (शत्रुओं को) भयंकर धनुष चलाने में समर्थ! हे राघव! मेरी स्तुति सुनते हुवे सुखनिद्रा करो॥

यद्यपि कावेरी नदी तिरुकण्णपुर से बहुत दूर बहती है। तथापि उसकी नहर उक्त क्षेत्र में बहती है। अतः प्रकृत में ऐसा अर्थ कर लेना चाहिए कि कावेरी नदी नहरों के रूप में तिरुकण्णपुर में बहती है॥ .... (१०)

(गाथा.) कन्निनन्मामदिळ्पुडैशूळ् कणपुरत्तेन्काकुत्तन् तन्नडिमेल् * तालेलोवेन्नुरैत्त तमिळ्मालै *
कोन्नविलुम्वेल्वलवन् कुडैकुलशेखरन्शोन्न * पन्नियनूल्पत्तुम्वल्लार् पाङ्गायपत्तर्हळे॥११॥

सुंदर, श्रेष्ठ व सुदृढ कोट से परिवृत तिरुकण्णपुर के स्वामी काकुत्स्थ श्रीरामचंद्र के विषय में, (कौसल्या देवी से) गीत डोला गीत का अनुवाद करनेवाली, शत्रुविध्वंसक केळायुध धारी, एवं (राजचिह्न) श्वेतच्छत्र विभूषित कुलशेखर सूरी से गीत, विलक्षण एवं विस्तृत इन दस द्राविडी दिव्य गाथाओं का अभ्यास करनेवाले अच्छे भगवद्भक्त बनेंगे॥ (इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया)॥

अच्छे भगवद्भक्त कहने का यह तात्पर्य है कि, जिस तरह से कौसल्याजी ने भगवान की माता बनकर आपका अनुभव किया, एवं कुलशेखर आळ्वारने भक्त बनकर अनुभव किया, इसी तरह से इस दशक के वेत्ता भी परिपूर्ण भगवदनुभव करने समर्थ परमभक्त बनेंगे ॥.... .... (११)

—* इस दशक का सार संग्राहक पद्य यह है *—

श्लो ॥ कौसल्यानन्दनस्सन् हरिरवतरणं यर्हि चक्रे तदानीम्
रामस्यैतस्य डोलामधिशयितवतः शैशवे गीतकानि ।
कौसल्या यान्यगायत्परममधुरतत्कीर्तिसान्द्राणि तानि
प्रोचे श्रीशौरिराजं प्रति मधुरवचास्सूरिरेषोऽद्वितीयः ॥ ८ ॥

जब भगवान ने कौसल्याजी के पुत्रत्वेन अवतार लिया, तब श्रीरामचंद्ररूपी उस शिशुको झूले में सुलाकर कौसल्याजी ने अतिमधुर उनके यशसे गर्भित जिन गीतों को गाया, उनका ही, श्री शौरिराज भगवान को लक्ष्यकर, अति विलक्षण कुलशेखर सूरी ने, परममधुर द्राविडीवाणी से अनुवाद करते गाया ॥

॥ पेरुमाळ् तिरुमोळि में आठवां दशक समाप्त हुआ ॥
॥ कुलशेखर आळ्वार तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ पेरुमाळ् तिरुमोळि–नवां दशक—वन्ताळिनिणै ॥

(दशरथ चक्रवर्ति का प्रलाप)

अवतारिका—श्रीकृष्ण की बाललीलाओं के दर्शन से वंचित भाग्यहीन देवकी जी के प्रलाप का वर्णन करने के बाद, कुलशेखर सूरी को, उनसे विपरीत, भगवान की बाललीलाओं का पूर्ण अनुभव करने वाली कौसल्याजी की याद आने से, उनके विलक्षण अनुभव का आंशिक वर्णन आपसे किया गया। इसके बाद, आपको, यह दुख होने लगा कि, मैं भी श्रीरामचंद्र भगवान के अथवा श्रीकृष्ण के दर्शन करने के भाग्य से वंचित ही रह गया। यह दुख इतना बढ गया, कि किसी प्रकार से उसका वर्णन किये बिना, आपके मन में शांति मिलना बिलकुल अशक्य हुआ। अतः आप, इस दशक से, एक परमविलक्षण प्रकार से उक्त दुःख का प्रकाशन करते हैं। तथाहि—श्रीरामचंद्रजी के राज्याभिषेक प्रसंग में, अकस्मात् कैकेयी से कृत वरप्रार्थना के अनुसार आपको दंडकारण्य भेजकर दशरथजी ने जो सीमातीत दुःख पाया, जिसके फलतया वे स्वर्गस्थ हो गये, उस प्रकरण का, अर्थात् दशरथकृत प्रलाप का, वर्णन करने के बहानेसे श्री कुलशेखर आळ्वार इस दशक से अपने स्वकीय दुःख का ही वर्णन कर, कुछ शांति पाते हैं ॥

दंडकारण्य में वैजयंत नामक एक नगर था, जिसका राजा तिमिध्वज (अथवा शंबर) नामक एक असुर हुआ, जो कि अत्यंत बलवान और धूर्त था। महेंद्र की प्रार्थना के अनुसार राजा दशरथ उसको जीतने के लिए रथ पर चढकर कैकेयी के साथ उसके वहां चला। दोनों के बीच में घोर युद्ध मच गया। उस युद्ध में राजा दशरथ बहुत घायल होकर मूर्छित हो गया। उस समय में कैकेयी ने स्वयं सारथि बनकर उपाय से राजा को समरांगण से दूर ले जाकर, उसकी आवश्यक सेवा की। फलतः दशरथ राजा जीवित हुआ और होश में आया। तब उसको कैकेयी से कृत यह महोपकार ज्ञात हुआ।

फिर उसने अपनी रानी के लिए कृतज्ञता का प्रकाशन करता हुवा उसको दो वर दिये। परंतु दैवयोग से उस समय में कैकेयी को कुछ माँगने को सूझा नहीं। अतः उसने कहा कि "स्वामिन्! हाल में मेरी कोई इच्छा न रहती है; अतः भविष्य में जब आवश्यकता होगी, तब मैं आप से ये वर माँग लूंगी।" राजा ने भी इस प्रार्थना का अंगीकार किया। बहुत समय के बाद, जब कि राजा ने श्रीरामचंद्र जी को युवराज गद्दी पर बिठाने को चाहा, तब पापिनी मंथरा के दुरुपदेश से कलुषितचित्ता कैकेयी ने अपने पति से, उपाय से, पूर्वोक्त उन दो वरों को माँगा—भरत का अभिषेक और श्री रामचंद्र जी का, चौदह वर्षों तक का वनवास। उसके बाद जो घटना बनी, उसका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं रहती है; कारण कि, वह तो सर्वविदित है। राजा दशरथ दुविधा में पड गया। सत्यवचन होने के कारण कैकेयी के वरदान का वह इनकार नहीं कर सका; पुत्रपर सीमातीत प्रेम रखने के कारण, उसको दंडकारण्य जाने की आज्ञा भी न दे सका। अतः किंकर्तव्यतामूढ होकर वह दुःखसागर में एकदम डूब गया। दुःख भार से मूर्छित हो गया; बीच बीच में, जब थोडा बहुत होश आजाय, तब वह रोता और कुछ प्रलाप भी करता। इन प्रलापविलापों का वर्णन ही प्रकृत दशक में किया जाता है। यह वाणी इतनी भावावेश-पूर्ण है कि यह वास्तव में भगवद्भक्तों के मनको एकदम द्रवित कर देती है॥ .... *

(गाथा.) वन्ताळिनिणैवणङ्गि वळनहरन्तोळुदेत्तमन्ननावान्
निन्नायै * अरियणैमेलिरुन्दायै नेडुङ्गानम्पडरप्पोहु *
एन्नाळेम्मिरामावो उनैप्पयन्दकैकेयितन्शोर्केट्टु *
नन्नाहनानिलत्तैयाळ्वित्तेन् नन्महनेयुन्नैनाने॥ १॥

हे रामप्रभो! सुंदर अयोध्यानगरवासिनी सभी प्रजा [शरणागत संरक्षण के विषय में] सुदृढ रहनेवाले तुम्हारे उभय पादारविंदों में प्रणाम कर, हाथ जोडकर स्तुति करें, ऐसी अवस्था में सिंहासन पर विराजने तैयार रहनेवाले तुमको, [कैकेयी ने] विशाल वन में चले जाने को कहा। हे मेरा सत्पुत्र! तुम्हारी माता कैकेयी की बात सुनकर मैं ने भी तुमको अच्छी तरह से लोकसंरक्षण में लगा दिया! [मेरे लिए धिक्कार हो॥]

सत्पुत्र कहने से श्री रामचंद्र जी की पितृवचनपरिपालनव्रतरूप श्रेष्ठता बतायी जाती है। चौथे पाद में विपरीत लक्षणा है। उसका यह तात्पर्य है कि जब राज्याभिषेक की सभी तैयारियां पूर्ण हो गयी थीं, ठीक उसी समय में मैं ने बूरी तरह से तुमको अयोध्या से बाहर निकालकर दंडकारण्य भेज दिया। अहो मेरा वाचामगोचर क्रौर्य है! .... (१)

(गाथा.) वेव्वायेन्वेव्वुरैकेट्टु इरुनिलत्तैवेण्डादेविरैन्दु * वेन्नि
मैवायकळिरोळिन्दुतेरोळिन्दुमावोळिन्दु वनमेमेवि *
नेय्वायवेल्नेडुङ्कण् नेरिळैयुमिळङ्कोवुम्पिन्बुपोह *
एव्वारुनडन्दनैयेम्मिरामावो एम्बेरुमानेन्शेय्हेने॥ २॥

हे मेरा पुत्र राम! क्रूर मुखवाले मेरे कठिन वचन सुनकर, विशाल इस सांराज्य में भी आशा छोडकर, अतिशीघ्र ही, जयप्रद तथा अंजनपर्वत सदृश हाथी, रथ, घोडा इत्यादि सभी सवारियों को छोडकर, अरण्य पहुंच कर, घृत से लिप्त वेलायुध के समान नेत्रवाली सीता, और लघुभाई लक्ष्मण के साथ तुम किस तरह से चलकर गया? हे मेरे प्रभो! मैं क्या कर सकूंगा?

यहां पर रामायण का यह पद्य अनुसंधेय है—कथं रथैर्विभुर्यात्वा गजाश्वैश्च मुहुर्मुहुः। पद्भ्यां रामो महारण्ये वत्सो मे विचरिष्यति ॥ [अयोध्याकांड १२-९६] यह तात्पर्य है—चक्रवर्ति कुमार होने से श्रीरामचंद्र ने अभी तक कभी पैदल चलने का अभ्यास नहीं किया। हाथी, घोडा, रथ इत्यादि वाहन तो सदा उनकी सेवा करने के लिए तैयार खडे रहते थे। ऐसे वे कांटा कंकड़ आदि से भरे हुवे कठोर वन में अत्यंत सुकुमार अपने पादों से किस तरह से चल सकते हैं? उनसे भी अधिक सुकुमारी सीता किस तरह से चल सकेगी? कोमलशरीर लक्ष्मण किस तरह से पैदल चलेगा? मैं क्या कर सकूंगा? कैकेयी का वचन टालने में अशक्त होकर तुमको ऐसी कठिन पादयात्रा में लगा देने के बाद अब मैं किस तरह से इस दुःख का पार हो जाऊं? मृत्यु के विना दूसरी कोई गति नहीं है ॥ .... (२)

(गाथा.) कोल्लणैवेल्वरिनेडुङ्कण् कौसलैतन्कुलमदलाय् कुनिविल्लेन्दुम् *
मल्लणैन्दवरैत्तोळा वल्विनैयेन्मनमुरुकुम्वहैयेकत्ताय् *
मेल्लणैमेल्मुनुतुयिन्नायिन्निनिप्पोय् वियन्कानमरत्तिन्नीळल् *
कल्लणैमेल्कण्तुयिलकत्तनैयो काकुत्ताकरियकोवे ॥ ३ ॥

हे शत्रुविनाशक वेलायुध के समान विशाल नेत्रवाली कौसल्या के कुल में उत्पन्न! हे नमनेवाले धनुष का धारण करनेवाले, बलिष्ठ तथा पर्वत सदृश विशालभुजवाला! हे महापापी मेरे हृदय को द्रवित करने में समर्थ! हे काकुत्स्थ! [अर्थात् ककुत्स्थ नामक राजा के वंश में समुत्पन्न!] हे श्यामसुंदर प्रभो! अत्यंत मृदु मनोहर शय्या पर सोने का ही अभ्यासवाला तुम, विशाल वन में किसी पेड की छाया में किसी एक कठोर पत्थर के ऊपर किस तरह से सो जाते हो?

यहां पर कौसल्या देवी का यह वचन कि, दुःखस्यानुचितो दुःखं सुमन्त्र शयनोचितः। भूमिपालात्मजो भूमौ शेते कथमनाथवत् ॥ [अयो. ५८-६], और भरतजी का यह वचन, अजिनोत्तरसंस्तीर्णे वरास्तरणसंचये। शयित्वा पुरुषव्याघ्रः कथं शेते महीतले ॥ [अयो. ८८-४] इत्यादि अनुसंधेय है ॥ (३)

(गाथा.) वापोहुवाविन्नमुवन्दोरुकाल्कण्डुपो मलराल्कून्दल् *
वेय्पोलुमेळिल्तोळितन्पोरुट्टा विडैयोन्तन्विल्लैचेत्ताय् *
मापोहुनेडुङ्कानमुवल्विनैयेन् मनमुरुकुम्महने * इन्नु
नीपोहवेनेञ्जम् इरुपिळवायूप्पोहादेनिर्कुमारे ॥ ४ ॥

हे पापी मेरे हृदय को शिथिल बनाने में समर्थ ! हे पुत्ररत्न ! जरा इधर आ ; जा ; फिर आजा ; जाते जाते और एक बार इधर आकर मेरे से मिलकर जा । हे सदा पुष्प धारक केशबंधवाली और बाँस के समान सुंदर भुजवाली सीतादेवी से विवाह करने के लिए शिवधनुष को तोड डालनेवाला ! आज जब कि तुम इधर उधर फिरनेवाले गजों से भीषण विशाल अरण्य जा रहे हो, (इस कठोर दृश्य को देखने पर भी) मेरा मन दो भाग न बनता हुआ मजबूत ही क्यों कर रहता है ?

तुम्हारे वनप्रयाण की इस दुःखद परिस्थिति देखने पर मेरे मनको दो टुकडा बन जाना ही उचित था । परंतु पापी यह मन ऐसा न होते हुवे स्थिर ही रह गया है ; इसका कारण क्या होगा ? यहां पर कौसल्या जी के ये वचन अनुसंधेय हैं—"स्थिरं नु हृदयं मन्ये ममेदं यन्न दीर्यते । ....स्थिरं हि नूनं हृदयं ममायसं न भिद्यते यद्भुवि नो विदीर्यते । अनेन दुःखेन च देहमर्पितम्........॥" (अयो० २० ५१) इत्यादि ॥

"आ, जा, फिर आ" इत्यादि, दुःख से पागल जैसे बने हुवे दशरथ जी का अनन्वित प्रलाप है । "अहं पुनर्देवकुमाररूपमलंकृतं तं सुतमात्रजन्तम् । नन्दामि पश्यन्निव दर्शनेन भवामि दृष्ट्वैव पुनर्युवेव ॥ (अयो० १२-१०४) इत्यादि अपने वचन के अनुसार दशरथ जी श्री रामचंद्र जी के दर्शन में बहुत आस्थावान थे । उसमें भी अलग अलग आपकी आगे की तथा पीछे की शोभा देखने में उनकी बडी लालच थी । अतः वे वारं वार अपने पुत्र को आने की व जानेकी आज्ञा करते थे । पिता के वचन को परमादरणीय माननेवाले भोले श्री रामचंद्र जी भी विना विचार उनकी आज्ञानुसार आगे पीछे चलते थे । इस तरह से इन विलक्षण पिता पुत्रों के बीच में रोज यह विचित्र खेल चलती । पिताजी बोलते—"पुत्र ! जरा इधर आओ ।" एतदनुसार पुत्र के नजदीक आने पर वे बोल देते, "बच्चा ! कोई काम नहीं है ; तुम जा सकते हो ।" उनकी यह आशा होती—आते आते इस सौंदर्यनिधि के मुखकमल के दर्शन कर मेरी आँखें धन्य हो गयीं ; अब पीठका सौंदर्य देख लूं । पीठके दर्शन करने पर फिर श्रीमुख देखने की इच्छा होती । अतः फिर उनको बुलाना पडता । इस तरह से दस बारह वार, पुत्र को बुलाते और वापस भेजते वे उनकी सर्वांग शोभा देखकर आनंदित हो जाते । अब आप इस वृत्तांत का स्मरण कर कहते हैं कि, "पूर्वोक्त प्रकार से जिस तुमको आगे पीछे चलाते हुवे, तुम्हारे सौंदर्य के दर्शन से मैं आनंदित हो जाता था, ऐसा हे मेरा सुपुत्र !" परंतु दुःख से विह्वल होने के कारण, इतनी विशदवार्ता कहने में अशक्त होकर, आप कुछ अनन्वितशब्द कह रहे हैं ॥ .... (४)

(गाथा.) पोरुन्दार् कैवेल्लनुदिपोल्परल्पाय मेल्लडिकल्कुरुदिशोर *
विरुम्बादकान्विरुम्बिवेयिलुरैप्प वेम्पशिनोयूकूर * इन्नु
पेरुम्पावियेन्महनेपोहिन्राय् केकयर्कोन्महळायुप्पेत्त *
अरुम्पाविशोर्केट्टवरुविनैयेन् एन्शेयूहेनन्दोयाने ॥ ५ ॥

हे महापापी मेरा सुपुत्र! शत्रुओं के हाथ में रहनेवाले वेलायुध के अग्रकी तरह (अति तीक्ष्ण) कंकड़ (अपने) पाद में लग जाय, अतिसुकुमार उन पादों से लोहू निकलें, ऊपर से धूप भी ताप करें, क्रूर भूख भी कठोर दुख दें, इस तरह से तुम किसीसे अनपेक्षित वन में (मेरे वचन को मानते हुवे) जा रहे हो। केकयराजा की पुत्री महापापिनी कैकेयी की वरप्रार्थना को माननेवाला महापापी मैं हाय! अब क्या कर सकूंगा? .... (६)

(गाथा.) अम्मावेन्नुहन्दलैकुम् आर्वचोलूकेळादेयणिशेमार्वेम् *
एन्मार्वत्तिडैयलुन्द त्तळुवादेमुलुशादेमोवादुच्चि *
कैम्माविन्नडैयन्नमेन्नडैयुम् कमलम्पोलूमुहमुङ्काणादु *
एम्मानैयेन्महनैयिळन्दिट्ट इळितहैयेनिरुक्किन्नेने ॥ ६ ॥

तुम्हारी इस प्रेमभरित मधुरवाणी को, कि, "हे मेरे पिताजी!" नहीं सुनता हुआ, आभरणों से अलंकृत तुम्हारे वक्ष को अपने वक्ष से मिलाकर उसका दृढ आलिंगन न करता हुवा, उस आलिंगन भोग सागर में नहीं डूबता हुवा, तुम्हारे ब्रह्मरंध्र को नहीं सूँघता हुआ, एवं गजके समान अतिगंभीर चलन को, तथा कमल समान मुख को न देखता हुवा, अपने स्वामी, पुत्र (श्रीरामचंद्र) को अरण्य भेजकर, उससे विरहित वन जानेवाला, और अतिनीच काम करनेवाला मैं, अभी भी नष्ट हुये विना, हाय! जीवित ही रहता हूं॥ .... (६)

(गाथा.) पूमरुवुनरुङ्कुञ्जिपुन्शडैयाप्पुनैन्दु पून्तुहिलूशेरलूहुल् *
कामरेलिल्विळलुडुत्तु कलनणियादङ्गङ्गळलहुमारि *
एमरुतोळेन्पुदल्वन् यानिन्नुशेलत्तकवनन्दान्शेर्दल् *
तूमरैयीरिदुतहवो सुमन्तिरनेवसिष्ठनेशोल्लीर्नीरे ॥ ७ ॥

हे नित्यनिर्दोष वेदों का अध्ययन करनेवाले ब्राह्मणोत्तम! हे (राजधर्म के वेत्ता) सुमंत्र! हे (मेरे कुलपुरोहित) वसिष्ठ जी! (मैं आपलोगों से ऐक बात पूछ रहा हूं कि,) मैं ने (अपने पुत्र के) पुष्प से अलंकृत सुगंध केशों को कराल जटा बना दिया; दिव्य पीतांबर धारक कमर में कुशकाश वल्कलादि वस्त्रों का धारण करवाया। आभरणों को दूरकर, स्वाभाविक शोभा के ऊपर, आभरणों से बननेवाली कृत्रिम शोभा के विना ही सुरक्षित भुजवाला यह मेरा पुत्र, मेरे से अभी जाने लायक वन को जो स्वयं जा रहा है, यह क्या उचित है? धर्मज्ञ आप लोग ठीक परामर्श कर बता दीजियेगा॥

हमारा यह कुलधर्म है कि वृद्ध होने पर हम वानप्रस्थ आश्रम का ग्रहणकर, नगर छोडकर, अरण्य में वास करते हैं। इस तरह से वन में जाना अब मेरा कर्तव्य है; श्रीरामचंद्र का काम तो अब राजधानी में रहकर, समस्त भोगों का अनुभव करता हुवा प्रजारक्षण करना है। इसको छोडकर वह अभी जो वन चला गया, यह क्या उचित है? इस प्रकरण में लक्ष्मण जी का यह वचन अनुसंधेय है—
"पूर्वराजर्षिवृत्त्या हि वनवासोऽभिधीयते। प्रजा निक्षिप्य पुत्रेषु पुत्रवत्परिपालने॥ [अयो. २३-२६] ....(७)

(गाथा.) पोन्पेत्तारेलिल्वेदप्पुदल्वनैयुम् तम्बियैयुम्पूवैपोलुम् *
मिन्पत्तानुण्मरुङ्गुल् मेल्लियलेन्मरुहियैयुमुवनत्तिल्पोकि *
निन्पत्तानिन्महन्मेल्पलिविळैत्तिट्टु एन्नैयुमुनीळ्वानिल्पोक *
एन्पेत्तायक्कैकेयी इरुनिलत्तिलिनिदाहविरुक्किनाये ॥ ८ ॥

हे कैकेयी! विद्याधनवाले आचार्यों की सेवा कर उनसे श्रेष्ठ वेदों का अध्ययन करनेवाले मेरे ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचंद्रको, उसके भाई लक्ष्मण को, एवं शुकवाणी, विद्युत्समान कृशोदरी मेरी बहू सीता देवी को भी वन में भेजकर, अपने प्रेम का पात्र अपने कुमार भरत को भी अपवाद का पात्र बनाकर, (पुत्र विरहदुःख से संतप्त) मुझको परलोक भेज देने से तुमने कौनसा फल पाया? (इतना काम कर डाल कर) तुम विशाल इस प्रपंच में आनंद से विराजो ॥

मानव को, अपने पति पुत्र बहू बंधु मित्र इत्यादियों के साथ रहकर आनंदित होना ही संसारसुख कहलाता है। परंतु तुमने सुख पाने की इच्छा से पुत्र रामलक्ष्मणों को बहू सीता के साथ अरण्य भेज दिया; अपने खास पुत्र भरत के सिरपर जनापवाद का बोझा चढा दिया; पति मुझको अब स्वर्ग भेज रही हो। इतने होनेपर तुमको कौन सा सांसारिक सुख मिलनेवाला है? "मृते मयि गते रामे वनं पुरुष पुङ्गवे। सेदानीं विधवा राज्यं सपुत्रा कारयिष्यसि॥" इत्यादि रामायण के पद्य (अयो० १२-९४) यहां पर अनुसंधेय हैं॥ .... (८)

(गाथा.) मुन्नोरुनाळ्मलुवाळिशिलैवाङ्गि अवनृतवत्तैमुत्तुमुशेत्ताय् *
उन्नैयुमुन्नरुमैयैयुमुन्मोयिन्वरुत्तमुम् ओन्नाहक्कोळ्ळादु *
एन्नैयुमेन्मेय्युरैयुम्मेय्याहक्कोण्डु वनम्पुकवेन्दाय् *
निन्नैयेमहनाहप्पेरप्पेरुवेन् एळ्पिरप्पुमनेडुन्दोळ्वेन्दे ॥ ९ ॥

हे पहले एक समय में, परशुराम के हाथ से उसका धनुष लेकर, उससे कमाये हुवे तपःफल सब को (तीरका लक्ष्य बनाकर) विनाशित करनेवाला! तुम अपनेको (अर्थात् अपने विलक्षण स्वरूप स्वभावों को), अपनी कींमत को (अर्थात् जिस विशेष प्रयत्न से मैं ने तुमको अपने पुत्र के रूप में पाया, उसको), (तुम्हारे विरह का सहन करने में अशक्त) अपनी माता के दुःख को, तथा च इन सब को एक पदार्थ करके न मानते हुवे (अर्थात् इन सबकी परवाह नहीं करते हुए), मेरेको और मेरे सत्यवचन को ही प्रधान मानकर वन में चला गया। ऐसे हे मेरे प्रभो! हे विशाल भुजवाला राजाधिराज! अगर इसके बाद और अनेक जन्म मुझे मिलनेवाले हो, तो मैं उन प्रत्येक जन्मों में तुमको ही अपने पुत्र के रूप में पाऊं॥

यह तात्पर्य है—तुम अपने सौंदर्य शीलादि सद्गुणों की, एवं अपने मातापिताओं के वर्णनातीत प्रेम की परवाह नहीं करता हुआ, दूसरों की तरह मुझको भी एक सामान्य पिता मानकर मेरे सत्य की रक्षा करने की इच्छा से राज्य छोडकर, अरण्य चला गया। ऐसे गुणवान तुम ही जन्मजन्मांतर मे भी मेरा पुत्र बनो॥ .... (९)

(गाथा.) तेनहुमामलर्कून्दल् कौसलैयुम्सुमित्तिरैयुम्शिन्दैनोव *
कूनुरुविन्कोडुतोळुत्तैशोकैट्ट कोडियवळ्दन्शोर्कोण्डु * इन्नु
कानहमेमिहविरुम्बि नीतुरन्दवळनहरैत्तुरन्दु * नानुम्
वानहमेमिहविरुम्बिप्पोहिन्रेन् मनुकुलत्तार्तङ्गळ्कोवे ॥ १० ॥

हे मनुकुल में समुत्पन्न राजाओं में श्रेष्ठ ! मधु बहनेवाले पुष्पों का धारण करनेवाले केशवाली कौसल्या के तथा सुमित्रा के मन को दुःखी बनाते हुवे, शरीर तथा मन से वक्र (कुब्जा) दासी मंथराके वचन माननेवाली क्रूर कैकेयी की वार्ता को मान देते हुवे अरण्य को ही बहुत प्यार करनेवाले तुमसे परित्यक्त, (तुम्हारे अभिषेक के लिए) सजाये हुए इस अयोध्यानगर को छोडकर, मैं भी स्वर्गलोक को ही बहुत प्यार करता हुआ, उधर चला जाऊंगा ॥ (अर्थात् तुम्हारे विरह से संतप्त मैं, अभी मर जा रहा हूं ॥ .... (१०)

(गाथा.) एरान्दकरुनेडुमालिरामनाय् वनम्पुकवदनुकात्ता *
तारान्दतडवरैत्तोळ्दशरथन् तान्पुलम्बिय अप्पुलम्बल्तन्नै *
कूरान्दवेल्वलवन्कोळियर्कोन् कुडैकुलशेखरन्शोर्चैयुद *
शीरान्दतमिळ्मालैयिवैवल्लार् तीनेरिकण्शेल्लार्तामे ॥ ११ ॥

अति मनोहर श्यामसुंदर भगवान विष्णु, श्रीरामचंद्र के रूप में अवतार कर, जब अरण्य के लिए प्रस्थित हो गये; तब उस विरह का सहन करने में अशक्त, विजयमालिका से अलंकृत विशाल भुजवाले दशरथ चक्रवर्तीने जो प्रलाप किया, उसका वर्णन करनेवाली, तेज वेलायुध चलाने में समर्थ, उरैयूर के राजा, विजयच्छत्र विभूषित, कुलशेखर सूरी से अनुगृहीत, इन श्रेष्ठ द्राविडी गाथाओं का अध्ययन करनेवाले कभी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं करेंगे। (इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया) ॥ .... (११)

—* इस दशक का सारसंग्राहक पद्य यह है *—

श्लो ॥ कैकेय्या हन्त ! रूक्षे वचसि बहुमतिं बिभ्रतः पापिनो मे
वाचाऽरण्यं प्रयातो मम तनयवरो रामचन्द्रश्च सीता ।
सौमित्रिश्चातिमात्रं खलु कठिनभुवि क्लेशमासादयन्ती-
त्येवं ह्याक्रन्ददुच्चैर्दशरथवपुषा सूरिरुत्तुङ्गभक्तिः ॥ ९ ॥

इस दशक में दशरथ चक्रवर्ती की भावना को अपनानेवाले श्री कुलशेखर आळ्वार जोर से यों प्रलाप करते हैं कि, "हाय, हाय ! कैकेयी के क्रूरवचन को माननेवाले पापी मेरी बात सुनकर अरण्य जानेवाले मेरा पुत्र श्रीरामचंद्र, लक्ष्मण और सीता उस कठोरवन में बहुत दुःख पा रहे हैं ॥ .... (९)

॥ पेरुमाळ् तिरुमोळि में नवां दशक समाप्त हुआ ॥
॥ कुलशेखर आळ्वार तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ पेरुमाळ तिरुमोळि – दसवां दशक — अङ्गणेड्डमदिळ् ॥

(श्रीरामायण कथा का सारसंक्षेप वर्णन)

अवतारिका—यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है कि श्रीरामचंद्र भगवान के शुभ अवतार का दिन पुनर्वसूनक्षत्र में ही अवतीर्ण कुलशेखर आळ्वार, उन भगवान में ही भक्ति करते हुए उनके दिव्यवैभव का ही नित्य अनुसंधान करते थे। आपके यहां हमेशा श्रीरामायण का पाठ, प्रवचन इत्यादि होते थे। अतः कदाचित् आपके मन में ऐसी एक इच्छा उत्पन्न हुई कि संक्षेपतः समग्र श्रीरामायण कथा की रचना कर, उससे सब लोगों को पवित्र बनना चाहिए। इस आशा से प्रेरित होकर आपने श्रीरामचंद्र के दिव्यचरित्र का वर्णन पर प्रकृत दशक की रचना की। दशरथ पुत्रत्वेन भगवान से कृत अवतार से शुरू कर, आपके परमपद लौटनेतक के समग्र चरित्र इस दशक में संक्षेपतः उपवर्णित हैं। परंतु इसमें यह विशेष है कि यह अनुभव चित्रकूट नामक दिव्यदेश के स्वामी अर्चारूपी गोविंदराज भगवान के विषय में चलता है। तथाहि—चित्रकूट नामके दिव्यदेश हमारे देश में दो विराजते हैं—एक तो श्रीरामायण में उपवर्णित उत्तरभारत का प्रसिद्ध क्षेत्र है जहां पर भरतजी श्रीरामचंद्रजी से मिले थे। दूसरा दक्षिण भारत में चिदंबरनाम से प्रसिद्ध क्षेत्र में विराजमान श्री गोविंदराज भगवान का मंदिर है, जिसको तिल्लैत्तिरुचित्रकूट कहते हैं। श्री परकालसूरी भी इस स्थल का मंगलाशासन करते हैं। एवं च, इस क्षेत्र के अधिपति पूर्वोक्त श्री गोविंदराज भगवान को ही कथानायक मानकर, आळ्वार श्री रामायण कथा का वर्णन कर रहे हैं॥ *

(गाथा.) अङ्गणेड्डमदिळ्पुडैशूळयोत्तियेन्नुम् अणिनगरत्तुलहनैत्तुम्विळक्कुम्शोदि *
वेङ्कदिरोन्कुलत्तुक्कोर्विळक्कायत्तोन्रि विण्मुळुदुमुय्यक्कोण्डवीरन्तन्नै *
शेङ्गणेडुङ्करुमुहिलैयिरामन्तन्नै त्तिल्लैनगर्त्तिरुचित्रकूटन्तन्नुळ् *
एङ्गळ्तनिमुदल्वनैयेम्बेरुमानृतन्नै एन्नुकोलोकण्कुळिरक्काणुनाळे ॥ १ ॥

विशाल मनोहर प्राकार से परिवृत सुंदर अयोध्या नगर में, सकल लोकों को प्रकाशित करनेवाले अपने प्रकाश के एक अंशसे सूर्यवंशको चमकानेवाले एक दीपकी तरह, उसमें अवतार कर, समस्त देवताओं को दुख से छुडानेवाले, महावीर, लाल नेत्रवाले, महान कालमेघ के सदृश, श्रीराम दिव्यनामधारी, तिल्लैत्तिरुचित्रकूटके स्वामी, अद्वितीय जगत्कारणभूत, हमारे नाथ के मैं सानंद कब दर्शन कर पाऊंगा? [इस गाथा में श्रीरामावतार कथा का अनुसंधान किया गया॥] .... (१)

(गाथा.) वन्देदिर्न्दताटकैतनुरत्तैक्कीरि वरुकुरुदिपोळिदर वन्कणैयोन्नेवि *
मन्दिरङ्कोळ्मरैमुनिवन्वेळ्विकात्तु वल्लरकरुयिरुण्डमैन्दन्काणिमन् *
शेन्दळिर्वायूमलर्नहैशेर्ळन्दणोलै त्तिल्लैनगर्त्तिरुचित्रकूटन्तन्नुळ् *
अन्दणर्हळोरुमूवायिरवरेत्त अणिमणियासनत्तिरुन्दवम्मानृताने ॥ २ ॥

गर्व से लडने के लिए सामने आनेवाली ताटका के हृदय को चीरकर उससे रक्तधारा को वहानेवाले एक बलिष्ठ वाण का प्रयोग कर, (अर्थात् एक बाण से ताटका का संहार कर) समस्त मंत्रों के आधारभूत वेद से प्रतिपादित क्रम के अनुसार विश्वामित्र मुनींद्र से अनुष्ठित यज्ञ की रक्षा कर, उसमें विघ्न करने उद्यत सुबाहु इत्यादि क्रूर राक्षसों का संहार करनेवाले, महावीर रामचंद्र—रक्तवर्ण पल्लवों के बीच में खिलनेवाले पुष्पों से भरित, मनोहर सौंदर्यवाले, सुकोमल, एवं सुशीतल उद्यानवनों से सर्वत्र परिवृत तिल्लैतिरुच्चित्रकूट में तीन हजार ब्राह्मणों से संसेवित होकर, सुंदर रत्नसिंहासनपर विराजमान सर्वेश्वर ही हैं; स्पष्ट जान लीजिए ॥

रामावतार में विश्वामित्रजी के साथ उनका आश्रम जाकर ताटका सुबाहु इत्यादि क्रूर राक्षसों को मारकर उनकी यज्ञपूर्ति करानेवाले भगवान ही आज चित्रकूट में तीन हजार ब्राह्मणों से सेवित होकर विराजमान हैं—ऐसा तात्पर्य है। श्री परकालसूरी भी इस दिव्यदेश का वर्णन करते हुए गाते हैं कि यहां तीन हजार वेदाध्ययनसंपन्न ब्राह्मण विराजते हैं। केरलदेश के अंतर्गत तिरुच्चित्तारुनामक दिव्यदेश के वर्णन में श्रीशठकोपसूरी गाते हैं कि, यहां पर तीन हजार वैदिक ब्राह्मणश्रेष्ठ विराजमान हैं (सहस्र गीति ८-४-१०) ॥ इससे आळ्वारों के समय में इन क्षेत्रों का विशेष वैभव जाना जाता है ॥ .... (२)

(गाथा.) शेव्वरिनर्करुनेडुङ्कण्सीतैकाहि च्चिनविडैयोन्शिलैयिरुत्तुमळुवाळेन्दि *
वेव्वरिनच्चिलैवाङ्गिवेन्निकोण्डु वेल्वेन्दर्पहैतडिन्दवीरनृतन्नै *
तेव्वरञ्जुनेडुम्पुरिशैयुयर्न्दपाङ्गर् तिल्लैनगर्त्तिरुच्चित्रकूटन्तन्नुळ् *
एव्वरिवेञ्जिलैत्तडकैयिरामन्तन्नै इरैञ्जुवारिणैयडियेयिरैञ्जिनेने ॥ ३ ॥

श्रेष्ठलक्षणभूत लालरेखाओं से अलंकृत सुंदर विशाल कृष्ण नेत्रवाली सीतादेवी से परिणय करने के उद्देश्य से, कुपित वृषभवाहन शिवजी के धनुष को तोड डालनेवाले, (फिर मिथिला से अयोध्या लौटते हुए मार्गमध्य में) कुठार का धारण करनेवाले परशुराम के श्रेष्ठ व बलिष्ठ धनुष को अपने हाथ से उठाकर (नमाकर), (उस परशुराम को) जीतकर, क्षत्रिय वैरी उसका गर्वभंजन करनेवाले महावीर, दूसरों से नमाने अशक्य शत्रुभयंकर धनुष का धारक विशाल हस्तवाले श्रीरामचंद्र भगवान का, शत्रु भयंकर ऊंचे कोटों से एवं तदनुबंधि प्रदेशों से सुरक्षित तिल्लैत्तिरुच्चित्रकूट में जो लोग प्रणाम करते हैं, ऐसे परमभक्तों के उभय पादारविंदों का मैं नमस्कार करूंगा ॥ [इन दो गाथाओं से बालकांड कथा का अनुसंधान पूर्ण हुआ ॥]

(गाथा.) तोत्तलर्पूञ्जुरिकुलल्कैकेयिशोल्लाल् तोन्नहरन्तुरन्दु तुरैगङ्गैतन्नै *
पत्तियुडैगुहन्कडत्तवनम्बोयुप्पुक्कु भरतनुकुप्पादुकमुमरशुमीन्दु *
चित्तिरकूडत्तिरुन्दानृतन्नै इन्नुतिल्लैनहर्तिरुच्चित्रकूटन्तन्नुळ् *
एत्तनैयुङ्कण्कुळिरकाणप्पेत्त इरुनिलत्ता किमैयवर्नेरोव्वार्तामे ॥ ४ ॥

खिले हुए कुसुमगुच्छों का धारण करनेवाली, कुटिल मनोहर केशवाली कैकेयी का वचन मानते हुए, अनादिकाल से परंपरा से प्राप्त राज्य को छोडकर, परमभक्त गुह के सहाय से गंगानदी का पारकर, अरण्य में प्रवेशकर, उधर आनेवाले भरतजी को अपनी पादुका के साथ राज्य का भी प्रदान कर, फिर चित्रकूटपर्वत में विराजनेवाले श्रीरामचंद्रजी के, इस वर्तमान समय में तिल्लैत्तिरुच्चित्रकूट में सानंद दर्शन करने के भाग्य से युक्त, इस विशाल भूमंडल में रहनेवालों के सदृश नित्यसूरियों भी नहीं हो सकते हैं ॥ [इसमें अयोध्यकांड की कथा का अनुसंधान किया गया ॥] .... (४)

(गाथा.) वलिवणक्कुवरैनेडुन्दोळ्विराधैकोन्नु वण्डमिळ्मामुनिकोडुत्तवरिविल्वाङ्गि *
कलैवणक्कनोक्करकिमूक्कैनीक्कि खरनोडुदूषणन्तन्नुयिरैवाङ्गि *
शिलैवणक्किमान्मरियवेय्दान्तन्नै त्तिल्लैनगर्त्तिरुच्चित्रकूटन्तन्नुळ् *
तलैवणक्किक्कैकूप्पियेत्तवल्लार् तिरिदलाल्तवमुडैत्तित्तरणितान्ने ॥ ५ ॥

शत्रुओं को जीतने समर्थ पर्वत सदृश बलिष्ठ भुजवाले विराध नामक राक्षस का संहारकर, श्रेष्ठ द्राविडी भाषा के प्रवर्तक अगस्त्यमुनि से प्रदत्त सुदृढ धनुष का स्वीकार कर, हरिण को जीतनेवाले नयन सौंदर्य से युक्त होकर आनेवाली शूर्पणखा राक्षसी का नाक काटकर, खरदूषणादियों का प्राण निकालकर, अपने धनुष को नमाकर उससे तीर छोडकर मायामृगरूपी मारीच का संहार करनेवाले श्रीरामचंद्रजी का, तिल्लैत्तिरुच्चित्रकूट में, अपने सिर नमाते हुए प्रणाम कर, अंजलि रचकर स्तोत्र करनेवाले भक्तों के संचार से यह भूतल भाग्यवान बन जाता है ॥

परशुरामजी के हाथ से लिये गये हुए धनुष को श्रीरामचंद्रजी ने तभी वरुण के हाथ में दे दिया; वरुणने उसको बहुत समयतक संभालकर फिर अक्षय तूणीर व खड्ग के साथ उसको अगस्त्यजी को सोंप दिया। और उन्होने इन सब आयुधों को श्रीरामचंद्रजी को दे दिया। ये अगस्त्यमुनि द्राविडी भाषा के प्रवर्तक माने जाते हैं ॥ .... (५)

(गाथा.) तनमरुवुवैदेहिपिरियलुत्तु त्तळर्वेय्दिजटायुवैवैहुन्दत्तेत्ति *
वनमरुवुकवियरशन्कादल्कोण्डु वालियैक्कोन्निलङ्गैनगररक्कर्कोमान् *
शिनमडङ्गमारुतियाल्शुडुवित्तानै त्तिल्लैनगर्त्तिरुच्चित्रकूटन्तन्नुळ् *
इनिदमर्न्दवम्मानैयिरामन्तन्नै एत्तुवारिणैयडियेयेत्तिनेने ॥ ६ ॥

अपने अत्यंत प्रिय ऐश्वर्यरूपिणी सीतादेवी से विरहित होकर, उससे बहुत दुःखी होकर, गृध्रराज जटायु को परमपद भेजकर, वालिभय से छिपकर वन में फिरनेवाले वानरराज सुग्रीव से मैत्री कर, (उसकी इच्छानुसार) वाली का संहार कर, राक्षसराज रावण के गर्व को मिटाते हुए हनुमान के द्वारा लंकापुरी को जला देनेवाले, तिल्लैत्तिरुच्चित्रकूट में सानंद विराजमान, सर्वेश्वर श्रीरामचंद्रजी की स्तुति करनेवाले परमभक्तों के उभयपादों की ही मैं स्तुति करूंगा ॥ [इन दो गाथाओं से आरण्य किष्किंधा और सुंदरकांडों की कथा वर्णित हो गयी ॥] .... (६)

(गाथा.) कुरैकडलैयडलम्बालूमरुहवेयूदु कुलैकट्टिमरुकरैयैयदनालेरि *
एरिनेडुवेलरक्करोडुमिलङ्गैवेन्दन् इन्नुयिर्कोण्डवनूतम्बिक्करशुमीन्दु *
तिरुमहळोडिनिदमर्न्दशेल्वनूतन्नै त्तिल्लैनगर्त्तिरुच्चित्रकूटन्तन्नुळ् *
अरशमर्न्दानडिशूडुमरशैयल्लाल् अरशाहवेण्णेन्मत्तरशुताने ॥ ७ ॥

गर्जन करनेवाले समुद्र को तीक्ष्ण बाण से व्याकुल बनाकर, उसपर पुल बांधकर, उसके द्वारा उस समुद्र का पारकर, शत्रुओं को जला देनेवाले वेलायुध धारी राक्षसों को तथा लंकाधिपति रावण को मारकर, उसके लघु भाई श्री विभीषणजी को राजा बनाकर, लक्ष्मीजी के अवताररूपिणी सीतादेवी के साथ सानंद मिलनेवाले, सकल विध ऐश्वर्य से परिपूर्ण तिल्लैत्तिरुच्चित्रकूट में अपने वैभव का प्रदर्शन करते हुए विराजमान श्रीरामचंद्रजी के पादारविंदों को अपने सिर पर धारण करने के मकुटाभिषेक के विना दूसरे स्वातंत्र्य पूर्ण लौकिक राज्याभिषेक को मैं सच्चा राज्याभिषेक नहीं मानूंगा ॥ .... (७)

(गाथा.) अम्बोनेडुमणिमाडवयोत्तियेय्दि अरशेय्दियहत्तियन्वायूत्तान्मुन्कोन्नान्
तन् * पेरुन्तोल्कदैकेट्टुमिदिलैचेल्वि उलहुय्यत्तिरुवयिरुवायूत्तमकळ् *
शेम्बवळत्तिरळ्वायूत्तन्चरितैकेट्टान् तिल्लैनगर्त्तिरुच्चित्रकूटन्तन्नुळ् *
एम्बेरुमानूतन्चरितैशेवियालक्कण्णालूपरुहुवोम् इन्नमुदम्मदियोमन्ने ॥ ८ ॥

मनोहर व उत्तम सोना व रत्नों से विनिर्मित महलवाले अयोध्या नगर को लौट कर, अभिषिक्त होकर, अगस्त्य मुनि के द्वारा अपने से मारे गये हुए रावण का पूर्वचरित्र सुनकर, मैथिली सीतादेवी से लोकसंरक्षणार्थ प्रसूत अपने पुत्र लवकुशों के प्रवाल सदृश मुख से अपना ही चरित्र श्रीरामायण को सुनने-वाले, तिल्लैत्तिरुच्चित्रकूट में विराजमान हमारे नाथ भगवान के दिव्य चरित्र का कानों से पान करेंगे, और आँखों से उनके दर्शन करेंगे; इसको छोडकर मधुर देवामृत की भी हम परवाह नहीं करेंगे ॥ [युद्धकांड कथा समाप्त हुई और उत्तरकांड का भी एक अंश हुआ ॥] .... (८)

(गाथा.) शेरितवच्चम्बुकनूतन्नैचेन्नुकोन्नु शेल्लमरैयोनुयिर्मीट्टुत्तवत्तोनीन्द *
निरैमणिप्पूणणियुङ्गोण्डिलवणनूतन्नै त्तम्बियाल्वानेत्तिमुनिवन्वेण्ड *
तिरल्विळङ्गुमिलकुमनैप्पिरिन्दानूतन्नै त्तिल्लैनगर्त्तिरुच्चित्रकूटन्तन्नुळ् *
उरैवानैमरवादवुळ्ळन्तन्नैयुडैयोम् मत्तुरुत्तुयरमडैयोमन्ने ॥ ९ ॥

कठिन तपस्या करनेवाले शूद्र शंबूक का, (उसका) स्थान जाकर वध कर, श्रेष्ठ ब्राह्मणपुत्र को जीवितकर, अगस्त्य महर्षि से प्रदत्त अमूल्य रत्नहार को अपनाकर, शत्रुघ्न के द्वारा लवणासुर को वीरस्वर्ग पहुंचाकर, महर्षि दुर्वासा के वचनानुसार बलपराक्रम शोभित लक्ष्मणजी को निकालनेवाले, तिल्लैत्तिरुच्चित्र-कूट में नित्य निवास करनेवाले श्रीरामचंद्र भगवान का, कभी भी भूले विना, नित्यध्यान करनेवाले मन से युक्त हम, (भगवदनुभव के अलाभप्रयुक्त) दुःख को फिर कभी भी नहीं पावेंगे ॥

इस गाथा में भगवान के महाप्रस्थान को छोडकर उत्तरकांड की दूसरी सभी कथाएं उपवर्णित हैं। (१) अयोध्या में किसी ब्राह्मण का बालक मर गया, और वह ब्राह्मण श्रीरामचंद्रजी के पास आकर रोने लगा। विचार करने पर यह पता लगा कि दंडकारण्य में शंबूक नामक एक शूद्र अपनी जाति के विरुद्ध तपस्या कर रहा है, और इस अनुचित काम के फलतया ब्राह्मण का पुत्र मर गया। तब श्रीरामचंद्र जी पुष्पकविमान में विराजकर दंडकारण्य पधारे और शूद्रक को ढूंढकर आपने समाप्त कर दिया। तुरंत ब्राह्मण का पुत्र जीवित हो उठा। फिर श्रीरामचंद्रजी अगस्त्यमुनि से मिले और उनसे एक अमूल्य आभरण को प्राप्त किया। (२) मथुरापुरी में लवणनामक एक असुर राज करता था जो साधुओं को बहुत दुख देता था। ऋषियों की प्रार्थना से श्रीरामचंद्रजी ने अपने भाई शत्रुघ्न जी को उधर भेजा जिन्होने उस दुष्ट को समाप्त कर वहां अपने राज्य की स्थापना की। (३) श्रीरामचंद्र भगवान के सब अवतार कृत्य जब समाप्त हो गये, तब एक दिन कालपुरुष एक मुनि के वेष में आकर श्रीरामचंद्रजी के साथ एकांत में वार्तालाप करने लगा। उसकी इच्छानुसार आपने लक्ष्मणजी को द्वार के बाहर खडे कर दिया और उनको यह आज्ञा दी कि, "किसीको अंदर नहीं छोडना; अगर कोई, इस आज्ञा की परवाह न करता हुआ अंदर आ जाएगा, तो उसको वध का दंड मिलेगा।" कुछ समय के बाद महर्षि दुर्वासा उधर आ गये, और तुरंत, उसी क्षण में प्रभु से मिलने की बात करने लगे। लक्ष्मणजी की सविनय प्रार्थना वाणी से नाराज होकर उन्होने श्रीरामचंद्रजी को शाप देने की धमकी दी। तब अगति होकर लक्ष्मणजी ने अंदर जाकर प्रभुसे महर्षि के आगमन की सूचना दी। आपको देखते ही कालपुरुष चला गया। फिर दुर्वासा का सत्कार किया गया। दुर्वासा के चले जाने पर श्री रामचंद्रजी को अपनी आज्ञा का भंग करनेवाले लक्ष्मण जी की याद आयी और आप विचार करने लगे कि पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार अब लक्ष्मण का वध करना आवश्यक है; परंतु यह काम किस तरह से किया जा सकता है। तब आपने वसिष्ठादि मंत्रि पुरोहितों से परामर्श किया, जिन्होने बताया कि किसी का त्याग कर देना, वधका समान दंड है; अतः लक्ष्मणजी का भी वधके बदले में त्याग कर देना उचित है। तब आपने उनको बुलाकर आज्ञा दी कि, "लक्ष्मण! तुमने मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर दिया; अतः मैं तुम को त्याग दूंगा; तुम इसी क्षण में यहां से चला जा।" तब लक्ष्मणजी बाहर गये और सरयूतट पर विराजकर योग से अपना शरीर छोडकर परमपद चले गये॥

अब इस गाथा में आल्वार यों कहते हैं कि उक्त चित्रकूट दिव्यदेश में विराजमान भगवान के दर्शन करने से विभवावतार के दर्शनालाभप्रयुक्त दुःख मिट जाएगा॥ .... (९)

(गाथा.) अन्नुचराचरङ्गळैवैकुंठत्तेत्ति अडलरवप्पहैयेरियशुरर्तम्मै
वेन्नु * इलङ्गुमणिनेडुन्तोळ्नान्गुन्तोन्न विण्मुळुदुमेदिर्वरत्तन्धाममेवि *
शेन्निनिदुवीत्तिरुन्दवम्मानृतन्नै त्तिल्लैनगर्त्तिरुचित्रकूटन्तन्नुळ् *
एन्नुमुन्निन्नानवनिवनेन्नेत्ति नाळुमिरैञ्जुमिनोयेप्पोळुदुम् तोण्डीर्नीरे॥ १०॥

अपने दिव्यधाम के लिए प्रयाण करने के उस दिन में, अयोध्यानिवासी समस्त चराचरवस्तुओं को परमपद भेजकर, बलिष्ठ सर्पों के शत्रु गरुडजी के ऊपर सवार होकर, असुरों को जीतकर, उस विजयलक्ष्मी से सुशोभित चारों भुजाओं को प्रकाशित करते हुए, परमपदनिवासी समस्त नित्यसूरिवर्गकृत स्वागत का स्वीकार करते हुवे, अपने स्वस्थान श्रीवैकुंठ दिव्य धाम पहुंच कर, अपने सारे वैभव को प्रकाशित करते हुए वहां सानंद विराजमान सर्वेश्वर भगवान को, यों मानते हुए कि परमपद के समस्त वैभव के साथ तिल्लैत्तिरुच्चित्रकूट में नित्यनिवास करते रहनेवाले भगवान, पूर्वोक्त श्रीरामचंद्रजी ही हैं, आपकी स्तुति करते हुए, हे भक्तजन! आपके ही भक्त रहकर प्रतिदिन आपको प्रणामकर उज्जीवित हो जाइए ॥

पूर्वगाथा प्रोक्त प्रकार से लक्ष्मणजी के निकल जानेपर, आपके विरह से संतप्त श्रीरामचंद्रजी ने, उसी क्षण में स्वयं भी परमपद पधारने का निश्चय किया। यह बात सुनकर अयोध्या निवासी समस्त प्रजावर्ग ने भगवान के विरह का सहन करने में अशक्त होकर, स्वयं भी आपके साथ ही जाने की रजा माँगी। प्रभुने उस प्रार्थना का स्वीकार किया और सबके साथ सरयूनदी की ओर प्रयाण किया। तब अयोध्या निवासी सभी मानवमात्र नहीं, वरन चराचरात्मक समस्त पदार्थ भी आपके साथ चलने लगे। अयोध्या तो बिलकुल प्राणिशून्य व सस्यशून्य हो गयी। इस तरह से सब को साथ लेकर श्री रामचंद्रजी ने सरयू पहुंचकर उसमें डूबकर गोता मारा। उठते ही आप शंखचक्रधारी अपने चतुर्भुज निजीरूप का धारण कर प्रत्यक्ष हो गये। आकाश में आपके स्वागत के लिए समस्त देवतागण ओर नित्यसूरिवर्ग हाजिर हो गये। तब भगवान अपने साथ आये हुए चेतनाचेतनरूप समग्र आत्मवर्ग को सांतानिक नामक एक श्रेष्ठ लोक में (जो श्रीवैकुंठ का ही एक भाग माना जाता है) पहुंचाकर, स्वयं परमपद पधारकर वहां पर अपने दिव्यसिंहासन में विराजमान हो गये। यह अवतार समाप्ति की कथा इस गाथा में अनुसंहित है। इससे श्रीरामायण कथा समाप्त हो गयी ॥ .... (१०)

(गाथा.) तिल्लैनगर्त्तिरुच्चित्रकूटन्तन्नुळ् तिरल्विळङ्गुमारुतियोडमर्न्दान्तनै *
एल्लैयिल्शीर्दशरथन्मह्नायुत्तोन्रित्तदुमुदला तन्नुलहम्पुकदीरा *
कोल्लियलुम्पडैत्तानैकोत्तवोळ्वाळ् कोलियर्कोन्कुडैकुलशेखरन्शोर्चेयूद *
नल्लियलिन्नृतमिळ्मालैपत्तुम्वल्लार् नलन्तिहळ्नारणनडिकीळ्नण्णुवारे ॥ ११ ॥

त्तिल्लैत्तिरुच्चित्रकूट क्षेत्र में बलपराक्रम युक्त हनुमानजी के साथ नित्यवास करनेवाले भगवान को लक्ष्यकर, शाश्वत कीर्तिवाले दशरथ चक्रवर्ती के पुत्रत्वेन अवतार लेने के प्रसंगसे शुरूकर, फिर परमपद प्रस्थानतक के श्रीरामायण के समग्र कथा भाग का संग्रह करते हुए, शत्रुओं का संहार करने में समर्थ आयुध का धारण करनेवाली सेना, प्रकाशमान विजयी तलवार इत्यादि से युक्त, उरैयूर के वास्तव्य समस्त जनों के नेता और विजयश्वेतच्छत्रवाले श्री कुलशेखरसूरिसे अनुगृहीत, काव्यलक्षणों से परिपूर्ण इन दस द्राविडी गाथाओं का अभ्यास करनेवाले परमपद में विराजमान श्रीमन्नारायण के पादारविंदों को प्राप्त करेंगे। (इस फलश्रुति के साथ यह दशक समापित किया गया ॥)

पूर्वोक्त प्रकार से जब भगवान के साथ अयोध्या के समस्त जीववर्ग भी चलने लगे, तब अकेले हनुमानजी श्रीरामकथा सुनते सुनते इस भूमंडलपर ही नित्यवास करने का वर माँगकर, तथैव पीछे रह गये। तथापि श्रीरामचंद्रजी से विरहित होना आपको बहुत बुरा लगा। आपकी इस विलक्षण भक्ति के परवश चित्त होकर भगवान भी आपको छोडकर परमपद पधारने में उदास हो गये। परंतु परम पद जाना अनिवार्य ठहरा। इस दुविधा में पडकर आपने परमपद पधार गये तो सही; तथापि वहां से लौटकर अर्चा रूप का धारण कर तिल्लैत्तिरुच्चित्रकूट में हनुमान जी के साथ नित्यनिवास करने लगे। अतः ऐसे भगवान का यशोगान करनेवाले भक्तलोग स्वयं भी आपसे नित्ययुक्त बन जायंगे॥ .... (११)

—* इस दशक के सारसंग्राहक पद्य ये दो हैं *—

श्लो॥ साकेते सूर्यवंशे दशरथभवने रामनाम्नाऽवतारम्
विश्वामित्राध्वरस्यावनमथ धरणीपुत्रिकोद्वाहभद्रम्।
पश्चात्कान्तारयात्रां भरतशिरसि पादूनिधानं च पश्चात्
राक्षस्या अङ्गभङ्गं खरमुखहननं मायिमारीचहत्याम्॥ १०॥

पश्चात्सीतावियोगं खगपतिदहनं वानरेन्द्रेण मैत्रीम्
वालिध्वंसं हनूमत्कृतपरपुरनिर्दाहमम्भोधिबन्धम्।
रक्षोराजोपमर्दं तदनुजपरमानुग्रहं राज्यभोगम्
कुम्भीसूनूक्तरक्षश्चरितनिशमनं चान्ततस्सूरिराह॥ ११॥

श्री कुलशेखर सूरिने इस दसवे दशक में श्रीरामचंद्रजी के इन दिव्यचरित्रों का वर्णन किया, कि—अयोध्यानगर में सूर्यवंश में दशरथचक्रवर्ती के वहां श्रीरामचंद्ररूप से भगवान का अवतार करना, विश्वामित्रयज्ञ संरक्षण, सीता विवाहमंगल, वन के लिए प्रस्थान, भरतजी को पादुकाप्रदान, शूर्पणखा राक्षसी का अंगभंग, खरदूषणादि राक्षसों का संहार, मारीच मायामृग का वध, सीतावियोग, जटायुमोक्षप्रदान, सुग्रीव से स्नेह, वाली का वध, हनुमानजी से लंकापुरीदाहन, समुद्र में सेतुबंधन, रावणसंहार, विभीषण राज्याभिषेक, अयोध्या में राज्यभार का स्वीकार, अगस्त्य कथित राक्षसावृत्तांत श्रवण, और अंततः परमपद प्रयाण॥ (१०, ११)

श्लो॥ अण्णंगार्यकृतं विवर्तमनुसृत्यामर्त्यवाणीमयं
श्रीमद्यादवशैलवासरसिकस्सम्पत्कुमाराह्वयः।
अक्कारक्कनिवंश भूषणवरो हिन्दीगिराऽनूदितां
चक्रे श्रीकुलशेखरस्य फणितिं दिव्यप्रबन्धेष्विमाम्॥

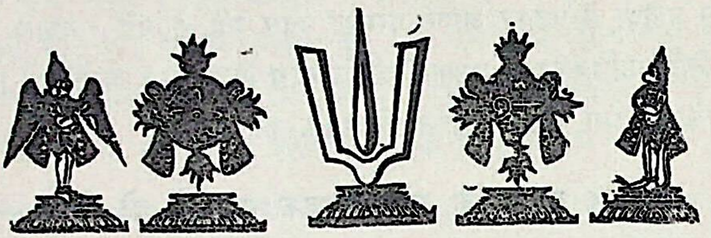
॥ पेरुमाळ् तिरुमोळि में दसवां दशक समाप्त हुआ॥
॥ यह दिव्यप्रबंध भी समाप्त हुआ॥
॥ कुलशेखर आळ्वार तिरुवडिहळे शरणम्॥

॥ श्रीरस्तु ॥

श्रियः कान्ताय नमः

श्रीपराङ्कुशपरकालयतिवर वरवरमुनीन्द्रेभ्यो नमः ॥

श्रीमते भक्तिसारसूरये नमः ॥



द्राविडवेद नामक चार हजार दिव्यप्रबंध के पहले हजार का छठां प्रबंध

श्री भक्तिसारमुनींद्र विरचित

॥ *तिरुच्चन्दविरुत्त* अथवा *श्रीभक्तिसारसूक्त* ॥

श्रीकाञ्ची जगदाचार्यसिंहासनाधीश–श्रीप्रतिवादिभयङ्कर-अण्णङ्गराचार्यस्वामि विरचित संस्कृतव्याख्यानानुसारसे श्रीयादवाद्रि. अक्कारकनि. विद्वान् संपत्कुमाराचार्य विलिखित

हिन्दी टीका समेत।

तनियन् अथवा मुखपद्य

(गाथा.) तरुच्चन्द प्पोळिल् तळुवु तारणियिन् तुयर्तीर * तिरुच्चन्दविरुत्तम् शेयू तिरुमळिशै परन् वरुमूर् *
करुच्चन्दुम् कारहिलुम् कमळ् कोङ्गु मण नारुम् * तिरुच्चन्दत्तुडन्मरुवु तिरुमळिशै वळम्पदिये ॥

वृक्षों से मनोहर उद्यानवनों से परिवृत इस भूमंडल पर निवास करने वाले मानवों का दुःख मिटाने के लिए, तिरुचंदविरुत्त नामक दिव्यप्रबंध रचनेवाले, तिरुमळिशै आळ्वार नामसे प्रसिद्ध श्रीभक्तिसार मुनींद्र का अवतारस्थल, श्रेष्ठ चंदन इत्यादि अनेक वृक्षोंसे सुवासित श्री महालक्ष्मीजी का अत्यंत स्पृहणीय वासस्थल तिरुमळिशै नामक महीसार क्षेत्र है।

जैसे भगवान से भी आपसे अधिष्ठित दिव्यदेशों का वैभव अधिक है, इसी तरह से दिव्यसूरियों से उनके अवतारस्थल का वैभव अधिक माना जाता है। अत एव इस पद्य में तथा आगे के पद्य में (एवं अन्यत्र भी क्वचित् क्वचित् तनियन् पद्यों में) प्रसक्त दिव्यसूरि की स्तुति किये विना, उनके अवतारस्थल की ही प्रशंसा की जाती है। अस्तु। प्रकृत पद्य का यह तात्पर्य है कि, जैसे भक्तिसारमुनि ज्ञानभक्ति वैराग्यादियों की सुगंध से प्रचुर थे, इसी तरह से आपका अवतार स्थल महीसार क्षेत्र भी चंदन इत्यादि श्रेष्ठ वृक्षों की सुगंध से व्याप्त है॥ .... (१)

(गाथा.) उलहु मळिशैयु मुळ्ळुणर्न्दु तम्मिल् - पुलवर् पुहळ् कोलाल् तूक्क - उलहुतन्नै
वैत्तेडुत्त पक्कत्तुम् मानीर्मळिशैये * वैत्तेडुत्त पक्कम् वलिदु ॥ २ ॥

सर्वज्ञ चतुर्मुख ब्रह्माजी ने दूसरे समस्त भूभागको एवं महीसारक्षेत्र को प्रत्येक प्रत्येक अपने मन में तोलकर, फिर विश्वकर्मा के द्वारा दिव्यतुला मंगवाकर उससे तुलवा दिया। तब समस्त भूमंडल का आधार धडे से तीर्थ समृद्ध महीसारक्षेत्र का आधार भूत धडा ही वजनदार मालुम पडा ॥

इस पद्य में, प्रकृत आळ्वार की जन्मभूमि का जो नाम है, महीसार क्षेत्र, उसका अर्थ बताया जाता है। महीसार शब्द का अर्थ है भूमंडल में सब से श्रेष्ठ क्षेत्र। एक समय में विश्वकर्मा ने ब्रह्माजी की आज्ञा से एक दिव्य तराजू लेकर उसकी एक ओर सारे पृथ्वीमंडल को और दूसरी और इस क्षेत्रको रखकर तोल दिया। तब यही क्षेत्र वजनदार दीख पडा। तब से इसका श्रीमहीसार क्षेत्र नाम पडा, जिसका द्राविडी रूप है तिरुमळिशै। इस क्षेत्र में अवतार लेने से श्री भक्तिसार मुनि का भी शुभनाम तिरुमळिशै आळ्वार हुआ। यह वैभव इस तनियन् पद्य में बताया गया है ॥ (२)

॥ श्रीरस्तु ॥

श्रीपराङ्कुश परकाल यतिवर वरवरमुनिभ्यो नमः

श्रीमते भक्तिसारसूरये नमः

॥ तिरुच्चन्दविरुत्त दिव्यप्रबन्ध अवतारिका ॥

तिरुमळिशै आळ्वार से अनुगृहीत दो दिव्यप्रबंधों में, पहला प्रबंध "नान्मुकन् तिरुवन्दादि," इयर्पा नामक तीसरे हजार में मिलाया गया है और दूसरा प्रबंध "तिरुचंदविरुत्त" पहले हजार का छठां प्रबंध माना गया है। तिरुचन्दविरुत्त शब्द में तिरु का अर्थ तो श्री है और विरुत्त शब्द संस्कृतभाषा के वृत्त शब्दका विकार है। संस्कृत भाषा में जैसे वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित इत्यादि वृत्त रहते हैं, इसी तरह से द्राविडी में भी आशिरियविरुत्तम्, कलिविरुत्तम् इत्यादि कतिपय वृत्त होंते हैं। प्रकृतप्रबंध तो इन में से एक, आशिरिय वृत्त में, बनाया गया हैं। अतः इसका नाम ही वृत्त रखा गया। छंद शब्द का अर्थ तो हाल में "मनोहरध्वनि वाला"। अर्थात् यह प्रबंध, सुनने बडा ही मनोहरध्वनियुक्त वृत्तों से रचाया गया है; अतः इसका नाम हुआ तिरुचंदविरुत्त। इस प्रबंध का पाठ होने के समय में इसका माधुर्य जाना जा सकता है।

वेदान्त के तत्वार्थों का प्रकाशक ग्रंथों में पहला स्थान प्रकृत ग्रंथ को मिलना चाहिए। इस में संश्लेष, विश्लेष, दूतप्रेषण इत्यादियों का बिलकुल स्थान नहीं हैं। आळ्वार की जीवनी में दो अंश प्रधान प्रतीत होते हैं, जो इस दिव्यप्रबंध में भी स्पष्ट प्रतिपादित हैं। (१) आळ्वार नाना मतों में प्रवेशकर, उन उन मतों का अध्ययन कर, उन सबको सारशून्य समझकर, अंत में श्रीवैष्णव मत में प्रविष्ट होकर, इसीमें

स्थिर रह गये। अतः आप अपने इस ग्रंथ में श्रीमन्नारायण के परत्व की, तथा देवतांतरोंकी अवरत्व की स्थापना खूब करते हैं। और वेदांतप्रोक्ततत्वोंका सुंदरवर्णन भी करते हैं। (२) योगेराज होने से आप अपने हृदयकमल में विराजमान अंतर्यामी भगवान के सदा दर्शन करते थे; अतः इस प्रबंध में भी आप भगवानके अंतर्यामित्व का सुंदर वर्णन करते हैं। इसके अलावा दिव्यदेशों का वर्णन भी तत्र तत्र है ही, जिससे आपकी अर्चावतारनिष्ठा भी व्यक्त की जाती है। तथा च यों समझना चाहिए कि आळ्वार, भगवान का दिव्यात्मस्वरूप, ज्ञानशक्त्यादि अनंतकल्याणगुण, गुणप्रकाशक नानाविध अवतार, अवतारचेष्टित, दिव्यमंगलविग्रह, दिव्यभूषण, दिव्यायुध, दिव्यमहिषियां, दिव्य परिजन परिचारकादिवर्ग, इत्यादि अनेक अंशोंका साक्षात्कार पाकर, ऐसे साक्षात्कार जनित आनंद के परीवाहतया इस प्रबंध की रचना कर रहे हैं। इस प्रबंध में दशक आदि विभाग नहीं है॥ * * *

॥ श्री भक्तिसारमुनींद्र प्रणीत तिरुच्चंदविरुत्त दिव्यप्रबंध ॥

(गाथा.) पूनिलायवैन्दुमाय् पुनर्क्कणिन्न नान्गुमाय् * तीनिलाय मून्नुमाय् शिरन्द कालिरण्डुमाय् *
मीनिलायदोन्नुमाहि वेरुवेरु तन्मैयायू * नी निलाय वण्णनिन्न यानिंनैक वल्लरे ॥ १ ॥

(हे भगवन्!) भूमिगत पांच गुणरूपी, जल गत चार गुणरूपी, अग्निगत तीन गुणरूपी, (समस्त प्राणियों का जीवनाधार होने से श्रेष्ठ माने जानेवाले) वायु के दो गुणरूपी, आकाशगत एक गुण-रूपी एवं परस्परविसदृश देवादि पदार्थरूपी होकर विराजमान आपको (स्वप्रयत्न से) पहचान कर कौन जान सकता?

इस पद्य में भगवान का महाभूतादि सर्वभूतनियामकत्व बताया जाता है। भगवान पंचभूतों के तत्तद्गुणरूपी हैं, कहने का यह तात्पर्य है कि आप उन गुणों के नियामक हैं। जब आप गुणों के ही नियामक होते हैं, तब तदाधार द्रव्य के नियामक, (एवं अंतर्यामी) होना सिद्ध हैं। एवं इन पांचों की मिलाप से बननेवाले देव मनुष्य तिर्यक् स्थावर रूप समस्त परस्पर विलक्षण पदार्थों में भी भगवान अंतर्यामी और नियामक होते हैं। अतः इस पद्य से वेदांत में अंतर्यामिब्राह्मणादि में उपदिष्ट भगवान का सर्वांतर्यामित्व तथा सर्वनियामकत्व बताया जाता है। तथा च यों समझना चाहिए कि इस पद्य में विशिष्टाद्वैत सिद्धांत का मुख्य अर्थ, जिसको प्रधानप्रतितंत्रार्थ कहते हैं, बताया गया। वह यही है कि भगवान सर्वपदार्थों के अंतर्यामी व नियामक होकर उन उन वस्तुओं के नाम से स्वयं पुकारे जाते हैं। इस अर्थको दूसरे मतवाले नहीं मानते हैं, अर्थात् इसमें भगवत्कृत उन वस्तुओं की सृष्टि भी बतायी जाती है, जिससे आपका जगत्सृष्टिकर्तृत्व सिद्ध होता है।

भगवद्गीता में विभूतिविस्तरयोगनामक एक अध्याय है (दसवां अध्याय,) जिस में "रसोऽहमप्सु कौन्तेय" इत्यादि से भगवान अपने को जल का रस, भूमि की सुगंध, इत्यादि बताते हैं। कोई लोग अद्वैत की छाया से इससे सर्वं ब्रह्म, ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या इत्यादि अर्थ न कर डालें इस लिए भगवान उस

अध्याय के अंतिमश्लोक में यों कहते हैं कि "मैं समस्त पदार्थों के अंतर्यामी होकर, उनका नियमन भी करता हूं, अतः मैं ही सर्वपदार्थरूपी हूं।" श्रीभक्तिसार मुनींद्र इसीको मन में रखकर यहां पर भगवान को गंध रूप रस स्पर्श शब्द इत्यादिरूपी बता रहे हैं।

वेदांत का सिद्धांत है कि पंचभूतों में से आकाश में शब्द एक ही गुण है; वायु में शब्द और स्पर्श ये दो गुण हैं; अग्नि में शब्द स्पर्श रूप नामक तीन गुण हैं; जल में शब्द स्पर्श रूप रस नामक चार गुण हैं और पृथिवी में शब्द स्पर्श रूप रस गंध नामक पांच भी गुण हैं। तैत्तिरीय उपनिषद में पंचभूतों की उत्पत्ति इस प्रकार से उपवर्णित है—पहले आकाश उत्पन्न हुआ, उससे वायु, उससे अग्नि, अग्नि से जल, और जल से पृथिवी उत्पन्न हुई। आकाश का गुण शब्दमात्र है। उससे उत्पन्न भूत, वायु में आकाश का गुण शब्द और वायु का स्वकीय गुण स्पर्श, ये दो गुण हुए। फिर अग्नि में स्वकारणभूत वायु के दो गुणों के साथ, तीसरा एक गुण, रूप हुआ। इसी तरह से जल में अग्नि के तीन गुण और अपना एक नया गुण रस, ऐसे चार गुण हो गये और पृथिवी में गंध से मिलकर पांच गुण हो गये। अर्थात् एकैक भूत में भी अपने कारणभूत भूत के गुणों के साथ स्वकीय एक गुण अधिक हो गया, यों समझना चाहिए। यद्यपि वेदांतियों के पंचीकरण प्रक्रिया के अनुसार एकैक भूत में भी दूसरे चार भूतों के अंश भी रहते हैं, अतः उनके गुण भी रहेंगे ही। तथापि वे गुण अप्रधान रहते हैं। यहां तो प्रधान गुणों का ही वर्णन है। अथवा, पंचीकरण से पहले की अवस्था का यह वर्णन है। बाद की अवस्था का वर्णन तो आगे किया जाएगा। श्री विष्णुपुराण में भी पंचभूतों की यही गुणव्यवस्था बतायी गयी है—"आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा। शब्दादिभिर्गुणैर्ब्रह्मन् संयुतान्युत्तरोत्तरैः॥ (१-२-५०) इत्यादि॥ .... (१)

(गाथा.) आरुमारुमारुमाय् ओरैन्दुमैन्दुमैन्दुमाय् * एरुशीरिरण्डुमून्रुम् एल्रुमारुमेट्टुमाय् *
वेरुवेरुज्ञानमाहि मेय्यिनोडुपोय्युमाय् * ऊरोडोशैयायवैन्दुम् आयवायमायने॥ २॥

हे अध्ययनादि षट्कर्मों के निर्वाहक! हे पूर्वोक्तकर्मानुष्ठान के लायक वसंतादि षड्तुनिर्वाहक! हे आग्नेयादि षड्याग समाराध्य! हे पंचमहायज्ञ समाराध्य! हे पंचाहुति पूजनीय! हे पंचाग्निशरीरक! हे अति श्रेष्ठ ज्ञान विरक्तिरूप दो वस्तुओं के नियामक! हे परभक्ति परज्ञान परमभक्तिरूप पदार्थ त्रितय के दाता! हे विवेकादि साधनसप्तके निर्वाहक! हे ज्ञानशक्त्यादि षाड्गुण्यनिधे! हे अपहतपाप्मत्वादि गुणाष्टक प्रचुर! हे वाह्यकुदृष्ट्यादि नानामतों के निर्वाहक! हे यथार्थ ज्ञानवाले भक्तों के लिए यथार्थभूत! हे अयथार्थ ज्ञानवाले नास्तिक आदियों के लिए अयथार्थ भूत! हे स्पर्श शब्दादि पंचविषयों के निर्वाहक! हे गोपालों के सजातीय होकर अवतार करनेवाले अत्याश्चर्यमय भगवन्! ऐसे महामहिम आपको ठीक पहचानकर, आपकी इयत्ता को कौन जान सकता है?

इस गाथा का पूर्वार्ध केवल संख्याओं से भरपूर है। उसमें इतना ही कहा गया है कि छः, छः, छः, पांच, पांच, पांच, दो, तीन....इत्यादि रूप! यह तो एक समस्यात्मक है, जिसका अर्थ आचार्यों

से उपदेश पाने से ही जाना जा सकता है। पूर्व गाथा की भांति इसमें भी भगवान तत्तत्संख्या से सूचित उनउन पदार्थरूपी बताये जाते हैं। इसका यह तात्पर्य है कि भगवान उन उन पदार्थों के यथायोग, अंतर्यामी, नियामक, संचालक, आधार, प्रदाता इत्यादि होते हैं। अब इन संख्याओं का विवरण करेंगे। अध्ययन अध्यापन यजन याजन दान प्रतिग्रह रूप छः काम, जिनको षट्कर्म कहते हैं, ये ब्राह्मणों का कर्तव्य माने जाते हैं; ये सब भगवान से नियुक्त हैं। इनका अर्थ है—वेदशास्त्र आदियों को स्वयं पढना और दूसरों को पढाना, याग करना, दूसरों से कराना, दान करना और दान लेना। उक्त यज्ञादि काम करने लायक वसंत ग्रीष्म वर्षा शरत् हेमंत व शिशिर नामक छः ऋतु भी भगवान से ही परिकल्पित हैं। षड् याग शब्द से आग्नेय, अग्नीषोमीय, उपांशुयाज, ऐन्द्रं दधि, ऐन्द्रं पयः, ऐन्द्राग्न नामक छः यागों को समझना चाहिए। इनमेंसे पहले के तीन याग पूर्णिमा के दिन किये जाने से पौर्णमास पुकारे जाते हैं; और दूसरे तीन याग दर्श अथवा अमावास्या के दिन किये जाते हैं; अतः उनका नाम दर्श रखा गया है। इस तरह से तीन तीन यागों की मिलाप से बननेवाले दो यागरूपी यह महान यज्ञ दर्शपूर्णमास कहा जाता है और यह अपने अनुष्ठाता को स्वर्ग दिलाता है। भगवान को इस यज्ञरूपी बतानेका यह तात्पर्य है कि भगवान इससे समाराध्य हैं। अत एव गीताजी में आपने स्पष्ट कह दिया कि "अहं हि सर्वयज्ञनां भोक्ता च प्रभुरेव च।" इत्यादि। बाद में तीन पांच वस्तु गाथा में कीर्तित हैं, उनका यह अर्थ है—देवयज्ञ पितृयज्ञ भूतयज्ञ मनुष्ययज्ञ व ब्रह्मयज्ञ नामक पांच महायज्ञ हैं, जो प्रतिदिन अवश्यकर्तव्य होते हैं, और जिनसे भगवान पूजित होते हैं। भोजन करने के समय में प्राण अपान व्यान उदान समान नामक पंच प्राणों के लिए जो पांच आहुतियां दी जाती हैं, इनका भी लक्ष्य भगवत्पूजा ही है। गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सभ्य, आवसथ्य नामक पांच श्रौत अग्नि है, जिनमें भगवान विराजमान होकर आहुतियों का स्वीकार कर लेते हैं। यद्यापि त्रेताग्नि नाम से प्रसिद्ध गार्हपत्य दक्षिणाग्नि व आहवनीय नामक तीन अग्नि ही श्रौताग्नि माने जाते हैं। तथापि कितने सूत्रकारों के मत में सभ्य व आवसथ्य भी श्रौताग्नित्वेन कथित हैं। उनके मतानुसारेण यहां पांच अग्नि बताये गये। गाथा के दूसरे पाद में दो शब्द से ज्ञान व उसका फल वैराग्य लिये जाते हैं। साधक के लिए ये दो वस्तु अत्यंत आवश्यक हैं। अत एव स्तोत्ररत्न में श्रीमन्नाथमुनि स्वामीजी के ये दो विशेषण दिये गये, "नमोऽचिन्त्याद्भुताक्लिष्ट ज्ञान वैराग्यराशये" इत्यादि पद्य में। दूसरा तीन शब्द पूर्वोक्तज्ञान वैराग्य से मिलनेवाले परभक्ति परज्ञान परमभक्ति नामक तीन वस्तुओं का वाचक है। ये तीनों भक्ति की, एक से दूसरी बढकर श्रेष्ठ तीन अवस्थाएं हैं। तथा च पूर्वोक्त दो, और ये तीन, ये सभी भगवत्कृपा से ही मिल सकते हैं, ऐसा समझना चाहिए। आगे सात शब्द से श्रीभाष्य के उपक्रम में भगवान श्रीभाष्यकार स्वामीजी से उपवर्णित साधकसप्तकों क समझना चाहिए। ये भी भगवत्कृपा से ही मिल सकते हैं। विवेक विमोक अभ्यास क्रिया कल्याण अनवसाद व अनुद्धर्ष ये साधनसप्तक हैं। विवेक शब्द का यह अर्थ है कि जाति आश्रय निमित आदि से दुष्ट अन्न को छोडकर सर्वथा दोषरहित अन्न का सेवन कर उससे शरीर को शुद्ध रखना। शरीर के शुद्ध रहने पर साधक का मन भी शुद्ध माने रजस्तमोगुणों से दूर हो कर शुद्ध सात्विक रहता है। विवेक शब्द से कामक्रोधादि में आसक्त न होना, यह अर्थ समझा जाता है। ध्येय वस्तु का पुनः पुनः ध्यान करते रहना, अभ्यास कहा जाता है, जिससे ध्यान मजबूत बनता है।

यथाशक्ति नित्यकर्मानुष्ठान पंचमहायज्ञ इत्यादियों का अनुष्ठान करना क्रिया पुकारा जाता हैं। सत्य आर्जव दया दान अहिंसा व अनमिध्या, ये छः मिलकर कल्याण कहे जाते हैं। (अनमिध्या का अर्थ यह है कि अपने विषय में दूसरों से किये जानेवाले अपराध की चिंता न करना)। आर्जव तो ऋजुता, अथवा सीधापन है। सत्यादि तो प्रसिद्ध हैं।) अनवसाद का अर्थ है, दुःख कारण के रहने पर भी दुःख न करना। अनुद्धर्ष का अर्थ है संतोष कारण के रहते हुए भी उससे न फूलकर, शांतचित्त रहना। बाद में षट्क शब्द से भगवान के प्रसिद्ध व प्रधान ये छः गुण कहे जाते हैं—ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य व तेज। अष्टकशब्द से छांदोग्योपनिषद में उपवर्णित ये आठ गुण बताये जाते हैं—पापसंबंध शून्य रहना, जरा शून्य होना, मरणवर्जित, शोकरहित, बुभुक्षाशून्य (भूख से विरहित), पिपासा विरहित (विनाप्यास) रहना और सत्यकाम व सत्यसंकल्प होना। जिसकी सभी इच्छायें पूर्ण हैं, वह सत्यकाम हैं; जिसका संकल्प व्यर्थ न होगा वह सत्यसंकल्प है। ये आठ गुण भगवान में परिपूर्ण रहते हैं और आपकी कृपा से मुक्त पुरुष को भी मिलते हैं।

तीसरे पाद में भगवान विभिन्न मतों के प्रवर्तक, एवं सत्य व असत्य कहे जाते हैं। इसका अर्थ अनेक प्रकार से होता है। श्रीविष्णुपुराण (३—१८) में स्पष्ट बताया गया है कि स्वयं भगवान ने ही किसी कारणार्थ जैन बौद्धादि वेदनिंदक मतों का भी संचालन किया। देश काल अधिकारियों के भेद से और वैदिक मत की सुरक्षा के लिए स्वयं भगवान ही नाना मत चलाते हैं। आस्तिक होकर अपनी शरण में आनेवालों को भगवान अपने स्वरूपरूपगुणादियों का साक्षात्कार देकर सत्य दीखते हैं; और नास्तिकों से अपने स्वरूपादि को छिपाकर रहते हैं; अर्थात् उनके लिए आप असत्य ही हैं। अथवा परिपूर्ण भक्तिवाले परमभक्तों को मोक्षनामक परमपुरुषार्थ देकर आप सत्य होते हैं; ऐश्वर्यादि क्षुद्र पुरुषार्थ माँगनेवालों को उन अल्प व असत्य वस्तुओं को ही देकर स्वयं उनसे दूर रह जाते हैं। चौथे पाद में इंद्रियों के अपनी ओर खेंचनेवाले शब्द स्पर्श रूप रस व गंध नामक पांच विषय बताये जाते हैं, जिन में मग्न होने से साधक भगवान से दूर हो जाता हैं। परमभक्तों के लिए तो स्वयं भगवान ही ये पांचों विषय बनते हैं; अर्थात् संसारी मानव उक्त पांच विषयों के अनुभव से जो सुख पाता है, आळ्वारों को वही सुख (अथवा उससे भी हजारगुण अधिक सुख) भगवदनुभव से मिलता है। और यह भी बात है कि किसी साधक को प्रयत्न करने पर भी इनही विषयों में मग्न होना, और दूसरे किसी से इनको जीतकर भगवान पर ही ध्यान लगाना, ये दोनों भगवदधीन है। अंत में कृष्णावतार का प्रस्ताव करने से यह सूचित किया जाता है कि भगवान उक्त प्रकार से समस्त पदार्थों के नेता होकर भी, अत्यंत सौलभ्य के कारण, संसारियों का उद्धार करने के लिए सर्वश्रेष्ठ अपने दिव्यमंगलविग्रह को ही सामान्य गोपसजातीय बनाकर यहां पर अवतार लेते हैं। अत एव आप "मायन्" यानी अत्याश्चर्यमय पुकारे जाते हैं। उक्त प्रकार से सर्वनिर्वाहक होना, यही एक आश्चर्य है, और उसके उपरांत, परात्पर होकर भी अतिहीन गोपजन्म लेना बडा ही आश्चर्य है॥.... (२)

(गाथा.) ऐन्दुमैन्दुमैन्दुमाहि अळ्ळवत्तुळायुमाय् * ऐन्दुमून्दुमोन्दुमाहि निन्नवादिदेवने *
ऐन्दुमैन्दुमैन्दुमाहि अन्दरत्तणैन्दु निन्नु * ऐन्दुमैन्दुमाय निन्नै यावर् काणवल्लरे ॥३॥

हे पृथिवी जल तेज वायु आकाश नामक पंचभूतस्वरूपिन्! हे चक्षु (आँख), जिह्वा (जीभ), घ्राण (नाक), त्वक् (त्वचा), श्रोत्र (कान) नामक पांच ज्ञानेंद्रियात्मक! हे वाक्, पाणि (हाथ), पाद, पाय (गुदा) उपस्थ (लिंग) नामक पांच कर्मेंद्रियात्मक! हे पृथिव्यादि पंचभूततन्मात्र स्वरूपिन्! हे प्रकृति महान अहंकार नामक तीन वस्तुस्वरूपिन्! हे मन के निर्वाहक! इस तरह से उक्त चौबीस तत्वों के भी हे निर्वाहक! हे पूर्वोक्त अचेतन तत्वों से विलक्षण चेतनों के भी अंतर्यामिन्! हे आदिदेव! हे वैकुंठ नित्यनिवासरसिक! वे तत्रत्य अप्राकृत परमेष्ठी, पुमान्, विश्व, निवृत्त व सर्वनामक पांच शक्तियाँ, अप्राकृत ज्ञानेंद्रिय पांच, अप्राकृत पांच कर्मेंद्रिय, इन सबके हे निर्वाहक! अप्राकृत शब्दादि पांच भोग्य पदार्थ, भोगस्थान, भोगोपकरण, वैकुंठामर, वैकुंठमुनि व मुक्त नामक तीन प्रकार के चेतन, ये सब मिलकर पांच प्रकार के अप्राकृत पदार्थों के हे निर्वाहक परमपुरुष! ऐसे आपको कौन ठीक ठीक जान सकता है?

इस गाथा में यों कहा जाता हैं कि लीलाविभूतिगत समस्त चेतनाचेतन पदार्थों के, एवं नित्य विभूति के समस्त पदार्थों के अंतर्यामी नियामक इत्यादि रहनेवाले भगवान का, उनकी कृपा से लब्ध दिव्य चक्षुवाले आळ्वार के समान भक्ताग्रेसर ही ठीक साक्षात्कार कर सकते हैं; न तु दूसरा स्वयत्नशील कोई पुरुष। इन में पंच भूत, कर्मेंद्रिय व ज्ञानेंद्रिय तो प्रसिद्ध हैं। भूतों की सूक्ष्मावस्था को तन्मात्र कहते हैं; जैसा कि पृथिवी की सूक्ष्मावस्था गंधतन्मात्र, जलकी रसतन्मात्र इत्यादि। इन सब का मूल कारण मूल प्रकृति है। जगत्सृष्टि के समय में इस के परिणाम से होनेवाली दो अवस्थाएं महान व अहंकार हैं। मन इन सबसे विलक्षण है। वैकुंठ लोक में भी दिव्य लोक मंडप मंदिर उद्यानादिरूप में परिणाम पानेवाली वस्तु को पंचशक्ति कहते हैं। भगवान के और अन्य नित्य व मुक्त चेतनों के दिव्य विग्रह भी इससे बनते हैं। लीलाविभूति के पंचभूत, दोषदुष्ट, अनित्य, परस्पर विरुद्ध, दुःखद इत्यादि होते हैं। पंच शक्ति तो इन से एकदम विरुद्ध होते हैं। परमपदनिवासी इंद्रियादि के विना भी जान सकते हैं, काम कर सकते हैं। तथापि वे कदाचित् भगवत्प्रेरणाधीन अपनी इच्छा से शरीरेंद्रियों को लेते भी हैं। अतः अप्राकृत कर्मज्ञानेंद्रिय होते हैं। एवं परमपदनिवासी चेतनों के तीन विभाग होते हैं। परमपद में नित्यनिवास करनेवाले, गुणानुभव करने निरत एवं कैंकर्य करने निरत नित्यसूरि लोग; तथा भगवत्कृपा से संसार से छूटकर परमपद पहुंचने वाले प्रसिद्ध मुक्त॥ .... (३)

(गाथा.) मून्नुमुप्पदारिनोड्ड ओरैन्दुमैन्दुमैन्दुमाय् * मून्नुमूर्त्तियाहि मून्नुमून्नुमून्नुमून्नुमाय् *
तोन्नुशोदि मून्नुमाय् तुळक्कमिल् विळक्कमाय् * एन्नेनावियुळ्पुहुन्ददु एन्गोलो वेम्मीशने॥

तेत्तीस व्यंजनाक्षर, सोलह स्वराक्षर, ळकारादि पांच अक्षर, कुल चौपन अक्षरवाली वर्णमाला के हे निर्वाहक! हे ऋक् यजु व साम नामक तीन वेदस्वरूप! हे द्वादशाक्षरी महामंत्र से प्रतिपाद्य! हे तीन अक्षरों की मिलाप से बने हुए प्रणव से प्रतिपाद्य, ज्योतिस्स्वरूप! हे शाश्वतदीपरूप अकार के वाच्य! हे हमारे निरुपाधिक शेषिभूत! मेरे सर्व भर को अपने सिरपर लेकर आप मेरे हृदय में घुसकर विराजमान हैं। यह आपका कैसा सौशील्य हैं?

भगवान ने अक्षरराशिरूप वेदों का और मंत्रों का प्रदान इस लिए किया कि उनके अध्ययन से मानव ज्ञान को प्राप्त कर उपासना से परमपुरुषार्थ प्राप्त करें। परंतु, आळ्वार कहते हैं कि मैं ने न तो शास्त्रों का अध्ययन किया, न वा मंत्रों से उपासना की। तथापि, हे भगवन्! आप ही स्वयं इन सब कामों को अनुष्ठित मानकर मेरे मन में सुप्रतिष्ठित हो गये; अर्थात् मुझे अपना मानसिक साक्षात्कार देकर, आपने ही मुझे अपने ध्यान में नित्यमग्नमानस बना दिया। अहो! आपका यह सौशील्य वाचामगोचर है!

अकारादि विसर्गांत स्वर और ककारादि हकारांत व्यंजन प्रसिद्ध हैं। ळ, क्ष, ज्ञ, ×क, ×प ये पांच भी वर्णमाला में संमिलित अक्षर माने जाते हैं, और मंत्र शास्त्रों में इस रूप में विनियुक्त हैं। अतः यों आक्षेप नहीं उठाना चाहिए कि क्ष, ज्ञ, ये दोनों संयुक्ताक्षर होने से नये अक्षर कैसे माने जा सकते हैं। प्रणव के एकाक्षर होने पर भी, वह अकार उकार मकारों की मिलाप भी माना जाता है। और अकार उस प्रणव का मूल माना जाता है। अतः समस्तवेदों के मूल प्रणव का मूल होने से अकार सर्ववेद बीज पुकारा जाता है। भगवान अक्षरराशिरूप समस्त वेदप्रतिपाद्य हैं; प्रणवप्रतिपाद्य हैं और अकारार्थ भी होते हैं। द्वादशाक्षरी मंत्र कहने से षडक्षरी व अष्टाक्षरी मंत्रों को भी समझना चाहिए। ये सब मंत्र विशेषतः भगवान के प्रतिपादक होते हैं। .... (४)

(गाथा.) निन्नियङ्गुमोन्नला उरुकडोरुमावियाय् * ओन्नियुन्द्र् कलन्दुनिन्न निन्नतन्मैयिन्नदेन्तु *
एन्तुम्म् यार्कुमेण्णिरन्द आदियायू निन्नुन्दिवाय् * अन्नु नान्मुहन्पयन्द अदिदेवनल्लैये॥

स्थावर व जंगमरूप से नानाप्रकारवाले शरीरों में उनके अंतरात्मा के रूप में सर्वत्र परिपूर्ण होकर विराजनेवाले आपके स्वभाव को 'यह ऐसा है' करके कोई भी कभी भी ठीक न जान सकेगा। हे जगत के आदिकारणभूत स्वामिन्! पूर्वकाल में अपने नाभीकमल से चतुर्मुख ब्रह्मा की सृष्टि करनेवाले आदिदेव आप ही हैं न? .... (५)

(गाथा.) नाहमेन्दुमेरुवेप्पैं नाहमेन्दुमण्णिनै * नाहमेन्दुमाहमाह माहमेन्दुवार्पुनल्द *
माहमेन्दुमङ्गुल्तीयोर् वायुवैन्दमैन्दु कात्तु * एहमेन्दिनिन्ननीमैं निन्गणेयियन्नदे॥ ६॥

हे नागराज से विधृत दिव्यमंगलविग्रहवाले (अर्थात् हे शेषशयन!) स्वर्गलोक का धारण करनेवाला मेरुपर्वत, दिग्गजों से धृत भूमि, परमपद, आकाश में बहनेवाली गंगाजी, आकाश में फैले हुवे मेघमंडल, वैश्वानर नामक अग्नि, प्राणापानादि पंचवृत्ति प्राण, इन सब का ठीक आप पालन करते हैं। उपनिषदों में उपवर्णित यह वैभव कि, "एक ही अद्वितीय वस्तु समस्तपदार्थों का धारण करता है," आपमें ही विराजमान है।

यह अर्थ बताया गया कि उभयविभूतिगत समस्त पदार्थों के धारक एक मात्र भगवान हैं। अब इस गाथा में उसी अर्थ का विवरण करते हुए यों बताया जाता है कि दूसरे के आधारत्वेन शास्त्रसिद्ध सभी पदार्थों के भी धारक भगवान ही हैं। .... (६)

(गाथा.) ओन्निरण्डु मूर्त्तियाय् उरक्रमोडुणर्न्चियाय् * ओन्निरण्डुकालमाहि वेलैञालमायिनाय् *
ओन्निरण्डुतीयुमाहि आयनाय मायने * ओन्निरण्डुकण्णिनानुम् उन्नैयेत्तवल्लने ॥ ७ ॥

ब्रह्मा व रुद्र इन दोनों के अंतरात्मा होकर विराजमान हे प्रधानमूर्ते ! भक्तिहीनों को यथावस्थित स्वरूप प्रकाश का बंद कर तमोगुण की वृद्धि करनेवाले ! भक्तों को तो श्रेष्ठज्ञान का प्रकाश करने समर्थ सत्वगुण वढानेवाले ! सत्व रज तम नामक गुणों को बढानेवाले हे सात्विक राजस तामसरूप कालत्रय के निर्वाहक ! हे समुद्रपरिवृत समग्र भूमंडल के निर्वाहक ! हे दक्षिणाग्नि गार्हपत्य आहवनीय नामक तीन अग्नियों के निर्वाहक ! हे गोपाल सजातीय होकर अवतीर्ण अत्याश्चर्यमय दिव्यचेष्टित ! तीन नेत्रवाले शिव जी भी क्या आपकी बराबर स्तुति कर सकते हैं ?

गाथा के प्रारंभ में, "हे त्रिमूर्तिरूपिन्" यह शब्द हैं। कोई लोग इससे त्रिमूर्तिसाम्यवाद को न समझें, इस उद्देश्य से अंत में कहा गया कि शिवजी भी आपकी स्तुति न कर सकेंगे। इससे भगवान की श्रेष्ठता बताई गयी। फिर त्रिमूर्ति स्वरूपी कहनेका यह तात्पर्य है कि ब्रह्मरुद्रों के नियामक, एवं स्वयं उनके बीच में विष्णुरूप से विराजमान हैं भगवान। "ब्रह्मेशमध्यगणना" इत्यादि अतिमानुषस्तव की श्री सूक्ति यहां अनुसंधेय है ॥ .... (७)

(गाथा.) आदियानवानवर्क्कुम् अण्डमायवप्पुरत्तु * आदियानवानवर्क्कुम् आदियानवादि नी *
आदियानवानवाणर् अन्दकालं नीयुरैत्ति * आदियानकाल निन्नै यावर् काणवल्लरे ॥ ८ ॥

हे आदिकाल के निर्वाहक ! जगत की सृष्टि आदि करने में अधिकृत ब्रह्मादि देवों के, तथा अंडशब्दवाच्य परमपद में प्रधान नित्यसूरियों के निर्वाहक अधिपति आप ही हैं। जगत के अधिपति बनने वाले ब्रह्मादि देवों के अवसान कालका आपने निश्चय कर रखा है। आदिकाल के भी निर्वाहक आपको कौन ठीक जान सकता है ?

शास्त्रों में तत्र तत्र दूसरे भी कितने ही देव जगत की सृष्टि, रक्षा, संहार आदि करनेवाले बताये जाते हैं। इससे यह शंका होती है कि भगवान को ही इन व्यापारों के कर्ता कैसे मानेंगे। इसका समाधान प्रकृत गाथा से किया जाता है। तथाहि शास्त्रों में (श्री विष्णुपुराण १-२२) यों कहा गया है कि ब्रह्मा, दक्ष आदि प्रजापतिनामक देवों, सप्तर्षिनामक महर्षियों, आदित्यनामक देवों इत्यादि सृष्टि करनेवाले हैं; इंद्र, मनु इत्यादि रक्षा करनेवाले हैं; और रुद्र, अग्नि, यम इत्यादि संहारकारक हैं। अब आळ्वार कहते हैं कि भगवान ही इनके नियामक हैं; अर्थात् भगवान से प्रदत्त आज्ञा, विशेषशक्ति आदियों के प्रभाव से और आपके पराधीन होकर ही उक्त देवताओं अपने अपने काम करते हैं। अत: भगवान का वैभव अखंडित है। और यह भी बात है कि भगवान ने पहले से ऐसा ठराया है कि अमुक देव की उमर इतनी है। अत: उनका ऐश्वर्य भी कुछ समयतक रहकर बाद में निकल जाएगा। एवं भगवान नित्यसूरियों के भी नाथ हैं। अत: आपका वैभव सीमातीत है। यद्यपि लीलाविभूति को ही अंड कहने की प्रसिद्धि है। तथापि दिव्यप्रबंधों में तत्रतत्र परमपद भी अंड कहाया गया है ॥ .... (८)

(गाथा.) तादुलावुकोन्नैमालै तुन्नुशेञ्जडैचिवन् * नीदियाल्वणङ्गुपाद निन्मला निलायशीर् *
वेदवाणर् गीतवेळ्वि नीदियानकेळ्वियार् * नीदियाल्वणङ्गुहिन्र नीमैं निन्गणिन्नदे ॥

हे किंजल्क भरित वनकुसुमधारक जटावाले शिव से वंदित पादपद्मवाले! हे निर्मलस्वरूप! विविध सद्गुणभरित वेदाध्ययनशील वैदिकों से, सामगान सहित यज्ञ करनेवालों से, एवं सक्रम श्रवण मनन आदि करनेवाले महात्माओं से सविधि नमस्कृत होने का यह वैभव आप में ही प्रतिष्ठित है ॥

इस गाथा में यों कहा जाता है कि भगवान समस्त देवमानव आदियों से वंदित हैं ॥ .... (९)

(गाथा.) तन्नुळे तिरैत्तेळुम् तरङ्गवेण्डडङ्गडल्ल * तन्नुळे तिरैत्तेळुन्दु अडङ्गुहिन्र तन्मैपोल् *
निन्नुळे पिरन्दिरन्दु निर्प्पवुन्तिरिपवुम् * निन्नुळेयडङ्गुहिन्र नीमैं निन्गणिन्नदे ॥ १० ॥

हे भगवन्! अपने में उत्पन्न लहरों से युक्त महासागर, जैसे अपने में ही (तरंगरूपसे) उगकर फिर शांत हो जाता है, इसी तरह से स्थावर जंगमरूप यह सभी प्रपंच आपके स्वरूप में ही उत्पन्न होकर उधर ही शंत हो जाता है। यह वैभव केवल आप में ही विद्यमान है।

इस गाथा में सदृष्टांत यों बताया जाता है कि जगत के उपादान कारणतया तत्र तत्र शास्त्रों में उपवर्णित वस्तु भगवान ही हैं। जैसे, तेजी से हवा चलने पर महासागर से लहरें उठते हैं, और हवा के शांत होने पर शांत हो जाते हैं, इस तरह से आपके संकल्प से प्रेरित होकर यह सारी जगत आपमें से प्रकट होती है और आपमें ही समा जाती है। भगवान, आपका संकल्प और जगत के क्रमशः दृष्टांत हैं महासागर, हवा और लहरें। जैसे लहरों के उपादान कारण सागर है, इसी तरह से जगत का कारण भगवान हैं। .... (१०)

(गाथा.) शोल्लिनाल् तोडर्च्चि नी शोलप्पडुम्पोरुळ्ळु नी * शोल्लिनाल् शोलप्पडादु तोन्नुगिन्र शोदि नी *
शोल्लिनाल् पडैक्क नी पडैक्क वन्दु तोन्निनार् * शोल्लिनाल् शुरुङ्ग निन्गुणङ्गळ् शोल्लवल्लरे ॥

हे भगवन्! वेदांतशास्त्र के द्वारा अपने परमभक्तों को संबंधज्ञान का उपदेश करनेवाले आप हैं। किसी किसी पुराण में सर्वसमाश्रयणीयत्वेन संस्तुत देवों के आप अंतर्यामी हैं। अपरिच्छेद्य तेज करके वेद आपका ही वर्णन करता है। आपसे ही प्रकाशित वेदोक्त प्रकारसे जगत् की सृष्टि आदि करने के लिए आपसे सृष्ठ ब्रह्मादि देव भी आप के कल्याणगुणों का संक्षिप्त ही क्यों न हो, वर्णन क्या कर सकते हैं? (नहीं कर सकते हैं।)

क्वचित् शास्त्रों में ब्रह्मा रुद्र आदि देव भी जगत की सृष्टि आदि करने समर्थ बताये जाते है। इसको देखकर कोई कोई लोग उन देवों को ही परतत्व मानते हैं। इस गाथा में यों बताया जाता है कि जब कि वे देव भगवान के कल्याणगुणों की अत्यल्प स्तुति करने में भी अशक्त होते हैं, तब वे परतत्व कैसे हो सकते हैं। अतः जानना चाहिए कि क्वचित् उनकी भी प्रशंसा करनेवाला शास्त्र, वास्तव में उनके अंतर्यामी भगवान का ही वर्णन कर रहे हैं॥ .... (११)

(गाथा.) उलहुदनै नी पडैत्ति उळ्ळोडुक्किवैत्ति * मीण्डुलहुदन्नुळे पिरत्ति ओरिडत्तैयल्लैयाल्ळ *
उलहुनिन्नोडोन्नि निर्कि वेरु नित्तियादलाल्ळ * उलहिल्ळ् निन्नैयुळ्ळशूळल्ळ् यावरुळ्ळवल्लरे ॥

हे भगवन्! आप ही समस्त जगत की सृष्टि करते हैं। नित्यनैमित्तिकादि प्रलयरूप आपत्ति के आनेपर, उनको अपने पेट में रखकर आप ही पालते हैं। इसके बाद इस संसार में अवतार भी करते हैं। आप किसी एक निश्चित स्थल में ही निवास नहीं करते हैं। सर्वजगत के शरीरी होनेपर भी (अर्थात् सर्व जगत को आपका शरीर होनेपर भी) आप असाधारण दिव्यमंगल विग्रह से युक्त होकर सर्वविलक्षण रहते हैं। इस तरह से लोकविलक्षण अद्भुत प्रकारवाले आपको कौन ठीक जान सकता है? .... (१२)

(गाथा.) इन्नैयेन्नु शोल्ललावदु इल्लैयादुमिट्टिडै * पिन्नैकेळ्वनेन्नर् उन्पिणकुणर्न्द पेत्तियोर् *
पिन्नैयाय कोलमोडु पेरुमूरुमादियुम् * निन्नैयार् निनैकवल्लर् नीमैयाल्ळ निनैक्किले ॥१३॥

"आप ऐसे हैं" करके निश्चय रूप से बताने लायक आपका कोई भी प्रकार नहीं है, आपके अवतार के विषय में भक्ताभक्तों के विवाद को जाननेवाले महात्मा लोग, आपको कृशोदरी नीलादेवी के नाथ बताते हैं। आपके दिव्यमंगलविग्रह, शुभनाम, दिव्यस्थान, विग्रह परिग्रह का कारण, इन सबको आप अपनी कृपासे बता दिये तो, कोई जान सकेगा; अन्यथा कौन उनको जानेगा?

भगवान अगर किसी के ऊपर कृपा कर उसको दिव्य दृष्टि देंगे, तो वही आपके समस्तचेतना चेतन वैलक्षण्य को एवं अवताररहस्य को बरावर जान सकेगा; अन्यथा नहीं। अत एव ऐसे ज्ञाता और अज्ञाताओं के बीच में हमेशा वादविवाद चलता रहता है। अज्ञ कहते हैं कि भगवान के गुण नहीं, विग्रह नहीं, आकार नहीं, प्रकार नहीं, नाम नहीं इत्यादि। ज्ञाता कहते हैं कि भगवान अनंतकोटि शुभ गुण परिपूर्ण हैं और दोषरहित; आप अपने अनुरूप शोभन दिव्यमंगल विग्रहविशिष्ट हैं। न तु कर्मकृत सदोष प्राकृत शरीरवाले। आपके स्वोचित स्वेच्छाधीन अनेक आकार रहते हैं; परंतु प्राकृत पदार्थ जैसा आकार नहीं है। एवं प्रकार भी। आपके शुभ हजारों नाम होते हैं, न तु प्राकृत देव मनुष्यादि नाम हैं इत्यादि। विशेष ज्ञानियों का यह भी कथन है कि लक्ष्मीनारायण रूप मिथुन ही हमारे लिए उपास्य परतत्व हैं॥ .... (१३)

(गाथा.) तूय्मैयोगमायिनाय् तुळायलङ्गल्मालैयाय् * आमैयाहि याळ्कडल्तुयिन्न आदिदेव * निन्
नामधयमिन्नदेन्न वल्लमल्लवाहिलुम् * सामवेदगीतनाय चक्रपाणियल्लैये ॥ १४ ॥

हे संसारियों को मलिन देह छुडाकर, अप्राकृत दिव्यविग्रह देनेवाले! हे तुलसीमाला का धारण करनेवाले! हे गंभीर समुद्र में दिव्य कूर्मरूप से शयन करनेवाले आदिदेव! आपके दिव्यनामों से प्रतिपादित गुण व चेष्टितों को अलग अलग जानकर उनका वर्णन करने में हम सर्वथा अशक्त हैं। (तथापि हम इतना तो कह सकते हैं कि) आप सामवेद गीतस्वरूपी चक्रपाणी हैं॥ .... (१४)

(गाथा.) अङ्गमारुम् वेदनान्गुम् आहिनिन्नवत्तुळे * तङ्गुहिन्न तन्मैयायू तडङ्गडल्पणत्तलै *
शेङ्गणाहणैक्किडन्द शेल्वमल्हुशीरिनायू * शङ्गवण्णमन्नमेनि शार्ङ्गपाणियल्लैये ॥ १५ ॥

हे शिक्षा व्याकरण छन्द निरुक्त ज्यौतिष व कल्प नामक षडङ्गों से युक्त चार वेदों के प्रवर्तक होकर, उन साङ्गवेदों में ठीक प्रतिष्ठापित स्वरूप स्वभाववाले! हे महासमुद्र में फणों में लाल नेत्रवाले शेषजी के ऊपर शयन करनेवाले! हे श्रेष्ठ गुण व ऐश्वर्य से समृद्ध! हे (कृतयुग में) शंखसमान शुभ्रवर्ण वाले दिव्यमंगल विग्रह लेकर अवतीर्ण! (त्रेतायुग में इक्ष्वाकुवंश में) शार्ङ्गधनुष को हाथ मे रखकर अवतार लेनेवाले आप ही हैं न?

सांगवेद प्रतिपाद्य दिव्यगुण चेष्टितवाले आप आश्रितों पर अनुग्रह दर्शाते हुए परमपद से क्षीर सागर पधारकर वहां पर योगनिद्रा करते हुए, बाद में मनुष्यलोक में भी अवतीर्ण हो गये। शास्त्र कहते हैं कि भगवान के अवतार एकैक युग में एकैक रंग के होते हैं। कृतयुग में आप शुक्लवर्ण थे ॥ .... (१५)

(गाथा.) तलैक्कणत्तुहळ्कुळम्बु शादिशोदितोत्तमायू * निलैक्कणङ्गळ्काणवन्दु निन्तियेलुं नीडिरुम् *
कलैक्कणङ्गळ्शोर्पोरुळ् करुत्तिनाल् निनैक्कोणा * मलैक्कणङ्गळ्पोलुणर्त्तुमाट्टचिनिन्दन्माट्टचिये ॥

प्रधानता को प्राप्त देवगण, क्षुद्र स्थावरगण, एवं मिश्रयोनि मनुष्य तिर्यक् गण इन सब में अपने अप्राकृत तेज के साथ अवतार लेकर, (न केवल देवादिलोग, अपितु) स्थावर पदार्थ भी अपना अनुभव करें इस तरह से आप विराजते हैं; तथापि नित्य व विस्तृत वेदादि शास्त्रबृंद, अभिधानवृत्ति से अथवा तात्पर्य वृत्ति से (आप के वैभव का) चिंतन करने में भी अशक्त होकर, केवल इतना ही बता देते हैं कि "ये (भगवान के वैभव) पर्वत समूह की तरह अपरिच्छेद्य (यानी नापने अशक्य) हैं।" ऐसी हैं आपकी विलक्षण महिमा।

पुण्यफल होने से देवजाति (अथवा देवगण) प्रधान माना जाता है; केवल पापफल होने से स्थावर जाति (यानी गण) सब से हीन हैं; पुण्य व पाप दोनों के फलसे मिलने से मनुष्य एवं तिर्यक् जाति मिश्रयोनि कहलाते हैं। भगवान इन चारों जातियों में अवतार कर, अपने असाधारण तेज से युक्त होकर, अपने वैभवों को इस तरह से प्रकाशित करते हैं कि प्राणिमात्र उनको ठीक जान सकें। ऐसा होने पर भी वेद इत्यादि शास्त्र आपके अवतार वैलक्षण्य को ठीक नापकर बताने में अशक्त होकर, केवल समुदाय रूप से, अस्पष्टतया कुछ कह रहे हैं ॥ .... (१६)

(गाथा.) एकमूर्ति मून्नुमूर्ति नालुमूर्त्तिनन्मैशेर् * भोगमूर्त्तिपुण्णियत्तिन्मूर्त्ति एण्णिल्मूर्त्तियायू *
नागमूर्त्तिशयनमायू नलङ्गडल् किडन्दु * मेल् आहमूर्त्तियायवण्णम् एन्कोलादिदेवने ॥

हे सर्वकारणभूत भगवन्! परमपदनिवासी वासुदेव नामक एक मूर्ति होकर, संकर्षण अनिरुद्ध प्रद्युम्न नामक तीन व्यूह मूर्ति होकर, प्रकृति पुरुष काल अव्यक्त नामक पदार्थचतुष्टय शरीरक होकर, विभवावताररूप विलक्षण भोग मूर्ति होकर, "रामो विग्रहवान् धर्मः," "कृष्णं धर्मं सनातनम्" इत्याद्युक्त

प्रकार से धर्ममूर्ति कहलानेवाले रामकृष्णादिमूर्ति होकर, इस तरह से असंख्यमूर्ति होते हुये सुंदर क्षीरसागर में शेषशय्या पर शयन करते हुए, इसके बाद भक्तों से अपेक्षित अर्चामूर्ति भी आप बने हैं; यह आपका वैभव अप्रमेय है।

यह तात्पर्य है—भगवान को वासुदेवमूर्ति होकर परमपद को संभालना और व्यूहादिरूप से लीलाविभूति को संभालना, इनमें जब एकैक लीला ही शास्त्रवाणी का अविषय हो रही है, तब इनके अतिरिक्त सर्वसुलभ, सर्व समाराध्य, सर्वसहिष्णु अर्चारूपी होकर आप जो विराजते हैं, इसका वर्णन कौन कर सकता है? .... (१७)

(गाथा.) विडत्तवायोरायिरम् इरायिरङ्गण्वेन्दळल् * विडुत्तुवीळ्विलादपोहम् मिकशोदि तोकशीर् *
तोडुत्तुमेल्वितानमाय पौवनीरराखवणै * पडुत्तपायल्पळ्ळिकोळ्वदु एन्गोल्वेलैवण्णने॥१८॥

हे सागर वर्ण भगवन्! विषभरित एक हजार मुखों से, तथा दो हजार नेत्रों से विष निकालते हुए निरंतर आपका अनुभव करनेवाले विशेष तेजोमय, वितानरूपी सुंदर फणवाले शेषशयनपर समुद्रजल में आप जो शयन करते हैं, यह अप्रमेय है।

भगवान पर सीमातीत प्रेम रखनेवाले शेषजी के मन में हमेशा यह भय रहता है कि, न जाने कब कौन सा असुर आकर भगवान को दुःख पहुंचावेगा। अतः उन प्रतीक्षित शत्रुओं को दूर करने के लिए आप हमेशा अपने मुखों से विषका वमन करते रहते हैं॥ .... (१८)

(गाथा.) पुळ्दाहि वेदनान्गुम् ओदिनायदन्नियुम् * पुळ्ळिन्वायूपिळन्दु पुट्कोडिप्पिडित्तपिन्नरुम् *
पुळ्ळैयूर्दियादलाल् अदेन्गोल् मिन्गोळ्नेमियाय्*पुळ्ळिन्मेयूप्पहैक्कडल्किडत्तल् कादलित्तदे॥

हे तेजस्वि चक्रपाणे भगवन्! आपने हंसपक्षिरूप से प्रकट होकर चार वेदोंका उपदेश दिया, और उसके बाद बकासुर नामक एक पक्षी का मुख चीर डालकर, गरुडध्वज का धारण किया; एवं उन गरुडपक्षी को ही अपना वाहन बनाकर उसपर सवार होते हैं। इस तरह से नानाप्रकार के जगद्रक्षण करने पर भी गरुडशत्रु शेष के ऊपर शयन करने आप जो चाहते हैं, उसका मतलब क्या है?

ज्ञानी लोग कहते हैं कि भगवान थंडे क्षीरसागर में शेषशय्यापर जगद्रक्षणचिंता करते हुवे योगनिद्रा करते हैं। इस गाथा में आळ्वार आपसे पूछते हैं कि जब वेदप्रदान से, बकासुरादिदुष्टदमन से, अपने आश्रितरक्षणदीक्षितत्व को बताने के लिए गरुडध्वज का धारण करने से, एवं दुःखी भक्त के पास शीघ्र पहुंचने के लिए गरुडवाहन बनने से, जब जगद्रक्षण का कार्य पूर्ण हो गया, फिर योगनिद्रा करने की अवश्यकता कौनसी है॥ .... (१९)

(गाथा.) कूशमोन्नुमिन्नि माशुणम्पडुत्तु वेलैनीर् * पेशनिन्नदेवर्वन्दु पाडमुन् किडन्ददुम् *
पाशनिन्ननीरिल्वाळुम् आमैयानकेशवा * एशवन्नु नी किडन्दवारु कूरु तेरवे॥ २०॥

हे भगवन्! आप अनादिकाल से सागरजल में शेषजी को शय्या बनाकर, स्तुति करने लायक ब्रह्मादि देवों की स्तुति पाते हुए, उस पर नीडर सो रहे हैं; और देवों के लिए जब उस समुद्र का मथन हुआ, तब "वरुणपाश रहनेवाले जल में कूर्मरूपी एक क्षुद्र प्राणी का जन्म लेनेवाला हे केशव!" ऐसे अज्ञों के तिरस्कार वचन का लक्ष्य बनकर आप जो रहे, इन दोनों कामों के रहस्य को मैं ठीक समझ सकूं, इस तरह से आप समझाइए।

लोकमें हम देख रहे हैं कि जहां सौलभ्य है वहां परत्व की गंध भी न रहती है; और जहां अत्यल्प प्रमाण का भी परत्व हो, वहां सौलभ्य नहीं रहता है। परंतु भगवान में सीमातीत परत्व तथा कल्पनातीत सौलभ्य, ये दोनों गुण परिपूर्ण रहते हैं। और उसमें यह भी एक चमत्कार है कि आपके चरित्रों में परत्व का प्रकाशक कौन है और सौलभ्य का प्रकाशक कौन है, इस अर्थ को समझना ही अशक्य है। तथाहि, प्रायः लोग कहते हैं कि आपका क्षीरसागरशयन परत्व का सूचक है; परंतु यह सौलभ्य का भी सूचक हो सकता है। तथाहि स्वार्थ परायण देवता लोग भी विना क्लेश आपके पास आकर, अपने दुःख दूर करने की प्रार्थना कर सकें, इस लिए ही आप परमपद से आकर क्षीरसमुद्र में शयन कर रहे हैं। एवं समुद्रतल में कूर्मके रूप में शयन करना सौलभ्य का काम दीखेगा; परं तु उसमें भी मंदर पर्वत को अपने पीठ पर धर कर समुद्रमथन में मदद करना परत्व का सूचक है। अतः भगवान के चरित्रों में उक्त पकार से विभाग करना अशक्य है। इस अर्थ को मन में रख कर अब आळ्वार भगवान से पूछते हैं कि, प्रभो! आपके दिव्य चरित्रों में परत्व का प्रकाशक कौन है और सौलभ्य का कौन है? इस अर्थका विवेचन कर मुझे उपदेश दीजिए॥ .... (२०)

(गाथा.) ** अरङ्गने तरङ्गनीर् कलङ्गवन्नु कुन्नुशूळ् * मरङ्गळ्तेय मानिलङ्कुलुङ्ग माशुणंशुलाय् *
नेरुङ्ग नी कडैन्दपोदु निन्नशूररेन्शेयुदार् * कुरङ्गैयाळुहन्दवेन्दै कूरु तेर वेरिदे ॥२१॥

हे वानरवीरों से सेवा लेकर प्रसन्न होनेवाले मेरे नाथ श्रीरंगनाथ भगवन्! (दुर्वासमुनि के शाप से अपना समग्र ऐश्वर्य खोकर, दुःखी हुए देवता लोग जब आपकी शरण में आ गये तब) लहरों से समावृत सागर क्षुब्ध हो जायँ, मंदर पर्वत पर चारों ओर रहनेवाले सभी पेड घिस जायँ, और विशाल भूमंडल हिल जायँ, इस तरह से वासुकि नामक नाग को लपेट कर सुदृढ बांधकर, आपने जो समुद्र का मथन किया, उस समय में उधर खडे रहे हुए बडे पराक्रमी कहलानेवाले देव असुर आदि लोगों ने क्या काम किया? इस अर्थको आप कृपया मुझे ठीक समझाइए।

समुद्र मथन का पूरा काम अकेले भगवान से ही किया गया। समस्त देवता और असुर मिल कर मथन करने लगे तो सही; परंतु जब वह मंदर पर्वत समुद्र के तल में डूब गया, तब वे सब निरुपाय हो चुप खडे हो गये। उस समय में स्वयं भगवान ने ही कूर्मरूप का धारण कर उस पहाड को अपने पीठ पर उठा लिया। बाद में मथन का काम शुरू हो गया। परंतु थोडी देर में ही बडे बडे पराक्रमी कहलानेवाले वे सभी देवासुर थक गये और रस्सी छोडकर चुप बैठ गये। तब फिर भगवान ने उनको

आश्वासन दिया और, स्वयं मथन किया। एवं रामावतार में रावणसंहार का काम स्वयं भगवान से ही किया गया। तथापि लोक में सर्वत्र यह प्रसिद्धि फैल गयी है कि देवों ने समुद्र का मथन किया, और वानरवीरों ने लंका को जीत लिया। इसका कारण यह है कि भगवान अपने भक्तोंपर सीमातीत आदर करते हुए संसार में उनका यश बढाते हैं। अब इस गाथा में आळ्वार भगवान से यों पूछते हैं कि, "प्रभो! समुद्र मथनरूप बडा काम करने में देवताओं का भाग कितना है? एवं लंकाविजय में वानरवीरों का भाग कितना है? कृपया बताइए॥" .... (२१)

(गाथा.) पण्डुमिन्नुमेलुमायोग् बालनाहि आलमेलुम् * उण्डुमण्डियालिलै त्तुयिन्नआदिदेवने *
वण्डुकिण्डुतण्डुळाय् अलङ्गलाय् कलन्दशीर् * पुण्डरीकपावैशेरुमार्प! भूमिनाथने ॥ २२॥

भूत भविष्यत् वर्तमान रूप तीनों कालों में रक्षक होने से सात लोकों को भी (प्रलयापद से बचाते हुए) आदरपूर्वक निगल कर, अद्भुत छोटे शिशुके रूप में वटपत्र पर शयन करनेवाले हे आदिदेव! हे (मधुपान समुत्सुक) भ्रमरपरिवृत सुशीतल तुलसीमाला पहननेवाले! हे सुंदर कमल समुत्पन्न श्री देवी से समालिंगित वक्षवाले! हे भूदेवी के नाथ! (आपकी जय हो।)

इस गाथा में यों कहा जाता है कि, "एवं निसर्गसुहृदि त्वयि सर्वजन्तोः स्वामिन्न चित्रमिदमाश्रित वत्सलत्वम्" इत्याद्युक्त प्रकार से, प्रलय काल में भक्ताभक्त विभाग के विना समस्तप्राणियों की रक्षा करनेवाले भगवान अपने भक्तों के विषय में पूर्वोक्तप्रकार से जो विशेष अनुग्रह दर्शाते हैं, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। तीन काल शब्द से सृष्टि स्थिति संहारकालों को समझना चाहिए। इन तीनों कालो में भगवान चेतनों पर अनुग्रह ही दर्शाते हैं—यह वेदांतियों का सिद्धांत है॥ .... (२२)

(गाथा.) वानिरत्तोर् शीयमाय् वळैन्दवाळेयित्तवन् * ऊनिरत्तुहिर्त्तलम् अळुत्तिनायुलायशीर् *
नानिरत्तवेदनावर् नल्लयोगिनाल् वणङ्ग * पानिरकडल्किडन्द पर्प्पनाभनल्लैये ॥ २३॥

सफेद रंगवाले सिंह बनकर, वक्र व देदीप्यमान दंष्ट्रावाले हिरण्यकशिपु के शरीर में मर्मस्थान में (वक्ष में) अपने हाथ के नखों को गाड देनेवाले हे भगवन्! सर्वलोक व्याप्त वैभववाले चार वेदों के अध्येता श्रेष्ठ ब्राह्मणों से सदुपायों से सेवित होकर क्षीरसमुद्र में शयन करनेवाले पद्मनाभ आप ही हैं न?

परस्पर विरुद्ध नर एवं सिंह के रूपों को मिलाकर नर सिंगरूप का धारण करने से भगवान अपने अघटित घटना सामर्थ्य का परिचय देते हैं। इसका अनुभव करना प्रकृत गाथा का लक्ष्य है॥ (२३)

(गाथा.) गङ्गैनीर्पयन्द पादपङ्कयत्तेमण्णले * अङ्गैयाळिशङ्कुतण्डु विल्लुम् वाळुमेन्दिनाय् *
शिङ्गमाय देवदेव तेनुलावुमेन्मलर् * मङ्गैमन्निवाळुमार्प आळिमेनिमायने ॥ २४॥

हे गंगातीर्थ समुत्पादक पादारविंदवाले! प्रभो! हे चक्र शंख गदा धनुष खड्गों का धारण करने समर्थ मनोहर पाणियुक्त! हे नरसिंहमूर्ते देवाधिदेव! हे मधुस्यंदि सुकुमार कमल पुष्प में उत्पन्न लक्ष्मीजीसे (उस पुष्प को छोडकर) अपने नित्यनिवासस्थलत्वेन स्वीकृत श्रीवक्षवाले! हे सागरवर्ण अत्याश्चर्यमय! (आपकी जय हो!) .... (२४)

(गाथा.) वरत्तिनिल्शिरत्तैमिक्क वाळेयिट्टुमत्तवन् * उरत्तिनिल्करत्तैवैत्तु उहिर्त्तलत्तैयून्निनाय् *
इरत्तिनीयिदेन्न पोय् इरन्दमण् वयित्तुळे करत्ति * उन्करुत्तै यावर् काणवल्लर् कण्णने ॥

चतुर्मुख ब्रह्मा से प्रदत्त वर में अतिदृढविश्वास रखकर, उससे गर्वित, खड्गसदृश भयंकर दंष्ट्रावाले भक्तद्वेषी हिरण्य कशिपु के वक्ष में अपने हाथ रखकर नखों से उसको आपने मार दिया। ऐसे महाप्रभाव वाले आप एक समय में याचक बनकर महाबली से माँगते हो। ओह! यह क्या इंद्रजाल है? इस तरह से भीख माँगकर अपने से प्राप्त इस भूमि को आप एक समय में अपने पेट के अंदर रखते हैं। हे भगवन् कृष्ण! ऐसे करनेवाले आप के अभिप्राय को कौन ठीक समझ सकेगा? (कोई नहीं)।

नरसिंहावतार में भगवान की असीम शक्ति का परिचय मिलता है; वामनावतार में भिक्षाटन वृत्तांत से आप की अशक्ति जैसी दीखती है। फिर वटपत्रशयनचरित्र में सर्वज्ञत्व सर्वशक्तत्व आदि प्रतीत होते हैं। इस तरह से शक्ति-अशक्तियों को दिखाते हुवे, हे भगवन्! आप जो नानाविध चेष्टा करते हो, इसका मतलब क्या है? आप ही कृपया बता दीजिए ॥ .... (२५)

(गाथा.) आणिनोडु पेण्णुमाहि अल्लवोडु नल्लराय् * ऊणोडोशैयूरुमाहि ओन्नलाद मायैयाय् *
पूणिपेणुमायनाहि पोय्यिनोडु मेय्युमाय् * काणिपेणुमाणियाय् करन्दुशेन्नकल्वने ॥ २६ ॥

पुरुषजाति, स्त्रीजाति, इनसे अलग नपुंसकजाति, इन सबके निर्वाहक होकर, इन सब में श्रेष्ठ वस्तु भी होकर, रस शब्द स्पर्श इत्यादि विषयों के नियामक होकर, संसार गत समस्तपदार्थत्वेन परिणत होनेवाली मूलप्रकृति के निर्वाहक होकर, गाय चरानेवाले गोपजातीय बनकर, आसुर प्रकृतिवाले दुर्योधनादियों के लिए असत्कल्प रहकर, परमभक्त पांडवों के लिए सद्भाव दिखाकर, (तीन पग) भूमि चाहनेवाले वामन बनकर (महाबली की यज्ञभूमि में) कृत्रिमरूप से पधारनेवाले हे मायामूर्ते! आपके यथार्थस्वरूप को कौन नापकर समझ सकेगा? (कोई नही।)

भगवद्गीता के दसवे अध्याय (विभूतिविस्तरयोग) में उपवर्णित प्रकार से संसारवर्ति समस्त पदार्थों के निर्वाहक होकर नित्यसूरियों को भी स्पृहणीय अपने दिव्यमंगलविग्रह को आप, आश्रितों के कल्याण के लिए, देवसजातीय वामन, एवं गोपसजातीय श्रीकृष्ण बनाते हैं; इस आश्चर्यचरित को कौन बराबर जान सकता है? .... (२६)

(गाथा.) विण्कडन्दशोदियाय् विळ्ङुञानमूर्त्तियाय् * पण्कडन्दतेशमेवु पावनाशनादने *
एण्कडन्दयोगिनोडु इरन्दुशेन्नुमाणियाय् * मण्कडन्दवण्ण निन्नै यार्मदिक्कवल्लरे ॥ २७ ॥

सर्वव्यापिनी मूलप्रकृति को भी पार करनेवाले हे ज्योती रूप! हे स्वयंप्रकाश जीवात्मके भी अंतर्यामिन् वेदों से भी ठीक समझने अशक्य परमपद में नित्यनिवास करनेवाले हे अखिल हेय प्रत्यनीक सर्वस्वामिन्! चिंतातीत आश्चर्यमयशक्तियुक्त होकर, वामनरूपधारी भिक्षुक बनकर आपने जो भूमिको नापकर अपनालिया, इस तत्वको कौन ठीक जान सकता है? (अर्थात् यह चरित्र अपरिच्छेद्य है।)

इस गाथा में भगवान को प्रकृति से भी बडे और जीवात्मा में भी अंतर्यामी कहने से "अणोरणीयान् महतो महीयान्" इत्यादि वेदवाक्योक्त आपका वैभव बताया गया। एवं आपको अखिलहेयप्रत्यनीक कहने से यह अर्थ सूचित किया जाता है कि हेय भिक्षुरूप का ग्रहण करने पर भी आपको कोई दोष नहीं लग सकता। वामनावतार में भगवान का आश्रित पक्षपात और तत्तत्कार्योचित उपायकुशलता, ये ही प्रकाशित होते हैं॥ .... (२७)

(गाथा.) पडैत्तपारिडन्दळन्दु अदुण्डुमिळन्दुपौवनीर् * पडैत्तडैत्तदिर्किडन्दु मुन्कडैन्दपेत्तियोय् *
मिडैत्तमालिमालिमान् विलङ्गुकालनूर् पुह * पडैक्कलम् विडुत्त पल्पडैत्तडक्कैमायने ॥२८॥

अंडकारणभूत एकार्णव की सृष्टिकर, बाद में क्रमशः उत्पन्न हुई भूमि को (वराहरूपी होकर) अंडभित्ति से छुडाकर उठाते हुवे, फिर (त्रिविक्रमरूप से उसको) नापकर, (पीछे प्रलयकाल में) निगलकर, (उसके बाद फिर सृष्टिकाल में उसको) बाहर निकालकर, एवं समुद्र में पुल बांधकर, पहले एक बार उसी में (अर्थात् क्षीरसागर में) शयनकर, (और एक समय में अमृत निकालने के लिए) उसी का मथन भी करनेवाले हे महावैभवोपेन भगवन्! लडने आनेवाले माली, व अतिक्षुद्रसुमालि, इन राक्षसों को यमलोक भेजने समर्थ आयुधों का प्रयोग करनेवाले हे नानाविधदिव्यायुधालंकृत विशालबाहो! अत्याश्चर्यमय दिव्यचेष्टित! (आपके इस तत्व को कौन ठीक जान सकता है?) .... (२८)

(गाथा.) परत्तिलुम्परत्तैयादि पौवनीरणैक्किडन्दु * उरत्तिलुमोरुत्तितन्नै वैत्तुहन्ददन्नियुम् *
नरत्तिलुम्पिरत्ति नाद ञानमूर्त्तियायिनाय् * ओरुत्तरुम् निनादुतन्मै इन्नदेन्नवल्लरे ॥२९॥

हे नाथ! हे ज्ञानस्वरूपिन्! आप परात्पर हैं। (अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्तियों से भी श्रेष्ठ हैं।) असदृश वैभववाली महालक्ष्मीजी को सादर अपने वक्ष में रखकर क्षीरसमुद्र में सुखशय्या पर आप योगनिद्रा करते हैं। (इस तरह से आश्रित रक्षण करने पर भी अतृप्त होकर) हेय मानवरूप से भी आप जन्म लेते हैं। ऐसे आपके अनुग्रह स्वभाव को, "यह ऐसा है, इतना है करके) कौन नापकर जान सकता है?

इस गाथा में यों कहा जाता है कि जैसे भगवान का परत्व अवाङ्मनसगोचर होता हैं, इसी तरह से आपका सौशील्य भी अवाङ्मनसगोचर ही रहता है॥ .... (२९)

(गाथा.) वानहमुम्मण्णहमुम् वेर्पुमेळ्कडलहळुम् * पोनहम्शेय्दालिलै तुयिन्न पुण्डरीकने *
तेनहमुशेयूतण्णरु मलर्त्तुळायुनन्मालैयाय् * कूनहम्पुहत्तेरित्त कोत्तविल्लियल्लैये ॥ ३० ॥

ऊपर के लोकनिवासी, भूतलनिवासी, सात कुलपर्वतों, और सात महासागर, इन सबको निगलकर, (अर्थात् अपने पेट में रखकर) वटदल पर शयन करनेवाले हे कमल सदृशदिव्यावयव! हे अंतःमधु से पूर्ण, शीतल, सुगंधि तुलसीमालाधारिन्! कुब्जा की वक्रता को मिटा देनेवाले विजयी धनुर्धारी आप हैं न?

कुब्जा शब्द से मथुरानिवासिनी कंस की परिचारिणी प्रसिद्ध एक कुब्जा बतायी जाती है, जिस को चंदन की सेवा प्राप्त कर संतुष्ट श्रीकृष्ण भगवान ने सीधी और सुंदरी बना दिया (श्री भागवत १०-४२)। इस काम में धनुष का कोई उपयोग न था। अतः, धनुर्धरत्व अलग ही भगवान का एक विशेषण है। अथवा रामायण में प्रसिद्ध कुब्जा मंथरा का एक वृत्तांत यहांपर कहा जाता है। श्रीरामचंद्रजी ने अति बाल्यावस्था में लीलाधनुष को हाथ में रखकर खेलते हुवे एक समय में मंथरा को देख कर उसके कूबड पर धनुष से प्रयुक्त मिट्टी की गोली से प्रहार किया, जिससे वह रुष्ट होकर उचित अवसर मिलनेपर आपके वनवास का निमित्त बन गयी। यद्यपि श्रीरामायण में यह कथा प्रस्तुत नहीं है। तथापि दिव्यप्रबंधों में क्वचित् क्वचित् इसका उल्लेख किया गया है॥ .... (३०)

(गाथा.) **कालनेमिकालने कणक्किलादकीर्त्तियाय् * आलमेलुमुण्डु पण्डोर्पालनायपण्बने *
वेलैवेव विल्वळैत्त वेल्लशिनत्तवीर * निन्पालराय पत्तर्शित्तम् मुत्तिशेय्युम्मूर्त्तिये॥३१॥**

हे कालनेमि नामक असुर के मृत्युभूत! हे सीमातीत शुभयशवाले! पहले एक समय में (अर्थात् प्रलयकाल में) सात लोकों को भी निगलकर एक छोटा बच्चा बननेवाले हे आश्चर्यभूत! समुद्रजल को उबालते हुवे धनुष को नमानेवाले (अर्थात् धनुष को नमाकर समुद्रपर तीर छोडकर उसको उबालनेवाले) शत्रुओं को जीतने समर्थ कोपवाले (अर्थात् शत्रुओं को जीते बिना शांत न होनेवाले, यानी कभी व्यर्थ न होनेवाले, कोप से युक्त) वीर! अपने अनन्य भक्तों के चित्तानुसार उनको मोक्ष देनेवाले हे स्वामिन्! (आपकी जय हो!)

कालनेमि—यह असुर रावण का मामा था, जिसको भगवान ने तारकासुर युद्ध में मार दिया। "नास्य क्रोधः प्रसादश्च निरर्थोऽस्ति कदाचन। हन्त्येष नियमाद्वध्यानवध्येषु न कुप्यति॥" (रामा० अयो० २-८७) [अर्थात् श्रीरामचंद्रजी का कोप अथवा अनुग्रह कभी व्यर्थ न होगा। जिसपर आप कोप करेंगे उसको दंड मिलेगा ही; जिसको दंड न मिलना चाहिए, उसपर आप कभी कोप न करेंगे।] इत्याद्युक्त प्रकार से भगवान का कोप कभी बेकार न बनेगा। .... (३१)

(गाथा.) **कुरक्किनप्पडैकोडु कुरैकडलिन्मीदुपोय् * अरकरङ्गरङ्ग वेङ्गरन्दुरन्दवादिनी *
इरकमण्कोडुत्तवर्क्कु इरकमोन्रुमिन्रिये * परकवैत्तळन्दुकोण्ड पर्प्पपादनल्लैये॥३२॥**

हे भगवन्! वानरवीर समूहरूपी सेना लेकर, गर्जन करने वाले सागर में पुल बांधकर, लंका पधारकर, उधर के निवासी रावणादि राक्षसों का संहार करते हुवे उन पर तीक्ष्ण बाणों का प्रयोग करनेवाले वीराधिवीर आप हैं। वामनरूप से जाकर माँगनेपर तीन पग भूमि का दान करनेवाले महाबलि को रहने के लिए भूमिपर अल्प भी-जगहको न बचाते हुवे, तीन लोकों को भी विस्तृत पाद से नापकर अपनानेवाले चरणारविंदवाले महात्मा आप हैं।

स्वयं अशक्त की तरह वानरसेना की मदद लेना, समुद्र में पुल बांधकर तीक्ष्णबाणों से लंकास्थ समस्त राक्षसों का संहार करना; एवं याचक के वेषसे महाबलि से तीन पग भूमि मांगना, फिर दाता का

सर्वस्वापहार कहते हुवे तीन लोकों को भी नापकर अपना अधीन कर देना, ऐसे हैं भगवान के अत्याश्चर्य मय दिव्य चेष्टित। .... (३२)

(गाथा.) मिन्निरत्तेयित्तरकन् वीळवेञ्जरन्दुरन्दु * पिन्नवर्क्करुळ्पुरिन्दु अरशळित्तपेत्तियोय् *
नन्निरत्तोरिन्शोलेळै पिन्नैकेळ्व मन्नुशीर् * पोन्निरत्तवण्णनाय पुण्डरीकनल्लैये ॥ ३३ ॥

अतितीक्ष्णबाणप्रयोग से बिजली के समान भयंकर दंतपंक्तिवाले राक्षस, रावण का संहारकर, उसके भाई विभीषण पर कृपा कर उसको राजा बनानेवाले हे देव! परमसुंदरी, मधुरवाणी, अपने ऊपर व्यामुग्ध नीलादेवी के हे नाथ! नित्यसिद्ध कल्याण गुण परिपूर्ण, स्वर्ण सदृश दिव्यमंगलविग्रहवाले, और पुण्डरीकाक्ष नाम से प्रसिद्ध महापुरुष आप ही है न? .... (३३)

(गाथा.) आदियादियादिनी ओरण्डमादियादलाल् * शोदियादशोदिनी अदुण्मैयिल्विळङ्गिनाय् *
वेदमाहि वेळ्वियाहि विण्णिनोडु मण्णुमाय् * आदियाहियायनाय मायमेन्न मायमे ॥ ३४ ॥

हे प्रभो! आप ही तीन प्रकार के कारण हैं। अंडके अंतर्गत सकल वस्तुओं के भी आप निर्वाहक हैं। इस कारण से आप ही निस्संशय परंज्योति परतत्व हैं। वह ज्योति भी प्रमाणसिद्ध है। अतः (उस प्रमाण के अनुसार) आप अनन्याधीन स्वयंप्रकाश विशिष्ट होकर विराजते हैं। वेदवेद्य, सर्वयज्ञशमाराध्य, उभयविभूतिनिर्वाहक एवं सर्वकारण रहने वाले आप जो गोपालक बन गये यह कैसा आश्चर्य है!

लोकव्यवहार में हम देख रहे हैं कि एक वस्तु बनाने के लिए। (१) उपादान कारण, (२) सहकारिकारण व, (३) निमित्तकारण नामक तीन प्रकार के कारणों की आवश्यकता रहती है। उदाहरण के लिए घट बनाने के लिए मिट्टी उपादान कारण है, जल, दंड, चक्र इत्यादि सहकारिकारण है, और कुलाल, काल, अदृष्ट इत्यादि निमित्त कारण कहलाते हैं। इस तरह से जगद्रूपी कार्य के लिए तो तीनों कारण स्वयं भगवान ही हैं। यहतो उपनिषदों में प्रसिद्धतया उपवर्णित परब्रह्मका वैभवहै। अतः जब यह सिद्ध हो गया कि भगवान श्रीमन्नारायण ही जगत के त्रिविध कारण हैं, फिर आपको ही शास्त्रोक्त परब्रह्म समझने में कठिनाई कौनसी है? एवं स्वयंप्रकाशत्व भी भगवान का उपनिषदुक्त एक वैभव है। एवं ऐसे महामहिम हो कर ही भगवान ने जो श्री गोपालकृष्ण के रूपमें अवतार लिया, यह आश्चर्य सचमुच वर्णनातीत है। .... (३४)

(गाथा.) अम्बुलावुमीनुमाहि आमैयाहि याळियार् * तम्बिरानुमाहिमिक्कदु अन्बुमिक्कदन्नियुम् *
कोम्बरावुनुण्मरुङ्गुल् आयर्मादर् पिळ्ळैयाय् * एम्बिरानुमायवण्णम् एन्गोलोवेम्मीशने ॥

हमारे नाथ, हे भगवन्! सुदर्शन चक्रधारी परमपुरुष होकर ही आप जल में फिरनेवाले मत्स्य एवं कूर्मरूपी होकर और वैभवान्वित हो गये; और सीमातीत आश्रित पक्षपात के प्रकाशक भी हो गये। तदुपरांत आप जो लता व सर्पके सदृश मध्यवाली गोपांगना यशोदा के पुत्रतया अवतार लेकर, तत्रापि सर्व स्वामी होकर जो विराजते हैं, यह कैसा आश्चर्य है!

अमित तेजोयुक्त चक्रराज सुदर्शन का धारण करने से भगवान का परत्व प्रकट होता है। ऐसे परात्पर होते हुवे ही, उस परत्व में त्री भर को भी न घटाते हुवे आप मत्स्य कूर्मादि अवतार लेते हैं, और गोपालकृष्ण भी बनते हैं। यह चेष्टित आश्चर्यों में से आश्चर्य है। .... (३५)

(गाथा.) आडहत्तपूण्मुलै अशोदैयाय्चिपिळ्ळैयाय् * शाडुदैत्तोर्पुळ्ळदावि कळ्ळदाय पेयमहळ् *
वीडवैत्तवेय्यकोङ्गै ऐयपालमुदुशेय्दु * आडहक्कैमादर्वाय् अमुदमुण्डदेन्गोलो ॥ ३६ ॥

सोने के आभूषणों से भूषित यशोदानामक गोपी के पुत्र तया अवतार लेकर, लात मारने से शकटासुर का ध्वंसकर; छोटे शिशुओं को बालारिष्ट नामक पीडाप्रद पक्षि के रूप में आनेवाली कृत्रिममाता पूतना ने मारने के लिए आपके मुँह में जब विषलिप्त अपने क्रूर स्तन को रखा, तब उसको पीने के बहाने से उसके प्राणों को भी पीकर, बाद में सुवर्णमय चूडियों से अलंकृत हस्तवाली गोपियों के अधरामृत को आपने जो पिया, इस का क्या मतलब है? .... (३६)

(गाथा.) कायूत्तनीळ्वीळङ्गनियुदिर्त्तु एदिन्र्दपूङ्गुरुन्दम् शायुत्तु * मापिळन्दकैत्तलत्त कण्णनेन्बराल् *
आय्चिपालैयुण्डुमण्णैयुण्डु वेण्णेयुण्डु * पिन् पेय्चिपालैयुण्डु पण्डोरेनमाय वामना ॥३७॥

गोपी यशोदा जी का स्तन्य पीकर, मक्खन खाकर, पूतनास्तन्य पीकर, (कल्पांत में) भूमि को भकोसकर, (फिर कल्पादि में) अद्वितीय वराहरूप से अवतीर्ण हे वामनमूर्ते! लोग कहते हैं कि फलभरित, ऊंचे, (असुराविष्ट) कपित्थवृक्षके फलों को गिराकर, (उस असुर को भी समाप्त कर), सामने आये हुवे सुंदर कुंदवृक्ष गत असुर को भी समाप्त कर, घोडे के रूप से आये गये हुवे केशि नामक दैत्यको भी चीर डालने समर्थ हाथवाले श्री कृष्ण आप ही हैं। .... (३७)

(गाथा.) कडङ्गलन्दवन्करि मरुप्पोशित्तोर् पोयूगैवाय् * विडङ्गलन्दपाम्बिन्मेल् नडम्पयिन्र नादने *
कुडङ्गलन्दकूत्तनाय कोण्डलवण्ण तण्डुळाय् * वडङ्गलन्दमालैमार्व कालनेमिकालने ॥ ३८ ॥

मदजलव्याप्त बलिष्ठ (कुवलयापीडनामक) गज का दांत तोडकर, किसी एक यमुनाह्रद में रहने वाले (कालिय नामक) नाग के सिरपर नाचनेवाले हे स्वामिन्! हे घटनर्तन करनेवाले कालमेघश्याम श्री कृष्ण! हे सुशीतल तुलसीमालालंकृतवक्षवाले! हे कालनेमि के मृत्युभूत! (आपकी जय हो!) (३८)

(गाथा.) वेर्प्पैडुत्तुवेलैनीर् कलक्किनायदन्नियुम् * वेर्प्पैडुत्तुवेलैनीर् वरम्बुकट्टिवेलैशूळ् *
वेर्प्पैडुत्तविञ्जिशूळ् इलङ्गैकट्टळित्त नी * वेर्प्पैडुत्तमारिकात्त मेघवण्णनल्लैये ॥ ३९ ॥

मंदरपर्वत से (मथनकर) आपने सागर को कलुषित किया। और पहाडों को लेकर उनसे समुद्र में पुल बांधकर समुद्र परिवृत एवं पर्वतरूप प्राकारावृत लंकापुरी का ध्वंस करनेवाले आप, गोवर्धन पर्वत को उठाकर, उससे (इंद्रप्रषित) वर्षा को रोकनेवाले कालमेघश्याम हैं न? .... (३९)

(गाथा.) आनैक्क्कोरानैकोन्नु अदन्नियायर् पिळ्ळैयाय् * आनैमेय्त्तियानेय्युण्डि अन्नुकुन्नमोन्निनाल् *
आनैक्कुत्तु मैयरिक्कण् मादरार् तिरत्तु * मुन् आनैयन्नु शेन्नडर्त्त मायमेन्न मायमे ॥ ४० ॥

हे भगवन्! आपने भक्त गजेंद्र की रक्षाकर, उसके बाद गोपालबालक बनकर कुवलयापीडनामक एक हाथी का संहार कर, गायों को चराया। उन गायों का घी पिया; जब इंद्र ने कठोर वर्षा बरसाया, तब गोवर्धन नामक एक पर्वत से गायों की रक्षा की; काजल से अलंकृत विशालनेत्रवाली नीलादेवी के लिए उस समय में उनके सामने ही सात वृषभों का दमन भी किया। ये सब कैसी आश्चर्यमय लीलाएं हैं? (४०)

(गाथा.) आयनाहियायर्मङ्गै वेयतोळ्विरुम्बिनाय् * आयनिन्नैयावर्वल्लर् अम्बरत्तोडिम्बराय् *
माय मायमायैहोल् अदन्नि नी वहुत्तलुम् * मायमायमाक्किनाय् उन्मायमुत्तुमायमे ॥४१॥

हे आश्चर्यभूत भगवन्! आप गोपालबालकतया अवतार लेकर गोपबालिका नीलादेवी के सुंदरबाहु का सप्रेम आलिंगन किया। ऐसे आपके स्वरूप को स्वर्गलोकनिवासी एवं भूतलनिवासियों के बीच में कौन ठीक पहचान सकता हैं? (कोई भी नहीं।) इस अज्ञान का कारण भी उनका प्रकृति संबंध प्रयुक्त अज्ञान नहीं है। (अर्थात् सर्वज्ञ भी आपके स्वरूप को ठीक नहीं जान सकते हैं।) अस्तु। सर्वशक्त आपके (अपनी सेवा करने उपयुक्त शरीर व इंद्रियों को) देने पर भी, (जब कि ये चेतन उन शरीरेंद्रियों को सन्मार्ग में न लगाकर), विनाश पाने लगे, (तब उस विनाश से विचाराक्रांत आपने यों मानकर कि अब इनका संहार करना ही उचित है), उन सबको प्रकृत्यवस्था पहुंचा दिया। आपके सभी संकल्प अत्याश्चर्यमय होते हैं॥

भगवान का यह विलक्षण स्वभाव, कि भक्तों की, उनके सजातीय होकर रक्षा करना, और विमुख संसारियों की, उनके कर्मानुगुण रक्षा करना, अत्याश्चर्यमय बताया जाता है। तथाहि—भगवान गोपकुल में क्यों अवतार लिया? इस लिए, कि गोपीरूपसे अवतीर्ण नीलादेवी पर अनुग्रह करने के लिए। यथा श्रीकूरेशस्वामीजी ने सुंदरबाहुस्तव में अनुगृहीत किया—हे सुन्दरैकतरजन्मनि कृष्णभावे द्वे मातरौ च पितरौ च कुले अपि द्वे। एकक्षणादनुगृहीनवत: फलं ते नीला कुलेन शदृशी किल रुक्मिणी च॥ (१०७) पद्य का यह तात्पर्य है—एक ही कृष्णावतार में आपने देवकी-यशोदा नामक दो माताएं, वसुदेवनंदगोपनामक दो पिता एवं क्षत्रिय-गोप नामक दो वंशों को अपने संबंध से अनुगृहीत किया; इसके फलतया आपको दो पत्नियाँ भी मिलीं रुक्मिणीदेवी और कुलानुरूप नीलादेवी। एवं भगवान कल्पांत में जगत का जो संहार कर डालते हैं, वह भी रक्षण का ही एक प्रकार माना जाता है। तथा हि—प्रलयकाल में प्रकृति में मिलकर, अचेतन के सदृश रहनेवाले चेतनों को देखकर, दु:खी होकर भगवान उन को शरीर व इंद्रिय देते हुवे, इस लिए उनकी सृष्टि करते हैं कि वे उनसे अपनी (यानी भगवान की) सेवा कर सद्गति को प्राप्त करें। परंतु दौर्भाग्य की बात है कि हे मूर्ख चेतन उन ही शरीरेंद्रियों को सांसारिक भोग भोगने में लगाकर और पापी बनकर भगवान से दूर दूर ही निकल जाते हैं। तब भगवान भी ज्ञानियों को भेजकर, और स्वयं अवतार लेकर, और अन्य कितने हो उपायों से उनको सन्मार्ग में लाने का प्रयत्न करते हैं।

फलतया कोई कोई लोग सुधरते तो सही; परंतु बहुत लोग अपने दुर्मार्ग में ही चलते हुवे पाप की ओर अग्रसर होते हैं। तब भगवान विचार करते हैं कि, अब इनको इस बढती हुई विपत्ति से बचाने का एक मात्र उपाय, इनके शरीरेंद्रियों का उपसंहार कर देना ही है। भगवान के इस संकल्प के फलतया फिर प्रलय होता है जब, समस्त शरीर इंद्रिय इत्यादि प्राकृत पदार्थ नष्ट हो जाते हैं और चेनन भी मूल प्रकृति में पूर्ववत् समा जाते हैं। इस तरह से भगवान का निग्रह भी चेतन का रक्षण रूप ही सिद्ध हुआ ॥ (४१)

(गाथा.) वेरिशैन्दशेकर्मेनि नीरणिन्दपुन्शडै * कीरुतिङ्गळ्वैत्तवन् कैवैत्त वन्कपालिमैशै *
ऊरुशेङ्गुरुदियाल् निरैत्तकारणन्दनै * एरुशेन्नडर्त्तवीश पेशु कूशमिन्नियै ॥ ४२ ॥

(नीलादेवी से परिणय करने के लिए) नीडर पधार कर सात वृषभों का दमनवाले हे प्रभो! संहार कृत्यके उचित लाल शरीरवाले, भस्मधारी, चंद्रकलालंकृत जटावाले शिवजी से अपने हाथ में रखे गये हुवे बलिष्ठ कपाल को आपने अपने शरीर से निकलनेवाले रक्त से जो भरा दिया, इस के कारण को कृपया वता दिजिए।

यह प्रसिद्ध पौराणिक कथा है कि ब्रह्महत्यापातक से दुःखी शिवजी हाथ में ब्रह्मकपाल धरकर भिक्षा माँगते हुवे बदरिकाश्रम पहुंच गये। तब वहां नरनारायणरूप से विराजमान भगवान ने अपने वक्ष से बिंदुमात्र रक्त निकाल कर उससे उस कपाल को भरा दिया। इस से शिवजी का शाप नष्ट होगया और वह कपाल भी हाथ से गिरकर चूर भूर हो गया। उसी का एक भाग अभी भी वदरिकाश्रम में पडा है जिसको ब्रह्मकपाल कहते हैं और जिसपर लोग पिंडदान अब आळ्वार भगवान से यों पूछते हैं कि, हे प्रभो! आपकी इस लीलाका रहस्य क्या है; कृपया बता दीजिए। इसका यह तात्पर्य है—हम तो इतना जानते हैं कि आपने अपने सर्वरक्षकत्व का, एवं शिवाजी के रक्ष्यत्व का परिचय देने के लिए उक्तरीति से भिक्षा दी; इस से अलग दूसरा कोई मतलब होतो बता इए। इस गाथा में उपवर्णित दोनों चेष्टितों पर ध्यान देने से यह भी आळ्वार का तात्पर्य प्रतीत होता है—हे प्रभो! आपने अत्यल्प एक गोपका जन्म लेकर सप्तवृषभ-र्दन रूप गोहत्या की; इस से आपका कोई पाप न लगा, किंतु आपका ईश्वरत्व ही प्रकट हुआ। शिवाजीनेतो जगत्संहार करने समर्थ अपने देवशरीर से ही ब्रह्महत्या की, तथापि वे पापी बनकर सर्वत्र भिक्षा माँगते हुवे आपके पास रक्षार्थी होकर आगये। आपने तो विना प्रयास उनकी रक्षा की। इस वृत्तांत से आप दोनों के बीच का महान अंतर बताया जाता है॥ .... (४२)

(गाथा.) वेञ्जिनत्तवेळ वेण्मरुप्पोशित्तुरुत्तमा * कञ्जनैक्कडिन्दु मण्णळन्दुकोण्डकालने *
वञ्जनत्तुवन्दपेय्च्चि आविपालुळ्वाङ्गिनाय् * अञ्जनत्तवण्णनाय आदिदेवनल्लैये ॥ ४३ ॥

उग्रकोपवाले कुवलयापीड हाथी का दांत नोड कर (उसका भी संहार कर), क्रोधी महाबल कंस का भी संहार कर, कपट से आनेवाली पूतना के प्राण को स्तन्य पीने की भगवान से खेंच लेने वाले हे (त्रिविक्रमरूपधारी होकर) अपने पादारविंद से समस्तलोकों को नापनेवाले! आप अंजनवर्णी आदिपुरुष हैं न?

पूतना कंस इत्यादि दुष्टों का दमन करने से एवं त्रिविक्रमा-वतार में तीनों लोकों नापने के व्याज से ब्रह्मरुद्रादि सब के सिरपर अपने पादारविंद रखने से, भगवान अपने सर्वेश्वरत्व का प्रकाशन करते हैं ॥

(गाथा.) पालिनीमैं शेम्बोनीमैं पाशियिन् पशुम्बुरम् * पोलुनीमैं पोर्प्पुडैत्तडत्तु वण्डुविण्डुलाम् *
नीलनीमैं येन्निवै निरैन्दकालनान्गुमाम् * मालिनीमैं वैयहम् मरैत्तदेन्न नीमैये ॥ ४४ ॥

कृत त्रेता द्वापर कलि नामक चारों युगों में क्रमशः दूध की तरह। श्वेतवर्ण को, शुद्ध सोने के लालवर्ण को, हरिया वर्णको तथा सुंदर तटाक वर्ति भ्रमर परिवृत नीलोत्पल पुष्पसदृशश्याम वर्ण को अपना कर प्रकट होनेवाले भगवान के सौलभ्य गुण का, भूतलनिवासी लोग जोतिरस्कार करते हैं, यह क्या इनका स्वभाव है ?

शास्त्र बताता है कि कृतादिचारों युगों में भी भगवान, उस उस युगकी जनता की सात्विक आदि बुद्धि व रुचि के अनुगुणतया शुक्ल आदि रंग से सुशोभित दिव्यमंगल विग्रह लेकर प्रकट होते हैं। तो भी भतलवासी ये मेर्ख लोग आपके इस सौलभ्य की परवाह न करते हुवे, आपका तिरस्कार ही करते हैं ? अहो इनका मूर्ख व धूर्त स्वभाव है ॥ .... (४५)

(गाथा.) मण्णुळायूहोल् विण्णुळायूहोल् मण्णुळे मयङ्गिनिन्नु *
एण्णुमेण्णहप्पडायूहोल् एन्नमायै निन्नतमर् *
कण्णुळायूहोल् शैयैहोल् अनन्दन्मेल्किडन्दवेम्
पुण्णिया * पुनन्दुळायलङ्गलम्पुनिदने ॥ ४५ ॥

हे शेषनागपर शयन करनेवाले हमारे पुण्यस्वरूपिन् ! हे स्वस्थान समुत्पन्न तुलसी की माला से अलंकृत परमपावन ! आप लीलाविभूति में अवतार करते हैं ; परमपद में विराजते हैं ; इस भूमंडल में रहने वाले विपरीतज्ञानी । संसारियों की चिंता का भी आप विषय न होते हैं ; अनन्य प्रयोजन अपने भक्तों के लिए प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं ; दूसरों से बहुत दूर रहते हैं । यह क्या आश्चर्य है ? .... (४५)

(गाथा.) तोडुपेत्ततण्डुळाय् अलङ्गलाडुशेन्नियाय् * कोडुपत्तियाळियेन्दि अङ्गिरैप्पुळ्ळूर्दियाल् *
नाडुपेत्तनन्मै नण्णमिल्लैयेनुम् नायिनेन् * वीडुपेत्तिरप्पोडुम् पिरप्परुकुमाशोले ॥ ४६ ॥

हे मनोहर दलयुत सुशीतल तुलसीमाला से अलंकृत सिरवाले ! हे शंखधारिन् ! हे चक्रपाणे ! हे गरुडवाहन ! संसारियों से प्राप्तश्रेय को यद्यपि मैं ने नहीं पाया ; तथापि नीच यह दास परमपद को प्राप्त कर जननमरणरूप संसार से उत्तीर्ण हो जॉय, ऐसा प्रकार बता दीजिए ।

संसारियों से प्राप्त श्रेयको मैंने नहीं पाया कहने का यह तात्पर्य है—संसारी जन भगवद्विषय से अपरिचित होने से भगवदलाभ से अथवा विश्लेष से दुःख न पाते हुवे लौकिक शब्दादिविषयों का ही अनुभव करते हुवे सानंद अपना समय विताते हैं । भगवद्विषयानुभव रस के वेत्ता आळ्वार तो संसार में रहते हुवे भी सांसारिक विषयों के दर्शन से उद्वेग ही पाते हैं न तु हर्ष ; एवं परिपूर्ण भगवदनुभव के

अलाभ से भी हमेशा दुःखी ही रहते हैं। अतः संसारियों की तरह सानंद काल बिताना आपके भाग्य में नहीं लिखा गया। यह दुरवस्था मोक्ष पाने पर ही मिटेगी। अतः उसकी माँग की जाती है। संसारियों की उक्त स्थिति को श्रेय कहना, उनकी वाणी का अनुवाद होगा; अथवा हँसी की बात होगी। अथवा अवतार आदि किसी किसी समय में भगवान सुंदर तुलसीमाला पहनकर, शंखचक्रादिदिव्यायुधों का धारण कर, गरुडजी पर सवार होकर जो पधारते हैं, उस मनोहर दृश्य के दर्शन करने का भाग्य उन उन देशकाल में रहनेवाले मानवों को मिला था। आळ्वार कहते हैं कि प्रभो! दौर्भाग्य की वजह से मुझे वे दर्शन न मिले; तो भी चिंता नहीं; परमपदनिवासी अपने दर्शन देकर मुझको कृतार्थ बना दीजिए॥ .... (४६)

(गाथा.) कारोडोत्तमेनि नङ्गळ्कण्ण विण्णिनादने * नीरिडत्तरावणै किडत्तियेन्बरन्नियुम् *
ओरिडत्तैयल्लै एल्लैयिल्लैयेन्बरादलाल् * शेर्विडत्तै नायिनेन् तेरिन्दिरैञ्जुमा शोले ॥४७॥

हे नीलमेघश्याम, हमारे अनुभाव्य कृष्ण! हे नित्यसूरियों के नाथ! ज्ञानी लोग कहते हैं कि आप क्षीर सागर में शेषशय्यापर शयन कर रहे हैं। और यह भी बात है कि आपका कोई भी एक निश्चित निवासस्थान नहीं है; आपके निवासस्थानों की कोई गिनती भी नहीं है। इस तरह से आपके निवासस्थान के अनिश्चित होने से, आप ही कृपया बता दीजिए कि, अत्यंत क्षुद्र यह दास किधर आकर और किस तरह से आपका आश्रयण करें।

इस गाथा में आळ्वार भगवान के परत्वादि नाना प्रकारों का वर्णन करते हुवे, आपसे यों पूछ रहे हैं कि, नित्यसूरियों के नाथ ठहर कर परमपद में रहना, और व्यूह रूपी होकर क्षीरसागर में शयन करना, ये दोनों प्रकार हमसे बहुत दूर रहकर हमें दुष्प्राप्य हैं। रामकृष्णादि विभवावतार तो कभी बीत जाने के कारण हमें अप्राप्य हैं। अंतर्यामित्व, हमारे नजदीक रहता तो सही; परंतु उसके दर्शन मिलना बहुत कठिन है। ऐसा होने पर कौन से रूप में और किस प्रकार से मैं आपके दर्शन पाकर सेवा कर कृतार्थ बन जाऊं? मूल गाथा में भगवान के निवासस्थानों को अनंत बताने का यही तात्पर्य है कि आप अंतर्यामी होकर समस्त पदार्थों में निवास कर रहे हैं। अथवा शास्त्रों में उपास्य भगवान के आधारतया उपवर्णित, अग्नि सूर्य आकाश इत्यादि पदार्थ भी अनंत हैं, जिनमे से एकको चुनना अशक्य है।....(४७)

(गाथा.) कुन्निल्निन्नु वानिरुन्दु नीळ्कडल् किडन्दु * मण्ओन्नुशेन्नदोन्नियुण्डु अदोन्निडन्दु पन्नियाय् *
नन्नु शेन्न नाळवत्तुळ् नल्लुयिर् पडैत्तवर्क्कु * अन्नुतेव्रमैत्तलित्त आदिदेवनल्लैये ॥ ४८ ॥

हे भगवन्! श्री वेंकटाद्रिपर खडे होकर, परमपद में विराजमान होकर (यानी बैठकर), विशाल क्षीरसागर में शयन कर, एक समय में (त्रिविक्रमरूपी होकर) इस सारे भूमंडल को व्याप्त कर, और एक समय में (महाप्रलय में) उस भूमिको भकोस कर, दूसरी एक वक्त वराहरूप से भूमि का उद्धार कर, श्रेष्ठ (अर्थात् परम सात्विक, कल्पके आदि) काल में प्राणियों से श्रेष्ठ मानवों की सृष्टिकर; लोग अपने अपने गुण के अनुगुणतया आश्रयण करें, इस तरह से नाना देवताओं को भी आप व्यवस्थित कर रखते हैं। इन प्रकारों से लोकों का कल्याण करनेवाले आदिदेव आप ही हैं॥ .... (४८)

(गाथा.) कोण्डैकोण्डकोदैमीदु तेनुलावुकूनिकून् * उण्डैकोण्डरङ्गवोट्टि उळ्महिळ्न्द नादनूर् *
नण्डैयुण्डु नारै पेर वाळै पाय नीलमे * अण्डैकोण्डु केण्डैमेयुम् अन्दणीररङ्गमे ॥४९॥

भ्रमर परिवृत पुष्पालंकृत केशबंधवाली कुब्जा की पीठ पर रहनेवाले कूबडको धनुषसे प्रयुक्त मिट्टी की गोली से साफ कर डालकर प्रसन्नचित्त होनेवाले भगवान का दिव्यदेश यही तीर्थ समृद्ध श्रीरंगक्षेत्र हैं; जहां पर कर्कट का भक्षण करनेवाला वक पक्षी धीरे धीरे चलता हैं, वडे मत्स्य कूदते हुवे इधर उधर चलते हैं और छोटे मत्स्य नीलोत्पल पुष्प की शरण में जाते हैं।

पर व्यूह आदियों को अपने लिए अनुपयुक्त बतानेवाले आळ्वार को, भगवानने सर्वसमाश्रयणीय एवं परमरमणीय श्रीरंगदिव्यधाम वता दिया; अतः इस गाथा में और आगेकी पांच गाथाओं में आप उस दिव्यक्षेत्र का वर्णन करते हैं। श्रीरंगक्षेत्र जल से सुसमृद्ध है और इस जल में छोटे बडे मत्स्य आदि अनेक प्राणि वास करते हैं; जिनमें से छोटा मत्स्य, बडे का आहार होने से उससे डरकर अपने को वचाने की चेष्टा करता है। तथाहि—बकपक्षी पेटभर कर्कट को खाकर उस वजन से मंदगति वनकर धीरे धीरे चलता है। उससे डरकर कितने ही बडे मत्स्य इधर उधर कूदते चलते हुवे अपनी जान वचाने का प्रयत्न करते हैं; इस गडवड से डरते हुवे छोटे मत्स्य नीलोत्पलपुष्प की छाया में अपने को छिपा देते हैं। इस वर्णन का, एक बडा ही सुंदर ध्वन्यर्थ हमारे आचार्यों से उपवर्णित है। बक शब्द से अहंकार को, कर्कट शब्द से संसारी चेतन को, महामत्स्य कहने से उपासक को, एवं छोटा मत्स्य कहने से प्रपन्न को समझना चाहिए। नीलोत्पल शब्द से उत्पल समान पुरुषकारभूत लक्ष्मी जी का कटाक्ष सूचित किया जाता है। तथा च यह अर्थ निकला कि अहंकार नामक बक संसारी चेतन रूप कर्कट को भकोसता है; ऐसे वलवान अहंकार को देख कर उपासक उससे डरते हुवे दूर दूर, अर्थात् संसारियों से विविक्त देश की खोंजकर उधर चला जाता है; प्रपन्न नामक लघुमीन तो उपासक रूपी इन वडे मीन से भी डरते हैं; क्यों कि उनके संग से प्रपन्न की भगवदेकोपायत्वनिष्ठा चूक जाएगी; अतः प्रपन्न उनसे भी दूर भागकर महालक्ष्मीजी का आश्रय लेते हैं। .... (४९)

(गाथा.) वेण्डिरैकरुङ्कडल् शिवन्दु वेव मुनोर्नाळ् * तिण्डिरल् शिलैकैवाळि विट्टवीरर् शेरुमूर् *
एण्डिशैकणङ्गळुम् इरैञ्जियाडुतीर्त्तनीर् * वण्डिरैत्तशोलैवेलि मन्नुशीररङ्गमे ॥ ५० ॥

पहले एक समय में सफेद लहरों से समावृत श्याम सागर को जलाते हुवे, उस पर अतिदृढ-चाप से तीर छोडनेवाले महावीर भगवान से सादर अधिष्ठित दिव्यदेश तो—आठों दिशाओं में रहनेवाले मानवों से सप्रणाम स्नान किये जानेवाले पुण्यतीर्थों से युक्त, एवं भ्रमरझंकार भरित उपवनों से परिवृत श्रीरंग दिव्यधाम है।

श्रीरामचंद्र भगवान ने, लंका जानेके लिए मार्ग न देनेवाले समुद्रराज पर नाराज होकर, "सागरं शोषयिष्यामि" कहते हुवे उस पर तीक्ष्णबाणों को जो छोडदिया, यह प्रसिद्ध कथाभाग इस गाथा में उपवर्णित है। .... (५०)

(गाथा.) शरङ्गळैत्तुरन्दु विल्वळैत्तिलङ्गैमन्नवन् * शिरङ्गळ् पत्तरुत्तुदिर्त्त शेल्वर्मन्नु पोन्निडम् ॥
परन्दु पोन्निरन्दु नुन्दि वन्दलैक्कुम् वार् पुनल् * अरङ्गमेन्बर्नान्मुहत्तु अयन्पणिन्दकोयिले ॥

धनुष को नमाकर, बाणों को छोडकर, उनसे रावण के दसों सिरों को काटकर गिरा देनेवाले श्रीमान के सादर नित्यनिवास का स्थान तो—लहरों से रत्नों को उठा लानेवाली सुविस्तृत कावेरी नदी से परिवृत, एवं चतुर्मुख ब्रह्मा से संसेवित श्रीरंगनामक दिव्य क्षेत्र है ॥ .... (५१)

(गाथा.) पोत्तैयुत्तमुत्तल्याने पोरेदिर्न्दु वन्दवै * पत्तियुत्तु मत्तदन् मरुप्पोशित्तपाहनूर् *
शित्तेयित्तुमुत्तल्मूङ्गिल् मून्नुदण्डरोन्निनर् * अत्तपत्तर्शुत्तिवाळुम् अन्दणीररङ्गमे ॥ ५२ ॥

पहाडों में चरने से बलिष्ठ बना हुआ कुवैलयापीड नामक गज, जब लडने तैयार होकर सामने आया, तब उसको सुदृढ पकडकर उसके दांत तोड डालनेवाले, महावत के समान श्रीकृष्ण भगवान का निवासस्थान—छोटे छोटे गांठवाले, पके हुवे बांस से बने हुवे त्रिदंड का धारण करनेवाले संन्यासी, एकांगी और सांसारिक विषयों में संगरहित सज्जनों के मिलकर रहने का स्थान, मनोहर सुशीतल तीर्थ से परिवृत श्रीरंगदिव्यधाम है । .... (५२)

(गाथा.) मोडियोडिलच्चैयाय शापमेय्दि मुक्कणान् * कूडुशेनैमक्कळोडु कोण्डुमण्डिवेञ्जमत्तु
ओड * वाणनायिरङ्करम् कळित्तवादिमाल् * पीडुकोयिल् कूडुनीर् अरङ्गमेन्नपेरदे ॥५३॥

काली को एवं लज्जाजनक शापग्रस्त रुद्र को अपने जनों की सेना के साथ भयंकर रणांगण से भगाते हुवे, बाणासुर के हजार बाहुओं को काट डालनेवाले परमपुरुष का वैभवोपेत निवासस्थान, कावेरी से परिवृत श्रीरंगनामक दिव्यक्षेत्र है ।

श्रीभागवत दशमस्कंध ६२-६३ अध्यायों में बाणासुर युद्धवृत्तांत सविस्तर उपवर्णित है । अपने पोता अनिरुद्ध को कारागार में रखने से क्रुद्ध भगवान श्रीकृष्ण जब बाणासुर के साथ लडने आये, तब साक्षात् रुद्र अपने समस्त परिवारों के साथ बाणासुर का पक्ष लेकर श्रीकृष्ण से लडने लगा । उस भयंकर युद्ध में रुद्र हार गया और उसका सारा परिवार रणरंग से भाग गया । तब श्रीकृष्णने चक्रायुध उठाकर उस बाणासुर के हजार बाहुओं को काट दिया और रुद्र की प्रार्थना से केवल चार हाथ के साथ उसको छोड दिया । यह कथा इस गाथा में अनुसंहित है । लज्जावहशाप कहने से पितृहत्या करने से रुद्र से प्राप्त ब्रह्महत्या कही जाती है । .... (५३)

(गाथा.) इलैत्तलैच्चरन्दुरन्दु इलङ्गैकट्टळित्तवन् * मलैत्तलैप्पिरन्दिळिन्दु वन्दुनुन्दुशन्दनम् *
कुलैत्तलैत्तिरुत्तेरिन्द कुंकुमक्कुळम्बिनोडु * अलैत्तोळुहुकाविरि अरङ्गमेयवण्णले ॥ ५४ ॥

पत्ते के समान तीक्ष्ण बाणों का प्रयोग कर लंका के दुर्गों का विनाश करनेवाले श्रीरामचंद्र भगवान—सह्य नामक पर्वत में उगकर, वहां से बहुत दूर तेजी से बहती हुई, चंदनवृक्षों को सजड

उखाडती हुई, एवं कुंकुम लताओं को तोडकर हिलाकर उनसे निकलनेवाले कुंकुमचूर्ण से रंजित होनेवाली, लहरों से समावृत कावेरी जी से परिवृत श्रीरंगक्षेत्र में विराजमान हमारे स्वामी हैं। (लंका का ध्वंस करने वाले श्रीरामचंद्रजी अब अर्चारूपी होकर, कावेरी परिवृत श्रीरंगक्षेत्र में विराजमान हैं।)

श्री वैष्णव आचार्य स्नान करने के समय में इस गाथा का अनुसंधान करते हैं॥ .... (५४)

(गाथा.) मन्नुमामलर् किळत्ति वैयमङ्गै मैन्दनाय् * पिन्नुमायर् पिन्नैतोळ् मणम्पुणर्न्ददन्नियुम् *
उन्नपादमेन्नशिन्दै मन्नवैत्तु नल्हिनाय् * पोन्निशूळरङ्गमेय पुण्डरीकनल्लैये ॥ ५५ ॥

हे श्रेष्ठ कमलनिवासिनी लक्ष्मीजी के तथा भूदेवी के प्रियवल्लभ! हे गोपकुलोत्पन्न नीलादेवी के बाहु से आलिंगित होकर विराजमान प्रभो! तदुपरांत अपने पादारविंदों को मेरे मन में सुदृढ प्रतिष्ठित रखनेवाले हे स्वामिन्! आप, कावेरी परिवृत श्रीरंगदिव्यक्षेत्र में विराजमान, कमल सदृश दिव्यावयववाले (परमभोग्य) हैं।

श्री भूनीला नायक होनेपर भी भगवान उन दिव्य महिषियों से अधिकतया आळ्वार पर प्रेम करते हुवे आपके हृदय में नित्यनिवास कर रहे हैं; एवं समस्तभूतलवासियों पर अनुग्रह दिखाते हुवे उनको अपने दिव्यदर्शन देने के लिए कावेरी परिवृत श्रीरंगक्षेत्र में भी विराजमान हैं। अहो आपका सीमातीत वात्सल्य है! .... (५५)

(गाथा.) इलङ्गैमन्ननैन्दोडैन्दु पैन्दलैनिलत्तुह * कलङ्गवन्नु शेन्नु कोन्नु वेन्निकोण्डवीरने *
विलङ्गुनूलर्वेदनावर् नीदियान केळ्वियार् * वलङ्गोळकुडन्दैयुळ् किडन्दमालुमल्लैये॥५६॥

पूर्वकाल में लंका पधारकर, भय से कांपनेवाले रावण के दसों सिरों को काटकर भूमिपर गिराकर, विजय पानेवाले हे महावीर (श्रीरामचंद्र)! यज्ञोपवीतधारी, स्वजिह्वातलस्थित चारवेदवाले, एवं सदाचार्यों से सारभूत अर्थों को प्राप्त किये हुवे वैदिकों से संसेवित श्री कुंभघोण क्षेत्र में शयन करनेवाले सर्वेश्वर आप ही हैं।

अब छे पद्यों से श्री कुंभघोण क्षेत्र का अर्थात् उसमें विराजमान शेषशायी भगवान का वर्णन किया जाता है। .... (५६)

(गाथा.) शङ्गुतङ्गुमुन्कैनङ्गै कोङ्गैतङ्गलुत्तवन् * अङ्गमङ्गवन्नुशेन्नु अडर्त्तेरिन्दवाळियान् *
कोङ्गुतङ्गुवार्कुळल्ल मडन्दैमार् कुडैन्दनीर् * पोङ्गुतण्कुडन्दैयुळ् किडन्दपुण्डरीकने ॥५७॥

नित्यसंश्लेषानंद से हाथ में स्थिर रहनेवाली चूडियों से विभूषित सीताजी के विषय में कामपरवश महापापी रावण का संहार करने के लिए पूर्वकाल में लंका पधारकर, उस नगरी का आक्रमण कर, उस रावण के सिरों को काट डालनेवाले, समुद्र के समान श्रमहर दिव्यमंगलविग्रहवाले श्रीरामचंद्रजी, सुगंधविशिष्ट दीर्घ केशपाशवाली दिव्य अप्सराओं से संसेवित, एवं उससे अभिवृद्ध होनेवाले तीर्थ से (कावेरीजी से) परिवृत सुशीतल कुंभघोण क्षेत्र में शयन करनेवाले सुंदरांग हैं। [कावेरी में अनंत अप्सराओं के स्नान करने से उसका जल बहुत बढ जाता है।] .... (५७)

(गाथा.) मरङ्गेडनडन्दडर्त्तु मत्तयानैमत्तहत्तु * उरङ्गेडप्पुडैत्तु ओर् कोम्बोशित्तुहन्दवुत्तमा *
तुरङ्गम्वाय्पिळन्दु मण्णळन्दपाद * वेदियर् वरङ्गोळक्कुडन्दैयुळ् किडन्दमालुमल्लैये ॥५८॥

यमलार्जुन वृक्षों को तोडते हुवे चलकर, कुवलयापीडनामक मत्तगज के गर्व का निरास कर, उसके सिरपर जोर से मारकर, और उसके दांत को तोड डालकर आनंदित होने वाले हे परमपुरुष! घोडे के रूप में आनेवाले केशिनामक दैत्य का मुख चीर डालकर, अपने पादों से लोकों को नापकर अपनानेवाले हे भगवन्! वैदिक जनताके अपेक्षित पुरुषार्थों का प्रदान करते हुवे श्रीकुंभघोण क्षेत्र में शयन करनेवाले आश्रित व्यामुग्ध भगवान आप ही हैं। .... (५८)

(गाथा.) शालिवेलितण्वयल् तडङ्गिडङ्गुपूम्बोळिल् * कोलमाडनीडु तण्कुडन्दैमेयकोवला *
कालनेमिवक्करन् करन्मुरन्शिरमवै * कालनोडुकूड विर्कुनित्तविर्कैवीरने ॥ ५९ ॥

शालिसस्य से संपूर्ण सुशोभन खेतों से, बडी खारियों से, पुष्पित उद्यानवनों से, तथा सुंदर ऊंचे महलों से परिवृत, सुशीतल कुंभघोणक्षेत्र में विराजनेवाले हे श्रीकृष्ण! कालनेमि दंतवक्र, और क्रूर खर, इनके सिरों को मृत्यु से मिलाते हुवे (अर्थात् उक्त असुरों का संहार करते हुवे) धनुष को नमानेवाले सुंदर हस्तवाले हे असदृश वीर! आपकी जय हो! .... (५९)

(गाथा.) शेळुङ्गोळुम्बेरुम्बनि पोळिन्दिड उयर्न्दवेय् * विलुन्दुलर्न्देलुन्दु विण्पुडैकुम् वेङ्गडत्तुळनिन्नु *
एळुन्दिरुन्दु तेन्पोरुन्दु पूम्बोळिल् तळैकोळुम् * शेळुन्तडङ्गुडन्दैयुळ् किडन्दमालुमल्लैये ॥

लंबे वेणुदंड, अविच्छिन्न धारा के रूप में पडनेवाले हिम से आच्छादित होकर उसके वजन से नमते हुवे भूतलपर लेट कर, फिर सूर्यताप से उस हिम के निकल जानेपर ऊपर उठते हुवे, जहां ऊर्ध्व-लोक तक बढते हैं, ऐसे ऊंचे श्रीवेंकटाद्रि में खडे होकर, भ्रमरपंक्तियुत पुष्पवाले उद्यानवनों से, एवं मनोहर सुशीतल तालावों से सुशोभित कुंभघोण क्षेत्र में शयन करनेवाले आश्रित व्यामुग्ध भगवान आप ही हैं॥(६०)

(गाथा.) नडन्दकाल्गळ् नोन्दवो नडुङ्गञालमेनमाय् * इडन्दमेय् कुलुङ्गवो विलङ्गुमाल्वरैच्चुरम् *
कडन्दकाल्परन्द काविरिकरैकुडन्दैयुळ् * किडन्दवारेलुन्दिरुन्दुपेशु वाळि केशने ॥ ६१ ॥

आडे रहनेवाले बडे बडे पहाडों को एवं मारवाडों को लांघकर बहनेवाली विशाल नहरों से युक्त कावेरी नदी के तटपर श्रीकुंभघोण क्षेत्र में आप जो शयन कर रहे हैं, यह क्या लोकों को नापनेवाले अपने पादों के दुखने से होगा? अथवा, (पाताल में लग्न होने से जब भूदेवी भयसे कांपती थी तब) महावराह के रूप का धारण कर उस भूमि को वहां से छुडाकर उठा लाने के निमित्त से अपने दिव्यमंगल विग्रह में समुत्पन्न दुख से होगा? हे केशव! (कौन से श्रम के परिहारार्थ आप यहां पर शयन कर रहे हैं? इस तत्व को) आप शयन से उठकर बताइए; आपकी इस शयनावस्था की जय हो।

इस पद्य के बारे में यह ऐतिह्य प्रचलित है कि आळ्वार से यों प्रार्थित होने पर भगवान अपनी शेषशय्या से उठने लगे, और उतने में आपका मंगलाशासन पाकर वैसे ही रह गये। (६१)

(गाथा.) करण्डमाड्डु पोयुगैयुळ् करुम्बनैप्पेरुम्बळम् * पुरण्डु वीळ वाळैपाय् कुरुङ्गुडिनेडुन्दहाय् *
तिरण्डतोळिरणियन् शिनङ्गोळाहमोन्नैयुम् * इरण्डुकूरुशेयुदुहन्द शिङ्गमेन्बदुन्नैये ॥ ६२ ॥

जहां करंडक पक्षी (यानी जलकाक) इधर उधर चल रहे हैं ऐसे तालाब में जब काले व बडे तालफल पडकर लुढके तब (उनको अपना शत्रु उक्त करंड रूपक्षी मानते हुवे डरकर) मीन कूदते कूदते जाकर अपने को छिपा देते हैं, ऐसे तिरुकुरुङ्गुडि दिव्यक्षेत्र में विराजमान हे महानुभाव! क्या आप ही बलिष्ठ भुजवाले हिरण्यासुर के मात्सर्य प्रकाशक अतिक्रूर शरीर को दो भाग में चीर डालकर संतोष पानेवाले नरसिंहमूर्ति कहलाते हैं? (अर्थात् अत्यंत सुकुमार दिव्यमंगल विग्रहवाले आपको अतिकठिन नरसिंह कहना क्या उचित है?)

पांड्यदेश में तिरुकुरुंगुडि नामक एक दिव्यदेश विराजमान है जिसको वैष्णव वामन क्षेत्र भी कहते हैं। (कोई कोई लोग इसको लंबानारायण कहते हैं।) उधर के विशाल मंदिर के अंदर एक तालाब है, जो करंडमाड्डु सर पुकारा जाता है। इसके तटपर एक प्राचीन तालवृक्ष भी है। श्रीरंगक्षेत्रस्थ पुंनागवृक्ष की तरह यह वृक्ष भी प्रसिद्ध है। .... (६२)

(गाया.) नन्निरुन्दु योगनीति नण्णुवार्हळ् शिन्दैयुळ् * शेन्निरुन्दु तीविनैहळ् तीर्त्तदेवदेवने *
कुन्निरुन्दमाडनीडु पाडहत्तुमूरहत्तुम् * निन्निरुन्दु वेःकणैकिडन्ददु एन्ननीमैये ॥ ६३ ॥

सुदृढ आसन लगाकर शास्त्रोक्त प्रकार से ठीक योगाभ्यास करनेवाले योगियों की हृदयगुहा में प्रवेशकर विराजते हुवे उनके पापों को दूर करनेवाले हे देवदेव! पहाड के सदृश ऊंचे प्राकार से परिवृत पांडवक्षेत्र में, उरगक्षेत्र में तथा वेगाक्षेत्र में (क्रमशः) बैठकर, खडे रहकर, एवं शयन कर आप जो विराजमान हैं, यह आपके सीमातीत सौलभ्य का सूचक है।

भक्तश्रेष्ठ प्रह्लादजी के लिए भगवान ने विकट नरसिंह के रूपका धारण कर अतिक्रूर हिरण्यासुर का जो संहार किया, वह भी उचित है; परंतु सर्वात्मना अपने से विमुख संसारियों पर अपनी विशेष कृपा को प्रकट करते हुवे दिव्यदेशों में खडे रहना, बैठना, लेटना इत्यादि नाना अवस्थावाले दिव्य अर्चारूपों का परिग्रह कर, आप अपने सीमातीत सौलभ्य को जो बताते हैं, यह आपका स्वभाव वास्तव में वर्णनातीत वैभववाला है—यह है इस पद्य का तात्पर्यार्थ। भगवान शयनासनादि नाना अवस्थाओं में इस आशा से विराजते हैं कि संसारीलोग उनमें से किसी न किसी अवस्था की शोभासे अपहृतचित्त होकर उनकी ओर शायद झुकेंगे। पांडव इत्यादि इस गाथा में उपवर्णित तीनों क्षेत्र कांचीपुरी में विराजमान प्रसिद्ध क्षेत्र हैं। पांडव अथवा पांडवदूत क्षेत्र में भगवान अत्यद्भुत व अतिमहान एक दिव्यमंगल विग्रह का धारण कर बैठे हैं। उरगक्षेत्र तो वामनभगवान का मंदिर है। उधर भगवान अत्यद्भुत त्रिविक्रम रूप से, एवं एक उरग (यानी सर्प) रूप से खडे विराजमान हैं। इन उरगभगवान का वैभव सर्वत्र बहुत प्रसिद्ध है। वेगासेतुक्षेत्र तो श्रीयथोक्तकारि भगवान का मंदिर है। चतुर्मुख ब्रह्माजी से अनुष्ठित अश्वमेधयाग का ध्वंस करने के लिए वेगवती नामक नदी के रूप में बहकर आनेवाली सरस्वती के प्रवाह को रोकने के लिए

भगवान उसके सामने शेषशय्यापर लेटते हुए प्रकट हो गये थे ; यही दिव्यरूप वेगासेतु कहलाता है। बाद में यही श्रीयथोक्तकारि नाम से प्रसिद्ध हो गया। .... (६३)

(गाथा.) निन्नदेन्दैयूरहत्तु इरुन्ददेन्दै पाडहत्तु * अन्नुवेःकणैकिडन्ददु एन्निलादमुन्नेलाम् *
अन्नुनान्पिरन्दिलेन् पिरन्दपिन्मरन्दिलेन् * निन्नदुमिरुन्ददुम् किडन्ददुमेन्नेञ्जुळे ॥ ६४ ॥

उरगक्षेत्र में खडे रहना, पांडवक्षेत्र में बैठना और वेगासेतु में शयन करना, ये सभी भगवान के काम मेरे जन्म से पहले बन चुके थे। उस समय में मेरा जन्म (ज्ञान जन्म) नहीं हुआ था। उस जन्म को प्राप्त करने पर (अर्थात् भगवद्विषयक ज्ञान को प्राप्त करने पर) तो मैं उनको नहीं भूला है। अतः भगवान अब मेरे हृदय में ही पूर्वोक्त खडे रहना, बैठना व शयन करना, इन सब कामों को कर रहे हैं।

पूर्व गाथा में उक्त रीति से, चेतनों को अपनी ओर खेंच लेने के लिए ही भगवान शयनासनादि नाना अवस्थावाले दिव्य अर्चारूपों का धारण करते हैं। इनसे आकृष्ट चित्त होकर जब आळ्वार भगवान का निरंतर ध्यान करने लगे, तब आप उन दिव्य देशों को छोडकर आळ्वार के हृदय में ही स्थिर विराजने लगे। अर्थात् दिव्य धामों में भगवान जो प्रेम करते हैं, उसीको, अथवा उससे भी अधिक प्रेम को आप भक्तों पर करते हैं ॥.... .... (६४)

(गाथा.) निर्प्पदुमोर्वेर्प्पहत्तु इरुप्पुम्विण्किडप्पदुम् * नर्प्पेरुन्तिरैक्कडलुळ् नानिलादमुन्नेलाम् *
अर्प्पुदनन्तशयनन् आदिभूतन्माधवन् * निर्प्पदुमिरुप्पदुम् किडप्पदुमेन्नेञ्जुळे ॥ ६५ ॥

ज्ञानशक्त्यादि गुणविशिष्ट होने से अत्याश्चर्यमय, शेषशायी, जगत्कारणभूत और श्रियःपति भगवान का, अतिविलक्षण श्री वेंकटाद्रि में खडे रहना, परमाकाश शब्दवाच्य परमपद में बैठे रहना, एवं सुंदर बडी लहरों से समावृत क्षीर सागर में शयन करना, ये सब, मेरे अभाव के उस पूर्वकाल में बने थे ; हाल में तो आपके खडे रहना, बैठे रहना और शयन करना, ये सब मेरे हृदय में होते हैं।

पूर्वगाथा में और इस गाथा में आळ्वार अपने जन्माभाव, अभाव आदि की बात करते हैं। वेदांत शास्त्र के अनुसार आत्मा तो जन्मजरामरणादि विकारों से दूर है। तथापि वही शास्त्र बताता है कि ब्रह्मज्ञान के अभाव में आत्मा को असत् ही मानना चाहिए, और जब उसको ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा, तभी उसको जन्मित हुआ मानना चाहिए। इस अर्थ को मन में रखकर आळ्वार कहते हैं कि जब मैं नहीं था, तब भगवान दूसरे स्थलों में विराजमान थे ; जब कि मेरा जन्म (यानी ज्ञानजन्म) हो गया, तब आप उन स्थलों को एकदम छोडकर मेरे हृदय में ही शयनासनादि सभी काम करते हैं ॥ .... (६५)

(गाथा.) इन्नुशादल् निन्नुशादल् अन्नियारुम् वैयहत्तु * ओन्निनिन्नु वाळ्दलिन्मैकण्डुम् नीशरेन्गोलो *
अन्नुपारळन्द पादपोदैयुन्नि वानिन्मेल् * शेन्नुशेन्नु देवराय् इरुक्किलादवण्णमे ॥ ६६ ॥

जन्म लेते ही मर जाना, अथवा कुछ समय रहकर मर जाना, इन दोनों में एक को छोडकर इस संसार में कोई भी व्यक्ति अमर न रह सकेगा। इस अर्थ को प्रत्यक्षतः देख पानेपर भी बुद्धिहीन,

मूर्ख लोग, पहले एक समय में तीनों लोकों को नापनेवाले (त्रिविक्रम) भगवान के पादारविंदों का ध्यान कर, शरीर छोडने के बाद अर्चिरादि मार्ग से निकल कर, परमपद पहुंच कर, नित्यसूरियों में एक बनाने को क्यों कर नहीं चाहते हैं ?

भगवान अत्यंत सुलभ हैं; आपके भजन से मिलनेवाला फल भी अत्यंत श्रेष्ठ है। संसार फल तो सब प्रकारों से इससे विपरीत है; अर्थात् अत्यल्प, दुःखमिश्र और अनित्य होता है। इस तत्व को प्रत्यक्षतः देखने पर भी मूर्ख संसारी लोग इससे विरक्त होकर भगवान का भजन कर, अर्चिरादिमार्ग से परमपद जाकर, वहां नित्यसूरियों के साथ मिलकर ब्रह्मानंद को क्यों कर नहीं लूट लेने चाहते हैं?....(६६)

(गाथा.) शण्डमण्डलत्तिनूडुशेन्नु वीडुपेत्तुमेल् * कुण्डुवीडिलादकादल् इन्बमुनाळुमेय्दुवीर् *
पुण्डरीकपादपुण्यकीर्त्तिनुम्शेविमडुत्तुण्डु * नुम्मुरुविनै तुयरुळ्नीङ्गियुय्म्मिनो ॥ ६७ ॥

सूर्यमंडल के बीच से निकलकर (अर्थात् अर्चिरादि मार्ग से जाकर) परमपद पहुंच कर, वहां पर कभी भी नहीं छूटनेवाले), भक्तिफल कैंकर्यसुख को हमेशा प्राप्त करने इच्छुक हे मुमुक्षु जन! कमलपाद भगवान के पुण्य यश को अपने कान में घुसाकर, उसका ठीक अनुभव कर, अपने प्रबल पापों के फल दुःखों से छूटकर, उज्जीवित हो जाइए।

संसारि चेतनों की दुरवस्था देखकर कृपापरवश आळ्वार, अब सातेक पद्यों से उनको सदुपदेश देते हैं। इस पद्य में यह उपदेश दिया जाता है कि भगवान के कल्याणगुण व यश का उपदेश पाकर, उसका अनुभव करनेवालों के समस्त पाप व पापफल दुःख दूर होते हैं। .... (६७)

(गाथा.) मुत्तिरत्तुवाणियत्तु इरण्डिलोन्नुनीशर्गळ् * मत्तरायमयङ्गुहिन्रदु इट्टदिलिरन्दुपोन्दु *
एत्तिरत्तुमुय्वदोर् उपायमिल्लैयुय्हुरिल् * तोत्तिरुत्ततण्डुळाय् नन्मालैवाळ्त्ति वाळ्मिनो ॥

सात्विक राजस तामस नामक तीन फलों के बीच में से सात्विक फल को छोडकर दूसरे दो फलों में आशा रखनेवाले नीच मानव, उस लोक में (परलोक में) उस कर्मफल का अनुभव करने पर उस शरीर को छोडकर, फिर गर्भवास पूर्वक इस भूतलपर जन्म लेकर, देह को ही आत्मा मानते हुवे मोहित हो जाते हैं। ऐसे लोगों को आत्मकल्याण पाने का कोई भी मार्ग नहीं रहता है। परंतु तुम लोग अगर आत्मोद्धार पाने को चाहते हो, तो सुशीतल तुलसी गुच्छमाला से अलंकृत आश्रित व्यामुग्ध भगवान की स्तुति कर उज्जीवित हो जाओ।

संसार में रहनेवाले बहुत-से लोग सात्विकफल मोक्ष में आशा न करते हुवे, राजस व तामस फलों को ही चाहते हुवे, देवतांतर भजन इत्यादि दूसरे उपायों में लग जाते हैं। उन उन उपायों का अनुगुण फल तो उनको मिलेगा ही। तदर्थ वे स्वर्गादिलोकों में जन्म पाते हैं और कुछ समयतक उन भोगों का अनुभव करते हैं। परंतु एक दिन, जब कि वह फल समाप्त होगा, वे उस शरीर को छोडकर, फिर गर्भ में पडकर इस धरातलपर दूसरा जन्म लेते हैं। फिर अपने प्राचीन संस्कार के फलतया, वे

राजसी व तामसी ही होकर देहात्मभ्रम इत्यादि दोषयुक्त रह जाते हैं। अतः वे हमेशा के लिए इस संसार चक्र में ही घूमते रहते हैं; नतु कभी इस चक्कर से छूट सकते हैं। अपने सर्वेश्वरत्व का सूचक मनोहर तुलसी माला से अलंकृत भगवान की स्तुति करनेवाले तो इस चक्कर को पारकर नित्यानंदमग्न हो जाते हैं। .... (६८)

(गाथा.) काणिलुमुरुप्पोलार् शेविक्किनादकीर्त्तियार् * पेणिलुम् वरन्दर मिडुक्किलाद देवरै *
आणमेन्नडैन्दुवालुम् आदर्गाळेम्मादिपाल् * पेणि नुम्पिरप्पेनुम् पिणक्करुक्कहिंचिरे ॥ ६९॥

देखने में अतिघोर स्वरूपवाले, कर्णकठोरचरित्रवाले, (इन सबकी परवाह न कर आश्रयण करने पर भी) भक्तों के अपेक्षित फल देने में अशक्त, दुर्देवों की शरण में जाकर नष्ट होनेवाली हे अंधजनता! सकल जगत्कारणभूत भगवान के पास जाकर आपकी सेवा कर, अपने संसार रूपी महागुल्मों का क्या तुम लोग नाश कर सकते हो?

दूसरे देव, कुरूपी, कठोरचरित्रवाले और भक्तों के अभीष्ट देने में अशक्त रहते हैं। उनके आश्रयण से क्या लाभ होगा? कुछ नहीं। भगवान तो इनसे विपरीत, अतिमनोहर दिव्यमंगलविग्रहवाले कर्णानंदकारक दिव्यचेष्टितवाले एवं मोक्षादि तत्तदपेक्षित समस्तपुरुषार्थ प्रदान समर्थ हैं। अतः आपकी शरण में जाने से हमारे संसाररूपी भयंकर गुल्म एकदम जल जाते हैं। इस कारण से आपकी शरण में जाना आवश्यक है। .... (६९)

(गाथा.) कुन्तमोडुशूलम्वेलगळ् तोमरङ्गळ्तण्डुवाळ् * पन्दमानतेवर्गळ् परन्दुवानहमुर *
वन्दवाणनीरैञ्ञूरु तोळ्गळैत्तुणित्तनाळ् * अन्दवन्दवाकुलम् अमररेयरिवरे ॥ ७० ॥

कुंत शूल दंड मुसल गदा असि इत्यादि आयुधों को उठाकर जत्था जत्था बनकर रहनेवाले रुद्र संबंधी देवगण (युद्ध में हार खाकर) इधर उधर भागकर अपने अपने वासस्थान में जब चले गये, उसके बाद लडने के लिए सामने आनेवाले बाणासुर के एक हजार बाहुओं को (जब भगवान ने) काट डाल दिया; उस समय के उन देवों की व्याकुलता को स्वयं वे ही जानते हैं।

बाणासुर की भक्ति से प्रसन्न रुद्र उसको एक हजार बाहुओं का प्रदान कर, सपरिवार स्वयं उसका रक्षक बन गया था। एक समय में ऐसा एक संयोग बना कि श्रीकृष्ण के पोता अनिरुद्धजी बाण की पुत्री उषा में अनुरक्त हो गये। इस रहस्य को जानकर बाणासुर ने अनिरुद्धजी को कपट से जीतकर क़ैद में बंधित कर दिया। यह समाचार पाकर श्रीकृष्ण भी बाणासुर के नगर में पधारे और उससे लडने तैयार हो गये। तब गणेश, कार्तिकेय, नंदी, ज्वरदेवता इत्यादि सभी रुद्रगण और अंततः स्वयं रुद्र, बाणासुर का पक्ष लेकर अपने अपने आयुध उठाकर भगवान के साथ लडने आये। परंतु आपसे प्रेषित बाणों का स्वाद खाकर वे सब बहुत दुखी हो गये और रणरंग छोडकर भाग गये। उस समय में उनकी दुर्दशा का वर्णन कौन कर सकता है? ऐसी है देवतांतर की अपने भक्त की रक्षा करने की शक्ति! अतः इनकी शरण में जानेवाले मानवों का जो हाल होगा, उसको कहने की आवश्यकता कौनसी है? (७०)

(गाथा.) वण्डुलावुकोदैमादर् कारणत्तिनाल्वेहुण्डु * इण्डवाणनीरैञ्जूरु तोळ्गळैत्तुणित्तनाळ् *
मुण्डन्नीरन्मक्कळ्वेप्पु मोडियङ्गियोडिड * कण्डु नाणिव्वाणनुक्किरङ्गिनान् एम्मायने ॥ ७१ ॥

भ्रमरपरिपूत पुष्पमालालंकृत (अपनी पुत्री) उषा के निमित्त से नाराज होकर लडने आनेवाले बाणासुर के हजार बाहुओं को जब काटने में आया, तब मुंडित सिरवाला, भस्म का धारण करनेवाला रुद्र, उसके पुत्र, ज्वरदेवता, काली, और अग्निदेवता इत्यादि सभी बाणासुर को छोडकर अपनी जान बचाते हुवे रणरंग से पलायमान हो गये। इसको देखकर अत्याश्चर्यशक्तियुक्त हमारे स्वामी श्रीकृष्ण ने, "हा! इन कायरों के साथ लडने को मैं क्यों आया?" कहते हुवे लज्जित होकर उस बाणासुर के प्रति कृपा की।

इस गाथा में भी पूर्वोक्त यही अर्थ बताया जाता है कि बाणासुरयुद्धप्रसंग से यह स्पष्ट होता हैं कि अपने भक्तों की रक्षा करने में देवतांतर सर्वथा अशक्त हैं। .... (७१)

(गाथा.) पोदिन्मङ्गैभूतलक्किळत्ति देवियन्नियुम् * पोदुतङ्गुनान्मुहन्महन् अवन्महन्शोलिल् *
मादुतङ्गुकूरन् एरदूर्दियेन्नुवेदनूल् * ओदुहिन्नदुण्मैयल्लदिल्लै मत्तुरैक्किले ॥ ७२ ॥

कमलनिवासिनी श्रीमहालक्ष्मीजी और भूदेवी भगवान की रानियां हैं; और कमलासन चतुर्मुख-ब्रह्मा आपका पुत्र है; और भी कहेंगे तो, अर्धनारीश्वर, वृषभवाहन शिव आपका पोता है। ऐसा जो वेद में कहा गया है, वह बिलकुल सत्य है। इसके विरुद्ध में दूसरे लोग जो कहते हैं वह असत्य है।

भगवान श्रीमन्नारायण ही परतत्व हैं, इस विषय में इतना ही पर्याप्त प्रमाण है कि वेदों की स्पष्ट वाणी के अनुसार आप श्रीभूमियों के नायक, चतुर्मुखब्रह्मा के पिता और शिव के दादा भी हैं। इससे विपरीत दूसरों का वाद, वेदविरुद्ध होने से अप्रामाणिक और अत एव वैदिकों को उपेक्षणीय होता है।(७२)

(गाथा.) मरम्बोदच्चरन्तुरन्दु वालिवीळ मुनोर्नाळ् * उरम्बोदच्चरन्तुरन्द उम्बराळियेम्बिरान् *
वरङ्गुरिप्पिल्वैत्तवर्कलादु वानमाळिलुम् * निरम्बुनीडुभोगम् एत्तिरत्तुम् यार्क्कुमिल्लैये ॥७३॥

पहले एक समय में सातों सालवृक्षों में छेद करते हुवे उनपर तीर छोडनेवाले, एवं वाली के वक्ष पर बाण छोडकर उसका संहार करनेवाले देवाधिदेव, हमारे स्वामी श्रीमन्नारायण अपने शुभ हृदय से जिस पर कृपा करेंगे, ऐसे मानव को छोड कर दूसरा कोई भी, वह चाहें स्वर्गादिलोकपालक भी क्यों न हो, शाश्वत एवं परिपूर्ण कैंकर्य सुख को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

श्रीरामावतार में, अपने रक्षकत्व में शंका करनेवाले सुग्रीव की चित्तशांति के लिए सप्तसालभंजन करनेवाले, एवं विना प्रयास रावण को भी जीतनेवाले, तथा वाली को भी एक बाण से मार डालनेवाले भगवान की निर्हेतुक कृपा का लक्ष्य बननेवाला ही मोक्ष सुख पा सकता है; दूसरा कोई नहीं। अर्थात् बड़े बडे ज्ञानशक्त्यादिवाले भी अपने प्रयत्न से भगवान को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। .... (७३)

(गाथा.) अरिन्दरिन्दु वामनन् अडियिणै वणङ्गिनाल् * शेरिन्देळुन्द ञानमोडु शेल्वमुम् शोरिन्दिडुम् *
मरिन्देळुन्दतेण्डिरैयुळ् मन्नुमालै वाळ्त्तिनाल् * परिन्देळुन्दतीविनैगळ् पत्तरुदल्पान्मैये ॥

वामन भगवान के उभयपादारविंदों को उपाय व उपेय (फल, यानी प्राप्य) मानकर उनका नमस्कार करने से अतिश्रेष्ठ ज्ञान व भक्तिसंपत् उगकर परिपक्व हो जाती हैं। उमडनेवाली विशाल व शुभ्र लहरों से समावृत क्षीरसमुद्र में नित्यनिवास करनेवाले भगवान का नामसंकीर्तन करने पर आत्मस्वरूप से संबद्ध समस्त क्रूर पाप जडके साथ निकलकर, वासना भी न बच जाय, इस तरह से अनायास ही नष्ट हो जाते हैं।

पूर्वगाथोक्त प्रकार से जब मोक्ष मिलना भगवदिच्छाधीन हो गया, तब मुमुक्षु को उसके लिए कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता न रहती है। परंतु अपनी इंद्रियों को सफल बनानेके लिए उसको भगवान का प्रणाम स्तोत्र इत्यादि करना चाहिए; इससे उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और भगवद्विषयक ज्ञान व भक्ति उत्पन्न हो जाती हैं॥ .... (७४)

(गाथा.) ओन्रिनिन्रु नत्तवम्शेय्दु ऊळियूळिदोरेलाम् * निन्रुनिन्रवन्गुणङ्गळ् उळ्ळियुळ्ळन्तूयराय् *
शेन्रुशेन्रु देवदेवर् उम्बरुम्बरुम्बराय् * अन्रियेङ्गळ्शेङ्गण्माले यावर्काणवल्लरे ॥ ७५ ॥

अपने मन को सुदृढ बनाकर, अनेक जन्मों में (कर्मयोगनामक) विलक्षण तपस्या का अनुष्ठान कर, भगवान के कल्याणगुणों का क्रमेण (धीरे धीरे) अनुसंधान करते हुवे, उससे परिशुद्ध मनवाले बनकर, आगे आगे बढते हुवे (अर्थात् श्रवण मनन निदिध्यासनों में क्रमेण निरत होकर), परभक्ति परज्ञान परमभक्ति युत बने विना, कोई भी, वह चाहें देवदेव भी क्यों न हो, (हमारे ऊपर अनुग्रह करनेवाले) हमारे प्रभु कमलनयन भगवान के दर्शन नहीं पा सकते हैं।

क्षुद्र लौकिक विषयों पर से मन को हटाकर, भगवान पर उसको सुदृढ लगाकर, कर्म ज्ञान भक्तियों का धीरे धीरे अभ्यास कर, ऐसे अनेक जन्मों को विताने के बाद उनमें सिद्ध होनेवाला मानव भगवान का साक्षात्कार पा सकता है। न तु दूसरे किसी उपाय से। परंतु जिस मानव के ऊपर भगवान का कृपाकटाक्ष पडेगा, वह विना प्रयास उक्त समस्त अवस्थाओं को पाकर साक्षात्कार भी पाएगा॥....(७५)

(गाथा.) पुन्पुलवळियडैत्तु अरक्किलच्चिनैशेय्दु * नन्पुलवळितिरन्दु ञाननच्चुडर्कोळीइ *
एन्बिलेळ्हि नेञ्जुरुहि उळ्ळनिन्देळुन्ददोर् * अन्बिलन्रियाळियानै यावर्काणवल्लरे ॥

क्षुद्र शब्दादि विषयों में इंद्रियों के जाने के मार्ग को लाह से मुहर कर बंदकर, सद्विषय मार्ग को खोलकर, ज्ञाननामक विलक्षण दीप को जलाकर, अस्थिमय शरीर को शिथिल बनाकर, हृदय को द्रवित कर, ऐसी दशा में उगनेवाले विलक्षण परिपूर्ण प्रेम के विना (दूसरे कौनसे प्रकार से) कोई भी चक्रधारी भगवान के दर्शन पा सकेगा? .... (७६)

(गाथा.) एट्टुमेट्टुमेट्टुमाय् ओरेळुमेळुमेळुमाय् * एट्टुमून्रुमोन्रुमाहि निन्रवादिदेवनै *
एट्टिनायभेदमोडु इरैञ्जिनिन्रवन्पेयर् * एट्टेळुत्तुमोदुवाईळ् वल्लर्वानमाळवे ॥ ७७ ॥

चौवीस तत्त्वों के निर्वाहक, एवं सप्तद्वीप, सप्त कुलपर्वत तथा सप्त सागरों के निर्वाहक, एवं बारह आदित्यों के अंतर्यामी, आदिदेव भगवान का साष्टांग प्रणाम कर उनके वाचक अष्टाक्षर महामंत्र का अनुसंधान करनेवाले परमपद को जीत लेंगे ॥ .... (७७)

(गाथा.) शोर्विलादकादलाल् तोडकरामनत्तराय् * नीरारावणैकिडन्द निन्मलनलङ्कलल् *
आर्वमोडिरैञ्जिनिन्नु अवन्पेयरेट्टेलुत्तुम् * वारमाह ओदुवार्हल् वल्लर्वानमाळवे ॥ ७८ ॥

क्षीरसागर में शेषपर्यंक पर शयन करनेवाले अखिल हेयप्रत्यनीक भगवान के पादों का प्रेम से आश्रयण कर, फलांतर में न लगनेवाली आशा से युक्त होकर, विना विच्छेद एकाग्र मन से, आपके वाचक॰ श्रीमदष्टाक्षर महामंत्र को, अपने लिए परम उपादेय मानते हुवे, उसका अनुसंधान करनेवाले लोग परमपद को भी जीतने समर्थ हो जायंगे।

इस गाथा में यों कहा जाता है कि लौकिक क्षुद्रविषयों में जबतक मानव का मन मग्न रहता है, तब तक उसको भगवद्विषय सिद्ध न होगा। अतः मुमुक्षुजनों को क्षुद्र विषयों पर से अपना मन हठाना अत्यावश्यक है। .... (७८)

(गाथा.) पत्तिनोडुपत्तुमाय् ओरेऴिनोडोरोन्वदाय् * पत्तिनाल्तिशैकणिन्न नाडुपेत्तनन्मैयाय् *
पत्तिनायतोत्तमोडु ओराचल्मिकवादिपाल् * पत्तरामवर्कलादु मुत्तिमुत्तलाहुमे ॥ ७९ ॥

दस दिशाओं के और दस दिक्पालकों के अंतर्यामी, निषाद ऋषभ इत्यादि सात गान स्वरों के एवं श्रृंगार वीरादि नौ नाट्यरसों के प्रवर्तक, चौदह लोक निवासियों से अभ्य श्रेय के लिए दशावतार रूप से अवतीर्ण, असीम क्षमागुणवाले हमारे स्वामी भगवान के विषय में भक्ति करनेवालों के सिवा दूसरों को क्या मोक्षपुरुषार्थ कमी परिपक्व बनेगा? (भगवद्भक्तों को छोडकर दूसरों को क्या कमी मोक्ष मिल सकेगा?) (७९)

(गाथा.) वाशियाहि नेशमिन्नि वन्देदिर्न्दधेनुकन् * नाशमाहि नालुलप्प नन्मैशेर् पनङ्गनिकु *
वीशिमेल् निमिर्न्दतोळिन् इल्लैयाकिनायुकलक्कु * आशैयामवर्कलाल् अमरराहलाहुमे ॥८०॥

भक्तिशून्य होकर गधे के रूप से लडने आनेवाले धेनुकासुर का आयुष्य समाप्त हो, (अर्थात् वह मर जाय) इस तरह से ऊपर उठाये गये हुवे हाथ से उसको मनोहर ताल फलों पर फेंक कर, उस असुर को समाप्त करनेवाले आपके पादारविंदों पर प्रेम करनेवालों के सिवा दूसरों को नित्यसूरि बनना क्या शक्य है?

कंस की प्रेरणा से श्रीकृष्ण से लडने के लिए व्रज आनेवाले सैकडों में एक गधे के रूप में आया और दूसरा तालवृक्ष में आविष्ट हुआ था। जब ये दोनों श्रीकृष्ण को मारने के योग्य अवसर की प्रतीक्षा करते थे, तब श्रीकृष्ण ने उस गधे को उसके पैरों से पकडकर उठाकर, घुमाकर तालवृक्ष पर फेंक दिया जिससे दोनों असुर समाप्त हो गये ॥.... .... (८०)

(गाथा.) कडैन्दपार्कडल्किडन्दु कालनेमियैक्कडिन्दु * उडैन्दवालितन्दनुक्कु उदववन्दिरामनाय् *
मिडैन्दवेळ्मरङ्गळुम् अडङ्गवेय्दु * वेङ्गडम् अडैन्दमालपादमे अडैन्दुनाळुम्युय्म्मिनो ॥ ८१ ॥

(कूर्मावतार समय में अपने से) मथित क्षीरसागर में शयन कर, कालनेमि नामक असुर का संहारकर, भय से कांपनेवाले वाली के भाई सुग्रीवपर अनुग्रह करने के लिए श्रीरामचंद्र के रूप में प्रकट होकर एक दूसरे से संलग्न सात सालवृक्षों को सात कुलपर्वतादियों के साथ बाण से छेद करनेवाले श्रीवेंकटाद्रि में विराजमान हमारे नाथ के पादारविंदों का ही हमेशा आश्रय लेकर आत्म कल्याण को प्राप्त करो। .... (८१)

(गाथा.) एत्तिरत्तुमोत्तुनिन्नु उयर्न्दुयर्न्दपेत्तियोय् * मुत्तिरत्तुमूरिनीर् अरावणैत्तुयिन्न * निन्
पत्तुरुत्तशिन्दैयोडुनिन्नु पाशमविट्टवर्क्कु * एत्तिरत्तुमिन्बम् इङ्गुमङ्गुमेङ्गुमाहुमे ॥ ८२ ॥

देव मनुष्य तिर्यक् स्थावर रूप किसी भी जाति में अवतार लेने पर उन उन जातिवालों के सजातीय होनेपर भी गुणविशेषों से उनसे श्रेष्ठ प्रतीत होनेवाले हे भगवन्! क्षीरसागर में शयन करनेवाले आपके विषय में पूर्ण भक्ति करनेवाले मन से युक्त होकर, दूसरे सांसारिक विषयों में आशा छोडनेवालों को इस लोक में, परलोक में, तथा सर्वत्र सर्वविध सुख मिलेगा।

मनुष्यादि अवतारों में भगवान यद्यपि तत्तत्सजातीय प्रतीत होते हैं; तथापि आपके कतिपय विशेष गुण इतने उज्वल होते हैं कि उनसे आपकी विशेषता स्पष्ट प्रतीत हो जाती है। .... (८२)

(गाथा.) मट्टुलावुतण्डुळाय् अलङ्गलाय् पुलन्कळल् * विट्टुवीळ्विलादभोगम् विण्णिल्नण्णियेरिनुम् *
एट्टिनोडिरण्डेनुम् कयित्तिनाल् मनन्तनैक्कट्टि * वीडिलादुवैत्त कादलिन्बमाहुमे ॥ ८३ ॥

हमेशा मधु बहनेवाली तुलसी से विरचित माला से विभूषित हे भगवन्! (इस संसार में रहने के समय में किये जानेवाले) परम विलक्षण आपके पादारविंदों का अनुभव छोडकर, परमपद जाकर वहां शाश्वत भोग का अनुभव करने पाने पर भी, (वह परमपद का भोग इस संसार में रहते हुए ही) भक्तिपाश से मन को बांधकर, विना विच्छेद किये जानेवाले प्रेम से बननेवाले आनंद का सदृश होगा क्या?

भगवदनुभवानंद दो प्रकारके होते हैं—एक है परमपद जाकर उधर सपरिवार भगवान का अनुभव करते पाया जानेवाला प्रसिद्ध ब्रह्मानंद। दूसरा तो मुमुक्षु जन इस संसार में रहते हुवे ही क्षुद्र सांसारिक विषयों से अपने मन को हठाकर, उसको भगवान पर स्थिरप्रतिष्ठित कर, अत्यंत प्रेम से आपका निरंतर ध्यान करते जो वर्णनातीत आनंद पाते हैं, वह है। अब इस गाथा में आळ्वार यों कहते हैं कि परमपदानंद से भी संसार मंडल में रहते हुवे पाया जानेवाला यह उक्त दूसरा आनंद ही रस्य है॥.... (८३)

(गाथा.) पिन्पिरक्कवैत्तनन्गोल् अन्निनिन्नु तन्कळर्क्कु * अन्बुरैक्कवैत्तनाळ् अरिन्दनन्गोलाळियान् *
तन्नतिरत्तोरन्बिला अरिविलादनायिनेन् * एन्नतिरत्तिलेन्गोल् एम्बिरान्कुरिप्पिल्वैत्तदे ॥

चक्रधारी भगवान मुझे क्या और भी कतिपय जन्म देने चाहते हैं? अथवा अपने पादारविंद में में चित्त को स्थिर लगाकर, उससे प्रेम को सुदृढ बनाकर, अंततः एक दिन में परमपद भी जाकर अनुभव करूं, ऐसा संकल्प करते हैं? अपने प्रति सर्वथा प्रेमशून्य, एवं विवेकहीन अतिनीच मेरे विषय में भगवान का चित्त कैसा होगा? (मैं नहीं जान सकता हूं।)

पूर्वगाथा में यह अर्थ कहा गया कि परमपद के अनुभव से, इस संसार में रहकर किया जानेवाला भगवदनुभव ही श्रेष्ठ है। परंतु यह बात उन परमभक्तों के विषय में लागू होती है जो सर्वथा सांसारिक विषयों से विरक्त होकर सर्वदा भगवान में ही चित्त लगाकर बैठे हैं। अब आळ्वार कहते हैं कि मैं तो सांसारिक क्षुद्रविषयों में ही सक्तमना होकर विवेकशून्य तथा भक्तिशून्य रहता हूं; अतः ऐसे नीच मेरे विषय में भगवान का चित्त कैसा होगा? क्या आप॰ मुझे अपने पादारविंदों में दृढ भक्ति देकर परमपद ले जाकर अपना परिपूर्णानुभव करा देंगे? अथवा और भी अनेक जन्म देकर इस संसार में ही कायम रखेंगे? (८४)

(गाथा.) नच्चरावणैक्किडन्द नाथपादपोदिनिल् * वैत्तशिन्दैवाङ्गुवित्तु नीङ्गुविक्क नीयिनम् *
मेयूत्तन्वळ्ळैयादलाल् अरिन्दनन् निन्मायमे * उयूत्तुनिन्मयक्किनिल् मयक्कलेन्नै मायने ॥

(भक्तिविरोधियों पर) विष का वमन करनेवाले शेषशयन पर शयन करनेवाले हे नाथ! इस अर्थको मैं ठीक जानता हूं कि सर्वथा स्वतंत्र आप हाल में आपके पादारविंद पर रखे गये हुवे मेरे मन को, उससे हठाकर दूसरे विषयों पर लगाने में अभी भी शक्त हैं। परंतु हे आश्चर्यमय दिव्यशक्तिवाले प्रभो! अपने मायाचेष्टितों को ही रचकर, मुझको प्राकृत विषय में मत फँसा दीजिए ॥ .... (८५)

(गाथा.) शाडुशाडुपादने शलङ्कलन्दपोयूगैवाय् * आडरविन्वन्पिडर् नडम्पयिन्न नाथने *
कोडुनीडुकैय शेय्यपादमूनाळुमुळ्ळिनाल् * वीडनाह मेयूशेयाद वण्णमेन्गोलूकण्णने ॥८६॥

हे शकटासुर का संहार करते हुवे उस पर लात मारनेवाले! (विषपूर्ण एवं किंचित्) जलयुक्त (यमुनाह्रद में गर्व के मारे) फन खोलकर नाचनेवाले कालियनाग के बलिष्ठ सिरपर नाचनेवाले हे नाथ! हे पांचजन्य से नित्यालंकृत पाणिवाले! हे श्रीकृष्ण! मैं तो सर्वदा आपके पादारविंदों का ही ध्यान कर रहा हूं; फिर, मैं सत्य ही क्यों कर मुक्त न बनूं?

शकटासुरभंजन एवं कालियदमनवृत्तांत से भगवान का अश्रितविरोधि निरसन स्वभाव स्पष्ट होता है। अतः अब आळ्वार आपसे यों पूछ रहे हैं कि, हे प्रभो! मैं तो अनन्यभाव से आपके पादारविंदों का ही ध्यान कर रहा हूं; फिर आप क्यों कर मेरे विरोधियों को दूरकर मुझको परमपद नहीं ले जा रहे हैं?

(गाथा.) नेत्तिपेत्तकण्णन् विण्णिन्नादनोडु पोदिन्मेल् * नत्तवत्तनाथनोडु मत्तुमुळ्ळवानवर् *
कत्तपेत्तियाल्वणङ्गुपाद नाथ वेद * निन् पत्तलालोर् पत्तु मत्तदुत्तिलेन्उरैक्किले ॥ ८७ ॥

फाललोचन शिव, स्वर्ग का अधिपति इंद्र, कमलसंभव तपस्वी चतुर्मुख ब्रह्मा इत्यादि सभी देव लोगों से अपने अपने अभ्यस्त प्रकारों से वंद्य श्री पादवाले हे नाथ! हे वेदप्रतिपाद्य! अगर कहना हो तो (मैं अपने दृढ अध्यवसाय को आपसे सुना दूंगा, सुन लीजिए—) आपको ही अपना आश्रय मानना छोडकर मैं दूसरे किसी आश्रय की अपने मनसे चिंता तक न करूंगा।

जब ब्रह्मरुद्रेंद्रादि बडे बडे देवतालोग भी अपनी इष्ट सिद्धि के लिए आपके पादारविंदों का ही आश्रय ले रहे हैं, तब, इस रहस्य को ठीक जाननेवाला मैं भी आपके उन पादारविंदों को छोडकर दूसरी किसी वस्तु को कदापि अपना रक्षक नहीं मानूंगा। सत्य ही यह मेरा सुदृढ अध्यवसाय है। .... (८७)

(गाथा.) वेळ्ळैवेलैवेर्पुनाट्टि वेळ्ळेयित्तरावळाय् * अळ्ळलाकडैन्दवन्नु अरुवरैकोरामैयाय् *
उळ्ळनोयूहळ् तीर्मरुन्दु वानवर्क्कळित्त * एम् वळ्ळलारैयन्नि मत्तोर् देय्वम् नान्मदिप्पने ॥

सफेद क्षीरसागर में मंदरपर्वत रखकर, उसको सफेद दांतवाले वासुकिनामक नागसे लपेट कर, लहरों को उठाते हुवे (उस समुद्र का) मथन करने के समय में, किसी से धरने अशक्य उस पर्वत का धारक एक कूर्म वनकर, देवों से प्राप्त रोग मिटाने समर्थ औषधरूपी अमृत को (समुद्र से निकालकर) उनको देनेवाले परमोदार हमारे नाथ भगवान को छोडकर दूसरे किसी देव को मैं क्या कभी मान सकूंगा?

दुःखनिवारण मात्र नहीं; अपितु क्षीरसमुद्र का मथन कर देवों के अपेक्षित अमृत देनेवाले भगवान को छोडकर दूसरे किसको मैं मान सकूंगा? किसीको नहीं। .... (८८)

(गाथा.) पार्मिहुत्तभारमुन् ओळिच्चुवानरुचुनन् * तेर्मिहुत्तुमायमाक्कि निन्नुकोन्नु वेन्निशेर् *
मारथर्क्कु वान्कोडुत्तु वैयमैवर्पालदाम् * शीर्मिहुत्तनिन्नलालोर् देय्वम्नान्मदिप्पने ॥ ८९ ॥

पहले एक समय में अत्यंत बढनेवाले भूभार को मिटाने के लिए अर्जुन के रथ को ठीक हांक कर नानाप्रकार के आश्चर्य चेष्टितों को रचकर, शत्रुओं का ध्वंस कर, विजय पाने की प्रतीक्षा करनेवाले महारथ दुर्योधनादियों को वीरस्वर्ग पहुंचाकर, इस भूमंडल को पंचपांडवों का अधीन करनेवाले श्रेष्ठ यश वाले आपके सिवा दूसरे किसी देव को मैं क्या कभी मान सकूंगा? .... (८९)

(गाथा.) कुलङ्गळायवीरिरण्डिल् ओन्निलुम्पिरन्दिलेन् * नलङ्गळायनर्कलैहळ् नालिलुम् नविन्निलेन् *
पुलन्गळैन्दुम् वेन्निलेन् पोरियिलेन्पुनित * निन् इलङ्गुपादमन्नि मत्तोर् पत्तिलेनेम्मीशने ॥

हे परमपावन हमारे नाथ! मैंने (शास्त्रोक्त सत्कर्म करने लायक) ब्राह्मणादि चार वर्णों में किसी एक में जन्म नहीं पाया; चेतनों का कल्याण करनेवाले चार वेदों का अभ्यास नहीं किया; पांच इंद्रियों को नहीं जीत लिया; परंतु शब्दादि विषयों में मैं फँसा हूं। इस कारण से आपके उज्वल पादों के सिवा दूसरा कोई मेरा आश्रय नहीं है।

श्रेष्ठ वर्ण में जन्म लेनेवाला, वेदादि शास्त्रों का अभ्यास कर, तदुपयुक्त उपायों से इंद्रियों को जीतकर भगवान को प्राप्त कर सकता है। अब आळ्वार कहते हैं कि ऐसे श्रेय का मूल श्रेष्ठवर्ण में जन्म भी मुझे नहीं मिला है; अतः भगवान के पादारविंद के सिवा दूसरा कोई मेरा कल्याणकारक उपाय नहीं है। यद्यपि श्रीभक्तिसारमुनि मुनिकुमार होकर ब्राह्मण वर्णवाले थे। तथापि चारवर्णों से बाहर बेत काटनेवाले से पोषित होने के कारण आप अपने को चार वर्णातीत बता रहे हैं। यद्यपि शूद्र को वेदाध्ययन, तपस्या आदि करने का अधिकार नहीं है; तथापि उसको भी पाकयज्ञादि कतिपय यज्ञ करने का अधिकार रहता है; एवं पूर्ववर्ण शुश्रूषादि से वह भी अपना पाप काटकर श्रेय को प्राप्त कर सकता है। अतः सब आळ्वार अपने को चारों वर्णों से अतिरिक्त किसी संकरवर्णवाले बताते हैं। .... (९०)

(गाथा.) पण्णुलावुमेन्मोळि पडैत्तडङ्गणाळ्पोरुट्टु * एण्णिलावरक्करै नेरुप्पिनाल् नेरुक्किनाय् *
कण्णलालोर् कण्णिलेन् कलन्दशुत्तम्मत्तिलेन् * एण्णिलादमाय निन्नै एन्तुळ्ळ नीकलेन्नुमे ॥

अतिमधुर स्वरवाली, सुंदर विशालनयना सीतादेवी के निमित्त से असंख्य राक्षसों को बाणाग्नि से जला देने वाले हे भगवन्! रक्षक आपको छोडकर मेरा दूसरा कोई रक्षक नहीं हैं। नवा प्रिय दूसरा कोई मेरा बंधु ही है। हे अनंत आश्चर्य शक्तिवाले! आप मुझको कभी भी अपने से मत छुडा दीजिए।

अशोकवनस्थ सीतादेवी की तरह मैं भी स्वयं अपनी रक्षा करने में अशक्त होकर आपकी कृपा का ही प्रतीक्षी रहता हूं। मेरी रक्षा करनेवाला दूसरा भी कोई नहीं है। अतः आप ही कृपया मुझको अपनाकर, अपने से नित्यसंश्लेषयुक्त बना दीजिए। .... (९१)

(गाथा.) विडैकुलङ्गळेळडर्त्तु वेन्निवेर्कण्मादरार् * कडिकलन्दतोळ्पुणर्न्द कालियाय वेलैनीर् *
पडैत्तडैत्तदिर्किडन्दु मुन्कडैन्दुनिन्तनकु * अडैकलम्पुहुन्दवेन्नै अञ्जलेन्नवेण्डुमे ॥ ९२ ॥

(सृष्टिकाल में) उस समुद्र पर पुल बांधकर, (दुःखियों का आर्तनाद सुनने के लिए) उसमें शयन कर, और एक समय में (देवों को अमृत देने के लिए) उसीका मथन भी कर, इसके बाद नाना रंगवाले सात वृषभों का दमन कर, जयप्रद वेलायुध के समान सुंदर नयनवाली नीळादेवी के सुगंधयुक्त बाहु से समालिंगित हे गोपालकृष्ण! अपनी शरण में आनेवाले मुझको आप अभय प्रदान कर दीजिए।

इस गाथा से आळ्वार भगवान से यों विनती करते हैं कि हे प्रभो! मैं आपसे अपने लिए समुद्रमथन, सेतुबंधन, सप्तवृषभदमन इत्यादि किसी प्रकार का कठिन काम करने की मांग नहीं करता हूं; परंतु आप अपना मुखारविंद खोलकर एक अभयवचन का प्रदान कर दिये तो, उतने मात्र से मैं कृतार्थ हो जाऊंगा। .... (९२)

(गाथा.) शुरुम्बरङ्गुतण्डुळाय् तुदैन्दलर्न्दपादमे * विरुम्बिनिन्निरैञ्जुवेर्क्कु इरङ्गरङ्गवाणने *
करुम्बिरुन्दकट्टिये कडल्कडन्द कण्णने * इरुम्बरङ्गवेञ्जरन्तुरन्द विल्लिरामने ॥ ९३ ॥

हे इक्षुरसघन के सदृश मधुर रहनेवाले! हे क्षीरसमुद्र में शयन करनेवाले सुलभ! लोहेके समान कठिन राक्षस शरीरों का नाश करने के लिए तीक्ष्ण बाणों का प्रयोग करनेवाले शार्ङ्गपाणे हे श्रीरामचंद्र! हे श्रीरंगनाथ भगवन्! भ्रमर परिवृत सुशीतल तुलसी से सुशोभित आपके विकसित पादारविंदों को ही स्वयंप्रयोजन मानकर उनकी सादर सेवा करनेवाले मुझ पर कृपा कीजिए॥ .... (९३)

(गाथा.) ऊनिन्मेयवाविनी उरक्कमोडुणर्च्चिनी * आनिन्मेयवैन्दुम् नी अवत्तुळ्निन्न तूयमै नी *
वानिनोडु मण्णुम् नी बळङ्कडल् पयनुम् नी * यानुम्नीयदन्रि एम्बिरानुम् नीयिरामने॥

हे रामचंद्र भगवन्! शरीर में रहनेवाले प्राण आपके अधीन हैं; ज्ञान व अज्ञान भी आपके अधीन हैं; गायों से निकलनेवाले पंचगव्य भी आप ही हैं; उन पंचगव्यों की शुद्धि भी आपके संकल्प से बनी है; नित्य विभूति और लीलाविभूति आपके अधीन हैं; सुंदर समुद्र से समुत्पन्न अमृतरत्नादि प्रयोजन भूत पदार्थ भी आप हैं; यह दास मैं भी आपका अधीन हूं; एवं आप हमारे स्वामी भी हैं॥ .... (९४)

(गाथा.) अडक्करुम्पुलन्गळ् ऐन्दडक्कियाशैयामवै * तुडक्करुत्तवन्दु निन् तोळिर्क्कणिन्न वेन्नै नी *
विडक्करुदिमेय्शेयादु मिक्कोराशैयाक्किलुम् * कडल्किडन्दनिन्नलालोर् कण्णिलेनेम्मण्णले॥

हे मेरे स्वामिन्! दबाने अशक्य पांच इंद्रियों को (विषयों में इधर उधर भटकने से) ठीक रोककर, क्षुद्रविषयक कामनाओं कों वासना के साथ छोडकर, आपकी सेवा करने में ही निरत रहनेवाले इस दास को इतना सुधारनेवाले आप ही अगर उपेक्षा करने चाहते हुवे, मेरे उद्धार का प्रयत्न न करते हुवे, मुझे क्षुद्र विषयों में ही आशायुक्त बनावें, तो भी मैं क्षीरसागरशायी आपको छोडकर दूसरे किसी को अपने स्वामी न मानूंगा।

शास्त्रों का अभ्यास कर तदुक्त मार्गों में चलते हुवे इंद्रियों का निग्रह करना लगभग असाध्य है। क्यों कि मानव की इंद्रिय इतनी बलवती होती हैं कि वे अवसर पाकर किसी समय में निर्बंध तोडकर विषय वीथी में घूमने चली जाती हैं। अतः उनका निग्रह करने का एक मात्र उपाय, भगवान के अति मनोहर दिव्यमंगलविग्रह के दर्शन पाना ही है। अर्थात् भगवान के दर्शन पाने से मानव की इंद्रिय इतनी तल्लीन होती हैं कि वे कभी आपको छोडकर सांसारिक विषय में लग ही न सकती हैं। "तवामृत-स्यन्दिनि पादपङ्कजे" इत्यादि सोत्ररत्न पद्य इस विषय में प्रमाण है। प्रकृत गाथा में आळ्वार भगवान से यों विनती करते हैं कि "हे प्रभो! आपने ही पहले मुझे अपने दिव्यमंगलविग्रह के दर्शन देकर, मेरी इंद्रियों को क्षुद्र विषयों से विरक्त बनाकर, अपनी सेवा की ही इच्छुक भी बना दिया। इस तरह से मेरे आत्मोद्धार के लिए इतने काम करनेवाले आप ही और अवशिष्ट काम को भी जरूर करेंगे ही। अथवा किसी अज्ञात कारण वशात्, सर्वस्वतंत्र आप अगर मेरी उपेक्षा ही करते हुवे मेरी इंद्रियों को फिर विषयमार्ग में ही लौटा देंगे, तो भी मैं आपको छोडकर दूसरे किसी की शरण में नहीं जाऊंगा॥ .... (९५)

(गाथा.) वरम्बिलादमायमाय वैयमेल्लम्मेयुम्मैये * वरम्बिल्लळियेत्तिलुम् वरम्बिलादकीर्त्तियाय् *
वरम्बिलादपल्लपिरप्परुत्तु वन्दुनिन्कळल्ल * पोरुन्दुमा तिरुन्दनी वरमुशेय् पुण्डरीकने॥९६॥

नापने अशक्य स्वरूपवाली, (अर्थात् अति महत्स्वरूपवाली) प्रकृति को अपने अधीन में रखने वाले हे अत्याश्चर्यमयदिव्यचेष्टित ! सातों लोकों मे रहनेवाले सभी जन एकत्रित होकर, सत्य ही अनेक कल्पों तक स्तुति करने पर भी जिसकी सीमा पहुंच न सकेंगे, ऐसे सीमातीत यशवाले हे पुंडरीकाक्ष! अनंतकालतक मिलनेवाले असंख्य जन्मों को समाप्त कर मैं आपके पादारविंद पहुंचकर उनमें ही सक्त हो जाऊं इस तरह से आप मुझपर परिपूर्ण अनुग्रह कीजिए।

संसारबंध को समूल उखाडकर 'भगवच्चरणारविंदों में ही सक्तमना होने की माँग करना इस गाथा का लक्ष्य है। .... (९६)

(गाथा) वेय्यवाळिशङ्गुतण्डु विल्लुम्वाळुमेन्दुशीर्कैय * शेय्यपोदिन्मादु शेरुमार्ब नाथने *
ऐयिलायवाक्कैनोय् अरुत्तुवन्दुनिन्नडैन्दु * उय्वदोरुपायम् नी एनक्कु नल्हवेण्डुमे ॥ ९७ ॥

हे सुतीक्ष्ण चक्र शंख गदा धनुष खड्गों का धारण करनेवाले सुंदर श्रीहस्तवाले! हे रक्तोत्पलोत्पन्न श्री महालक्ष्मीजी से नित्यसमाश्रित शुभवक्षवाले नाथ! श्लेष्मादि दोषों के आश्रय शरीर रूपी रोग का विनाश कर और आपको प्राप्त कर, मैं उज्जीवित हो जाऊं, ऐसे एक उपाय को कृपया आप ही मुझे बताइए।

पूर्वगाथोक्त विनती सुनकर भगवान ने आळ्वार से कहा कि, "तुम्हारी यह कामना बहुत अच्छी हैं। परंतु तुम्हारे पास एतदुचित कौनसा उपाय है? उपाय के विना संसार में कोई भी फल न मिलेगा न?" इसके प्रत्युत्तर में आळ्वार विनती करते हैं कि "प्रभो! हम जानते थे कि अकिंचन व अनन्यगति भक्तों के आत्मोद्धार के अपेक्षित सभी साधन खुद आप ही हैं। अतः हम दूसरे किसी साधन की खोज में समय नहीं बिताते थे। अब तो आप ऐसे हमसे साधन मांग रहे हैं। अगर आपका ऐसा आग्रह हो, तो हम आपसे ही वह साधन भी मांगते हैं। आपके सिवा दूसरे किससे हम वह उसको पा सकते हैं? .... (९७)

(गाथा.) मरन्तुरन्दुवञ्जमात्ति ऐम्बुलन्गळाशैयुम् तुरन्दु * निन्गणाशैये तोडर्न्दु निन्न नायिनेन् *
पिरन्दिरन्दुपेरिडर् शुळिकणिन्नु नीङ्गुमा * मरन्दिडादु मत्तेनकु माय नल्ह वेण्डुमे ॥ ९८ ॥

अत्याश्चर्यमय शक्तियुत हे भगवन्! कोप छोडकर, कपट बुद्धि छोडकर, पंचेंद्रियों की क्षुद्र-विषयक आशा को दूर कर, आपके विषय में भक्ति ही बढानेवाला क्षुद्र यह आपका दास, जनन मरणों के आस्पद महादुःख मंडल इस संसार से छूट जाने के, तथा, उसके बाद परमपद में परमानंद प्राप्त करने के प्रकार को, आप ही याद कर मुझे अनुगृहीत कीजिए। .... (९८)

(गाथा.) काट्टिनान्शेय्वल्विनै पयनुतनिल् मनन्तनै * नाट्टिवैत्तु नल्लवल्ल शेय्यवेण्णिनारेन *
केट्टदन्नियेन्नदावि पिन्नैकेळ्व निन्नोडुम् * पूट्टिवैत्तवेन्नै निन्नुळ् नीकल् पूवैवण्णने ॥ ९९ ॥

हे नीलादेवी के वल्लभ! हे अतसीपुष्प के सदृश वर्णवाले! सुना गया है कि यमकिंकर मुझसे अनुष्ठित प्रबल पापों की मुझे याद दिलाते हुवे, उन उन पाप फलों का अनुभव करने में मुझको प्रेरित कर, असह्य यातना पहुंचाने में उद्युक्त हैं। ऐसी दुर्दशा न मिल जाय, इस तरह से अपनी आत्मा का अभी आपको अर्पण कर उससे नीडर रहनेवाले मुझको, आप कभी भी अपने से दूर मत कीजिए।

ज्ञानियों के मुखसे सुनकर एवं शास्त्रों में पढ कर कि यमकिंकर प्रत्येक मानव से अनुष्ठित सभी पापों की ठीक याद रखकर, उसको उनका फल नरक यातना भुगावेंगे ही, मैं ने (तिरुमळिशै आळवार ने) अपने से अनुष्ठित असंख्य पापों से डरते हुवे यमकिंकरों से अपने को बचाने के लिए अपनी आत्मा को आपके (भगवान के) श्री चरणों में अर्पण कर दिया। अब आपसे यह मांगता हूं कि आप मुझको हमेशा अपने पादारविंद के पास ही रखिए, दूर न हठा दीजिए। ... (९९)

(गाथा.) पिरप्पिनोडु पेरिडर् शुळिकणिन्नु नीङ्गुमःदु * इरप्पवैत्तज्ञाननीशैर करैकोडेत्तुमा *

पेरर्करियनिन्नपाद पत्तियान पाशनम् * पेरर्करियमायने एनकु नल्हवेण्डुमे ॥ १०० ॥

स्वप्रयत्न से किसीसे अप्राप्य हे अत्याश्चर्यमय देव! जन्म इत्यादि अनेक बडे दुःखों को पैदा करनेवाले संसार से छूटने पर्याप्त तत्वहितों को भूलनेवाले (न जाननेवाले), तथापि अपने को सर्वज्ञ मान बैठनेवाले नीचों को (उक्त संसार सागरका) पार कराने लायक, दुर्लभ आपके पादारविंद विषयक भक्ति रूप नाव को मुझे दे दीजिए।

यह भाव है—हे प्रभो! आपकी विशेष कृपा से मुझे इतनी भक्ति मिल चुकी है जिससे मेरा उद्धार जरूर होगा। परंतु इतने मात्र से मैं तृप्त न होनेवाला हूं। किं तु इस संसारसागर में पडकर उद्धार पाने का मार्ग ने जानते हुवे दुःख भोगनेवाले सभी चेतनों का उद्धार करना चाहता हूं। अतः आप ही कृपया मुझे इस काम के अपेक्षित विशेष भक्ति भी दीजिए। ... (१००)

(गाथा.) इरन्दुरैप्पदुण्डु वाळि एमनीनिरत्तमा * वरन्तरुन्तिरुक्कुरिप्पिल्ल वैत्तदाहिल् मन्नुशीर् *

परन्दशिन्दैयोन्निनिन्नु निन्नपादपङ्कयम् * निरन्तरम् निनैप्पदाह नीनिनैक्कवेण्डुमे ॥ १०१ ॥

हे विशालसागर के सदृश वर्णवाले भगवन्! आपकी जय हो! आपसे मेरी एक प्रार्थना है। चेतनों के अपेक्षित श्रेष्ठ फलों के प्रदाता आपके मन में अगर मुझे भी कोई वर देने का विचार हो तो, सब विषयों में घूमनेवाला मेरा मन (आपमें ही) स्थिर रहकर, आपके पादारविंदों का निरंतर ध्यान कर सकें ऐसा अनुग्रह कीजिए। .... (१०१)

(गाथा.) विळ्विलादकादलाल् विळङ्गुपादपोदिल्वैत्तु * उळ्ळुवेनदूननोयू ओळिकुमा तेळिकुनीर् *

पळ्ळिमाय पन्नियाय वेन्निवीर कुन्निनाल् * तुळ्ळुनीर्वरम्बुशेयुद तोन्नलोनु शोल्लिडे ॥

हे तरंग भरित सागरशयन सर्वस्वामिन्! हे महावराह के रूप में अवतीर्ण विजयशील! चंचल सागर में पहाडों को लेकर पुल बांधनेवाले हे स्वामिन्! आपके उज्वल पादारविंदों के प्रति अशिथिल प्रेम रखकर, (उनको ही अपने रक्षकत्वेन) सुदृढ माननेवाले मेरे शरीर से संबंधित दुःखों को दूर करने के मार्ग को कृपया बता दीजिए।

जब तक त्रिगुणमयी प्रकृति से बनाया हुआ यह शरीर न छूटेगा, तब तक भगवत्पादारविंद में अविच्छिन्न भक्ति उत्पन्न न होगी। अतः इस गाथा में शरीर निवृत्ति का उपाय मांगा जाता है।....(१०२)

(गाथा.) तिरुकलन्दुशेरुमार्‌व देवदेवदेवने * इरुकलन्दवेदनीति आहिनिन्न निन्मला *
करुकलन्द कालमेघ मेनियायनिन्पेयर् * उरुकलन्दोळिविलादु उरैकुमारुरैशेये ॥ १०३ ॥

हे लक्ष्मीजी से नित्य समाश्लिष्ट वक्षवाले! हे ब्रह्मादि देवों से श्रेष्ठ नित्यसूरियों के भी देव! नाना प्रकार की ऋचाओं से युक्त वेदों से प्रतिपाद्यमान स्वभाववाले हे निर्मल! स्वर्ण सहित कालमेघ के सदृश दिव्य मंगलविग्रहवाले हे श्री गोपालकृष्ण! आपके दिव्यमंगलविग्रह के ध्यानके साथ दिव्यनामों का मैं निरंतर संकीर्तन करूं, ऐसी कृपा कीजिए।

पूर्वगाथा में प्रार्थित शरीरवियोग भी, प्रारब्धकर्म समाप्ति की प्रतीक्षा करता हुआ, कुछ विलंब से मिलनेवाला प्रतीत हुआ। अतः जब तक शरीर रहेगा तब तक विना विच्छेद भगवान के दिव्यमंगलविग्रह का ध्यान एवं नामसंकीर्तन मांगे जाते हैं प्रकृत गाथा से। .... (१०३)

(गाथा.) कडुङ्कवन्दन्वकरन् करन्मुरन् शिरमवै * इडन्दु कूरुशेय्द पल्पडैत्तडकैमायने *
किडन्दिरुन्दु निन्नियङ्गु पोदुम् निन्नपोर्कळल् * तोडर्न्दु वीळ्विलाददोर् तोडर्चिनलहवेण्डुमे ॥

क्रूर कबंध दंतवक्र खर और मुर, इन के सिरों को चूरचूर करनेवाले (अर्थात् इनका संहार करनेवाले) नानाविधदिव्यायुधों का धारण करनेवाले विशालहस्तवाले हे भगवन्! सोना बैठना खडे रहना चलना इत्यादि सभी अवस्थाओं में मैं आपके सुंदर पादारविंदों का निरंतर ध्यान करता रहूं, ऐसा अनुग्रह कीजिए।

आसीना वा शयाना वा तिष्ठन्तो यत्र कुत्र वा। प्रेमविह्वलचित्तेन ध्यातुमर्हन्ति केशवम्॥ इस पद्यके अनुसार सर्वावस्था में भी निरंतर भगवत्पादारविंदध्यान करने का भाग्य इस गाथा में मांगा जाता है।

(गाथा.) मण्णैयुण्डुमिव्न्दु पिन्निरन्दुकोण्डळन्दु * मणूकण्णुळल्लदिल्लैयेन्नु वेन्नकालमायिनाय् *
पण्णै वेन्नविन्शोल्मङ्गै कोङ्गैतङ्गुपङ्गयकण्ण * निन्नवण्णमल्लदिल्लै एण्णुम्वण्णमे ॥ १०५ ॥

इस भूमि को प्रलयकाल में अपने पेट में रखते हुवे संभालकर, बाद में बाहर निकालकर (सृष्टि कर), फिर (महावलि से) भिक्षा मांगते लेकर नापकर, ऐसे जानते हुवे कि "यह लोक मेरे कटाक्ष से विना न रह सकेगा, उसको अपना अधीन रखने वाले हे कालस्वरूपिन्! (काल के प्रवर्तक!)

गान से भी मधुर बोलनेवाली महालक्ष्मीजी के स्तनपर नित्यवास करनेवाले हे पुंडरीकाक्ष! आपके दिव्य मंगलविग्रह के सिवा ध्यान करने लायक दूसरी कोई वस्तु नहीं हैं। .... (१०५)

(गाथा.) **करुत्तेदिर्न्दकालनेमि कालनोडुकूड * अन्नु अरुत्तवालिशङ्गुतण्डु विल्लुम् वालुमेन्दिनाय् ***
तोरुकळन्दवूनमःदु ओळिक्कवन्नु कुन्नमुन् * पोरुत्तनिन्पुहळ्कलालोर् नेशमिल्लै नेञ्जमे ॥

पूर्वकाल में एकदिन कोप से लडने आनेवाले कालनेमि को यमलोक भेजते हुवे उसका सिर काट डालनेवाले, हाथ में चक्र शंख गदा धनुष खड्ग रूप पंचायुधों का धारण करनेवाले हे भगवन्! पशुओं से प्राप्त उस महादुःख को तभी मिटा देने के उद्देश्य से सबके सामने गोवर्धन पर्वत उठानेवाले आपके दिव्य यश के सिवा दूसरे किसी विषय पर मेरा मन प्रेम नहीं करता। .... (१०६)

(गाथा.) **कायूशिनत्तकाशिमन्नन् वक्करन्पवुण्डिरन् * माशिनत्तमालि माशुमालिकेशि धेनुकन् ***
नाशमुत्तुवीळ नाळ्क्कवर्न्दनिन्कळर्कलाल् * नेशपाशमेत्तिरत्तुम् वैत्तिडेनेम्मीशने ॥ १०७ ॥

हे हमारे प्रभो! अतिकोपवाला काशीराजा, दंतवक्र, पौंड्रकवासुदेव, अतिकोपी माली, बडा शरीरवाला सुमाली, (घोडे के रूप में आया हुआ) केशि और धेनुक, ये सभी दुखी होकर मरजाय, इस तरह से उनके आयुष्य को समाप्त कर डालनेवाले आपके पादारविंद के सिवा दूसरे किसी विषय में मैं आशापाश न रखूंगा।

काशीराजा, पौंड्रक वासुदेव, दंतवक्र और केशी, ये सब श्रीकृष्ण से मारे गये। पौंड्रक नामक एक राजा नकली शंखचक्रों का धारण कर अपने को स्वयं वासुदेव कहलाने लगा और श्रीकृष्ण से विरोध कर आपके चक्रायुध का लक्ष्य हो गया। काशीराजा उसका मित्र था। उसने मंत्रबल से एक शून्यदेवता बनवाकर द्वारकापुरी भेज दिया। वह देवता उधर सब को त्रास देने लगा। यह समाचार सुनकर श्रीकृष्ण ने अपने चक्रायुध को प्रेरित किया; और चक्रराज ने उस देवता के पीछे पडकर उसको दौडाते काशीपुरी तक जाकर, वहां उस सारी नगरी के साथ उस देवता को भी जला दिया। दंतवक्र वध वृत्तांत श्रीभागवत दशमस्कंध अध्याय ७८ में उपवर्णित है। माली व सुमाली लंका में निवास करनेवाले राक्षस थे, जो भगवान से मारे गये। .... (१०७)

(गाथा.) **केडिल्शीर्वरत्तनाम् केडुमुवरत्तयनरन् * नाडिनोडु नाट्टमआयिरत्तन्नाडु नण्णिनुम् ***
वीडदानभोगमेयुदि वीत्तिरुन्दपोदिलुम् * कूडमाशैयल्लदोन्नु कोळ्वनो कुरिप्पिले ॥१०८॥

वरदान से अनश्वर ऐश्वर्य को प्राप्त चतुर्मुखब्रह्मा, और वरदान से सबका संहार करनेवाला शिव, इन दोनों के राज्य के साथ, सहस्रलोचन महेंद्र का भी राज्य अगर मिलनेवाला हो, अथवा मोक्ष नामक उस महान अनुभव को प्राप्त कर आनंद से रहने का भाग्य ही अगर मिलनेवाला हो, तो भी मैं इस आशा को छोडकर कि, "भगवान से मिलना चाहिए" दूसरे किसी पदार्थ की चिंता तक न करूंगा।

इस गाथा में यों बताया जाता है कि साक्षात् भगवान का अनुभव करने के आनंद की अपेक्षा अनुभव करने की आशा ही श्रेष्ठ है। .... (१०८)

(गाथा.) शुरुकुवारैयिन्रियें शुरुङ्गिनाय् शुरुङ्गियुम् * पेरुकुवारैयिन्रियें पेरुकमेय्दुपेत्तियोय् *
शेरुकुवाहैवल्तीकुणङ्ङळ् तीर्त्तदेवदेवनेन्नु * इरुकुवायुमुनिकणङ्गळेत्त यानुमेत्तिनेन्॥१०९॥

कर्म इत्यादि घटानेवाले कारण के अभाव में भी (श्रीवामन के रूप में) घटनेवाले हे भगवन्! ऐसे घटजानेपर बढानेवाले के अभाव में भी (त्रिविक्रम के रूप में) बढनेवाले हे प्रभो! (महाबलि जैसे) गर्वियों के अहंकार ममकार रूप दुर्गुणों का निरसन करनेवाले हे देवाधिदेव! अपने मुख से सदा वेदाध्ययन करने निरत महर्षिगण के उक्तप्रकार के स्तुतिवचन सुनकर, (उनका अनुकरण करता हुआ) मैं ने भी आपकी स्तुति की।

इस गाथा से आळ्वार इस तरह से अपने नैच्यका अनुसंधान करते हैं कि, "हे प्रभो! मैं ने अभी तक जो आपकी स्तुति की, यह सब अपने स्वानुभव से बनी हुई स्तुति नहीं; परंतु आपके दिव्य-मंगलविग्रह, कल्याणगुण, दिव्य चेष्टित इत्यादियों का साक्षात्कार पानेवाले, वेदज्ञ, ज्ञानी महर्षिलोग जो आपकी स्तुति कर रहे हैं, उसका अनुकरण करता हुआ मैं ने भी स्तुति की। .... (१०९)

(गाथा.) तूयनायुमन्रियुम् शुरुम्बुलावुतण्डुळाय् * मायनिन्नै नायिनेन् वणङ्गिवाळ्त्तुमीदेलाम् *
नीयुमुन्निन्कुरिप्पिनिल् पोरुत्तुनल्हुवेलैनीर् * पायलोडुपत्तर्शित्तम् मेयवैलैवण्णने॥११०॥

भ्रमरपरिवृत सुशीतल तुलसीमालालंकृत आश्चर्यशक्तियुत हे भगवन्! क्षीर सागर में शयन करते हुवे भक्तों के हृदय में भी विराजमान हे सागरवर्ण! नीच मैं, शुद्ध होकर अथवा अशुद्ध रहकर आपकी सेवा कर जो स्तुति कर रहा हूं, इन सबकी, आप अपने चित्त में क्षमा करते हुवे मुझ पर अनुग्रह दिखाइए।

ज्ञान व तदनुरूप अनुष्ठान से परिपूर्ण महर्षियों से स्तुति पाने लायक आपके पास अतिक्षुद्र दास भी आकर जो स्तुति कर रहा है, यह बडा साहस है, महान अपराध है। तो भी प्रेमपरवश होकर मैं इस काम में उतरा हूं। अतः आप कृपया मेरे ऊपर दया करते हुवे इस अपराध की भी क्षमा कीजिए।

(गाथा.) वैदुनिन्नै वल्लवा पळित्तवर्क्कु मारिल्पोर् * शेय्दुनिन्नशेत्तत्तीयिल् वेन्दवर्क्कुम् वन्दुनै *
एय्दलाहुमेन्बरादलाल् एम्माय नायिनेन् * शेय्दकुत्तम् नत्तमाहवे कोळ् ञालनादने॥

महर्षि लोग कहते हैं कि आपकी निंदा करता हुआ, यथाशक्ति दुर्वचन ही बकनेवाले (शिशुपाल आदि) एवं आपके साथ अन्यादृश युद्ध करते हुवे आपकी कोपाग्नि में जल जानेवाले (वालि आदि) भी आपके सायुज्य को प्राप्त करेंगे। अतः हे सर्वलोकसंरक्षक महाप्रभो! मेरे दोषों को गुण ही मान लीजिए।

ज्ञानी लोग कहते हैं कि भगवान पर द्वेष से भरकर आपकी वाचामगोचर निंदा करनेवाले शिशुपाल ने एवं आपसे क्रूर युद्ध करनेवालों ने भी आपके सायुज्य को प्राप्त किया; अर्थात् भगवान ने अपनी

कल्पनातीत दया से ऐसे द्वेषियों को भी अपना सायुज्य दे दिया; फिर आळ्वार जैसे भक्तलोग प्रेम परवश होकर आपकी स्तुति जो करने लगते हैं, इस अपराध की क्षमा आप जरूर करेंगे ही। परंतु इससे भगवान का भक्तपक्षपात दिखाया नहीं जा सकता है। अत: इस गाथा से आळ्वार आप से यों प्रार्थना करते हैं कि, "हे प्रभो! आप द्वेषियों के अपराधों की क्षमा करते हैं; प्रेमी मेरे अपराधों की तो क्षमा करना मात्र पर्याप्त नहीं; परंतु उनको गुण ही समझ लीजिए; यही भक्तों पर आपसे किया जानेवाला अनुग्रह होगा। .... (१११)

(गाथा.) वाळ्हळाहि नाळ्हळ् शेल्ल नोयूमै कुन्नि मूप्पेयूदि * माळुनाळदादलाल् वणङ्गि वाळ्त्तेन्नेञ्जमे *
आळदाहुनन्मैयेन्नु नन्गुणर्न्ददन्नियुम् * मीळ्विलादपोहम् नल्हवेण्डुम् मालपादमे ॥ ११२ ॥

(हमारे आयुष्य को काट डालनेवाले) खड्ग की तरह दिन चलते जाते हैं; अनेक रोगों से शरीर दुबला हो गया; वार्धक्य आया; मरण का दिन भी नजदीक आ गया; अंत:, हे मेरे मन! इस दृढ विश्वास के साथ कि, "भगवान का दास होना ही अच्छा है", आपका ही प्रणाम व स्तोत्र करो। ऐसा करने पर उन भगवान के पादारविंद ही पुनरावृत्ति रहित नित्य भोग देंगे। .... (११२)

(गाथा.) शलङ्कलन्दशेञ्जडै करुत्तकण्डन्वेण्डलै * पुलन्कलङ्गवुण्ड पातकत्तन् वन् तुयर् केड *
अलङ्गन्मार् बिल्वाशनीर् कोडुत्तवनडुत्तशीर् * नलङ्गोल्मालै नण्णुमूत्रण्णम् एण्णु वाळि नेञ्जमे ॥

हे मेरे मन! तुम्हारा कल्याण हो! गंगाजलयुक्त लाल जटावाले, नीलकंठ, समस्त इंद्रियों को व्याकुल बनाते हुए सफेद कपाल में भिक्षा मांगकर खानेवाले और ब्रह्महत्यारूप महापातक से युक्त शिव के कठोर दुख को दूर करते हुवे, तुलसीमालालंकृत अपने वक्ष से दिव्य परिमलयुक्त तीर्थ निकालकर उसको देनेवाले, नित्ययुक्त कल्याणगुणवाले, आनंदमय, भगवान को प्राप्त करने का साधन आपकी कृपा की ही प्रतीक्षा करते रहो। .... (११३)

(गाथा.) ईनमायवेट्टुदुनीकि एदमिन्नि मीदुपोय् * वानमाळवल्लैयेल् वणङ्गि वाळ्त्तेन्नेञ्जमे *
ञानमाहि ञायिराहि ञालमुत्तुमोरेयित्तु * एनमायिडन्दमूर्त्ति एन्दैपादमेण्णिये ॥ ११४ ॥

हे मेरे मन! ज्ञान का संकोच करनेवाली आठ हीन वस्तुओं को दूर कर, संसारदु:खों को भी पारकर, अर्चिरादि मार्ग से लीलाविभूति के ऊपर जाकर, परमपद का अनुभव करने की अगर तुम्हारी इच्छा हो, तो आत्मज्ञान के प्रदाता, सूर्य की तरह इंद्रियज्ञानों के भी दाता, महावराह रूपी होकर समग्र भूमि को एक सींग से अंडभित्ति से छुडाकर संभालनेवाले, हमारे प्रभु के पादों का ध्यान, नमस्कार और स्तोत्र करो।

आठ हीन वस्तु कहने से अविद्या कर्म वासना रुचि प्रकृतिसंबंध आध्यात्मिकताप आधिभौतिक ताप और आधिदैविकतापों को समझना चाहिए; अथवा, काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य अज्ञान असूया, इन आठ वस्तुओं को समझना चाहिए। ये दोनों वर्ग ज्ञान का संकोच कराते हुवे आत्माको संसार में और भी डुबा देते हैं। .... (११४)

(गाथा.) अत्तनाहि यन्नैयाहि आळुमेम्बिरानुमाय् * ओत्तोव्वादपल्पिरप्पोळित्तु नम्मैयाट्कोळ्वान् *
मुत्तनार् मुकुन्दनार् पुहुन्दु नम्मुळ् मेविनार् * एत्तिनालिडर्कडल् किडत्ति एळैनेञ्जमे ॥

संसारसंबंध से सर्वथा दूर और मोक्षभूमि के प्रदाता भगवान, एक रूप से परस्पर सदृश और दूसरे रूप से विसदृश नानाप्रकार के जन्मों को दूरकर, हमको अपने सेवक बनाने के लिए, (हमारे) पिता माता और कैंकर्य लेनेवाले स्वामी भी होकर, हमारे बीच में प्रवेशकर, हमसे समरस होकर, हमसे मिल गये हैं। ऐसे होनेपर भी, हे बुद्धिहीन मेरे मन! तुम क्यों कर दुःखसागर में मग्न रहते हो?

आचार्यों के अभिप्राय के अनुसार यह गाथा भगवद्गीतांतर्गत "सर्वधर्मान् परित्यज्य" इत्यादि चरमश्लोक का अर्थविवरण करती है। गाथा का यह तात्पर्य है—अखिल हेयप्रत्यनीक होने से संसारगंध से भी दूर रहनेवाले और मोक्ष के दाता भगवान नित्यसंसारी हमारे नानाविध जन्मों को दूरकर नित्यसूरियों की गोष्ठी में हमको मिलाकर उनके सरीक हमसे भी सेवा लेने के लिए, पिता माता स्वामी इत्यादि समस्तविधबंधु होकर, हमारी नीचता की एवं अपनी महत्ताकी परवाह न करते हुवे, हमारे समस्त भरों को स्वयं अपने सिरपर उठाकर, हमारा उद्धार कर देने के दृढसंकल्प से युक्त होकर, हमारे हृदय में घुसकर, हमसे मिलते जुलते विराजमान हैं। इस तरह से सर्वज्ञ सर्वशक्त और लायक स्वामी भगवान अपने महत्व की चिंता न करते हुवे, नीच बनकर हमारे उपकार करने के लिए जब तैयार खडे रहते हैं, फिर हे मेरे दीन मन! क्यों कर तुम दुखसागर में गोता मारते हो? मा शुचः। .... (११५)

(गाथा.) मारुशेयुद्वाळरक्कन् नाळुलप्पवन्निलङ्गै * नीरुशेयुदुशेन्नुकोन्नु वेन्निकोण्ड वीरनार् *
वेरुशेयुदु तम्मुळेन्नै वैत्तिडामैयाल् * नमन् कूरुशेयुदुकोण्डु इरन्दकुत्तमेण्णवल्लने ॥११६॥

सामने लडने आनेवाले आयुधपाणि राक्षस रावण के आयुष्य को समाप्त करते हुवे, पूर्वकाल में लंका पधारकर, उसको जलाकर ओर उस राक्षस का संहारकर, विजय पानेवाले, महावीर श्रीरामचंद्र भगवान के (इस अपने दास) मुझको अपने से दूर न रखने के कारण (अर्थात् मुझको अपना अंतरंग किंकर बनाकर अपने पास ही रख लेने के कारण से), अब क्या यम भी मुझको उन भगवान से छुडाकर मेरे से पूर्व अनुष्ठित पापों की चिंता तक कर सकेगा?

इस गाथा में आळ्वार यों कहते हैं कि जब रावण का ध्वंस करनेवाले स्वयं श्रीरामचंद्र जी ने विभीषण जी की तरह मुझको भी अपना अंतरंग किंकर बनाकर, अपने पादारविंद के पास ही रख दिया, फिर यमकी कहां से शक्ति होगी कि वह मेरे प्राचीन पापों की याद कर, उनके लायक दंड देने के लिए मुझको भगवान से छुडाकर अपने लोक ले जा सकें? यह तो बिलकुल बनने की बात नहीं है। अतः मैं कभी भी यम का वश न बनूंगा। .... (११६)

(गाथा.) अच्चम् नोयोडल्लल् पल्पिरप्पवायमूप्पिवै * वैत्तशिन्दै वैत्तवाकै मात्ति वानिलेत्तुवान् *
अच्चुतननन्तकीर्त्ति आदियन्तमिल्लवन् * नच्चुनागणैकिडन्द नाथन् वेदगीतने ॥ ११७ ॥

भय रोग मनोव्याधि अपायकारक जरा अनेक जन्मपरंपरा, इन सबका, तथा इनके अनुभव के लिए स्वीकृत मनका, एवं इन सबका आश्रय शरीर का भी विनाश कर हमको परमपद ले जानेवाले—भक्तों को कभी न छोड देनेवाले, अनंत कीर्ति, आद्यंत रहित, विरोधियों पर विष थूंकनेवाले शेषशयन पर शयन करनेवाले हमारे नाथ, और वेदप्रतिपाद्य भगवान हैं।

हम यमके वश न जा सकते है, इतना मात्र नहीं; किं तु भगवान हमारे, भय, शरीर के रोग, मन के रोग, जरा इत्यादियों का भी ध्वंस कर हमें परमपद पहुंचाने उद्युक्त हैं; अतः हमें किसी बातकी कमी नहीं; किसीसे डरने की आवश्यकता भी नहीं। .... (११७)

(गाथा.) शोल्लिनुम् तोळिर्किनुम् तोडकरादवन्विनुम् * अल्लुनन्पहलिनोडुम् आनमालैकालैयुम् *
वल्लिनाण्मलर्किंळत्ति नादपादपोदिनै * पुल्लियुळ्ळम् वील्विलादु पूण्डुमीण्डदिल्लैये ॥११८॥

विशाल सुपुष्ट कमल पुष्प में अवतीर्ण श्रीमहालक्ष्मीजी के हे नाथ! मेरा मन तों, वचन शरीर व्यापार और अविच्छिन्न प्रेम में लग्न होकर, रात्रि में, सायं संध्यामें, अच्छे दिन में व प्रातस्संध्या में (अर्थात् सर्वकाल में भी) आपके पादारविंद से ही मिलकर एक क्षण भर के भी विच्छेद के विना, उनमें ही लग्न होकर स्थिर रहता है। .... (११८)

(गाथा.) ** पोन्निशूलरङ्गमेय पूवैवण्ण माय केळ् * एन्नदावियेन्नुम् वल्विनैयिनुळ् कोळुन्देळुन्दु *
उन्नपादमेन्ननिन्न ओण्शुडर्क्कोळुमलर् * मन्नवन्दुपूण्डु वाट्टमिन्नियेङ्गुम् निन्नदे ॥ ११९ ॥

कावेरी से परिवृत श्रीरंगक्षेत्र में नित्यनिवास करनेवाले अतसीपुष्प समानवर्ण अत्याश्चर्यमय हे श्रीरंगनाथ भगवन्! मेरी यह विनती सुनिए। मेरी आत्मा नामक पापराशि में (आपके विषयक प्रेमरूपी) एक लता अंकुरित हुई, जो कि आपके पादारविंद रूपी सुंदर व उज्वल पुष्प में स्थिर बैठकर, फिर आपकी सारी विभूतियों में ठीक व्यापृत हो गयी।

इस गाथा में आळ्वार भगवान से कृत महोपकार के लिए कृतज्ञता का प्रकाशन करते हैं। हे भगवन्! अनादिकाल से अज्ञानांधकार में मग्न होकर पापमय रहनेवाली मेरी आत्मा को आपने अपने दिव्यमंगलविग्रह का एवं कल्याणगुणों का अनुभव देकर उसको ऐसे सुधार दिया कि, उसमें आपके पादारविंद विषयक प्रेम अंकुरित होकर क्रमशः इतना बढ गया कि वह उभयविभूतियों में भी व्याप्त हो गया। अर्थात् अत्यंत पापी मुझको आपने भक्ताग्रगण्य बना दिया। .... (११९)

(गाथा.) ** इयकरादपल्पिरप्पिल् एन्नैमात्तियिन्नुवन्दु * उयकोळ् मेघवण्णनण्णि एन्निलायतन्नुळे *
मयकिनान् तन्मन्नुशोदि आदलालेन्नावितान् * इयक्केलामरुत्तु अरादविन्नवीडुपेत्तदे ॥

संसारियों का उद्धार करने में निरत मेघश्याम भगवान ने अपनी निर्हेतुक कृपा से आज, विना विच्छेद बहनेवाली जन्मपरंपरा से मुझ दासको उठाने चाहते हुए, यहां पधारकर, नजदीक पहुंचकर, अपने से अविनाभूत मुझमें अपने ज्योतिर्मय दिव्य मंगल विग्रह को संलग्न कर दिया। इस तरह से आपसे नित्यसंश्लिष्ट होने के कारण मेरी आत्माने भी परस्पर मिले हुवे अविद्यादि समस्त दोषों को जड के साथ उखाडकर अविच्छिन्न आनंदरूपी मोक्ष सुख को प्राप्त किया।

इस गाथा में यों कहते हुवे कि "श्रीरंगनाथ भगवान ने निर्हेतुक कृपा से अपने दिव्यमंगलविग्रह को मेरे मन में सुप्रतिष्ठित कर दिया; अतः मै विना क्लेश समस्तदुःखों को पारकर परमपद पहुंचकर ब्रह्मानंद का जरूर अनुभव करूंगा," आळ्वार इस दिव्यप्रबंध को समापित कर देते हैं। कतिपय दिव्यसूरियों के ग्रंथों में कवि के नामका और फल का कीर्तन नहीं किया जाता है; इस रीति से प्रकृत ग्रंथ में भी उक्त दोनों अंशों का अभाव है। ....। (१२०)

इस दिव्यप्रबंध का भी संस्कृत विवर्त एवं द्राविडी टीका, जगदाचार्य सिंहासनाधीश्वर श्रीकांची प्रतिवादिभयंकर श्रीमान अण्णंगराचार्य स्वामीजी से विलिखित हैं; इनके आधार से यह सरल हिंदी अनुवाद व टीका, भगवद्गुणानुभवरसिक, द्राविडी के अनभिज्ञ भक्त शिखामणियों के उपयोग के लिए लिखा गया है; इति शम्।

॥ श्री भक्तिसारसूक्त दिव्यप्रबंध समाप्त हुआ ॥

॥ तिरुमळिशैप्पिरान् तिरुवडिहळे शरणम् ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

श्रियः कान्ताय नमः

श्रीपराङ्कुश परकाल यतिवर वरवरमुनिभ्यो नमः

श्रीमते भक्ताङ्घ्रिरेणुसूरये नमः

द्राविडवेदनामक चार हजार दिव्यप्रबंधके पहले हजार का सातवां प्रबंध

श्री भक्तांघ्रिरेणु मुनींद्र (तोण्डरडिप्पोडि आळ्वार)

से अनुगृहीत

॥ तिरुमालै अथवा श्रीमालप्रबंध ॥

हिन्दी अनुवाद व टीका सहित

तनियन् अथवा मुखपद्य

मत्तोन्नुम् वेण्डा मनमे मदिळरङ्गर्, कत्तिनम् मेय्त्त कळलिणैक्कीळ्—उत्त

तिरुमालै पाडुञ्शीर् तोण्डरडिप्पोडियेम्बेरुमानै येप्पोळुदुम् पेशु ॥

हे मन! दूसरा कुछ (साधनानुष्ठान) अनपेक्षित है। सात प्राकारों से परिवृत श्रीरंगक्षेत्र के स्वामी श्रीरंगनाथ भगवान के (श्रीकृष्णावतार में) बछडों को चरानेवाले उभय पादारविंदों के नीचे संबंधित तिरुमालै नामक दिव्यप्रबंध के गाता तोण्डरडिप्पोडि आळ्वार को ही हमेशा भजो।

अपने कल्याण के लिए दूसरे किसी उपाय का अनुष्ठान करने की आवश्यकता नहीं रहती है; श्रीरंगनाथ भगवान के दिव्यपादारविंदो की स्तुतिरूप तिरुमालै के गायक श्री भक्तांघ्रिरेणु सूरी का नामसंकीर्तन मात्र आत्मकल्याण का पर्याप्त साधन हैं।

॥ मुखपद्य का विवरण समाप्त ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

श्री भक्तांघ्रिरेणु सूरी की जय हो!

॥ तिरुमालै अथवा श्रीमालप्रबंध ॥

अवतारिका—परमभागवतोत्तम तोण्डरडिप्पोडि आळ्वार से अनुगृहीत दो प्रबंधों में यह तिरुमालै पहला प्रबंध है; दूसरा तो तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि है। ये दोनों पहले हजार के सातवां एवं आठवां दिव्यप्रबंध गिने जाते हैं। प्रकृत तिरुमालै का प्रभाव सत्य ही वाचामगोचर है। द्राविडी में कहावत है कि "तिरुमालै यरियादार् पेरुमाळै यरियार्" अर्थात् तिरुमालै नहीं जाननेवाले भगवान को नहीं जान सकते हैं। एक ही वस्तु का वर्णन करनेवाली अनेक गाथाओं के समुदाय को द्राविडीलक्षणशास्त्र में माला कहते हैं। तिरु अथवा श्री शब्द तो श्रेष्ठवाचकतया प्रसिद्ध है। तथा च, प्रकृत दिव्यप्रबंध, जो कि एकमात्र रंगनाथ भगवान के विषय में गाया गया है, तिरुमालै पुकारा जाता है। एवं पुष्पमाला के समान परमभोग्यतया भगवान से धारण किये जाने से भी यह तिरुमालै कहा जाता है। हमारे पूर्वाचार्यों का यह अभिप्राय है कि श्री विष्णुधर्मनामक (संस्कृत भाषामय) पुराणग्रंथ का यह तिरुमालै, सार संक्षेप है। इसका मुख्य तात्पर्य यह है कि "हरेर्नामैव नामैव नामैव मम भेषजम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥" (अर्थात् संसारव्याधि से निवृत्त होने के लिए भगवान का नामसंकीर्तन ही श्रेष्ठ औषध है; इस कलियुग में दूसरा कोई उपाय तो है ही नहीं।) इत्याद्यनेक प्रसिद्ध पुराणवचनों के अनुसार, इस कलियुग में आत्मोद्धार का एकमात्र उपाय भगवान के दिव्यनामों का संकीर्तन है। श्रीविष्णुधर्म में यों बताया गया है कि शतानीक नामक एक राजा ने धर्म से प्रजाओं का पालन करता हुआ, सत्कुलप्रसूत एवं परमसात्विक होकर भगवान शौनक महर्षि की सांनिधि जाकर यों प्रार्थना कर, कि, "हे भगवन्! केवल पेट भरने में ही निरत संसारियों को भी आत्मोद्धार पाने का अगर कोई सरल उपाय हो, तो आप कृपया उसका उपदेश दीजिए," आपसे इसी अर्थका उपदेश पाया कि भगवन्नामसंकीर्तन ही आत्मकल्याण का अचूक साधन हैं। इस तरह से इन दोनों ग्रंथो का साम्य है। एवं श्री विष्णुपुराण इत्यादि दूसरे भी कितने ग्रंथों में उपवर्णित कतिपय विशेष अर्थ इस ग्रंथ में उपवर्णित हैं। इसमें कुल पैंतालीस गाथाएं हैं, और सभी केवल श्रीरंगनाथ भगवान की स्तुतिरूप है। अर्थात् दूसरे किसी दिव्यदेश का वर्णन इस ग्रंथ में नहीं किया गया है। इससे आळ्वार का अप्रतिम पातिव्रत्य बताया जाता है, जिन्होने श्रीरंगनाथ भगवान को छोडकर दूसरे दिव्यदेश का स्मरण तक नहीं किया।

पूर्वाचार्यों में पेरियवाच्चान् पिळ्ळै नामक श्रीकृष्णपाद स्वामी जी ने इस दिव्य प्रबंध की टीका लिखी है। हाल में जगदाचार्य सिंहासनाधिपति श्री कांची प्रतिवादि भयंकर अण्णंगराचार्य स्वामीजी ने द्राविडी में तथा संस्कृत में इसकी छोटी-बडी अनेक टीकाएं लिखी हैं; तथा प्रत्येक गाथा का सुंदर संस्कृतपद्यरूपी अनुवाद लिखा है, जो द्राविडी के अज्ञाता भक्तों के लिए कंठस्थ करने को एवं नित्यपाठ करने को बडा लायक है। उक्त टीकाओं के आधार से ही यह हिंदी टीका लिखी जा रही है।

*

(गाथा.) कावलिल् पुलनै वैत्तु कलिदन्नै कडक्कप्पायन्दु*नावलिट्टुळिदरुहिन्नोम् नमन्तमर् तलैहळ्मीदे*
मूवुलहुण्डुमिळन्द मुदल्व निन्नामङ्कत्त * आवलिप्पुडैमैकण्डाय् अरङ्गमानगरुळाने ॥ १ ॥

(प्रलयकाल में) तीनों लोकों को अपने पेट में रखकर, (फिर प्रलय के निकल जाने के बाद) उनको बाहर निकालने वाले जगत्कारणभूत हे श्रीरंगदिव्यधामनिवासिन् भगवन्! आपके नाम सीखने के गर्व से अपनी पांचों इंद्रियों को बंधन में रख कर, पापसमूह को बहुत दूर निकालकर, विजयघोष करते हुए, यमभटों के सिरपर पैर रखकर हम नाच रहे हैं।

इंद्रियों को बंधन में रखने का यह अर्थ है कि क्षुद्र विषयों पर यथेच्छ चलनेवाली उनको उधर से रोक और एक विषय में (अर्थात् भगवान पर) स्थिर रखना। इंद्रियों को जीतने पर ही मानव किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त कर सकता है। इसके बदले में इंद्रियों को अपने मार्ग में छोड देने पर, वे मानव को अधोगति पहुंचा देती हैं। अत एव मृत रावण को देखकर प्रलाप करती हुई मंदोदरी ने कहा "इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं त्रिभुवनं त्वया। स्मरद्भिरिव तद्वैरमिन्द्रियैरेव तैर्जितः॥" इसका यह अर्थ हैं—हे नाथ! तुमने पूर्वकाल में अपनी इंद्रियों को जीतकर तीन लोकों को भी जीत लिया; अब मालूम पडता है कि उन तुम्हारी इद्रियों ने उसका बदला लेने के लिए तुमको जीत लिया, जिससे तुम्हारा यह अधःपतन हो गया। यह तात्पर्य है—बाल्य अथवा यौवन में रावण ने इंद्रियों को अपने वश में रखकर बडी तपस्याकर ब्रह्मा आदि देवताओं को प्रसन्न करा कर उनसे नानाविध वर प्राप्तकर, उनके बल से स्वर्गादि समस्त लोकों को जीत लिया। इससे उसकी इंद्रियां उसपर बहुत नाराज हो गयी थीं। उन्होंने सोचा कि, इस रावण ने हमको इधर उधर भटकने से रोक कर कैद में डाल दिया न? अस्तु, योग्य अवसर पाकर हम इसका बदला लेंगी। अंततः उन्होने किया भी ऐसा ही। तथा हि—इंद्रियपरवश हो कर ही रावणने मारीच के उपदेश की भी परवाह नहीं करता हुआ सीताजी का अपहरण किया, और विभीषण आदियों की वाणी का तिरस्कार करता हुआ श्रीरामचंद्र जी से युद्ध चालू किया और अंत में मार खाया। अत्र आळ्वार कहते हैं कि, रावण तो पहले इंद्रियों को कारागार में रखकर, बाद में उनसे जीता गया; मैंने तो पहले इंद्रियों का वश होकर कारागार वास आदि दुःखों को भोगकर, बाद में उनको जीतकर आत्मकल्याण को पाया। इसका कारण भगवन्नामसंकीर्तन मात्र है। अथवा "कावलिल्द पुलनैवैत्तु" इस मूल गाथाखंड का ऐसा भी अर्थ हो सकता है कि इंद्रियों को विना रक्षा के छोडकर। इसका यह तात्पर्य होता है कि दूसरे लोग इंद्रियों को जीतकर जो फल पा सकते हैं, अथवा इंद्रियों को जीतनेपर भी जिसको पा नहीं सकते हैं, ऐसे महाफल को मैं ने केवल भगवन्नाम संकीर्तन के बल से इंद्रिय जय के विना भी प्राप्त कर लिया। इससे नाम संकीर्तन का विशेष प्रभाव बताया जाता है। तथाहि—कोई मानव अपना रोग मिटाने के लिए कठिन पथ्य के साथ नाना प्रकार की दवा लेता है; तो भी रोग मिटता नहीं। बाद में दूसरा एक वैद्य आकर उसको ऐसी एक दवा देता है जिसको पथ्य की आवश्यकता ही न रहती; रोगी भी उस दवा का उपयोग करता हुआ किसी प्रकार की रोकठोक के विना अपने इष्टानुसार आहार विहार आदि करता हैं; तो भी वह रोग पूर्णतया नष्ट हो

जाता है। अगर ऐसा एक प्रसंग वास्तव में बनेगा, तो वह उस दवा का कल्पनातीत माहात्म्य ही कहलावेगा। इसी तरह से इंद्रियजय पूर्वक किये जानेवाले कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग इत्यादि दूसरे उपायों से भी जो फल अप्राप्य है, उसको अगर आळ्वार ने, इंद्रियों को जीते विना ही, केवल भगवन्नाम संकीर्तन से प्राप्त किया, तो वह जरूर उक्त कीर्तन का ही विशेष प्रभाव है, जिसकी प्रशंसा करना अत्यावश्यक होगा।

यमकिंकरों के सिरपर तांडव करने का यह तात्पर्य है—श्री विष्णुपुराण में (३-७) एक अध्याय में यमकिंकर संवाद उपवर्णित है। अपने अपने कर्मानुसार पाप फल भोगने तैयार रहनेवाले प्राणियों को नरकलोक लाने के लिए प्रस्थित, पाशहस्त अपने सेवक को देखकर यमराज, उसको अपने पास बुलाकर, उससे कहता है कि, "हे भट! तुम भगवत्पादारविंदों में शरणागति करनेवाले महात्माओं से दूर रहो (अर्थात् उनको यहां लाने की चेष्टा मत करो)। मैं श्रीवैष्णवों का स्वामी नहीं हूं; दूसरों का ही हूं" इत्यादि। इससे यह अर्थ स्पष्ट हुआ कि भागवतजन यम के वश न होते हैं। अजामिलोपाख्यान में भी यह अर्थ उपवर्णित है। "हम नर्तन करते हैं" इस बहुवचन का यह तात्पर्य है कि खुद भगवन्नामसंकीर्तन करनेवाला अगर एक ही मानव हो, तो भी उसके संबंध से और बहुत लोग नरकयातना से बच जायंगे। .... (१)

(गाथा.) **पचैमामलैपोल्मेनि पवळवाय्कमलचेङ्गण् * अच्युता अमररेरे आयर्तम्कोळुन्देयेन्नुम् *
इच्चुवै तविर यान्पोय् इन्दिरलोकमाळुम् * अच्चुवै पेरिनुम् वेण्डेन् अरङ्गमानगरुळाने॥ २॥**

हे श्रीरंगदिव्यधामनिवासिन् भगवन्! "हरे रंग वाले बडे पहाड के समान दिव्यमंगलविग्रह, प्रवाल के समान दिव्य अधर और लाल कमल के समान नयनों से युक्त हे अच्युत! हे नित्यसूरियों के नाथ! हे गोपकुल में समुत्पन्न बालक!" इत्यादि आपके शुभ नामों का उच्चारण करने से समुत्पन्न इस अनुभवरस को छोडकर, (इस संसार से छूटकर) परमपद जाकर वहां राज करने का वह रस भी अगर मुझे मिलनेवाला हो, तो भी मैं उसको न चाहूंगा।

पूर्वगाथा में आळ्वार से उपवर्णित नामसंकीर्तन प्रभाव सुनकर भगवान ने आज्ञा की कि, "हे महात्मन्! नामसंकीर्तन करनेवालों को दिये जानेवाले परमपद प्राप्तिरूप महाफल को अब मैं तुमको भी दूंगा, लो।" इसके प्रत्युत्तर में अब आळ्वार विनती करते हैं कि, "हे प्रभो! आपके परमपद को कौन माँगता? विरोधियों के बीच में, इस संसार मंडल में ही रहते हुए, श्रीरंगनाथरूपी आपके दर्शन कीर्तन इत्यादि करने से हमें जो आनंद मिलेगा, इसके परमपद का भोग कभी सदृश न होगा। अतः मैं यहीं रहूंगा।" इस तरह से परमपद भोग की भी परवाह न करते हुए ससार में ही रहकर भगवदनुभव करने को चाहना इन आळ्वार मात्र का एक विचित्र काम नहीं है। अर्थात्, और भी ऐसी मांग करनेवाले विलक्षण भक्त हो चुके हैं। तथा हि—जब श्रीरामचंद्रजी, अपने अवतार कृत्यों को समाप्त कर अयोध्या निवासी समस्त चराचर जीवों को अपने साथ लेकर परमपद पधारने तैयार हुए, तब हनुमान जी ने

आपके आमंत्रण का साफ इनकार करते हुए कहा, "स्नेहो मे परमो राजन् त्वयि नित्यं प्रतिष्ठितः। भक्तिश्च नियता वीर! भावो नान्यत्र गच्छति ॥" इसका यह तात्पर्य है कि, "हे राजाधिराज रघुवीर! आपके इस रूप में मेरा इतना स्नेह और इतनी भक्ति हैं, कि इसको छोडकर दूसरी चीज में मैं अपना चित्त न लगा सकूंगा।" यहां पर दूसरी चीज शब्द से हनुमान जी परमपद का ही संकेत कर रहे हैं। श्रीरामचंद्र जी के दिव्यमंगल विग्रह पर आपका इतना प्रेम था कि सर्ववांछनीय परमपद का नाम लेना भी उनको असह्य हुवा। एवं श्रीरंगनाथ भगवानं के दर्शन करते हुए आपकी ही स्तुति करनेवाले श्रीपाणनाथ सूरि ने भी परमपद की ओर इशारा करते हुए कहा कि, "हे भगवन्! आपके दर्शन करनेवाले मेरे नेत्र दूसरी वस्तु को देखने नहीं चाहते।" एवं श्री वेदांतदेशिकस्वामीजी ने श्री वरदराजपंचाशत् में गाया—निरन्तरं निर्विशतस्त्वदीयमस्पृष्टचिन्तापदमाभिरूप्यम्। सत्यं शपे वारणशैलनाथ! वैकुण्ठवासेऽपि न मेऽभिलाषः। (२)

(गाथा.) वेदनूल्पिरायम् नूरु मनिशर् ताम्पुहुवरेलुम् * पादियुमुरङ्गिप्पोहुम् निन्नदिल् पदिनैयाण्डु *
पेदैपालहनदाहुम् पिणिपशिमूप्पुत्तुन्बम् * आदलाल्पिरविवेण्डेन् अरङ्गमानगरुळाने ॥ ३ ॥

हे श्रीरंगदिव्यधामनिवासिन् भगवन्! अगर कोई भी मानव वेदोक्त प्रकार से एक सौ वर्षों की आयु को कदाचित् प्राप्त भी करेगा, तो भी उसका आधा भाग निद्रा में बीत जाता है; अवशिष्ट पचास वर्ष तो शैशवावस्था में, अतिबाल्य में, स्मरण करने में भी जुगुप्सनीय व भयंकर यौवनदशा में, रोगों में, पांच इंद्रियों को भी शब्दादि पांच विषयों से विरक्त बनाने की दशा में, वृद्धावस्था में और नाना प्रकार के दुःखभोग में बीत जाते हैं। इस तरह से सारे आयुष्य के अनर्थ परंपरा से संबद्ध होने के कारण मैं फिर संसार में जन्म लेना नहीं चाहता।

पूर्वगाथा में आळ्वार ने परमपद जाने की अपनी अनिच्छा को प्रकट किया। इससे किसी के मन में यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि आळ्वार संसार में ही वारंवार जन्म लेने चाहते हैं। अतः प्रकृत गाथा से इस शंका का समाधान किया जाता है—संसार में वारं वार जन्म लेने में कोई आपत्ति तब न होती, जब कि अविच्छिन्न भगवान का नामसंकीर्तन, ध्यान इत्यादि बनता। परंतु दुर्दैव की बात है कि हमारी पूरी आयु नानाविध सांसारिक कामों में एवं दुःखों में बीत जाती है और भगवद्ध्यान करने का अवकाश ही नहीं मिलता। अतः इस जुगुप्सनीय संसार में मुझे पुनर्जन्म अनपेक्षित है। तथाहि—"शतायुः पुरुषः" इत्याद्युक्त प्रकार से पूरे एक सौ वर्षकी आयु को प्राप्त करना ही अशक्य हैं; क्यों कि बहुत लोग बचपन में अथवा जवानी में ही मर जाते हैं। अथवा कोई भी मानव अगर सौ वर्षतक जीवित भी हो, तो भी उसका आधा भाग नींद में निकल जाता है। रात के अलावा दिन में भी कई घंटोंतक लोग नींद लेते हैं; इस लिए यह बात निश्चित है कि आयु का आधा भाग नींद में निकल जाता है। शैशव में कुछ समय बीत जाता है, जब कि मानव बिलकुल अज्ञ व अशक्त रहता है। कुमार हो जानेपर खेलना कूदना थोडी बहुत विद्या सीखना इत्यादि करना पडता है। यौवन में तो कुछ कहने की बात ही नहीं। विषय भोगों में एवं गृहस्थी के काम काज में मानव का सारा समय निकल जाता है; फिर भगवद्ध्यान करने पर्याप्त समय व मनश्शांति कैसे मिलेंगी? बाद में इंद्रियाँ दुर्बल और विषयोपभोग करने में अशक्त बनती जाती हैं। परंतु

उस समय में मन में नानाप्रकार की चिंताएं उत्पन्न होती हैं। उसके बाद जब एकदम बूढापन आ जाय, तब शरीर बहुत कमजोर बनता है जिस से ध्यान करना अशक्य होता है। इनके बीच में रोग, दुःख, चिंता इत्यादि तो हमेशा ही रहते हैं। इस तरह से सौ वर्ष की उम्र में भगवान का भजन करने का अत्यल्प भी अवकाश मिलना मुश्किल है। इस कारण से फिर यहां जन्म लेना अनिष्ट है। .... (३)

(गाथा.) मोयूत्तवल्विनैयुळ्निन्नु मूनेळुत्तुडैयपेराल् * कत्तिरपन्दुमन्ने पराङ्गति कण्डुकोण्डान्।
इत्तनैयडियरानार्कु इरङ्गुम् नम्मरङ्गनाय * पित्तनैप्पेत्तुमन्दो पिरवियुळ् पिणङ्गुमारे॥४॥

घेरनेवाले क्रूर पापराशि में रहता हुआ ही तीन अक्षरवाले (गोविंद) नाम से क्षत्रबंधुने भी सद्गति प्राप्त की स्वल्प अनुकूल होनेवालों के प्रति भी दया करनेवाले आश्रितव्यामुग्ध हमारे श्रीरंगनाथ भगवान को (अपने स्वामी के रूप में) पाकर भी लोग संसार में पडकर दुःख भोग रहे हैं; हाय! यह क्या अचरज है?

यहां से शुरूकर ग्यारह गाथाओं में आळ्वार, भगवान से विमुख पापी संसारियों के बारे में अपना निर्वेद प्रकट करते हैं। दिव्यसूरियों का यह एक विलक्षण स्वभाव है कि वे संसारियों का दुःख देखकर उसको स्वयं सह न सकते हैं। हम देख रहे हैं कि संसारी मानव नाना प्रकार के दुख भोग रहे हैं। इसको देखनेवाले दिव्यसूरी लोग दयार्द्रचित्त होते हैं, और उनका उद्धार करने चाहते हैं। तदर्थ वे उनको सुंदर उपदेश देते हैं। परंतु कभी कभी लोग उस उपदेश की परवाह न करते हुए अपने रास्ते में ही चलते रहते हैं। तब आळ्वार उनकी निंदा करते हैं; और कभी कभी अपनी ओर नजर डाल कर यों मानते हुऐ कि "दैवयोग से मैं इन मूर्खों से विपरीत, भगवान का प्रेमी बना हूं", वे आनंद व आश्चर्य पाते हैं; और कदाचित् उनके लिए रोते हैं। इस विषय में किसी की यह शंका होगी कि स्वयं हमेशा भगवान के ध्यान में मग्न इन दिव्यसूरियों का मन उसको छोडकर पापी संसारियों की ओर क्यों कर जाता है। इसका समाधान यही है कि भगवदनुभव करनेवाले परमभक्तों के मन में कदाचित् ऐसा एक विचार उत्पन्न होता है कि ऐसे परमविलक्षण भगवान को हमें अकेले भोगना अनुचित है, दूसरों को भी हमारे साथ लेना चाहिए; तब वे संसारियों की ओर नजर फिराते हैं; परंतु वहां वे देखते क्या? सब लोग सांसारिक विषयोपभोग में ही मग्न होते हैं, और भगवान की ओर झुकनेवाला कोई मिलता नहीं। यह दृश्य जरूर ही उनके मन में विषाद पैदा करेगा। अतः निंदामय एवं उपदेशमय गाथाएं उनके मुख से बाहर पडती हैं।

इस गाथा में यों कहा जाता है कि भगवन्नाम संकीर्तन करने का सबको अधिकार है; अर्थात् ऐसा कोई नियम नहीं है कि पुण्यवान ही भगवन्नामों का कीर्तन कर सकता है, नतु पापी; क्यों कि पापियों के अग्रगण्य क्षत्रबंधु नामक एक क्षत्रियाधम ने ही गोविंद नामोच्चारण करने के फलतया सद्गति प्राप्त की। अतः भगवान को प्रसन्न कराने का यह अत्यंत सरल व सर्वाधिकार उपाय हस्तगत है। और भगवान भी इतने भोले हैं कि, अनादिकाल से पापी व द्वेषी रहने पर भी अगर कोई मानव उस द्वेष भाव को छोड

देगा तो, आप स्वयं उसपर सीमातीत प्रेम करते हैं। अतः इस तरह से सभी सुविधाओं के रहते हुए ही लोग आत्मकल्याण को प्राप्त नहीं कर रहे हैं; उलटा संसार सागर में ही भटक रहे हैं; यह क्या अचरज है!

क्षत्रबंधु का उपाख्यान श्रीविष्णुधर्म में विस्तार से उपवर्णित है। उसका सार इस प्रकार है—सूर्यवंश में समुत्पन्न विश्वरथ नामक राजा का एक पुत्र था जो किसी कारणवशात् अपने बंधु बांधव आदियों से भी दूर किया गया था और डाकू की तरह एक जंगल में वास करता हुआ वर्णनातीत पाप काम करता रहा। वह इतना भयंकर बना था कि कोई भी मानव उसके वासस्थान की ओर भूलकर भी नजर नहीं डालता था। इसी कारण से उसका नाम पडा, क्षत्रबंधु यानी क्षत्रियाधम। ऐसी अवस्था में एक दिन कोई एक महात्मा कहीं जाता हुआ भूल से क्षत्रबंधु के वहां से निकला और प्यास से संतप्त होकर बेहोश नीचे गिर पडा। क्षत्रुबंधु का स्वभाव था कि जो कोई अपने देखने में आवें उसको तुरंत मार डालना। परंतु दैवयोग से उक्त महात्मा को और उसकी दयनीय दशा को देखते ही उसके मन में अचानक दया आयी। वह शीघ्र उसके सिरपर पानी छिडककर, पंखा कर उसको होश में लाया। महात्मा ने उठकर कुछ पानी पीनेसे शांतचित्त होकर क्षत्रुबंध से पूछकर उसका सारा वृत्तांत जान लिया। कुछ न कुछ कर उस पापी को सुधारने की उसकी इच्छा हुई। परंतु क्षत्रबंधु किसी तरह से अपने दुराचारों को छोडने को तैयार नहीं था। बहुत परामर्श कर अंततः महात्मा ने उसको यह उपदेश दिया कि, "अजी! तुम चाहे जैसे करो; परंतु हमेशा मुख से गोविंद नाम का कीर्तन करते रहो; इससे तुम्हारा कल्याण होगा।" यों कहकर महात्मा अपने रास्ते में चला गया; और क्षत्रुबंधु भी उसी क्षण से गोविंद नामोच्चारण करने लगा। फलतः शीघ्र ही उसका वह पापिष्ठ शरीर छूट गया और ब्राह्मणजन्म मिला; साथ ही साथ उसको अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत भी स्मरण में रहा। अतः उसने खूब भगवान की सेवा में अपना चित्त लगाकर सद्गति प्राप्त कीयां। .... (४)

(गाथा.) पेण्डिराल् सुखङ्गळुय्प्पान् पेरियदोरिडुम्बै पूण्डु * उण्डिराकिडकुम्बोदुम् उडलुके करैन्दुनैन्दु*
तण्डुळाय् मालैमार्वन् तमर् हळाय्प्पाडियाडि * तोण्डुपूण्डमुदमुण्णा तोलुम्बर् शोरुहकुमारे ॥

स्त्रियों के संबंध से सुख पाने की इच्छा से बडे बडे क्लेशों को उठाकर, रात में भोजन के बाद सोते हुए भी शरीर पोषण की ही चिंता में मग्नमानस रहनेवाले, एवं ठंडी तुलसी माला से अलंकृत वक्षवाले भगवान के भक्त होकर, उनका कीर्तन कर परवश चित्त से नाच कर, इस तरह से सेवा करते हुए, भगवद्गुणानुभव रूपी अमृत को न पीनेवाले नीचलोग हाय हाय! केवल अपने पेट भरने में ही निरत रहते हैं।

समस्तकल्याणगुणपरिपूर्ण एवं परमसुंदर दिव्यमंगल विग्रहवाले भगवान की नानाविध सेवा करने से ही आत्मा को सच्चा आनंद मिल सकता है। परंतु मूर्ख संसारी लोग इस तत्व को न जानकर स्त्रियों के संग से उस आनंद की प्राप्ति करने की आशा से, उनको प्रसन्न कराने के लिए नाना प्रकार के दुःखों का भी सहन करते हुए, पूरे दिन को विना विश्राम विताकर, रात में भोजन के बाद सोते सोते भी धन आदि

कमाने की चिंता करते रहते हैं। न जाने, ऐसे रहनेवाले इनको वास्तव में कौनसा आनंद मिल रहा है। विष अथवा अग्नि की ज्वाला पीकर प्यास बुझाना, नाचने वाले कृष्ण सर्प के फन के नीचे रह कर आराम पाना, और स्त्रीसंग से सुख पानेको चाहना, ये सब एक समान मूर्ख काम हैं। अब आळ्वार कहते हैं कि सचमुच यह आश्चर्य की बात है कि ऐसे मूर्ख लोग मिट्टी, घास पूस इत्यादि से अन्नका अंतर जानकर, उसीको कमाने की चेष्टा करते हैं! .... (५)

(गाथा.) मरम् शुवर्मदिळेड्डु मरुमैके वेरुमै पूण्डु * पुरम् शुवरोट्टैमाडम् पुरळुम्बोदरियमाट्टीर् *
अरम् शुवराहिनिन्न अरङ्गनार्काट्चेय्यादे * पुरञ्जुवर् कोलम् शेय्दु पुळ्कव्वकिडकिन्रीरे ॥६॥

क्रौर्यरूपी दीवार को (आत्मा की चारों ओर) कोट के रूप में खडाकर, परलोक के श्रेय कमाने के विषय में बिलकुल दरिद्र बनकर रहनेवाले हे संसारीलोग! तुम नहीं जान सकते कि बाहर की दीवार, यह अनित्य शरीर कब गिर जानेवाला है। साक्षात् धर्मस्वरूपी श्रीरंगनाथ भगवान की सेवा न करते हुए बाहरकी दीवार, शरीर का ही सणगार करते हुए, तुम लोग उसको चील, गीध आदि पक्षियों का आहार बना रहे हो।

इस गाथा में आळ्वार, उपदेश सुनने के लिए अपने से बुलाये जानेवाले संसारी लोगों को कामक्रोधादि रूप कोटके अंदर रहनेवाले कहते हैं। इसका यह तात्पर्य है कि जैसे कोट के अंदर रहनेवाला मानव बाहर की किसी वस्तु के प्रभाव में न पडेगा, इसी तरह से ये संसारीलोग भी कामक्रोधादि में इतने जडे हुए हैं कि महात्माओं के उपदेशों के प्रभाव में न आते हुए वे अपने रास्ते में सुदृढ चलते रहते हैं। उनके कामक्रोधादि का यह उपयोग होता हैं कि उपदेश देने इच्छुक महात्मा लोग उनका लक्ष्य बनते हैं और उनको जीतने अशक्त होकर लौट जाते हैं। जैसा कि श्री विभीषण जी ने रावण को नाना प्रकार के सदुपदेश देकर, उसके बदले में "त्वां तु धिक्कुलपांसनम्" इत्यादि क्रूर वचन पाकर, उस काम से निवृत्त होकर, उसका संग भी छोड दिया। बाद में रावण तो निर्बाध अपने रास्ते में चलने समर्थ हुआ। ऐसे पापियों से आळ्वार यों कहते हैं कि लौकिक सुख इतने मात्र से ही त्याज्य नहीं है कि वह स्वयं दुःख देनेवाला है; परंतु यह भी अनिश्चित है कि उसको भोगनेवाला यह शरीर कब गिर जानेवाला है। अतः सुख पाने की आशासे धनार्जनादि क्लेश उठाते हुए सादर पालित व पोषित इस शरीर को अचानक एक दिन, मृत्यु के आने पर, चील गीध इत्यादि क्रूर पक्षियों का आहार बना देने में क्या लाभ है? अतः इस व्यर्थ प्रवृति को छोडकर, नित्यसुख देनेवाले साक्षात् धर्मस्वरूपी श्रीरंगनाथ भगवान की सेवा करना ही श्रेयस्कर है। (६)

(गाथा.) पुलैयरमाहि निन्न पुत्तोडु शमणमेल्लाम् * कलैयरक्कत्त मान्दर् काण्बरो केट्परोताम् *
तलैयरुप्पुण्डुम् शावेन् शत्तियम् काण्मिनैया * शिलैयिनालिलङ्गै शेत्त देवने देवनावान् ॥७॥

शास्त्रों का ठीक अध्ययन किये गये महात्मा लोग, बौद्ध जैन इत्यादि दुष्ट मतों का अपने मनसे भी क्या विवेचन करेंगे? अथवा कान से सुनेंगे? (नहि, नहि; अस्तु;) मैं शपथ करता हूं, सिर काटने पर भी मैं न मरूंगा, यह सत्य है। प्रत्यक्षतः दिखा रहा हूं, देख लीजिए। धनुष से लंकापुरी का ध्वंस करनेवाले हमारे नाथ ही सत्य देवाधिदेव परमात्मा हैं।

इस गाथा में आळ्वार परतत्व का निर्णय कर देते हैं। यद्यपि लोक में नानाप्रकार के विभिन्न सेकडों मत हैं, और उन उन मतके अनुयायी भी होते हैं। परंतु शास्त्रों का ठीक अभ्यास कर उनके सारार्थ को बराबर जाननेवाले महात्मा लोग बाह्य व कुदृष्टि कहलानेवाले उन दुष्ट मतों का मन से स्मरण तक न करेंगे; कान से सुनेंगे भी नहीं; कारण कि वे आत्मकल्याण का सच्चा मार्ग नहीं दिखाते हैं। उनको वस्तुतः परतत्व का पहचान ही नहीं है; फिर उनसे कल्याण किस तरह से हो सकता है? अतः सच्चे ज्ञानी लोग उनका अनुसरण नहीं करते हैं, इतना मात्र नहीं; परंतु उनका स्मरण तक नहीं करते। अस्तु। मैं परदेवता का निष्कर्ष कर देता हूं। श्रीरामचंद्र भगवान ही वास्तव में असली परदेवता हैं। इस विषय में मैं सुदृढ शपथ भी कर सकता हूं। ऐसे कहते हुए मेरे गले पर अगर कोई तेजी तलवार से मारें, तो भी मेरा सिर न कटेगा, मैं न मरूंगा। इससे मेरे इस वचन की सच्चाई स्पष्ट सिद्ध होगी। .... (७)

(गाथा.) वेरुप्पोडु शमणर्मुण्डर् विदियिल्शाक्कियर्हळ्* निन्बाल् पोरुप्परियनहळ्पेशिल्पोवदे नोयदाहि*
कुरिप्पेनक्कडैयुमाहिल् कूडुमेल् तलैयै आङ्गे * अरुप्पदे करुमम् कण्डायरङ्गमानहरुळाने ॥ ८॥

हे श्रीरंगदिव्यधाम निवासिन् भगवन्! भगवद्विषय सुनने को भी न चाहनेवाले भाग्यहीन जैन, शैव और बौद्ध लोग, अगर आपके प्रति सुनने अशक्य कटु वचन सुनावेंगे, तो भगवन्निंदा सुनने से प्राप्त उसी रोग से मर जाना उचित है। भगवद्विरोधियों के अस्तित्व का भी सहन करने अशक्त मुझको, अगर निंदक वह व्यक्ति मिलें, और अपने में पर्याप्त ताकत भी रहें, तो आपकी निंदा करनेवाले उस मानव का, उसी स्थल में, तभी, सिर काट डालना ही योग्य कर्तव्य होगा।

परमभक्त का यह स्वभाव है कि अगर कभी उसके कान में भगवन्निंदा वचन पडें, तो वही प्रबलरोग बनकर उसको मार डालेगा। अर्थात् भगवन्निंदा सुनना, उसके लिए इतना अशक्य है। इतना मात्र नहीं। ऐसे निंदक को कठिन दंड देना भी उसका कर्तव्य होगा। वह भी दूसरा कोई लघु दंड नहीं। वरन्, एक दम उसका सिर काट देना ही है। परंतु ऐसा करने पर्याप्त अवकाश और शक्ति आवश्यक है। .... (८)

(गाथा.) मत्तुमोर्दैवमुण्डे मदियिला मानिडङ्गाळ् * उत्तपोदन्नि नीङ्गळ् ओरुवनेन्नुणरमाट्टीर् *
अत्तमेलोन्नरियीर् अवनल्लाल् दैवमिल्लै * कत्तिनम् मेय्त्तवेन्दै कळलिणै पणिमिनीरे ॥ ९ ॥

हे तत्वज्ञान से दरिद्र मूर्ख मानवों! (हमारा कल्याण करने लायक, पूर्वोक्त श्रीरंगनाथ भगवान को छोडकर) क्या दूसरा भी एक देव रह सकता है? (नहि, नहि)। अपने से परिगृहीत उन देवताओं की कोई आपत आ जाय, उस समय को छोडकर दूसरे समय में तुम लोग नहीं जान सकते हो, कि श्रीमन्नारायण एक ही साक्षात् परदेवता है। (इसका कारण भी यह है कि तुम लोग शास्त्र में) ऊपर के अर्थमात्र को देखते हो, न तु किंचित् भी उसका तात्पर्य समझ सकते हो। (अब मैं ठीक ठीक तत्वार्थ बता देता हूं, सावधानी से सुनो)। पूर्वोक्त श्रीमन्नारायण को छोडकर हमारी रक्षा करने लायक दूसरा कोई देवता नहीं है; अतः बछडों के समूह को सानंद चरानेवाले मेरे नाथ श्रीकृष्णभगवान के उभय पादारविंदों की शरण में जाओ।

वेदादि शास्त्रों में भगवान की तरह दूसरे कितने देवों की भी स्तुति तत्र तत्र की गयी है। ठीक इसके तात्पर्य नहीं जानते हुए ऊपर का अर्थ मात्र देखकर उससे वंचित हो जानेवाले साधारण लोग उन दूसरे देवों को ही परतत्व मानकर उनकी सेवा करते हैं। परंतु जब उन देवों पर वेदापहार गुरुपातक दैत्यपीडा इत्यादि आपत् आ जाय, और वे स्वयं अपनी रक्षा करने में अशक्त होकर भगवान की शरण में जायँ, तब ये लोग समझ पाते हैं कि हमारे ये इष्टदेव वास्तव में परदेवता नहीं हैं। अतः शास्त्रतात्पर्य को ठीक जानकर, गोवत्स चराने से अपने सौलभ्य का प्रकाशन करनेवाले श्री कृष्णभगवान की शरण में जाना ही वास्तव में आत्मकल्याण पाने का सच्चा मार्ग है। .... (९)

(गाथा.) **नाट्टिनान् दैवमेङ्गुम् नल्लदोररुळ्तन्नाले * काट्टिनान तिरुवरङ्गम् उय्ववर्कुय्युम् वण्णम्।**

केट्टिरे नम्बिमीर्हाळ् गरुडवाहननुम् निर्क * शेट्टैतन् मडियहत्तु शेल्वम्पार्त्तिरुक्किन्नीरे ॥१०॥

भगवान ने राजसतामस पुरुषों से पूजा पाने के लिए तत्रतत्र अनेक देवताओं की स्थापना की; और संसार को पार करने चाहनेवालों को, उत्तीर्ण होने के लिए श्रीरंगदिव्यधाम दिखा दिया। अपने को समस्त विषयों में परिपूर्ण मान बैठे रहनेवाले हे जन! मेरी बात सुनो तो सही। गरुडवाहन भगवान के रहते हुवे, तुम लोग उनको छोडकर ज्येष्ठादेवी की ओर से ऐश्वर्य पाने चाह रहे हो।

यह शंका हुई कि, "अगर वास्तव में भगवान एक ही कल्याण करनेवाले देव हो, तो शास्त्रों में क्यों कर अनेक देवताओं का वर्णन किया गया, और यह कैसे बना कि वे देवता मानवों से पूजित होकर उनके अपेक्षित पुरुषार्थों का प्रदान भी कर रहे हैं!" इसका प्रत्युत्तर देना प्रकृत गाथा का काम है। प्रत्युत्तर का प्रकार यह है—लोक में रहनेवाले सभी लोग एकदम सात्विक रहकर, क्षुद्र सांसारिक फल छोडकर मोक्ष के ही इच्छुक नहीं हो सकते। किंतु राजसी व तामसी लोग ही बहुत होते हैं, जो क्षुद्रफल ही चाहते हैं। भगवान उनको भी छोडने नहीं चाहते। अतः आपने तत्र तत्र क्षुद्र देवताओं की स्थापना कर उन्हें अपने भक्तों से अपेक्षित कतिपय क्षुद्र फल देने की शक्ति का भी प्रदान किया। परंतु जो लोग इस संसार-सागर से उद्धार पाना चाहते हैं, उनके लिए ये देवतागण अनुपास्य है; क्यों कि इनमें मोक्ष देनी की शक्ति नहीं है। परमसात्विकों से सेवा लेने के लिए भगवान स्वयं श्रीरंगधाम में विराजमान हो गये। अतः मुमुक्षुओं को आप ही की शरण में जाना चाहिए। दूसरे देवों की शरण में जाने से मोक्ष कभी न मिल सकता। इसका एक रोचक दृष्टांत बताया जाता है कि, जैसे ऐश्वर्य चाहनेवाला कोई मानव लक्ष्मी जी को छोडकर ज्येष्ठादेवी की सेवा करने से अपने इष्ट नहीं पा सकेगा, इसी तरह भगवान को छोडकर दूसरे देव की शरण में जानेवाला कभी भी मोक्ष न पा सकेगा। (ज्येष्ठादेवी, दारिद्र्य दुःख आलस्य इत्यादियों की देवता है)। .... (१०)

(गाथा.) **ओरुविल्लालोङ्गुमुन्नीरडैत्तु उलहङ्गलुय्य * शेरुविले यरक्कर्कोनैचेत्त नम् शेवहनार् ***

मरुविय पेरियकोय्रिल् मदिळ् तिरुवरङ्गमेन्ना * करुविले तिरुविलादीर् कालत्तैक्कळिक्किन्नीरे ॥

"बेजोड, शार्ङ्ग नामक अपने धनुष से लहरों से समावृत सागर पर पुल बांधकर, समस्त लोकों के कल्याण के लिए रणरंग में रावण का संहार करनेवाले वीर, हमारे स्वामी भगवान के सानंद विराजने का स्थान, महामहिम श्रीरंगदिव्यधाम है" एसी स्तुति करने अशक्त हे गर्भ - निर्भाग्य जन! (भगवद्भजन के लिए मिले हुए) काल को तुम व्यर्थ ही बिता रहे हों।

पूर्वोक्त भगवान के वैभव को इस कारण से बहुत लोग ठीक न जान सकते हैं कि अपनी माता के गर्भ में रहते हुए वे भगवान के विशेष कृपाकटाक्ष का पात्र न बन पाये। अत एव शास्त्र पुकारता है कि "जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः। सात्विकस्स तु विज्ञेयः स वै मोक्षार्थचिन्तकः॥" अर्थात्, गर्भस्थ जिस मानव पर भगवान अपना कटाक्ष डालते हैं, वही सात्विक होकर मोक्षकी चिंता करेगा॥(११)

(गाथा.) नमनुम् मुर्कलनुम्पेश नरहिल् निन्नार्हळ् केट्क * नरहमे शुवर्कमाहुम् नामङ्गळुडैय नम्बि *
अवनदूररङ्गमेन्नादु अयर्त्तुवीळ्न्दळियमान्दर् * कवलैयुळ् पडुहिन्नारेन्तु अदनुक्के कवल्हिन्नेने॥

"यम और मुद्गल इनके वार्तालाप करते रहने पर, नरक में दुख भोगनेवाले पापीगण ने जब उसको सुना, तब वह नरक ही स्वर्ग के रूप में बदल गया। ऐसे महामहिमवाले दिव्यनामवाले परिपूर्ण भगवान का निवासस्थान श्रीरंगदिव्यधाम है।" दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर भी लोग ऐसी स्तुति करने अशक्त बनकर, अपना स्वरूप भूलकर, विषयांतर - भोग में डूबकर, दुःख पा रहे हैं। इस लिए मैं बहुत दुःखी बन रहा हूं।

श्रीविष्णुधर्म (९०-अध्याय) में मुद्गलोपाख्यान उपवर्णित है। अजामिलोपाख्यान की तरह इसमें भी भगवन्नाम-संकीर्तन का प्रभाव बताया गया है। तथाहि—मुद्गल नामक एक महापापी था, जिसको मरने पर यमभटों ने बहुत दुःख देते हुए खींचकर यमराजा के पास ले गया। परंतु उसको देखते ही यमराज ने आसन से उठकर स्वागत किया। तब मुद्गल ने पूछा कि, "प्रभो! यह क्या रहस्य है? आपके भटों ने मुझे बहुत दुख दिया; आप तो सत्कार पूजा कर रहे हैं।" यमने उत्तर दिया, "पापी होता हुआ भी तुमने एक बार किसीको गोदान करता हुआ श्रीकृष्ण का नाम लिया। अतः तुम्हें यह सन्मान मिला।" दैवयोग से यह संवाद, अर्थात् यम से अनूदित यह श्रीकृष्ण-शब्द नरक में पडे हुए और कितने ही पापियों के कान में पडा। तुरंत उनकी यातना एकदम शांत हो गयी और उनका स्थान स्वर्ग जैसा आनंददायक मालूम पडा। जब आकस्मिक नामश्रवण ही इतना कल्याणकारक है, फिर साक्षात् नामसंकीर्तन के बारे में कहना ही क्या? .... (१२)

(गाथा.) एरियुनीर्वेरिहोळ् वेलै मानिलत्तुयिर्हळेल्लाम् * वेरिहोळ् पून्तुळबमालै विण्णवर्कोनैयेत्त *
अरिविला मनिशरेल्लाम् अरङ्गमेन्नळैप्पराहिल् * पोरियिल्वाळ् नरकमेल्लाम् पुल्लेलुन्दोळियुमन्ने॥

लहरों से एवं (मत्स्य मांसादियों की) दुर्गंध से युक्त सागर से परिवृत इस विशाल भूतलपर रहनेवाले सभी मानव सुगंध व सुशीतल तुलसीमाला से अलंकृत देवाधिदेव भगवान की स्तुति करने के लिए ही (उत्पन्न हुए हैं); तत्वज्ञान को प्राप्त न करनेवाले वे सब लोग, भगवान की ठीक ठीक स्तुति करने में अशक्त होने पर भी अगर रङ्ग रङ्ग भी पुकारेंगे तो, (इतने मात्र से) पंचेंद्रियों के वशमें होकर रहने का स्थान, नरकप्राय यह सारा संसार एक दम नष्ट हो जायगा।

मनुष्यशरीर मिलना कठिन है; यह बहुत कीमतवाली चीज है। इससे तत्वज्ञान को प्राप्तकर भगवन की स्तुति, सेवा आदि करके मोक्ष पाना अत्यंत आवश्यक है। परंतु सभी मानवों को एक दम ज्ञानी होना अशक्य है। तो भी चिंता नहीं। क्यों कि "रङ्ग रङ्ग" इस भगवन्नामका उच्चारण करने मात्र से ही इस सांसारिक दुख से सब के सब ही विमुक्त होते हैं और यह दुःखद प्रपञ्च शून्य बन जायगा। परंतु ये मूर्ख लोग अपने उद्धार के लिए इतना सुलभ उपाय भी करना न चाहते। अहो इनकी भाग्यहानि है! .... (१३)

(गाथा.) वण्डिनमुरलुम् शोलै मयिलिनमालुम् शोलै * कोण्डल्मीदणवुम् शोलै कुयिलिनम् कूवुम् शोलै* अण्डर्होनमरुम् शोलै अणि तिरुवरङ्गमेन्ना*मिण्डर् पाय्न्दुण्णुम् शोत्रै विलक्कि नाय्किडुमिनीरे॥

"रींकार करनेवाले भ्रमरों से युक्त उद्यानवनों से परिवृत श्रीरंगक्षेत्र, नाचनेवाले मोर के गणों से युक्त उद्यानों से परिवृत श्रीरंगक्षेत्र, जिनके ऊपर मेघ आकर जम जाता है ऐसे उद्यानों से परिवृत श्रीरंगक्षेत्र, एक दूसरे को बुलाने वाले पिक-समूह से युक्त उद्यानों से परिवृत श्रीरंगक्षेत्र, देवाधिदेव श्री रंगनाथ भगवान के नित्यनिवासस्थान, उद्यानों से परिवृत श्रीरंगक्षेत्र, इस तरह से जो स्तुति करने न चाहें ऐसे कृतघ्न व मूर्ख लोगों से सादर भुज्यमान अन्न को तुम लोग उनसे हठाकर कुत्ते को दे दो।

संसार में पडकर दुख भोगनेवाले समस्त जनों को अपने दिव्य दर्शन देकर उनका उद्धार करने के उद्देश्य से परमपद से श्रीरंगदिव्यधाम पधारकर शेषशय्यापर शयन करनेवाले भगवान के महोपकार को ठीक जानकर आपकी सेवा कर आत्मोद्धार पाना मानवमात्र का कर्तव्य है। परंतु, हाय! बहुत लोग ऐसे नहीं करते हैं। इतना ही नहीं। ये लोग वाङ्मात्र से आपकी स्तुति तक करना नहीं चाहते। ऐसे कृतघ्न लोगों के भोजन को उनसे छीनकर कृतज्ञतया प्रसिद्ध कुत्ते को देना उचित होगा। शास्त्र कहता है कि, योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यस्संप्रयच्छति। कल्पकोटिसहस्राणि स याति श्रेयसां पदम्॥ (अर्थात् दुर्जनों से छीन कर सत्पुरुषों को जो द्रव्य देता है, वह बहुत समय तक श्रेय को प्राप्त करेगा। महात्मा परकालसूरी ने इस अर्थ का अनुष्ठान किया। .... (१४)

(गाथा.) मेय्यर्क्के मेय्यनाहुम् विदियिलावेन्नैप्पोल * पोय्यर्कै पोय्यनाहुम् पुट्कोडियुडैय कोमान् * उय्यप्पोमुणर्विनार्हट्कु ओरुवनेन्नुणर्न्द पिन्नै * ऐयप्पाडरुत्तुत्तोन्नुम् अळहनूररङ्गमन्ने ॥ १५ ॥

गरुडध्वज हमारे स्वामी भगवान (भगवत्प्राप्ति - साधन भक्त्यादि) साधन से विहीन मेरे सदृश अद्वेष मात्र वालों को अपने निजस्वरूप के यथावस्थित दर्शन करा देते हैं; उक्त अद्वेष से भी विरहित जनों को (अर्थात् भगवान से द्वेष करने वालों को) तो आप (अपने दर्शन न देते हुवे) स्वयं असत्-से रह जाते हैं। आत्मोद्धार पाने चाहने वालों को (अर्थात् पूर्वोक्त अद्वेष वालों को), ऐसे ज्ञान के उत्पन्न होने के बाद कि, "भगवान कहलानेवाली एक व्यक्ति जरूर है", उनके मन में उत्पन्न होनेवाली (अपने स्वरूप रूप गुणादि विषयक) शंकाओं को स्वयं मिटाकर, उनको अपने दिव्यदर्शन देनेवाले अतिमनोहर दिव्यमंगल-विग्रहवाले भगवान का निवासस्थान श्रीरंगदिव्यधाम है।

भगवान को सादर मानना, भक्ति करना इत्यादि आपको प्राप्त करने के शास्त्रोक्त उपाय हैं। परंतु इन साधनों के अभाव में भी अगर किसी मानव के मन में भगवान के प्रति अद्वेष मात्र भी रहें, तो भी, भगवान धीरे धीरे उसको सुधार कर कृतकृत्य बना देते हैं। अद्वेष का अर्थ यह है कि भगवान से द्वेष न करना; अर्थात् अगर दूसरा कोई भगवान के अस्तित्व का अथवा प्रभाव का वर्णन करें, तो उसको सुनकर हिरण्यकशिपु, रावण आदियों की तरह उसपर नाराज न होते हुए, चुप रह देना, अर्थात् उदासीन रहना। इतने मात्र से भी भगवान उस व्यक्ति पर प्रसन्न होकर उसको अपने दिव्यदर्शन तक के समस्त श्रेयों का प्रदान करते हैं। और जो मानव मुमुक्षु बन जायँ, उसके मन में उत्पन्न होनेवाली शंकाओं को भगवान स्वयं दूर कर, उस पर बहुत कृपा करते हैं। अतः कम से कम भगवान के विषय में अद्वेष मात्र के रहनेपर भी मानव, आपकी कृपा का पात्र बनकर क्रमशः उत्तीर्ण हो सकता है। ऐसे विशेष दयामूर्ति हैं श्रीरंगनाथ भगवान्। .... (१५)

(गाथा.) शूदनाय् कळ्ळनाहि धूर्तरोडिशैन्दकालम् * मादरार् कयर्कणेन्नुम् वलैयुळ्पट्टळुन्दुवेनै *
पोदरे येन्नु शोल्लि पुन्दियिल् पुहुन्दु, तन्बाल् * आदरम् पेरुहवैत्त अळहनूररङ्गमन्ने ॥१६॥

पहले द्यूत में सक्त होकर, बाद में चोरी में निरत होकर, दुर्विषयों में निरत धूर्तों के साथ रहने के समय स्त्रियों के मीनसदृश नेत्ररूपी जाल में फँसकर डूब जानेवाले मुझको, "अरे! इधर आ जा" कहते हुए बुलाकर, मेरे मन में घुसकर, अपने विषय में प्रेम उत्पन्न करनेवाले सौंदर्य से युक्त भगवान का निवासस्थान श्रीरंगदिव्यधाम है।

इस गाथा में आळ्वार यों कहते हैं कि मैं तो धूर्तलोगों से मिलकर द्यूत चोरी इत्यादि करता हुआ स्त्रियों के सौंदर्य में व्यामुग्ध रहता था; तब श्रीरंगनाथ भगवान के सौंदर्यने मुझको अपने पास बुलाकर मेरे मन में बलात्कार से घुसकर, वहां पर भगवद्विषयक दृढ प्रेम को पैदा किया। इसका यह तात्पर्य है—भगवान का सौंदर्य इतना व्यामोहक होता है कि वह अपने दर्शकों के मनको, वह चाहे जैसा पापी व विषयी क्यों न हो, अपनी ओर खींचकर उसीमें मग्न बना देता है। श्रीरामानुजाचार्य स्वामीजी के शिष्य धनुर्दास के विषय में यह तद्दन सत्य दीख पडा। .... (१६)

(गाथा.) विरुम्बिनिन्नेत्तमाट्टेन् विदियिलेन् मदियोन्निलै * इरुम्बुपोल् वलिय नेञ्जम् इरैयिरै युरुहुम्वण्णम् *
शुरुम्बमर्शोलै शूळ्न्द अरङ्गमा कोयिल्कोण्ड * करुम्बिनैक्कण्डुकोण्डु एन्कण्णिणै कळिक्कुमारे ॥

कुछ समयतक सुदृढ रहकर मैं भगवान की स्तुति न कर सकता हूं। हाथ जोडना साष्टांग करना इत्यादि कायिक सेवा भी न कर सकता हूं। हमारे स्वामी भगवान हैं इत्यादि ज्ञान से भी मैं शून्य हूं। ऐसे लोहेके समान हृदय को भी (अपने दर्शन से) धीरे धीरे नरम बनाते हुए भ्रमरयुत उद्यानवनों से परिवृत महान श्रीरंगदिव्यधाम में विराजमान भगवान के दर्शन करते हुए मेरे दोनों नेत्र, अहो! अत्यानंद पा रहे हैं॥

"मन तन वाणी नामक तीन करणों में एक को भी भगवद्विषय में लगाने अशक्त गरीब मुझपर भी कृपा करते हुए श्रीरंगदिव्यधाम में विराजमान होकर अतिकठिन मेरे मनको भी क्रमशः नरम बनाते हुए भगवान अपने दिव्यदर्शन देकर मेरी आँखों को आनंदित कर रहे हैं। अहो! मेरा भाग्य वाचामगोचर है॥"

(गाथा.) **इनिदिरै त्तिवलै मोद एरियुम् तण्परवैमीदे * तनिकिडन्दरशु शेय्युम् तामरैक्कण्णनम्मान् *
कनियिरुन्दनैय शेव्वाय् कण्णनैकण्ड कण्गळ्*पनियरुम्बुदिरुमालो एन्शेय्हेन् पावियेने ॥१८॥**

लहरों से छोटे छोटे कणों को सानंद उडानेवाली, सुशीतल समुद्र की तरह विशाल कावेरी जी के मध्य में आकर अद्वितीय शयन करते हुए राज करनेवाले, कमलनयन, हमारे स्वामी, बिंबफल के समान लाल होठवाले श्री कृष्ण के दर्शन करनेवाली मेरी आँखें शीतल आनंदाश्रु बहा रहीं हैं। (इससे भगवान के ठीक दर्शन न कर पानेवाला) पापी मैं क्या करूं?

श्री कृष्ण भगवान अपने अवतार की समाप्ति होने के बाद, जन्म लेनेवाले हतभाग्यों को भी अपने दिव्य दर्शन देने की विशेष इच्छा से श्रीवैकुंठ से फिर संसारमंडल पधारकर उभयकावेरी के बीच में श्रीरंगदिव्यधाम में शेषशय्यापर शयन कर रहे हैं। मैं सानंद आपके दर्शन करना चाहता हूं और करता भी हूं। परंतु, उतने में मेरे नयनों से आनंदाश्रु की धारा बहने लग जाती है, जिसे दर्शन करना अशक्य होता है। इस तरह से भगवान के सामने खडा रहता हुआ भी आपके दर्शन न पा सकनेवाला भाग्यहीन मैं क्या करूं? यह है इस गाथा में आळ्वार का उद्गार। .... (१८)

(गाथा.) **कुडतिशै मुडियै वैत्तु कुणतिशै पादम् नीट्टि * वडतिशै पिन्बुकाट्टि तेन्तिशै यिलङ्गै नोक्कि *
कडल्निर कडवुळेन्दै अरवणै त्तयिलुमा कण्डु * उडलेनकुरुहुमालो एन्शेय्हेनुलहत्तीरे ॥१९॥**

हे भूमंडलवासी मानवों! सागर के सदृश श्यामल वर्णवाले स्वामी हमारे प्रभु पश्चिमदिशा में सिर रखकर, पूर्वदिशा की ओर पाद लंबा कर, उत्तर की ओर पीठ कर, दक्षिण दिशास्थ लंकानगर को (अर्थात् लंकास्थित विभीषण को) सादर देखते हुए शेषशयन पर जो योगनिद्रा कर रहे हैं, इसको देखनेवाले मेरा शरीर भी (आनंद के मारे) पिघल जा रहा है। हा! मैं क्या करूं?

इस गाथा में आळ्वार यों कहते हैं कि अपने दिव्यमंगल विग्रह के एकैक अंग के संबंध से एकैक दिशा को कृतार्थ बनाते हुए शेषशयन पर योगनिद्रा करनेवाले श्रीरंगनाथ भगवान के दर्शन करने से न केवल मेरे नेत्र, परंतु सारा शरीर ही नरम हो जा रहा है; मैं किस तरह से दृढ रहकर आपका अनुभव करूं? (१९)

(गाथा.) पायुनीररङ्गन्तन्नुळ्ळ् पाम्बणैप्पळ्ळिकोण्ड * मायनार्तिरुनन्मार्वुम् मरकतवुरुवुम् तोळुम् *
तूय तामरैक्कण्गळुम् तुवरिदळ्ळ् पवळवायुम् * आयशीर्मुडियुम् तेशुम् अडियरोर्क्कहललामे ॥

बहनेवाली कावेरीजी से परिवृत श्रीरंगदिव्यधाम में शेषशय्यापर शयन करनेवाले, अत्याश्चर्यमय दिव्यशक्तिवाले भगवान के लक्ष्मीसनाथ दिव्य वक्ष, मरकत की सदृश विग्रह की कांति, दिव्यबाहू, परिशुद्ध कमल-सदृश नयन, लाल होंठ, प्रवाल का सदृश मुख, अतिसुंदर श्रेष्ठ किरीट, इन सबसे होनेवाला दिव्य तेज, इन सबके अनुभव से स्वरूपज्ञानवाले भक्तलोग क्या वंचित भी हो सकते हैं ?

"यद्यपि भगवान के दर्शन करने से नेत्र आँसू से भर जाते हैं, शरीर पिघल जाता है, और भी ऐसे नानाप्रकार के विकार होते हैं। तथापि इनसे डरते हुए भक्तलोग आपके दिव्याद्भुत सौंदर्य के दर्शन किये विना चुप न रह सकते हैं। कारण कि, भगवान की विशेष कृपा से मिलनेवाले आपके दिव्यदर्शन कर उससे विकृत होना अहोभाग्य की बात है। अतः उसको हम लोग किस तरह छोड सकते हैं ? (२०)

(गाथा.) पणिविनाळ्ळ् मनमदोन्नि पवळवायरङ्गनार्क्कु * तुणिविनाळ्ळ् वाळमाट्टा त्तोल्लैनेञ्जे नी शोल्लाय् *
अणियिनार्शेम्बोनाय अरुवरैयनैय कोयिलुळ् * मणियनार् किडन्दवात्तै मनत्तिनाळ्ळ् निनैक्कलामे ॥

प्रवाल के समान लाल अधरवाले श्रीरंगनाथ भगवान की सेवा करने में अपने चित्त को स्थिर लगा कर उज्जीवित होने में अशक्त दुर्बल हे मेरे हृदय ! शुद्ध सोने से बने हुए श्रेष्ठ मेरुपर्वत के सदृश श्रीरंगदिव्य धाम में, नीलमणि के समान भगवान के शयन करने के प्रकार का क्या तुम ठीक ध्यान कर सकते हो ? बताओ।

यह बात नहीं हैं कि भगवान के दर्शन करने से ही शरीर विकृत होता हैं, अन्यथा नहीं ; क्यों कि मन से आपके शयन प्रकार का चिंतन करने से भी यही दशा होती है, जिससे चिरकालतक आपका अविच्छिन्न ध्यान करना भी अशक्य होता है। .... (२१)

(गाथा.) पेशित्ते पेशलल्लाल्ळ् पेरुमैयोन्नुणरलाहादु * आशत्तार्तङ्गट्कल्लाल्ळ् अरियलावानुमल्लन् *
माशत्तार्मनत्तुळानै वणङ्गि नामिरुप्पदल्लाल्ळ् * पेशत्तानावदुण्डो पेदैनेञ्जे नीशोल्लाय् ॥२२॥

हे विवेकहीन मेरे मन ! (वेदपुरुष और वैदिक महात्मा लोगों ने) जो कह रखा है, उनही वचनों को हम भी कह सकते हैं ; इसके सिवा भगवान के महत्व के बारे में हम एक रत्ती भर भी जान नहीं सकेंगे। उपयांतरसंबंधरूप कलंकरहित परमैकांतियों को छोडकर दूसरों की समझ में भगवान आनेवाले भी नहीं। अतः दोषदूर महात्माओं के मन में नित्यवास करनेवाले उन भगवान का प्रणाम आदि करते हुए काल बिताने के सिवा आपके कल्पनातीत वैभव का अनुगुण हम क्या स्तुति कर सकते हैं ? तुम ही बताओ।

भगवान का वैभव वाचामगोचर है; स्वयं वेदपुरुष और उन वेदों का ठीक अभ्यास करनेवाले महात्मा वैदिकलोग, ये भी उसको पूरा पूरा जान नहीं सकते। अतः आपके वैभव का अनुगुण स्तोत्र करना अशक्य है। तो भी अपनी जीभ को धन्य बनाने के लिए हम भी वेदप्रोक्त एवं वैदिकोक्त कतिपय वचनों का अनुवादमात्र कर सकते हैं। और भगवान का यह स्वभाव है कि उपायांतर से संबंध रखनेवालों के ज्ञान के आप सर्वथा विषय न होते हैं; किंतु ऐसे दोष से विमुक्त परम भक्तों के मन में आप नित्यनिवास करते हैं। अतः आपके इस वैभव को ठीक जानकर आपका प्रणाम करते हुए समय विताना हमारा कर्तव्य हैं। (२२)

(गाथा.) **गङ्गैयिल्पुनिदमाय काविरि नडुवुपाट्टु * पोङ्गुनीर्परन्दु पायुम् पूम्पोऴिलरङ्गन्तन्नुळ् ***
एङ्गळ्मालिरैवनीशन् किडन्ददोर्किडक्कै कण्डुम् * एङ्ङनम्मरन्दु वाऴ्हेनेलैयेनेलैयेने।।२३।।

[भगवान के पास जाने पर मैं आपका ठीक अनुभव नहीं कर सकता; आपसे दूर हो गये तो उस विरह दुःख का सहन नहीं कर सकता;] गंगाजी से भी अधिक परिशुद्ध कावेरीजी के बीच में, उसके प्रवाह से सिक्त मनोहर उद्यानवनों से परिवृत श्रीरंगदिव्यधाम में, दासभूत हम लोगों पर व्यामोह करनेवाले सर्वस्वामी व सर्वनियामक श्रीरंगनाथ भगवान् जो शयन कर रहे हैं, इस परमविलक्षण शयन सौंदर्य के दर्शन करने के बाद, मूढ मैं किस तरह से उसको भूलकर जीवित रह सकूंगा? इतिकर्तव्यतामूढ हूं।

परमपवित्र कावेरी जी के तीर्थ से पोषित मनोहर उद्यानवनों से परिवृत श्रीरंगदिव्यधाम में विराजमान आश्रितव्यामुग्ध श्रीरंगनाथ भगवान के शयन सौंदर्य के एक वार दर्शन कर लेने पर, उसीमें लीनमना होकर, उससे मन हटाने में अशक्त बनकर, पूर्वोक्त प्रकार से उसका परिपूर्ण अनुभव भी न कर पाते हुए इतिकर्तव्यतामूढ रहना ही आऴ्वार की अवस्था बता जा रही है। कावेरी जी को गंगाजी से भी अधिक पवित्र बताना वृथा अभिमान की बात नहीं है, वरन् विलकुल सत्य है। भगवान के चरणारविंद से निकलने से गंगाजी पवित्र मानी जाती है। परंतु उसको यह चरणसंबंध कभी एक समय मात्र में मिला था। कावेरी जी का तो भगवत्संबंध नित्य है। अतः इसको गंगाजी से पवित्र बताना सर्वथा उचित है। इस विषय में श्रीपराशरभट्टार्य स्वामीजी के श्रीरंगराजस्तव का, "तीर्थं शुन्धति" इत्यादि पद्य (२२) अनुसंधेय है।.... .... (२३)

(गाथा.) **वेळ्ळनीर्परन्दु पायुम् विरिपोऴिलरङ्गन्तन्नुळ्*कळ्ळना किडन्दवारुम् कमलनन्मुहमुम् कण्डुम्***
उळ्ळमे वलियै पोलुम् ओरुवनेन्नुणरमाट्टाय् *कळ्ळमे कादल्सेय्दु उन्कळ्ळत्ते कळिक्किन्नाये।।

बहनेवाली कावेरी जी के प्रवाह से पोषित विशाल उपवनों से परिवृत श्रीरंगदिव्यधाम में भक्तों के मन लूट लेनेवाले भगवान के शयन करने के प्रकारके एवं आपके सुंदर मुख-कमल के दर्शन कर लेने पर भी, हे मेरे मन! जान पडता है कि तुम बहुत कठिन हो। क्यों कि, तुम यह नहीं जान सकते कि आप बेजोड हैं; परंतु नकली भक्ति करता हुआ, उस कपट से ही समय बिता रहे हो।

परमपद में नित्यसूरियों की गोष्ठी में विराजने का भाग्य छोड कर, इस भूमंडल में अपने पेट भरने में और क्षुद्र सांसारिक विषयोपभोग करने में निरत संसारियों का उद्धार करने के लिए यहां पधाकर

भगवान श्रीरंगदिव्यधाम में विराजमान हैं; और अपने दर्शन करनेवाले परमभक्तों के मनको आप एकदम लूट लेते हैं। अब आळ्वार यों दुख पाते हैं कि अपना मन यह परमविलक्षण दृश्य देखने पर भी भगवान् पर सच्ची भक्ति न करता हुआ, पत्थर की तरह नकली भक्ति दिखाता हुआ समय बिता रहा है; अर्थात् पूर्वोक्त भगवान के अद्वितीय वैभव को पहिचाने विना आपको भी दूसरों की तरह एक साधारण वस्तु मान रहा है। अगर उसमें सच्ची भक्ति होती, तो उन्हींमें लीन होकर तन्मय बन जाता। परंतु ऐसा नहीं हुआ है। अर्थात् भगवद्विषय में आपको अभी भी परिपूर्ण भक्ति का उदय नहीं हुआ। .... (२४)

(गाथा.) कुळित्तु मून्ऱनलैयोम्बुम् कुरिहोळन्दणमैतन्नै * ओळित्तिट्टेनेन्कणिल्लै निन्कणुम् पत्तनल्लेन् *
कळिप्पदेन्कोण्डु नम्बी! कडल्वण्णा कदरुहिन्ऱेन् * अळित्तेनक्करुळ्शेय् कण्डाय् अरङ्गमा नहरुळाने॥

हे श्रीरंगदिव्यधामनिवासिन् भगवन्! त्रिकालस्नान संध्या त्रेताग्निपूजन इत्यादि करने से रक्षणीय ब्राह्मण्य को मैं ने खो लिआ; मुझे आत्मविषयक वास्तवज्ञान भी नहीं है; मैं आपका भक्त भी नहीं हूं। ऐसी अवस्था में, हे सागर-सवर्ण! शुभगुणपरिपूर्ण भगवन्! मैं किस बल से कुछ शांतचित्त बन सकूंगा? (इस दु:ख का सहन करने में अशक्त होकर आपके सामने) रो रहा हूं। अत:, हे प्रभो! आप मेरे प्रति कृपा कीजिए॥

"सत्कर्मों का अनुष्ठान कर आत्मकल्याण पाने लायक ब्राह्मण जन्म मुझे मिला तो सही; परंतु नित्यनैमित्तिकादि कर्म छोडकर और पापकृत्य करता हुआ मैं ने उस ब्राह्मण्य को खो लिआ; अत: कर्मयोग का अनुष्ठान करने की आवश्यक योग्यता भी अब मुझमें न बची है। एवं ज्ञानयोग भक्तियोगों में भी मेरा कोई संबंध न रहता। अत: इस तरह से आत्मोद्धार के अपेक्षित किसी साधन के अभाव से मैं बहुत घबराता हुआ आपके सामने आकर रो रहा हूं; कृपया आप ही मेरा उद्धार कीजिए।" .... (२५)

(गाथा.) पोदेल्लाम्पोदु कोण्डु उन्पोन्नडि पुनैय माट्टेन् * तीदिला मोळिहळ् कोण्डु उन्तिरुकुणम् शेप्पमाट्टेन् *
कादलाल् नेञ्जमन्बु कलन्दिलेनदुतन्नाले * एदिलेनरङ्गर्क्केल्ले एन्शेय्वान् तोन्ऱिनेने॥ २६॥

मैं पुष्प लेकर हमेशा आपके रमणीय पादारविंदों की अर्चना नहीं कर सकता; नवा दोषदूर वचनों से आपके शुभगुणों का कीर्तन कर सकता हूं; नापि अपने मन में सच्ची भक्ति से बननेवाला आदर रख सकता हूं। अत: किसी प्रकार से मैं श्रीरंगनाथ भगवान का स्पर्श पाने अनधिकारी बन बैठा हूं। हाय! हाय! ऐसे मैंने इस संसार में क्यों कर जन्म पाया?

इस गाथा में आळ्वार यों कहते अपना धिक्कार करते हैं कि ब्राह्मणोचित कर्म ज्ञान भक्ति रूप विशेष धर्मों का अनुष्ठान करने में अशक्त होनेपर भी, मानव, भगवान का अर्चन वंदन कीर्तन भजन इत्यादि सामान्य धर्मों का अनुष्ठान कर सिद्ध हो सकता है; परंतु मैं इतना भी न कर सकता हूं। ऐसे सर्वथा व्यर्थ मेरे जन्म का धिक्कार हो। .... (२६)

(गाथा.) कुरङ्गुहळ् मलैयै नूक्क कुळित्तुत्ताम् पुरण्डिट्टोडि * तरङ्गनीरडैक्कलुत्त शलमिलावणिलुम् पोलेन् *
मरङ्गळ्पोल् वलिय नेञ्जम् वञ्जनेन् नेञ्जुतन्नाल् * अरङ्गनार्काळ्शेय्यादे अळियत्तेनयर्क्किन्ऱेने॥

(भगवान की सेवा कर धन्य बनने की इच्छा से) जब कि वानरवीर पहाडों को ढकेलकर लाते थे, तब पानी में नहाकर रेतपर लुढकते हुए दौडकर उससे तरंग-समावृत सागर को भरा देने के काम में संलग्न कपटरहित गिलहरी की तरह भी मैं आपकी सेवा न कर सकता हूं; परंतु पेडों के समान कठिन हृदयवाला एवं कपट पूर्ण मैं दुर्लभ मानुषजन्म पाने पर भी अपने मन से भी श्रीरंगनाथ भगवान की सेवा न करता हुआ अनर्थ पा रहा हूं।

शास्त्र पुकारता है कि मनुष्य - जन्म मिलना बडा कठिन हैं। जब यह मिला है, तब "जिह्वे कीर्तय केशवम्……" इत्यादि मुकुन्दमाला पद्य के अनुसार अपने सभी अवयवों से भगवान की सेवा कर धन्य होना आवश्यक है। हम सुनते हैं कि श्रीरामावतार के समय वानर वीरों ने बडे बडे पहाडों को ढकेल कर लाते हुए समुद्रपर पुल बांधकर भगवान की जब सेवा की, तब अत्यल्प शरीर व शक्तिवाले एक गिलहरी ने भी अकस्मात् उधर आकर स्वयं भी आपकी सेवा करना चाहा। पहाडों को उठाना, ढकेलना इत्यादि तो उसकी कल्पना से भी बाहर के काम थे। अत: उसने सोचा कि रेत डालकर उससे समुद्र को भर दूंगा। परं तु रेत उठाने का भी कोई साधन उसके पास न रहा। इससे भी वह हताश न हुआ। उसने पानी में गोता मार कर गीले अपने शरीर को वालूपर लुढकाया, जिससे रेतके कतिपय कण उसपर टिक गये। फिर उठकर उसने समुद्र की ओर दौडकर वहां अपना शरीर हिलाकर उस रेत को समुद्र में गिरा दिया। इसी तरह वारंवार करके समुद्र पर रेत का पुल बांध लेने की उसने चेष्टा की। यह भावावेशपूर्ण कृत्य देखकर भगवान बहुत प्रसन्न हो गये। अब आळ्वार रोते हैं कि जब अत्यल्प एक जानवर ने भी भगवान की ऐसी विलक्षण सेवा कर अपने को कृतार्थ बना दिया, तब सेवा के उपयुक्त समस्त साधनों से परिपूर्ण मानवशरीरधारी मैं, भगवत्सेवा की चिंता तक न करता हुआ अनर्थभागी बन रहा हूं; अहो मेरा दौर्भाग्य है। .... (२७)

(गाथा.) उम्बरालरियलाहा वोळियुळारानैक्काहि * शेम्पुलाल्उण्डु वाळुम् मुदलैमेल् शीरि वन्दार् *
नम्परमायदुण्डे नायूकळोम् शिरुमैयोरा * एम्बिरार्कोळ्शेय्यादे एनुशेयूवान् तोन्निनेने ॥

(अतिश्रेष्ठज्ञानवाले) देवतालोगों को भी, यह ऐसा है, इतना है करके नापकर जानने अशक्य, तेजोमय परमपद के स्वामी भगवान अपने भक्त गजेंद्र के लिए लाल मांसके भोजन से जीवन करनेवाले मगर के ऊपर क्रोध करते हुए तटाक के तट पर पधार गये। (इस तरह से आश्रित पक्षपाती भगवान के, हमारे रक्षकत्वेन विराजते हुए भी, अपने रक्षण के विषय में) क्या हमें भी ढोने का कुछ भार रहता है? (बिलकुल नहीं है।) कुत्ते के समान हमारी नीचता की चिंता न करनेवाले हमारे स्वामी की सेवा न करनेवाले मैं ने क्यों कर यह जन्म पाया?

भगवान अपने भक्तों की रक्षा करने में इतने दत्तावधान रहते हैं कि आप एक समय में ग्राहग्रस्त गजेंद्र की आर्तध्वनि सुनकर अतिक्षुद्र कीटमात्र उस मगर पर बहुत कुपित होकर, अपना अंत:पुर छोंडकर दौडते दौडते उस तालाव के तटपर पधार गये; और आपके सौशील्य इत्यादिगुण भी इतने प्रबल हैं कि आप

अपने भक्तों के नैच्य की बिलकुल परवाह न करते हुए उनसे मिलकर सेवा लेते हैं। अतः हमें अपनी रक्षा के लिए रत्तीभर का भी प्रयत्न करने की आवश्यकता न बची है। परंतु इतना हमारा कर्तव्य होगा कि ऐसे गुणवान प्रभु की यथाशक्ति सेवा करना। जो ऐसा न करेगा उसका जन्म सर्वथा व्यर्थ है। .... (२८)

(गाथा.) ऊरिलेन् काणियिल्लै उरवु मत्तोरुवरिल्लै * पारिल निन्पादमूलम् पत्तिलेन् परममूर्ती *
कारोळि वण्णने कण्णने कदरुहिन्रेन् * आरुळर् कळैकणम्मा अरङ्गमा नहरुळाने ॥२९॥

इस विशाल भूमंडल पर आपके आदर के लक्ष्य किसी दिव्यदेश में मेरा जन्म नहीं हुआ। आपकी सेवा कर भोगने लायक किसी जमीन को भी मैं ने नहीं पाया। दिव्यदेशनिवासी मेरे कोई बंधुबांधव भी नहीं हैं; ऐसे मित्र आदि भी कोई नही हैं। मैं ने आपके पादारविंदों की सविधि शरण भी नहीं ली। हे परमपुरुष! मेघ के समान उज्वल कांतिवाले! हे श्रीकृष्ण! (अगति हो कर) मैं आपको ही पुकार रहा हूं। हे श्रीरंगदिव्यधामनिवासिन् मेरे नाथ! आपके सिवा मेरा रक्षक दूसरा कौन रहता है?

भगवान की सच्ची भक्ति अथवा सेवा करने की इच्छा से विरहित होनेपर भी कोइ कोई मानव विवशतापूर्वक ऐसे करने का अवकाश पा लेता है। तथाहि—भगवान से अधिष्ठित दिव्यदेश में जन्म पानेवाले अथवा धंधा चलाने के लिए उधर वास करनेवाले कभी कभी भगवान के दर्शन कीर्तन इत्यादि कर लेते हैं। कोई कोई लोग मंदिर में ही नौकरी करने का भाग्य पाते हैं। कहीं कहीं मंदिर में सेवा करनेवालों के जीवन के लिए खेत वाडी रहती हैं; और लोग इनको पाने की लालच से मंदिर में सेवा करने लगते हैं। कभी कभी दिव्यदेशनिवासी अपने बंधुमित्रादियों से मिलने के लिए उधर जानेवाले लोग, अकस्मात् भगवान के दर्शन भी कर लेते हैं। इस तरह से ये लोग अपनी इच्छा के विना भी, अथवा विरुद्ध भी, भगवान की कृपा पानेका अवसर पा लेते हैं। अब आळ्वार रोते हैं कि, "हे प्रभो! मेरे पास आपका कृपापात्र होनेका उपरोक्त साधन भी नहीं है; नवा मैं ने आपके पादारविंदों में शास्त्रोक्त प्रकार से शरणागति की। फिर आपकी निर्हेतुक कृपा के विना (कथंचिदपि) मेरा उद्धार नहीं होगा। ... . (३०)

(गाथा.) मनत्तिलोर्तूय्मै यिल्लै वायिलोरिन्शोलिल्लै * शिनत्तिनाल् शेत्तम् नोक्कि तीविळि विळिवन् वाळा *
पुनचळाय् मालैयाने पोन्निशूळ तिरुवरङ्गा * एनक्किनिकदियेन् शोल्लाय् एन्नैयाळुडैय कोवे ॥

हे पुष्ट नयी तुलसीमाला के धारिन्! हे कावेरीपरिवृत श्रीरंगदिव्यधाम में शयन करनवाले! हे मुझको अपना दास बनानेवाले स्वामिन्! मेरे मन में बिल्कुल पवित्रता नहीं है; मेरे मुँह से एक मीठी वाणी नहीं निकलती हैं; परंतु मैं विना कारण कोप से द्वेष करता हुआ क्रूर दृष्टि से देखकर क्रूर वचन का प्रयोग कर रहा हूं। ऐसे दुर्गुणों से भरे हुए मेरी कौनसी दशा होगी? आप ही बताइए।

इस गाथा में आळ्वार भगवान से यों प्रार्थना करते हैं कि "हे प्रभो! मन तन वाणी नामक तीन करणों में एक में भी मैं शुद्ध नहीं हूं; परंतु दुर्गुणों से भरपूर हूं। ऐसे मुझपर अगर आप कृपा न करेंगे तो मेरी कौनसी हालत होगी? .... (३१)

(गाथा.) तवत्तुळार्तम्मिलल्लेन् धनम्पडैत्तारिलल्लेन् * उवर्तनीपोल एन्तनुत्तवर्क्कोन्नुमल्लेन् *
तुवर्त शेव्वायिनार्कें तुवक्करचुरिशनानेन् * अवत्तमे पिरवि तन्दाय् अरङ्गमा नहरुळाने॥

हे श्रीरंगदिव्यधाम निवासिन्! मैं तपस्वियों में एक नहीं हूं; भगवद्भागवत सेवा करने पर्याप्त धन के मालिकों में भी एक नहीं; अपने साथियों के लिए भी खारे पानी की तरह सर्वथा अनुपयुक्त हूं; लाल होंठ वाली सुंदरियों के भी वर्जनीय चोर हूं। ऐसे मुझको आपने व्यर्थ ही यह (मानव) जन्म दिया।

इस पद्य में आळ्वार यों कहते हुए रोते हैं कि, हे प्रभो! मैं ने नतो आपको लक्ष्य करके तपस्या की, नवा धन से आपकी एवं भक्तों की सेवा की। मेरे दुर्गुण इतने प्रबल हैं कि मुझसे अपने बंधुमित्रादियों का भी कदाचित् कोई उपकार न मिला है; मेरे आदर के पात्र सुंदरियां भी मुझसे उपकार न पाने के कारण और अपकृत होने के कारण मेरा तिरस्कार करती हैं। इस तरह सर्वथा बेकार इस जन्म को आपने क्यों कर मुझे दिया? .... (३१)

(गाथा.) आर्त्तु वण्डलम्बुम् शोलै अणि तिरुवरङ्गन्तन्नुळ् * कार्तिरळनैय मेनि कण्णने उन्नैकाणुम् *
मार्गमोन्नरियमाट्टा मनिशरिल् तुरिशनाय * मूर्कनेन् वन्दु निन्नेन् मूर्कनेन् मूर्कनेने॥३२॥

रींकार करते फिरनेवाले भ्रमरों से युक्त उपवनों से अलंकृत श्रीरंगदिव्यधाम में शयन करनेवाले मेघसमूह सदृश दिव्यविग्रहवाले हे भगवन्! आपका साक्षात्कार पाने लायक किसी उपाय का अज्ञ, मनुष्यों में (सबसे बडी) आत्मापहार नामक चोरी करनेवाला और मूर्ख मैं (दूसरी गति के अभाव से) आपके पास आकर खडा हूं; अहो मेरी मूर्खता है!

"कर्मयोग ज्ञानयोग भक्तियोग इत्यादि भगवत्साक्षात्कार पाने के उपायों के ज्ञानसे भी दरिद्र और आत्मापहारक होने पर भी, युक्तायुक्तविवेचन करने में अशक्त मूर्ख होने के कारण लज्जाभयों को छोड कर रक्षा मांगता हुआ, हे भगवन्! आपके सामने खडा हूं। अहो मेरी मूर्खता है! .... (३२)

(गाथा.) मेय्येल्लाम् पोहविट्टु विरिकुळलारिल्पट्टु * पोय्येल्लाम् पोदिन्दुकोण्ड पोट्रकनेन् वन्दु निन्नेन् *
ऐयने! अरङ्गने! उन्नरुळेन्नुमाशैतन्नाल् * पोय्यनेन् वन्दु निन्नेन् पोय्यनेन् पोय्यनेने॥३३॥

मनोवाक्कायरूप तीनों करणों से सत्य छोडकर सुकेशिनी सुंदरियों के प्रेमपाश से बंधित होकर, समस्त प्रकार के अनृतों से पूर्ण, कपटी होकर मैं, हे मेरे नाथ! श्रीरंगनाथ भगवन्! आपकी कृपा पाने की आशा से आपके सामने आकर खडा हूं। त्रिकरणों से भी असत्य कपटी मैं आपके सामने आ खडा हूं॥

आळ्वार, अपने सब प्रकार के नैच्य की विनती करते हुए भगवान से कृपा माँगते हैं इस गाथा से। (३३)

(गाथा.) उळ्ळत्तेयुरैयुम्मालै उळ्ळुवानुणर्वोन्निल्ला * कळ्ळत्तेन् नानुम् तोण्डाय् तोण्डुक्के कोलम् पूण्डु *
उळ्ळुवारुळ्ळित्तेल्लाम् उडनिरुन्दरिदियेन्ने * वेळ्हिप्पोयेन्तुळ्ळे नान् विलवरच्चिरित्तिट्टेने॥३४॥

अपने हृदय में ही वास करनेवाले स्वामी आपका चिंतन करने अपेक्षित ज्ञान से सर्वथां शून्य मैं भी यद्यपि आपकी सेवा करने में उद्युक्त होकर, उसके लायक वेषका भी धारण कर रहता हूं। तथापि यह अर्थ समझकर कि आप हमेशा मेरे साथ ही रहकर मेरी सभी बातें ठीक जान लेते हैं, मैं अपने मन में बहुत लजाकर जोर से खिल खिलाकर हँसने लगा।

"हृदय में ही वास करने से बहुत समीप रहने पर भी आपकी चिंता तक करने में अशक्त मैं आपकी सेवा करने की ढोंग रचकर, तदनुरूप भक्त-वेष का भी धारण कर सबको वंचित कर रहा हूं। मुझे इस बात पर ध्यान नहीं था कि दूसरों से ठगने पर भी हृदयनिवासी आपसे ठगना अशक्य है। अब, जब कि आपकी कृपा से मुझे इस बात की याद आयी, तो मैं अपनी ढोंग व मूर्खता देखकर खूब हस पडा॥"(३४)

(गाथा.) **तावियन्नुलहमेल्लाम् तलैविळा कोण्डवेन्दाय् * शेवियेनुन्नैयल्लाल् शिकेन चेङ्गणमाले ***
आवियेयमुदे एन्तनारुयिरनैय वेन्दाय् * पावियेनुन्नैयल्लाल् पावियेन् पावियेने॥ ३५॥

त्रिविक्रमावतार के उस समय में समस्त लोकों को भी अपने पादारविंद से नाप लेनेवाले हे हमारे स्वामिन्! हे लाल नेत्रवाले आश्रितव्यामुग्ध! हे (मेरे जीवन के धारक) पंचप्राणस्वरूपिन्! हे अमृतसदृश! हे मेरी श्रेष्ठ आत्मा के समान नाथ! पापी मैं कभी भी आपके सिवा दूसरों का प्रणाम नहीं करूंगा; ध्यान भी न करूंगा। भला ही मैं पापी हूं। .... (३५)

(गाथा.) **मळैक्कन्नु वरैमुनेन्दुम् मैन्दने मदुरवारे * उळैकन्नेपोल नोक्कुमुडैयवर् वलैयुळ् पट्टु ***
उळैकिन्नेकैन्नै नोक्कादोळिवदे उन्नैयन्ने अळैकिन्नेन् * आदिमूर्ति अरङ्गमानहरुळाने॥ ३६॥

उस समय में (जब कि इंद्र ने सात दिन तक कठोर वर्षा बरसायी, उससे गोगोपों के दुःखी होने से) पहले ही, उस वर्षा को रोकने के लिए गोवर्धन पर्वत का छत्र की तरह धारण करनेवाले हे शूरवीर! हे मधुर नदी की तरह सब की प्यास बुझानेवाले! हरिन के बच्चेकी तरह सुंदर नेत्रवाली युवतियों के कटाक्षरूपी जाल में फँसकर तडपडानेवाले मुझ पर आप कटाक्ष न डाल रहे हैं! हे आदिमूर्ते! हे श्रीरंग दिव्यधामनिवासिन्! आपको संबोधित कर ही मैं रो रहा हूं।

इस गाँथा में आळ्वार, अपने अपेक्षित फल की प्राप्ति में विलंब होने के कारण व्याकुल होकर रो रहे हैं।

(गाथा.) **तेळिविलाकलङ्गल् नीर्शूळ् तिरुवरङ्गत्तुळ्ळोङ्गुम् * ओळियुळातोमे यन्ने तन्दैयुम् तायुमावार् ***
एळियदोररुळुमन्ने एन्तिरत्तेम्बिरानार् * अळियन् नम् पैयलेन्नारम्मवो कोडियवारे॥ ३७॥

स्वच्छता छोडकर हमेशा कलुषित रहनेवाली कावेरीजी से परिवृत श्रीरंगदिव्यधाम में विराजमान अतिमात्र तेजस्वी भगवान ही हमारे पिता एवं माता हैं। मेरे विषय में आपका कर्तव्य काम कृपाप्रकाशनमात्र है। तथापि मेरे उपकारक आप यों नहीं मान रहे हैं कि, "यह हमारा बालक कृपा पाने लायक है" (अर्थात् आप अभी भी मुझपर कृपा न करते हैं)। हाय! आपका स्वभाव बडा कठोर बन रहा है।

कावेरी को कलुषित कहने का यह तात्पर्य है कि इसका प्रवाह हमेशा बढता रहता है। अथवा, भगवान की सेवा करने में अत्यंत कातर होकर, अत एव किंकर्तव्यतामूढ होकर यह कलुषित रहती है; जैसा कि श्रीपराशर भट्टार्यस्वामीजी ने श्रीरंगराजस्तव में "दुग्धाब्धिर्जनको जनन्यहमियं श्रीरेव पुत्री" इत्यादि (२१) पद्य में अनुगृहीत किया। पद्य का यह तात्पर्य है—कावेरी नदी यों मानती हुई कि "क्षीरसमुद्र ही पिता है; मैं (कावेरी) माता हूं; श्रीरंगनायिका पुत्री हैं; श्रीरंगनाथ भगवान् जमाई हैं। अतः इनको अपना उचित कौनसा सन्मान करूं?" बहुत व्याकुल (कलुषित) होकर तरंगरूपी अपने हाथों से चंवर, कर्पूर, चंदनवृक्ष, श्रेष्ठ रत्न, मोती इत्यादि उठाकर, बहती आ रही है; इसका सेवन करो। .... (३७)

(गाथा.) मेम्बोरुळ् पोहविट्टु मेय्म्मैये मिहवुणर्न्दु * आम्परिशरिन्दुकोण्डु ऐम्बुलनहत्तडक्कि *
काम्बर त्तलैशिरैत्तु उन्कडैत्तलै यिरुन्दु वाळुम् * शोम्बरैयुहत्ति पोलुम् शूळ्पुनलरङ्गत्ताने ॥

हे कावेरी से परिवृत श्रीरंगदिव्यधाम में विराजनेवाले भगवन्! (प्राकृतजनों से अपेक्षित) समस्त क्षुद्रपुरुषार्थों का सवासन त्याग कर, यथावस्थित आत्मस्वरूप को ठीक जानकर, स्वरूपानुरूप समाचार भी सीखकर, पंचेंद्रियों को (क्षुद्रविषयों से) रोककर, अपने रक्षण भर को अपने सिर से ठीक उतारकर आपको सोंपकर आपके मंदिर के द्वारपर ही चौकीदार की तरह रहते हुए, उज्जीवित होनेवाले, अपने रक्षण में आलसी भक्तों पर ही आप अनुग्रह करते हैं।

इस गाथा में यों कहा जाता है कि, समस्तविषयवासना से विरहित, जितेंद्रिय, आत्मस्वरूपज्ञानी, सदाचार संपन्न, भगवान के रक्षकत्व में परिपूर्ण विश्वासवान होने के कारण, आत्मकल्याण के लिए सर्वथा स्वप्रयत्न करने से विमुख, अत एव इस विषय में एकदम आलसी, और हमेशा भगवान के द्वार पर ही रहकर सेवा करनेवाले भक्तश्रेष्ठ ही आपकी विशेष कृपा का लक्ष्य बनेंगे। .... (३८)

(गाथा.) अडिमैयिल् कुडिमैयिल्ला अयल्शदुप्पेदिमारिल् * कुडिमैयिल् कडमै पट्ट कुक्करिल् पिरप्परेलुम् *
मुडियिनिल् तुळबम् वैत्ताय् मोयूकळर्कन्बुशेय्युम् * अडियरै युहत्तिपोलुम् अरङ्गमानहरुळाने ॥

हे सिरपर तुलसी का धारण करनेवाले श्रीरंगदिव्यधाम निवासिन् भगवन्! श्रेष्ठ कुलानुरूप आचार से विरहित, भगवत्कैंकर्य के अननुगुण जन्मवाले लोग अगर चार वेदों के अध्येता भी हो, तो भी, उनकी उपेक्षा कर, अत्यंत निहीन कुल में जन्म लेनेपर भी, आपके परस्पर-संयुक्त उभय-पादारविंदों में भक्ति करने वाले सेवकों को ही आप चाहते हैं।

अब कतिपय गाथाओं से भक्त का माहात्म्य बताया जाता हैं; श्वपचोऽपि महीपाल विष्णुभक्तो द्विजोत्तमः। विष्णुभक्तिविहीनस्तु यतिश्च श्वपचाधमः। (अर्थात् चंडाल जन्म में पैदा होनेपर भी भगवान में भक्ति करने वाला ब्राह्मणश्रेष्ठ है; भक्तिशून्य मानव उत्तमाश्रम कहलानेवाले सन्यास को अपनाने पर भी वास्तव में चंडालाधम है) इत्यादि पुराणवचनों के अनुसार भगवद्भक्तिहीन ब्राह्मण से भी भक्तिमान चंडाल श्रेष्ठ है। .... (३९)

(गाथा.) तिरुमरुमार्प ! निन्नै शिन्दैयुळ् तिहळ वैचु * मरुविय मनत्तराहिल् मानिलत्तुयिर्हळेल्लाम् *
वेरुवुरक्कोन्नु शुट्टिट्टु ईट्टिय विनैयरेलुम् * अरुविनैप्पयनदुय्यार् अरङ्गमानहरुळाने ।।

हे अपने वक्ष में लक्ष्मीजी का एवं श्रीवत्सनामक मस्से का धारण करनेवाले श्रीरंगदिव्यधाम निवासिन् भगवन् ! इस विशाल पृथ्वीतलपर निवास करनेवाले समस्त जीव, जगत को भयसे कंपाते हुए प्राणिहिंसा करते हुए विशेष पाप कमाने के बाद भी, अगर आपको अपने मन में विराजमान करा कर, दृढ अध्यवसाय युक्त होंगे, तो, वे अपने पूर्वोक्त महापातकों के फल नहीं भोग पायंगे ।

नीच जातिवाले मात्र नहीं, उसके साथ अतिनीच काम करनेवाले भी लोग क्यों न हो, अगर भक्तिपूर्वक भगवान का ध्यान करेंगे, तो अपने से अनुष्ठित पापों से मुक्त होंगे । ... (४०)

(गाथा.) वानुळाररियलाहा वानवावेन्बराहिल् * तेनुलाम् तुळबमालै चेन्नियावेन्बराहिल् *
ऊनमायिनहळ् शेय्युम् ऊनकारहर्हळेलुम् * पोनहम् शेयूद शेषम् तरुवरेल् पुनिदमन्ने ।।

स्वयं निहीन कृत्य करते हुए, दूसरों से भी वैसे ही हीन कृत्य करानेवाले होकर भी, अगर कोई यों अनुसंधान कर दें कि "हे ऊपर के लोकोंमें रहनेवाले ब्रह्मादियों से भी जानने अशक्य देवदेव !" तो ऐसे महात्मा लोगों के भोजन करने के बाद उनका उच्छिष्टप्रसाद अगर किसीको मिलेगा, तो उस महा प्रसाद का स्वीकार करनेवाला परिशुद्ध बन जायगा ।

भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते । तात्पादाम्ब्वतुलं तीर्थं तस्योच्छिष्टं सुपावनम् । (अष्टविध भक्तिवाला कोई अगर म्लेच्छ भी हो, तो भी उसका चरणामृत बेजोड तीर्थ है और उसका उच्छिष्ट प्रसाद परमपावन है) इत्यादि प्रमाण का यहांपर अनुसंधान करना चाहिए । .... (४१)

(गाथा.) पळुदिलावोळुहलाचु प्पल शतुप्पेदिमार्हळ् * इळिकुलत्तवर्हळेलुमू एम्मडियार्हळाहिल् *
तोळुमिनीर् कोडुमिन् कोण्मिन्एन्नु निन्नोडुमोक*वळिपडवरुळिनायु पोल् मदिळ्तिरुवरङ्गत्ताने।।

हे कोटों से परिवृत श्रीरंगदिव्यधाम निवासिन् ! यों कहते हुए कि "ब्रह्माजी से शुरूकर अपने तक आनेवाली वंशपरंपरा में सर्वथा दोषशून्य रहनेवाले हे चारों वेदों के ज्ञाता ! नीच जन्म में पैदा होने पर भी मेरे भक्तों की सेवा करो; उनको विशेष अर्थों का उपदेश करो, उनका उपदेश पालो" आपने उनको (भक्तों को) अपने सदृश मानकर पूजने की आज्ञा दी है ।

मद्भक्तजनवात्सल्यं पूजायां चानुमोदनम् । स्वयमभ्यर्चनं चैव मदर्थे डम्भवर्जनम् ।। मत्कथाश्रवणे सक्तिः स्वरनेत्राङ्गविक्रिया । ममानुस्मरणं नित्यं यच्च मां नोपजीवति ।। भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते । तस्मै देयं ततो ग्राह्यं सच पूज्यो यथा ह्यहम् ।। इस भगवच्छास्त्र के अनुसार यह गाथा गायी गयी है । इसका यह तात्पर्य है—जिस में यह अष्टविधभक्ति परिपूर्ण रहती है, वह चाहे जो हो, अंततः म्लेच्छ भी क्यों न हो, उसको ज्ञान देना चाहिए; उससे ज्ञान लेना चाहिए; और मेरे (यानी भगवान के) समान उसकी पूजा करनी चाहिए । .... (४२)

(गाथा.) अमरवोरङ्गमारुम् वेदमोर्नान्गुमोदि * तमर्हळिल् तलैवराय शादियन्दणर्हळेलुम् *
तुमर्हळै प्पळिप्पराहिल् नोडिप्पदोरळविलाङ्गे* अवर्हळ् ताम् पुलैयर्पोलुम् अरङ्गमा नहरुळाने॥

हे श्रीरंगदिव्यधाम-निवासिन्! षडंगसहित चारों वेदों का ठीक अध्ययन करनेवाले भागवतों में श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग भी अगर आपके भक्तों की निंदा करेंगे, तो वे उसी क्षण में चंडाल बन जायंगे। .... (४३)

(गाथा.) पेण्णुलाम् शडैयिनानुम् पिरमनुमुन्नैक्काण्बान्* एण्णिलावूळियूळि तवम् शेय्दार्वेव्हि निर्प्प *
विण्णुळार्वियप्प वन्दु आनैक्करुळैयीन्द कण्णराय् * उन्नैयेन्नो कळैकणाकरुदुमारे॥ ४४॥

गंगालंकृत जटाधारी शिवजी और चतुर्मुख ब्रह्माजी, ये दोनों आपके दर्शन पाने के लिए कल्पनातीत अनादि काल से तप करने पर भी दर्शन न पाकर लज्जा से सिर नमाकर रह गये; ऐसी अवस्था में मगर से पीडित गजेंद्र के लिए तालाब के तटपर पधारकर, उसपर नित्यसूरियों को भी आंश्चर्य देनेवाली अपनी विलक्षण कृपा दिखानेवाले, हे मुझपर अनुग्रह न करनेवाले दयाशून्य (भगवन्)! आप किस तरह से रक्षक माने जा सकते हैं?

तिर्यक् योनि में उत्पन्न गजेंद्र पर भगवान ने ऐसी बडी दया बतायी कि उसको देखनेवाले ब्रह्मा शिव नित्यसूरी आदि भी, अपने को ऐसी कृपाका पात्र न बनने के कारण लज्जित हो गये। बहुत समय से भगवान के दर्शन पाने की इच्छा से कठिन तपस्या करनेवालों को भी आपके दर्शन न मिले। अतः आळ्वार चाटूक्ति से पूछते हैं, कि इस तरह से भक्तों पर विशेष अनुग्रह करते हुए भी दूसरों की उपेक्षा करनेवाले आपको हम किस तरह से सर्वरक्षक मानेंगे। अथवा, गजेंद्र पर ऐसी दया करनेवाले आप मेरी उपेक्षा कर रहे हैं; इससे मैं किस तरह से भरोसा रख सकूंगा कि आप जरूर मेरी रक्षा करेंगे? (४४)

(गाथा.) वळवेलुन्तवळ माड मदुरैमा नगरन्तन्नुळ् * कवळमाल् यानै कोन्न कण्णनै यरङ्गमालै *
तुळवत्तोण्डाय तोल्शीर् तोण्डरडिप्पोडि शोल्ल * इळैयपुन्कवितैयेलुम् एम्बिरार्किनियवारे॥

अतिरमणीय शुभ्र महलों से अलंकृत, माहात्म्यवाली उत्तर मथुरा नगरी में, ग्रास लेनेवाले (अर्थात् खूब आहार लेने से मत्त रहनेवाले) बडे हाथी कुवलयापीड का संहार करनेवाले श्री कृष्णरूपी, श्रीरंगदिव्यधामनिवासी आश्रितव्यामुग्ध भगवान को लक्ष्य कर, तुलसी-सेवा करनेवाले और स्वाभाविक भगवद्दास्यनिष्ठ भक्तांघ्रिरेणु सूरी से अनुगृहीत यह दिव्यप्रबंध, दोषदुष्ट क्षुद्र कविता होकर भी, अहो! भगवान के अत्यंत भोग्य रहता है।

इस गाथा में यों सूचित किया जाता है की भगवान ने आळ्वार से अतिप्रेम के साथ गीत इस श्री माला नामक दिव्यप्रबंध का, परमभोग्य अमृत की तरह अनुभव कर, आप पर विशेष कृपा का प्रकाशन किया। इस गाथा में आळ्वार का नामांकन है, स्पष्ट फलश्रुति नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि यह अर्थ कहे बिना ही स्पष्ट होता है कि भगवान के परमभोग्य, अत एव अत्यंतप्रिय इस दिव्यप्रबंध का पाठ करनेवाले भी आपके प्रिय होते हैं। अथवा इसका गान स्वयंप्रयोजन है; इससे दूसरा फल चाहना अनुचित है; भगवत्कृपा तो अपने आप ही मिल जानेवाली चीज है। .... (४५)

॥ श्री भक्तांघ्रिरेणु सूरी से अनुगृहीत श्रीमाला दिव्यप्रबंध सटीक समाप्त हुआ॥

॥ तोण्डरडिप्पोडियाळ्वार् तिरुवडिहळे शरणम्॥

॥ श्रीरस्तु ॥

श्रीपराङ्कुश परकाल यतिवर वरवरमुनिभ्यो नमः

श्रीमते भक्ताङ्घ्रिरेणुसूरये नमः

द्राविडवेदनामक चार हजार दिव्यप्रबंधके पहले हजार का आठवां प्रबंध

श्री भक्तांघ्रिरेणु मुनींद्र (तोण्डरडिप्पोडि आळ्वार)

से अनुगृहीत

॥ तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि नामक सुप्रभातप्रबंध ॥

हिन्दी अनुवाद व टीका सहित

तनियन् अथवा मुखपद्य

तमेव मत्वा परवासुदेवं रङ्गेशयं राजवदर्हणीयम् ।
प्राबोधिकीं योऽकृत सूक्तिमालां भक्तांघ्रिरेणुं भगवन्तमीडे ॥

उन भगवान (माने ज्ञानादि शुभगुण परिपूर्ण) भक्तांघ्रिरेणु सूरी की स्तुति करता हूं, जिन्होने राजा के समान पूजित होने लायक श्री रंगदिव्यधाम में शयन करनेवाले श्री रंगनाथ भगवान को प्रसिद्ध साक्षात् पर-वासुदेव ही मानकर आपको जगाने की स्तुतिमाला की रचना की ।

परमसत्वसमाश्रय, हमेशा जगद्रक्षणचिंता करने में निरत, अत एव निद्रागंधविरहित, शेषशय्या पर शयन करते हुए भी योगनिद्रा-निरत भगवान को निद्रा से जगाना, अर्थशून्य अथवा आपका तिरस्कार जनक काम प्रतीत होगा । अतः प्रकृत पद्य से इसका औचित्य बताया जाता है । शास्त्र की आज्ञा है कि राजा की तरह भगवान की सेवा करनी चाहिए; और परमपद में राजाधिराज की तरह विराज कर आप नित्य मुक्तों से सेवित हो रहे ही हैं । यह भी बात निर्विवाद है कि वे ही भगवान हाल में श्रीरंगनाथ के रूप में अवतार लेकर श्रीरंगदिव्यधाम में शेषशय्या पर शयन कर रहे हैं । अतः आपको जगाने के व्याज से आपकी सेवा करना अत्यंत उचित व आवश्यक है; यों समझकर श्री भक्तांघ्रिरेणु सूरी ने आपकी स्तुति की; उनको नमस्कार हो ।

मण्डङ्गुडियेन्ब मामरैयो मन्नियशीर्, तोण्डरडिप्पोडि तोन्नगरम्—वण्डु
तिणर्त्तवयल् तेन्नरङ्गत्तम्मानै, पळ्ळियुणर्त्तम्पिरानुदित्तवूर् ॥

बडे लोग कहते हैं कि भ्रमरों से निविड परिवृत खेतों से सुशोभित सुमनोहर श्रीरंगक्षेत्र में विराजमान हमारे स्वामी श्रीरंगनाथ भगवान को सुप्रभात गीत से जगानेवाले परमोपकारक तोंडरडिप्पोडि नामक आळ्वार का अवतार स्थल, श्रेष्ठ वैदिकों का निवासस्थान तिरुमण्डङ्गुडि नामक प्राचीन नगर है।

॥ मुखपद्य का विवरण समाप्त हुआ ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

श्री भक्तांघ्रिरेणु सूरी की जय हो!

॥ तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि अथवा सुप्रभातप्रबंध ॥

अवतारिका—श्री भक्तांघ्रिरेणु सूरी से अनुगृहीत दो दिव्यप्रबंधों में तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि नामक यह प्रबंध, दूसरा है। यह श्रीरंगनाथ भगवान की सुप्रभात–गीति है। इस प्रबंध की प्रत्येक गाथा के अंत में "हे श्री रंगनाथ भगवन्! आप शयन से उठिए" ऐसी प्रार्थना की जाती है। इसी कारण से यह प्रबंध तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि कहलाता है। तिरु-श्री, पळ्ळि-शयन, येळुच्चि-उत्थापन। श्री, यह मंगलार्थक विशेषण शयन को लगेगा, अथवा दिव्यप्रबंध कों। यद्यपि इस प्रबंध में स्पष्टतया श्रीरंगनाथ भगवान का ही उत्थापन किया गया है। तथापि सभी दिव्यदेशों में तथा श्रीवैष्णव मठमंदिरों में प्रतिदिन भगवत्पूजा के समय तिरुप्पल्लाण्डु व तिरुप्पावै के बीच में इस दिव्यप्रबंध का पाठ किया जाता है। इससे स्पष्ट होता हैं कि यह भी उन प्रबंधों के समान वैभववाला है। तमोगुणकार्य निद्रा से विरहित, नित्यजागृत भगवान को शय्या से उठाने के विषय में सामान्य लोग जो शंका करते हैं, उसका एक प्रकार का समाधान तनियन पद्य की टीका में बताया गया। दूसरा यह भी एक समाधान हैं कि भगवान के विभवावतारों की लीलाओं का अर्चावतार में अनुसंधान करना, यह आळ्वारों की एक प्रणाली हैं। श्रीरामावतार में विश्वामित्र महर्षि ने आपकी सुप्रभातस्तुति की "कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वज ॥" इत्यादि से। अतः अर्चामूर्ति की भी सुप्रभातस्तुति करना उचित है। शायद इस अर्थ की सूचना देने के लिए विश्वामित्र–यज्ञरक्षण का वृत्तांत इस प्रबंध में कीर्तित है (गाथा. ४)। वस्तुतस्तु भगवत्पूजा के रूप में हम जो कुछ करते हैं—अर्घ्यपाद्याचमनीय–प्रदान, दंतधावन, स्नान, भोग, शयन इत्यादि—ये सभी, आपके प्रति हमारे प्रेम व आदर बताने के काम मात्र हैं; न तु भगवान को इनसे कुछ प्रयोजन होगा। अगर हम व्यर्थ मानकर ये सब काम छोड देंगे, तो फिर पूजा ही क्या होगी? अतः इन कृत्यों को उचित समझना चाहिए।

इस दिव्यप्रबंध की भी, पूर्वाचार्य विरचित टीका के अतिरिक्त श्री कांची प्रतिवादि भयंकर अण्णंगराचार्यस्वामी जी से विलिखित नाना टीकाएं हैं। आपसे संस्कृत गद्य एवं पद्य रूप में इसका अनुवाद भी किया गया है। पद्यरूप अनुवाद कंठस्थ करने और पाठ करने योग्य है। इन टीकाओं के आधार से प्रकृत हिंदी अनुवाद, सटीक, लिखा जा रहा है। .... *

(गाथा.) कदिरवन् कुणदिशैचिहरम् वन्दणैन्दान् कनविरुलहन्नदु कालैयम्पोळुदाय् *
मदु विरिन्दोलुहिन मामलरेल्लाम् वानवररशर्हळ् वन्दुवन्दीण्डि *
एदिर्दिशै निरैन्दनरिवरोडुम्पुहुन्द इरुङ्कळित्तीट्टमुम् पिडियोडु मुरशुम् *
अदिर्दलिललैकडलू पोन्नुळदेङ्गुम् अरङ्गत्तम्मा पळ्ळियेळुन्दरुळाये ॥ १ ॥

हे स्वामिन् श्रीरंगनाथ! पूर्वदिशा में उदयपर्वत के शिखरपर सूर्य आ पहुंच गया; घनिष्ठ अंधकार निकल गया; मनोहर प्रातःकाल के आने से श्रेष्ठ पुष्प खिल गये और उनसे मधु का प्रवाह बह रहा है; देवता और राजा लोग सब परस्पर स्पर्धा करते हुए आकर एकत्रित होकर, आपके सामने की दिशा में (आपका कटाक्ष पाने की इच्छा से, उस कटाक्ष का लक्ष्यभूत दक्षिण दिशा में) सत्र अवकाश भरकर खडे रहे हैं; इनके साथ आ गये हुए (इनके वाहनभूत) बडे बडे हाथियों के गण, अपनी स्त्रियों के साथ और मुरजादि बडे वाद्यों के साथ, समस्त दिशाओं में लहरों से व्याप्त समुद्र की तरह आवाज निकाल रहे हैं; अतः हे प्रभो! आप कृपा कर शयन से उठिए। .... (१)

(गाथा.) कोळुङ्गोडि मुल्लैयिन् कोळुमलरणवि कून्र्ददु कुणदिशै मारुदमिदुवो *
एळुन्दन मलरणै प्पळ्ळिकोळ्ळन्नम् ईन्पनि ननैन्द तमिरुम् शिरहुदरि *
विळुङ्गिय मुदलैयिन् पिलम्पुरै पेळ्वायू वे॒यिरुर अदन् विडत्तिनुक्कनुङ्गि *
अळुङ्गियवानैयिनरुन्तुयर्केडुत्त अरङ्गत्तम्मा पळ्ळियेळुन्दरुळाये ॥ २ ॥

हे स्वामिन् श्रीरंगनाथ! पूर्व दिशा का पवन सुकुमार मागधी लतास्थ सुंदर पुष्पों पर चलकर (उनकी गंध उठाता) बह रहा हैं; पुष्प शय्या में सोनेवाले हंस भी (वर्षा की तरह) गिरनेवाले ओस से गीले अपने सुंदर पर हिलाते हुए जाग गये; पैर पकडनेवाले मगर के बिलसदृश बडे मुँह में रहनेवाले सफेद दांतों के दबाव से उससे (पैरसे) निकलने वाले विष से दुःखित गजेंद्र का महान दुःख दूर करनेवाले हे प्रभो! आप कृपाकर शयन से उठिए।

जब मगर अपने मुँह से गजेंद्र का पैर पकडकर तेज दांतों से डसने लगा, तब उससे निकलनेवाले क्रूर विष ने हाथी के शरीर में प्रवेश कर उसको बहुत दुःख दिया; तब भगवान ने उसको बचाया। ....(२)

(गाथा.) शुडरोळि परन्दन शूळ्दिशै येल्लाम् तुन्निय तारकै मिन्नोळि शुरुङ्गि *
पडरोळि पशुत्तनन् पनिमदि यिवनो पायिरुळहन्नदु पैम्बोळिर्कमुहिन् *
मडलिडैक्कीरि वणूपाळैहळ् नार वैहरै कून्र्ददु मारुतमिदुवो *
अडलोळि तिहळ्तरु तिहिरियन्तडकै अरङ्गत्तम्मा पळ्ळियेळुन्दरुळाये ॥ ३ ॥

हे स्वामिन् श्रीरंगनाथ! सूर्य का प्रकाश सर्वत्र फैल गया; घने नक्षत्रों का अधिक प्रकाश भी फीका पडने लगा; अधिक प्रकाशवाला शीतल चंद्र भी कांतिहीन बन गया; विस्तृत अंधकार मिट गया; प्रातः काल

का यह मंदमारुत हरे उद्यानवन में सुपारी के पेडों में पुष्प गुच्छ चीर डालकर अंदर के फूल की सुगंध लेकर सर्वत्र चल रहा है; अपनी विशाल सुंदर हथेली से अधिक सामर्थ्यवाले बडे तेजस्वी श्री सुदर्शन चक्र का धारण करनेवाले हे प्रभो! आप कृपा कर शयन से उठिए। .... (३)

(गाथा.) मेट्टिळ मेदिहळ् तळै विडुमायर्हळ् वेय्ङ्गुळलोशैयुम् विडै मणिकुरलुम् *
ईट्टिय विशै तिशै परन्दन वयलुळ् इरिन्दन शुरुम्बिनमिलङ्गैयर् कुलत्तै *
वाट्टिय वरिशिलै वानवरेरे मामुनिवेळ्वियैक्कात्तु * अवपिरदम्
आट्टियवडुतिरलयोत्तियेम्मरशे अरङ्गत्तम्मा पळ्ळियेळुन्दरुळाये ॥ ४ ॥

हे स्वामिन् श्रीरंगनाथ! छोटी उमरवाली ऊंची भैंसों को घास चराने के लिए छोडनेवाले गोपों का मुरलीनाद और बैलों के कंठस्थ किंकिणियों का नाद, इन दोनों की मिलाप की ध्वनि समस्त दिशाओं में व्याप्त हो रही हैं; खेत में भ्रमरों का समूह रींकार करता उठ गया; राक्षसकुल का विध्वंस करने वाले सुंदर शार्ङ्ग धनुषवाले हे देवाधिदेव! हे विश्वामित्र महर्षि का याग समाप्त करवाकर उनसे अवभृयस्नान करानेवाले, शत्रुओं का ध्वंस करने पर्याप्त सामर्थ्यवाले, अयोध्याधिपते! हमारे नाथ! आप कृपा कर शयन से उठिए।

(गाथा.) पुलम्बिन पुट्कलुम् पूम्बोळिलुहळिन्वाय् पोयित्तु कङ्गुल् पुहुन्ददु पुलरि *
कलन्ददु कुणदिशै कनैकडलरवम् कळिवण्डु मिळत्तिय कलम्बहम् पुनैन्द *
अलङ्गलन्तोडैयल् कोण्डडियिणै पणिवान् अमरर्हळ् पुहुन्दनरादलिलम्मा *
इलङ्गैयर्कोन् वळिपाडु शेय्कोयिल् एम्बेरुमान् पळ्ळियेळुन्दरुळाये ॥ ५ ॥

विकसित पुष्पोद्यान में रहनेवाले पक्षी भी (जागकर) कलकलनाद कर रहें हैं; रात बीत गयी; प्रातःकाल हो गया; पूर्व दिशा में गरजनेवाले समुद्र की आवाज फैल गयी; मधु पीकर मस्त रहनेवाले भ्रमरों से युक्त नाना जातके पुष्पों से बनायी हुई माला लेकर देवतालोग, आपके पादारविंदों में उनका अर्पण करने के लिए आ खडे हैं; अतः हे सर्वस्वामिन्! लंकेश्वर विभीषण जी से संसेवित श्रीरंगदिव्यधाम में शयन करनेवाले हे हमारे नाथ! आप कृपया शयन से उठिए। .... (५)

(गाथा.) इरवियर्मणिनेडुन्तेरोडुमिवरो इरैयवर् पदिनोरु विडैयरुमिवरो *
मरुविय मयिलिननरुमुहनिवनो मरुदरुम् वसुक्कलुम् वन्दुवन्दीण्डि *
पुरवियोडाडलुम्पाडलुम् तेरुम् कुमरदण्डम् पुहुन्दीण्डिय वेळ्ळम् *
अरुवरैयनैय निन्कोयिल् मुनिवरो अरङ्गत्तम्मा पळ्ळियेळुन्दरुळाये ॥ ६ ॥

हे स्वामिन् श्रीरंगनाथ! विलक्षण बडे रथवाले बारह आदित्य, जगत के निर्वाहक ग्यारह रुद्र, समुचित मयूरवाहन षण्मुख, मरुत् नामक देवता, आठ वसु, ये सब देवतालोग परस्पर स्पर्धा करते आकर निबिडा-

तया खडे रहे हैं ; और इनकी सवारी घोडों से सहित रथ और देवसेनागण, गान नर्तन आदि करते आकर वडे पर्वत के समान (आपके) मंदिर में आपके सामने खडे हैं। अतः हे प्रभो! आप कृपया शयन से उठिए। .... (६)

(गाथा.) अन्दरत्तमरर्हल् कूट्टङ्गळिवैयो अरुन्दवमुनिवरुम् मरुदरुमिवरो *
इन्दिरनानैयुम् तानुम् वन्दिवनो एम्बेरुमानुन कोयिलिन्वाशल् *
शुन्दरर्नेरुक्क विचादरर्नूक्क इयक्करुम् मयङ्गिनर्तिरुवडि तोळुवान् *
अन्दरम् पारिडमिल्लै मत्तिदुवो अरङ्गत्तम्मा पळ्ळियेळुन्दरुळाये ॥ ७ ॥

हे स्वामिन् श्रीरंगनाथ! हमारे स्वामी आपके दिव्यमंदिर के द्वारपर महेंद्र और उसका हाथी ऐरावत आगये हैं; और भी इस ब्रह्मांड के अंदर रहनेवाले समस्त देवगण, इनके परिवार, महातपस्वी महर्षिगण, मरुत्, यक्ष, परस्पर दबानेवाले गंधर्व, एक दूसरे से स्पर्धा करते आगे बढनेवाले विद्याधर, ये सभी आपके पादारविंदों की सेवा करने के लिए आकर व्यामुग्ध होकर खडे हैं; इनसे आकाश और भूमी का सब अवकाश भर गया है; अतः हे प्रभो! आप कृपया शयन से उठिए। .... (७)

(गाथा.) वम्बविळ् वानवर्वायुरै वळङ्ग मानिदि कविलै योणूकण्णाडि मुदला *
एम्बेरुमान् पडिमैक्कलन्काण्डर्कु एर्प्पनवायिन कोण्डु नन्मुनिवर् *
तुम्बुरु नारदर् पुहुन्दनरिवरो तोन्निननिरवियुम् तुलङ्गोळि परप्पि *
अम्बरतलत्तिल् निन्नु अहल्हिन्नदिरुळ् पोय् अरङ्गत्तम्मा पळ्ळियेळुन्दरुळाये ॥ ८ ॥

हे स्वामिन् श्रीरंगनाथ! आपको अर्पण करने के लिए सुगंध दूर्वादल, शंख पद्मादि श्रेष्ठ निधि, कामधेनु, उज्वल दर्पण, और आपके (सुप्रभातसमय में, देखने लायक मंगलद्रव्य तथा पूजोपकरण, इन सबको लेकर देवों, महर्षियों, तुंबुरु और नारद, ये सभी आ गये हैं; सूर्य भी सर्वत्र अपना विशेष प्रकाश फैलाता हुआ उगा है; अंधकार तो आकाश से दूर निकल गया; अतः हे प्रभो! आप कृपया शयन से उठिए।

(गाथा.) एदमिल् तण्णुमै येक्कम् मत्तळि याळ् कुळल् मुळवमोडिशै तिशै केळुमि *
कीदङ्गळ् पाडिनर् किन्नरर् करुडर्हळ् कन्दरुवरुमिवर् कङ्गुलुमेल्लाम् *
मादवर्वानवर्शारणरियक्कर् शित्तरुम् मयङ्गिनर् तिरुवडि तोळुवान् *
आदलिलवर्कु नाळोलक्कमरुळ अरङ्गत्तम्मा पळ्ळियेळुन्दरुळाये ॥ ९ ॥

हे स्वामिन् श्रीरंगनाथ! दोषरहित छोटे छोटे नगाडा, एकनाद, मृदंग, वीणा, मुरली आदि वाद्यों से सर्व दिगन्तव्यापिनी आवाज निकालते हुए गान करनेवाले किंनर, गरुड, गंधर्व, आदि, और महर्षि, देव, चारण, यक्ष, सिद्ध, ये सब लोग आपके पादारविंदों में प्रणाम करने के लिऐ रातभर (भीड में दबा जाकर) व्यामुग्ध हुए हैं; अंतः इनको दयापूर्ण अपने दिव्य दर्शन देते हुए, हे प्रभो! आप कृपया शयन से उठिए। .... (९)

(गाथा.) कडिमलर्क्कमलङ्गळ् मलर्न्दनविवैयो कदिरवन् कनैकडल् मुळैत्तननिवनो *
तुडियिडैयार् शुरिकुळल् पिळिन्दुदरि तुहिलुडुत्तेरिनर् शूळ्पुनलरङ्गा *
तोडैयोत्त तुळबमुम् कूडैयुम् पोलिन्दु तोन्नियतोळ् तोण्डरडिप्पोडियेन्नु
मडियनै * अळियनेन्नरुळि उन्नडियार्क्काळ्पडुत्ताय् पळ्ळियेलुन्दरुळाये ॥ १० ॥

हे कावेरीपरिवृत श्रीरंगदिव्यधामनिवासिन ! सुगंध कमल के फूल खिल गये; (उनको ऐसे खिलानेवाला) सूर्यदेव भी गरजनेवाले समुद्र में उदयपर्वत के शिखर पर आ पहुंच गया; कृशोदरी स्त्रियां (कावेरी में नहाकर) अपने केश बंध को ऐंठकर हिलाकर (अर्थात् सुखाकर) और वस्त्र पहनकर तटपर चढ गयीं; ठीक गूंथी हुई तुलसीमाला एवं फूल की टोकरी से अलंकृत भुजवाले भक्तांघ्रिरेणु नामक इस दास को, यों मानते हुए कि "यह दया पाने लायक है", अपने नित्य किंकर परम भागवतों का सेवक बनाने के लिए, हे प्रभो ! आप कृपया शयन से उठिए ।

"तिरुमालै" की तरह इस प्रबंध के अंत में भी, कवि का नामांकन मात्र दीख पडता है, नतु फलश्रुति । इसका कारण यही है कि इस प्रबंध का मधुर पाठ ही भगवान को खूब प्रसन्न कराता हुआ स्वयं प्रयोजन हैं । .... (१०)

॥ श्री भक्तांघ्रिरेणु सूरी से अनुगृहीत सुप्रभात प्रबंध सटीक समाप्त हुआ ॥
॥ तोण्डरडिप्पोडियाळ्वार् तिरुवडिगळे शरणम् ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

श्री पराङ्कुश परकाल यतिवर वरवर मुनिभ्यो नमः

श्री पाणसूरये नमः

द्राविडवेदनामक चार हजार दिव्यप्रबंध के पहले हजार का नवां प्रबंध

श्री पाणसूरि (तिरुप्पाणाळ्वार)

से अनुगृहीत

॥ अमलनादिपिरान् नामक दिव्यप्रबंध ॥

[श्रीरंगनाथ भगवान की आपादमस्तक स्तुति]

हिंदी अनुवाद व टीका सहित

तनियन् अथवा मुखपद्य

श्लो ॥ आपादचूडमनुभूय हरिं शयानं मध्ये कवेरदुहितुर्मुदितान्तरात्मा ।
अद्रष्टृतां नयनयोर्विषयान्तराणां यो निश्चिकाय मनवै मुनिवाहनं तम् ॥

श्री लोकसारंग महामुनि के कंधों पर विराजमान उन पाणनाथ सूरी का चिंतन करूंगा, जिन्होने कावेरी के मध्य में (श्रीरंगदिव्यधाम में) शयन करनेवाले श्रीरंगनाथ भगवान के, पैर से मुकुट तक के दर्शन कर, अत्यंत संतुष्टांतरंग होकर ऐसा निश्चय कर दिया कि, " अब मेरी आँखें भगवान के सिवा दूसरी वस्तु नहीं देख सकती ।"

(गाथा.) काट्टवे कण्डपादकमल नल्लाडै युन्दि, तेट्टरुमुदरबन्दम् तिरुमार्वु कण्डम् शेव्वाय् *
वाट्टमिल् कण्गळ् मेनि मुनियेरि त्तनिपुहुन्दु * पाट्टिनाल् कण्डुवाळुम् पाणर्ताळ् परविनोमे ॥

लोकसारंग महामुनि के कंधों पर चढकर, अकेले मंदिर के अंदर प्रवेशकर, उनसे बताये गये हुए क्रम से दर्शन कर, भगवान के पादकमल, दिव्यपीतांबर, नाभी, अनमोल स्वर्णमय कटिसूत्र, लक्ष्मीजी से अलंकृत दिव्य वक्ष, कंठ, लाल होंठ, जागृत चक्षु, इन सब से युक्त दिव्यमंगलविग्रह के दर्शन करते स्तुति कर आनंदित श्री पाणनाथ सूरी के पादों की हम स्तुति करते हैं । .... *

॥ मुखपद्य का अनुवाद समाप्त हुआ ॥

॥ श्रीपाणसूरी का वैभव ॥

श्रीरंगदिव्यधाम के पास निचुलापुरी (अथवा उरैयूर) नामक एक क्षेत्र है, जो पहिले के जमाने में एक बडी राजधानी थी । इसमें एक समय , वृश्चिकमास (कार्तिक) के रोहिणी नक्षत्र के दिन एक सस्य के गर्भ से एक दिव्य शिशु का अवतार हुआ । उस शिशु को, दैवयोग से उधर आनेवाला संतानहीन एक पंचम जातिवाला देखकर आनंदित हुआ और उसको करुणामय भगवान की देन मानकर अपना घर ले जाकर गाय का दूध पिलाकर पोषण करने लगा ।

भगवान की विशेषकृपा से अवतार लेनेवाले ये महात्मा भी, जन्म से ही भगवद्भक्त रहकर, गान विद्या में प्रवीण होकर, ज्ञान वैराग्य के निधि होकर, वीणा लेकर भगवान की स्तुतियों का गान करने में निरत रहे । नीचजाती में पैदा होने के कारण, आप परमपवित्र श्रीरंगदिव्यधाम में प्रवेश करने से डरते हुए दक्षिण कावेरी के तट पर ही दूर खडे होकर भगवान की स्तुति करते थे । ऐसे बहुत समय बीत गया ।

एक दिन की बात है । श्रीरंगनाथ भगवान के अभिषेक के लिए कावेरी से प्रतिदिन तीर्थ ले जाने की सेवा करनेवाले श्री लोकसारंग मुनि नामक एक वैदिक ब्राह्मण, सोनेका घडा लेकर सपरिवार कावेरी आ गये । दैवयोग से उस दिन श्री पाणनाथ उस घाट के समीप ही खडे होकर अनन्यभाव से गान करते उसमें लीन हो गये थे । ब्राह्मणों ने ताली बजा कर उनसे दूर निकलने को कहा । परंतु गानमग्नमन वे योगी यह गडबड सुनने में बिलकुल असमर्थ होकर अपने काम में लगे हुए थे । ब्राह्मणों ने समझा कि वे गर्व के मारे ऐसा कर रहे हैं और उनपर पत्थर फेंक लिए, जिससे आपके शरीर से लोहू निकलने लगा । कुछ समय के बाद आपने अपनी समाधि दशा से बहिर्मुख होकर देखा तो समझ लिआ कि स्वयं कावेरी घाट के निकट खडे होकर ब्राह्मणों के काम में बाधा डाल रहे हैं । इससे आप बहुत घबराये और शीघ्र वहां से भाग गये ।

पत्थर का मार खाने से पाणनाथ के मन में तो किसी प्रकार का दुःख न हुआ ; परंतु भगवान को यह बहुत बूरा लगा। आपके श्रीमुखमंडल से भी लोहू निकलने लगा। यह देखकर सब लोग बहुत आश्चर्यमग्न एवं भयभीत हो गये, परंतु इसका रहस्य जानने में कोई भी समर्थ नहीं हुआ। इसके बीच में लक्ष्मीजी ने भगवान से प्रार्थना की कि "हमारे परमभक्त पाणनाथ को कितने दिन तक आप अपने से दूर रख कर दुःखी करते हैं? शीघ्र ही इसे अपने पास बुला लीजिए।" भगवान ने ऐसा ही करने का आश्वासन दिया।

उस दिन रात को श्रीरंगनाथ भगवान ने श्रीलोकसारंग मुनींद्र के स्वप्न में प्रकट होकर आपको आज्ञा दी कि, "कल प्रातःकाल होते ही तुम पाणनाथ को अपने कंधोंपर बिठाकर मंदिर लाओ।" भगवान की यह विशेष आज्ञा पाकर लोकसारंगमुनि भी अपने को धन्य मानते हुए बहुत प्रसन्न हो गये और प्रातःकाल होते ही शय्या से उठकर स्नान संध्यादि अपने नित्यकर्म समाप्त कर, सपरिवार, पाणनाथ को ढूंढकर आपके पास गये। फिर उन्होने आपको साष्टांग प्रणाम कर भगवान की दिव्याज्ञा सुनाते हुए मंदिर पधारने की प्रार्थना की। पाणनाथ ने तो अपने नीच जन्म का वर्णन करते हुए कहा कि, "अति नीच मैं किस तरह से परमपवित्र श्रीरंगक्षेत्र पर अपने पैरों से चलकर उसको कलंकित बनावूं।" लोकसारंगमुनि ने उत्तर दिया, "महात्मन्! आपका कहना उचित है। आप श्रीरंगदिव्यक्षेत्र को अपने पैरों से मत छूइए; परंतु मेरे कंधों पर विराज कर मंदिर पधारिए। भगवान की आज्ञा भी ऐसी ही है।" यह सुनकर पाणनाथ और चकित हो गये और बोले, "ब्राह्मणदेवता! यह कैसे हो सकता है? आपके नजदीक पहुंचने में भी अयोग्य यह जन आपके कंधों पर किस तरह बैठेगा? यह तो बिलकुल बनने की बात नहीं।"

कुछ देरतक ऐसा वादविवाद चला और अंत में भगवदाज्ञा का पालन करने की आवश्यकता समझकर पाणनाथ ने अपना पारतंत्र्य-स्वरूप जानकर लोकसारंगमुनींद्र की इच्छानुगुण चलने की अपनी संमति दी। तब मुनींद्र ने आपको, मुक्त पुरुष को परमपद पहुंचानेवाले आतिवाहिक की तरह, अपने कंधों पर विराजमान कर वैभवके साथ मंदिर ले गया और भगवान के सामने, आमोदस्तंभ के पास उतार दिया। पाणनाथ ने भगवान के खूब दर्शन किये और प्रेम व आनंद का परवश होकर अपने अनुभव को "अमलनादिपिरान्" इत्यादि दस गाथाओं से गाकर, भगवत्सांनिध्य छोडकर बाहर जाने में अपनी अनिच्छा प्रकट की। बस! उसी क्षण में आप सब की दृष्टि से अदृश्य हो गये और भगवान के दिव्यमंगलविग्रह में लीन हो गये। वहां पर उपस्थित सभी लोग इस अद्भुत दृश्य से आश्चर्यमग्न होकर पाणनाथसूरी की तथा भगवान के भक्तजनवात्सल्य की प्रशंसा करने लगे। कहते हैं कि श्रीपाणनाथ सूरी ने पचास वर्ष इस धरातल को सुशोभित किया।

श्रीपाणनाथसूरी का वैभव समाप्त हुआ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

श्री पाणसूरी की जय हो !

॥ अमलनादिपिरान् दिव्यप्रबंध ॥

अवतारिका—दिव्यसूरियों की गोष्ठी में नवमस्थान में विराजमान श्रीपाणसूरी (तिरुप्पाणाळ्वार) से अनुगृहीत दिव्यप्रबंध, दस गाथावाला, अमलनादिपिरान् नामक यह एक ही है। यह प्रबंध "अमलनादिपिरान्" शब्द से प्रारंभ होता है; इस लिए यही शब्द इसका नाम रखा गया। दिव्यप्रबंधों की श्रेणी में इसका स्थान, पहले हजार में नवां है। श्रीरंगनाथ भगवान के पादादि केशांत दिव्य अवयवों के दर्शन करते, आळ्वार ने इस प्रबंध के द्वारा, उनमें से कतिपय अंगों का वर्णन किया है। भक्त्यावेश प्रेरित अतिमधुर शब्दों से विरचित यह दिव्यप्रबंध परमभक्तों के नित्यानुसंधेय दिव्यप्रबंधों की श्रेणी में स्थान पाकर विराजता हैं। इसमें उक्तरीति से श्रीरंगनाथ भगवान का ही वर्णन किया जाता है; तथापि दो गाथाओं में प्रसंगवशात् श्रीवेंकटेश भगवान का भी नाम लिया गया है; और किसी दिव्यदेश का नाम नहीं लिया गया है।

हमारे पूर्वाचार्यों ने इस प्रबंध के ऊपर भी मणिप्रवाल भाषा में टीका लिखी है। श्रीवेदांतदेशिक स्वामीजी ने अकेले इस प्रबंध की टीका लिखी हैं, जो मुनिवाहनभोग कहलाती हैं। श्रीकांची प्रतिवादिभयंकर अण्णंगराचार्य स्वामी जी से विरचित द्राविडी टीका, संस्कृत गद्य व पद्य रूप में अनुवाद, ये भी छप गये हैं। इनके आधार पर ये सरल हिंदी अनुवाद व टीका लिखे जा रहे हैं। .... * * *

(गाथा.) अमलनादि पिरान् अडियार्क्कॆन्नै याट्पडुत्त
विमलन् * विण्णवर्कोन् विरैयार्पोऴिल् वेङ्गडवन् *
निमलन्निन्मलन् नीदि वानवन् नीण्मदिळरङ्गत्तम्मान् * तिरु
क्कमलपादम् वन्दु एन्कण्णिनुळ्ळनवोक्किन्नवे ॥ १ ॥

अत्यंत परिशुद्ध (अखिल हेय प्रत्यनीक), सकल जगत्कारण भूत, महोपकारक, परमनीच मुझको अपने सेवक परमभागवतों का दास बनाकर जाज्वल्यमान, नित्यसूरियों के नाथ, सुगंध पुष्पोद्यानों से परिवृत श्रीवेंकटाद्रि पर विराजमान, आश्रयण-दुष्करत्वरूप दोष से दूर, अर्थात् आश्रित पारतंत्र्य को प्रकाशित करनेवाले, आश्रितजनदोष-दर्शनरूप दोष से दूर, अर्थात् वात्सल्य नामक गुणवाले, शेषशेषिभावरूप संबंध न चूकनेवाले परमपद के निर्वाहक, ऊंचे कोटों से परिवृत श्री रंगधाम निवासी, हमारे स्वामी श्रीरंगनाथ भगवान के पादारविंद, स्वयमेव आकर मेरी आँखों में प्रविष्ट हो गये होंगे, ऐसा लगता है।

इस गाथा में आळ्वार यों कहते हैं कि भगवान के पादारविंद स्वयं आकर मेरे नेत्र में घुसकर मुझको अपना वश कर दिया। इसमें ये चार शब्द—अमलन्, विमलन्, निमलन् और निन्मलन् समानार्थक हैं। सबका अर्थ है दोषशून्य। दोष अनेक प्रकार के होते हैं; अतः एकैक शब्द से एकैक प्रकार के दोष का

अभाव बताया जाता है। स्वयं लोकसारंगमुनींद्र के कंधों पर बैठनेवाले आळ्वार यहां कह रहे हैं कि भगवान ने मुझको अपने भक्तों का किंकर बना दिया। इसका यह तात्पर्य है—आळ्वार के अभिप्राय से आप मुनींद्र के कंधों पर यों मान कर न चढ गये कि "यह मेरे लायक सवारी है; अर्थात् भगवान का भक्त होने से मुझे यह बडा गौरव मिला है;" परंतु भगवान की नित्यसेवा करनेवाले उन महात्मा की आज्ञा-पालन को अपना कर्तव्य मानकर आपने ऐसा किया। अर्थात् मुनिवाहन बनने पर भी आळ्वार की भक्त-परवशता न चूंक गयी। जैसे तुलसीमाला कभी कभी भगवान के मुकुट को अलंकृत करती है, कभी वक्ष को और कभी पादारविंद को। परंतु कोई ऐसा न कहेगा कि, "देखो! इस तुलसी का गर्व कितना हैं," भगवान के सिरपर चढकर बैठ गयी है।" कहने का यह तात्पर्य है कि तुलसी भगवान के सिरपर रहें अथवा चरणारविंद के नीचे लुठें, दोनों अवस्थाओं मे भगवान की ही माल है; मालिक की इच्छा के अनुगुण उपयुक्त होना माल का लक्षण है। इसी न्याय से श्रीपाणनाथ सूरी ने भी अपने को भागवत-परतंत्र मानकर लोकसारंगमुनींद्र की आज्ञा मानते हुए आपके कंधों पर चढ गये। इससे यह अर्थ बताया जाता है कि भागवतों की इच्छानुगुण चलना ही भागवत-शेषत्व हैं। .... (१)

(गाथा.) उवन्दवुळ्ळत्तनाय् उलहमळन्दण्डमुर * निवन्द नीण्मुडियन् अन्नु नेर्न्द निशाशरै *
कवर्न्द वेङ्कणै काहुत्तन् कडियार्पोळिलरङ्गत्तम्मान्*अरैचिवन्द वाडैयिन्मेल् शेन्नदामेन शिन्दनैये॥

(महाबलि से मांगकर तीन पग भूमि का दान प्राप्त करने पर) उस आनंद से बढकर, तीन लोकों को भी नापकर, अंडकटाह तक पहुंचते हुए उसमें लग जानेवाले बडे मुकुट से विभूषित त्रिविक्रमरूपी, एवं पूर्वकाल में अपने साथ लडने आनेवाले राक्षसों का संहार करने में समर्थ तीक्ष्ण बाणवाले श्रीरामचंद्ररूपी, सुगंधपुष्पोद्यान परिवृत श्रीरंगदिव्यधाम निवासी हमारे स्वामी के कटितट पर पहने हुए दिव्यपीताम्बर पर मेरी चिंता लग गयी है। .... (२)

(गाथा.) मन्दिपाय् वडवेङ्गडमामलै * वानवर्हळ् शन्दिशेय्य निन्नान् अरङ्गत्तरविनणैयान् *
अन्दिपोल् निरत्ताडैयुम् अदन्मेलयनैप्पडैत्तदोरेळिल् उन्दिमेलदन्नो अडियेनुळ्ळत्तिन्नुयिरे॥

(एक टांगे से दूसरे पर) कूदनेवाले वानरों से युक्त उत्तर दिशास्थ श्रीवेंकटाचल पर नित्यसूरियों से पुष्पसेवा लेते हुए विराजनेवाले, श्रीरंगदिव्यधाम में शेषशय्या पर शयन करनेवाले श्रीरंगनाथ भगवान का संध्याप्रकाश का सदृश रंगवाला दिव्यपीतांबर और उसके ऊपर ब्रह्मा का जन्मस्थान अद्वितीय सौंदर्यवाला नाभी कमल, इन दोनों के ऊपर मेरी अंतरात्मा सानंद लग गयी है।

पहिली गाथा में, तथा इस गाथा में श्रीवेंकटाद्रिनाथ भगवान का उल्लेख किया गया है। इसमें कोई कोई लोग प्रश्न करते है कि खुद श्रीरंगनाथ भगवान के सामने खडे होकर आपकी स्तुति करनेवाले तिरुप्पाणाळ्वार को श्रीवेंकटाद्रिनाथ का स्मरण कैसे आया। इसके बदले में यों प्रतिप्रश्न करना पडता है कि परमपदनाथ, त्रिविक्रम भगवान, श्रीरामचंद्र, श्रीकृष्ण इत्यादियों का स्मरण आळ्वार को कैसे हुआ; और अगर इन स्वरूपों के स्मरण में कोई दोष न हो तो श्रीवेंकटाद्रिनाथ के स्मरण में आपत्ति कौनसी है। कहने का

मतलब यह है—भगवान का वर्णन करने वाले आळ्वार लोग आपके एक ही स्वरूप का नहीं, वरन सभी, देशकालांतरस्थ परव्यूहविभवार्चादि स्वरूपों का वर्णन करते हैं। यही भगवान का पूर्ण अनुभव होगा। तथाच हाल में आळ्वार का यह अभिप्राय है कि श्रीरंगनाथ भगवान ही परमपद में विराजते हैं, त्रिविक्रमादि विभवावतारों के कर्ता हैं ; आपने ही अर्चावतार लेने की इच्छा से परमपद से निकल कर प्रथमत: श्रीवेंकटाद्रि नामक उन्नत पर्वतपर शिविर लगा दिया और वहां से सारी पृथ्वी की परीक्षा कर, श्रीरंगदिव्यधाम को अपने लिए लायक स्थान चुन लिआ। अत: श्रीवेंकटाद्रिनाथ का वर्णन वास्तव में श्रीरंगनाथ भगवान का ही वर्णन है। .... (३)

(गाथा.) शदुरमामदिळ् शूळिलङ्गै क्किरैवन् तलैप्पत्तुदिरवोट्टि * ओर्वेङ्गणैयुय्त्तवन् ओदवण्णन् *
मदुरमा वण्डु पाड मामयिलाडरङ्गत्तम्मान् * तिरुवयित्तुदरपन्दम् एन्नुळ्ळत्तुळ् निन्नुलाहिन्नदे॥

चौकोर ऊंचे कोट से परिवृत लंकापुरी के राजा रावण को (पहले दिन के युद्ध में) जीतकर, रणरंगसे बाहर भगा देकर, फिर (दूसरी वार लडने आये हुए उसके) दसों सिरों को नीचे गिराते हुए बेजोड एक तीक्ष्ण बाण का प्रयोग करनेवाले, समुद्र की तरह सुप्रसन्न दिव्यमंगलविग्रहवाले, सुमधुर रींकार करनेवाले भ्रमरों से और तदनुगुण नाचनेवाले मोरों से अलंकृत श्रीरंगदिव्यधाम में विराजमान, सर्वस्वामी श्रीरंगनाथ भगवान के पेट पर पहने हुए उदरबंधन नामक दिव्याभरण मेरे मन में सुदृढ प्रतिष्ठित है। .... (४)

(गाथा.) पारमाय पळविनै पत्तरुत्तु * एन्नैत्तन् वारमाक्कि वैत्तान् वैत्तदन्नि येन्नुळ् पुहुन्दान् *
कोरमादवम् शेयुदनन्कोलरियेन् अरङ्गत्तम्मान् * तिरुवार मार्वदन्नो अडियेनै याट्कोण्डदे॥

ढोने में अशक्य बोझे के रूपमें रहनेवाले अनादिपापों के संबंध को छुडाकर, (उससे परिशुद्ध होनेवाले) मुझको (भगवान ने) अपना प्रेमी बना दिया ; बनाने के बाद आपने मेरे हृदय में प्रवेश भी कर दिया। मैं यह नहीं जान सकता कि मैं ने (ऐसा महाभाग्य पाने लायक) कौन से कठिन तप का आचरण किया। श्रीरंगनाथ भगवान का, लक्ष्मीजी से और मुक्ताहार से विभूषित दिव्य वक्ष ने ही इस दासको अपना किंकर बना दिया।

इस गाथा में आळ्वार यों कहते हैं कि, पुरुषकारभूत लक्ष्मीजी से एवं सर्वरक्षकत्व के सूचक मुक्ताहार से विभूषित, श्रीरंगनाथ भगवान के दिव्य वक्षस्थल के दर्शन कर उस सौंदर्य का परवश होकर मैं आपका दास बन गया। ऐसे महाभाग्य का पात्र होने के कारणतया मैं ने कब जन्मजन्मांतरों में कौनसी उग्र तपस्या की, इसका पता नहीं लगता। मूल द्राविडी गाथा के तीसरे पादका यह भी अर्थ हो सकता है कि, मुझको पाने के लिए, न जाने भगवान ने कौनसी तपस्या की। "स महात्मा सुदुर्लभः" कहनेवाले भगवान को भक्त से मिलाप होना, आपसे अनुष्ठित कठोर तपस्या का फल कहला जा सकता है। भगवान की तपस्या क्या चीज़ है? पापियों का उद्धार करने का आपका शुभ संकल्प और तदनुगुण सृष्टि अवतार इत्यादि क्रियाकलाप ही आपकी तपस्या कहलाते हैं। तथा च यह तात्पर्य निकला कि भगवान ने बहुत प्रयत्न से मेरे पाप मिटा कर, मेरे मन में घुसकर, अपने विषयक प्रेम को पैदा कर, अंत में मुझको

अपने दासत्वेन पाया। यही अर्थ विशेषतः आदरणीय है; क्यों कि आळ्वारों के अभिप्राय से भगवान की विशेष कृपा ही उनके उद्धार का हेतु है, नतु इस जन्म में, अथवा पूर्वजन्म में उनसे अनुष्ठित किसी प्रकार की तपस्या। .... (५)

(गाथा.) तुण्डवेण् पिरैयन् तुयर्तीर्त्तवन् * अञ्जिरैय वण्डुवाळ् पोळिल् शूळ् अरङ्गनगर्मेयवप्पन् *
अण्डरण्ड बहिरण्डत्तु ओरु मानिलमेळुमाल्वरै * मुत्तुमुण्ड कण्डम् कण्डीरडियेनै युय्यक्कोण्डदे॥

शुभ्र चंद्रकलाधारक शिव का (भिक्षाटनरूप) पातक मिटा देनेवाले, सुंदर पंखवाले भ्रमरों के निवास स्थान उपवनों से परिवृत श्रीरंगदिव्यनगर में विराजमान सर्वस्वामी श्रीरंगनाथ भगवान के अंडांतर्वर्ति समस्त देवादि पदार्थ, अंड, अंडावरण, असदृश पृथ्वी, सात कुलपर्वत, और अनुक्त अन्य सभी पदार्थ, इन सब को निगलनेवाले कंठने ही मुझको उज्जीवित कियां।

श्रीरंगनाथ भगवान के कंठ के दर्शन से आळ्वार आपके सर्वेश्वरत्व का ज्ञान पाकर, आपका दास बन कर कृतार्थ हो गये। .... (६)

(गाथा.) कैयिनार् शुरिशङ्गनलालियर् *
नीळ्वरैपोल्मेय्यिनार् तुळबविरैयार् कमळ् नीण्मुडि येम्मैयनार् *
अणियरङ्गनार् अरविनणैमिशैमेय मायनार् *
शेय्यवायैयो एन्नैचिन्दै कवर्न्ददुवे॥ ७॥

हाथ में दिव्य पांचजन्य व ज्वालापरिवृत सुदर्शन चक्र का धारण करनेवाले, बडे पहाड के समान (गंभीर) दिव्यमंगलविग्रहवाले, तुलसीगंध से युक्त, सुगंधि, श्रेष्ठ मुकुटवाले, हमारे स्वामी, रमणीय श्रीरंगदिव्यधाम में विराजमान, मनोहर शेषशय्यापर शयन करनेवाले, अत्याश्चर्यमय दिव्यचेष्टित, श्रीरंगनाथ भगवान के लाल मुँहने ही, अहो! मेरे मन को चुर लिया है। .... (७)

(गाथा.) परियनाहि वन्द अवुणनुडल्कीण्ड * अमरर्करिय वादिप्पिरान् अरङ्गत्तमलन्मुहत्तु *
करियवाहि प्पुडै परन्दु मिळिर्न्दु शेव्वरियोडि*नीण्डवप्पेरियवाय कण्गळ् एन्नैप्पेदमै शेयूदनवे॥

बहुत बडा रूप लेकर आनेवाले हिरण्यासुर का शरीर चीर डालनेवाले, देवों के भी दुर्लभ, जगत्कारण भूत, हमारे महोपकारक, श्रीरंगदिव्यधाम निवासी, परमपावन भगवान के श्रीमुखमंडल में विराजमान, काले विशाल रक्तरेखालंकृत उज्वल दीर्घ व श्रेष्ठ उन नेत्रों ने मुझको पागल बना दिया।

भगवान के सर्वलक्षणसंपन्न सुंदर नेत्रों के दर्शन करने से परवशचित्त होकर आळ्वार, उनपर प्रेमसे पागल-जैसे बन गये हैं। .... (८)

(गाथा.) आलमामरत्तिनिलैमेल् ओरु पालहनाय् * आलमेळुमुण्डान् अरङ्गत्तरविनणैयान् *
कोलमा मणियारमुम् मुत्तुत्तामम्मुम् मुडिविल्लदोरेळिल् * नीलमेनि यैयो निरैकोण्डदेन्नेञ्जिनैये॥

विशाल वटवृक्षके एक छोटे पत्तेपर छोटा बालक होकर, सातों लोक अपने पेट में रखकर पालनेवाले और श्रीरंग दिव्यधाम में शेषशय्यापर शयन करनेवाले श्रीरंगनाथ भगवान के सुंदर व श्रेष्ठ रत्नहार, मोती की माला इत्यादि अनेक दिव्य भूषणों से अलंकृत, अनुपम सौंदर्यवाले, श्यामल दिव्यमंगलविग्रह ने, अहो! मेरे मन के धैर्य का अपहरण कर लिया!

भगवान के पादादि प्रत्येक अवयवों का अनुभव करने पर अब आळ्वार आपके समग्र दिव्यमंगलविग्रह का अनुभव करते यों कहते हैं कि भगवान के इस अत्यद्भुत विग्रह के दर्शन से मैं परवशचित्त बनकर अपना धैर्य खोकर उसीमें लीनमानस हो गया हूं। .... (९)

(गाथा.) कोण्डल्वण्णनै कोवलनाय् वेण्णेयुण्ड वायन् * एन्नुळ्ळम् कवर्न्दानै *
अण्डर्कोनणियरङ्गन् एन्नमुदिनै कण्डकण्गळ् * मत्तोन्निनैक्काणावे ॥ १० ॥

मेघश्याम, गोपालबालकतया अवतार लेकर मक्खन खानेवाले, मेरे हृदय के चोर, नित्यसूरिनाथ, भूमंडल का अलंकारभूत श्रीरंगदिव्यधामनिवासी और मेरे परमभोग्य अमृतस्वरूपी श्रीरंगनाथ भगवान के दर्शन करनेवाले मेरे नयन दूसरी किसी वस्तु देखने नहीं चाहते।

आळ्वार का यह कहना है कि श्रीरंगनाथ भगवान के दर्शन करने के बाद, इनको छोडकर मैं परमपदनाथ के भी दर्शन नहीं करूंगा। आपकी यह उक्ति बिलकुल सत्य निकली; क्यों कि आप दूसरे दिव्यसूरियों की तरह शरीर छोडकर परमपद नहीं पधारे; किंतु श्रीरंगनाथ भगवान के दिव्यमंगलविग्रह में ही अंतर्हित हो गये। श्रीरामचंद्रजी ने अपने अवतार समाप्ति के समय में अयोध्यानिवासी चेतनाचेतनारूपी समस्त पदार्थों को भी अपने साथ परमपद ले गया; परंतु एकमात्र हनुमानजी आपके साथ न चले। उन्होने कहा—स्नेहो मे परमो राजन् त्वयि नित्यं प्रतिष्ठितः। भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छति॥ (अर्थात्, हे श्रीरामचंद्र राजन्! हे महावीर! आपके इस स्वरूप पर मेरा इतना प्रेम एवं इतनी भक्ति जम गये हैं, कि इस रूप का चिंतन छोडकर मैं दूसरी चीज की चिंता तक न करूंगा। इस पद्य में, तथा इस गाथा में दूसरी चीज शब्द का अर्थ परमपद अथवा परमपदनाथ ही है। हनुमान जी एवं प्रकृत आळ्वार परमपद का नामतक लेने नहीं चाहते; अत एव उसको दूसरी चीज कह डालते हैं। आळ्वार की तरह हनुमान जी भी परमपद नहीं गये; परंतु इतना विशेष है कि वे श्रीरामचंद्र जी का ही ध्यान करते और आपके कथामृत का ही पान करते हुए आज भी इस भूतलपर विराजमान हैं। समझना चाहिए कि भक्ति का यह एक विलक्षण प्रकार है।

भगवान में ही लीन-मनस्क होने के कारण आळ्वार ने अपने इस दिव्यप्रबंध में अपने नामांकन करने का एवं फलश्रुति गाने का अवकाश नहीं पाया। यह फल तो बताये विना भी जान पडेगा कि इसका पाठ करने वाले भक्तलोग आळ्वार की तरह भगवान में ही लीनमनस्क बन जायंगे। .... (१०)

श्री पाणनाथसूरी से अनुगृहीत अमलनादिपिरान प्रबंध समाप्त हुआ॥
तिरुप्पाणाळ्वार तिरुवडिगळे शरणम्॥

॥ श्रीरस्तु ॥

श्रीपराङ्कुश परकाल यतिवर वरवरमुनिभ्यो नमः

श्रीमधुरकविसूरये नमः

द्राविडवेदनामक चार हजार दिव्यप्रबंध के पहले हजार का अंतिम (दसवां) प्रबंध

श्रीमधुरकविसूरी से अनुगृहीत

कण्णिनुण्शिरुत्ताम्बु नामक श्रीशठकोपस्तुति दिव्यप्रबंध

(हिंदी अनुवाद व टीका सहित)

॥ तनियन् अथवा मुखपद्य ॥

अविदितविषयान्तरश्शठारेरुपनिषदामुपगानमात्रभोगः ।
अपि च गुणवशात्तदेकशेषी मधुरकविर्हृदये ममाविरस्तु ॥

श्रीशठकोपसूरी को छोडकर दूसरा विषय नहीं जाननेवाले, आपकी दिव्य श्रीसूक्ति, द्रमिडोपनिषद पुकारे जानेवाले दिव्यप्रबंधों का गान करने में ही निरत, और आपके गुणों के कारण से भी उन शठकोपसूरी को ही अपने स्वामी माननेवाले मधुरकवि सूरी मेरे मन में प्रकट हो जायँ ।

कोई भी मानव दो कारणों से दूसरे का शेष अथवा दास होता है । एक है वस्तुका स्वरूप अथवा स्वभाव । तथाहि—माता पिता आचार्य इत्यादियों के, हम इस लिए शेष होते हैं कि यह अपना स्वरूप, यानी कर्तव्य है, अर्थात् उनका शेष होकर ही हम जन्म लेते हैं । इस शेषत्व का नाश होने से हमारा स्वरूप ही नष्ठ हो जाता है । इसको स्वरूपप्रयुक्त शेषत्व कहते हैं । एवं दूसरे किसी के उत्तमगुण देखकर, उनसे आकृष्ट होकर जो हम उस व्यक्ति का शेष बनते हैं, यह गुणकृत-शेषत्व कहलाता हैं । इसमें यह भी संभव है कि कभी कभी हम किसीको गुणवान मानकर उसका शेष बनने के बाद, क्रमशः उसमें गुणाभाव अथवा दोष देख कर उसका दास्य छोड दें । अर्थात् इसको हम अपनी इच्छा के अनुगुण रख भी सकते हैं अथवा छोड भी सकते हैं; यह दृढ नहीं होता । स्वरूपप्रयुक्त दास्य तो इससे विरुद्ध, सुदृढ रहता हैं; परंतु वह कदाचित् दुःखप्रद हो सकता है । तथा हि—जब अपने शेषी में गुणाभाव अथवा दोष प्रतीत हो, तब उसका शेष रहना भी दुःखद होता है, परंतु इच्छा करने पर भी वह छोडा नहीं जा सकता है । हमारे आचार्यों का कहना है कि हमें भगवच्छेषत्व को स्वरूप प्रयुक्त ही मानना चाहिए, जब कि वह नित्य बना रहेगा ; तो भी भगवान कल्याणगुणों से परिपूर्ण रहते हैं जिनका प्रभाव हम पर पडेगा ही । अतः गुणकृत-शेषत्व भी अपने में रहेगा । इसका फल यह है कि

उक्त शेषत्व हमें खूब आनंद-दायक होता है। गुणरहित मालिक की सेवा दुःखद होती है। अब इस पद्य में यों कहा जाता है कि श्रीमधुरकविसूरी में श्री शठकोपसूरी के प्रति इन दोनों प्रकार के शेषत्व पूर्ण रहे। अतः वह नित्य एवं आनंददायक था।

इस पद्य के आदि में, अविदित विषयान्तरः शब्द का अर्थ है अविदितभगवद्विषयः। अर्थात् इस शब्द का यह अर्थ नहीं है कि श्री मधुरकविसूरी क्षुद्र सांसारिकविषयों से पराङ्मुख थे; किं तु यह अर्थ है कि आप विषयांतर की तरह भगवान की भी उपेक्षा कर एक मात्र श्री शठकोपसूरी में अपनी पूरी भक्ति रखते थे। भगवान् और आचार्य, इन दो व्यक्तियों में हमारी भक्ति को बांट देने से वह कमजोर होकर अपना कार्य करने में अशक्त हो जाती है। अतः एक व्यक्ति में भक्ति करना आवश्यक है। भगवान तो अदृश्य और सर्वथा स्वतंत्र होने से हमें मोक्ष भी दे सकते हैं, अथवा और बहुत समयतक संसार में रखते हुए पुनः पुनः और भी जन्म दे सकते हैं। मगर आचार्य हमारे प्रत्यक्ष में विराजमान हैं, ज्ञान का उपदेश करते हैं और असीम करुणानिधि होने के कारण अपने पादाश्रित किसी व्यक्ति को फिर दुःखद संसार में रखने न चाहते हुवे उसको परमपद भेजने की ही राह देखते हैं। अतः आचार्य में भक्ति रखना ही विशेषतः कल्याणकारक है। परंतु उसे "एकभक्ति" होनी चाहिए। अत्र यही बताया जा रहा है कि मधुरकवि सूरी की आचार्यभक्ति भगवान को भी अपना लक्ष्य न बनाकर, केवल शठकोपसूरी में ही प्रतिष्ठित हो गयी थी।

वेरोन्नुम् नानरियेन् वेदम् तमिळ् शेय्द * मारन् शडकोपन् वण्कुरुहूरेरु,
एङ्गळ् वाळ्वामेन्नेत्तुम् मदुरकवियारेम्मै याळ्वारवरेयरण् ॥

"श्री शठकोपमुनींद्र के सिवा दूसरी किसी वस्तु को मैं नहीं जानता; वेदार्थों का द्राविडी भाषा में विवरण करनेवाले, "मारन्" शुभनाम से विभूषित, सुंदर कुरुकापुरी के नाथ, श्रीशठकोपमुनींद्र हमारे उज्जीवन-कारक हैं" ऐसी स्तुति करनेवाले मधुरकवि आळ्वार ही हमारे स्वामी हैं; आप ही हमारे रक्षक हैं।

श्री शठकोपसूरी का एक शुभनाम है मारन्—यानी विलक्षण। अवतार लेते ही लौकिक शिशुओं की तरह आपके, खाना पीना रोना मलमूत्र छोडना इत्यादि कार्य से विमुख रहने के कारण, आपका यह नाम रखा गया॥

तनियन का विवरण समाप्त हुआ॥

॥ श्री मधुरकविसूरी का वैभव ॥

श्री शठकोपसूरी के अवतार से धन्य कुरुकापुरी के समीप में तिरुक्कोळूरु नामक एक दिव्यदेश में मेष (चैत्र) मास के चित्रानक्षत्र के दिन पुरश्चूड ब्राह्मण कुल में श्री मधुरकविसूरी का अवतार हुआ। आप यथासमय चौलोपनयनादि समस्त संस्कारों से संस्कृत होकर वेदवेदांगों में अच्छी शिक्षा प्राप्त कर बडे

विद्वान, कवि एवं गानविद्याप्रवीण बन गये। अतिमधुर कविता करने के कारण आपको "मधुरकवि" बिरुद मिला, जो क्रमशः प्राचीन नाम भुलाकर स्वयं आपका शुभनाम माना गया। फिर आप तीर्थयात्रा करने के उद्देश्य से देश छोडकर तत्र तत्र घूमते हुए अयोध्याजी पहुंच गये और श्रीरामचंद्र भगवान का भजन करते हुए वहां पर कुछ समय तक विराजते रहे।

एक दिन रात्रि में आपने दक्षिणदिशा की ओर जब देखा तब वहां दूर में एक बडा आकर्षक अत्यद्भुत प्रकाश दीख पडा। बहुत विचार करने पर भी आपने उसका तत्व समझ नहीं सका। फिर दूसरे दिन एवं तीसरे दिन भी जब वह तेज ऐसे ही देखने में आया, तब आप उसकी जाँच कर लेने का निश्चय कर वहां से प्रस्थित हो गये और उसीको लक्ष्य करते हुए क्रमशः अनेक देशों को पारकर कुरुकापुरी पहुंच गये। आपके वहां आने पर वह प्रकाश भी अदृश्य हो गया। इससे आपका यह निश्चय हुआ कि वह तेज कुरुकापुरी में ही रहनेवाला है। फिर आपने इधर उधर ढूंढ कर दिव्यतिंत्रिणीवृक्ष के मूल में प्रतिमावत् विराजमान समाधिस्थ श्री शठकोपसूरी के दर्शन पाये। तब आपने विचार किया कि, "ओह! यह कैसा अप्राकृत-तेजोमय दिव्यमंगलविग्रह है! यही मुझको उतनी दूर से यहां पर बुलाकार लाया है। अतः मैं इन कृपामय महात्मा का सेवक होकर धन्य बन जाता हूं।" यों सोचकर आपने श्री शठकोपसूरी को साष्टांग प्रणामकर उनसे अपने विचार की विनती की। इन दोनों दिव्यपुरुषों को एकत्र मिला देने चाहनेवाले भगवान के विलक्षण संकल्प के कारण, श्री शठकोप स्वामीजी ने भी, जो कि अवतार समय से लेकर उस समय तक किसीसे वार्तालाप किये विना पत्थर की मूर्ति की तरह समाधिस्थ विराजमान रहे, मधुरकविसूरी की इस प्रार्थना को सानंद स्वीकार किया और उनको सविधि अपना शिष्य बनाया, और तत्वहितपुरुषार्थों का ठीक उपदेश दिया।

इस प्रकार श्री शठकोपसूरी के विलक्षण अनुग्रह के पात्र होकर, और आपसे प्रणीत, चतुर्वेद सारभूत चार दिव्यप्रबंधों का भी उपदेश पाकर, श्रीमधुरकविसूरी जी सदा उनही दिव्यप्रबंधों का गान करते हुए, गुरुसेवा-निरत होकर सानंद विराजामान थे।

साक्षात् श्रीरामचंद्रजी की भी परवाह न करते हुए, श्रीरामभक्त भरत जी के ही भक्त रहनेवाले शत्रुघ्न जी की तरह श्रीमधुरकविसूरी भी अपने गुरु श्रीशठकोपमुनींद्र को भगवान से भी अधिक मानकर आपके अनन्य भक्त रहे; और अपनी यह निष्ठा प्रकाशित करते हुए, आपने कण्णिनुण्शिरुत्ताम्बु नामक, ग्यारह गाथावाले एक प्रबंध की रचना की।

कुछ समय के बाद श्रीशठकोपसूरी परमपद पधार गये। गुरुवियोग से मधुरकविसूरी बहुत दुखी हो गये, परंतु धीरे धीरे धीरज पाकर आपकी श्रीसूक्तियों का प्रचार करने के काम में लग गये। यथा समय, आपने भी इस संसार से विदा होकर आचार्यपादारविंदों को प्राप्त किया॥

मधुरकविसूरीका वैभव समाप्त हुआ॥

श्रीमधुरकविसूरी की जय हो!

॥ कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु नामक श्रीशठकोपस्तुति प्रबंध ॥

अवतारिका—द्राविडवेद विरुदविभूषित चार हजार दिव्यप्रबंध में पहले हजार का अन्तिम प्रबंध यह कण्णिनुण्शिरुत्ताम्बु है। श्रीशठकोपसूरी से अनुगृहीत सहस्रगीति का पाठ करने के समय, आदि में और अंत में इस प्रबंध का पाठ करना शिष्टाचारसिद्ध है। एवं भगवत्संनिधि में प्रतिदिन पाठ किये जानेवाले "नित्यानुसंधान" में भी इसका समावेश है। कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु शब्द से इस प्रबंध का प्रारंभ किया जाता है; अतः यही इसका शुभनाम रखा गया। यह द्राविडव्याकरण का अनुमत है।

एक समय चार हजार दिव्यप्रबंध सभी लुप्त हो गये थे; तब श्रीनाथमुनि स्वामीजी ने अकस्मात् सहस्रगीति की दस गाथाएं सुनकर यह भी अर्थ जान लिया कि ऐसी गाथाएं दस नहीं, वरन् एक हजार हैं। तब आपने उनकी खोज में लग कर, श्री कुरुकापुरी पधार कर, (अर्चारूपी) श्रीशठकोप सूरी के दर्शन किये और किसी महात्मा से आपकी स्तुति इस कण्णिनुण्शिरुत्ताम्बु दिव्यप्रबंध का उपदेश पाया। फिर आपने उक्त महात्मा के कथनानुसार समाधि लगाकर, उसमें इस दिव्यप्रबंध का, बारह हजार बार जप किया। इससे प्रसन्न होकर शठकोपसूरी ने उस समाधि में ही आपको अपने दर्शन दिये और सभी दिव्यप्रबंधों का उपदेश दिया। इस प्रकार दिव्यप्रबंधों के पुनरुद्धार का कारण होना, यह कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु का एक असाधारण वैभव है।

चार हजार के अंतर्गत दूसरे सभी दिव्यप्रबंधों में नियमेन भगवान की ही स्तुति की गयी है। परंतु प्रकृत कण्णिनुण्शिरुत्ताम्बु में भगवान की स्तुति नहीं है; उसकी जगह शठकोपसूरी की ही स्तुति की जा रही है। अतः किसीके मन में यह शंका होगी कि भगवान की स्तुति-पर उन दिव्यप्रबंधों के बीच में इसका समावेश कैसे किया जा सकता है। इसका एक समाधान यह है कि उक्त प्रकार से सभी दिव्य प्रबंधों के पुनरुद्धार का कारण होने से, उपकार-स्मृति के लिए उनके बीच में इसका भी समावेश किया गया। मुख्य समाधान तो यह है कि श्रीशठकोपसूरी की स्तुति होकर भी यह प्रबंध भगवान को प्रसन्न कराने में दूसरे प्रबंधों से बढकर विशेष समर्थ है। अतः उनमें गिना जाना उचित व आवश्यक हुआ। तथाहि—इस प्रबंध में भगवान के अनन्य भक्त के नाते ही श्रीशठकोपसूरी की स्तुति की जाती है, नतु परब्रह्मत्व में भगवान से स्पर्धा करनेवाले दूसरे देवता के रूप में। अतः एक प्रकार से यह भगवान की ही स्तुति ठहरी। अत एव भगवान इस स्तुति से विशेषतया प्रसन्न होते हैं। अष्टविध भक्ति का वर्णन करते हुए, भगवान पहिले "मद्भक्तजनवात्सल्यम्" कहते हैं। वस्तुतस्तु इस अर्थ का विशेष वर्णन करने की आवश्यकता ही नहीं रहती; क्यों कि "ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्" कहते हुए ज्ञानी को अपने से भी श्रेष्ठ माननेवाले भगवान, अपनी स्तुति से भी बढकर, अपने परमभक्त ज्ञानियों की स्तुति करनेवालों से प्रसन्न होते हैं। अत एव दूसरे आळ्वारों के प्रबंधों में भी तत्र तत्र यह भागवत-शेषत्व भी उपवर्णित है।

श्रीमदष्टाक्षर-महामंत्र का यह अर्थ प्राय: श्री वैष्णवों को विदित है कि यह जीवात्मा भगवान का शेषभूत है। मगर इससे भी बढकर एक महत्वपूर्ण अर्थ उसमें नमःशब्द को बताया जाता है। वह है भगवद्भक्त - शेषत्व। समान्यत: नम: शब्द का अर्थ है अहंकार ममकारों का सर्वात्मना नाश; इसकी पराकाष्ठा ही भागवत - शेषत्व है। अत: मंत्रार्थ का विवरण करनेवाले दिव्यप्रबंधों के बीच में भागवत - शेषत्वरूप उक्त नमश्शब्द का विवरण करनेवाले प्रकृत कण्णिनुण्शिरुत्ताम्बु प्रबंध का समावेश होना अत्यंत उचित एवं आवश्यक होगा।

श्रीवरवरमुनि स्वामीजी अपने से विरचित उपदेशरत्नमाला में इस प्रबंध के विषय में यों अनुग्रह करते हैं कि, "हमारे पूर्वाचार्यों ने मधुरकवि सूरी से अनुगृहीत इस दिव्यप्रबंध को श्रीमंत्रस्थ नमश्शब्दवत् भागवत-शेषत्व का प्रतिपादक जानकर, दिव्यप्रबंधों की श्रेणी में मिला दिया॥" * * *

(गाथा.) कण्णिनुण्शिरुत्ताम्बिनाल् कट्टुण्णप्पण्णिय पेरुमायन् * एन्नप्पनिल् *
नण्णि त्तेन्कुरुहूर्नम्बि येन्नक्काल् * अण्णिक्कुममुदूरु मेन्नावुक्के ॥ १ ॥

गांठवाली सूक्ष्म छोटी रस्सी से (यशोदाजी से) अपने को स्वयं बंधित करानेवाले अत्याश्चर्यमय दिव्यशक्तिवाले मेरे स्वामी श्री कृष्ण को छोडकर, श्रीशठकोपमुनींद्र का आश्रय लेकर, ऐसे आपका नाम लेनेपर कि, "आप दक्षिणदिशास्थ कुरुकापुरी के निर्वाहक हैं," यही परमभोग्य रहता है और मेरी ही जीभ में अमृत बहाता है।

इस गाथा में मधुरकवि आळ्वार यों कहते हैं कि मुझे नवनीतचोर भगवान के नाम की अपेक्षा श्रीकुरुकापुरी के नाथ हमारे गुरुजी श्रीशठकोपस्वामीजी का ही नाम अधिक प्यार लगता है। इसमें नवनीतचौर्य-वृत्तांत का उल्लेख करने में एक मतलब रहता है। तथाहि—श्रीशठकोप मुनींद्र, सहस्रगीति के प्रारंभ में (१-३-१), भगवान का विस्तृत अनुभव करने उतरते ही, इस नवनीतचौर्य एवं तत्प्रयुक्त दामबंधन वृत्तांत का अनुसंधान करने का प्रयत्न कर, भगवान की इस कल्पनातीत सौलभ्य के चिंतन से परवशचित्त होकर मूर्छित हो गये और छे मास तक ऐसे ही रह गये। अब श्री मधुरकविसूरी कहते हैं कि, भगवान की इस विलक्षण लीला की चिंता से मेरे गुरुजी शठकोपमुनींद्र तो व्यामुग्ध हुए; मगर मुझे इसमें कोई रस प्रतीत न होता। गुरुजी का पवित्र नाम ही मुझे विशेष प्यारा है, और उसका उच्चारण करते ही मेरी जीभ में मानों कि मधुका प्रवाह बहने लगता है। यहां पर मेरी ही जीभ में कहकर एव-कार लगाने का यह तात्पर्य है कि, आचार्यनिष्ठानामक इस विशेष धर्म से अपरिचित मानव को यह रस बेशक अविदित हो सकता है; मगर रसज्ञ मुझे यही अच्छा लगता है। इस गाथा में भगवान को "रस्सी से बंधित किये जानेवाले" कहने की जगह "रस्सी से अपने को स्वयं बंधित करानेवाले" कहने का यह तात्पर्य है—"अग्राह्य:" इत्यादि प्रमाण वचनों के अनुसार, कोई भी मानव अपनी निजी शक्ति से भगवान का ग्रहण बंधन इत्यादि नहीं कर सकता। परंतु आप कभी कभी अपने परमभक्तों के इतने पराधीन हो जाते हैं कि वे आपको बांध भी सकते हैं और मार भी सकते हैं। अत एव श्री कूरेशस्वामीजी ने अतिमानुषस्तव में (४०) गाया कि "यशोदा प्रेम्णाऽथ दामपरिणामजुषा बबंध।" अतः यहां पर यों कहा जाता है कि भगवान ने स्वयं अपनी

मरजी से यशोदाजी के हाथ से बंधन पाया। रस्सी के जो विशेषण दिये गये हैं—गांठवाली, और छोटी, ये भी अर्थपूर्ण हैं। तथा हि— श्रीकृष्ण को यह अर्थ मालूम हुआ है कि मक्खनचोरी करते करते माताजी से पकडा जानेपर रस्सी से बांधवाना पडेगा। अतः चोरी करने से पहले ही आप घर में रखी हुई सब रस्सी को ढूंढ ढूंढ कर उसको टुकडी टुकडी कर काट रखते हैं। फिर आप निश्चित होकर मक्खन खाने लग जाते हैं। इतने में माता जी आकर देखती हैं और आपको पकड कर रस्सी से बांध देने की चेष्टा करती हैं। परंतु हाथ में रस्सी उठाने पर मालूम पडता है कि वह चूर चूर है। फिर श्रीकृष्ण को एक हाथ मे पकडकर वे दूसरे हाथ से कथंचित् उन रस्सी के टुकडियों को एक दूसरे से गांठ बांधकर मिला देती हैं और लंबी करती हैं। जब वह पर्याप्त लंबी हुई तब वे उससे श्रीकृष्ण को बांधने की चेष्टा करती हैं; परंतु रस्सी कम पडती है। तब वे और चारेक टुकडियों को मिलाकर फिर देखती हैं, तो पूर्ववत् वह भी कम ही पडती है। इस तरह से बहुत समयतक प्रयत्न करने पर भी जब वह रस्सी श्रीकृष्ण को बांधने में पर्याप्त न होती, तब वे थककर अपने प्रयत्न से निवृत्त होने चाहती हैं। माताजी की इस दयनीय दशा देखकर तुरंत श्रीकृष्ण अपने शरीर को संकुचाते हैं, जिससे वे संतुष्ट होकर आपको बांध देती हैं। अत एव आप महामाय कहलाते हैं। तथाच, भक्तजन-हृदय को द्रवित करने में समर्थ ऐसी विचित्र लीलाओं के खिलाडी होने पर भी भगवान मेरे मन को अपना परवश बनाने में असमर्थ हैं, क्यों कि श्रीशठकोपमुनींद्र ने ही इसको अपनाया किया। .... (१)

(गाथा.) नाविनाल् नविऱ्‌ु इन्बमेय्‌दिनेन् * मेविनेन् अवन्पोन्नडि मेय्‌म्मैये *
तेवु मत्तरियेन् कुरुहूर्नम्बि * पाविनिन्निशै पाडित्तिरिवने ॥ २ ॥

मैं ने अपनी जीभ से (श्रीशठकोपसूरी की) स्तुति कर आनंद पाया; आपके सुंदर श्रीपादों का आश्रय भी लिया; यह सत्य है। और आपको छोडकर दूसरे इष्ट देव को मैं नहीं जानता। अब मैं मधुर स्वर से श्रीकुरुकापुरी के स्वामी आपसे अनुगृहीत दिव्यप्रबंधों का गान करता हुआ पर्यटन करूंगा।

इस गाथा से आळ्वार, शरीर वाक् मन रूपी अपने तीनों करणों को अपने गुरुजी के विषय में ही आसक्त बता रहे हैं। .... (२)

(गाथा.) तिरितन्दाहिलुम् तेवपिरानुडै * करियकोलत्तिरुवुरु काण्बन्नान् *
पेरियवण्कुरुहूर्नहर्नम्बिक्कु आळरियनाय् * अडियेन् पेत्त नन्मैये ॥ ३ ॥

(पूर्वोक्त प्रकार से भगवद्विषय से अपना संबंध तोडकर) फिरने पर भी मैं नित्यसूरियों के नाथ भगवान् के श्यामसुंदर व लक्ष्मीविशिष्ट दिव्यरूप के दर्शन करूंगा। महोदार कुरुकापुराधीश आळ्वार का अनन्यार्हशेष होकर मैं ने यही पुरुषार्थ पाया।

पूर्वगाथा में आळ्वार ने बताया कि मैं भगवान से संबंध रखना नहीं चाहता; किंतु गुरूजी को ही अपने सर्वस्व मानता हूं। इससे किसी के मन में यह शंका होती होगी कि भगवान को नहीं माननेवाले आप

शायद नास्तिक होंगे। इसका समाधान यह हैं कि आप नास्तिक्यबुद्धि से भगवान से द्वेष अथवा उपेक्षा करनेवाले नहीं है; परंतु असीम भगवद्भक्त, प्रत्यक्ष देवतारूपी श्रीशठकोपमुनींद्र के अनन्यभक्त होने के कारण आपको छोडकर भगवान में चित्त नहीं लगा सकते है। अब इस गाथा में आप यों कहते हैं कि ऐसा होने पर भी, मैं भगवान के दर्शन सेवन इत्यादियों को सर्वथा छोड नहीं सकता; कारण कि श्रीशठकोपसूरी के अनन्य भक्त होने से उनके उपास्य देव भगवान की उपासना करना भी मुझे अनिवार्य बना। तथाच, यह तात्पर्य हुआ—जैसे भगवद्भक्ति की सीमाभूमि भागवतभक्ति है, इसी तरह भागवत-भक्ति की सीमाभूमि भगवद्भक्ति होती है। कहनेका मतलब यह है कि जैसे भगवान में भक्ति करनेवालों को आपके प्रिय होने के कारण भागवतों में भक्ति करना भी आवश्यक होता है, इसी तरह से भागवतों में भक्ति करनेवाले को, उनके प्रिय भगवान में भक्ति करना अनिवार्य बन जाता है। अपि च, शिष्य का यह कर्तव्य है कि अपने गुरू की आज्ञा को मानना। गुरू का उपदेश तो निर्विवाद, यही है कि भगवान की सेवा करो। अतः शिष्य को भगवत्सेवा करना आवश्यक होता है। अर्थात् भगवद्भक्ति व भागवतभक्ति, ये दोनों अलग अलग दो चीज़ नहीं है, परंतु एक ही वस्तु की दो अवस्थाएं हैं; अतः एकको छोडकर दूसरी न रह सकती है। और यह भी बात बतायी जाती है कि साक्षात् भगवान का आश्रय लेना अनुचित है; आचार्य के द्वारा आपका आश्रय लेना ही उचित व कल्याणकारक होगा। .... (३)

(गाथा.) नन्मैयाल् मिक्क नान्मरैयाळर्हळ् * पुन्मैयाहक्करुदुवरादलिल् *
अन्नैयायत्तनाय् एन्नैयाण्डिडुन्तन्मैयान् * शडकोपनेन्नम्बिये ॥ ४ ॥

सद्गुणों से परिपूर्ण, चार वेदों के ज्ञाता वैदिक महात्मा लोग दुर्गुणों का अवतार मानकर मेरी जो उपेक्षा करते हैं, इस कारण से, मेरे लिए स्वयं माता पिता आदि बनकर मुझे अपनानेवाले श्रीशठकोपमुनींद्र, मेरे स्वामी हैं।

इस गाथा से श्रीमधुरकविसूरी, श्रीशठकोपस्वामीजी से अपने ऊपर प्रदर्शित विशेष अनुग्रह का वर्णन करते हैं—मेरे दुर्गुण, यानी आत्मापहाररूप प्रबल पाप देखकर बडे बडे दयामय ज्ञानी लोग भी मेरी उपेक्षा करते रहे; ऐसी अवस्था में श्रीशठकोपमुनींद्र ने मुझको अपने विशेष कृपाकटाक्ष का लक्ष्य बनाकर, माता पिता इत्यादि समस्त बांधवों से किये जानेवाले कार्य स्वयं अकेले करके, सर्वथा अवस्तुभूत मुझे अस्तित्व का प्रदान किया। अतः आप ही मेरे स्वामी हैं; आपको प्रसन्न करना ही मेरा ध्येय है; इसलिए मैं पूर्वोक्त प्रकार से भगवान में जो भक्ति करता हूं, वह सर्वथा उचित है। .... (४)

(गाथा.) नम्बिनेन् पिरर्नन्पोरुळ् तन्नैयुम् * नम्बिनेन् मडवारैयुमुन्नेलाम् *
शेम्बोन्माड त्तिरुक्कुरुहूर्नम्बिक्कन्बनाय् * अडियेन् शदिर्त्तेनिन्ने ॥ ५ ॥

यह दास (जो कि आज, अपने को भगवान और भागवतों का दास मान रहा है), पहिले (जब कि यह आळ्वार की कृपा का पात्र नहीं हुआ था) दूसरों की अच्छी माल में आशा करता था; और (दूसरों की) स्त्रियों में कामना रखता था। परंतु, अब शुद्ध सोनेसे बने हुए महलों से विभूषित श्री कुरुकापुरी के स्वामी का भक्त होकर विवेकी बन गया हूं।

श्रीमधुरकविसूरी पूर्वगाथोक्त अपने पापका विवरण करते हैं इस गाथा से—मैं अनादिकाल से परद्रव्यापहार करते स्त्रीलोलुप रह गया; अथवा आत्मापहार नामक चौर्य करता हुआ, देहात्मभ्रमवान और विषयलोलुप रह गया। अब तो आळ्वार का कृपापात्र बननेपर दास्यवृत्ति को अपनाकर विवेकी भी बन गया हूं। (५)

(गाथा.) इन्नु तोट्टुडुम् एलुमेयुमेम्पिरान् * निन्नु तन्पुहळ् एत्तवरुळिनान् *
कुन्नमाड तिरुक्कुरुहूर्नम्बि * एन्नुमेन्नै इहळ्विलन् काण्मिने ॥ ६ ॥

हमारे स्वामी श्री शठकोपमुनींद्र ने मुझपर ऐसी कृपा की है कि मैं आजसे शुरूकर पूरे भविष्यकाल में सुदृढ अध्यवसायवाला ठहरकर आपके दिव्ययश का ही गान करता रहूंगा; पहाड के सदृश बडे बडे महलों से विभूषित श्री कुरुकापुरी के नाथ शुभगुणपरिपूर्ण आप, फिर कभी भी मेरी उपेक्षा न करेंगे; देख लीजिए।

पूर्वगाथा में प्रस्तुत विवेक का वर्णन यहां पर किया जाता है—मैं ठीक अपना स्वरूप पहचानकर आपके यशोगान करता ही अपना सारा समय बिताऊंगा, कभी न भूलूंगा; अथवा कदाचित् अकस्मात् मेरी भूल भी हो जायँ, तो भी आळ्वार मुझे छोडेंगे नहीं; तुरंत सन्मार्ग में लौटा देंगे। .... (६)

(गाथा.) कण्डुकोण्डेन्नै कारिमारप्पिरान् * पण्डै वल्विनै पात्तियरुळिनान् *
एण्डिशैयुम् अरियवियम्बुहेन् * ओण्डमिळ् शडकोपनरुळैये ॥ ७ ॥

परमोपकारक, कारिनामक महात्मा के सुपुत्र श्रीशठकोप मुनींद्र ने मुझपर विशेष कटाक्ष डालकर मुझे अपनाकर, अनादिकाल से बने हुए मेरे प्रबल पापों का समूल नाश कर दिया; अतः सुंदर द्राविडी कविता के उद्गमस्थान उन श्रीशठकोपमुनींद्र की ऐसी परमकृपा का ही, आठों दिशाओं मे रहनेवालों को ठीक समझाता हुआ गान करूंगा।

मेरे अभिप्राय से आळ्वार का उत्कृष्ट यश यही है कि आपने अनादिकाल से मुझसे कमाए हुए अत्यधिक पाप समूह का एकदम विनाश कर मुझे अपना दास बना दिया; अतः मैं आपके इस यश का ही आठों दिशाओं में फैलाऊंगा।" .... (७)

(गाथा.) अरुळ्कोण्डाडुम् अडियवरिन्बुर * अरुळिनान् अव्वरुमरैयिन्पोरुळ् *
अरुळ्कोण्डु आयिरमिन्तमिळ् पाडिनान् * अरुळ्कण्डीर् इव्वुलहिनिल्मिक्कदे ॥ ८ ॥

भगवत्कृपा की प्रशंसा करनेवाले भक्तलोगों को आनंदित करते हुए (भगवत्प्रसादित) उन श्रेष्ठ वेद के रहस्य अर्थों का प्रदान करनेवाले श्री शठकोपमुनींद्र की कृपा एक ही, इस लोक में सब से बढकर श्रेष्ठ विराजती है।

चेतनों के उद्धार के लिए सांगोपांग वेदशास्त्र का प्रदान करनेवाले, भगवान की कृपा को अत्यद्भुत मानकर उसकी प्रशंसा करनेवाले बडे बडे ज्ञानी लोग, उन शास्त्रों का अध्ययन करने पर भी उनके निगूढ अर्थों का ठीक ज्ञान न पाते हुए, फिर श्री शठकोपमुनींद्र से अनुगृहीत सहस्रगीति के अध्ययन से समस्त सदर्थों को सुविशद जानकर, भगवत्कृपा की प्रशंसा छोडकर आळ्वार की कृपा को ही उससे भी बढकर श्रेष्ठ मानते हुए उसीकी स्तुति कर रहे हैं। .... (८)

(गाथा.) मिक्कवेदियर् वेदत्तिनुट्पोरुळ् * निर्कप्पाडि येनेञ्जुळ् निरुत्तिनान् *
तक्कशीर्चडहोपनेन्नम्बिक्कु * आळ्पुक्क कादल् अडिमैप्पयनन्ने ॥ ९ ॥

सहस्रगीति रचकर उससे श्रेष्ठ वैदिक महात्माओं से अधीयमान वेद के निगूढ अर्थों को मेरे मन में सुदृढ प्रतिष्ठित करानेवाले, अपने लायक शुभगुणों से परिपूर्ण, हमारे नाथ श्रीशठकोपमुनींद्र की सेवा करने की मेरी इच्छा, उसी क्षण में आपकी सेवा प्राप्त कर सफल बन गई।

" वेदके अर्थ इतने निगूढ रहते हैं कि कोई भी मानव, और विशेषत: मेरा समान अज्ञ, उनको जान नहीं सकता। परंतु सहस्रगीति का अध्ययन करने से वे सभ अर्थ मेरे मन में ठीक प्रतिष्ठित हो गये। इस महोपकार के लिए मैं ने आळ्वार की सेवा करने चाहा ; और यह सेवा भी तुरंत मुझे मिल गयी, और मैं कृतार्थ हो गया। श्रीशठकोप मुनींद्र ने भगवान की सेवा करना चाहा ; परंतु बहुत समयतक उस सेवा के अलाभ से आपकी इच्छा अपूर्ण रह गयी। मगर मुझे ऐसा दुख न भोगना पडा ; कारण कि आळ्वार ने विना विलंब मुझे अपना दास बनाया और अपनी सेवा करने का भाग्य भी दिया।" .... (९)

(गाथा.) पयनन्नाहिलुम् पाङ्गल्लराहिलुम् * शेयल् नन्नाहत्तिरुत्ति प्पणिकोळ्वान् *
कुयिल् निन्नाल् पोळिल् शूऴ् कुरुहूर्नम्बि * मुयल्हिन्नेन् उन्तन्मोय्कळर्कन्बैये ॥ १० ॥

दूसरों को सुधारने से अपने किसी प्रकार के लाभ के अभाव में भी, और उनमें सुधारने आवश्यक योग्यता के अभाव में भी, अपने श्रेष्ठ अनुष्ठान से जनता को ठीक शिक्षण देकर उसको अपनाने के लिए, कोलाहल मचानेवाले कोकिलों से युक्त उपवनों से परिवृत श्रीकुरुकापुरी में अवतीर्ण हे शुभगुणपूर्ण श्रीशठकोप मुनिवर ! मैं आपके श्रेष्ठ पादारविंदों में भक्ति करने का ही प्रयत्न कर रहा हूं।

सामान्यत: आचार्य लोग शिष्य को सहसा सदर्थों का उपदेश नहीं दे देते हैं ; परंतु शिष्यसे बहुत प्रार्थित हो जानेपर, उसकी परीक्षा कर, सेवा उठाकर बाद में कथंचित् उपदेश देते हैं। मगर आळ्वार का स्वभाव इससे विपरीत हैं। तथाहि—संसार में पडकर तापत्रय भुगतनेवाले चेतनों की दुरवस्था देखकर स्वयं दुखी होनेवाले आळ्वार, उनकी अयोग्यता की परवाह न करते हुए, स्वयं उनको सनिर्बंध बुलाकर, ख्याति लाभ पूजादि में निरपेक्ष रहकर, सदुपदेशद्वारा उनको सुधार देते हैं। इस तरह कृपामात्रप्रसन्नाचार्य होकर लोकों का उद्धार करने के लिए ही आपका अवतार हुआ। अत: हमारा कर्तव्य इतना ही होगा कि हमेशा आपके भक्त होने का और ऐसे रहने का प्रयत्न करते रहना। .... (१०)

(गाथा.) अन्बन्तनै अडैन्दवर्हट्केल्लामन्वन् * तेन्कुरुहूर्नहर्नम्बिकु *
अन्बनाय् मदुरकवि शोन्न शोल्लू नम्बुवार् पदि * वैहुन्दम् काणिमने ॥ ११ ॥

आश्रितपक्षपाती भगवान का आश्रय लेनेवाले समस्त भक्तों के विषय में भी प्रेम करनेवाले दक्षिण दिशास्थ श्री कुरुकापुरी के नाथ श्री शठकोपमुनींद्र का भक्त होकर मधुरकवि से गीत इस दिव्य प्रबंध को अपना शरण मानकर इसमें विश्वास रखनेवाले महात्माओं का निवासस्थान श्रीवैकुंठ दिव्यधाम होगा; [इस फलश्रुति के साथ यह दिव्यप्रबंध समापित किया गया।]

मधुरकविसूरी से गीत इस शठकोपस्तुति को ही अपना सर्वस्व माननेवाले महात्मा लोग योग्य काल में श्रीवैकुंठधाम पहुंचेंगे; अथवा उनको उतनी दूर जाने की आवश्यकता ही कौनसी है? उक्त सुदृढ अध्यवसायवाले महापुरुष जहां विराजते हैं, वही देश श्रीवैकुंठ है ॥ .... (११)

श्रीमधुरकविसूरी से अनुगृहीत कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु दिव्यप्रबंध समाप्त हुआ ॥

मधुरकवि आळ्वार तिरुवडिगळे शरणम् ॥

द्राविडवेदनामक चारहजार दिव्यप्रबंधमें पहले हजार की
श्रीकाञ्ची जगदाचार्यसिंहासनाधीश - प्रतिवादिभयंकर अण्णङ्गराचार्य
स्वामिलिखित संस्कृतटीकानुसार
श्रीयादवाद्रि - अकारकनि संपत्कुमाराचार्य लिखित हिन्दीटीका समाप्त हुई ॥

श्रीपराङ्कुश परकाल यतिवर वरवरमुनिभ्यो नमः

पहले हजार के अंतर्गत दिव्यप्रबंधों की सूची

१.	तिरुप्पल्लाण्डु	(मंगलाशासनप्रबंध)	(गाथाएं)	१२
२.	पेरियाळ्वार तिरुमोळि	(श्रीभट्टनाथसूक्त)	,,	४६१
३.	तिरुप्पावै	(श्रीव्रतप्रबंध)	,,	३०
४.	नाच्चियार तिरुमोळि	(श्रीगोदासूक्त)	,,	१४३
५.	पेरुमाळ तिरुमोळि	(श्री कुलशेखरसूक्त)	,,	१०५
६.	तिरुच्चन्दविरुत्तम्	(श्री भक्तिसारसूक्त)	,,	१२०
७.	तिरुमालै	(श्री मालाप्रबंध)	,,	४५
८.	तिरुप्पळ्ळियेळुच्चि	(श्री सुप्रभातप्रबंध)	,,	१०
९.	अमलनादिपिरान्	(श्री पाणसूरिसूक्त)	,,	१०
१०.	कण्णिनुण् शिरुत्ताम्बु	(श्रीमधुरकविसूक्त अथवा श्रीशठकोपस्तुति)	,,	११

कुल १० दिव्यप्रबंध मिल कर गाथासंख्या ९४७. होती है। लगभग एक हजार गाथा होने से इन सबको मिलाकर पहिला हजार (मुदलायिरम्) कहने की रूढि है ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः ॥